

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली



क्रम संख्या

४४३०

काल नं०

२२
५२५१

खण्ड

जैन श्वेताम्बर तैरापंथी महासभा

आगम-अनुसन्धान ग्रन्थमाला

ग्रन्थ : ९

उत्तरज्झयणाणि

(भाग १)

[मूल पाठ, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद]

वाचना प्रमुख
आचार्य तुलसी

अनुवादक और सम्पादक
मुनि नथमल
(निकाय-सचिव)

प्रकाशक :
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
(आगम-साहित्य प्रकाशन समिति)
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१

प्रबन्ध सम्पादक :

श्रीचन्द्र रामपुरिया, बी० कॉम०, बी० एल्०

संकलक :

आदर्श साहित्य संघ,
भूख (राजस्थान)

आर्थिक सहायक :

श्री रामलाल हंसराज गोलेछा
विराटनगर (नेपाल)

प्रकाशन तिथि :

१, दिसम्बर, १९६७

प्रति संख्या :

१५००

पृष्ठाङ्क :

६७२

मुद्रक :

रेकिल आर्ट प्रेस,
३१, बडतल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता-७

मूल्य :

रु० २०

JAIN SWETAMBAR TERAPANTHI MAHASABHA AGAM-GRANTHAMALA
GRANTHA : 2

UTTARAJJHAYANANI
(THE UTTARADHYAYANA SUTRĀ)

PART I

Text with variant readings, Sanskrit renderings and Hindi translation.

VACANA PRAMUKH
ACARYA TULASI

EDITED & TRANSLATED
B1
MUNI NATHMAL
Nikaya Saciva

PUBLISHER
JAIN SWETAMBAR TERAPANTHI MAHASABHA
AGAM-SAHITYA PRAKASHAN SAMITI
3 Portuguese Church Street
CALCUTTA-1 (INDIA)

First Edition : 1967
Copies Printed : 1500

Price : Rs. 20.00/-

Managing Editor :

Shreechand Rampuria, B. Com., B.L.



Manuscript compiled by :

Adarsha Sahitya Sangha

Churu (Rajasthan)



Financial Assistance :

Sri Ramlal Hanshraj Golchha

Biratnagar (Nepal)

Printer :

Raphael Art Press

31, Burtolla Street,

CALCUTTA-7

All Rights Reserved

समर्पण

॥१॥

पुढो बि पण्णा-पुरिसो सुवक्खो,
आण्णा-पहाणो जणि जस्स निच्चं ।
सच्चय्ययोगे पवरासयस्स,
भिव्वुस्स तस्स प्पणिहाण पुब्बं ॥

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पट्ट,
होकर भी आगम-प्रधान था ।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से ॥

॥२॥

बिलोडियं आगम दुद्ध मेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीय मच्छं ।
सञ्जायसञ्जाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाण पुब्बं ॥

जिसने आगम-दोहन कर कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत ।
श्रुत-सद्धान लीन बिर चित्त,
जयाचार्य को विमल भाव से ॥

॥३॥

पवाहिया जेण सुयस्स चारा,
गणे समत्थे मम माणसे बि ।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाण पुब्बं ॥

जिसने श्रुत की चार बहाई,
सकल संघ में मेरे मन में ।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से ॥

विनयावगतः

आचार्य तुलसी

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिवार्य होता है, उस माली का जो अपने हाथों से उस और सिञ्चित द्रुम-निकुठज को पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है, उस कलाकार का जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का शोध-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमो क्षण उसमें लगें। संकल्प फलवान् बना और बैसा हो हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा शर्म-परिवार उस कार्य में संलग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभावो बनाना चाहता हूँ, जो इस प्रवृत्ति में संविभागी रहे हैं। संक्षेप में वह संविभाग इस प्रकार है—

अनुवादक और सम्पादक :	सहयोगी :	मुनि नथमल (निकाय-सचिव)
		मुनि मीठालाल
	”	मुनि दुलहराज
पाठ-सम्पादन :	”	मुनि सुदर्शन
	”	मुनि मधुकर
	”	मुनि हीरालाल
संस्कृत छाया :	”	मुनि सुमेरमल 'लाइन'
	”	मुनि श्रीचन्द्र 'कमल'
पदानुक्रम :	”	साध्वी जयधो
	”	साध्वी कनकश्री
विषयानुक्रम :	”	मुनि रूपचन्द्र

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिनने इस गुह्य प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सबको आशीर्वाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

—आचार्य सुलसी

ग्रन्थानुक्रम

समर्पण			
अन्तस्तोष			
प्रकाशकीय			
सम्पादकीय	पृ० १-४
भूमिका	पृ० १-३
मूल	पृष्ठ १-५४६
परिशिष्ट			
पदानुक्रम	१-५६
शुद्धि-पत्रक	१-६
आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची	१-३

प्रकाशकोय

‘उत्तरजम्बगानि’ (उत्तराख्ययन सूत्र) मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणियों सहित दो भागों में आपके हाथों में है ।

बाचन प्रमुख आचार्यों श्री तुलसी एवं उनके इति और आकार पर सब कुछ न्योछावर कर देने वाले मुनि-मुक्त की बहु समवेत कृति आगमिक कार्य-क्षेत्र में युगान्तरकारी है । इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं, पर सत्य है । बहुमुखी प्रकृतियों के केन्द्र प्रागुज्ज्वल आचार्य श्री तुलसी ज्ञान-सिद्धि के एक महान् तैलस्वी रवि हैं और उनका मण्डल भी शुद्ध मन्त्रों का तपोपुच्छ है । यह इस अत्यन्त प्रम-साध्य कृति से स्वयं फलीभूत है ।

गुरुदेव के शरणों में मेरा विनम्र सुस्माव रहा—आपके तत्त्वावधान में आगमों का सम्पादन और अनुवाद हो—यह भारत के सांस्कृतिक अम्युदय की एक मूल्यवान् कड़ी के रूप में चिर-अपेक्षित है । बहु अत्यन्त स्वायी कार्य होगा, जिसका काम एक-दो-तीन नहीं अपितु अविन्य आशी पीढ़ियों की प्राप्त होता रहेगा । मुझे इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि मेरी मनोभावना अंकुरित ही नहीं, पर फलवती और रसवती भी हुई है ।

प्रस्तुत ‘उत्तरजम्बगानि’ आगम-अनुसंधान ग्रन्थशाखा का द्वितीय ग्रन्थ है । इससे पूर्व प्रकाशित ‘दसवेआलियं’ (मूल पाठ, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण युक्त) को अब अनुसन्धान ग्रन्थशाखा का प्रथम ग्रन्थ समझना चाहिए ।

‘दसवेआलियं’ एक जिल्द में प्रकाशित है । उसमें टिप्पण प्रत्येक अध्यायन के बाद में है । ‘उत्तरजम्बगानि’ में टिप्पणों की अलग जिल्द द्वितीय भाग के रूप में प्रकाशित है ।

‘दसवेआलियं’ में पाठान्तर नहीं दिये गये थे । ‘उत्तरजम्बगानि’ में पाठान्तर दे दिये गये हैं ।

‘दसवेआलियं’ की तरह ही ‘उत्तरजम्बगानि’ में भी प्रत्येक अध्यायन के आरम्भ में परिशिष्टपूर्ण आमुख दे दिया गया है, जिससे अध्ययन के विषय का सांगोपाङ्ग आभास हो जाता है । प्रत्येक आमुख एक अध्ययनपूर्ण निबन्ध-सा है । परिशिष्ट में आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची दे दी गई है, जिससे आमुखों की लिखने में जो परिश्रम उठाया गया है, उसका सहज ही आभास हो जाता है । चारों शरणों का पदानुक्रम भी दे दिया गया है । आरम्भ में अध्ययन-अनुक्रमिका के साथ-साथ अध्ययन विषयानुक्रम भी दे दिया गया है, जिससे प्रत्येक श्लोक का विषय जाना जा सकता है ।

द्वितीय भाग में टिप्पण है । टिप्पणों के प्रस्तुत करने में पूर्णि, टीकाएँ आदि के उपयोग के साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का भी सहारा लिया गया है, जिनकी सूची द्वितीय भाग के अन्त में दे दी गई है । प्रथम परिशिष्ट में शब्द-विमर्श और द्वितीय परिशिष्ट में पाठान्तर-विमर्श समाहित हैं । इस तरह टिप्पण भाग अपूर्व अध्ययन के साथ पाठकों के सामने उपस्थित हो रहा है । प्रयुक्त ग्रन्थों के सन्दर्भ सहित उद्धरण पाद-टिप्पणियों में दे दिये गये हैं, जिससे जिज्ञासु पाठक की तृप्ति हाथों हाथ हो जाती है और उसे संदर्भ देखने के लिए इधर-उधर दौड़ना नहीं पड़ता ।

तेरापंच के आचार्यों के बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने प्राचीन पूर्णि, टीका आदि ग्रन्थों का बहुकार कर दिया । वास्तव में इसके पीछे सत्य नहीं था । सत्य जहाँ भी हो बहु आदरणीय है, वही तेरापंची आचार्यों की दृष्टि रही । अतुल्य आचार्य जयाचार्य ने पुरानी टीकाओं का कितना उपयोग किया था, यह उनकी भगवती ओड़ आदि रचनाओं से प्रकट है । ‘दसवेआलियं’ तथा ‘उत्तरजम्बगानि’ तो इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि निर्मुक्ति, भाव्य, पूर्णि, टीकाओं आदि का जितना उपयोग प्रथम बार बाचन प्रमुख आचार्य श्री तुलसी एवं उनके चरणों में सम्पादन-कार्य में छे हुए निकाय रुचिब मुनि श्री नथमल्ल की तथा उनके सहयोगी साधुओं ने किया है, उतना किसी भी अद्यावधि प्रकाशित सामुदाय संस्करण में नहीं हुआ है । सारा अनुवाद एवं लेखन-कार्य अजिनब कल्याण को लिए हुए हैं । मौलिक चिन्तन भी उनमें कम नहीं है । बहुमुत्तला एवं यंत्रीक अन्वेषण प्रति पृष्ठ से फलकते हैं । हृय आशा करते हैं कि पाठकों को दो भागों में प्रकाशित होने वाला यह ग्रन्थ अनेक नई सामग्री प्रदान करेगा और वे इसे बड़े ही आदर के साथ अपनायेंगे ।

पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि

आचार्य श्री के तत्त्वावधान में सन्तो द्वारा प्रस्तुत पाण्डुलिपि को नियमानुसार अवधार कर उसकी प्रतिलिपि करने का कार्य आचार्य साहित्य संघ, (पूरु) द्वारा सम्पन्न हुआ है, जिसके लिए हृदय संघ के संभारकों के प्रति कृतज्ञ हैं।

अर्थ-व्यवस्था

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्यय बिराटनगर (नेपाल) निवासी श्री रामलालजी हंसराजजी गोलछा द्वारा श्री हंसराजजी हुलासचन्दजी गोलछा की स्वर्गीया माता श्री बापीदेवी (धर्मपत्नी श्री रामलालजी गोलछा) की स्मृति में प्रयत्न निधि से हुआ है। एतदर्थ इस अनुकरणीय अनुदान के लिए गोलछा-परिवार हार्दिक बन्धुवाद का पात्र है।

आगम-साहित्य प्रकाशन समिति की ओर से उक्त निधि से होने वाले प्रकाशन-कार्य की देल-रेल के लिए निम्न सजनों की एक उपसमिति गठित की गई है :—

- १— श्रीमान् हुलासचन्दजी गोलछा
- २— „ मोहनलालजी बौडिया
- ३— „ श्रीचन्द रामपुरिया
- ४— „ गोपीचन्दजी चौपड़ा
- ५— „ कैवलचन्दजी नाहटा

सर्व श्री श्रीचन्द रामपुरिया एवं कैवलचन्दजी नाहटा उक्त समिति के संयोजक चुने गये हैं।

आगम-साहित्य प्रकाशन-कार्य

महासभा के अन्तर्गत आगम-साहित्य प्रकाशन समिति का प्रकाशन-कार्य ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहा है, त्यों-त्यों हृदय में आनन्द का पारावार नहीं। मैं तो अपने जीवन की एक साथ ही पूरी होते देख रहा हूँ। इस अवसर पर मैं अपने अनन्य बन्धु और साथी सर्व श्री गोविन्दरामजी सरावगी, मोहनलालजी बौडिया एवं कैवलचन्दजी सेठिया को उनकी मुक्त सेवाओं के लिए हार्दिक बन्धुवाद देता हूँ।

आभार

आचार्य श्री को सुदीर्घ दृष्टि अरपत्त भेदिनी है। जहाँ एक ओर जन-मानस को आध्यात्मिक और नैतिक चेतना की जागृति के व्यापक आन्दोलनों में उनके अमूल्य जीवन-अणु लग रहे हैं वहाँ दूसरी ओर आगम-साहित्य-गत जैन-संस्कृति के मूल सन्देश को जन-व्यापी बनाने का उनका उपक्रम भी अतन्त्र और स्तुर्य है। जैन-आगमों को अभिलिखित रूप में भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के सम्मुख ला देने की धार्मिका में वाचना प्रमुख के रूप में आचार्य श्री सुलसी ने जो अथक परिश्रम अपने कर्णों पर लिया है, उसके लिए जैन ही नहीं अपितु सारी भारतीय जनता उनके प्रति कृतज्ञ रहेगी।

निकाय सचिव मुनि श्री नमसलजी का सम्पादन-कार्य एवं तैरापंथ-संघ के अग्र्य विद्वान् मुनि-वृत्त के सक्रिय सहयोग भी बल्लुतः अभिनन्दनीय है।

हम आचार्य श्री और उनके साधु-परिवार के प्रति इस जन-हितकारी पवित्र प्रवृत्ति के लिए नतमस्तक हैं।

जैन श्वेताम्बर तैरापंथी महासभा

३, पुरुषोत्तम चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१

श्रीचन्द रामपुरिया

संयोजक

आगम-साहित्य प्रकाशन समिति

सम्पादकीय

आगम-सम्पादन की प्रेरणा

विक्रम सम्वत् २०११ का वर्ष और चैत्र मास। आचार्य श्री तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे। पूना से नारायण गाँव की ओर जाते-जाते मध्याह्नि में एक दिन का प्रवास मंचर में हुआ। आचार्य श्री एक जैन परिवार के भवन में ठहरे थे। वहाँ मासिक पत्रों की फाइलें पड़ी थीं। गृह-स्वामी की अनुमति ले, हम लोग उन्हें पढ़ रहे थे। साँझ की बेला, लगभग छह बजे होंगे। मैं एक पत्र के किसी अंश का निवेदन करने के लिए आचार्य श्री के पास गया। आचार्य श्री पत्रों को देख रहे थे। जैसे ही मैं पहुँचा, आचार्य श्री ने धर्मदूत के सदस्यक अंक की ओर संकेत करते हुए पूछा—“यह देखा कि नहीं?” मैंने उत्तर में निवेदन किया—“नहीं, अभी नहीं देखा।” आचार्य श्री बहुत गम्भीर हो गए। एक क्षण रुक कर बोले—“इसमें बौद्ध-पिटकों के सम्पादन की बहुत बड़ी योजना है। बौद्धों ने इस दिशा में पहले ही बहुत कार्य किया है और अब भी बहुत कर रहे हैं। जैन-आगमों का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से अभी नहीं हुआ है और इस ओर अभी ध्यान भी नहीं दिया जा रहा है।” आचार्य श्री की वाणी में अन्तर-वेदना टपक रही थी, पर उसे पकड़ने में समय की अपेक्षा थी।

आगम-सम्पादन का संकल्प

रात्रि-कालीन प्रार्थना के पश्चात् आचार्य श्री ने साधुओं को आमंत्रित किया। वे आए और बन्दना कर पंक्ति-बद्ध बैठ गए। आचार्य श्री ने सार्य-कालीन चर्चा का स्पर्श करते हुए कहा—“जैन-आगमों का कायाकल्प किया जाय, ऐसा संकल्प उठा है। उसकी पूर्ति के लिए कार्य करना होगा, पूर्ण श्रम करना होगा। बोली, कौन तैयार है?”

सारे हृदय एक साथ बोल उठे—“सब तैयार हैं।”

आचार्य श्री ने कहा—“महान् कार्य के लिए महान् साधना चाहिए। कल ही पूर्व तैयारी में लग जाओ, अपनी-अपनी रुचि का विषय चुनो और उसमें गति करो।”

मंचर से विहार कर आचार्य श्री संगमनेर पहुँचे। पहले दिन वैयक्तिक बातचीत होती रही। दूसरे दिन साधु-साध्वियों की परिषद् बुलाई गई। आचार्य श्री ने परिषद् के सम्मुख आगम-सम्पादन के संकल्प की चर्चा की। सारी परिषद् प्रफुल्ल हो उठी। आचार्य श्री ने पूछा—“क्या इस संकल्प को अब निर्णय का रूप देना चाहिए?”

समस्त से प्रार्थना का स्वर निकला—“अवश्य, अवश्य।” आचार्य श्री औरंगाबाद पधारे। सुराणा-भवन, चैत्र नृकला त्रयोदशी (वि० सं० २०११), महावीर-जयंती का पुण्य-पर्व। आचार्य श्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इस चतुर्विध-संघ की परिषद् में आगम-सम्पादन की विधिवत् घोषणा की।

आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ

वि० सं० २०१२ श्रावण मास (उज्जैन चातुर्मास) से आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ हो गया। न तो सम्पादन का कोई अनुभव और न कोई पूर्व तैयारी। अकस्मात् धर्मदूत का निमित्त पा आचार्य श्री के मन में संकल्प उठा और उसे सबने शिरोधार्य कर लिया। चिन्तन की भूमिका से इसे निरी भावुकता ही कहा जाएगा, किन्तु भावुकता का मूल्य चिन्तन से कम नहीं है। हम अनुभव-विहीन थे, किन्तु आत्म-विश्वास से शून्य नहीं थे। अनुभव आत्म-विश्वास का अनुगमन करता है, किन्तु आत्म-विश्वास अनुभव का अनुगमन नहीं करता।

प्रथम दो-तीन वर्षों में हम अज्ञात दिशा में यात्रा करते रहे। फिर हमारी सारी दिशाएँ और कार्य-प्रवृत्तियाँ निश्चित व सुस्थिर हो गईं। आगम-सम्पादन की दिशा में हमारा कार्य सर्वाधिक विज्ञान व गुरुतर कठिनाइयों से परिपूर्ण है, यह कह कर मैं स्वल्प भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ। आचार्य श्री के अदम्य उत्साह व समर्थ प्रयत्न से हमारा कार्य निरन्तर गतिशील हो रहा है। इस कार्य में हमें अन्य अनेक विद्वानों की सद्भावना, समर्थन व प्रोत्साहन मिल रहा है। मुझे विश्वास है कि आचार्य श्री की यह वाचना पूर्ववर्ती वाचनाओं से कम अर्थवान् नहीं होगी।

आगम-सम्पादन की क्यारेला

प्रस्तुत ग्रंथ उत्तराध्ययन का सानुवाद संस्करण है। यह आगम-ग्रन्थ-माला का दूसरा ग्रन्थ है। आगम-साहित्य के अध्येता दोनों प्रकार के लोग हैं—विद्वद्-जन और साधारण-जन। दोनों को दृष्टि में रख कर हमने सम्पादन कार्य को छह ग्रन्थ-माला में विभक्त किया है। उसका आधार यह है—

- (१) आगम-सुप्त ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के मूलपाठ, पाठान्तर, शब्दानुक्रम आदि होंगे।
- (२) आगम ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के मूलपाठ, पाठान्तर, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद, पदानुक्रम या सूत्रानुक्रम आदि होंगे।
- (३) आगम-अनुसन्धान ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के टिप्पण होंगे।
- (४) आगम-अनुशीलन ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के समीक्षात्मक अध्ययन होंगे।
- (५) आगम-कथा ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों से सम्बन्धित कथाओं का संकलन होगा।
- (६) वर्गीकृत-आगम ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के वर्गीकृत और संक्षिप्त संस्करण होंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका बहुत ही लघुकाय है। उसका प्रतिपाद्य विषय 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन' (आगम-अनुशीलन ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-२) तथा 'दसवेँजालियं तह उत्तराध्ययनाणि' (आगम-सुप्त ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-१) की भूमिका में प्रतिपादित हो चुका है। प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में आमुख है, उनमें भी अध्ययन की प्रासंगिक चर्चा की गई है। इसलिए भूमिका में चर्चित विषयों की पुनः चर्चा करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

मूलपाठ

प्रस्तुत ग्रन्थ में मूलपाठ वही है, जिसका प्रयोग हमने आगम-सुप्त ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-१ में किया है। पाठ-संशोधन में प्रयुक्त आदर्शों का परिचय उस ग्रन्थ में दिया जा चुका है। पाठान्तर पाद-टिप्पणों में दिए गए हैं। उनके आगे कोष्ठक में संशोधन में प्रयुक्त आदर्शों के संकेत हैं।

हस्तलिखित प्रतियों के संकेत

- अ—मूलपाठ सावचूरी।
 आ—उत्तराध्ययन मूलपाठ।
 इ—उत्तराध्ययन मूल।
 उ—उत्तराध्ययन पाठ, अवचूरी सहित।
 श—उत्तराध्ययन पाठ, अवचूरी सहित।
 स—उत्तराध्ययन सर्वार्थसिद्धि टीका सहित।

मुद्रित प्रतियों के संकेत

- सु—सुखबोधा टीका, नेमिचन्द्राचार्य कृत, प्र०—देवचन्द लालमाई।
 वृ—वृहद्ब्रह्मि, शान्त्याचार्य कृत, प्र०—देवचन्द लालमाई जैन, पुस्तकोद्धार, ग्रंथांक-३३।
 चू—चूर्णि, गोपालिक महारशिष्य कृत, प्र०—देवचन्द लालमाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रंथांक-३३।

संस्कृत-छाया

संस्कृत-छाया को हमने वस्तुतः छाया रखने का ही प्रयत्न किया है। कुछ भ्रूढ़ित पुस्तकों में संस्कृत-छाया टीकाओं के आधार पर की गई है, किन्तु यह कई स्थलों पर छाया न हो कर संस्कृत पर्यायान्तर हो जाता है। टीकाकार प्राकृत शब्द की व्याख्या करते हैं अथवा उसका संस्कृत पर्यायान्तर देते हैं। छाया में वैसा नहीं हो सकता।

मूलपाठ में कुछ शब्द देशी भाषा के हैं। संस्कृत-छाया तत्सम प्राकृत शब्दों की हो सकती है, किन्तु देशी शब्दों की नहीं हो सकती। वहाँ हमने अर्थानुसार संस्कृत पर्याय का प्रयोग किया है। देखें—१३।२१ और २९।२२ में 'घणिय' शब्द का संस्कृत पर्याय। जिनके लिए संस्कृत का एक शब्द नहीं मिलता, वैसे देशी शब्दों को उभयवर्ती व्यवच्छेदों (कोमा) के अन्तर्गत रखा गया है। देखें १।५ का 'कणकुण्डग'। परिभाषाई शब्दों को भी उभयवर्ती व्यवच्छेदों के अन्तर्गत रखा गया है।

हिन्दी-अनुवाद

उत्तराध्ययन का हिन्दी-अनुवाद मूलस्पर्शी है। इसमें कोरे शब्दानुवाद की सी विरसता और जटिलता नहीं है तथा भावानुवाद जैसा विस्तार भी नहीं है। सूत्र का आशय जितने शब्दों में प्रतिबिम्बित हो सके, उतने ही शब्दों की योजना करने का प्रयत्न किया गया है। मूल शब्दों की सुरक्षा के लिए कहीं-कहीं उनका प्रचलित अर्थ कोष्ठकों में किया गया है। सूत्रगत हादों की स्पष्टता टिप्पण के संस्करण में की गई है। देखें—उत्तराध्ययन के टिप्पण। सभी सूत्रों ४ टिप्पण अनुवाद के तत्काल बाद नहीं लिखे जा सकते। इस कठिनाई के कारण टिप्पणों के संकेत अनुवाद के साथ संहन्ध नहीं किये जा सके। इससे पाठकों के सामने किञ्चित् कठिनाई होती है। हमारी कठिनाई उससे कहीं अधिक है, इसलिए वैसा करना हमारे लिए संभव नहीं।

परिशिष्ट

इस संस्करण में तीन परिशिष्ट हैं—

- (१) पदानुक्रम — इसमें प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक चरण का अनुक्रम किया गया है।
- (२) प्रयुक्त-ग्रन्थ—इसमें आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची है।
- (३) मुद्रि-पत्रम्।

ग्रन्थाद्य—ग्रन्थ-परिमाण

उत्तराध्ययन का अक्षर-परिमाण कुल ६५५१२।

उत्तराध्ययन अनुष्टुप् श्लोक-परिमाण २०५०।१२ अक्षर।

प्रस्तुत सम्पादन में सहयोगी

उत्तराध्ययन सर्वाधिक प्रसिद्ध आगम है। यह सरस, सरल और हृदयप्राही है। इसका अनुवाद भी हमने प्राञ्जल हिन्दी में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अनुवाद-कार्य में भुनि मीठालालजी व दुलहराजजी ने पूरा योग दिया है। आचार्य श्री ने इसे स्व-रुचि तथा जन-रुचि दोनों कसौटियों से कसा है।

इसका पदानुक्रम साध्वी जयश्री, कनकश्री ने किया है। उसके संशोधन में भुनि हनुमानमलजी (सरदारशहर), हीरालालजी, श्रीचन्द्रजी, किशनलालजी, मोहनलालजी (आमेट), साध्वी कमलश्रीजी तथा सरोजकुमारीजी ने योग दिया है।

इसका विषयानुक्रम भुनि रूपचन्द्रजी ने किया है। अनुवाद की प्रतिलिपि में भुनि सुमेरमलजी 'सुमन' ने मेरा सहयोग किया है। ग्रन्थ-परिमाण की गणना भुनि सागरमलजी 'श्रमण', भुनि मोहनलालजी (आमेट) ने की है।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक साधु-साध्वियों की पवित्र अँगुलियों का योग है। आचार्य श्री के वरदहस्त की छाया में बैठ कर कार्य करने वाले हम सब संभागी हैं, फिर भी मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूँ, जिनका इस काय में योग है और आशा करता हूँ कि वे इस महान् कार्य के अधिम चरण में और अधिक दक्षता प्राप्त करेंगे।

आगमों के प्रबन्ध-सम्पादक श्री श्रीचन्द्रजी रामपुरिया तथा स्वर्गीय मदनचन्द्रजी गोठी का भी इस कार्य में निरन्तर सहयोग रहा है ।

आदर्श साहित्य संघ के संचालक व व्यवस्थापक श्री हनूतमलजी सुराना व बथचन्दलालजी दफ्तरी का भी अविरल योग रहा है । आदर्श साहित्य संघ की सहयुक्त सामग्री ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है । इस लक्ष्य के लिए समान गति से चलने वालों की सम-प्रवृत्ति में योगदान की परम्परा का उल्लेख व्यवहार-भूति मात्र है । वास्तव में यह हम सबका पवित्र कर्तव्य है और उसी का हम सबने पालन किया है ।

आचार्य श्री प्रेरणा के अनन्त स्रोत हैं । हमें इस कार्य में उनकी प्रेरणा और प्रत्यक्ष योग दोनों प्राप्त हैं, इसलिए हमारा कार्य-पथ बहुत श्रुत हुआ है । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं कार्य की शुरुता को बढ़ा नहीं पाऊँगा । उनका आशीर्वाद दीप बन कर हमारा कार्य-पथ प्रकाशित करता रहे, यही हमारी आशा है ।

—सुनि नथमल

सागर-सदन,
शाहीबाग,
अहमदाबाद-४
२० अगस्त, १९६७



भूमिका

जैन-आगम चार वर्गों में विभक्त हैं—(१) अंग, (२) उपांग, (३) मूल और (४) शेष। यह वर्गीकरण बहुत प्राचीन नहीं है। विक्रम की १३-१४वीं शताब्दी से पूर्व इस वर्गीकरण का उल्लेख प्राप्त नहीं है।

उत्तराध्ययन 'मूल वर्ग' के अन्तर्गत परिगणित होता है।

पूर्णि-कालीन भूत-पुरुष की स्थापना के अनुसार मूल-स्थानीय (चरण-स्थानीय) दो सूत्र हैं—(१) आचारांग और (२) सूत्रकृतांग। परन्तु जिस समय पेंतालीस आगमों की कल्पना स्थिर हुई, उस समय भूत-पुरुष की स्थापना में भी परिवर्तन हुआ और भूत-पुरुष की अर्वाचीन प्रतिकृतियों में दशवैकालिक और उत्तराध्ययन—ये दो सूत्र चरण-स्थानीय माने जाने लगे।

नाम

इस सूत्र का नाम उत्तराध्ययन है। यह दो शब्दों—'उत्तर' और 'अध्ययन'—से बना है। इसी सूत्र के अन्तिम श्लोक तथा निर्युक्ति आदि में इसका नाम बहुवचनरूपक मिलता है।

रचना-काल और कर्तृत्व

निर्युक्तिकार के अनुसार उत्तराध्ययन किसी एक कर्त्ता की कृति नहीं है। कर्तृत्व की दृष्टि से इसके अध्ययन चार वर्गों में विभक्त होते हैं। जैसे—(१) अंग-प्रभव—दूसरा अध्ययन, (२) जिन-भाषित—दसव अध्ययन, (३) प्रत्येक-बुद्ध-भाषित—भाउत्रों अध्ययन और (४) संवाद-समुत्पित—नोंवाँ तथा तेईसवाँ अध्ययन। इस सूत्र के अध्ययन कब और किसके द्वारा रचे गए, इसकी प्रामाणिक जानकारी के लिए साधन-सामग्री सुलभ नहीं है।

उत्तराध्ययन की विषय-वस्तु के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तराध्ययन के अध्ययन ई० पू० ६०० से ईसवी सन् ४००, लगभग हजार वर्ष की धार्मिक व दार्शनिक धारा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

कई विद्वान् ऐसा मानते हैं कि उत्तराध्ययन के पहले अठारह अध्ययन प्राचीन हैं और उत्तरवर्ती अठारह अध्ययन अर्वाचीन। किन्तु इस मत की पुष्टि के लिए कोई पुष्ट साक्ष्य प्राप्त नहीं है। यह सही है कि कई अध्ययन बहुत प्राचीन हैं और कई अर्वाचीन।

वीर निर्वाण की एक सहास्रब्दी के बाद देवद्विगणी क्षमाभ्रमण ने प्राचीन और अर्वाचीन अध्ययनों का संकलन कर उसे एक रूप दिया।

उत्तराध्ययन धर्मकथानुयोग में परिगणित होता है। इससे यह अनुमान लगता है कि इसके प्राचीन संस्करण का मुख्य भाग कथा-भाग था।

वर्तमान में प्राप्त उत्तराध्ययन में अनेक अनुयोगों का समावेश है। इसमें १४ अध्ययन धर्मकथात्मक (७, ८, ९, ११, १३, १४, १८ से २३, २५ से २७), कुछ अध्ययन उपदेशात्मक (१, ३, ४, ५, ६ और १०), जो अध्ययन आचारात्मक (२, ११, १५, १६, १७, २४, २६, ३२ और ३५) तथा सात अध्ययन (२८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ३६) सैद्धान्तिक हैं।

इन तथ्यों से यह कालित होता है कि यह संकलन-सूत्र है, एक-कर्तृक नहीं।

आकार और विषय-वस्तु

इसमें छत्तीस अध्यायन हैं और १६३८ श्लोक तथा ८६ सूत्र हैं । प्रत्येक अध्यायन का विषय भिन्न-भिन्न है । उसका विवरण इस प्रकार है—

अध्ययन	श्लोक	विषय
१—विणयसूयं	४८	विनय
२—परीसङ्ग	४६ सू० ३	प्राप्त-कष्ट-सङ्गन का विधान
३—आउरंगिज्जं	२०	चार दुर्लभ अंगों का प्रतिपादन
४—असंख्यं	१३	प्रमाद और अप्रमाद का प्रतिपादन
५—अकाममरणिज्जं	३२	मरण-विभक्ति—अकाम और सकाम-मरण
६—पुरिसविज्जा	१७	विद्या और आचरण
७—उरुत्तिज्जं	३०	रस-गुह्य का परित्याग
८—काविलिज्जं	२०	लाम और लोभ के योग का प्रतिपादन
९—नमिपठवज्जा	६२	संयम में निष्प्रकम्प भाव
१०—दुमपचयं	२७	अनूशासन
११—बहुसुयपूजा	३२	बहुश्रुत की पूजा
१२—हरिससिज्जं	४७	तप का ऐश्वर्य
१३—अससंभूयं	३५	निदान—भोग-संकल्प
१४—उमुकारिज्जं	५३	अनिदान - भोग-असंकल्प
१५—समिक्खुगं	१६	मिद्ध के गुण
१६—समाहिठाणाङ्गं	१७ सू० १२	ब्रह्मचर्य की गुणियाँ
१७—पावसमणिज्जं	२१	पाप-वर्जन
१८—संजङ्गज्जं	५३	भोग और ऋद्धि का त्याग
१९—मिथचारिता	६८	अपारिकर्म—देहाध्यास का परित्याग
२०—अणाङ्गपठवज्जा	६०	अनाद्यता
२१—समुद्पातिज्जं	२४	विचित्र चर्या
२२—रहमेमिज्जं	४९	चरण का स्थिरीकरण
२३—गोथमकेसिज्जं	८६	धर्म—आतुर्याम और पंचयाम
२४—समितीओ	२७	समितीयों-गुणियाँ
२५—जन्नतिज्जं	४३	ब्राह्मण के गुण
२६—सामाचारी	५२	सामाचारी
२७—खलुंकिज्जं	१७	अज्ञातता
२८—मोक्खमगगई	३६	मोक्ष-मार्ग-गति
२९—अप्पमाओ	सू० ७४	आवश्यक में अप्रमाद
३०—तवोमग्गो	३७	तप

३१—चरणविह्वी	२१	चारित्र
३२—पमायडाणाई	१११	प्रमाद-स्थान
३३—कम्मपगळी	२५	कर्म
३४—लेसउम्हयणं	६१	लेख्या
३५—अणगारमग्गे	२१	मिथु के गुण
३६—जीवाजीवविमसी	२६८	जीव और अजीव का प्रतिपादन

इस सूत्र में भाषा के विशिष्ट प्रयोग उपलब्ध होते हैं। इसकी मूल भाषा अर्द्धमागधी प्राकृत है, परन्तु यत्र-तत्र महाराष्ट्री-प्राकृत के प्रयोग भी बहुलता से मिलते हैं।

इन पृष्ठों में चर्चित विषय-वस्तु का विशद विवेचन 'वेसवेआलियं तह उत्तरउम्हयणं' की भूमिका (पृष्ठ १-४६) में किया जा चुका है। व्याकरण, छन्द, तुलनात्मक, भूगोल और व्यक्ति-परिचय—इनका विमर्श 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षामक अध्ययन' में किया जा चुका है।

वाव

२६ अप्रैल, १९६७

—आचार्य तुलसी

उत्तरपञ्चायणाणि

अध्ययन अनुक्रमणिका

१—विणय-सूर्य
२—परीसह-पविमल्ली
३—वाउरंगिज
४—असंख्य
५—अकाश-सरणिज
६—खुट्टाग नियंठिज
७—उरविमज
८—काविलीय
९—नमिपक्षज
१०—दुमपत्तय
११—बहुस्तुयपुजा
१२—हरिणसिज
१३—चित्तसम्पूइज
१४—उमुयारिज
१५—समिबलुय
१६—बम्भचैरसमाहिठाण
१७—पावसमणिज
१८—संजइज
१९—मियापुतिज
२०—महानियमिज
२१—समुहवालीय
२२—रहनेमिज
२३—केसिगोयमिज
२४—पवयण-माया
२५—जन्मइज
२६—सामायारी
२७—खलुंकिज
२८—मोकलमगगई
२९—सम्मत्परकमे
३०—तबदगायई
३१—चरणविही
३२—पमायट्टाण
३३—कम्मपयडी
३४—ऐसउभयण
३५—अणगारमग्गई
३६—जीवाजीबविमली

पृष्ठ	१-१६
	१७-३६
	३७-४६
	४७-५४
	५५-७२
	७३-८०
	८१-९२
	९३-१०२
	१०३-११८
	११९-१२८
	१२९-१३८
	१३९-१५२
	१५३-१६८
	१६९-१८४
	१८५-१९२
	१९३-२१०
	२११-२१८
	२१९-२३४
	२३५-२५६
	२५७-२७२
	२७३-२८२
	२८३-२९६
	२९७-३१८
	३१९-३३०
	३३१-३४२
	३४३-३६०
	३६१-३६८
	३६९-३८०
	३८१-४१६
	४१७-४२८
	४२९-४३६
	४३७-४६०
	४६१-४७२
	४७३-४८८
	४८९-४९६
	४९७-५४६

अध्ययन-विषयानुक्रम

प्रथम अध्ययन : विनय-भूत (विनय का विधान, प्रकार और महत्त्व)

पृ० १-१६

- श्लोक १—विनय-प्ररूपण की प्रतिज्ञा ।
२—विनीत की परिभाषा ।
३—अविनीत की परिभाषा ।
४—अविनीत का गण से निष्कासन ।
५—अज्ञानी भिक्षु का सूअर की तरह आचरण ।
६—विनय का उपदेश ।
७—विनय का परिणाम ।
८—भिक्षु का आचार्य के पास विनय और मौन-भाव से सार्थक पदों का अध्ययन ।
९—अमा की आराधना और क्षुद्र व्यक्तियों के साथ संसर्ग-व्याग ।
१०—चण्डालोचित कर्म का निषेध ।
अधिक बोलने का निषेध ।
स्वाध्याय और ध्यान का विधान ।
११—ऋजुता तथा मूल की स्वीकृति ।
१२—अविनीत और विनीत घोड़े से शिष्य के आचरण की तुलना ।
१३—अविनीत शिष्य द्वारा कोमल प्रकृति वाले आचार्य को भी क्रोधी बना देना ।
विनीत शिष्य द्वारा प्रचण्ड प्रकृति वाले आचार्य को भी प्रसन्न करना ।
१४—बोलने का विवेक ।
१५, १६—संयम और तप द्वारा आत्म-दमन ।
१७—आचार्य के प्रतिकूल वर्तन का वर्जन ।
१८, १९—आचार्य के प्रति विनय-पद्धति का निरूपण ।
२०-२२—आचार्य द्वारा आर्मांजित शिष्य के आचरण का निरूपण ।
२३—विनीत शिष्य को ही सूत्र, अर्थ और तदुभय देने का विधान ।
२४, २५—भाषा-दोषों के वर्जन का उपदेश ।
२६—अकेली स्त्री से आलाप-संलाप का निषेध ।
२७—अनुशासन का स्वीकार ।
२८, २९—प्रज्ञावान् मुनि के लिए अनुशासन हित का हेतु ।
असाधु, अज्ञानी के लिए द्वेष का हेतु ।
३०—गृह के समस्त बैठने की विधि ।
३१—व्यवासमय कार्य करने का निर्देश ।
३२-३४—आहार सम्बन्धी विधि-निषेध ।
३५—आहार का स्थान और विधि ।

३६—साधन-साधन का निवेद्य ।

३७—विनीत और अविनीत सिध्य की उत्पन्न और बुद्ध बोद्धे के साथ तुलना ।

३८—पाप-दृष्टि मुनि के द्वारा अनुशासन की अवहेलना ।

३९—अनुशासन के प्रति दृष्टि-भेद ।

४०—न आचार्य को न स्वयं को कुपित करने का उपदेश ।

४१—कुपित आचार्य को प्रसन्न करने का उपक्रम ।

४२—व्यवहार-धर्म का पालन करने वाले मुनि की सर्वत्र प्रशंसा ।

४३—आचार्य के मनोमुक्त बर्तन का उपदेश ।

४४—विनीत द्वारा आदेशानुसार कार्य-सम्पन्नता ।

४५—विनीत की कीर्ति और आचार्य भूतता ।

४६—विनय से पूर्य आचार्य की कृपा और श्रुत-ज्ञान का लाभ ।

४७—विनीत की सर्व-गुण-सम्पन्नता ।

४८—विनयी के लिए मोक्ष की सुलभता का प्रतिपादन ।

द्वितीय अध्ययन : परीषद्-प्रतिभक्ति (श्रमण-चर्या में होने वाले परीषद् का प्ररूपण)

पृ० १६-४२

सूत्र १-३—परीषद्-निरूपण का उपक्रम और परीषद् का नाम-निर्देश ।

श्लोक १—परीषद्-निरूपण की प्रतिज्ञा ।

२, ३—क्षुधा-परीषद् ।

४, ५—पिपासा-परीषद् ।

६, ७—शीत-परीषद् ।

८, ९—उष्ण-परीषद् ।

१०, ११—दशमशक-परीषद् ।

१२, १३—अचेल-परीषद् ।

१४, १५—अरति-परीषद् ।

१६, १७—स्त्री-परीषद् ।

१८, १९—चर्या-परीषद् ।

२०, २१—निषीधका-परीषद् ।

२२, २३—शय्या-परीषद् ।

२४, २५—आक्रोश-परीषद् ।

२६, २७—वध-परीषद् ।

२८, २९—याचना-परीषद् ।

३०, ३१—अलाम-परीषद् ।

३२, ३३—रोग-परीषद् ।

३४, ३५—तृण-स्पर्श-परीषद् ।

३६, ३७—अल-परीषद् ।

३८, ३९—सत्कार-पुरस्कार-परीषद् ।

४०, ४१—प्रज्ञा-परीषद् ।

४२, ४३—अज्ञान-परीषद् ।

४४, ४५—वर्धन-परीषद् ।

४६—परीषद् को समभाव से सहने का उपदेश ।

तृतीय अध्ययन : चतुरंगीय (चार दुर्लभ अंगों का आख्यान)

पृ० ३७-४६

१—दुर्लभ अंगों का नाम-निर्देश ।

२-७—मनुष्यत्व-प्राप्ति की दुर्लभता ।

८—धर्म-श्रवण की दुर्लभता ।

९—श्रद्धा की दुर्लभता ।

१०—वीर्य की दुर्लभता ।

११—दुर्लभ अंगों की प्राप्ति से कर्म-मुक्त होने की संभवता ।

१२—धर्म-स्थिति का आचार ।

१३—कर्म-हेतुओं को दूर करने से ऊर्ध्व विद्या की प्राप्ति ।

१४-१९—शील की आराधना से देवलोको की प्राप्ति । वहाँ से ज्युत होकर सब व समुद्र कुलों में जन्म और फिर विबुद्ध बोधि का लाभ ।

२०—दुर्लभ अंगों के स्वीकार से सर्व कर्मों का मुक्तता ।

चतुर्थ अध्ययन : असंस्कृत (जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण का प्रतिपादन)

पृ० ४७-५४

१—जीवन की असंस्कृता और अप्रमाद का उपदेश ।

२—पाप-कर्म से धन-अर्जन के अस्मिष्ट परिणाम ।

३—कृत कर्मों का अवश्यभावी परिणाम ।

४—कर्मों की फल-प्राप्ति में पर की असमर्थता ।

५—धन की अज्ञानता और उसके व्यामोह से दिव्यता ।

६—भारण्ड पक्षी के उपमान से क्षण भर प्रमाद न करने का उपदेश ।

७—गुणोपलब्धि तक शरीर-पोषण का विधान, फिर अनशन का उपदेश ।

८—छन्द-निरोध से मोक्ष की संभवता ।

९—शास्वत-वाद का निरसन ।

१०—विवेक-आचरण के लिए एक क्षण भी न सोने का आह्वान ।

११, १२—श्रमण के लिए अनुकूल और प्रतिकूल परीषद् को समभाव से सहने का निर्देश ।

१३—जीवन को शाश्वत मानने वालों का निरसन और शरीर-मेघ तक गुणाराधना का आदेश ।

पंचम अध्ययन : अकाम-मरणीय (मरण के प्रकार और स्वरूप-विधान)

पृ० ५५-७२

श्लोक १, २—अध्ययन का उपक्रम और मरण के प्रकारों का नाम-निर्देश ।

३—मरण का काल-निर्धारण ।

४-७—कामासक्त व्यक्ति द्वारा मिथ्या-भाषण का आश्रय ।

८,६—कामासक्ति हिंसा का हेतु । हिंसा से दोष-परम्परा का विस्तार ।

१०—काम-रस व्यक्ति द्वारा विधुनाग की तरह दुःख कर्म-मूल संभव ।

११,१२—रोगातंक होने पर कर्म के अनिष्ट परिणामों की आकांक्षा से भय-मुक्त अनुप्राय ।

१४-१६—विषम मार्ग में पड़े हुए गाड़ोवान की तरह भय-च्युत व्यक्ति द्वारा लोकानुभूति और परलोक-भय से संतप्त अवस्था में अकाम-मृत्यु ।

१७—अकाम-मरण का उपसंहार और सकाम-मरण का आरम्भ ।

१८—संयमी पुरुषों का प्रसाद-मुक्त और आघात-रहित मरण ।

१९—सकाम-मरण की दुर्लभता ।

२०—साधु और गृहस्थ का तुलनात्मक विवेचन ।

२१—बाह्य-आचारों से साधुत्व की रक्षा अवसंभव ।

२२—दुःखाल और शील के निष्पन्न परिणाम ।

२३—श्रावक-आचार का निर्देश ।

२४—सुखती मनुष्य की सुगति-प्राप्ति ।

२५-२८—सद्गत-निष्ठ का अवलम्ब या स्वर्ग-मग्न । देवताओं की समृद्धि और सम्पदा का वर्णन । देव-आवासीयों की प्राप्ति में सपथम और संयम की प्रधानता ।

२९,३०—बहुश्रुत मुनि की मरण-काल में सम-भावता तथा उद्विग्न न होने का उपदेश ।

३१—संलक्षणा में शरीर-भेद की आकांक्षा ।

३२—सकाम-मरण के प्रकारों में से किसी एक के स्वीकार का उपदेश ।

षष्ठ अध्यायन : क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय (ग्रन्थ-त्याग का संक्षिप्त निरूपण)

पृ० ७३-८०

श्लोक १—अविद्या भव-प्रवण का हेतु ।

२—सत्य की गवेषणा और जोषों के प्रति मैत्री का उपदेश ।

३—हून-कर्मों के विपाक के समय स्वजन-परिजनो की असमर्थता ।

४—पद्मगन्धर्व बाले पुरुष द्वारा आन्तरिक परिग्रह का त्याग ।

५—बाह्य परिग्रह-त्याग से काम-रूपता की प्राप्ति ।

६—अहिंसा के विचार का व्यावहारिक आधार ।

७—परिग्रह का निषेध और प्रदत्त भोजन का ग्रहण ।

८,९—क्रिया-रहित ज्ञान से दुःख-मुक्ति मानने वालों का निरसन ।

१०—माया और अनुशासन की त्राण देने में असमर्थता ।

११—आसक्ति-दुःखोत्पत्ति का कारण ।

१२—सब दिशाओं को देख कर अप्रमाद का उपदेश ।

१३—बाह्य की अनासंसा और देह-धारणा का उद्देश्य ।

१४—कर्म-हेतुओं पर विचार । भित और निर्दोष अन्न-पानी का ग्रहण ।

१५—असंग्रह का विधान ।

१६—अनियत बिहार करते हुए पिच्छपात की गवेषणा ।

१७—उपसंहार ।

अध्ययन-विषयानुक्रम

६

सप्तम अध्ययन : उरग्रीव (उरग्र, काकिणी, आन्नफल, व्यवहार और सागर—पाँच उदाहरण) पृ० ८१-१२

श्लोक १-१०—उरग्र दृष्टान्त से विषय-भोगों के कटु विषाक का दर्शन ।

११-१३—काकिणी और आन्नफल दृष्टान्त से देव-भोगों के सामने मानवीय-भोगों की तुच्छता का दर्शन ।

१४-२२—व्यवहार (व्यवसाय) दृष्टान्त से ज्ञान-अध्यय के विषय में कुशलता का दर्शन ।

२३-२४—सागर दृष्टान्त से ज्ञान-अध्यय की तुलना का दर्शन ।

२५—काम-भोगों की क्षितिज से आत्म-प्रयोजन का नाश ।

२६-२७—काम-भोगों की निवृत्ति से देवत्व और अनन्तर सुख वाले मनुष्य कुलों की प्राप्ति ।

२८—बाल जीवों का मरक-गमन ।

२९—घोर-पुरुष का देव-गमन ।

३०—बाल और अवाल-भाव की तुलना और पण्डित मुनि द्वारा अवाल-भाव का सेवन ।

अष्टम अध्ययन : कापिलीय (संसार की असारता और ग्रन्थि-त्याग)

पृ० ६३-१०२

श्लोक १—दुःख-बहुल संसार से छूटने की विज्ञाता ।

२—स्नेह-त्याग से दोष-मुक्ति ।

३—कपिल मुनि द्वारा पाँच सौ चोरों को उपदेश ।

४—ग्रन्थि-त्याग का उपदेश ।

५—आसक्त मनुष्य की कर्म-बद्धता ।

६—सुप्रती द्वारा संसार-समुद्र का पार ।

७, ८—कुतूहलियों की अज्ञता का निरसन ।

९, १०—अहिंसा का विवेक ।

११, १२—संयम-निर्वाह के लिए भोजन की एवणा ।

१३—स्वल्प-शास्त्र, लक्षण-शास्त्र और अंग-विद्या के प्रयोग का निवेद्य ।

१४, १५—समाधि-अष्ट व्यक्तित्व का संसार-भ्रमण और बोधि-बुद्धिमत्ता ।

१६, १७—तृष्णा की दुष्पूरता ।

१८, १९—स्त्री-संग का त्याग ।

२०—उपसंहार ।

नवम अध्ययन : नमि-प्रव्रज्या (इन्द्र और नमि राजर्षि का संवाद)

पृ० १०३-११८

श्लोक १—नमि का जन्म और पूर्व जन्म की स्मृति ।

२—जन्म की आराधना के लिए अग्निनिष्क्रमण ।

३, ४—प्रवर भोगों का त्याग और एकान्तवास का स्वीकार ।

५—नमि के अग्निनिष्क्रमण से मिथिला में कोलाहल ।

६—देवेन्द्र का ब्राह्मण रूप में आकर नमि से प्रश्न ।

७-१०—मिथिला में हो रहे कोलाहल के प्रति देवेन्द्र की विज्ञाता । नमि राजर्षि द्वारा आश्रय-हीन हुए पक्षियों के साथ मिथिला वासियों की तुलना ।

११-१६—देवेन्द्र द्वारा बल रहे अन्तःपुर की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न । नमि राजर्षि का उदासीन-भाव ।

- १७-२२—देवेन्द्र द्वारा नगर-सुरक्षा के प्रति कर्तव्य-बोध । नमि राजर्षि द्वारा आत्म-नगर की सुरक्षापूर्वक मुक्ति-बोध ।
 २२-२६—देवेन्द्र द्वारा प्रसाद, बर्चमान-गृह आदि बताने की प्रेरणा । नमि राजर्षि द्वारा मार्ग में बनाए घर के प्रति सहिष्णुलता और शाश्वत घर की ओर संकेत ।
 २७-३०—देवेन्द्र द्वारा नगर में न्याय और शान्ति-स्थापन का अनुरोध । राजर्षि द्वारा जगत् में होने वाले अन्याय-रोषण का उल्लेख ।
 ३१-३६—देवेन्द्र द्वारा स्वतंत्र राजाओं को जीत कर मुनि बनने का अनुरोध । राजर्षि द्वारा आत्म-विजय ही परम विजय है, इसलिए अपनी आत्मा के साथ युद्ध करने का उपदेश ।
 ३७-४०—देवेन्द्र द्वारा यज्ञ, दान और भोग की प्रेरणा । राजर्षि द्वारा दान देने वाले के लिए भी संयम अव्यस्कृता का प्रतिपादन ।
 ४१-४४—देवेन्द्र द्वारा गृहस्थाश्रम में रहते हुए तप की प्रेरणा । राजर्षि द्वारा सम्मूह-चारित्र्य सम्पन्न मुनि-वर्ग का महत्त्व-स्थापन ।
 ४५-४६—देवेन्द्र द्वारा परिग्रह के संग्रह का उपदेश । राजर्षि द्वारा आकाश के समान इच्छा की अनन्तता का प्रतिपादन और पदार्थों से इच्छा-पूर्ति की असंभवता का निरूपण ।
 ४७-४८—देवेन्द्र द्वारा प्राप्त भोगों के त्याग और अप्राप्त भोगों की अमिलापा से उत्पन्न विरोध का प्रतिपादन ।
 राजर्षि द्वारा काम-भोगों की भयंकरता और उसके अनिष्ट परिणामों का स्थापन ।
 ४९-५६—देवेन्द्र का अपने मूल रूप में प्रकटीकरण । राजर्षि की हृदयसाही स्तुति और वन्दन ।
 ६०—धन्व का आकाश-गमन ।
 ६१—राजर्षि की ध्यामय में उपस्थिति ।
 ६२—संबुद्ध लोगों द्वारा इसी पथ का स्वीकार ।

दशम अध्यायन : द्रुम-पत्रक (जीवन की अस्थिरता और आत्म-बोध)

पृ० ११६-१२८

- श्लोक १,२—जीवन की अस्थिरता और अप्रमाद का उद्बोध ।
 ३—आयुष्य की क्षण भंगुरता ।
 ४—मनुष्य-भव की दुर्लभता ।
 ५-६—स्थावर-काय में उत्पन्न जीव की उत्कृष्ट स्थिति ।
 १०-१४—जल-काय में उत्पन्न जीवन की उत्कृष्ट स्थिति ।
 १५—प्रमाद-बहुल जीव का जन्म-मृत्यु-मय संसार में परिध्रक्षण ।
 १६—मनुष्य-भव मिलने पर भी आर्ष-देश की दुर्लभता ।
 १७—आर्ष-देश मिलने पर भी पूर्ण पाँचों इन्द्रियों की दुर्लभता ।
 १८—उत्तम धर्म के श्रवण की दुर्लभता ।
 १९—श्रद्धा की दुर्लभता ।
 २०—धाचरण की दुर्लभता ।
 २१-२६—इन्द्रिय-बल की उत्तरोत्तर क्षीणता ।
 २७—अनेक शीघ्र-घाती रोगों के द्वारा शरीर का स्पर्श ।
 २८—स्नेहापनयन की प्रक्रिया ।
 २९, ३०—वात-भोगों के पुनः न सेवन का उपदेश ।
 ३१, ३२—प्राप्त शिराल व्याय-पथ पर अप्रमादपूर्वक बढ़ने की प्रेरणा ।
 ३३—विषम-मार्ग पर न चले जाने की सूचना ।
 ३४—किनारे के निकट पहुँच कर प्रमाद न करने का उपदेश ।
 ३५—आपक-प्रेषि से सिद्धि-लोक की प्राप्ति ।

३९—पाँच, नगर में उपस्थान्त होकर विचरते हुए शान्ति का संदेश ।

३७—गीतम की सिद्धि-प्राप्ति ।

एकादश अध्ययन : बहुश्रुत-पूजा (बहुश्रुत व्यक्ति का महत्त्व-ख्यापन)

पृ० १२६-१३८

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—अबहुश्रुत की परिभाषा ।

३—शिक्षा-प्राप्त न होने के पाँच कारण ।

४,५—शिक्षा-शील के बाढ लक्षण ।

६-६—अविनीत के चौदह लक्षण ।

१०-१३—सुविनीत के पन्द्रह लक्षण ।

१४—शिक्षा-प्राप्त की अर्हता ।

१५—दाँख में रखे हुए दूध की तरह बहुश्रुत की दोनों ओर से घोषा ।

१६—कन्यक घोड़े की तरह भिक्षुओं में बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

१७—जातिमान् अवब पर आरुढ योद्धा की तरह बहुश्रुत की अजेयता ।

१८—साठ वर्ष के बलवान् हाथी की तरह बहुश्रुत की अपराजेयता ।

१९—गुह्य स्कन्ध वाले यथाधिपति बेल की तरह बहुश्रुत आचार्य की सुशोभनीयता ।

२०—युवा सिंह के समान बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

२१—वासुदेव के समान बहुश्रुत की बलवत्ता ।

२२—चौदह रत्नों के अधिपति चक्रवर्ती के साथ चौदह प्रबंधर बहुश्रुत की तुलना ।

२३—देवाधिपति शक्र के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२४—उगते हुए सूर्य के तेज के साथ बहुश्रुत के तेज की तुलना ।

२५—प्रतिपूर्ण चन्द्रमा के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२६—साम्राजिकों के कोष्ठागार के समान बहुश्रुत की परिपूर्णता ।

२७—सुदर्शना नामक जम्बू के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२८—शीता नदी की तरह बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

२९—मंदर पर्वत के समान बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

३०—रत्नों से परिपूर्ण अक्षय जल वाले स्वर्णभूरत्न समुद्र के साथ बहुश्रुत के अक्षय ज्ञान की तुलना ।

३१—बहुश्रुत मुनियों का मोक्ष-गमन ।

३२—श्रुत के आश्रयण का उपदेश ।

द्वादश अध्ययन : हरिकेशीय (जाति की अतात्त्विकता का संबोध)

पृ० १३६-१५२

श्लोक १,२—हरिकेशवल्गु मुनि का परिचय ।

३—मुनि का भिला के लिए यज्ञ-सम्पन्न में गमन ।

४-६—मलिन मुनि को देख कर ब्राह्मणों का हँसना और मुनि के बैरागी और शरीर के बारे में वरस्पर व्यंग्य-संलाप ।

७—मुनि को अपमानजनक वाद्यों से बापस चले जाने की प्रेरणा ।

८—प्रस का मुनि के शरीर में प्रवेश ।

- ६,१०—यस द्वारा मृनि का परिचय और आगमन का उद्देश्य-कथन ।
 ११—सोमदेव ब्राह्मण द्वारा भोजन न देने का उत्तर ।
 १२-१७—यस और सोमदेव के बीच दान के अधिकारी के बारे में चर्चा ।
 १८—सोमदेव द्वारा मृनि को मार-पीट कर बाहर निकालने का आदेश ।
 १९—कुमारों द्वारा मृनि पर प्रहार ।
 २०-२३—भद्रा द्वारा कुमारों को समझाने का प्रयत्न । ऋषि का वास्तविक परिचय और व्यवहेलना से होने वाले अनिष्ट की ओर संकेत ।
 २४—यस द्वारा कुमारों को मृनि पर गिराना ।
 २५—यस द्वारा कुमारों पर संयंकर प्रहार ।
 भद्रा का पुनः कुमारों को समझाना ।
 २६-२८—मिश्र का अपमान करने से होने वाले अनिष्ट परिणाम की ओर संकेत ।
 २९—छानों की दुर्दशा ।
 ३०,३१—सोमदेव का मृनि से विनम्र निवेदन ।
 ३२—मृनि द्वारा स्वीकृति ।
 ३३-३५—सोमदेव का पुनः क्षमा देने का निवेदन ।
 निशा-ग्रहण करने का आग्रह ।
 मृनि द्वारा निशा-स्वीकार ।
 ३६—देवी द्वारा दिव्य दृष्टि और दिव्य बोध ।
 ३७—तप की महत्ता का प्रतिपादन, जाति की महत्ता का निरस्तन ।
 ३८,३९—अग्नि का समारम्भ और उस का स्पर्श पाप-बन्ध का हेतु ।
 ४०—सोमदेव द्वारा यस के बारे में जिज्ञासा ।
 ४१-४२—मृनि द्वारा वास्तविक यस का निरूपण ।
 ४३—सोमदेव द्वारा अ्योति और उसकी सामग्री के बारे में जिज्ञासा ।
 ४४—मृनि द्वारा आत्म-परक अ्योति का विश्लेषण ।
 ४५—सोमदेव द्वारा तीर्थ के बारे में जिज्ञासा ।
 ४६,४७—मृनि द्वारा तीर्थ का निरूपण ।

त्रयोदश अध्यायन : चित्र-सम्भूति (चित्र और सम्भूति का संवाद)

पृ० १५३-१६८

- श्लोक १,२—सम्भूत का महादत्त षड्वर्ती के रूप में काम्पित्य में और चित्र का प्रसिद्धता में अन्ध-कुल में जन्म ।
 ३—चित्र और संभूति का मिलन और सुख-दुःख के विपाक की बातों ।
 ४-७—महादत्त द्वारा पूर्व भवों का वर्णन ।
 ८—मृनि द्वारा पूर्व जन्म में कृत निदान की स्मृति विस्मय ।
 ९—षड्वर्ती द्वारा पूर्व कृत शुभ वस्तुधर्मा से प्राप्त सुख-बोधों का वर्णन । मृनि से सुख के बारे में प्रश्न ।
 १०-१२—मृनि द्वारा कृत कर्मों की योगने की अविवारिता ।
 अपनी षड्वर्ती-सम समृद्धि का उल्लेख ।
 स्वजिरो की गाथा से आश्चर्य-स्वीकार ।

१३,१४—चक्रवर्ती द्वारा प्रचुर धन-सम्पदा और स्त्री-परिवृत्त होकर भोग भोगने का आग्रह ।

प्रव्रज्या की कष्टमयता ।

१५—मुनि का चक्रवर्ती को बेराध्य-उपदेश ।

१६—काम-राग की दुःखकरता ।

१७—काम-गुण-रत की अपेक्षा विरक्त को अधिक सुख ।

१८—बाण्डाल-जाति में उत्पत्ति और लोगों का विद्वेष ।

१९—वर्तमान की उच्चता पूर्व संघित शुभ कर्मों का फल ।

२०—अशास्त्रित भोगों को छोड़ने का उपदेश ।

२१—शुभ अनुष्ठानों के अभाव में भविष्य में पश्चात्ताप ।

२२—अन्त काल में मृत्यु द्वारा हरण । माता-पिता आदि की अस्वहायता ।

२३—कर्म द्वारा कर्ता का अनुगमन ।

२४—केवल कर्मों के साथ आत्मा का परभव-गमन ।

२५—शरीर को जला कर शक्तियों द्वारा दूसरे दाता का अनुसरण ।

२६—जीवन की निरन्तर अनभंग्यता । बुढ़ाया द्वारा काम का अपहरण । कर्म अर्जन न करने का उपदेश ।

२७-३०—चक्रवर्ती द्वारा अपनी पुर्वलता का स्वीकार ।

सनत्कुमार को देख कर निदान करने का उल्लेख ।

प्रायश्चित्त न कर पाने के कारण दलदल में फँसे हाथी की तरह धर्मानुसरण करने में असमर्थता और काम-मूच्छा ।

३१—जीवन की अस्थिरता । भोगों द्वारा मनुष्य का त्याग ।

३२—आर्य-कर्म करने का उपदेश ।

३३—राजा की भोग छोड़ने में असमर्थता और मुनि का वहाँ से गमन ।

३४—चक्रवर्ती का नरक-गमन ।

३५—चित्र की अन्तर सिद्धि-प्राप्ति ।

चतुर्दश अध्ययन : इषुकारीय (ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति का भेद-दर्शन)

पृ० १६८-१८४

श्लोक १-३—अध्ययन का उपक्रम और निष्कर्ष ।

४,५—पुरोहित-कुमारों द्वारा निर्ग्रन्थों को देखना । पूर्व-जन्म की स्मृति और काम-गुणों से विरक्ति ।

६—धर्म-श्रद्धा से प्रेरित होकर पिता से निवेदन ।

७—जीवन की अनित्यता । मुनि-वर्गों के लिए अनुमति ।

८—पिता द्वारा समझाने का प्रयास । अपुत्र की गति नहीं ।

९—वेदाध्ययन, ब्राह्मणों को दान और पुरोहित के बाद मुनि बनने का परामर्श ।

१०,११—कुमारों का पुरोहित को उत्तर ।

१२—वेदाध्ययन, ब्राह्मण-भोजन और औरस पुत्र की अज्ञातता ।

१३—काम-भोगों द्वारा क्षण भर सुख तथा चिरकाल तक दुःख की प्राप्ति ।

१४,१५—कामना जन्म और मृत्यु की हेतु ।

१६—प्रचुर धन और स्त्री की सुलभता में श्रमण बनने की उत्कण्ठा के लिए पिता का प्रयत्न ।

१७—धर्म-धुरा में धन और विषयों की निष्प्रयोजनता ।

- १८—पिता द्वारा शरीर-नाश के साथ जीव-नाश का प्रतिपादन ।
 १९—कुमारों द्वारा आत्मा की अमूर्तता का प्रतिपादन ।
 आत्मा के आन्तरिक दोष ही संसार-बन्धन के हेतु ।
 २०—धर्म की अबाधकारी में पाप का आचरण ।
 २१—वीरहित लोक में सुख की प्राप्ति नहीं ।
 २२—लोक की वीक्षा क्या ?
 २३—लोक की पीड़ा—मृत्यु ।
 २४—अधर्म-रत व्यक्ति की रात्रियाँ निष्फल ।
 २५—धर्म-रत व्यक्ति की रात्रियाँ सफल ।
 २६—योगन भीतने पर एक साथ वीक्षा लेने का पिता का सुभाष ।
 २७—मृत्यु की वश में करने वाला ही कल की इच्छा करने में समर्थ ।
 २८—आज ही मुनि-धर्म स्वीकारने का संकल्प ।
 २९, ३०—पिता की भी साथ ही रह-त्वाण की भावना ।
 शाखा-रहित वृक्ष, बिना पंख का पक्षी, सेना-रहित राजा और धन-रहित व्यापारी की तरह असहायता ।
 ३१—वाशिष्ठी द्वारा प्राप्त भोगों को भोगने के बाद मोक्ष-पथ के स्वीकार का सुभाष ।
 ३२—पुरोहित द्वारा भोगों की असारता । मुनि-धर्म के आचरण का संकल्प ।
 ३३—भोग न भोगने से बाद में अनुताप ।
 ३४—पुत्रों का अनुगमन क्यों नहीं ?
 ३५—रोहित मन्त्र की तरह वीर पुरुष ही संसार-जाल को काटने में समर्थ ।
 ३६—वाशिष्ठी की भी पुत्र और पति के अनुगमन की इच्छा ।
 ३७-३८—पुरोहित-परिवार की प्रव्रज्या के बाद राजा धन-सामग्री लेने की इच्छा ।
 रानी कमलावती की कटकार ।
 ३९—समूचा जगत् भी इच्छा की वृत्ति के लिए असमर्थ ।
 ४०—पदार्थ-जगत् की अजायता । धर्म की जायता ।
 ४१—रानी द्वारा स्नेह-जाल को तोड़ कर मुनि-धर्म के आचरण की इच्छा ।
 ४२, ४३—राग-द्वेष युक्त प्राणियों की संसार में मूढता ।
 ४४—बिबेकी पुरुषों द्वारा अप्रतिबद्ध विहार ।
 ४५—रानी द्वारा राजा को भ्रम पुरोहित की तरह बनने की प्रेरणा ।
 ४६—निरामिष बनने का संकल्प ।
 ४७—काम-भोगों से संशंकित रहने का उपदेश ।
 ४८—बन्धन-मुक्त हाथी की तरह स्व-स्थान की प्राप्ति का उद्बोध ।
 ४९—राजा और रानी द्वारा विपुल राज्य और काम-भोगों का त्याग ।
 ५०—तीर्थङ्कर द्वारा उपदिष्ट मार्ग में चोर पराक्रम ।
 ५१—दुःखों के अन्त की कोख ।
 ५२—राजा, रानी, पुरोहित, ब्राह्मणों, पुरोहित-कुमारों द्वारा दुःख-विमुक्ति ।

पंचदश अध्ययन : समिक्षक (भिक्षु के लक्षणों का निरूपण)

पृ० १८५-१६२

श्लोक १—मुनि व्रत का संकल्प । स्नेह-परिचय-त्याग तप आदि का परिचय दिए बिना भिक्षा की एवणा ।

२—रात्रि-भोजन या रात्रि-विहार का वर्णन । बस्तु के प्रति अमून्धो-भाव ।

३—हर्ष और शोक में अनाकुलता ।

४—परीवह-विषय और समवाय की साधना ।

५—सत्कार, पूजा और प्रशंसा के प्रति उपेक्षा-भावना ।

६—स्त्री-पुरुष की संगति का त्याग ।

७—विद्याओं द्वारा आजीविका करने का निषेध ।

८—मंत्र, मूल आदि द्वारा चिकित्सा का निषेध ।

९—गृहस्थों की श्लाघा का निषेध ।

१०—इहलौकिक फल-प्राप्ति के लिए परिचय का निषेध ।

११—गृहस्थ द्वारा बस्तु न दिए जाने पर श्रद्धेय का निषेध ।

१२—गृहस्थ द्वारा बस्तु दिए जाने पर आशीर्वाद का निषेध ।

१३—मीरस अन्न-पान की निन्दा का निषेध और सामान्य चरों की भिक्षा ।

१४—अभय की साधना ।

१५—आत्म-मुक्त्य साधना का विकास ।

१६—शाल्य-जीवी न होने, घर, मित्र और परिग्रह से मुक्त, मन्त्र कथाम और असार भोजी होने का उपदेश ।

षोडश अध्ययन : ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान (ब्रह्मचर्य के दस समाधि-स्थानों का वर्णन)

पृ० १६३-२०६

सूत्र १-३—अध्ययन का आरम्भ और दस समाधि-स्थानों का नाम-निर्देश ।

४—स्त्री-कथा वर्जन ।

५—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने का वर्जन ।

६—दृष्टि-संयम ।

७—स्त्री-शब्द सुनने पर संयम ।

८—पूर्वकृत काम-क्रीडा की स्मृति पर संयम ।

९—प्रणीत आहार का निषेध ।

१०—मात्रा से अधिक आहार का निषेध ।

११—विभूषा-वर्जन ।

१२—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श-विषय ।

श्लोक १—एकान्त-वास ।

२—स्त्री-कथा-वर्जन ।

३—स्त्री-परिचय और बातलाप का वर्जन ।

४—स्त्री का शरीर, अंग-प्रसंगों को देखने के प्रयत्न का निषेध ।

५—स्त्री के शब्द, गीत आदि का श्रवण-वर्जन ।

६—पूर्व कृत क्रीडा-रति का स्मरण-त्याग ।

७—प्रणीत भोजन का वर्जन ।

८—परिमित भोजन का विधान ।

९—विभूषा-वर्जन ।

१०—सावद, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श-काम-गुणों का वर्जन ।

११-१३—दस स्थानों के सेवन की तालुट विधि से तुलना ।

१४—तुर्जय काम-मोग और ब्रह्मचर्य में हांका उत्पन्न करने वाले सभी स्थानों के वर्जन का उपदेश ।

१५—भिक्षु का धर्म-आराम में विचरण ।

१६—ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला देव आदि सभी से बन्दीय ।

१७—ब्रह्मचर्य की साधना से सिद्धि की प्राप्ति ।

सप्तदश अध्ययन : पाप-श्रमणीय (पाप-श्रमण के स्वरूप का निरूपण)

पृ० २१०-२१८

श्लोक १-३—ज्ञान-आचार में प्रमाद ।

४—आचार्य, उपाध्याय की अवहेलना ।

५—दर्शन-आचार में प्रमाद ।

६-१४—चारित्र-आचार में प्रमाद ।

१५, १६—तप-आचार में प्रमाद ।

१७-१९—वीर्य-आचार में प्रमाद ।

२०—पाप-श्रमण की इहलोक और परलोक में व्यर्थता ।

२१—सुब्रती द्वारा इहलोक और परलोक को आराधना ।

अष्टादश अध्ययन : संजय (जैन-शासन की परम्परा का संकलन)

पृ० २१९-२३३

श्लोक १-३—संजय राजा का परिचय ।

शिकार के लिए राजा का वन-गमन ।

४—केदार उद्यान में ध्यानलीन मुनि की उपस्थिति ।

५—राजा द्वारा मुनि के पास आए हुए हिरण पर प्रहार ।

६—राजा का मुनि-दर्शन ।

७—भय-भ्रान्त मन से तुच्छ कार्य पर पश्चात्ताप ।

८-१०—मुनि से क्षमा-प्रार्थना । मोन होने पर अधिक भयाकुलता ।

११—मुनि का अभय-दान । अभय-दाता बनने का उपदेश ।

१२—अनित्य-जीव-लोक में आसक्त न होने का उपदेश ।

१३—जीवन की अस्थिरता ।

१४-१६—ज्ञाति-सम्बन्धी की अवसरता ।

१७—कर्म-परिणामी की निश्चितता ।

१८, १९—राजा का संसार-त्याग और जिन-शासन में दीक्षा ।

२०, २१—अत्रिय मुनि द्वारा संजय राजर्षि से प्रश्न ।

२२—संजय राजर्षि का अपने बारे में उत्तर ।

२३—अत्रिय मुनि द्वारा एकात्मवादी विचार-धाराओं का उल्लेख ।

२४-२७—एकान्त दृष्टिकोण मायापूर्ण, निरर्थक और नरक का हेतु ।

- २८-३२—क्षत्रिय मुनि द्वारा ज्ञात्म-परिचय ।
 ३३—क्रियावाद का समर्थन ।
 ३४—भरत षड्वर्ती का प्रव्रज्या-स्वीकार ।
 ३५—सगर षड्वर्ती द्वारा संयम-आराधना ।
 ३६—मधवा षड्वर्ती द्वारा संयम-आराधना ।
 ३७—सनत्कुमार षड्वर्ती द्वारा तपस्वरण ।
 ३८—शान्तिनाथ षड्वर्ती द्वारा अनुत्तर-गति-प्राप्ति ।
 ३९—कुण्डु नरेश्वर द्वारा मोक्ष-प्राप्ति ।
 ४०—अर नरेश्वर द्वारा कर्म-रजों से मुक्ति ।
 ४१—महापद्म षड्वर्ती द्वारा तप का आचरण ।
 ४२—हरिषेण षड्वर्ती द्वारा अनुत्तर-गति-प्राप्ति ।
 ४३—अय षड्वर्ती का हजार राजाओं के साथ दम का आचरण ।
 ४४—दशार्णभद्र का मुनि-धर्म स्वीकार ।
 ४५, ४६—कलिंग में करकण्डू, पाँचाल में द्विमुल, बिदेह में नमि और मागध में नमगति द्वारा श्रमण-धर्म में प्रव्रज्या ।
 ४७—उद्रामण राजा द्वारा मुनि-धर्म का आचरण ।
 ४८—काशीराज द्वारा कर्म-महाबल का उन्मूलन ।
 ४९—विजय राजा की जिन-शासन में प्रव्रज्या ।
 ५०—राजर्वि महाबल की मोक्ष-प्राप्ति ।
 ५१—एकान्त दृष्टिमय अहेतुवादों को छोड़ कर पराक्रमशाली राजाओं द्वारा जैन-शासन का स्वीकार ।
 ५२—जैन-शासन के द्वारा अनेक जीवों का उद्धार ।
 ५३—एकान्त दृष्टिमय अहेतुवादों को अस्वीकार करने से मोक्ष की प्राप्ति ।

एकोनविंश अध्यायन : मृगापुत्रीय (श्रमण-चर्या का सांगोपांग दिग्दर्शन)

पृ० २३५-२५६

- श्लोक १-६—मृगापुत्र का परिचय । मुनि को देख कर पूर्व-जन्म की स्मृति ।
 १०—मृगापुत्र का माता-पिता से प्रव्रज्या के लिए निवेदन ।
 ११-१४—जीवन की अशाश्वतता और काम-भोगों के कटु परिणाम ।
 १५—जीवन की दुःखमयता ।
 १६, १७—किम्पाक-फल की तरह काम-भोगों की अनिष्टता ।
 १८, १९—लम्बे मार्ग में पाथेय-रहित मनुष्य की तरह धर्म-रहित मनुष्य का अविष्य दुःखकर ।
 २०, २१—लम्बे मार्ग में पाथेय-सहित मनुष्य की तरह धर्म-सहित मनुष्य का अविष्य सुखकर ।
 २२, २३—आम छोटे घर में से मृत्युवान् वस्तुओं की तरह अपने आपको संसार में से निकालने का मृगापुत्र का निवेदन ।
 २४-३०—माता-पिता द्वारा श्रमण-धर्म के पाँच महाव्रत और रात्रि-भोजन-वर्जन का परिचय ।
 ३१, ३२—परीषहों का वर्णन ।
 ३३—काशी-हलि, केश-लोच का उल्लेख ।
 ३४, ३५—मृगापुत्र की सुकुमारता और श्रामण्य की कठोरता ।
 ३६—आकाश-नंगा के ओत-प्रसिक्तों की तरह श्रामण्य की कठोरता ।

- ३७—बालु के कोर की तरह संयम की स्वाद-हीनता ।
 ३८—लोहे के बर्तों को खाने की तरह श्याम्य की कठोरता ।
 ३९—अग्नि-शिला को पीने की तरह अमण-धर्म की कठिनता ।
 ४०—सत्त्व-हीन व्यक्ति की संयम के लिए असमर्थता ।
 ४१—मेरु-पर्वत को तराजू से तोलने की तरह संयम की कठिनता ।
 ४२—समुद्र को भुजाओं से तैरने की तरह संयम-पालन की कठिनता ।
 ४३—विषयों को भोगने के बाद अमण-धर्म के आचरण का मुकाब ।
 ४४—ऐहिक सुखों की व्यास बुझ जाने वाले के लिए संयम की सुकरता ।
 ४५-७४—मृगापुत्र द्वारा नरक के दारुण दुःखों का वर्णन । स्वयं के द्वारा अनन्त बार उनकी सहने का उल्लेख ।
 ७५—माता-पिता द्वारा श्याम्य के सबसे बड़े दुःख-निष्प्राप्तिकर्मेता का उल्लेख ।
 ७६-८५—मृगापुत्र द्वारा मृग-चारिका से जीवन बिताने का संकल्प ।
 ८६, ८७—मृगापुत्र का प्रव्रज्या-स्वीकार ।
 ८८-९५—मृगापुत्र द्वारा ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप की आराधना और मोक्ष-प्राप्ति ।
 ९६—संबुद्ध व्यक्तियों द्वारा मृगापुत्र का अनुगमन ।
 ९७, ९८—मृगापुत्र के आश्रयान से प्रेरणा लेने का उद्बोधन ।

विंशति अध्ययन : महानिर्ग्रन्थीय (अनाथता और सनाथता)

पृ० २५७-२७२

श्लोक १-८—अध्ययन का उपक्रम । श्रेणि का मण्डिकुशि-उद्यान में गमन । मुनि को देख कर विस्मय और श्याम्य-स्वीकार के बारे में प्रश्न ।

९—मुनि द्वारा अपनी अनाथता का उल्लेख ।

१०, ११—राजा द्वारा स्वयं नाथ होने का प्रस्ताव ।

१२—मुनि द्वारा राजा की अनाथता का उल्लेख ।

१३-१५—राजा द्वारा आश्चर्यभरी व्याकुलता ।

१६—अनाथता और सनाथता के बारे में जिज्ञासा ।

१७-३५—मुनि द्वारा अपनी आत्म-कथा । परिवार द्वारा नष्ट-वेदना को दूर करने में असमर्थता । धर्म की शरण, रोगोपशमन, अनगार-भूति का स्वीकार और सनाथता ।

३६, ३७—आत्म-कतृत्व का उद्बोधन ।

३८-५०—मुनि-धर्म से विपरीत आचरण करना—दूसरी अनाथता ।

५१-५३—मेधावी पुत्र को महानिर्ग्रन्थ के मार्ग पर चलने को प्रेरणा ।

५४-५६—अनाथ की व्याख्या से श्रेणिक को परम तोष । मुनि की हार्दिक स्तवना और धर्म में अनुरक्ति ।

६०—मुनि का स्वतंत्र-भाव से बिहार ।

एकविंश अध्ययन : समुद्रपालीय (वध चोर के दर्शन से सम्बन्धि)

पृ० २७३-२८२

श्लोक १-६—पाण्डित की समुद्र-यात्रा । समुद्र-पाल का जन्म और विद्याध्ययन ।

७—रूपिणी के साथ विवाह-संस्कार ।

८-१०—वध को देख कर संवेग-प्राप्ति । कर्मों का विपाक-विलिन और सामुत्व-स्वीकार ।

११—मुनि को पर्याय-धर्म, अत, शील तथा परीषद्दों में अभिचि लेने का उपदेश ।

- १२—पंच महाव्रत व उनके आचरण का उपदेश ।
 १३—दयानुकम्पी होने का उपदेश ।
 १४—अपने बलाबल को तोल कर काओचित् कार्य करते हुए बिहरण का उपदेश ।
 १५—सम-भाव की साधना का उपदेश ।
 १६—मन के अभिप्रायों पर अनुयासन और उपसर्गों को सहने का उपदेश ।
 १७-१८—परीयहों की उपस्थिति में समता-भाव का उपदेश ।
 २०—पूजा में उन्नत और गहरी में अवन्त न होने का उपदेश ।
 २१—संयमवान् मुनि की परमार्थ-पदों में स्थिति ।
 २२—ऋषियों द्वारा आचोर्ण स्थानों के सेवन का उपदेश ।
 २३—अनुत्तर ज्ञानधारी मुनि की सूर्य की तरह दीप्तिमत्ता ।
 २४—समुद्रपाल मुनि की संयम में निरुचलता से अपुनरागम-गति की प्राप्ति ।

द्वाविंश अध्यायन : रथनेमीय (पुनरुत्थान)

पृ० २८२-२८६

- श्लोक १,२— वसुदेव राजा के परिवार का परिचय ।
 ३,४—समुद्रविजय राजा के परिवार का परिचय । अरिष्टनेमि का जन्म ।
 ५,६—अरिष्टनेमि का शरीर-परिचय और जाति-परिचय ।
 केशव द्वारा उसके लिए राजीमती की माँग ।
 ७—राजीमती का स्वभाव-परिचय ।
 ८—उग्रसेन द्वारा केशव की माँग स्वीकार ।
 ९-१६—अरिष्टनेमि के विवाह की सोमा-यात्रा ।
 बाढ़ों और पिंजरी में निरुद्ध प्राणियों को देख कर सारथि से प्रश्न ।
 १७—सारथि का उत्तर ।
 १८,१९—अरिष्टनेमि का चिन्तन ।
 २०—सारथि को कुण्डल आदि आभूषणों का दान ।
 २१—अभिनिक्रमण की भावना और देवों का आगमन ।
 २२-२७—शिविका में आरुढ़ होकर अरिष्टनेमि का रैवतक पर जाना । केश-लुंचन । वामदेव द्वारा आशीर्वाचन ।
 २८—अरिष्टनेमि की दीक्षा की बात सुन कर राजीमती की शोक-निमग्नता ।
 २९-३१—राजीमती का प्रव्रजित होने का निश्चय और केश-लुंचन । वामदेव का आशीर्वाद ।
 ३२—राजीमती द्वारा अनेक स्वजन-परिजनों की दीक्षा ।
 ३३—रैवतक पट्ट पर जाते समय राजीमती का वर्षा में भीगने के कारण गुफा में ठहरना ।
 ३४—वस्त्रों को सुखाना । रथनेमि का राजीमती को यथाजात (नम्र) रूप में देख कर आश्चित्त हो जाना ।
 ३५—राजीमती का संकुचित होकर बैठना ।
 ३६-३८—रथनेमि द्वारा आत्म-परिचय और प्रणय-निवेदन ।
 ३९-४५—राजीमती द्वारा रथनेमि को विविध प्रकार से उपदेश ।
 ४६,४७—रथनेमि का संयम में पुनः स्थिर होना ।
 ४८—राजीमती और रथनेमि को अनुत्तर सिद्धि की प्राप्ति ।
 ४९—संबुद्ध का कर्त्तव्य ।

श्लोक १-४—तीर्थङ्कर पार्वर्ष के शिष्य धम्मण केशि का परिचय ।

श्रावस्ती में जागमन और तिल्लुक-उद्यान में स्थिति ।

५-८—भगवान् महावीर के शिष्य गौतम का परिचय । श्रावस्ती में जागमन और कोष्ठक-उद्यान में स्थिति ।

९-१३—दोनों के शिष्य-समुदाय में एक-दूसरे को देख कर अनेक सन्देश और जिज्ञासाएं ।

१४—केशि और गौतम का परस्पर मिलने का निश्चय ।

१५-१७—गौतम का तिल्लुक-वन में जागमन । केशि द्वारा गौतम का आचर-सत्कार और आसन-प्रदान ।

१८—केशी और गौतम की चन्द्र और सूर्य से तुलना ।

१९,२०—अन्य तीर्थिक साधु, श्रावक तथा देव आदि का जागमन ।

२१-२४—केशी द्वारा चातुर्वर्ग-धर्म और पंच महाव्रत-धर्म के बारे में प्रश्न ।

२५-२७—गौतम का समाधान ।

२८-३०—केशी द्वारा सचेलक-अचेलक के बारे में जिज्ञासा ।

३१-३३—लोक-प्रतीति आदि कारणों से वेप-धारण आवश्यक ।

३४,३५—शत्रुओं पर विजयी कैसे ?

३६-३८—गौतम का समाधान ।

३९,४०—पाश-बहुल संसार में मुक्त विहार कैसे ?

४१-४३—गौतम का समाधान ।

४४,४५—विष-मुल्य कल वाली लता का उच्छेद कैसे ?

४६-४८—गौतम का समाधान ।

४९,५०—घोर अग्निवीर का उपशमन कैसे ?

५१-५३—गौतम का समाधान ।

५४,५५—दुष्ट अश्व पर सवार होकर भी तुम उन्मार्ग पर क्यों नहीं ?

५६-५८—गौतम का समाधान ।

५९,६०—कुमार्ग की बहुलता होने पर भी भटकते कैसे नहीं ?

६१-६३—गौतम का समाधान ।

६४,६५—महान् जल-प्रवाह में बहते हुए जीवों के लिए क्षरण, गति, प्रतिष्ठा और द्रोप कौन ?

६६-६८—गौतम का समाधान ।

६९,७०—महाप्रवाह वाले समुद्र का पार कैसे ?

७१-७३—गौतम का समाधान ।

७४,७५—तिमिर-लोक में प्रकाश किसके द्वारा ?

७६-७८—गौतम का समाधान ।

७९,८०—पीड़ित प्राणियों के लिए क्षेम कर स्थान कहों ?

८१-८४—गौतम का समाधान ।

८५-८७—धम्मण केशी द्वारा गौतम की अभिवन्दना और पूर्व-मार्ग से पश्चिम-मार्ग में प्रविष्ट ।

८८—केशी और गौतम का मिलन महान् उत्कर्ष और अर्थ-विनिश्चय का हेतु ।

८६—परिषद् का संतोषपूर्वक निर्गमन ।

चतुर्विंश अध्ययन : प्रवचन-माता (पाँच समिति तथा तीन गुप्तियों का निरूपण)

पृ० ३१६-३३०

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—समिति, गुप्तियों का नाम-निर्देश ।

३—जिन-भावित द्वादशांग-रूप प्रवचन का समावेश ।

४—साधु को ईर्ष्यापूर्वक चलने का आदेश ।

५-८—ईर्ष्या के आलम्बन, काल, मार्ग और यतना का निर्देश ।

९, १०—माया-समिति का स्वरूप । निरवद्य और परिमित बोलने का विधान ।

११, १२—एवणा-समिति का स्वरूप और विधि ।

१३, १४—आदान-समिति का स्वरूप और प्रतिलेखन-विधि ।

१५-१८—उच्चार-समिति का स्वरूप और प्रतिलेखन-विधि ।

१९, २०—मनोगुप्ति के चार प्रकार ।

२१—संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान मन के निवर्तन का उपदेश ।

२२, २३—वचन-गुप्ति के चार प्रकार ।

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान वचन के निवर्तन का उपदेश ।

२४, २५—संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान शरीर के निवर्तन का उपदेश ।

२६—चारित्र्य की प्रवृत्ति के लिए समिति का विधान ।

अशुभ विषयों से निवृत्ति के लिए गुप्ति का विधान ।

२७—प्रवचन-माता के आचरण से मुक्ति की संभवता ।

पंचविंश अध्ययन : यज्ञीय (जयघोष और विजयघोष का संवाद)

पृ० ३३१-३४२

श्लोक १-३—जयघोष मुनि का परिषद और वाराणसी में आगमन ।

४—विजयघोष ब्राह्मण द्वारा यज्ञ का आद्योबन ।

५—मुनि का वद्य प्रसंग्य उपस्थित होना ।

६-८—विजयघोष द्वारा भिक्षा का निषेध ।

९, १०—मुनि द्वारा समभाव पूर्वक ब्राह्मण को संबोध ।

११, १२—वेद-मुख, यज्ञ-मुख, नमन-मुख, धर्म-मुख एवं अपने-पराये उद्धार में समर्थ व्यक्तियों के विषय में जिज्ञासा ।

१३-१५—विजयघोष का निरुत्तर होना और मुनि से इसके बारे में प्रश्न ।

१६—मुनि द्वारा समाधान ।

१७—चन्द्रमा के सम्मुख ग्रहों की तरह भगवान् श्रृष्टिके समक्ष समस्त लोक नत-मस्तक ।

१८—यज्ञवादी ब्राह्मण-विद्या से अनभिज्ञ ।

१९-२७—ब्राह्मण का निरूपण ।

२८—वेद और यज्ञ की अत्रागता ।

२९—श्रमण, ब्राह्मण, मुनि और तापस के स्वरूप में ब्राह्मणचारा का लक्षण ।

३०—श्रमण, ब्राह्मण, बुद्धि और तापस की वास्तविक व्याख्या ।

३१—वाति से कर्म की प्रभावता ।

३२, ३३—कर्मों से मुक्त आत्मा ही ब्राह्मण और उन्हीं की धपने-पराए उद्धार में समर्थता का प्रतिपादन ।

३४-३७—विजयधोष द्वारा मुनि की स्तुति और भिक्षा के लिए आग्रह ।

३८—मुनि का विजयधोष को संसार से निष्क्रमण का उपदेश ।

३९-४१—मिट्टी के गोले और सूखे गोले की उपाय से भोगासक्ति के स्वरूप का विश्लेषण ।

४२—विजयधोष द्वारा प्रणम्या-स्वीकार ।

४३—दोनों की सिद्धि-प्राप्ति ।

षष्ठविंश अध्यायन : सामाचारी (संघीय जीवन की पद्धति)

पृ० ३४३-३६०

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२-४—सामाचारी के दस अंगों का नाम-निर्देश ।

५-७—सामाचारी का प्रयोग कब और कैसे ?

८-१०—प्रतिलेखन के बाद गुरु के आदेशानुसार चर्चा का प्रारम्भ ।

११, १२—दिन के चार भागों में उत्तर-गुणों की आराधना—

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचरी और चौथे में पुनः स्वाध्याय का विधान ।

१३-१५—पौष्ठी-विधि और वर्ष भर की तीथियों के वृद्धि-क्षय का परिज्ञान ।

१६—प्रतिलेखना का समय-विधान ।

१७, १८—रात्रि के चार भागों में उत्तर-गुणों की आराधना—

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नीद और चौथे में पुनः स्वाध्याय का विधान ।

१९, २०—नक्षत्रों द्वारा रात्रि का काल-ज्ञान ।

२१-२५—प्रतिलेखना विधि ।

२६, २७—प्रतिलेखना के दोषों के प्रकारों का वर्जन ।

२८—प्रतिलेखना के प्रशस्त और अप्रशस्त विकल्प ।

२९, ३०—प्रतिलेखना में कथा करने वाले का छह कार्यों का विराधक होना ।

३१—छह कारणों से भिक्षा का विधान ।

३२—छह कारणों का नाम-निर्देश ।

३३—छह कारणों से भिक्षा न करने का विधान ।

३४—छह कारणों का नाम-निर्देश ।

३५—भिक्षा के लिए अर्घ्य-योजन तक जाने का विधान ।

३६—चौथे प्रहर में स्वाध्याय का विधान ।

३७—शय्या की प्रतिलेखना ।

३८—उपचार-भूमि की प्रतिलेखना ।

कायोत्सर्ग का विधान ।

३९-४१—दैनिक प्रसिद्धियों का प्रतिक्रमण ।

४२—काल-प्रतिलेखना ।

४३—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नीद और चौथे में स्वाध्याय का विधान

४४—वर्तमान व्यक्तियों को न अगाते हुए स्वाध्याय का निर्देश ।

- ४५—काल की प्रतिवेक्षना ।
- ४६—कायोत्सर्ग का विधान ।
- ४७-४८—रागिक अतिचारों का प्रतिक्रमण ।
- ५०—कायोत्सर्ग में तप-ग्रहण का चिन्तन ।
- ५१—तप का स्वीकार और सिद्धों का संस्तव ।
- ५२—सामाचार्य से संसार-सागर का पार ।

सप्तविंश अध्ययन : खलुंकीय (अविनीत की उद्दण्डता का चित्रण)

पृ० ३६१-३६८

- श्लोक १—संग मुनि का परिचय ।
- २—बाह्य बहल करते हुए बेल की तरह योग-बहल करने वाले मुनि का संसार स्वयं उल्लंघित ।
- ३-७—अविनीत बेल का मनोवैज्ञानिक स्वभाव-चित्रण ।
- ८—अयोग्य बेल की तरह दुर्बल शिष्य द्वारा धर्म-यान को अग्न करमा ।
- ९-१३—अविनीत शिष्य का स्वभाव-चित्रण ।
- १४, १५—आचार्य के मन में खेद-स्निग्धता ।
- १६—गली-गदम की तरह कुशिष्यों का गणैचार्य द्वारा बहिष्कार ।
- १८—गणैचार्य का भील-सम्पन्न होकर विहार ।

अष्टविंश अध्ययन : मोक्ष-मार्ग-गति (मोक्ष के मार्गों का निरूपण)

पृ० ३६९-३८०

- श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।
- २—मार्गों का नाम-निर्देश ।
- ३—मार्ग को प्राप्त करने वाले जीवों की सुगति ।
- ४, ५—ज्ञान के पाँच प्रकार ।
- ६—द्रव्य, गुण और पर्याय की परिभाषा ।
- ७—द्रव्य के छह प्रकारों का नाम-निर्देश ।
- ८—छह द्रव्यों की संख्या-परकता ।
- ९—धर्म, अधर्म और आकाश के लक्षण ।
- १०-१२—काल, जीव और पुत्रगण के लक्षण ।
- १३—पर्याय के लक्षण ।
- १४—ती तत्त्वों के नाम-निर्देश ।
- १५—सम्यक्त्व की परिभाषा ।
- १६—सम्यक्त्व के दस प्रकारों का नाम-निर्देश ।
- १७, १८—मिसर्ग-वृत्ति की परिभाषा ।
- १९—उपदेश-वृत्ति की परिभाषा ।
- २०—आज्ञा-वृत्ति की परिभाषा ।
- २१—सूत्र-वृत्ति की परिभाषा ।

- २२—बीज-रश्मि की परिभाषा ।
 २३—अभिगम-रश्मि की परिभाषा ।
 २४—वितार-रश्मि की परिभाषा ।
 २५—क्रिया-रश्मि की परिभाषा ।
 २६—संक्षेप-रश्मि की परिभाषा ।
 २७—धर्म-रश्मि की परिभाषा ।
 २८—सम्यक्त्व का अद्धान ।
 २९—सम्यक्त्व और चारित्र का पीवीपर्य सम्बन्ध ।
 ३०—दर्शन, ज्ञान और चारित्र से ही मुक्ति की सम्भवता ।
 ३१—सम्यक्त्व के आठ अंगों का निरूपण ।
 ३२-३३—चारित्र के पाँच प्रकार ।
 ३४—तप के दो प्रकार ।
 ३५—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का उपयोग ।
 ३६—संयम और तप से कर्म-विमुक्ति ।

एकोनविंश अध्यायन : सम्यक्त्व-पराक्रम (साधना-भाग)

पृ० ३८१-४१६

- सूत्र १—अध्ययन का उपक्रम । सम्यक्त्व-पराक्रम का अर्थ ।
 संवेग के परिणाम ।
 २—निर्वेद के परिणाम ।
 ३—धर्म-श्रद्धा के परिणाम ।
 ४—गुरु-साधर्मिक-शुश्रूषा के परिणाम ।
 ४—आलोचना के परिणाम ।
 ६—निन्दा के परिणाम ।
 ७—गहरी के परिणाम ।
 ८-१३—षट्-आवश्यक के परिणाम ?
 १४—स्तव-स्तुति-मंगल के परिणाम ।
 १५—काल-प्रतिलेखना का परिणाम ।
 १६—प्रायश्चित्त के परिणाम ।
 १७—क्षमा करने के परिणाम ।
 १८-२३—स्वाध्याय के परिणाम ।
 २४—श्रुताराधना के परिणाम ।
 २५—एकाग्र-मनः-सन्निवेश का परिणाम ।
 २६—संयम का परिणाम ।
 २७—तप का परिणाम ।
 २८—व्यवदान के परिणाम ।
 २९—सुख-भाव के परिणाम ।

- ३०—धप्रतिबद्धता के परिणाम ।
 ३१—विविक्त-शयनासन-सेवन के परिणाम ।
 ३२—चिनिवर्तना के परिणाम ।
 ३३-४१—विभिन्न प्रत्याख्यानों के परिणाम ।
 ४२—प्रतिरूपता के परिणाम ।
 ४३—वेयावृत्त्य का परिणाम ।
 ४४—सर्व-गुण-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ४५—धीतरामता के परिणाम ।
 ४६—क्षमा का परिणाम ।
 ४७—मुक्ति के परिणाम ।
 ४८—ऋजुता के परिणाम ।
 ४९—मृदुता के परिणाम ।
 ५०—भाब-सत्य के परिणाम ।
 ५१—करण-सत्य के परिणाम ।
 ५२—योग-सत्य के परिणाम ।
 ५३—मनो-गुप्तता के परिणाम ।
 ५४—वाक्-गुप्तता के परिणाम ।
 ५५—काय-गुप्तता के परिणाम ।
 ५६—मनःसमाधारण के परिणाम ।
 ५७—वाक्-समाधारणा के परिणाम ।
 ५८—काय-समाधारणा के परिणाम ।
 ५९—ज्ञान-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६०—दर्शन-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६१—चारित्र-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६२-६६—इन्द्रिय-निग्रह के परिणाम ।
 ६७-७०—कषाय-विषय के परिणाम ।
 ७१—प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन-विषय के परिणाम ।
 ७२—केवली के योग-निरोध का क्रम ।
 दोष चार कर्मों के लय का क्रम ।
 ७३—कर्म-लय के बाद जीव की मोक्ष की ओर गति, स्थिति का स्वरूप-विवरण ।
 उपसंहार ।

त्रिंश अध्ययन : तपो-मार्ग-गति (तपो-मार्ग के प्रकारों का निरूपण)

पृ० ४१७-४२८

पलोक १—अध्ययन का प्रारम्भ ।

२—महाभक्त और राज्ञि-भोजन-विरति से जीव की बाध्य-विरति ।

३—समित और मुक्त जीव की बाध्य-विरति ।

- ४—अर्जित कर्मों के फल के उपाय ।
 ५,६—ताकाब के दृष्टान्त से तपस्या द्वारा कर्म-फल का निरूपण ।
 ७—तप के दो प्रकार ।
 ८—बाह्य-तप के छह प्रकार ।
 ९-१३—अनशन के प्रकार ।
 १४-२४—अवमौढ्य के प्रकार ।
 २५—भिक्षाचर्या की परिभाषा ।
 २६—रस-विवर्जन ।
 २७—काय-क्लेश ।
 २८—विविक्त-शयनासन ।
 २९-३०—आन्तरिक-तप के भेदों का नाम-निर्देश ।
 ३१—प्रायश्चित्त ।
 ३२—विनय ।
 ३३—वैयावृत्य ।
 ३४—स्वाध्याय और उसके प्रकार ।
 ३५—ध्यान ।
 ३६—कायोत्सर्ग ।
 ३७—तप के आचरण से मुक्ति की संभवता ।

एकत्रिंश अध्यायन : चरण-विधि (चरण-विधि का निरूपण)

पृ० ४२६-४३६

श्लोक १- अध्यायन का उपक्रम ।

- २—एक—असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति का विधान ।
 ३—दो—राग और द्वेष के निरोध से संसार-मुक्ति ।
 ४—तीन-तीन दण्डों, गौरवों और शाल्यों के त्याग से संसार-मुक्ति ।
 ५—उपसर्ग-सहन करने से संसार-मुक्ति ।
 ६—विकथा, कथाय, संज्ञा और आर्से-रौद्र ध्यान के वर्जन से संसार-मुक्ति ।
 ७—व्रत और समितियों के पालन से, इन्द्रिय-विजय और क्रियाओं के परिहार से संसार-मुक्ति ।
 ८—छह क्लेशों, छह काम और आहार के छह कारणों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 ९—आहार-भक्षण की सात प्रतिमाओं और सात भ्रम-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १०—आठ मद-स्थान, ब्रह्मचर्य की नौ गति और दस प्रकार के भिक्षु-धर्म में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 ११—उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं और भिक्षु की बारह प्रतिमाओं में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १२—तेरह क्रियाओं, चौदह जीव-समुदायों और पन्द्रह परमाधार्मिक देवों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १३—माथा षोडशक और सतरह प्रकार के असंयम में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १४—अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य, उन्नीस ज्ञात-अध्ययन और बीस असमाधि-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १५—इकीस सबल दोष, बाईस परीषद्गों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १६—सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययन और चौबीस प्रकार के देवों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

- १७—पञ्चीस भावनाओं और छत्तीस उद्देशों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १८—साधु के सत्ताईस गुण और अठाईस आचार-प्रकल्पों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १९—उत्तरीस पाप-प्रसंगों और तीस प्रकार के मोह-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 २०—सिद्धों के इक्कीस आदि गुण, बत्तीस दोष-संग्रह और तैंतीस आशातना में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 २१—इन स्थानों में यत्न करने वाले का शीघ्र संसार-मुक्त होना ।

द्वाविंश अध्ययन : प्रमाद-स्थान (प्रमाद के कारण और उनका निवारण)

पृ० ४३७-४६०

श्लोक १—अध्ययन का प्रारम्भ ।

२—एकान्त सुख के हेतु का प्रतिपादन ।

३—भोजन-मार्ग का प्रतिपादन ।

४—समाधि की आवश्यक सामग्री ।

५—एकल विहार की विशेष विधि ।

६—तृष्णा और मोह का अविनाभाव सम्बन्ध ।

७—कर्म-बीज का निरूपण ।

८—दुःख-नाश का क्रम ।

९-१०—राग, द्वेष और मोह के उन्मूलन का उपाय ।

११—प्रकाम-भोजन ब्रह्मचारी के लिए अहितकर ।

१२—विविक्त-शय्यासन और कम भोजन से राग-शत्रु का पराजय ।

१३-१८—ब्रह्मचारी के लिए स्त्री-संसर्ग-वर्जन का विधान ।

१९-२०—किपाक-फल की तरह काम-भोग की अभिलाषा दुःख का हेतु ।

२१—मनोज्ञ विषय पर राग और अमनोज्ञ पर द्वेष न करने का उपदेश ।

२२-३४—रूपासक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य और दुःख का हेतु ।

रूप-विरक्ति शोक-मुक्ति का कारण ।

३५-४७—शब्दासक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य और दुःख का हेतु । शब्द-विरक्ति शोक-मुक्ति का कारण ।

४८-६०—गन्ध-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु ।

६१-७३—रस-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु ।

७४-८६—स्पर्श-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु । स्पर्श-विरक्ति, शोक-विमुक्ति का हेतु ।

८७-९९—भाव-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु । भाव-विरक्ति शोक-विमुक्ति का हेतु ।

१००—रागी पुरुष के लिए इन्द्रिय और मन के विषय दुःख के हेतु ; वीतराग के लिये नहीं ।

१०१—समता या विकार का हेतु तद्विषयक मोह है, काम-भोग नहीं ।

१०२, १०३—काम-गुण आसक्त पुरुष अनेक विकार-परिणामों द्वारा कष्टास्पद और अग्रिय ।

१०४—तप के फल की बाँछा करने वाला इन्द्रिय-रूपी चोरों का वशवर्ती ।

१०५—विषय-प्राप्ति के प्रयोजनों के लिए उद्यम ।

१०६—विरक्त पुरुष के लिए शब्द आदि विषय मनोज्ञता वा अमनोज्ञता के हेतु नहीं ।

१०७—राग-द्वैपालक संकल्प दोष का मूल है, इन्द्रिय-विषय नहीं—इस विचार से तृष्णा का क्षय ।

१०८—वीतराग की कृतकृत्यता ।

१०६—आयुष्य सय होने पर मोक्ष-प्राप्ति ।

११०—मुक्त जीव की कृतार्थता ।

१११—दुःखों से मुक्त होने का मार्ग ।

त्रयस्त्रिंश अध्ययन : कर्म-प्रकृति (कर्म की प्रकृतियों का निरूपण)

पृ० ४६१-४७६

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२-३—कर्मों के नाम-निर्देश ।

४-१५—कर्मों के प्रकार ।

१६, १७— एक समय में प्राप्त सब कर्मों के प्रदेशों का परिणाम ।

१८— सब जीवों के संग्रह-योग्य पुद्गलों की छहों दिशाओं में स्थिति ।

१९-२३—कर्मों की उत्कृष्ट और अन्य स्थिति ।

२४—कर्मों का अनुभाग ।

२५—बुद्धिमान् को कर्म-निरोध का उपदेश ।

चतुस्त्रिंश अध्ययन : लेश्याध्ययन (कर्म-लेश्या का विस्तार)

पृ० ४७७-४८८

श्लोक १-२—उपक्रम ।

३—लेश्याओं के नाम-निर्देश ।

४-६—लेश्याओं का वर्ण-विचार ।

१०-१५—लेश्याओं का रस-विचार ।

१६-१७—लेश्याओं का गन्ध-विचार ।

१८-१९—लेश्याओं का स्पर्श-विचार ।

२१-३२—लेश्याओं के परिणाम ।

३३—लेश्याओं के स्थान

३४-३६—लेश्याओं की स्थिति ।

३०-४३—नारकीय जीवों के लेश्याओं की स्थिति ।

४४-४६—तिर्यङ्मूच और मनुष्य के लेश्याओं की स्थिति ।

४७-५५—देवों के लेश्याओं की स्थिति ।

५६—अधर्म लेश्याओं की गति ।

५७—धर्म लेश्याओं की गति ।

५८-६०—लेश्याओं का आयुष्य ।

६१—अप्रवृत्त लेश्याओं के वर्जन और प्रवृत्त लेश्याओं के स्वीकार का उपदेश ।

पंचत्रिंश अध्ययन : अनगार-मार्ग-गति (अनगार का स्फुट आचार)

पृ० ४८९-४९६

श्लोक १—उपक्रम ।

२—संग-विवेक ।

३—पाँच महाव्रतों का नाम-निर्देश ।

४-६—शय्या की शुद्धता ।

१०-११—आहार की शुद्धता ।

१२—मिक्षु के लिए अन्न का समारंभ न करने का विधान ।

१३—सोने-चाँदी की अनाकांक्षा ।

१४-१५—ऋय-विक्रय मिश्रु के लिए महान् दोष ।

१६—पिण्ड-पात की एषणा ।

१७—जीवन-निर्वाह के लिए भोजन का विधान ।

१८—पूजा, अर्चना और सम्मान के प्रति अनासंसा-भाव ।

१९—शुक्ल-व्यान और व्युत्प्लुट-काय होने का उपदेश ।

२०—अनशन का विधान ।

२१—आश्रय-रहित व्यक्ति का परिनिर्वाण ।

षट्त्रिंश अध्ययन : जीवाजीव-विभक्ति (जीव और अजीव के विभागों का निरूपण)

पृ० ४६७-५४६

लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—लोक और अलोक की परिभाषा ।

३—जीव और अजीव की प्ररूपणा के प्रकार ।

४—अजीव के दो प्रकार ।

५-६—अरूपी अजीव के दस प्रकार ।

७—अरूपी अजीव के प्रकारों का क्षेत्र-मान ।

८-९—अरूपी अजीव के प्रकारों का क्षेत्र-मान ।

१०-१४—रूपी पुद्गल के प्रकारों का द्रव्य, क्षेत्र और काल-मान ।

१५-२०—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से पुद्गल की परिणति ।

२१—संस्थान की अपेक्षा से पुद्गल की परिणति ।

२२-४६—पुद्गल के अनेक विकल्प ।

४७-४८—जीव के दो प्रकार ।

४९-६७—सिद्धों का निरूपण ।

६८—संसारी जीव के दो प्रकार ।

६९—स्वावर जीव के तीन मूल भेद,

७०-८३—पृथ्वीकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

८४-९१—अकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

९२-१०६—वनस्पतिकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१०७—जल-जीव के तीन भेद ।

१०८-११६—तेजस्काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

११७-१२५—वायुकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१२६—उदार जलकायिक जीवों के प्रकार ।

१२७-१३५—हीनजिव-काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१३६-१४४—मोक्षजिव-काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

१४५-१५४—अतुल्यजिव-काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

- १५५—पञ्चेन्द्रिय के चार प्रकार ।
 १५६-१६६—तरुओं के नाम-निर्देश ।
 नैरयिक जीवों के चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण ।
 १७०-१७१—पञ्चेन्द्रिय-तिर्यङ्च के प्रकार और अवतार भेद ।
 १७२-१७८—जलचर जीवों के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।
 १७९-१८७—स्थलचर जीवों के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।
 १८८-१९४—खेचर जीवों के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग निर्देश ।
 १९५-२०३—मनुष्य के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।
 २०४-२४७—देवों के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।
 २४८-२४९—जीवाजीव के ज्ञान पूर्वक संघम का निर्देश ।
 २५०-२५५—संलिखना-विधि
 २५६-२६२—शुभ और अशुभ भावनाएँ सुगति और पुनर्गति का कारण ।
 २६३—कादर्यो-भावना ।
 २६४—आभिशायी-भावना ।
 २६५—किल्बिषिक-भावना ।
 २६६—आसुरी-भावना ।
 २६७—मोही भावना ।
 २६८—उपसंहार ।

उत्तरज्झयणाणि

पढमं अज्जयणं :
विणय-सुयं

प्रथम अध्यायन :
विनय-श्रुत

आच्युत

घृणि के अनुसार इस अध्ययन का नाम 'विनय-सूत्र'^१ और निर्युक्ति तथा बृहद्बृत्ति के अनुसार 'विनय-श्रुत'^२ है।

समवायंग में भी इस अध्ययन का नाम 'विनय-श्रुत' है^३। 'श्रुत' और 'सूत्र' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। इस अध्ययन में विनय की श्रुति या सूत्रण है।

भगवान् महावीर की साधना-पद्धति का एक अंग 'तपोयोग' है। उसके बारह प्रकार हैं। उनमें आठवाँ प्रकार 'विनय' है^४। उसके सात रूप प्राप्त होते हैं^५ :

१—ज्ञान-विनय—ज्ञान का अनुवर्तन।

२—दर्शन-विनय—दर्शन का अनुवर्तन।

३—चारित्र-विनय—चारित्र का अनुवर्तन।

४—मन-विनय—मन का प्रवर्तन।

५—वचन-विनय—वचन का प्रवर्तन।

६—काय-विनय—काया का प्रवर्तन।

७—लोकोपचार-विनय अनुशासन, शुश्रूषा और शिष्टाचार-परिपालन।

बृहद्बृत्ति में 'विनय' के पाँच रूप प्राप्त होते हैं^६—

१—लोकोपचार-विनय।

२—अर्थ-विनय—अर्थ के लिए अनुवर्तन करना।

३—काम-विनय—काम के लिए अनुवर्तन करना।

४—भय-विनय—भय के लिए अनुवर्तन करना।

५—मोक्ष-विनय—मोक्ष के लिए अनुवर्तन करना। (इस विनय के पाँच प्रकार किए गए हैं—ज्ञान-विनय, दर्शन-विनय, चारित्र-विनय, तप-विनय और औपचारिक-विनय।^७)

इन दोनों वर्गीकरणों के आधार पर विनय के निम्न अर्थ प्राप्त होते हैं—अनुवर्तन, प्रवर्तन, अनुशासन, शुश्रूषा और शिष्टाचार-परिपालन।

१—उत्तराध्ययन बृत्ति, पृष्ठ ८ : प्रथममध्ययनं विनयस्यमिति, विनयो यस्मिन् सुत्रे वर्ण्यते तद्विदं विनयसुत्रम्।

२—(क) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, भाषा २८ : तत्पञ्चमं पदमं विनयस्यम्। (ख) बृहद्बृत्ति, पत्र १५ : विनयश्रुतमिति द्विपदं नाम।

३—समवायंग, समवाय ३६ : छत्तीसं उत्तराध्ययना प० तं०—विनयस्यम्।

४—उत्तराध्ययन, ३०८, ३०

५—औपचारिक, सूत्र २० : ते किं तं विनय ? २ सत्तविहे पयणते, तज्जहा—गणविणए दंसणविणए चरिसविणए मणविणए बहविणए कायविणए कोपविणएविणए।

६—बृहद्बृत्ति, पत्र १६ : लोकोपचारविणओ अत्यनिमिंस्स च कामहेउं च।

अवविणयमोक्खविणओ खल्ल पंचहा गेओ ५

७—वही : दंसणगणचरिसं तवे य तह ओपचारिए वेव।

एसो य मोक्खविणओ पंचविहो होइ पाणणो ॥

प्रस्तुत अध्ययन में इन सभी प्रकारों का प्रातिपादन हुआ है।

दूसरे श्लोक में 'विनीत' की परिभाषा लोकोपचार-विनय के आधार पर की गई है। लोकोपचार-विनय के सात विभाग हैं ^१—

१—अभ्यासवृत्तिता—समीप रहना।

२—परद्वन्द्वानुवृत्तिता—दूसरे के अभिप्राय का अनुवर्तन करना।

३—कार्यहेतु—कार्य की सिद्धि के लिए अनुकूल वर्तन करना।

४—कृतप्रतिक्रिया—कृत उपकार के प्रति अनुकूल वर्तन करना।

५—आर्जगवेषणा—आर्ज की गवेषणा करना।

६—देश-कालज्ञता—देश और काल को समझना।

७—सर्वार्थ-अप्रतिलोमता—सब प्रकार के प्रयोजनों की सिद्धि के लिए अनुकूल वर्तन करना।

दूसरे श्लोक में दी हुई विनीत की परिभाषा में इनमें से तीन विभाग—परद्वन्द्वानुवृत्तिता, अभ्यासवृत्तिता, देश-कालज्ञता—क्रमशः आत्मानिर्देशकर, उपपातकारक और इंगिताकार-सम्पन्न के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

दसवें श्लोक में 'मन-विनय', 'वचन-विनय' और 'ज्ञान-विनय' का संक्षेप में बहुत सुन्दर निर्देश किया गया है।

इस प्रकार इस अध्ययन में विनय के सभी रूपों का सम्यक् संकलन हुआ है। प्राचीन काल में विनय का बहुत मूल्य रहा है। तेईसवें श्लोक में बताया गया है कि आचार्य विनीत को विद्या देते हैं। अविनीत विद्या का अधिकारी नहीं माना जाता। इस अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि गुरु शिष्य पर कठोर और मुक्त दोनों प्रकार का अनुशासन करते थे (श्लोक ३७)। समय की नियमितता भी विनय और अनुशासन का एक अंग था।

कालेण निश्चये भिक्षुः, कालेण य पङ्क्तिमे।

अकालं च विवर्जिता, काले कालं समाधरे ॥१३१॥

इस अध्ययन में स्वाध्याय और ध्यान दोनों का सम्मिलित उल्लेख मिलता है। आचार्य रामसेन ने लिखा है :

स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्तां, ध्यानात् स्वाध्यायमानमेत् ।

ध्यानस्वाध्यायसम्पत्त्या, परमात्माप्रकाशते ॥^२

स्वाध्याय के पश्चात् ध्यान और ध्यान के पश्चात् स्वाध्याय—इस प्रकार स्वाध्याय और ध्यान की पुनरावृत्ति से परमात्मस्वरूप उपलब्ध होता है।

यह परम्परा बहुत पुरानी है। इसका संकेत दसवें श्लोक में मिलता है—

कालेण य अहिंजिता, ततो भ्रातृज एगो ।

विनय के व्यापक स्वरूप की सामने रखकर ही यह कहा गया था—“विनय जिन-शासन का मूल है। जो विनय-रहित है, उसे धर्म और तप कहीं से प्राप्त होगा ?”^३

१—औपचारिक, सू. २० : से कि तं लोकोपचारविण्णु ? २ सत्विहे पणसं तंजडा—अभ्यासवसितं परच्छन्दाणवसितं कञ्जहेतं कपपङ्क्तिरिया अतगनेसणया देश-काळणुषा सव्वट्ठेअपङ्क्तिमया ।

२—तत्त्वानुशासन, ८१

३—उपदेशमाला, २४१ : विणो सासणे मूलं, विणीओ संजओ अणे ।

विणयाओ विण्यमुक्कस, कओ धम्मो कओ तओ ॥

आचार्य वल्लभ ने विनय का उत्कर्ष इस भाषा में प्रस्तुत किया—“विनयविहीन व्यक्ति कि सारी शिक्षा व्यर्थ है। शिक्षा का फल विनय है।” यह नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति शिक्षित है और विनोत नहीं है। उनकी भाषा में शिक्षा का फल विनय और विनय का फल शेष समग्र कल्याण है।

विनय मानसिक-दासता नहीं है, किन्तु वह आत्मिक और व्यावहारिक विशेषताओं की अभिव्यंजना है। उसकी पृष्ठभूमि में इतने गुण समाहित रहते हैं^१ :

१—निर्वृन्द—कलह आदि द्वन्द्वों की प्रवृत्ति का अभाव।

२—ऋजुता—सरलता।

३—सुदृढता—निश्चलता और निरभिमानता।

४—लाघव—अनासक्ति।

विनय के व्यावहारिक फल हैं—कोप और मेल। विनय करने वाला अपने अभिमान का निरसन, तीर्थङ्कर की आज्ञा का पालन और गुणों का अनुमोदन करता है।^२

सूत्रकार ने विनोत को ब्रह्म स्थान दिया है, जो अनायास-लभ्य नहीं है। सूत्र की भाषा है—“ब्रह्मं किञ्चिदपि सरणं, भूयान् जगद् जगद्”^३। इस प्रकार पृथ्वी प्राणियों के लिए आधार होती है, उसी प्रकार विनोत शिष्य धर्माचरण करने वाली के लिए आधार होता है।

१—सुलाचार, ५।२।११ : विणयण विप्वहीणस्स, हवद्दि सिक्खा सव्वा णिरत्थिया।

विणयो सिक्खाए फलं, विणयफलं सज्ज कल्लायणं ॥

२—बही, ५।२।१३ :

आचार्यजीवकप्पगुणदीवणा, अत्तसोचि णिज्जंजा।

अज्जव-अहव-लाहव-भत्ती-पल्हावकरणं च ॥

३—बही, ५।२।१४ :

किस्सि-मिस्सि माणस्स भंजणं गुणयेयं व बहुमाणं।

तत्थयराणं आणा गुणाणुसोदी व विणयगुणा ॥

४—उत्तराध्ययन, १।४५

६—मुणियाऽभावं साणस्स
सूरस्स नरस्स य ।
विणए ठवेज्ज अप्पाणं
इच्छन्तो हियमप्पणो ॥

७—तम्हा विणयमेसेज्जा
सीलं पडिलभे जओ^१ ।
बुद्ध-पुत्तं^२ नियागट्ठी
न निक्कसिज्जइ कण्हुई ॥

८—निसन्ते सियाऽमुहरी^३
बुद्धाणं अन्तिए सया ।
अट्टजुत्ताणि सिक्खेज्जा
निरट्ठाणि उ वज्जए ॥

९—अणुसासिओ न कुप्पेज्जा
खंति सेविज्ज पण्डिण ।
खुट्ठेहि सह संसंगि
हासं कीडं च वज्जए ॥

१०—मा य चण्डालियं कासी^४
बहुयं मा य आल्वे ।
कालेण य अहिज्जित्ता
तओ भाणज्ज एगगो^५ ॥

११—आहव चण्डालियं कट्टु
न निण्हुविज्ज कयाड वि ।
'कडं कडे' ति भासेज्जा
'अकडं नो कडे' ति य ॥

श्रुत्वा अभावं शून्याः
शुकरस्य नरस्य च ।
विनये स्थापयेदात्मनम्
इच्छन् हितमात्मनः ॥

तस्माद् विनयमेवैव
शीलं प्रतिलभेत यतः ।
बुद्धपुत्रो नियागार्थो
न निष्काश्यते क्वचिन् ॥

निःशान्तः स्थावमुखरः
बुद्धानामन्तिके सदा ।
अयं युक्तानि शिष्ये
निरर्थानि तु वज्जयेत् ॥

अनुशिष्टो न कुम्भेन
क्षान्तिं सेवेत पण्डितः ।
क्षुद्रः सह संसर्गं
हासं कीडां च वज्जयेत् ॥

मा च चाण्डालिकं कार्षीं
बहुकं मा चालपेत् ।
कालेन बाधोत्थ
ततो ध्यायेदेककः ॥

आहत्य चाण्डालिकं कृत्वा
न निण्हुवोत कदाचिदपि ।
कृतं कृतमिति भावेन
अकृतं नो कृतमिति च ॥

६—अपनी आत्मा का हित चाहने वाला
भिक्षु कुनिया और सूअर को तरह दुःशील
मनुष्य के अभाव (हीन भाव) को मुनकर अपने
आप को विनय में स्थापित करे ।

७—इसलिए विनय का आचरण करे
जिसने शील की प्राप्ति हो। जो बुद्ध-पुत्र
(आचार्य का प्रिय शिष्य) और मोक्ष का अर्थ
होना है, वह गण में नहीं निकाला जाना ।

८—भिक्षु आचार्य के समीप मदा प्रणाल
रहे । बाचालना न करे । उनके पास अर्थ-युक्त
पदों को सीधे आरंभ कथाओं का
वर्जन करे ।

९—पण्डित भिक्षु गुरु के द्वारा अनुश्रुति
होने पर क्रोध न करे, क्षमा की आराधना
करे । क्षुद्र व्यक्तियों के साथ संसर्ग, हास्य और
कीड़ा न करे ।

१०—भिक्षु चण्डालोक्ति कर्म (द्रुत-व्यव-
हार) न करे । बहुत न बोले । स्वाध्याय के
काल में स्वाध्याय कर और उसके पश्चात्
अकेला ध्यान करे ।

११—भिक्षु सहसा चण्डालोक्ति कर्म कर
उसे कभी भी न छिपाए । अनर्णित किया हो
नो किया और नहीं किया हो नो न किया
कहे ।

१. पडिलभिसज्जओ (अ. १); पडिलभेज्जओ (अ.) ।

२. बुद्ध उत्तं (पु. १); बुद्धपुत्तं, बुद्धपुत्तं (पु. पा. १) ।

३. सियाऽमुहरी (अ.) ।

४. कासी (अ.) ।

५. एककओ (अ.) ।

पढमं अज्ज्ञयणं : प्रथम अध्ययन विणय-सुयं : विनय-श्रुतम्

मूल

१—संजोगा विणमुक्कस्स
अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि
आणुपुड्वि सुणेह मे ॥

२—आणानिहेसकरे
गुरुणमुववायकारए ।
इगियागार-संपन्ने
से 'विणीए ति' वुच्चई ॥

३—आणाऽनिहेसकरे
गुरुणमणुववायकारए ।
पडिणीए असंबुद्धे
'अविणीए ति' वुच्चई ॥

४—जहा मुणी पूइ-कणी
निकसिज्जइ सव्वसो ।
एवं दुस्सील-पडिणीए
मुहरी निकसिज्जई ॥

५—कण-कुण्डगं चइत्ताणं^१
विट्ठं भुंजइ मूयरे ।
एवं सीलं चइत्ताणं
दुस्सीले रमई मिए^२ ॥

संस्कृत छाया

संयोगाह विप्रमुक्तस्य
अनगारस्य भिक्षोः ।
विनयं प्रादुष्टकरिष्यामि
आनुपूर्व्या शृणुत मे ॥

आज्ञानिर्देशकरः
गुरुणामुपपातकारकः ।
इगिताकारसम्प्रज्ञः
स 'विनीत' इत्युच्यते ॥

आज्ञानिर्देशकरः
गुरुणामनुपपातकारकः ।
प्रत्यनीकोऽसम्बुद्धः
'अविनीत' इत्युच्यते ॥

यथा शुनी पूतिकर्णो
निष्काश्यते सर्वतः ।
एवं दुःशीलः प्रत्यनीकः
मुखरो निष्काश्यते ॥

'कणकुण्डकं' त्यक्त्वा
विण्डां भुंक्ते शूकरः ।
एवं शीलं त्यक्त्वा
दुःशीले रमते मृगः ॥

हिन्दी अनुवाद

१—जो संयोग से मुक्त है, अनगार है,
भिखू है, उसके विनय को क्रमशः प्रकट
करूँगा । मुझे सुनो ।

२—जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का
पालन करता है, गुरु की श्रृष्या करता है,
गुरु के इंगित और आकार को जानता है, वह
'विनीत' कहलाता है ।

३—जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का
पालन नहीं करता, गुरु की श्रृष्या नहीं करता,
जो गुरु के प्रतिकूल वर्तन करता है और
तथ्य को नहीं जानता, वह 'अविनीत'
कहलाता है ।

४—जैसे सड़े हुए कानों वाली कुनिया
सभी म्थानों में निकाली जाती है, वैसे ही
दुःशील, गुरु के प्रतिकूल वर्तन करने वाला
और बाबाल भिक्षु गण से निकाल दिया
जाता है ।

५—जिस प्रकार सूअर चाबलों की भूसी
को छोड़कर विण्डा खाता है, वैसे ही अज्ञानी
भिक्षु शील को छोड़कर दुःशील में रमण
करता है ।

१. आणा अनिहेसकरे (अ) ।

२. चइत्ताणं (इ०, वू०); चइत्ताणं (इ०पा०) ।

३. मिई (आ) ।

१२—मा 'गलियस्से व' कसं
वयणमिच्छे पुणो पुणो ।
कसं व दट्ठमाइण्णे
पावगं परिवज्जए^१ ॥

१३—अणासवा^२ थूलवया कुसीला
मिउं पि चण्डं पकरेंति सीसा ।
चित्तानुया लहु दक्खोववेया
पसायए ते हु दुरासयं पि ॥

१४—नापुट्ठा वागरे किंचि
पुट्ठा वा नालियं वए ।
काहं असच्चं कुब्बेज्जा
धारेज्जा पियमणियं ॥

१५—'अप्पा चेव दमेयब्बो'^३
अप्पा हु खलु दुदमो ।
अप्पा-दन्तो मुही होइ
अस्सि लोए परत्थ य ॥

१६—वरं^४ मे अप्पा दन्तो
संयमेण तवेण य ।
माहं परेहि दम्मन्तो
बन्धणेहि वहेहि य ॥

मा गल्पयच्च इव कसं
वचनमिच्छेह पुनः पुनः ।
कशमिव दृष्ट्वा आकीर्णः
पापकं परिवर्जयेत् ॥

अनाथवाः स्थूलवचसः कुशीलाः
मृदुमपि चण्डं प्रकुर्वन्ति शिष्याः ।
चित्तानुया लघुवाक्योपेताः
प्रसादयेयुस्ते 'हु' दुराशयमपि ॥

नापृष्ठो व्यागृणीयात् किञ्चित्
पृष्ठो वा नालीकं वदेत् ।
क्रोधवसत्यं कुर्वीत
धारयेत् प्रियमप्रियम् ॥

आत्मा चैव दान्तव्यः
आत्मा 'हु' खलु दुर्दमः ।
आत्मा दान्तः सुखी भवति
अस्मिल्लोके परत्र च ॥

वरं मयात्मा दान्तः
संयमेन तपसा च ।
मा हं परेदमित्
बन्धनैर्वधेश्च ॥

१२—जैसे अविनीत घोड़ा चाबुक को बार-बार चाहता है, वैसे विनीत शिष्य गुरु के वचन को (आदेश-उपदेश) को बार-बार न चाहे । जैसे विनीत घोड़ा चाबुक को देखते ही उन्मार्ग को छोड़ देता है, वैसे ही विनीत शिष्य गुरु के दंगित और आकार को देखकर अशुभ प्रवृत्ति को छोड़ दे ।

१३—आज्ञा को न मानने वाले और अट-संट बोलने वाले कुशील शिष्य कोमल स्वभाव वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते हैं । चित्त के अनुसार चलने वाले और पटुना से कार्य को सम्पन्न करने वाले शिष्य, दुराशय (शीघ्र ही कुपित होने वाले) गुरु को भी प्रसन्न कर लेते हैं ।

१४—बिना पूछे कुछ भी न बोले । पूछने पर असत्य न बोले । क्रोध न करे । आ जाए तो उसे विफल कर दे । प्रिय और अप्रिय को धारण करे—उन पर राग और द्वेष न करे ।

१५—आत्मा का ही दमन करना चाहिए । क्योंकि आत्मा ही दुर्दम है । दमित-आत्मा ही श्लोक और परलोक में सुखी होता है ।

१६—अच्छा यही है कि मैं संयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा का दमन करूँ । दूसरे लोग बन्धन और बंध के द्वारा मेरा दमन करें—यह अच्छा नहीं है ।

१. गलियस्सेव्व (ड, ऋ०) ; गलियस्सेव्व (अ) ।

२. पड्विज्जए (अ, वृ०पा०) ।

३. अणाइणा (वृ०पा०) ।

४. अप्पाणमेव वसए (वृ०, वृ०) ; अप्पा चेव दमेयब्बो (वृ०पा०) ।

५. वर (अ, ड, म) ।

१७—पडिणीयं च बुद्धानां
वाया अदुव कम्मुणा ।
आवी वा जइ वा रहस्से
नेव कुज्जा कयाइ वि ॥

१८—न पक्खओ न पुरओ
नेव किच्चाण पिट्ठओ ।
न जुज्जे ऊरुणा ऊरुं
सयणे नो पडिस्सुणे ॥

१९—नेव पल्हत्थियं कुज्जा
पक्खपिण्डं व संजए ।
पाए पसारिए^१ वावि
न चिट्ठे गुरुणत्तिए ॥

२०—आयरिएहि वाहित्तो
तुसिणीओ न कयाइ वि ।
पसाय-पेही^२ नियागट्ठी
उवचिट्ठे गुरुं सया ॥

२१—आलवन्ते लवन्ते वा
न निसीएज्ज कयाइ वि ।
चइऊणमासणं धीरो
जओ जत्तं^३ पडिस्सुणे ॥

२२—आसण-गओ न पुच्छेज्जा
नेव 'सेजा-गओ कया'^४ ।
आगम्मुकुडुओ सत्तो
पुच्छेज्जा पंजलीउडो^५ ॥

प्रत्यनीकं (कल्पं) च बुद्धानां
वाचा अवचामर्षणा ।
आविर्चा यदि वा रहस्ये
नैव कुर्यात् कदाचिदपि ॥

न पक्षतो न पुरतः
नैव कृत्यानां पृच्छतः ।
न युञ्ज्यात् ऊरुणोरुं
शयने नो प्रतिभृणुयात् ॥

नैव पर्यस्तिकां कुर्यात्
पक्ष-पिण्डं वा संयतः ।
पादो प्रसारितो वापि
न तिष्ठेत् गुरुणामस्तिके ॥

आचार्यं व्याहृतः
तूष्णीको न कदाचिदपि ।
प्रसादप्रेक्षी नियागायी
उपतिष्ठेत् गुरुं सदा ॥

आलपन् लपन् वा
न निषीवेत् कदाचिदपि ।
त्यक्त्वा आसनं धीरः
यतो यत्तत् प्रतिभृणुयात् ॥

आसनगतो न पृच्छेत्
नैव शय्यागतः कदा ।
आगम्योत्कुडुकः सन्
पृच्छेत् पञ्जलिपुटः ॥

१७—संगों के समझ या एकांत में, कवन
से या कर्म से, कभी भी आचार्यों के प्रतिकूल
वर्तन न करे ।

१८—आचार्यों के बराबर न बैठे । आगे
और पीछे भी न बैठे । उनके ऊह (जॉष) से
अपना ऊह सटाकर न बैठे । बिछौने पर बैठ
हुआ हो उनके आवेश को स्वीकार न करे,
किन्तु उसे छोड़कर स्वीकार करे ।

१९—संयमी मुनि गुरु के समीप पलधी
लगाकर (पुटों और जॉषों के चारों ओर
वस्त्र बांध कर) न बैठे । पक्ष-पिण्ड कर (दोनों
हाथों से शरीर को बांधकर) तथा पैरों को
फँस कर न बैठे ।

२०—आचार्यों के द्वारा बुलाए जाने पर
किन्हीं भी अवस्था में मौन न रहे । गुरु के
प्रसाद को चाहने वाला, मोक्षार्जिलापी शिष्य
सदा उनके समीप रहे ।

२१—बुद्धिमान् शिष्य गुरु के एक बार
बुलाने पर या बार-बार बुलाने पर कभी भी
बैठा न रहे, किन्तु वे जो आवेश दें, उसे आसन
को छोड़कर यत्न के साथ स्वीकार करे ।

२२—आसन पर अवस्था शय्या पर बैठो-
बैठा कभी भी गुरु से कोई बात न पूछे, परन्तु
उनके समीप आकर ऊकड़ बैठ, हाथ जोड़कर
पूछे ।

१. पसारो नो (वृ०) ; पसारिए (वृ०पा०) ।

२. पसायट्ठी (वृ०पा०) ।

३. जुत्तं (भ, उ) ।

४. निसिज्जागओ कयाइ (वृ०) ।

५. पंजलीगरे (वृ०) ; पंजलीउडो (वृ०पा०) ।

२३—एवं विणयजुतस्त
मुत्तं अत्यं च तदुभयं ।
पुच्छभाणस्त सीसस्त
वागरेज्ज जहासुर्य ॥

२४—मुसं परिहरे भिक्षू
न य ओहारिणि वए ।
भासा-दोसं परिहरे
मायं च वज्जए सया ॥

२५—न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं
न निरट्ठं न मम्मयं ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा
उभयस्यान्तरेण वा ॥

२६—समरेसु अगारेसु
'सन्धीसु य महापहे' ।
एगो एगित्थिए सद्धि
नेव चिट्ठे न संलवे ॥

२७—जं मे बुद्धाणुसासन्ति
सीएणं फल्लेण वा ।
मम लाभो ति पेहाए
पयओ तं पडिस्सुणे ॥

२८—अणुसासणभोवायं
दुक्कडस्त य चोयणं ।
हियं तं मन्नेए पण्णो
वेसं होइ असाहुणो ॥

एवं विनयमुक्तस्य
सूत्रमर्थं च तदुभयम्
पृच्छतः विनयस्य
व्यापृणीयाह यथाशु तम् ॥

मुषा परिहरेत् भिक्षुः
न चावधारिणीं वदेत् ।
भाषादोषं परिहरेत्
मायां च वर्जयेत् सदा ॥

न लपेत् पृष्ठः सावज्जं
न निरर्थं न समंकम् ।
आत्मार्यं परार्थं वा
उभयस्यान्तरेण वा ॥

स्मरेषु अगारेषु
सन्धिषु च महापथे ।
एक एकस्मिन्ना सार्धं
नेव तिष्ठेन्न संलपेत् ॥

यन्मां बुद्धा अनुशासन्ति
शीतेन पल्लेण वा ।
मम लाभ इति प्रेष्य
प्रयत्नरहितं प्रतिशृणुवां ॥

अनुशासनभोवायं
दुष्कृतस्य च चोयनम् ।
हितं तन्मन्त्रयते प्राज्ञः
हृदयं भक्ष्यसाधोः ॥

२३—इस प्रकार जो शिष्य विनय-युक्त
हो, उसके पूछने पर गुरु सूत्र, अर्थ और तदुभय
(सूत्र और अर्थ दोनों) जैसे मुने हों (जाने हुए)
हों) बैसे बताए ।

२४—भिक्षु असत्य का परिहार करे ।
निषवय-कारिणी भाषा न बोले । भाषा के
दोषों को छोड़े । माया का सदा वर्जन
करे ।

२५—किसी के पूछने पर भी अपने,
पराए वा दोनों के प्रयोजन के लिए अवधा
अकारण ही सावधान न बोले, निरर्थक न बोले
और भर्म-भेदी वचन न बोले ।

२६—कामवेव के मंदिरों में, घरों में, दो
घरों के बीच की संघियों में और राजमार्ग में
अकेला मुनि अकेली स्त्री के साथ न खड़ा रहे
और न संलाप करे ।

२७—"आचार्य मुक्त पर कोमल या
कठोरवचनों से जो अनुशासन करते हैं वह मेरे
लाभ के लिए है"—ऐसा सोचकर प्रयत्नपूर्वक
उनके वचनों को स्वीकार करे ।

२८—शुद्ध या कठोर वचनों से किया
जाने वाला अनुशासन दुष्कृत का निवारक
होता है । पञ्चावाम् मुनि उसे हित मानता है ।
बही असाधु के लिए द्वेष का हेतु बन
जाता है ।

१. गिहसन्धीस महापथे (४०) ; गिहसंधिषु च महापथे (५०) ।

२. शीतेण (४) ; सीतेण (५०पा०, ५०पा०) ।

३. पेरणं (५०) ; चोयणा (५०) ।

२९—हियं विगय-भया बुद्धा
फरुसं पि अणुसासणं ।
वेसं तं होइ मूढाणं
खन्ति-सोहिकरं^१ पर्यं ॥

३०—आसणे उवविट्ठेज्जा
'अणुच्चे अकुए'^२ थिरे ।
अणुट्ठाई निरुट्ठाई
निसीएज्जपुकुकुए ॥

३१—कालेण निक्खमे भिक्खु
कालेण य पडिक्खे ।
अकालं च विवज्जित्ता
काले कालं समाचरे ॥

३२—परिवाडीए न विट्ठेज्जा
भिक्खू दत्तेसणं चरे ।
पडिक्खेण एसित्ता
मियं कालेण भक्खए ॥

३३—'नाइदूरमणास्ने'^३
ननेसि चक्खु-फासओ ।
एगो विट्ठेज्ज भत्तट्ठा
लघिया तं नइक्खमे^४ ॥

३४—नाइउच्चे व नीए वा
नासन्ने नाइदूरओ ।
फामुयं परकडं पिण्डं
पडिगाहेज्ज संजए ॥

हितं विगतभया बुद्धाः
परुषमप्यनुशासनम् ।
द्वेष्यं तत्र भवति मूढानां
क्षान्तिशोधिकरं पदम् ॥

आसने उपविष्टे
अणुच्चे अकुचे स्थिरे ।
अल्पोत्थायो निरुत्थायो
निषीदेवल्पकुकुचः ॥

काले निष्कामेऽभिभुः
काले च प्रतिक्रामेत् ।
अकालं च विवर्ज्यं
काले कालं समाचरेत् ॥

परिपाट्यां न तिष्ठेत्
भिभुर्दत्तेषणां चरेत् ।
प्रतिरूपेणैष्यित्वा
मितं काले भक्षयेत् ॥

नातिदूरेऽनासन्ने
नान्येभ्यः श्चक्षुःस्पर्शतः ।
एकस्तिष्ठेद्भक्षतायः
लङ्घयित्वा तं नातिक्रामेत् ॥

नात्युच्चे वा नीचे वा
नासन्ने नातिदूरतः ।
प्राप्तुं परकृतं पिण्डं
प्रति गृह्णीयात् संयतः ॥

२९—भय-मुक्त बुद्धिमान् शिष्य गुरु के
कठोर अनुशासन को भी हितकर मानते हैं ।
परन्तु अज्ञानियों के लिए वही—भामा और
चित्त-विपुद्धि करने वाला, गुण-वृद्धि का
आधारभूत—अनुशासन द्वेष का हेतु बन
जाता है ।

३०—जो गुरु के आसन से नीचा हो,
अकम्पमान हो और स्थिर हो (जिसके पाये
धरती पर टिके हुए हों) वैसे आसन पर बैठे ।
प्रयोजन होने पर भी बार-बार न उठे । बैठे
तब स्थिर एवं शान्त होकर बैठे, हाथ-पैर आदि
से चपलता न करे ।

३१—समय पर भिक्षा के लिए निकले,
समय पर लौट आएँ । अकाल को बर्जकर, जो
कार्य जिस समय का हो, उसे उसी समय
करे ।

३२—भिभु परिपाटी (पक्ति) में लड़ा
न रहे । गृहस्थ के द्वारा दिये हुए आहार की
एवणा करे । प्रति-रूप (मुनि के वेष) में एवणा
कर यथानमय मित आहार करे ।

३३—पहले से ही अन्य भिक्षु खड़े हों तो
उनसे अति-दूर या अति-नमीप लड़ा न रहे
और देने वाले गृहस्थों की दृष्टि के सामने भी
न रहे । किन्तु अकेला (भिभुओं और दाता
दोनों की दृष्टि से बचकर) लड़ा रहे । भिक्षुओं
को लोंघकर भक्त लेने के लिए न जाएँ ।

३४—संयमी मुनि प्राप्तुक और गृहस्थ के
लिए बना हुआ आहार ले किन्तु अति-ऊँचे या
अति-नीचे स्थान से लाया हुआ तथा अति-
समीप या अति-दूर से दिया जाता हुआ
आहार न ले ।

१. -छदिकरं (बु०) ।

२. अणुच्चेऽकुवकुए (बु०) ।

३. गाइ दूरे अणासणे (बु०) ।

४. न अइक्खमे (अ०) ।

३५—अप्यपाणेऽप्यबीर्यमि^१

पडिच्छन्मि संवुडे ।

समयं संजए भुजे

जयं अपरिसाडियं^२ ॥

अल्पप्राणेऽल्पबीरे

प्रतिच्छन्ने संवृते ।

समकं संयतो भुंजीत

यतम्परिसादितम् ॥

३५—संयमी मुनि प्राणी और बीज रहित, ऊपर से ढके हुए और पारस में भित्त आदि से संवृत उपानय में अपने सहचरों मूनियों के साथ, भूमि पर न गिरता हुआ, यत्नपूर्वक आहार करे ।

३६—मुकडे ति मुपक्के ति
मुच्छित्ते मुहडे मडे ।
मुणिट्टिए मुलट्टे ति
सावज्जं वजए मुणी ॥

मुकृतमिति मुपक्वमिति
मुच्छिन्नं मुहृतं मृतम् ।
मुनिष्ठितं मुलष्टमिति
सावधं ज्ञेयमुनिः ॥

३६—बहुत अच्छा किया है (भोजन आदि), बहुत अच्छा पकाया है (बेवर आदि), अच्छा छेदा है (पत्ती का साग आदि), बहुत अच्छा हरण किया है (साग की कड़वाहट आदि), न्यून अच्छा मरा है (कुरसे में भी आदि), बहुत दृढ है (प्रिय है)—मुनि इन सावध बचनों का प्रयोग न करे ।

३७—रमए पण्डिए सासं
हयं भट्टं व वाहए ।
बालं सम्मइ सासन्तो
गलियस्सं व वाहए ॥

रमते पण्डितान् शास्त्रं
हयं भट्टमिव वाहकः ।
बालं श्राम्यति शास्त्रं
गल्पदमिव वाहकः ॥

३७—जैसे उत्तम घोड़े को हाँकते हुए उसका वाहक आनन्द पाता है, वैसे ही पंडित (विनीत) शिष्य पर अनुशासन करता हुआ गुरु आनन्द पाता है और जैसे भुष्ट घोड़े को हाँकते हुए उसका वाहक खिन्न होता है, वैसे ही बाल (अविनीत) शिष्य पर अनुशासन करता हुआ गुरु खिन्न होता है ।

३८—'खड्डुया मे चवेडा मे
अकोसा य वहा य मे'^३ ।
कळाणमणुसासन्तो^४
पावदिट्ठि ति मन्तई ॥

'खड्डुका' मे चपेटा मे
आकोशादव ब्रवाइव मे ।
कल्याणमनुशास्यमानः
पापवृष्टिरिति मन्यते ॥

३८—पाप-वृष्टि वाला शिष्य गुरु के कल्याणकारी अनुशासन को भी ठोकर मारने, चाँटा चिपकाने, माली देने व प्रहार करने के समान मानता है ।

३९—पुत्तो मे भाय नाइ ति
साहू कळाण मन्तई ।
पावदिट्ठि उ अप्पाणं
सासं 'दासं व'^५ मन्तई ॥

पुत्रो मे भ्राता शत्रिरिति
साधुः कल्याणं मन्यते ।
पापवृष्टिस्त्वन्मात्रं
शास्यमानं दासमिव मन्यते ॥

३९—गुरु मुझे पुत्र, भाई और स्वजन की तरह अपना समझकर शिक्षा देते हैं—ऐसा सोच विनीत शिष्य उनके अनुशासन को कल्याणकारी मानता है परन्तु कुशिष्य हितानुशासन से शत्रित होने पर अपने को दास तुल्य मानता है ।

१. अप्यपाणेऽप्य० (अ, ड, ख०) ।

२. अप्परि० (ड, ख०, वृ०) ।

३. खड्डुवाहि चवेडाहि, अकोसेहि चवेडि य (वृ०, ख०); खड्डुया मे चवेडा मे, अकोसा य वहा य मे (वृ०, वृ०पा०) ।

४. ० सासन्तं (वृ०, ख०) ।

५. दासे ति (अ, आ, व, ख, उ०) ।

४०—न कोवए आयरियं
अप्पाणं पि न कोवए ।
बुद्धोवघाई न सिया
न सिया तोत्तगवेसए ॥

४१—आयरियं कुवियं नच्चा
पत्तिएण पसायए ।
विज्झवेज्ज पंजलिउडो
अएज्ज न पुणो ति य ॥

४२—धम्मज्जियं च व्यवहारं
बुद्धेहायरियं सया ।
तमायरन्तो व्यवहारं
गरहं नाभिगच्छई ॥

४३—'मणोगयं वक्कगयं'^१
जाणितायरियस्स उ ।
तं परिगिज्झ वायाए
कम्मुणा उववायए ॥

४४—वित्ते अचोइए निच्चं^२
'खिप्पं हवइ सुचोइए'^३ ।
जहोवइट्ठं सुकयं
किच्चाई कुव्वई सया ॥

४५—नच्चा नमइ मेहावी
लोए 'कित्ति से'^४ जायए ।
हवई किच्चाणं सरणं
भूयाणं जगई जहा ॥

न कोपयेवाचार्यं
आत्मानमपि न कोपयेत् ।
बुद्धोपघातो न स्यात्
त स्यात् सोऽग्नयेवकः ॥

आचार्यं कुपितं ज्ञात्वा
प्रातीतिकेन प्रसादयेत् ।
विध्यापयेत् प्रांजलिपुटः
वदेन्न पुनरिति च ॥

धर्माजितं च व्यवहारं
बुद्धं राचरितं सदा ।
तमाचरन् व्यवहारं
गहं नाभिगच्छति ॥

मनोगतं वाक्यगतं
ज्ञात्वा आचार्यस्य तु ।
तत् परिगृह्य वाचा
कर्मणोपपादयेत् ॥

वित्तोऽबोदितो नित्यं
मित्रं भवति सुबोदितः ।
यथोपविष्टं सुकृतं
कृत्यानि करोति सदा ॥

ज्ञात्वा नमति मेधावी
लोके कीर्तिस्तस्य जायते ।
भवति कृत्यानां शरणं
भूतानां जगती यथा ॥

४०—शिष्य आचार्य को कुपित न करे ।
स्वयं भी कुपित न हो । आचार्य का उपपात
करनेवाला न हो । उनका छिद्रान्वेयी न हो ।

४१—आचार्य को कुपित हुए जानकर
विनीत शिष्य प्रतीतिकारक (या 'प्रीतिकेन'
—प्रीतिकारक) वचनों से उन्हें प्रसन्न करे ।
हाथ जोड़कर उन्हें शान्त करे और यों कहे कि
"मैं पुनः ऐसा नहीं करूँगा ।"

४२—जो व्यवहार धर्म से अजित हुआ
है, जिसका तत्त्वज्ञ आचार्यों ने सदा आचरण
किया है, उस व्यवहार का आचरण करता
हुआ मुनि कहीं भी गहों को प्राप्त नहीं होता ।

४३—आचार्य के मनोगत और वाक्य-
गत भावों को जानकर, उनको वाणी से ग्रहण
करे और कार्यरूप में परिणत करे ।

४४—जो विनय से प्रख्यात होता है वह
सदा विना प्रेरणा दिए ही कार्य करने में प्रवृत्त
होता है । वह अछड़े प्रेरक मनु की प्रेरणा
पाकर सुरंत ही उनके उपदेशानुसार भलीभाँति
कार्य सम्पन्न कर लेता है ।

४५—मेधावी मुनि उक्त विनय-गुहति
को जानकर उसे क्रियान्वित करने में तत्पर हो
जाता है । उसकी लोक में कीर्ति होती है ।
जिस प्रकार पृथ्वी प्राणियों के लिए आधार
होती है, उसी प्रकार वह धर्माचरण करनेवालों
के लिए आधार होता है ।

१. मेहावी (वृ०पा०) ।

२. मणोवहं वक्कगहं (वृ०पा०, वृ०) ।

३. खिप्पं (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

४. पसन्ने धासयं करे (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

५. किस्सी (अ, ड, वृ०) ; किस्ती सि (ऋ०) ।

विणय-सुर्य (विनय-श्रुत)

१५

अभ्ययन १ : श्लोक ४६-४८

४६—पूज्या जस्स पसीयन्ति
संबुद्धा पुव्वसंयुया ।
पसन्ता^१ लाभइस्सन्ति
विउलं अट्ठियं सुयं ॥

पूज्या यस्य प्रसीदन्ति
सम्बुद्धाः पूर्व-संस्तुताः ।
प्रसन्ता लाभयिष्यन्ति
विपुलमाधिकं श्रुतम् ॥

४६—उत्तरत तत्त्ववित् पूज्य आचार्य
प्रसन्न होते हैं । अभ्ययन-काल से पूर्व ही वे
उसके विनय-समाचरण से परिचित होते हैं ।
वे प्रसन्न होकर उसे मोक्ष के हेतुभूत विपुल
श्रुत-ज्ञान का लाभ करवाते हैं ।

४७—स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसाए
‘मणोरुई’^२ चिट्ठइ कम्म-संपया ।^३
तवोसमायासिमाहिंसुंढे
महज्जुई पंच-वयाइं पालिया ॥

स पूज्य-शास्त्रः सुविनीत-संशयः
मनोरुचिस्तिष्ठति कर्म-सम्पदा ।
तपःसामाचारीसमाधिसंयुतः
महाश्रुतिः पंच व्रतानि पालयित्वा ॥

४७—वह पूज्य-शास्त्र होता है—उसके
शास्त्रीय ज्ञान का बहुत सम्मान होता है ।
उसके सारे संशय मिट जाते हैं । वह श्रुत के
मन को भाता है । वह कर्म-सम्पदा (दस
विध सामाचारी) से सम्पन्न होकर रहता है ।
वह तप-समाधारी और समाधि से सज्जित होता
है । पाँच भ्रंशव्रतों का पालनकर महान्
तेजस्वी हो जाता है ।

४८—स देव-गन्धर्व-मनुस्सपूइए
चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं ।
सिद्धो वा भवति शाश्वतः
देवो वा अप्परए महिड्डिए ॥
—त्ति वेमि ।

स देवान्सर्वमनुष्यपूजितः
स्पृक्षत्वा देहं मलपङ्कपुर्वकम् ।
सिद्धो वा भवति शाश्वतः
देवो वात्परज्जा महर्द्धिकः ॥

—इति ब्रवीमि

४८—देव, गन्धर्व और मनुष्यों से पूजित
वह विनीत शिष्य मल और पंक से बने हुए
शरीर को त्यागकर या तो शाश्वत सिद्ध होता
है या अल्पकर्म वाला महर्द्धिक देव होता है—
ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. संपन्ना (वृ० पा०) ।

२. मनोरुह (वृ० पा०) ।

३. मणोरुह चिट्ठइ कम्म-संपयं (वृ० पा०); मणिच्छिर्व संकममुत्तमं गथा (मायार्जुनीयाः) ।

उक्त प्रकारों में से कोई कष्ट जो स्वयं इच्छानुसार भेला जाता है, वह काय-व्लेश है और जो इच्छा के बिना प्राप्त होता है, वह परीषद् है ।^१

काय-व्लेश के अभ्यास से शारीरिक दुःख को सहने की क्षमता, शारीरिक सुखों के प्रति अनाकांक्षा और कथित जिन-ज्ञासन की प्रभावना भी होती है ।^२ परीषद् सहन करने से स्वीकृत अहिंसा आदि धर्मों की सुरक्षा होती है ।

इस अध्ययन के अनुसार परीषद् बाईस हैं :—

१—क्षुधा	१३—आक्रोश
२—पिपासा	१४—वध
३—शीत	१४—याचना
४—उष्ण	१५—अलाम
५—दंश-मशक	१६—रोग
६—अथेल	१७—तृण-स्पर्श
७—अरति	१८—जहृ
८—स्त्री	१९—सत्कार-पुरस्कार
९—चर्या	२०—प्रज्ञा
१०—निषद्या	२१—अज्ञान
११—शठ्या	२२—दर्शन

तत्त्वार्थसूत्र में भी इनकी संख्या बाईस ही है ।^३

इनमें दर्शन-परीषद् और प्रज्ञा-परीषद्—ये दो मार्ग से अध्ययन में सहायक होते हैं और शेष बीस परीषद् निर्जरा के लिये होते हैं ।^४

समवायांग (समवाय २२) में अन्तिम तीन परीषद्ओं का क्रम उत्तराध्ययन से भिन्न है :—

उत्तराध्ययन	समवायांग
१—प्रज्ञा	१—ज्ञान
२—अज्ञान	२—दर्शन
३—दर्शन	३—प्रज्ञा

अभयदेवसूदि ने समवायांग की वृत्ति में अज्ञान-परीषद् का कथित श्रुति के रूप में उल्लेख किया है ।

तत्त्वार्थसूत्र (६।६) में ‘अथेल’ के स्थान पर ‘नाग्न्य’-परीषद् का उल्लेख है और दर्शन-परीषद् के स्थान पर अदर्शन-परीषद् का । प्रवचनसारोद्धार (गाथा ६८६) में दर्शन-परीषद् के स्थान में सम्यक्त्व-परीषद् माना गया है । दर्शन और सम्यक्त्व यह केवल शब्द-भेद है ।

१—तत्त्वार्थवृत्ति (भूतसागरीय), पृष्ठ ३०१, सू० ६।१७ की वृत्ति : बहृच्छया समागतः परीषद्; स्वयमेव कृतः कायक्लेशः ।

२—यही : शरीरदुःखसहनार्थं शरीरदुःखानभिवाग्न्यार्थं जिनवर्मप्रभावनाधर्मग्न्य ।

३—तत्त्वार्थसूत्र, ६।६ : क्षुत्पिपासाशीतोष्णवृषसपकनाग्न्यातिस्त्रीष्यानिषद्याश्लेषायाचनाऽकाशरोगमृगस्पर्शमक्षसत्कारपुरुष्कार-प्रज्ञाज्ञानादृशानि ।

४—प्रवचनसारोद्धार, पत्र १६२, गा० ६८६ की वृत्ति : तत्र सागोच्यवयाधं दृश्यंपरीषद्ः प्रज्ञापरीषद्भवच, शेषा विषयनिर्जराधर्म्य ।

द्वितीयं अध्ययनम् :
परीसह-प्रविभक्ती

द्वितीयं अध्ययनम् :
परीसह-प्रविभक्तिः

अथैक ओर नाग्न्य मे थोड़ा अर्थ-मेद भी है। अथैक का अर्थ है—(१) नग्नता और (२) फटे हुए या अल्प-मूल्य वाले वस्त्र^१।

तत्त्वार्थसूत्र श्रुतसागरीय वृत्ति मे प्रज्ञा-परीषद् और अदर्शन-परीषद् की व्याख्या मूल उत्तराध्ययन के प्रज्ञा और दर्शन-परीषद् से भिन्न है। उत्तराध्ययन (२।४२) में जो अज्ञान-परीषद् की व्याख्या है, वह श्रुतसागरीय में अदर्शन की व्याख्या है।

तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुतसागरीय) पृ० २९५

प्रज्ञा-परीषद् :—

यो मुनिस्तत्कथ्यकरणच्छन्दोलंकारसारसाहित्याध्यात्म-
शास्त्रादिनिधानांगपूर्वप्रकीर्णकनिपुणोऽपि सन् ज्ञानमर्ब-
न करोति, समाप्रतः प्रवादिनः सिंहशब्दश्रवणान् बभगवा
इव वलायन्ते xxx मर्ब नाधत्ते स मुनिः प्रज्ञापरीषद्ब्रह्मविजयो
भवति ।

अर्थ : जो मुनि तर्क, व्याकरण, साहित्य, छन्द, अलंकार, अध्यात्मशास्त्र आदि विद्याओं मे निपुण होने पर भी ज्ञान का मर्ब नहीं करता है तथा जो इस बात का धर्मैव नहीं करता है कि प्रज्ञादी मेरे सामने से उसी प्रकार भाग जाते हैं जिस प्रकार सिंह के शब्द को सुनकर हाथी भाग जाते हैं, उस मुनि के प्रज्ञा-परीषद् जय होता है।

अदर्शन-परीषद्—

यो मुनिः xxx चिरवीक्षितोऽपि तन्नेत्रं न क्षिप्तयति
अद्यापि समातिशयबदबोधनं न सङ्गम्यते उत्कृष्टश्रुतसावि-
श्विधाविना किल प्रालिहर्ष्यविरोधाः प्राबुधंभवन्ति, इति श्रुति-
मिथ्या वतन्ते दोषेयं निष्फला श्रवणारण्यं फलम् एव वतन्ते
इति सम्प्रदर्शनविशुद्धिसन्निधानादेव न मनसि करोति
सत्यं मुनेरदर्शनपरीषद्ब्रह्मविजयो भवतीत्यवसानोऽयम् ।

अर्थ :—चिर दीक्षित होने पर भी अवधिज्ञान या ऋद्धि आदि को प्राप्ति न होने पर जो मुनि विचार नहीं करता है कि यह दीक्षा निष्फल है, तर्कों का धारण करना व्यर्थ है इत्यादि, उस मुनि के अदर्शन-परीषद् जय होता है।

उत्तराध्ययन अ० २

प्रज्ञा-परीषद् :—

से नूनं मए पुण्वं, कम्माऽणाणफला कइ।
जेणाहं नाभिज्जणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥४०॥
अहं पक्खा उइज्जंति, कम्माऽणाणफलाकइ।
एवधससि अप्पाणं, णञ्चा कम्मविवागयं ॥४१॥

अर्थ :—निश्चय ही मैंने पूर्व काल में अज्ञान-रूपी फल देने वाले कर्म किये हैं। उन्हीं के कारण मैं किसी से कुछ पूछे जान पर भी कुछ नहीं जानता—उत्तर देना नहीं जानता। पहले किये हुए अज्ञान-रूप फल देने वाले कर्म पकने के पश्चात् उदय में आते हैं। इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर आत्मा को आश्वासन दे।

दर्शन-परीषद् :—

एतत्थि नूनं परे लोए, इइइ वाधि तवस्सिणो।
अबुवा वच्चिओमिस्सि, इइ भिक्खू ण चिन्नेए ॥४४॥
अभू जिणा अत्थि जिणा, अबुवाधि भवस्सइ।
मुसं ते एवमाहुंसु, इति भिक्खू न चित्तेए ॥४५॥

अर्थ :—निश्चय ही परलोक नहीं है, तपस्वी को ऋद्धि भी नहीं है, अथवा मैं ठगा गया हूँ—भिक्खू ऐसा चिन्तन न करे। जिन हृदये थे, जिन हैं और जिन होंगे—ऐसा जो कहते हैं—वे झूठ बोलते हैं—भिक्खू ऐसा चिन्तन न करे।

१—प्रबन्धनसारीदार, पृष्ठ १६३, गा० ६८५ की वृत्ति : वेल्क्य असाधो अथैक जिनकापिकादीनां अन्येषां तु वतीनां भिन्नं स्फुटितं अल्पमूल्यं च वेल्क्यपथेषुमुच्यते।

आर्यसुख

उत्तराध्ययन के इस दूसरे अध्ययन में मुनि के परीषद्ओं का निरूपण है : कर्म-प्रवाद पूर्व के १७ वें प्राभृत में परीषद्ओं का नय और उदाहरण-सहित निरूपण है। वही यहाँ उद्धृत किया गया है; यह निर्युक्तिकार का अभिमत है।^१ दशकालिक के सभी अध्ययन जिस प्रकार पूर्वों से उद्धृत हैं उसी प्रकार उत्तराध्ययन का यह अध्ययन भी उद्धृत है।

जो सहा जाता है उसे कहते हैं परीषद्। सहने के दो प्रयोजन हैं : (१) मार्गाध्ययन और (२) निर्जरा। स्वीकृत मार्ग से च्युत न होने के लिये और निर्जरा—कर्मों को क्षीण करने के लिये कुछ सहा जाता है।^२

भगवान् महावीर की धर्म-प्ररूपणा के दो मुख्य अंग हैं—अहिंसा और कष्ट-सहिष्णुता।^३ कष्ट सहने का अर्थ शरीर, इन्द्रिय और मन को पीड़ित करना नहीं, किन्तु अहिंसा आदि धर्मों की आराधना को सुस्थिर बनाये रखना है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है :—

सुतेण भाविं पाणं, दुहे जादे विणस्सदि।

तम्हा जहाबलं जोई, अप्पा दुक्खेहि भावए ॥^४

अर्थात् सुख से भावित ज्ञान दुःख उत्पन्न होने पर नष्ट हो जाता है; इसलिये योगी को यथाशक्ति अपने-आपको दुःख से भावित करना चाहिये।

इसका अर्थ काया को वलेण देना नहीं है। यद्यपि एक सीमित अर्थ में काय-वलेण भी तप रूप में स्वीकृत है किन्तु परीषद् और काय-वलेण एक नहीं हैं। काय-वलेण आसन करने, त्रीष्म-श्रतु में आत्मापना लेने, वर्षा-श्रतु में तटमूल में निवास करने, शीत-श्रतु में अपावृत स्थान में सोने और नाना प्रकार की प्रतिमाओं को स्वीकार करने, न सुजलाने, शरीर की विमूढान न करने के अर्थ में स्वीकृत है।^५

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ६६ : कम्मप्पवायणुव्वे सत्तरसे पाहुब्बमि जं खत्तं।

सणयं सोदाहरणं सं वेव इहपि गाचव्वं ॥

२—उत्तराध्ययन, ६६ : मार्गाध्ययननिर्जराय परिषोद्वयाः परीषदाः।

३—सुवकृतांग १।२।१।१४ : पुणिषा कुलिषं व लेव्वं कियए देहमणासणा इह।

अविहिंसामेव पणवए अणुधम्मो मुणिणा पवेहओ ॥

वृत्ति—विविधा हिंसा विहिंसा न विहिंसा अविहिंसा। सामेव प्रकर्षेण ब्रजेत्, अहिंसाप्रधानो भवेदित्यर्थः अनुगतो—मोक्षं प्रत्यनुकूलो धर्मोऽनुधर्मः असार्वहिंसाकक्षणः परीषदोपसर्गसहनकक्षणरच धर्मो 'मुनिना' सर्वक्षेप 'प्रवेदितः' कथित इति।

४—अष्टपादुब, मोक्ष प्राभृत ६२।

५—(क) उत्तराध्ययन ३।५।७ :

ठाणा बीरासणाईया जीवस्स उ छावावहा।

दग्गा ओहा धरिणंमिंस्स कोपकिंस्स तंभादिंयं ॥

(ख) औपपातिक, सूत्र १६ : से कि सं कायकिंसे १,२ अणेगविहे पणत्ते, तंजहा—ठाणाहितिए ठाणाइए उक्कड्ढाभासणिए, तंभादिंयं बीरासणिए वेसकिंजे दूधंयंउ कडंउसाई आयायए अयाउउउउ अउउउउउ अउउउउउ संभवीवपीकिंमिंविनुसविण्णुव्वके से सं कायकिंसे।

व्याख्याकारों ने सभी परीषद्ओं के साथ कथाएँ जोड़कर उन्हें सुबोध बनाया है। कथाओं का संकेत निर्युक्ति में भी प्राप्त है।

परीषद्-उत्पत्ति के कारण इस प्रकार बताये गये हैं^१ :—

परीषद्	उत्पत्ति के कारण कर्म	परीषद्	उत्पत्ति के कारण कर्म
१—प्रज्ञा	ज्ञानावरणीय	१२—क्षुधा	वेदनीय
२—अज्ञान	"	१३—पिपासा	"
३—अलाम	अन्तराय	१४—शीत	"
४—अरति	चारित्र-मोहनीय	१५—उष्ण	"
५—अथेल	"	१६—दंश-मशक	"
६—इन्द्रो	"	१७—चर्या	"
७—निषद्या	"	१८—शय्या	"
८—याचना	"	१९—वध	"
९—आक्रोश	"	२०—रोग	"
१०—सत्कार-पुरस्कार	"	२१—मृण-स्पर्श	"
११—दर्शन	दर्शन-मोहनीय	२२—जल	"

ये सभी परीषद् नीचें गुणस्थान तक हो सकते हैं। दशवें गुणस्थान में चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले अरति आदि सात परीषद् तथा दर्शन-मोहनीय से उत्पन्न दर्शन-परीषद् को छोड़कर शेष चौदह परीषद् होते हैं। छद्मस्थ वीतराग अर्थात् ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि में भी ये ही चौदह परीषद् हो सकते हैं। केवली में मात्र वेदनीय-कर्म के उदय से होने वाले ग्यारह परीषद् पाये जाते हैं^२।

तत्त्वार्थसूत्र में एक साथ उन्नीस परीषद् माने हैं। जैसे—शीत और उष्ण में से कोई एक होता है। शय्या-परीषद् के होने पर निषद्या और चर्या-परीषद् नहीं होते। निषद्या-परीषद् होने पर शय्या और चर्या-परीषद् नहीं होते।^३

१—उत्तराख्ययन विर्युक्ति, गाथा ७३-८८ :

गाथावरणे वेष्ट मोहमय अन्तरादृष्ट वेध । एषुंषुं बाधीसं परीसहा हुंति गाधन्वा ॥
पन्नाम्नापरिसहा गाणावरणमि हुंति हुन्नेष्ट । इक्षो व अतराए अलाहपरीसहो होइ ॥
अरई अथेल इत्थी निसीहिवा जाधणा व अक्कोते । सत्कारपुरस्कारे चरित्तमोहिं सत्तेष्ट ॥
अरई हुणुंछाए पुंवेव अथस्स वेव मागत्स । कोहस्स व कोहस्स व उवण परीसहा सत्त ॥
दंसणमोहिं दंसणपरीसहो निषससो भवे इक्को । सेसा परीसहा खलु इक्कारस वेधणीज्जमि ॥
पवेव आणुपुब्बी चरिया सिस्सा वहे व (व) रोगे व । तण्हासज्जकमेव व इक्कारस वेधणीज्जमि ॥

२—बह्वी, गाथा ७८ ।

३—(क) तत्त्वार्थसूत्र, ६।१७ : एकादशो मात्स्या युगपदेकस्मिन्वेकान्तविहतिः ।

(क) तत्त्वार्थसूत्र (भूतसागरीय), पृ० २६६ : वीरोप्यपरीषद्बोधोमये अन्यतरो भवति वीतयुग्मो वा । कव्यापरीषद्हे सति निषद्याचयं न भवतः निषद्यापरीषद्हे मत्पाचयं ही न भवतः, चर्यापरीषद्हे शय्यानिषधे ही न भवतः । इति त्रयाणामसत्त्वमये एकान्तविहतिरेकस्मिन् युगपद् भवति ।

अज्ञान-परीष्कृ :-

निरहुगमि बिरओ, मेहुणाओ सुसंभो ।

ओ सक्कं नाभिजाणामि, धम्मं कल्लाण पावणं ॥४२॥

तवोबहुणमायाय, पडिमं पडिबज्जओ ।

एवंपि मे बिहरओ, छउमं ण गियट्ठि ॥४३॥

अर्थ :- मैं मैपुन से निवृत्त हुआ, इन्द्रिय और

मन का मैंने संवरण किया—यह सब निरर्थक है ।

क्योंकि धर्म कल्याणकारी है या पापकारी—यह मैं साक्षात् नहीं जानता ।

तपस्या और उपाधान को स्वीकार करता हूँ,

प्रतिमा का पालन करता हूँ—इस प्रकार विशेष चर्या

से विहरण करने पर भी मेरा छद्म (ज्ञानाकर्षणादि कर्म) निवर्तित नहीं हो रहा है—ऐसा चिन्तन न करे ।

मूलाधार में विधिकिरसा के दो भेद किये हैं—(१) व्रथ-विधिकिरसा और (२) भाव-विधिकिरसा । भाव-विधिकिरसा के अन्तर्गत बार्हस परीषद्ओं का उल्लेख हुआ है । उनमें अरति के स्थान पर अरति-रति, याचना के स्थान पर अयाचना और दर्शन के स्थान पर अदर्शन-परीषद् है ।^१

इन बार्हस परीषद्ओं के स्वरूप के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कई परीषद् सामान्य व्यक्तियों के लिये नहीं थे । वे जिनकल्प-प्रतिमा को स्वीकार करने वाले विशेष संहनन और धृति-युक्त मुनियों के लिये थे । ज्ञानत्या-चार्य ने भी इस ओर संकेत किया है । उनके अनुसार अचेल-परीषद् (जहाँ हम अचेल का अर्थ नग्नता करते हैं) जिनकल्पी मुनियों के लिये तथा ऐसे स्थविरकल्पी मुनियों के लिये ब्राह्म है, जिन्हें वस्त्र मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, जिन के पास वस्त्रों का अभाव है, जिनके वस्त्र जीण हो गये हैं अथवा जो वर्षा आदि के बिना वस्त्र-धारण नहीं कर सकते^२ और पुणस्परी-परीषद् केवल जिनकल्पी मुनियों के लिये ब्राह्म है^३ ।

प्रवचनसारोद्धार की टीका में सर्वथा नग्न रहना तथा धिकिरसा न कराना, केवल जिनकल्पी मुनि के लिये ही बताया है^४ ।

१—मूलाधार, ४१७२, ७३ : बुद्धयहा सीबुयहा दंसमसथमचेळभाओ य ।

अरदि रदि इत्थि चरिथा णिसीविवा तेज्ज अब्बोसो ॥

वधजायणं अलाहो रोग तणप्फास जल्लसक्कारो ।

तह वेव एणपरिसह अण्णाणमर्सणं खमणं ॥

२—बुद्धवृत्ति, पत्र ६२, ६३ : जिनकल्पप्रतिपत्तौ स्थविरकल्पेऽपि दुर्लभत्वस्यादौ वा सर्वथा चेष्टाभावेन त्वति वा चेत्ते बिना वर्षादिनिमित्तम-
प्रावरणेन शीर्णादिवस्त्रता वा 'अचेलक' इति अवस्थेऽपि भवति ।

३—वही, पत्र १२२ : जिनकल्पिकापेक्षं वेतव, स्थविरकल्पिकारण सापेक्षसंयमत्वासेवेतेऽपि ।

४—(क) प्रवचनसारोद्धार, पत्र १६३ : , मा० ६८६ की वृत्ति (उद्धरण के लिये देखिये पृष्ठ २१ पाठ-०११) ।

(ख) वही, पत्र १६४ : मा० ६८६ की वृत्ति : उद्धरकासपशासादिके सत्यपि य गच्छनिर्गता जिनकल्पिकाद्यधिकिरसाविधापने प्रवर्तन्ते ।

बौद्ध-भिक्षु-काय-वलेन को महत्त्व नहीं देते किन्तु परीषद्-सङ्घन की स्थिति को वे भी अस्वीकार नहीं करते । स्वयं महात्मा बुद्ध ने कहा है—“मुनि शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, वात, आतप, दंश और सरीसृप का सामना कर खंग-विषाण की तरह अकेला विहरण करे ।”^१

आचारोंग निर्युक्ति में परीषद् के दो विभाग हैं^२ :—

१—शीत—मन्द परिणाम वाले । जैसे—स्त्री-परीषद् और सत्कार-परीषद् । ये दो अनुकूल परीषद् हैं ।

२—उष्ण—तीव्र परिणाम वाले । शेष बौद्ध । ये प्रतिकूल परीषद् हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन में परीषदों के विवेचन रूप में मुनि-चर्या का बहुत हो महत्त्वपूर्ण निरूपण हुआ है ।

१—इतिनिपात, उरगवग्ग, ३।१८ : सीसं च उरहं च क्षुधं पिपासं, वातासपे वंशसिरसिपे च ।

सम्भामिपेतामि अभिसंभविस्वा, एको चरे क्षमपिसाणकप्पो ॥

२—आचारोंग निर्युक्ति, गाथा २०२, २०३ : इत्थी सक्कार परिस्सहा च. दो भाव-सीषका-पद ।

तेसा-भीसं उवहा, परीसहा इति गाथम्भा ॥

जे तिण्णप्परिजामा, परीसहा ते भवन्ति उवहाड ।

जे अण्णप्परिजामा, परीसहा ते अणे सीषा ॥

वीथं अज्ज्ञमणं : द्वितीय अध्वयन परीसह-पविभत्ती : परीषह-प्रविभक्तिः

मूल

सू० १—सुर्यं मे, आउसं ! तेणं
भगवया एवमक्खायं—

इह खलु बावीसं परीसहा
समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं
पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा,
जिच्चा, अभिभूय, भिक्खायरियाए^१
परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा^२ ।

संस्कृत छाया

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता
एवमाख्यातम्—

इह खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परित्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्त्येत ।

हिन्दी अनुवाद

सू० १—आयुष्मन् ! मैंने सुना है भगवान्
ने इस प्रकार कहा—निर्बन्ध-प्रवचन में बाईस
परीषह होते हैं, जो कश्यप-गोत्रीय श्रमण
भगवान् महावीर के द्वारा प्रवेदित हैं, जिन्हें
मुनकर, जानकर, अम्यास के द्वारा परिचितकर,
पराजितकर, भिक्षा-चर्या के लिए पर्यटन करता
हुआ मुनि उनसे स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं
होता ।

सू० २—कयरे ते खलु बावीसं
परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं
कासवेणं पवेइया ? जे भिक्खू सोच्चा,
नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खा-
यरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो
विहन्नेज्जा ।

कतरे ते खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिताः ? यान् भिक्षुः श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परित्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्त्येत ।

सू० २—वे बाईस परीषह कौन से हैं जो
कश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के
द्वारा प्रवेदित हैं ? जिन्हें मुनकर, जानकर,
अम्यास के द्वारा परिचितकर, पराजितकर,
भिक्षा-चर्या के लिए पर्यटन करता हुआ मुनि
उनसे स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं होता ।

सू० ३—इमे ते खलु बावीसं
परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं
कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा,
नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खा-
यरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो
विहन्नेज्जा, तं जहा—

इमे ते खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परित्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्त्येत । तद्यथा—

सू० ३—वे बाईस परीषह ये हैं, जो
कश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा
प्रवेदित हैं, जिन्हें मुनकर, जानकर, अम्यास
के द्वारा परिचितकर, पराजितकर, भिक्षाचर्या
के लिए पर्यटन करता हुआ मुनि उनसे स्पृष्ट
होने पर विचलित नहीं होता । जैसे—

१. भिक्खुपरियाए (बु०); भिक्षापरियाए (बु०पा०) ।

२. विनिहन्नेज्जा (बु०) ।

१. दिगिच्छा-परीसहे, २. पिवासा-
परीसहे, ३. सीय-परीसहे, ४. उसिण-
परीसहे, ५. दंस-मसय-परीसहे,
६. अचेल-परीसहे, ७. अरङ्ग-परीसहे,
८. इत्थी-परीसहे, ९. चरिया-
परीसहे, १०. निसीहिया-परीसहे,
११. सेज्जा-परीसहे, १२. अकोस'-
परीसहे, १३. वह-परीसहे,
१४. जायणा-परीसहे, १५. अलाभ-
परीसहे, १६. रोग-परीसहे,
१७. तणफास-परीसहे, १८. जङ्ग-
परीसहे, १९. सक्कारपुरस्कार-परीसहे,
२०. पन्ना-परीसहे, २१. अन्नाण-
परीसहे, २२. दंसण-परीसहे ।

१—परीसहाणं पविभत्ती
कासवेणं पवेइया ।
तं भे उदाहरिस्सामि
आणपुड्वि मुणेह मे ॥

(१) दिगिच्छा-परीसहे

२—दिगिच्छा-परिगए^१ देहे
तवस्सी भिक्खु धामवं ।
न छिन्दे न छिन्दावए
न पए न पयावए ॥

३—काली-पर्वीङ्ग-सङ्कासे
किसे धमणि-संतए ।
मायन्ने असण-माणस्स
अदीण-मणसो चरे ॥

१. क्षुधा-परीषहः, २. पिवासा-
परीषहः, ३. शीत-परीषहः, ४. उष्ण-
परीषहः, ५. दंस-मसक-परीषहः,
६. अचेल-परीषहः, ७. अरति-परीषहः,
८. स्त्री-परीषहः, ९. चर्या-परीषहः,
१०. निषीषिका-परीषहः, ११. शय्या-
परीषहः, १२. आक्रोश-परीषहः,
१३. वध-परीषहः, १४. याचना-परीषहः,
१५. अलाभ-परीषहः, १६. रोग-परीषहः,
१७. तृण-स्पर्श-परीषहः, १८. जङ्गल-
परीषहः, १९. सत्कार-पुरस्कार-परीषहः,
२०. प्रज्ञा-परीषहः, २१. अज्ञान-परीषहः,
२२. वर्शन-परीषहः ।

परीषहाणां प्रविभक्तिः
काश्येन प्रवेदिता ।
तां भवतामुदाहरिष्यामि
आनुपूर्व्यां शृणुत मे ॥

(१) क्षुधा-परीषहः

क्षुधापरिगते देहे
तपस्वी भिक्षुः स्थामवान् ।
न छिन्द्यान् न छेदयेत्
न पचेत् न पाचयेत् ॥

काली-पर्वीङ्ग-सङ्कासे
कुशो धमणि-सन्ततः ।
मात्रज्ञोऽज्ञानपानयोः
अदीनमनाश्चरेत् ॥

१. क्षुधा-परीषहः, २. पिवासा-परीषहः,
३. शीत-परीषहः, ४. उष्ण-परीषहः,
५. दंस-मसक-परीषहः, ६. अचेल-परीषहः,
७. अरति-परीषहः, ८. स्त्री-परीषहः,
९. चर्या-परीषहः, १०. निपद्या-परीषहः,
११. शय्या-परीषहः, १२. आक्रोश-परीषहः,
१३. वध-परीषहः, १४. याचना-परीषहः,
१५. अलाभ-परीषहः, १६. रोग-परीषहः,
१७. तृण-स्पर्श-परीषहः, १८. जङ्गल-परीषहः,
१९. सत्कार-पुरस्कार-परीषहः, २०. प्रज्ञा-परीषहः,
२१. अज्ञान-परीषहः, २२. वर्शन-परीषहः ।

१—परीषहों का जो विभाग कश्यप-
गोत्रीय भगवान् महावीर के द्वारा प्रवेदिन या
प्ररूपित है, उसे मैं क्रमवार ब्रह्मा हूँ । तु
मझे सुन ।

(१) क्षुधा-परीषहः

०—देह में क्षुधा व्याप्त होने पर तपस्वी
और प्राणवान् भिक्षु कल आदि का छेदन न
करे, न कराए । उन्हें न पकाए और न पकावाए ।

३—शरीर के अंग मूल से मूलकर काक-
जंघा नामक तृण जैसे दुर्बल हो जायें, शरीर
कुश हो जाय, धमनियों का बाँधा भर रह
जाय तो भी आहार-पानी की मर्यादा को
जानने वाला साधु अदीनभाव से विहरण
करे ।

१. उक्कोस (अ, ऋ०) ।

२. = परिषावेण (वृ०); = परितोषेण (वृ०); = परिगते (वृ० पा०) ।

(२) पिपासा-परीषद्

४—तओ पुटो पिपासाए
दोगुंछो लज्ज-संजए^१ ।
सीओदगं न सेविज्जा
वियडस्सेसणं चरे ॥

५—छिन्नावागमु पथ्यसु
आउरे सुपिपासिए^२ ।
परिसक्कमुहेऽदीणे^३
'तं तितिकवे परीसहं'^४ ॥

(३) मीय-परीषद्

६—चरन्तं विरयं लहं
सीयं फसड एगया ।
'नाडवेलं मुणी गच्छे
मांवाणं जिणसासणं'^५ ॥

७—न मे निवारणं अत्थि
छविताणं न विज्जई ।
अहं तु अग्निं सेवामि
इइ भिक्खू न चिन्तए ॥

(४) उष्ण-परीषद्

८—उसिण-परियावेणं
परिदाहेण तज्जिए ।
धिमु वा परियावेणं
सायं नो परिदेवेण ॥

(२) पिपासा-परीषद्

ततः स्पृष्टः पिपासया
जगुप्सो लज्जासंयतः ।
शीतोदकं न सेवेन
विकृतस्येषणाय चरेत् ॥

छिन्नापातेषु पथिषु
आतुरः सुपिपासितः ।
परिशुक्कमुखोऽदीनः
तं तितिक्षेत परीषहम् ॥

(३) मीत-परीषद्

चरन्तं विरतं ह्यर्थं
शीतं स्पृशति एकदा ।
नातिशैलं मुनिगच्छेत्
श्रुत्वा जिनशासनम् ॥

न मे निवारणमस्ति
छविमाणं न विद्यते ।
अहं तु अग्निं सेवे
इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥

(४) उष्ण-परीषद्

उष्ण-परितापेन
परिदाहेन तर्जितः ।
ग्रीष्मे वा परितापेन
सातं नो परिदेवेत् ॥

(२) पिपासा-परीषद्

४—असमय मे घृणा करने वाला,
लज्जावान् संयमी साधु व्यास मे पीड़ित होने
पर सचित् पानी का सेवन न करे, किन्तु
प्राप्तुक जल की एपणा करे ।

५—निजं मार्ग में जाते समय व्यास से
अत्यंत आकुल हो जाने पर, मुंह मुल जाने
पर भी साधु अदीनभाव से व्यास के परीषह
को सहन करे ।

(३) मीत-परीषद्

६—विचरते हुए विरत और कदा शरीर
वाले साधु को शीत-शत्रु में मदी सताती है ।
फिर भी वह जिन-शासन को मुनकर (आगम
के उपदेश को ध्यान में रखकर) स्वाध्याय
आदि की सेवा (अथवा मर्वाद) का अति-
क्रमण न करे ।

७—शीत से प्रताड़ित होने पर मुनि
ऐसा न सोचे—मेरे पास दांत-निवारक घर
आदि नहीं हैं और छविमाण (वस्त्र, कम्मल
आदि) भी नहीं है, इसलिए मैं अग्नि का
सेवन करूँ ।

(४) उष्ण-परीषद्

८—गर्म धूल आदि के परिताप, स्वेद,
मैल या व्यास के दाह अथवा ग्रीष्म-कालीन
सूर्य के परिताप से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी
मुनि मुख के लिए विलाप न करे—आकुल-
व्याकुल न बने ।

१. लज्जसंजमे (वृ० वृ०); लज्जासंजए, लज्जसंजमे (वृ० पा०); लज्जसंजतं (वृ० पा०) ।

२. छपिपासिए (अ); छपिपासए (वृ०) ।

३. ० सुददीणे (अ, छ०); ० सुदोदीणे (वृ०) ।

४. सख्यतो य परिषए (वृ० पा०) ।

५. नाडवेलं विहम्मिज्जा, पावविट्ठी विहम्मह (वृ०, वृ०); नाडवेलं मुणी गच्छे, सोक्वाणं जिणसासणं (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

९—उष्णाहितत्ते मेहावी
सिणाणं 'नो वि पत्यए'^१ ।
गायं नो परिसिञ्जेज्जा^२
न वीएज्जा य अप्पयं ॥

(५) दंश-मशक-परीषहः

१०—पुट्टो य दं-समसएहि
समरेव^३ महामुणी ।
नागो संगाम-सीसे वा
सुरो अभिहणे परं ॥

११—न संतसे न वारेज्जा
मणं पि न पओसए ।
उवेह^४ न हणे पाणे
भुञ्जन्ते मंस-सोणियं ॥

(६) अचेल-परीषहः

१२—परिजुण्णेहि वत्थेहि
होक्खामि ति अचेलए ।
अदुवा सचेलए होक्खं
इइ भिक्खू न चिन्तए ॥

१३—'एगयाऽचेलए होइ'^५
सचेले यावि एगया ।
एयं धम्महिंयं नच्चा
नाणी नो परिदेवए ॥

उष्णाहितहो मेहावी
स्नानं नापि प्राश्येत् ।
गात्रं नो परिसिञ्जेत्
न वीज्येज्जात्मकम् ॥

(५) दंश-मशक-परीषहः

स्पृष्टश्च दंश-मशकैः
सम एव महामुनिः ।
नागः संग्राम-शीर्षे इव
सुरोऽभिहन्यात् परम् ॥

न संश्रसेत् न वारयेत्
मनोऽपि न प्रवृषयेत् ।
उपेक्षेत न हन्यात् प्राणान्
भुञ्जानान्मांसशोणितम् ॥

(६) अचेल-परीषहः

“परिजोर्णबंधं
भविष्यामीत्यञ्जेलकः ।
अथवा सचेलको भविष्यामि”
इति भिभुन चिन्तयेत् ॥

एकदाऽञ्जेलको अबति
सचेलश्चापि एकदा ।
एतद् धर्म-हितं ज्ञात्वा
ज्ञानी नो परिदेवेत् ॥

६—गर्मी से बसित होने पर भी
मेहावी मुनि स्नान की इच्छा न करे । शरीर
को गीला न करे । पंखे से शरीर पर हवा
न ले ।

(५) दंश-मशक-परीषहः

१०—डोंस और मच्छरों का उपद्रव होने
पर भी महामुनि समभाव में रहे, क्रोध आदि
का बेशे हो दमन करे जैसे युद्ध के अप्रभाग में
रहा हुआ मूर हाथी बाणों को नहीं गिनता
हुआ शत्रुओं का हनन करता है ।

११—भिक्षु उन दंश-मशकों से संश्रस्त
न हो, उन्हें हटाए नहीं । मन में भी उनके
प्रति द्वेष न जाए । मांस और रक्त खाने-
पीने पर भी उनकी उपेक्षा करे, किन्तु उनका
हनन न करे ।

(६) अचेल-परीषहः

१२—“वस्त्र फट गए हैं इसलिए मैं अचेल
हो जाऊंगा अथवा वस्त्र मिलने पर फिर मैं
सचेल हो जाऊंगा”—मुनि ऐसा न सोचे ।
(दीन और हर्ष दोनों प्रकार का भाव न जाए ।)

१३—जिनकल्प-दशा में अथवा वस्त्र न
मिलने पर मुनि अचेलक भी होता है और
स्वविरकल्प-दशा में वह सचेलक भी होता
है । अवस्था-भेद के अनुसार इन दोनों (सचेल-
लव और अचेललव) को यति-धर्म के लिए
हितकर जानकर ज्ञानी मुनि वस्त्र न मिलने पर
दीन न बने ।

१. नाभिपत्यए (वृ०, बृ०) ; णोऽपि पत्यए (वृ० पा०) ।

२. परिसिञ्जेज्जा (उ, बृ०) ।

३. सम एव (अ) ।

४. उवेह (उ, वृ०, बृ०) ।

५. एगया अचेलो अबति (वृ०) ; अचेलए खयं होइ (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

(७) अरति-परीषदः

१४—गामानुषागं रीयन्तं
अणगारं अकिंचनं ।
अरई अणुप्पविसे
तं तितिक्खे परीसहं ॥

(७) अरति-परीषदः

ग्रामानुषागं रीयमाणं
अणगारमकिञ्चनम् ।
अरतिरनुप्रविशेत्
तं तितिक्षेत परीषहम् ॥

(७) अरति-परीषदः

१४—एक गाँव से दूतारे गाँव में विहार करते हुए अकिंचन मुनि के चित्त में अरति उत्पन्न हो जाय तो उस परीषद को वह सहन करे ।

१५—अरइं पिठ्ठओ किच्च
विरए आय-रक्खिए ।
धम्मारामे निरारम्भे
उवसन्ते मुणी चरे ॥

अरितं पृष्ठतः कृत्वा
विरतः आत्मरक्षितः ।
धर्मारामो निरारम्भः
उपशान्तो मुनिश्चरे ॥

१५—हिंसा आदि से विरत रहने वाला, आत्मा की रक्षा करने वाला, धर्म में रमण करने वाला, असत्-प्रवृत्ति से दूर रहने वाला, उपशान्त मुनि अरति को दूर कर विहरण करे ।

(८) उल्लू-परीषदः

१६—संगो एस मणुस्साणं
जाओ लोममि इत्थिओ ।
जस्स एया परिन्नाया
मुकडं तस्स सामण्णं ॥

(८) उल्लू-परीषदः

संग एव मनुष्याणां
या लोके स्त्रियः ।
यस्यैताः परिज्ञाताः
सुकृतं तस्य धामण्यम् ॥

(८) उल्लू-परीषदः

१६—“लोक में जो स्त्रियाँ हैं, वे मनुष्यों के लिए संग हैं—लेख हैं”—जो इस बात को जान लेता है, उसका धामण्य सफल है ।

१७—एवमादाय^१ मेधावी
‘पंकभूया उ इत्थिओ’^२ ।
नो ताहि विणिहन्नेज्जा^३
चरेज्जत्तगवेसए ॥

एवमादाय मेधावी
पंकभूता स्त्रियः ।
नो तार्थिधिनिहन्त्यात्
चरेदात्मगवेषकः ॥

१७—“स्त्रियाँ बहुवचारी के लिए दल-दल के समान हैं”—यह जानकर मेधावी मुनि उनसे अपने समय-जीवन को घान न होने दे, किन्तु आत्मा की गवेषणा करता हुआ विचरण करे ।

(९) चर्या-परीषदः

१८—एग एव^४ चरे लाढे
अभिभूय परीसहे ।
गामे वा नगरे वावि
निगमे वा रायहाणिए ॥

(९) चर्या-परीषदः

एक एव चरेत् लाढः
अभिभूय परीषहान् ।
ग्रामे वा नगरे वापि
निगमे वा राजधान्याम् ॥

(९) चर्या-परीषदः

१८—संयम के लिए जीवन-निर्वाह करने वाला मुनि परीषदों को जीतकर गाँव में या नगर में, निगम में या राजधानी में अकेला (राय-देव रहित होकर) विचरण करे ।

१. छकर (षु० पा०) ।

२. एवमाणाव (षु०, षु०) ; एवमादाय (षु० पा०, षु० पा०) ।

३. जहा एया लहुस्सगा (षु० पा०, षु० पा०) ।

४. विहम्भेज्जा (अ, छ०) ।

क. एगो (षु० पा०) ; एगे (षु० पा०) ।

उत्तरज्भयणं (उत्तराध्ययन)

३०

अध्ययन २ : श्लोक १६-२३

१९—असमाणो चरे भिक्षु
नेव^१ कुञ्जा परिग्राहं ।
असंसक्तो गृहस्थेहि
अणिणो परिच्छेत् ॥

(१०) निसीहिवा-परीगहे

२०—सुसाणे सुन्तगारे वा
रुक्ख-मूले व एगओ ।
अकुक्कुओ निसोएज्जा
न य वित्तसए परं ॥

२१—तत्थ से चिट्ठमाणस्स^२
उवसग्गाभिघारा^३ ।
संका-भीओ न गच्छेज्जा
उट्ठित्ता^४ अन्नमासणं ॥

(११) सेज्जा-परीगहे

२२—उच्चावयाहि सेज्जाहि
तवस्सी भिक्षु धामवं ।
नाइवेरं विहन्नेज्जा
पावदिट्ठी विहन्ने^५ ॥

२३—पइरिक्कुवस्सयं लद्धं
कळाणं अहु पावगं ।
‘किमेगरायं करिस्सइ’^५
एवं तत्थ उहियसग्ग ॥

असमानश्चरेद् भिक्षुः
नेव कुन्यान् परिग्रहम् ।
असंसक्तो गृहस्थैः
अनिकेतः परिच्छेत् ॥

(१०) निषीधिका-परीगहे.

असमाने शून्यागारे वा
वृक्ष-मूले वा एककः ।
अकुक्कुवः निषीवेत्
न च विश्रासयेत् परम् ॥

तत्र तस्य तिष्ठतः
उपसर्गा अभिघारयेयुः ।
शंकाभीतो न गच्छेत्
उत्थायान्पदासनम् ॥

(११) शय्या-परीगहे

उच्चावचाभिः शय्याभिः
तपस्वी भिक्षुः स्थासवान् ।
नातिथेन विहन्त्यात्
पापट्टिर्विहन्ति ॥

प्रतिरिक्तमुपाश्रयं लब्ध्वा
कल्याणं अथवा पापकम् ।
किमेकरात्रं करिष्यति
एवं तत्राध्यासीत ॥

१६—मुनि असहस्र (असाधारण) होकर
बिहार करे । परिग्रह (समत्वभाव) न करे ।
गृहस्थों में निवृत्ति रहे । अनिकेत (गृह-मुक्त)
गह्ता हुआ परिग्रह करे ।

(१०) निषया परीगहे

२०—राग-द्वेष रहित मुनि चपलताओं
का वर्जन करता हुआ अशान्त, शून्य गृह अथवा
वृक्ष के मूल में बैठे । दूसरों को त्रास न दे ।

२१—वहाँ बैठे हुए उसे उपसर्ग प्राप्त हों
तो वह यह चिन्तित करे—‘‘य मेरा क्या अनिष्ट
करेंगे ?’’ किन्तु अपकार की शंका में डरकर
वहाँ से उठ दूसरे स्थान पर न जाए ।

(११) शय्या-परीगहे

२२—तपस्वी और प्राणवान् भिक्षु उत्कृष्ट
या निम्नष्ट उपाश्रय को पाकर मर्यादा का अति-
क्रमण न करे (हर्ष या शोक न लागे) । जो
पापट्टि होता है, वह मर्यादा का अतिक्रमण
कर डालता है ।

२३ अतिरिक्त (एकान्त) उपाश्रय—मूले
फिर वह सुन्दर हो या अमुन्दर—को
पाकर ‘‘एक रात में क्या होना जाना है’’—
ऐसा सोचकर रहे, जो भी मूल-वृक्ष हो उसे
सहन करे ।

१. नेव (अ) ।

२. अल्लमाणस्स (वृ० पा०, वृ०) ।

३. उवसग्गाभयं भवे (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

४. उट्ठित्ता (उ) ।

५. किं मज्ज एग रायाए (वृ०) ।

परीषद्-प्रविभक्ति

३१

अध्ययन २ : श्लोक २४-२६

(१०) अक्रोश-परीषद्

२४—अक्रोसेज परो भिक्षुं
न तेसि पडिसंजले ।
सरिसो होइ बालाणं
तम्हा भिक्षू न संजले ॥

२५—सोच्चाणं फरुसा भासा
दारुणा गाम-कण्टका ।
तुसिणीओ उवेहेज्जा
न ताओ मणसीकरे ॥

(१३) बध-परीषद्

२६—हुओ न संजले भिक्षू
मणं पि न पओसेए ।
तितिक्वं परमं नच्चा
भिक्षु-‘धम्मं विचित्ते’ ॥

२७—समणं संजयं दन्तं
हुणेज्जा कोइ कत्थई ।
नत्थि जीवस्स नामु त्ति
‘एवं पेहेज्ज संजए’ ॥

(१४) जायणा-परीषद्

२८—दुकरं खलु भो निच्चं
अणगारस्स भिक्षुणो ।
सर्वं से जाइयं होइ
नत्थि किंचि अजाइयं ॥

२९—गोचराप्रविष्टस्स
पाणी नो सुप्पसारए ।
सेओ अगार-वासु त्ति
इइ भिक्षू न चिन्ताए ॥

(१२) आक्रोश-परीषद्

आक्रोशेत् परो भिक्षुं
न तस्मै प्रतिसंजलेत् ।
सदृशो भवति बालानां
तस्माद् भिक्षुनं संजलेत् ॥

श्रुत्वा परुषाः भाषाः

दारुणाः ग्राम-कण्टकाः ।

तृणोक्त उपेक्षेत

न ताः मनसि कर्ष्यात् ॥

(१३) बध-परीषद्

हतो न संज्वलेद् भिक्षुः
मनोऽपि न प्रवृष्येत् ।
तितिक्षां परमं ज्ञात्वा
भिक्षु-धर्मं विचिन्तयेत् ॥

श्रमणं संयतं दान्तं

हृन्त्यान् कोऽपि कुत्रचित् ।

“नास्ति औषध्य नाश इति”

एवं प्रेक्षेत संयतः ॥

(१४) याचना-परीषद्

दुष्करं खलु भो ! नित्यम्
अनगारस्य भिक्षोः ।
सर्वं तस्य याचितं भवति
नास्ति किंचिदयाचितम् ॥

गोचराप्रविष्टस्य

पाणिः नो सुप्रसारकः ।

“श्रेयानगारवास इति”

इति भिक्षुनं चिन्तयेत् ॥

(१२) आक्रोश-परीषद्

२४—कोई मनुष्य भिक्षु को गाली दे तो
बहु उसके प्रति क्रोध न करे । क्रोध करने वाला
भिक्षु बालकों (अज्ञानियों) के सदृश हो जाता
है, इसलिए भिक्षु क्रोध न करे ।

२५—मृनि परुष, दारुण और ग्राम-कंटक

(प्रतिकूल) भाषा को सुनकर मीन रहता हुआ

उसकी उपेक्षा करे, उसे मन में न लाए ।

(१३) बध-परीषद्

२६—पीटे जानेपर भी मुनि क्रोध न
करे । मन को भी दूषित न करे । क्षमा को
परम साधन जानकर मुनि-धर्म का चिन्तन
करे ।

२७—संयत और दान्त श्रमण को कोई

कहीं पीटे तो वह “आत्मा का नाश नहीं

होता”—ऐसा चिन्तन करे, पर प्रनिषोध की

भावना न लाए ।

(१४) याचना-परीषद्

२८—अरे ! अनगार भिक्षु की यह वर्या

किन्तनी कठिन है कि उसे सब कुछ याचना से

मिलता है । उसके पास अयाचित कुछ भी

नहीं होता ।

२९—गोचराग्र में प्रविष्ट मुनि के लिए

ग्रहस्थों के सामने हाथ फेराना सरल नहीं

है । अतः “ग्रहवास ही श्रेय है”—मुनि ऐसा

चिन्तन न करे ।

१. धम्मंमि चित्ताए (५०) ; धम्मं व चित्ताए (५० पा०) ।

२. न तं पेहे असावुचं (५०) ; न ता पेहे असावुचं (५०) ; एवं पीहेज्ज संजए (५० पा०) ; न च पेहे असावुचं, पठन्ति च—एवं पेहिज्ज संजते (५० पा०) ।

उत्तरज्जयसं (उत्तराध्यायन)

३२

अध्ययन २ : श्लोक ३०-३४

(१५) अलाभ-परीषदः

३०—परमु बासमेसेज्जा
भोयणे परिणिट्ठिए ।
लद्धे पिण्डे अलद्धे वा
नाणुतप्पेज्ज संजए* ॥

३१—अज्जेवाहं न लब्भामि
अवि लाभो सुए सिया ।
जो एवं पडिसंविक्खे*
अलाभो तं न तज्जए ॥

(१६) रोग-परीषदः

३२—नच्चा उप्पइयं दुक्खं
वेयणाए दुहट्ठिए ।
अदोणो थावए पल्लं
पुट्ठो तत्थहियासए ॥

३३—तेगिच्छं नाभिनन्देज्जा
संचिकखत्तगवेसए ।
एवं* खु तस्स सामणं
जं न कुज्जा न कारवे ॥

(१७) तण फास-परीषदः

३४—अचेलगस्स लूहस्स
संजयस्स तवस्सिणो ।
तणेमु सयमाणस्स
हुज्जा गाय-विराहुणा ॥

(१५) अलाभ-परीषदः

परमुपासमेवयेत्
भोजने परिमिच्छिये ।
लब्धे पिण्डे अलब्धे वा
नाणुतप्पेत् संयतः ॥

अद्यं वाहं न लभे
अपि लाभः इवः स्यात् ।
य एवं प्रतिसंबोद्धते
अलाभस्तं न तर्जयति ॥

(१६) रोग-परीषदः

जातबोत्पत्तिकं दुःखं
वेदनया दुःखास्ति ।
अदीनः स्यापयेत् प्रज्ञां
स्पृष्टस्तत्राध्यासीत ॥

चिकित्सां नाभिनन्देत्
संतिष्ठेद्वात्ममवेयकः ।
एतन् ललु तस्य ध्यामण्यं
यन्तं कुर्यात् न कारयेत् ॥

(१७) तृण-स्पर्श-परीषदः

अचेलकस्य रुक्षस्य
संयतस्य तपस्विनः ।
तृणेषु शयित्व
अनेन याव-क्विसंयता ॥

(१५) अलाभ-परीषदः

३०—एहस्यो के धर भोजन तैयार हो
जानेपर मुनि उसकी एषणा करे । आहार
बोड़ा मिलने या न मिलने पर संयंसी मुनि
अनुताप न करे ।

३१—“आज मुझे भिक्षा नहीं मिली,
परन्तु संभव है कल मिल जाय” —जो इस
प्रकार सोचना है, उसे अलाभ नहीं सनाता ।

(१६) रोग-परीषदः

३२—रोग को उत्पन्न हुआ जानकर तथा
वेदना से पीड़ित होने पर दीन न बने । व्याधि
से विचलित होती हुई प्रजा को स्थिर बनाए
और प्राप्त दुःख को समभाव से सहन करे ।

३३—आत्म-मवेयक मृनि चिकित्सा का
अनुमोदन न करे । रोग ही जानेपर समाधि
पूर्वक रहे । उसका ध्यामण्य यही है कि वह
रोग उत्पन्न होने पर भी चिकित्सा न करे, न
कराए ।

(१७) तृण-स्पर्श-परीषदः

३४—अचेलक और रुक्ष शरीर वाले
संयत तपस्वी के पास पर सोने से शरीर में
चुभन होने है ।

१. पंडिए (भ) ।

२. पडिसंविक्खे (छ०) ।

३. एवं (अ. ड, झ०, ञ०) ; एवं (ह० पा०) ।

३५—आयवस्स निवाणं
अउला^१ हवइ वेयणा ।
एवं^२ नखा न सेवन्ति
तत्तुजं^३ तण-तज्जिता ॥

(१८) जल्ल-परीषद्दे

३६—किल्लिमाए^४ मेहावी
पंकेण व रएण वा ।
धिमु वा परितावेण
सायं नो परिदेव ॥

३७—वेएज्ज^५ निज्जरा-पेही
'आरियं धम्मणुत्तर'^६ ।
जाव सरीर-भेड त्ति
जल्लं काण्ण धाग'^७ ॥

(१९) नत्कार-पुरस्कार-परीषद्दे

३८—अभिवायणमवमुट्ठाणं
सामी कुज्जा निमल्लणं ।
जे ताढं पडिसेवन्ति
न तेसि पीहए मुणी ॥

३९—अणुकाई अण्णिच्छे
'अन्नाएसी अलोनुए ।
'रसेसु' नाणुगिज्जेज्जा'^८
'नाणुतपेज्ज पन्नव'^९ ॥

आतपस्य निपातेन
अतुला भवति वेवना ।
एवं ज्ञात्वा न सेवन्ते
तंतुजं तृणतजिताः ॥

(१८) जल्ल-परीषद्दे

किल्लिन्-गात्रो मेधावी
पंकेन वा रजसा वा ।
शीघ्रे वा परितापेन
सातं नो परिदेवेत् ॥

वेदयेन् निर्जरापेक्षो
आर्यं धर्ममनुत्तरम् ।
यावत् शरीर-भेद इति
'अल्ल' कायेन धारयेत् ॥

(१९) नत्कार-पुरस्कार-परीषद्दे

अभिवादनमभ्युत्थान
स्वामी कुर्यान् निमन्त्रणम् ।
ये तानि प्रतिसेवन्ते
न तेभ्यः स्पृहयेन्मुनिः ॥

अणु-कषायः अल्पेच्छः
अज्ञातैषी अलोल्पः ।
रसेषु नानुगृह्येत्
नानुत्प्रेतं प्रज्ञावान् ॥

३५ गर्मी पत्रने से अतुल वेवना होती है—यह जानकर भी तृण से पीड़ित मुनि वस्त्र का सेवन नहीं करते ।

(१८) जल्ल-परीषद्दे

३६—मैल, रज वा शीघ्र के परिताप से शरीर के किल्ल (मीला या पकिल) हो जाने पर मेधावी मुनि मुख के लिए बिलाप न करे ।

३७—निर्जरापी मुनि अनुत्तर आर्य-धर्म (श्रुत-चारित्र्य-धर्म) को पाकर देह-विनाश पयेल काया पर 'जल्ल' (खेद-जनिम मैल) को धारण कर और तज्जनिम परीषद् को सहन करे ।

(१९) नत्कार-पुरस्कार-परीषद्दे

३८—जो राजा आदि के द्वारा किए गए अभिवादन, सरकार अथवा निमन्त्रण का सेवन करते हैं, उनकी इच्छा न करे—उन्हें धन्य न माने ।

३९—अल्प कषाय वाला, अल्प इच्छा वाला, अज्ञान कुलों से भिक्षा लेने वाला, अलोल्प भिक्षु, रसों में युक्त न हो । प्रज्ञावान् मुनि दूसरों को सम्मानित देन अनुत्पाप न करे ।

१. तिउला (चू०, वृ०) ; अतुला, विपुला वा (वृ०पा०) ।

२. एयं (अ, उ, ऋ, वृ०) ; एवं (वृ०पा०) ।

३. तन्तयं (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

४. किल्लिमाए (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

५. वेयज्ज (अ); वेहंतो, वेहज्ज, वेयंतो (वृ०पा०) ।

६. आचारियं धम्ममणुत्तरं (स०); आरियं धम्ममणुत्तरं (अ) ।

७. उल्लव्हे (वृ०, वृ०पा०); धारए (वृ०पा०) ।

८. रसेसु (वृ०) ।

९. रसिएल नातिगिज्जेज्ज (वृ०); रसेल नाण० (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

१०. न तेसि पीहए मुणी (वृ०, वृ०); नाणुत्पेज्ज पन्नव (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

उत्तरज्भयणं (उत्तराध्ययन)

३४

अध्ययन २ : श्लोक ४०-४४

(२०) पन्ना-परीपहः

४०—से नूनं मए पुव्वं
कम्माणाणफला कडा ।
जेणाहं नाभिजाणामि
पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥

(२०) प्रज्ञा-परीपहः

“अथ नूनं मया पूर्व
कर्माण्यज्ञानफलानि कृतानि ।
येनाहं नाभिजानामि
पुष्टः केनचित्, क्वचित् ॥

(२०) प्रज्ञा-परीपहः

४०—“निश्चय ही मैंने पूर्व काल में
अज्ञानरूप-फल देनेवाले कर्म किए हैं । उन्हीं
के कारण मैं किसी के कुछ पूछे जानेपर भी
कुछ नहीं जानता—उत्तर देना नहीं जानता ।

४१—अह पच्छा उडज्जन्ति
कम्माणाणफला कडा ।
एवमस्सासि अप्पाणं
नच्चा कम्म-विवागयं ॥

“अथपश्चादुदीर्यन्ते
कर्माण्यज्ञानफलानि कृतानि ।
एवमाश्वासयात्मानं
शास्त्वा कर्म-विपाककम् ॥

४१—“पहले किए हुए, अज्ञानरूप-फल
देनेवाले कर्म पकने के पश्चात् उदय में आते
हैं”—इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर
मैं आत्मा को आश्वासन दे ।

(२१) अन्नाण-परीपहः

४२—निरुडगम्मि विरओ
मेहुणाओ सुसंवुडो ।
जो सक्खं' नाभिजाणामि
धम्मं कळाण पावगं ॥

(२१) अज्ञान-परीपहः

“निरर्थके विरतः
मैथुनात्सुखं वृतः ।
यः साक्षान्नाभिजानामि
धर्मं कल्याणं पापकम् ॥

(२१) अज्ञान-परीपहः
४२—“मैं मैथुन में निवृत्त हुआ,
द्वन्द्व और मन का मैंने संवर्ण किया—यह
मन निरर्थक है । क्योंकि धर्म कल्याणकारी है
या पापकारी—यह मैं माथात् नहीं जानता ।

४३—तवोवहानमादाय

पडिमं पडिवज्जओ' ।
एवं पि विहरओ मे
छउमं न नियट्ठई ॥

“तप-उपधानमादाय
प्रतिमां प्रतिपद्यमानस्य ।
एवमपि विहरतो मे
छद्म न निवर्तते ॥”

४३—“तपस्या और उपधान को स्वीकार
करता हूँ, प्रतिमा का पालन करता हूँ—इस
प्रकार विनोद चर्या में बिहरण करनेपर भी मेरा
छद्म (ज्ञानावरणादि कर्म) निवर्तित नहीं हो
रहा है”—ऐसा चिन्तन न करे ।

(२२) दंमण-परीपहः

४४—नत्थि नूनं परे लोए
इड्ढी वावि तवस्सिणो ।
अदुवा वंचिओ मि ति
इइ भिक्खू न चित्ताए ॥

(२२) दर्शन-परीपहः

“नास्ति नूनं परोलोकः
ऋद्धं वापि तपस्विनः ।
अथवा बहिर्लतोऽस्मि”
इति मिथुनं चिन्तयेत् ॥

(२२) दर्शन-परीपहः
४४—“निश्चय ही परलोक नहीं है,
तपस्वी की ऋद्धि भी नहीं है, अथवा मैं ठगा
गया हूँ”—मिथुन ऐसा चिन्तन न करे ।

१. सप्तकथं (च०) ।

२. पडिवज्जिम (बु०) ; पडिवज्जओ (बु० वा०) ।

परीषद्-प्रविभक्ति

३५

अध्ययन २ : श्लोक ४५-४६

४५—अभू जिणा अत्थि जिणा
अदुवावि भविस्सई ।
मुसं ते एवमाहंसु
इइ भिक्खू न चिन्तए ॥

“अभूषन् जिनाः सन्ति जिनाः
अथवा अपि भविष्यन्ति ।
श्रुत्वा ते एवमाहुः”
इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥

४५—“जिन हुए थे, जिन हैं और जिन
होंगे—ऐसा जो कहते हैं वे झूठ बोलते हैं”—
भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे ।

४६—एए परीसहा सव्वे
कासवेण पवेइया ।
जे भिक्खू न विहन्नेज्जा
पुट्ठो केणइ कण्हई ॥
—त्ति वेमि ।

एते परीषहाः सर्वे
काश्यपेन प्रवेदिताः ।
यान् भिक्षुर्न विहन्येत
स्पृष्टः केनापि क्वचित् ॥
—इति श्रुत्वा

४६—इन सभी परीषहों का कश्यप-
गोत्रीय भगवान् महावीर ने प्रवर्णन किया है ।
इन्हें जानकर, इनमें से किसी के द्वारा कहीं
भी स्पृष्ट होने पर मुनि इनसे पराजित (अभि-
भूत) न हो ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।



१०—अज्ञान—मिथ्या धारणा ।

११—व्यापेय—कार्य-बहुलता से उत्पन्न व्याकुलता ।

१२—कुतूहल—इन्द्रजाल, खेल, नाटक आदि देखने की आकुलता ।

१३—रमण—क्रीड़ा-परायणता ।

(३) श्रद्धा—

भगवान् ने कहा—“सद्भा परम-दुःखम्” —श्रद्धा परम-दुर्लभ है । जीवन-विकास का यह मूल सूत्र है । जिसका दृष्टिकोण मिथ्या होता है वह सद्भाव को सुनकर भी उसमें श्रद्धा नहीं करता और श्रुत या अश्रुत असद्भाव में उसको श्रद्धा हो जाती है । श्रद्धा मिथ्या-दृष्टि के लिए दुर्लभ है । जिसका दृष्टिकोण सम्यग् होता है वह सद्भाव को सुनकर उसमें श्रद्धा करता है किन्तु अपने अज्ञानवश या गुण के वियोग से असद्भाव के प्रति भी उसकी श्रद्धा हो जाती है । इस प्रकार सम्यग्-दृष्टि के लिए भी श्रद्धा दुर्लभ है ।

शिष्य ने पूछा—“भते ! क्या सम्यग्-दृष्टि इतनी ऋजु प्रकृति के होते हैं जो गुण के कथन मात्र से असद्भाव के प्रति श्रद्धा कर लेते हैं ?”

आचार्य ने कहा—“आयुष्मन् ! ऐसा होता है । जमालि ने जब असद्भाव की प्रवृत्तियों को और अपने शिष्यों को उससे परिचित किया तो कुछ शिष्य उसमें श्रद्धान्वित हो गए ।”

इसलिए यह बहुत मार्मिक ढंग से कहा है कि—“श्रद्धा परम दुर्लभ है ।”

(४) तप-संयम में पुरुषार्थ—

निर्युक्तिकार ने संयम के आठ पर्यायवाची नाम बताए हैं—(१) दया, (२) संयम, (३) लज्जा, (४) जुगुप्सा, (५) अङ्गुलना, (६) तिलिप्ता, (७) अहिंसा और (८) क्षो ।

संयम के प्रति श्रद्धा होने पर भी सभी व्यक्ति उसमें पराक्रम नहीं कर पाते । जानना व श्रद्धा रखना एक वस्तु है और उसको क्रियान्वित करना दूसरी । इसमें संकल्प-बल, धृति, संतोष और अनुदविग्रता की अत्यन्त आवश्यकता होती है । जिनका बिल व्यासिम या व्यामूढ़ नहीं है, वे ही व्यक्ति संयम में प्रवृत्त हो सकते हैं ।

निर्युक्तिकार ने दुर्लभ अंगों का कुछ विस्तार किया है । उसके अनुसार मनुष्यता, आर्य क्षेत्र, उत्तम जाति, उत्तम कुल, सवांगपरिपुर्णता, नीरोगता, पूर्णायुष्य, परलोक-प्रवण बुद्धि, धर्म-अवण, धर्म-स्वीकरण, श्रद्धा और संयम—ये सब दुर्लभ हैं ।^१ मनुष्य-भव की दुर्लभता के दस दृष्टांत निर्युक्ति में उल्लिखित हैं ।^२

१—बृहद्ब्रति, पत्र १५१ : ननु किमेवविधा अपि केचिद्व्यन्तद्वज्जवः सम्भवेयुः? ये स्वयमागमाजुसारिमतोऽपि मुख्यदेशोऽन्वेषापि प्रतिपश्यन्, एवमेतत्, तथाहि—जमालिप्रभृतीनां निवृत्तानां शिष्यास्तद्वस्तियुक्तया स्वयमागमाजुसारिमतोऽपि मुख्यव्याप्तिप्रतिपत्तयः प्रतिपन्माः ।

२—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा १५८ : दया व संयमे लज्जा, जुगुप्साऽङ्गुलना इव ।

तितिक्षा व अहिंसा य, हिरिः पूगडिवा पथा ॥

३—वही, गाथा १५६ : माणुसं क्षिप्तं जाई, कुल रूबारोग आउथं बुद्धी ।

सवणुगाइ लखा, संजमो अ कोगसि दुल्हाइ ॥

४—वही, गाथा १६० : ब्रह्मण पासग धन्ने, जूए रणेण अ क्षमिण कक्के व ।

कम्म जगे परमाणं, वस दिट्ठंता मणुअल्लभे ॥

तद्वर्ग अन्वयः :
चाउरंगिज्जं

तृतीय अध्ययन :
चतुरङ्गीय.

अज्ञा की दुर्लभता बताने के लिए सात निहवों की कथाएँ दी गई हैं ।^१

भगवान् ने कहा—“सौंही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुज्जस्स बिह्वर्ह” —सरल व्यापक की शोधि होती है और धर्म सुद्ध आत्मा में ठहरता है । जहाँ सरलता है वहाँ सुद्धि है और जहाँ सुद्धि है वहाँ धर्म का निवास है । धर्म का फल आत्म-सुद्धि है । परन्तु धर्म की आराधना करने वाले के पुण्य का भी बन्ध होता है । देवयोनि से ज्युत हो जब पुनः मनुष्य बनता है तब वह दशांगवाली मनुष्ययोनि में आता है । श्लोक १७ और १८ में ये दस अंग निम्नोक्त कहे गये हैं—

१—कामस्कन्ध ।

६—नोदोगता की प्राप्ति ।

२—निर्त्रों की सुलभता ।

७—महाप्राज्ञता ।

३—बन्धुजनों का सुसंयोग ।

८—विनीतता ।

४—उखगोत्र की प्राप्ति ।

९—यशस्विता ।

५—रूप की प्राप्ति ।

१०—बलवता ।

इस अध्ययन के श्लोक १४ और १६ में आया हुआ ‘जक्ख’ (सं० यक्ष) शब्द भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ध्यान देने योग्य है । इसके अर्थ का अपभ्रंश हुआ है । आगम-काल में ‘यक्ष’ शब्द ‘देव’ अर्थ में प्रचलित था । कालानुक्रम से इसके अर्थ का ह्रास हुआ और यह आज भूत, पिशाच का-सा अर्थ देने लगा है ।

१—उत्तराध्ययन नियुक्ति, गाथा १६४-१६६ : बहुरथएवअवत्तसमुच्छ, दुगतिअवद्विगा चेव ।

एएसि निगमणं, बुच्छामि अहाणुपुच्छीए ॥

बहुरथ जमालिपभवा, जीवएसा य तीसगुत्ताओ ।

अव्वत्ताऽऽसाढाओ, सामुच्छेवाऽऽसमित्ताओ ॥

गंगाए दोकिरिया, छल्लुगा तेरासिआण उप्पसी ।

घेरा य गुट्टमाहिल, पुट्टमबद्धं परुवित्ति ॥

आस्त्य

अनुयोगद्वारा आगम में नामकरण के दस हेतु बतलाए गए हैं। उनमें एक हेतु 'आदान-पद' है। इस अध्ययन का नाम उसी आदान-पद (प्रथम पद) के कारण 'चतुरङ्गीय' हुआ है।^१ इस अध्ययन में (१) मनुष्यता, (२) धर्म-श्रुति, (३) अज्ञा और (४) तप-संयम में पुरुषार्थ—इन चार अंगों की दुर्लभता का प्रतिपादन है। जीवन के ये चार प्रशस्त अंग—विभाग हैं। ये अंग प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा सहज प्राप्य नहीं हैं। चारों का एकत्र समाहार विरलों में पाया जाता है। जिनमें ये चारों नहीं पाए जाते वे धर्म की पूर्ण आराधना नहीं कर सकते। एक की भी कमी उनके जीवन में लंगड़ापन ला देती है। चारों अंगों की दुर्लभता निम्न विवेचन से प्रकट होगी।

(१) मनुष्यता—

आत्मा से परमात्मा बनने का एकमात्र अवसर मनुष्य-जन्म में प्राप्त होता है। तिर्यक जगत् में कश्चित् पूर्व संस्कारों से प्रेरित धर्माश्रयिता होती है, परन्तु वह अधूरी रहती है। देवता धर्म की पूरी आराधना नहीं कर पाते। वे विराट में ही अधिक समय गँवाते हैं। भ्रमण के लिए वे योग्य नहीं होते। नैरेयिक जीव दुःखों से प्रताड़ित होते हैं अतः उनका धार्मिक-विवेक प्रबुद्ध नहीं होता। मनुष्य का विवेक जागृत होता है। वह अति सुखी और अति दुःखी भी नहीं होता अतः वह धर्म की पूर्ण आराधना का उपयुक्त अधिकारी है।

(२) धर्म-श्रवण—

धर्म-श्रवण की लक्ष्प्रत्येक में नहीं होती। जिनका अन्तःकरण धार्मिक भावना से भावित होता है, वे मनुष्य धर्म-श्रवण में तत्पर रहते हैं। बहुल लोग दुर्लभतम मनुष्यत्व को पाकर भी धर्म सुनने का लाभ नहीं ले पाते। निर्युक्तिकार ने धर्म-श्रुति के १३ विघ्न बतलाए हैं^२—

१—आलस्य—अनुद्यम।

२—मोह—धरेलू धन्यों की व्यस्तता से उत्पन्न मूर्खता अथवा हेयोपादेय के विवेक का अभाव।

३—अवज्ञा या अवर्ण—धर्म-कथक के प्रति अवज्ञा या गह्रा का भाव।

४—स्तम्भ—जाति आदि का अहंकार।

५—क्रोध—धर्म-कथक के प्रति अप्रीति।

६—प्रमाद—निद्रा, विकथा आदि।

७—कृपणता—द्रव्य-व्यय का भय।

८—भय।

९—शोक—इष्ट-वियोग से उत्पन्न दुःख।

१—अनुयोगद्वारा, सूत्र १२० : से किं स आयाणपपणं ? .. चारंगिज्जं, असंखं, अहातस्सिपं, अहस्सं, अहस्सं... एहस्सं... से त आयाणपपणं।

२—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, पाया १६० : आकस्स मोहउक्कन्ना, यंमा कोहा वमोय किप्पिण्णा।

अथ सोमा अन्नाणा, वक्खेव कुब्बंका रमणा॥

तद्वयं अज्ज्ञमयणं : तृतीय अध्यायन

चाउरंगिज्जं : चतुरङ्गीयम्

मूल

१—चत्तारि परमंगाणि
दुल्लाणीह जन्तुणो^१ ।
माणुसत्तं सुई सद्धा
संजममि य वीरियं ॥

संस्कृत छाया

चत्वारि परमाङ्गानि
दुर्लभाणीह जन्तोः ।
मानुषत्वं श्रुतिः श्रद्धा
संयमे च वीर्यम् ॥

हिन्दी अनुवाद

१—हस्त संसार में प्राणियों के लिए चार
परम-अंग दुर्लभ हैं—मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा
और संयम में पराक्रम ।

२—समावन्नाण संसारे
नाणा-गोत्तासु जाइसु ।
कम्मा नाणा-विहा कट्ठु
पुढो^२ विस्संभिया पया ॥

समापन्नाः संसारे
नानागोत्रासु जातिषु ।
कर्मणि नानाविधानि कृत्वा
पुण्यं विज्ञबभूवः प्रजाः ॥

२—समारी जीव विविध प्रकार के कर्मों
का अर्जन कर विविध नाम वाली जातियों में
उत्पन्न हो, पुण्य-पुण्य रूप से समूचे विषय का
स्पर्श कर लेते हैं—सब जगह उत्पन्न हो
जाते हैं ।

३—एगया देवलोएसु
नरएसु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं
आहाकम्मेहि गच्छई ॥

एकदा देवलोकेषु
नरकेष्वप्येकदा ।
एकदा आसुरं कायं
यथाकर्मभिर्गच्छति ॥

३—जीव अपने कृत कर्मों के अनुसार
कभी देवलोक में, कभी नरक में और कभी
असुरों के निकाय में उत्पन्न होता है ।

४—एगया खत्तिओ होइ
तओ चण्डाल-बोक्खो ।
तओ कीड-पयंगो य
तओ कुन्धु-पिवीलिया ॥

एकदा क्षत्रियो भवति
ततश्चण्डालो 'बोक्खतः' ।
ततः कीटः पतद्भक्ष्य
ततः कण्डुः पिपीलिका ॥

४—वही जीव कभी क्षत्रिय होता है,
कभी चाण्डाल, कभी बोक्खत, कभी कीट,
कभी पतंगा, कभी कण्डु और कभी चींटी ।

१. देहिणो (बू० पा०, बू० पा०) ।

२. पुणो (बू० पा०) ।

५—एवमावट्ट-जोणीसु

पाणिणो कम्म-किब्बिसा ।

न निविज्जन्ति संसारे

‘सव्वट्ठेसु व’^१ खत्तिया ॥

६—कम्म-संगेहि

सम्मूढा

दुक्खिया

बहु-वेयणा ।

अमाणुसासु

जोणीसु

विणिहम्मन्ति

पाणिणो ॥

७—कम्माणं

तु

पहाणाए

आणुप्पवी

कयाइ उ ।

जीवा

सोहिमणुप्पत्ता

‘आययन्ति

मणुस्सय’^२ ॥

८—माणुस्सं

विग्गहं

लद्धं

सुई

धम्मस्स

दुल्लभा ।

जं

सोच्चा

पडिवज्जन्ति

तवं

खत्तिमहिंसयं ॥

९—आह्व

सवणं

लद्धं

सद्धा

परमदुल्लभा ।

सोच्चा

नेआउयं

मगं

बह्वे

परिभस्सई ॥

एवमावर्त-योनिषु

प्राणिनः कर्म-किंलिखाः ।

न निर्विद्यन्ते संसारे

सर्वाधिं लिख्य क्षत्रियाः ॥

कर्म-सङ्गः सम्मूढाः

दुःखिता बहु-वेदनाः ।

अमानुषीषु योनिषु

विनिहन्यन्ते प्राणिनः ॥

कर्मणः तु प्रहाण्या

आनुपूर्व्या कदाचित् तु ।

जीवाः शोचिमनुप्राप्ताः

आबधते मनुष्यताम् ॥

मानुष्यकं विग्रहं लब्ध्वा

श्रुतिर्धर्मस्य दुर्लभा ।

यं श्रुत्वा प्रतिपद्यन्ते

तपःशान्तिमहिंसताम् ॥

‘आहृत्य’ ध्वगं लब्ध्वा

श्रद्धा परम-दुर्लभा ।

श्रुत्वा नैर्घातुकं मार्गं

बहवः परिभ्रश्यन्ति ॥

५—जिस प्रकार क्षत्रिय लोग समस्त

अर्थों (काम-भोगों) को भोगते हुए भी निर्बन्ध को प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार कर्म-किंलिख (कर्म से अधम बने हुए) जीव योनि-चक्र में भ्रमण करते हुए भी संसार में निर्बन्ध नहीं पाते—उससे मुक्त होने की इच्छा नहीं करते ।

६—जो जीव कर्मों के संग से सम्मूढ़, दुःखित और अत्यन्त वेदना वाले हैं, वे अपने कृत कर्मों के द्वारा मनुष्येतर (नरक-तिर्यञ्च) योनियों में डूबे जाते हैं ।

७—काल-क्रम के अनुसार कदाचित् मनुष्य-जाति को रोकने वाले कर्मों का नाश हो जाता है । उससे श्रद्धा प्राप्त होती है । उससे जीव मनुष्यत्व को प्राप्त होते हैं ।

८—मनुष्य-शरीर प्राप्त होने पर भी उस धर्म की श्रुति दुर्लभ है जिसे मुनिकर जीव तप, धर्मा और अहिंसा को स्वीकार करते हैं ।

९—कदाचित् धर्म मुन लेने पर भी उसमें श्रद्धा होना परम दुर्लभ है । बहुत लोग मोक्ष की ओर ले जाने वाले मार्ग को मुनिकर भी उससे श्रद्धा हो जाते हैं ।

१. य (अ); वि (कृ०) ।

२. सव्वट्ठ इव (इ० पा०, वू० पा०) ।

३. जायन्ते मणुसतयं (वू० पा०) ।

१०—सुई च लङ् सङ् च
वीरियं पुण दुल्लं ।
बहवे रोयमाणा वि
'नो एणं' पडिवज्जए ॥

श्रुति व लङ्घ्या धडां व
वीर्यं पुनर्वल्लभम् ।
बहवो रोचमाना अपि
नो एतं प्रतिपद्यन्ते ॥

१०—श्रुति और धडा प्राप्त होने पर भी
संयम में वीर्य (पुरुषार्थ) होना अत्यन्त दुर्लभ
है । बहुत लोग संयम में रचि रखते हुए भी
उसे स्वीकार नहीं करते ।

११—माणुसत्तंमि आयाओ
जो धम्मं सोच्च सद्दे ।
तवस्सी वीरियं लङ्
संवुडे निद्धणे रयं ॥

मानुषत्वे आयातः
यो धर्मं श्रुत्वा धृढते ।
तपस्वी वीर्यं लङ्घ्या
संवृतो निर्धुनोति रजः ॥

११—मानुष्यत्व को प्राप्त कर जो धर्म
को सुनता है, उसमें धडा करता है, वह
तपस्वी संयम में पुरुषार्थ कर, संवृत हो, कर्म-
रजों को धुन डालता है ।

१२—“सोही उज्जुयभूयस्स
धम्मो सुद्धस्स चिद्धई ।
निब्बाणं परमं जाइ
'वय-सित्तं व्व' पावए ॥”^१

शोषिः ऋजुभूतस्य
धर्मः सुद्धस्य तिष्ठति ।
निर्वाणं परमं याति
घृत-सित्तः इव पावकः ॥

१२—शुद्धि उसे प्राप्त होती है, जो
ऋजुभूत होता है । धर्म उसमें ठहरता है जो
शुद्ध होता है । जिसमें धर्म ठहरता है वह घृत
से अभिषिक्त अग्नि की भाँति परम निर्वाण
(दीप्ति) को प्राप्त होता है ।

१३—विर्गिव^२ कम्मणो^३ हेउं
जसं संचिणु खन्तिए ।
पाढवं सरीरं हिच्चा
उड्डं पक्कमई दिसं ॥

वेविर्गिव कर्मणो हेतुं
यशः सञ्चिनु क्षान्त्या ।
पार्ष्ण्यं शरीरं हित्वा
उर्ध्वं प्रकामति दिशम् ॥

१३—कर्म के हेतु को दूर कर । क्षमा
से यश (संयम) का संघट्ट कर । ऐसा करने
वाला पार्ष्ण्य शरीर को छोड़कर उर्ध्व दिशा
(स्वर्ग या मोक्ष) की प्राप्त होता है ।

१४—विसालिसेहि सीलेहि
जक्खा उत्तर-उत्तरा ।
महासुक्का व दिप्पन्ता
मन्तन्ता अपुणच्चवं ॥

विस्तृष्टौ शीलैः
यक्षाः उत्तरोत्तराः ।
महाशुक्ला इव दीप्यमानाः
मन्यमाना अपुनश्च्यवन् ॥

१४—विविध प्रकार के शीलो की
आराधना करके जो देव कल्पों व उसके ऊपर
के देवलोकों की आयु का भोग करते हैं, वे
उत्तरोत्तर महाशुक्ल (चन्द्र-सूर्य) की तरह
दीप्तिमान् होते हैं । 'स्वर्ग' से पुनः च्यवन नहीं
होता' ऐसा मानते हैं ।

१. नो व णं (स, छ०, बु०) ।

२. व्वसत्तिव्व (उ); व्वसत्तिव्व (ऋ०, छ०,) ; व्वसित्ते व (बु०) ।

३. चड्डा संपर्ष लङ्, इहेव ताव भाषते ।

तेषते तेज-संपन्ने वय-सित्ते व पावपु ॥ (नागाजुनीयाः) ।

४. विर्गिवि (अ, आ) ; विर्गिवि (बु०) ; विर्गिवि (बु० पा०) ।

५. कम्मणो (उ, ऋ०) ।

१५—अपिया देवकामाणं
कामरूप-विउव्विणो ।
उड्ढं कप्पेसु विट्ठन्ति
पुव्वा वाससया वह् ॥

अपिता देवकामान्
कामरूपविकरणाः ।
ऊर्ध्वं कल्पेषु तिष्ठन्ति
पूर्वाणि वंशतानि ब्रूहि ॥

१५—वे देवी भोगों के लिए अपने आपको
अर्पित किए हुए रहते हैं । इच्छानुसार रूप बनाने
में समर्थ होते हैं तथा संकटों पूर्व-वर्षों तक—
असंख्य काल तक वहाँ रहते हैं ।

१६—तत्थ ठिच्चा जहाठाणं
जक्खा आउक्खए चुया ।
उवेन्ति माणुसं जोणि
से दसंगेऽभिजायई ॥

तत्र स्थित्वा यथास्थानं
यथा आयुःश्रेयश्च्युताः ।
उपयन्ति मानुषीं योनिं
स दशंगोऽभिजायते ॥

१६—वे देव उन कल्पों में अपनी शील-
आगमना के अनुरूप म्यानों में रहते हुए
आयु-क्षय होनेपर वहाँ से ज्युत होते हैं ।
फिर मनुष्य-योनि को प्राप्त होते हैं । वे वहाँ
दस अंगों वाली भोग सामग्री से युक्त होते हैं ।

१७—खेतं वत्थुं हिरणं च
पसवो दास-पोरुसं ।
चत्तारि काम-खत्थाणि
तत्थ से उववज्जई ॥

क्षेत्रं वास्तु हिरण्यञ्च
पशवो दास-पौरुषेयं ।
चत्वारः कामस्कन्धाः
तत्र स उपपद्यते ॥

१७—क्षेत्र, वास्तु, म्वर्ण, पशु और दास-
पौरुषेय—जहाँ ये चार काम-स्कन्ध होते हैं,
उन कुलों में वे उत्पन्न होते हैं ।

१८—मित्तवं नायवं^१ होड
उच्चागोए य वण्णवं ।
अप्पायंके महापन्ने
अभिजाए जसोवले ॥

मित्रवान् ज्ञातिमान् भवति,
उच्चैर्गोत्रश्च वर्णवान् ।
अल्पातङ्गः महाप्राज्ञः
अभिजातो यशस्वी बली ॥

१८—वे मित्रवान्, ज्ञातिमान्, उच्चगोत्र
वाले, वर्णवान्, नीरोग, महाप्राज्ञ, अभिजात,
यशस्वी और बलवान् होते हैं ।

१९—भोच्चा माणुस्सए भोए
अण्डिरूवे अहाउयं ।
पुव्वं विसुद्ध - सद्धमे
केवलं बोहि बुज्झिया ॥

भुक्त्वा मानुष्यकान् भोगान्
अप्रतिरूपान् यथायुः ।
पूर्वं विशुद्ध-सद्धर्मा
केवला बोधिं ब्रूयुषा ॥

१९—जीवन भर अनुपम मानवीय भोगों
को भोगकर, पूर्व-जन्म में विशुद्ध-सद्धर्मी (निदान
रक्षित तप करने वाले) होने के कारण वे विशुद्ध
बोधि का अनुभव करते हैं ।

२०—चउरंगं दुल्लहं मत्ता^२
संजमं पडिबज्जिया ।
तवसा धुयकम्मसे
सिद्धे हवइ सासए ॥
—त्ति वेमि ।

चतुरंगी दुर्लभा मत्वा
संजमं प्रतिपद्य ।
तपसा धृत-कर्मांगः
सिद्धो भवति शाश्वतः ॥
—इति ब्रवीमि

२०—वे उक्त चार अंगों को दुर्लभ
मानकर संजम को स्वीकार करते हैं । फिर
तपस्या से कर्म के सब अंशों को धुनकर शाश्वत
सिद्ध हो जाते हैं ।
ऐसा मैं—कहता हूँ ।

१. नाइव्वं (इ०); नाइवं (उ) ।

२. मत्ता (उ) ।

चतुर्थं अङ्गवर्णनं :
असंख्यं

चतुर्थे अङ्गवर्णनः
असंस्कृत

आत्मसूत्र

इस अध्ययन का नाम निर्युक्ति के अनुसार 'प्रमादाप्रमाद'^१ और समवायाङ्ग के अनुसार 'असंस्कृत' (प्रा० असंख्य) है।^२ निर्युक्तिकार का नामकरण अध्ययन में वर्णित विषय के आधार पर है और समवायाङ्ग का नामकरण आदानपद (प्रथमपद) के आधार पर है। इसका समर्थन अनुयोगद्वारा से भी होता है।^३

'जीवन असंस्कृत है—उसका संधान नहीं किया जा सकता, इसलिए व्यक्ति को प्रमाद नहीं करना चाहिए'—यहो इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है। जिन व्यक्तियों का जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण नहीं है, वे अन्य मिथ्या-धारणाओं में कैसकर मिथ्याभिनवेश को प्रश्रय देते हैं। सूत्रकार जीवन के प्रति जागरूक रहने की बलवती प्रेरणा देते हुए तथ्यों का प्रतिपादन करते हैं और मिथ्या-मान्यताओं का खण्डन करते हैं। वे मिथ्या-मान्यताएँ ये हैं—

१—यह माना जाता था कि धर्म बुढ़ापे में करना चाहिए, पहले नहीं।

भगवान् ने कहा—“धर्म करने के लिए सब काल उपयुक्त हैं, बुढ़ापे में कोई त्राण नहीं है।” (श्लो० १)

२—भारतीय जीवन की परिपूर्ण कल्पना में चार पुरुषार्थ माने गए हैं—काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष। अर्थ को येनकेन-प्रकारेण अजित करने की प्रेरणा दी जाती थी। लोग धन का त्राण मानते थे।

भगवान् ने कहा—“जो व्यक्ति अनुचित साधनों द्वारा धन का अर्जन करते हैं, वे धन को छोड़कर नरकमें जाते हैं। यहाँ या परभव में धन किसी का त्राण नहीं बन सकता। धन का वयामोह व्यक्ति को सही मार्ग पर जाने नहीं देता।” (श्लो० २, ५)

३—कई लोग यह मानते थे कि किए हुए कर्मों का फल परभव में ही मिलता है। कई मानते थे कि कर्मों का फल है ही नहीं।

भगवान् ने कहा—“किए हुए कर्मों को मोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता। कर्मों का फल इस जन्म में भी मिलता है और पर-जन्म में भी।” (श्लो० ३)

४—यह मान्यता थी कि एक व्यक्ति बहुतों के लिए कोई कर्म करता है तो उसका परिणाम वे सब भुगतते हैं।

भगवान् ने कहा—“संसारी प्राणी अपने बन्धुजनों के लिए जो साधारण कर्म करते हैं, उस कर्म के फल-भोग के समय वे बन्धुजन बन्धुना नहीं दिखाते, उसका भाग नहीं बँटाते।” (श्लो० ४)

५—यह माना जाता था कि साधना के लिए समूह विघ्न है। व्यक्ति को अकेले में साधना करनी चाहिए।

भगवान् ने कहा—“जो स्वतंत्र वृत्ति का त्याग कर गुरु के आश्रय में साधना करता है, वह मोक्ष पा लेता है।” (श्लो० ८)

१—उत्ताध्ययन निर्युक्ति, शाखा १८१: पंचविहो अ पमाओ इहमङ्गवर्णसि अपमाओ य।

वर्णिणञ्ज उ जम्हा त्तेण पमासप्पसायंति ॥

२—समवायाङ्ग, समवाय ३६: छत्तीसं उत्तरङ्गवगा प० तं०—विषयवृत्तयः... असंख्यः.....

३—अनुयोगद्वारा, सूत्र १३०: पाठ के लिए देखिए पृ० ३६ या टि० १।

६—लोग कहते थे कि यदि छन्द के निरोध से मुक्ति मिलती है तो वह अन्त समय में भी किया जा सकता है ।

भगवान् ने कहा—“धर्म पोछे करेंगे—यह कथन शास्त्रवादी कर सकते हैं । जो अपने आपको अमर मानते हैं, उनका यह कथन हो सकता है, परन्तु जो जीवन को क्षण-भंगुर मानते हैं, वे मला काठ—समय की प्रतीक्षा कैसे करेंगे ? वे काल का विश्वास कैसे करेंगे ? धर्म की उपासना के लिए समय का विभाग अवांछनीय है । व्यक्ति को प्रतिपल अप्रमत्त रहना चाहिए ।” (३शो० ६-१०)

इस प्रकार यह अध्ययन जीवन के प्रति एक सही दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है और मिथ्या-मान्यताओं का निरसन करता है ।

चतुर्थं अङ्गमणः : चतुर्थं अध्यायन

असंख्यं : असंस्कृतम्

मूल

१—असंख्यं जीविय मा पमायए
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं ।
एवं^१ वियाणाहि जणे पमत्ते
कणू विहिंसा अजया गहिन्ति ॥

संस्कृत छाया

असंस्कृतं जीवितं मा प्रमादीः
जरोपनीतस्य ललु मास्ति त्राणम् ।
एवं विजानीहि जनाः प्रमसाः
कणू विहिंसा अयता ग्रहीष्यन्ति ॥

हिन्दी अनुवाद

१—जीवन सांघा नहीं जा सकता, इस-
लिए प्रमाद मत करो । बुढ़ापा आने पर कोई
शरण नहीं होता । प्रमादी, हिंसक और
अबिरल मनुष्य किसकी शरण लेंगे—यह विचार
करो ।

२—जे पावकम्मेहि घणं मणूसा
समाययन्ती अमई^२ गहाय ।
पहाय ते^३ 'पास पयट्टिए'^४ नरे
वेराणुबद्धा नरयं उवेन्ति ॥

ये पाप-कर्मभिः घनं मनुष्याः
समावदने अमर्ति गृहीत्वा ।
प्रहाय तान् पश्य प्रबुत्तान् नरान्
वेराणुबद्धा नरकमुपयन्ति ॥

२—जो मनुष्य कुमति को स्वीकार कर
पापकारी प्रवृत्तियों से घन का उपार्जन करते
हैं, उन्हें देख । वे घन को छोड़ कर मौत के मुँह
में जाने को तैयार हैं । वे बर (कर्म) से बन्धे
हुए भरकर नरक में जाते हैं ।

३—तेणे जहा सन्धि-मुहे गहीए
सकम्मुणा किखइ पावकारी ।
एवं पया पेच्च^५ इहं च^६ लोए
'कडाण कम्माण न मोक्ख^७ 'अत्थि'^८ ॥

स्तेनो यथा सन्धि-मुखे गृहीतः
स्वकर्मणा कृत्पते पापकारी ।
एवं प्रजा प्रेत्येह च लोके
कृताणां कर्मणां न मोक्षोऽस्ति ॥

३—जैसे संध लगते हुए पकड़ा गया
पापी चोर अपने कर्म से ही छेदा जाता है,
उसी प्रकार इस लोक और परलोक में प्राणी
अपने कृत कर्मों से ही छेदा जाता है । किए
हुए कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं
होता ।

१. एवं (हुं पा०) ।

२. अमयं (हुं पा०, वुं पा०) ।

३. पासपट्टिए (क०); पासपट्टिए (उ) ।

४. पेच्छ (हुं); पेच (हुं पा०) ।

५. पि (वुं, हुं पा०) ।

६. मोक्खो (हुं, वुं) ।

७. न कम्मुणे पीडाति ती क्वाती (हुं पा०, वुं पा०) ।

उत्तरजम्भयणं (उत्तराध्ययन)

५२

अध्ययन ४ : श्लोक ४-८

४—संसारमावन्न परस्स अट्ठा
साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेय-काले
न बन्धवा बन्धवयं उवेन्ति ॥

५—वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते
इमंमिं लोए अट्ठा परत्था ।
दीव-प्पण्टे व अणन्त-मोहे
नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ॥

६—सुत्तंसु यावी पडिबुद्ध-जीवी
न वीससे पण्डिए आसु-पान्ने ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं
भारण्ड-पक्खी व चरण्पमतो ॥

७—चरे पयाइं परिसंकमाणो
जं किंचि पासं इह मणमाणो ।
लाभन्तरे जीविय बूहइत्ता
पच्छा परिन्नाय मलावर्धंसी ॥

८—छन्दं निरोहेण उवेइ मोक्खं
आसे जहा सिक्खिय-वम्मधारी ।
पुब्बाइं वासाइं चरण्पमतो
तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ॥

संसारमावन्नः परस्वार्थात्
साधारणं यच्च करोति कर्म ।
कर्मणस्ते तस्य तु वेदकाले
न बान्धवा बान्धवतामुपयन्ति ॥

वित्तेन त्राणं न लभते प्रमत्तः
अस्मिंश्लोके अथवा परत्र ।
प्रणष्टदीप इव अनन्त-मोहः
नैयातुकं दृष्ट्वाऽदृष्ट्वैव ॥

सुत्तेषु चापि प्रतिबुद्धजीवी
न विश्वस्यात् पण्डित आशुप्रज्ञः ।
घोरा मूर्खता अबलं शरीरं
भारण्डपक्षीव चराप्रमत्तः ॥

चरेत्पदानि परिशङ्कमानः
यत्किञ्चित्पाशमिह मन्यमानः ।
लाभान्तरे जीवितं बृंहयित्वा
पश्चात्परिज्ञाय मलापर्व्वंसी ॥

छन्दोनिरोधेनोपैति मोक्षं
अथवा यथा शिक्षितवर्मधारी ।
पूर्वाणि वर्षाणि चराप्रमत्तः
तस्मान्मुनिः क्षिप्रमुपैति मोक्षम् ॥

४—संसारी प्राणी अपने बन्धु-जनो के
लिए जो साधारण कर्म (इसका फल मुझे भी
मिले और उनको भी—ऐसा कर्म) करता है,
उस कर्म के फल-भोग के समय वे बन्धु-जन
बन्धुता नहीं दिखाते—उसका भाग नहीं
बँटाते ।

५—प्रमत्त मनुष्य इस लोक में अथवा
परलोक में धन से त्राण नहीं पाता । अन्धेरी
गुफा में जिसका दीप बुझ गया हो उसकी
भौंति, अनन्त मोह वाला प्राणी पार ले जाने
वाले मार्ग को देखकर भी नहीं देखता ।

६—आशुप्रज्ञ पंडित सोए हुए व्यक्तियों
के बीच भी जाग्रत रहे । प्रमाद में विश्वास
न करे । मूर्खत बड़े घोर (निर्दयी) होते हैं ।
शरीर दुर्बल है । इसलिए भारण्ड पक्षी की
भौंति अप्रमत्त होकर बिचरण करे ।

७—पग-पग पर दोषों में भय खाता
हुआ, थोड़े से दोष को भी पाश मानना हुआ
बले । नाग-गणों की उपलब्धि हो, तब तक
जीवन को पोषण दे । जब वह न हो तब
बिचार-विमर्श पूर्वक इस शरीर का खस कर
छोले ।

८—शिक्षित (शिक्षक के अधीन रहा
हुआ) और तन्त्राणधारी अथवा जैसे रण का
पार पा जाता है, वैसे ही म्वच्छन्दना का
निरोध करने वाला मुनि संसार का पार पा
जाता है । पूर्व जीवन में जो अप्रमत्त होकर
बिचरण करता है, वह उस अप्रमत्त-बिहार से
शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है ।

९—स पुञ्चमेवं न लभेज पच्छा
एसोवमा सासय-वाइयाणं ।
विसीयई सिद्धिले आउयमि'
कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥

१०—खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं
तम्हा समुट्ठाप पहाय कामे ।
समिच्च लोयं समया महेसी
अप्पाण-रक्खी चरमप्पमत्तो" ॥

११—मुहुं मुहुं मोह-गुणे जयन्तं
अणेग-रूवा समणं चरन्तं ।
फासा फुसन्तो असमंजसं च
न तेषु भिक्खू मणसा पउस्से ॥

१२—'मन्दा य फासा बहु-लोहणिज्जा'
तह-प्पगारेसु मणं न कुज्जा ।
रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं
मायं न सेवें पयहेज्ज लोहं ॥

१३—जे संख्या तुच्छ परप्पवाई
ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा ।
एए 'अहम्मे' त्ति दुगुंछमाणो
कंखे गुणे जाव सरीर-भेओ ॥
—त्ति बेमि ।

स पूर्वमेव न लभेत पश्चात्
एषोपमा शाश्वतवादिक्तानाम् ।
विषोवति शिथिले आयुषि
कालोपनीते शरीरस्य भेदे ॥

क्षिप्रं न शक्नोति विवेकमे
तस्मात्समुत्थाय प्रहाय कामान् ।
समेत्य लोकं समतया महर्षिः
आत्मरक्षी चराग्रमत्तः

मुहुर्मुहुर्मोह-गुणान् जयन्तं
अनेक-रूपाः श्रमणं चरन्तम् ।
स्पर्शाः स्पृशन्त्यसमञ्जसं च
न तेषु भिक्षुर्मनसा प्रवृण्ये ॥

मन्दाश्च स्पर्शा बहु-लोभनीयाः
तथा-प्रकारेषु मनो न कुर्यान् ।
रक्षेत् क्रोधं विनयेच्च मानं
मायां न सेवेत प्रजह्याल्लोभम् ॥

ये संस्कृतः। तुच्छाः परप्रवादिनः
ते प्रयोदोषानुगताः पराधीनाः ।
एते 'अहम्' इति जुगुप्समानः
काङ्क्षेह गुणान् यावच्छरीर-भेदः ॥
—इति त्रयीमि ।

६—जो पूर्व जीवन में अप्रमत्त नहीं
होता, वह पिछले जीवन में भी अप्रमत्त को
नहीं पा सकता । "पिछले जीवन में अप्रमत्त
हो जाएँगे"—ऐसा निश्चय-वचन शाश्वत-
वादियों के लिए ही उचित हो सकता है । पूर्व
जीवन में प्रमत्त रहने वाला आयु के शिथिल
होने पर, मृषु के द्वारा शरीर-भेद के क्षण
उपस्थित होने पर विषाद को प्राप्त होता है ।

१०—कोई भी मनुष्य विवेक को
तत्काल प्राप्त नहीं कर सकता । इसलिए हे
मोक्ष की एषणा करने वाले ! उठो । "जीवन के
अंतिम भाग में अप्रमत्त बनोगे"—इस आलस्य
को त्यागो । काम-भोगों को छोड़ो । लोक को
भलीभाँति जानो । समभाव में रहो । आत्म-
रक्षक और अप्रमत्त हो कर विचरण करो ।

११—बार-बार मोह-गुणों पर विजय
पान का यत्न करने वाले उग्र-विहारी श्रमण
को अनेक प्रकार के प्रतिकूल स्पर्श पीड़ित
करते हैं । किन्तु वह उन पर प्रद्वेष न करे ।

१२—अनुकूल स्पर्श विवेक को मन्द करने
वाले और बहुत लुभावने होते हैं । बंसे स्पर्शों
में मन को न लगायें । क्रोध का निवारण कर ।
मान को दूर करे । माया का सेवन न करे ।
लोभ को त्यागे ।

१३—जो अन्य-तीक्ष्ण लोग 'जीवन
सांभा जा सकता है'—ऐसा कहते हैं वे
असिद्धि हैं, प्रेय और द्वेष में फंसे हुए हैं, पर-
तन्त्र रहे । 'वि धर्म-रहित हैं'—ऐसा सोच उनसे
दूर रहे । अंतिम सांस तक (सम्यक्-दर्शन,
ज्ञान, चारित्र आदि) गुणों की आराधना करे ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. आरवसि (ड) ।

२. व चरममत्तो (झ०); चरममत्तो (ड) ।

३. संशय तथा हिषसस बहु-लोभनेजा (झ० पा०) ।

पञ्चमं अध्यायणं :
अकाम-मरणज्जं

.

पंचम अध्यायन :
अकाम-मरणीय

आप्तुस्य

इस अध्ययन का नाम 'अकाममरणिज्ज'—'अकाम-मरणीय' है। निर्युक्ति ने इसका दूसरा नाम 'मरणविभत्तो'—'मरण-विभक्ति' भी मिलता है।^१

जीवन-यात्रा के दो विभाम हैं—जन्म और मृत्यु। जीवन कला है तो मृत्यु भी उससे कम कला नहीं है। जो जीने की कला जानते हैं और मृत्यु की कला नहीं जानते, वे सदा के लिए अपने पीछे दूषित वातावरण छोड़ जाते हैं। क्योंकि को कैसा मरण नहीं करना चाहिये, इसका विवेक आवश्यक है। मरण के विविध प्रकारों के उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं :—

१—मरण के १४ भेद

भगवती सूत्र ने मरण के दो भेद—बाल और पण्डित किए हैं। बाल-मरण के बारह प्रकार हैं और पण्डित-मरण के दो प्रकार—कुल मिलाकर चौदह भेद वहाँ मिलते हैं—

बाल-मरण के बारह भेद हैं :—(१) वल्य, (२) वशार्च, (३) अन्तःशल्य, (४) तद्भव, (५) गिरि-पतन, (६) तल-पतन, (७) जल-प्रवेश, (८) अधि-प्रवेश, (९) विष-भक्षण, (१०) शस्त्रावपाटन, (११) वैहावस और (१२) गृक्षपृष्ठ।^२

पण्डित-मरण के दो भेद हैं :—(१) प्रायोपगमन और (२) भक्त-प्रत्याख्यान।^३

२—मरण के १७ भेद

समवायाङ्ग ने मरण के १७ भेद बताए हैं। मूलाराधना में भी मरण के सतरह प्रकारों का उल्लेख है और उनका विस्तार विजयोदया वृत्ति में मिलता है। उक्त परम्पराओं के अनुसार मरण के १७ प्रकार इस तरह हैं :—

समवायाङ्ग

- १—आवोचि-मरण
- २—अवधि-मरण
- ३—आत्यन्तिक-मरण
- ४—वलन्मरण
- ५—वशार्च-मरण
- ६—अन्तःशल्य-मरण
- ७—तद्भव-मरण
- ८—बाल-मरण

मूलाराधना (विजयोदया वृत्ति)

- १—आवोचि-मरण
- २—तद्भव-मरण
- ३—अवधि-मरण
- ४—आदि-अन्त-मरण
- ५—बाल-मरण
- ६—पण्डित-मरण
- ७—अवसन्न-मरण
- ८—बाल-पण्डित-मरण

१. उत्तराख्ययन निर्युक्ति, गाथा २३३ : सन्धे पृष्ठ द्वारा मरणविभत्तीह विविधा कससो।

२. भगवती २।१, सू० ६० : बुद्धिह मरणे पण्णचे, तं जहा—बाह्यमरणे व पण्डितमरणे व, से किं तं बालमरणे ? २ बुवालसविहे पं०, तं० वल्यमरणे, वसहमरणे, अतोसल्लमरणे, तमभवमरणे, गिरिपडणे, तलपडणे, जलपण्येने, जलपण्येने, विषभक्षणे, सत्थोवाडणे. वेहाणसे, गिद्धिदिं।

३. वही : से किं तं पण्डितमरणे ? २ बुद्धिह पण्णचे, तं जहा—प्रायोपगमने व भक्तपण्येनसो व।

२—अवधि-मरण:—जीव एक बार नरक आदि जिस गति में जन्म-मरण करता है, उसी गति में दूसरी बार जब कभी जन्म-मरण करता है तो उसे अवधि-मरण कहा जाता है ।^१

३—आत्यन्तिक-मरण:—जीव वर्तमान आयु-कर्म के पुद्गलों का अनुभव कर मरण प्राप्त हो, फिर उस भव में उत्पन्न न हो तो उस मरण को आत्यन्तिक-मरण कहा जाता है ।^२

वर्तमान मरण 'आदि' और वैसा मरण आगे न होने से उसका 'अन्त'—इस प्रकार इसे 'आद्यन्त-मरण' भी कहा जाता है ।^३

४—वलन्मरण:—जो संयमी, जीवन-पथ से भ्रष्ट होकर मृत्यु पाता है, उसकी मृत्यु को वलन्मरण कहा जाता है ।^४ भूल से तड़पते हुए मरने को भी वलन्मरण कहा जाता है ।^५

विजयोदया में वलाय-मरण कहा है । इसकी व्याख्या इस प्रकार है—विनय, तैयावृत्त्य आदि को सत्कार न देने वाले, नित्य नैमित्तिक कार्यों में आलसी, व्रत, समिति और युति के पालन में अपनी शक्ति को खिपाने वाले, धर्म-धित्तन के समय नींद लेने वाले, ध्यान और नमस्कार आदि से दूर भागने वाले व्यक्ति के मरण को वलाय-मरण कहा जाता है ।^६

५—वशार्ण-मरण:—दीप-कलिका में शलभ को तरह जो इन्द्रियों के वशीभूत होकर मृत्यु पाते हैं, उसे 'वशार्ण-मरण' कहा जाता है ।^७

विजयोदया में भी यह नाम मिलता है । यह मरण आर्त्त और रौद्र ध्यान में प्रवृत्त रहने वालों के होता है । इसके चार भेद हैं—इन्द्रिय-वशार्ण, वेदना-वशार्ण, कषाय-वशार्ण और नो-कषाय-वशार्ण ।^८

६—अन्तःशाल्य-मरण:—भगवती की वृत्ति में इसके दो भेद किए गए हैं—(१) द्रव्य और (२) भाव । शरीर में शस्त्र की नोक आदि रहने से जो मृत्यु होती है वह द्रव्य अन्तःशाल्य-मरण कहा जाता है । लज्जा और अभिमान आदि के कारण अतिचारों की आलोचना न कर दोषपूर्ण स्थिति में मरने वाले की मृत्यु को भाव अन्तःशाल्य-मरण कहा जाता है ।^९

विजयोदया में इसका नाम सशाल्य-मरण है । उसके भी दो भेद हैं—द्रव्य शाल्य और भाव शाल्य ।^{१०} मिध्या-दर्शन, माया और निदान—इन तीनों शाल्यों की उत्पत्ति के हेतुभूत कर्म को द्रव्य शाल्य कहा जाता है । द्रव्य शाल्य

१. (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति पत्र ३४ : भवोदा तेन मरणमधीमरणम्, यानि हि नारकादिभवनियन्तव्याऽऽद्युःकर्मदलिकान्यनुभूय त्रिषत् यदि पुनस्तान्येवानुभूय मरिष्यति तदा तदधीमरणमुच्यते । तद्वत्त्वापेक्षया पुनस्तद्गृहणावधिं धावन्तीवस्य मृतत्वादिति ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१६ : एमेव ओहिमरणं जाणि मओ ताणि पेव मरह पुणो ।

(ग) विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७ ।

२. (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति पत्र ३४ : यानि नारकाद्यायुक्तया कर्मदलिकान्यनुभूय त्रिषत् मृतत्वेन पुनस्तान्यनुभूय मरिष्यतीति एवं धर्ममरणं तद्वत्त्वापेक्षया अत्यन्तमाक्रियत्वात्काम्यन्तिकमिति ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१६ : एमेव आह्वयतिधमरणं नवि मरह ताह पुणो ।

३. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७ ।

४. (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ : संभवयोगेभ्यो बलता—भवनव्रतपरिणीता भवतिता मरणं वलन्मरणम् ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१७ : संजमनोगबिसम्भा मरति जे तं बलायमरणं तु ।

५. भगवती, २१ सू० ६० वृत्ति, पृ० २११ : बलतो—बुभुक्षापरितप्तत्वेन वल्ललायमानस्य संयसाहा अश्वतो (धत्) मरणं तद्वलन्मरणम् ।

६. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८६ ।

७. समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ : इन्द्रियविषयपारतन्त्र्येण श्रुता—शाखिता वशाताः स्मितरक्षीपकलिकाबलोकनात् शलभवत् तथाऽप्यः ।

८. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८६, ६० ।

९. भगवती, २१ सू० ६० वृत्ति, पत्र २११ : अन्तःशाल्यस्य द्रव्यतोऽनुवृत्तवोभवादेः भावतः सातिचारस्य बद्धमरणं तद् अन्तःशाल्यमरणम् ।

१०. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८ ।

की दशा में होने वाला मरण द्रव्य शाल्य-मरण कहलाता है। यह मरण पाँच स्थावर और अमनस्क जस जीवों के होता है। उक्त तीन शाल्यों के हेतुभूत कर्मों के उदय से जीव में जो माया, निदान और मिथ्यात्व परिणाम होता है, उसे भाव शाल्य कहा जाता है। इस दशा में होने वाला मरण भाव शाल्य-मरण कहा जाता है।

जहाँ भाव शाल्य है वहाँ द्रव्य शाल्य अवश्य होता है, किन्तु भाव शाल्य केवल समनस्क जीवों की ही होता है। अमनस्क जीवों में संकल्प या चिन्तन नहीं होता, इसलिए उनके केवल द्रव्य शाल्य ही होता है। इसीलिए अमनस्क जीवों के मरण को द्रव्य शाल्य-मरण और समनस्क जीवों के मरण को भाव शाल्य-मरण कहा गया है।^१

भविष्य में मुझे अमुक वस्तु मिले, आदि-आदि मानसिक संकल्पों को निदान कहते हैं। निदान-शाल्य-मरण असंयत सम्यक्-दृष्टि और भावक के होता है।

मार्ग (ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य) को दूषित करना, मार्ग का नाश करना, उन्मार्ग की प्रवृत्ति करना, मार्ग में स्थित लोगों का बुद्धि-भेद करना—इन सबको एक शब्द में मिथ्यादर्शन-शाल्य कहा जाता है।^२

पात्रव्रत्य, कुशल, संसर्ग आदि सुनि धर्म से भ्रष्ट हो कर मरण-समय तक दोषों की आलोचना किए बिना जो मृत्यु पाते हैं, उसे माया शाल्य-मरण कहा जाता है। यह मरण सुनि, भावक और असंयत सम्यक्-दृष्टि को प्राप्त होता है।

७—तद्भव-मरण :—वर्तमान भव (जन्म) से मृत्यु होती है, उसे तद्भव-मरण कहा जाता है।^३

८—बाल-मरण :—मिथ्यात्वी और सम्यक्-दृष्टि का मरण बाल-मरण कहलाता है।^४ भगवती में बाल-मरण के १२ भेद प्राप्त हैं।^५ विजयोदया में पाँच भेद किए हैं—(१) अव्यक्त-बाल, (२) व्यवहार-बाल, (३) ज्ञान-बाल, (४) दर्शन-बाल और (५) चारित्र्य-बाल।^६ इनकी व्याख्या संक्षिप्त में इस प्रकार है :

(१) अव्यक्त-बाल—छोटा बच्चा। जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को नहीं जानता तथा इन चार पुरुषार्थों का आचरण करने में भी समर्थ नहीं होता।

(२) व्यवहार-बाल—लोक-व्यवहार, शास्त्र-ज्ञान आदि को जो नहीं जानता।

(३) ज्ञान-बाल—जो जीव आदि पदार्थों को यथार्थ रूप से नहीं जानता।

(४) दर्शन-बाल—जिसकी तत्त्वों के प्रति भ्रमा नहीं होती। दर्शन-बाल के दो भेद हैं—इच्छा-प्रवृत्त और अनिच्छा-प्रवृत्त। इच्छा-प्रवृत्त—अग्नि, धूप, शस्त्र, विष, पानी, पर्वत से गिरकर, स्वासोच्छ्वास को रोक कर, अति सर्दी या गर्मी होने से, भूल और प्यास से, जीम को उखाड़ने से, प्रकृति-विरुद्ध आहार करने से—इन साधनों के द्वारा जो इच्छा से प्राण-त्याग करता है, वह इच्छा-प्रवृत्त

१. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

२. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८, ८९।

३. (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ : यस्मिन् भवे—तिथ्यगमनुष्यभवलक्षणं वस्ति जन्तुस्तद्भवयोग्यमेवायुर्बुद्ध्या पुनः तदभ्युपेक्षं त्रयमाणस्य यद्भवति तत्तद्भवमरणम्।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२१ : मोक्षं भक्त्यनुसंगवरतिरिपुं छरणेन नैरुहम्।

सेसाणं जीवाणं तद्व्यवसर्गं तु केसिचि॥

(ग) विजयोदया वृत्ति, पत्र ८०।

४. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२२ : अविरसमरणं बालं मरणं विरथाणं पञ्चिषं चित्तं।

आपाहि बालपञ्चिमरणं पुन देसविरथाणं॥

५. भगवती २११, सू. १० वृत्ति, पत्र २११।

६. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७, ८८।

दर्शन-बाल-मरण कहलाता है। अनिच्छा-प्रवृत्त—योग्यकाल में या अकाल में मरने की इच्छा के बिना जो मृत्यु होती है, वह अनिच्छा-प्रवृत्त दर्शन-बाल-मरण कहलाता है।

(५) चारित्र-बाल—जो चारित्र से हीन होता है। विषयों में आसक्त, दुर्गति में जाने वाले, अज्ञानान्धकार से आच्छादित, ऋद्धि में आसक्त, रसों में आसक्त और सुख के अभिमानी जीव बाल-मरण से मरते हैं।

६—पण्डित-मरण :—संयति का मरण पण्डित-मरण कहलाता है। विजयोदया में इसके चार भेद किए हैं—(१) व्यवहार-पण्डित, (२) सम्यक्त्व-पण्डित, (३) ज्ञान-पण्डित और (४) चारित्र-पण्डित।^१ इनकी व्याख्या इस प्रकार है :

(१) व्यवहार-पण्डित—जो लोक, वेद और समय के व्यवहार में निपुण, उनके शास्त्रों का ज्ञाता और शुभ्रूषा आदि गुणों से युक्त हो।

(२) दर्शन-पण्डित—जो सम्यक्त्व से युक्त हो।

(३) ज्ञान-पण्डित—जो ज्ञान से युक्त हो।

(४) चारित्र-पण्डित—जो चारित्र से युक्त हो।

७—बाल-पण्डित-मरण :—संयतासंयत का मरण बाल-पण्डित-मरण कहलाता है।^२ स्थूल हिंसा आदि पाँच पापों के त्याग तथा सम्यक्-दर्शन युक्त होने से वह पण्डित है। सूक्ष्म असंयम से निवृत्त न होने के कारण उसमें बालत्व भी है।^३

८—छन्दमस्थ-मरण :—मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मतिज्ञानी भ्रमण के मरण को छन्दमस्थ-मरण कहा जाता है।^४

विजयोदया में इसकी स्थान पर 'ओसण-मरण' नाम मिलता है।^५ उसकी व्याख्या इस प्रकार की है—रत्नत्रय में विहार करने वाले मुनियों के संघ से जो अलग हो गया हो उसे 'अवसन्न' कहते हैं। उसके मरण को अवसन्न-मरण कहा जाता है। पादत्रस्थ, स्वच्छन्द, कुशल, संसक्त और अवसन्न—ये पाँच ऋषि 'अवसन्न' कहलाते हैं। ये ऋद्धि में आसक्त, रसों में आसक्त, दुःख से भयभीत, कषायों में परिणत हो आहार आदि संज्ञाओं के वशवर्ती, पाप शास्त्रों के अध्येता, तेरह क्रिया (३ गुणि, ५ समिति और ५ महाव्रत) में आलसी, संवत्स-परिणामी, भक्तपान और उपकरणों में आसक्त, निमित्त, तंत्र-मंत्र और औषध से आजोविका करने वाले, गृहस्थों का वैयावृत्य करने वाले, उत्तर गुणों से हीन, गुणि और समिति में अनुद्यत, संसार के दुःखों से भय न करने वाले, क्षमा आदि दश धर्मों में प्रवृत्त न होने वाले तथा चारित्र में दोष लगाने वाले होते हैं। ये अवसन्न मुनि मर कर हजारों भवों में भ्रमण करते हैं और दुःखों को भोगते हुए जीवन को पूरा करते हैं।

९—केवल-मरण :—केवल ज्ञानी का मरण केवल-मरण कहलाता है।

१. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

२. उत्तराध्ययन निरूपित, गाथा २२० : (देविए पृ० ६० पा० टि० ४)।

३. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

४. उत्तराध्ययन निरूपित, गाथा २२२ : मणवज्जोद्दिनाणी सुअमहनाणी मरंति जे समय।

छठमत्थमरणमेवं केवलमरणं तु केवलिणो ॥

५. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

१३—वैहायस-मरण :—वृक्ष को शाखा पर लटकने, पर्वत से गिरने और मंदा लेने आदि कारण से होने वाला मरण वैहायस-मरण कहलाता है ।^१ विजयोदया मे इसके स्थान पर 'विप्रणास-मरण' है ।^२

१४—गृह्यपूठ-मरण :—हाथी आदि के कलेवर में प्रविष्ट होने पर उस कलेवर के साथ-साथ उस जीवित शरीर को भी गांध आदि नाच कर मान डालते हैं, उस स्थान में जो मरण होता है, वह गृह्यपूठ-मरण कहलाता है ।^३

१५—भक्त-प्रत्याख्यान-मरण :—यावत् जीवन के लिए त्रिविध अथवा चतुर्विध आहार के त्याग पूर्वक जो मरण होता है, उसे भक्त-प्रत्याख्यान-मरण कहा जाता है ।^४

१६—इङ्गिनी-मरण :—प्रतिनियत स्थान पर अनशन पूर्वक मरण को इङ्गिनी-मरण कहते हैं । जिस मरण में अपने अभिप्राय से स्वयं अपनी शुश्रूषा करे, दूसरे सुनियों से सेवा न ले उसे इङ्गिनी-मरण कहा जाता है । यह मरण चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करने वाले के ही होता है ।

१७—प्रायोपगमन, पादोपगमन, पादोपगमन-मरण :—अपनी परिचर्या न स्वयं करे और न दूसरो से कराये, ऐसे मरण को प्रायोपगमन अथवा प्रायोग्य-मरण कहते हैं ।^५ वृक्ष के नीचे स्थिर अवस्था में चतुर्विध आहार के त्याग पूर्वक जो मरण होता है, उसे पादोपगमन-मरण कहते हैं ।^६ अपने पाँवों के द्वारा संघ से निकल कर और योग्य प्रदेश में जाकर जो मरण किया जाता है उसे पादोपगमन-मरण कहा जाता है । इस मरण को चाहने वाले मुने अपने शरीर को पादचर्या में स्वयं करते हैं और न दूसरो से कराते हैं ।^७ कहीं 'पाठगमन' (प्रायोग्य) पाठ मो आता है ।^८ मंत्र के अन्त करन योग्य संहनन और संस्थान को 'प्रायोग्य' कहा जाता है । उसकी प्राप्ति को 'प्रायोग्य-गमन' कहा है । विज्ञाष्ट संहनन और विज्ञाष्ट संस्थान वाले के मरण को प्रायोग्य-गमन-मरण कहा जाता है ।^९

उत्तेनाम्बर परम्परा में 'पादोपगमन' शब्द मिलता है और दिगम्बर परम्परा में 'प्रायोपगमन', 'प्रायोग्य' और 'पादापगमन' पाठ मिलता है ।

भगवती ने पादोपगमन के दो भेद किए हैं—निर्हारी और अनिर्हारी ।^{१०} निर्हारी—इसका अर्थ है

१—(क) भगवती २१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २११ : वृक्षयात्पादुद्वन्धनेन यत्तान्तराक्षिप्याद्वा हानसम् ।

(ख) उत्तराध्ययन नियुक्ति, भाषा २२४ : गिह्वाहभक्षणं गिह्वाष्ट उद्धरणं वेदांसि ।

एष दृष्टिर्निर्वि मरणा कारणज्ञाणं भ्रजुणाया ॥

२—विश्वयोदया वृत्ति, पत्र ६० ।

३—(क) भगवती २१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २११ : पक्षिविशपंगुद्व्यां—मानुष्येः शृगालादिभिः स्पृष्टस्य—विदारितस्य करिकभराभावि-शरीरागततन्त्रं यन्मरणं तदगुह्यस्पृष्टं वा गुह्यं भक्षितस्य—स्पृष्टस्य यत्तदगुह्यस्पृष्टम् ।

(ख) उत्तराध्ययन नियुक्ति, भाषा २२४ (द्विगुण पाठ १ (ख) १) ।

४—(क) भगवती २१। सू० ७० वृत्ति, पत्र २११-२१२ : चतुर्विधाहारपरिहारनिष्यन्मेव भवतीति ।

(ख) उत्तराध्ययन नियुक्ति भाषा २२४ वृत्ति, पत्र २३४ :

५—(क) भगवती २१। सू० ९० वृत्ति, पत्र २१२ ।

(ख) समवायाङ्ग मस १७ वृत्ति, पत्र २४ : पादपस्वेवोपगमनम्—अवस्थानं यस्मिन् तत्पादोपगमनं तदेव मरणम् ।

(ग) उत्तराध्ययन नियुक्ति भाषा २२४ वृत्ति, पत्र २३४ ।

६—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

७—गोमयसार (कमकाण्ड), भाषा ६१ :

८—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

९—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

१०—भगवती २१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २१२ : निर्हारेण निवृत्तं यत्तन्निर्हारीमं, प्रतिश्रेयं यो श्रियं तस्येतत्, तत्कवचस्य निर्हारीनाम् अनिर्हारीमं तु योऽप्यश्रियं श्रियते इति ।

बाहर निकालना । उपाश्रय में मरण प्राप्त करने वाले साधु के शरीर को वहाँ से बाहर ले जाना होता है, इसलिए उस मरण को निहोति कहते हैं । अनिहोति—अरण्य में अपने शरीर का त्याग करने वाले साधु के शरीर को बाहर ले जाना नहीं पड़ता, इसलिए उसे अनिहोति-मरण कहा जाता है ।

भगवतो में इङ्गिनी-मरण को भक्त-प्रत्याख्यान का एक प्रकार स्वीकार कर^१ उसकी स्वतंत्र व्याख्या नहीं की है । मूलाराधना में भक्त-प्रत्याख्यान, इङ्गिनी और प्रायोपगमन—ये तीनों पण्डित-मरण के भेद माने गये हैं ।^२

उपर्युक्त १७ मरण विभिन्न विवक्षाओं से प्रालिपादित हैं । आकीथि, अवधि, आत्यन्तिक और तद्भव-मरण भव की दृष्टि से; वलन्, वैहायस, युद्धवृष्ठ, वशार्त्त और अन्तः शल्य-मरण आत्म-दोष, कषाय आदि की दृष्टि से; बाल और पाण्डित मरण चारित्र्य की दृष्टि से; छद्मस्थ और केवलि-मरण ज्ञान की दृष्टि से तथा भक्त-प्रत्याख्यान, इङ्गिनी और प्रायोपगमन-मरण अनशन की दृष्टि से किए गए हैं ।

उपर्युक्त १७ मरणों में आकीथि मरण प्रतिपल होता है और सिद्धां को छोड़ सब प्राणियों के होता है । शेष मरण जीव विशेषों के होते हैं ।

एक समय में कितने मरण होते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर उत्तराध्ययन की नियुक्ति में है ।^३ एक समय में दो मरण, तीन मरण, चार मरण और पाँच भी होते हैं : बाल, बाल-पाण्डित और पाण्डित की अपेक्षा से वे इस प्रकार हैं—

बाल की उपेक्षा :

(१) एक समय में दो मरण—अवधि और आत्यन्तिक में से एक और दूसरा बाल-मरण ।

(२) एक समय में तीन मरण—जहाँ तीन होते हैं वहाँ तद्भव-मरण और बढ़ जाता है ।

(३) एक समय में चार मरण—जहाँ चार होते हैं वहाँ वशार्त्त-मरण और बढ़ जाता है ।

(४) एक समय में पाँच मरण—जहाँ आत्मघात करते हैं वहाँ वैहायस और युद्धवृष्ठ में से कोई एक बढ़ जाता है । वलन्मरण और शल्य मरण की बाल-मरण के अन्तर्गत स्वीकार किया है ।

पाण्डित की अपेक्षा :

पाण्डित-मरण की विवक्षा दो प्रकार से की है—दृढ़ संयमी पाण्डित और शिथिल संयमी पाण्डित ।

(क) दृढ़ संयमी पाण्डित

(१) जहाँ दो मरण एक समय में होते हैं वहाँ अवधि-मरण और आत्यन्तिक-मरण में से कोई एक होता है क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं, दूसरा पाण्डित-मरण ।

१. भगवती २१। सू० ६० वृत्ति, पत्र २१० : इङ्गितमरणमभिधीयते तदभक्तप्रत्याख्यानस्यैव विशेषः ।

२. मूलाराधना, गाथा २६ : प्रायोपगमनं मरणं भक्तपदगुणा च इतिगती चेव ।

तिविहं पण्डितमरणं साधुस्तु जहुतवारिस्तु ॥

३. उत्तराध्ययन नियुक्ति, गाथा २०७-२९ : दुस्ति व तस्ति व चत्तारि पंच मरणा इवोहमरणं ।

कह मरह पुरसमर्थसि विभासाविथरं जाणे ॥

सव्ये भवत्यजीवा मरति आवीहं सया मरणं ।

ओहि च आहर्अतिथ दुस्तिवि एयाह भणणाए ॥

ओहि च आहर्अतिथ बालं तह पण्डितं च मीसं च ।

छउम केवलमरणं अन्नुत्तेणं विस्सर्कति ॥

(१) जहाँ तीन मरण एक साथ होते हैं, वहाँ छद्मस्थ-मरण और केवल-मरण में से एक बढ़ जाता है ।

(३) जहाँ चार मरण की विवक्षा है, वहाँ भक्त-प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन में से एक बढ़ जाता है ।

(४) जहाँ पाँच मरण की विवक्षा है, वहाँ वैज्ञानिक और गुरु-पृष्ठ में से एक मरण बढ़ जाता है ।

(ख) बाधित सयमी पण्डित

(१) जहाँ दो मरण की एक समय में विवक्षा है, वहाँ अवधि और आत्यन्तिक में से एक और किसी कारणवश वैज्ञानिक और गुरुपृष्ठ में से एक ।

(२) कर्धधिदू शल्य-मरण होने से तीन भी हो जाते हैं ।

(३) जहाँ वलनमरण होता है वहाँ एक साथ चार हो जाते हैं ।

(४) छद्मस्थ-मरण की जहाँ विवक्षा होती है, वहाँ एक साथ पाँच मरण हो जाते हैं ।

भक्त-प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन-मरण विगुरु संयम वाले पण्डितों के ही होता है । दोनों प्रकार के पण्डित-मरण की विवक्षा में तदभव-मरण नहीं लिया गया है, क्योंकि वे देवगति में ही उत्पन्न होते हैं ।

बाल-पण्डित की अपेक्षा :

(१) जहाँ दो मरण की एक समय में विवक्षा है, वहाँ अवधि और आत्यन्तिक में से कोई एक और बाल-पण्डित ।

(२) तदभव-मरण साथ होने से तीन मरण ।

(३) वशार्थ-मरण साथ होने से चार मरण ।

(४) कर्धधिदू आत्मघात करने वाले के वैज्ञानिक और गुरु-पृष्ठ में से एक साथ होने से पाँच ।

३—मरण के दो भेद

गोमटसार ने मरण के दो भेद किये गये हैं—(१) कदलीघात (अकालमृत्यु) और (२) सन्यास । विष-भक्षण, विषले जीवों के काटने, रक्तक्षय, धातुक्षय, भयंकर वस्तुदर्शन तथा उससे उत्पन्न भय, वस्त्रघात, संकलेशकिया, श्वासोच्छ्वास के अवरोध और आहार न करने से समय में जो शरीर छूटता है, उसे कदलीघात-मरण कहा जाता है । कदलीघात सहित अथवा कदलीघात के बिना जो सन्यास रूप परिणामों से शरीर-त्याग होता है, उसे त्यक्त-शरीर कहते हैं । त्यक्त-शरीर के तीन भेद हैं—(१) भक्त-प्रतिज्ञा, (२) इंगिनी और (३) प्रायोग्य । इनको व्याख्या इस प्रकार है :—

(१) भक्त-प्रतिज्ञा—भोजन का त्याग कर जो सन्यास मरण किया जाता है, उसे 'भक्त-परिज्ञा-मरण' कहा जाता है । इसके तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट । जघन्य का कालमान अन्नमुहूर्त है, उत्कृष्ट का ५२ वर्ष और श्रेष्ठ का मध्यवर्ती ।

(२) इंगिनी—अपने शरीर की परिचर्या स्वयं करे, दूसरों से सेवा न ले, इस विधि से जो सन्यास धारण पूर्वक मरण होता है उसे 'इंगिनी-मरण' कहा जाता है ।

(३) प्रायोग्य, प्रायोपगमन—अपने शरीर की परिचर्या न स्वयं करे और न दूसरों से कराए, ऐसे सन्यास पूर्वक मरण को प्रायोग्य या प्रायोपगमन-मरण कहा है ।^१

१—उत्तराध्ययन नियुक्ति, भाषा २३७-२६, बृहद् बृत्ति, पृष्ठ २३७-३८ ।

२—गोमटसार (कमकाश), भाषा ५७-६१ :

४—मरण के पाँच भेद

मूलाराधना में दूसरे प्रकार से भी मरण-विभाग प्राप्त होता है :

१—पण्डित-पण्डित-मरण,

२—पण्डित-मरण,

३—बाल-पण्डित-मरण,

४—बाल-मरण और

५—बाल-बाल-मरण ।^१

प्रस्तुत अध्ययन में मरण के दो प्रकार बतलाये गये हैं । इस अध्ययन का प्रातःपाद्य है अकाम-मृत्यु का परिहार और सकाम-मृत्यु का स्वीकरण ।

१. मूलाराधना आशवास ९, गाथा २६ : पण्डितं पण्डितं मरणं पण्डितं बालपण्डितं भवेत् ।

बालमरणं चतुर्थं पञ्चमं बालबालं च ॥

उत्तरउभययणं (उत्तराध्ययन)

६८

अध्ययन ५ : श्लोक ५-१०

५—जे गिद्धे काम-भोगेसु
एगे कूडाय गच्छई ।
न मे दिट्ठे परे लोए
चक्खु-दिट्ठा इमा रई ॥

यो गृधः कामभोगेषु
एकः कूटाय गच्छति ।
न मया दृष्टः परो लोकः
चक्षुः पश्यति रतिः ॥

५ जो कोई काम-भोगों में आसक्त होता है, उसकी गति मिथ्या-भाषण की ओर हो जाती है। वह कहता है—परलोक तो मैंने देखा नहीं, यह रति (आनन्द) तो चक्षु-दृष्ट है—आँखों के सामने है।

६—हत्थागया इमे कामा
कालिया जे अणागया ।
को जाणइ परे लोए
अत्थि वा नत्थि वा पुणो ? ॥

हस्तागता इमे कामाः
कालिका येजनागताः ।
को जानाति परो लोकः
अस्ति वा नास्ति वा पुनः ? ॥

६—ये काम-भोग हाथ में आए हुए हैं। भविष्य में होनेवाले सदृग्ध हैं। कौन जानता है परलोक है या नहीं ?

७—जणेण सद्धिं होक्खामि
इइ बाले पगवइ ।
काम-भोगाणुराएणं
केसं संपडिबज्जई ॥

“अनेन सार्धं भविष्यामि”
इति बालः प्रगल्भते ।
कामभोगानुरागेण
क्लेशं सम्प्रतिपद्यते ॥

७—“मैं लोक-सम्बन्ध के साथ रहूँगा” (जो गति उनकी होगी वही संगी) —ऐसा मानकर बाल-मन्यु भूट बन जाना है। वह काम-भोग के अनुराग से क्लेश पाना है।

८—तओ से दण्डं समारभई
तमंमु थावरेसु य ।
अट्टाए य अणट्टाए
भूयग्गमं विहिंसई ॥

ततः स दण्डं समारभते
त्रसेषु स्थावरेषु च ।
अर्थाय चानर्थाय
भूत-धामं विहिंसति ॥

८—फिर वह उस तथा स्थावर जीवों के प्रति दण्ड का प्रयोग करता है और प्रयोजनवश अथवा बिना प्रयोजन ही प्राणी-समूह की हिंसा करता है।

९—हिंस बाले मुसावाई
माइल्ले पिमुणं सडे ।
भुजमाणं सुरं मंसं
सयमयं ति मन्ई ॥

हिंसो बालो मृषाबावो
साथी पिशुनः शठः ।
भुञ्जानः सुरां मांसं
श्रेय एतदिति मन्यते ॥

९—हिंसा करने वाला, भूट बोलने वाला, छल-कपट करने वाला, बुगली खाने वाला, वैश परिवर्तन कर अपने आपको दूसरे रूप में प्रकट करने वाला अजानी मनुष्य मछ और मांस का भोग करता है और ‘यह श्रेय है’—ऐसा मानता है।

१०—कायसा वयसा मत्ते
वित्तं गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहुओ मलं संचिणइ
सिसुणागु व्व मट्ठियं ॥

कायेन वयसा मत्तः
वित्तं गृह्णन् स्त्रीषु ।
द्विधामलं संचिनोति
शिशुनाग इव मृत्तिकाम् ॥

१०—वह शरीर और वाणी से मत्त होता है। धन और स्त्रियों में यत्न होता है। वह राग और द्वेष—दोनों से उसी प्रकार कर्म-मल का संचय करता है जैसे शिशुनाग (अलस या केंचुआ) मूत्र और शरीर—दोनों से मिट्टी का

पंचमं अज्ज्ञयणं : पंचमं अध्ययन अकाम-मरणिज्जं : अकाम-मरणीय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—अण्वसि महाहंसि* एगे तिण्णे* दुरुत्तरं । तत्थ एगे महापन्ने इमं पट्टमुदाहरे* ॥	अणवे महौघे एकस्तीर्णो दुरुत्तरे । तत्रैको महाभ्रष्टः इमं स्पष्टमुदाहरेत् ॥	१—इस भ्रष्टा-प्रवाह वाले दुस्तर संसार- समुद्र से कई तिर गए । उनमें एक महाभ्रष्ट (महावीर) ने स्पष्ट कहा—
२—सन्तिमे य* दुवे ठाणा अक्खाया मारणन्तिा । अकाम-मरणं चेव सकाम-मरणं तहा ॥	स्त इमे च द्वे स्थाने आख्यते मारणान्तिके । अकाममरणं चैव सकाममरणं तथा ॥	२—मृत्यु के दो स्थान कथित हैं— अकाम-मरण और सकाम-मरण ।
३—बालाण* अकामं तु मरणं असइं भवे । पण्डियाणं सकामं तु उक्कोसेण सइं भवे ॥	बालानामकामं तु मरणमसकृद्भवेत् । पण्डितानां सकामं तु उत्कथण सकृद्भवेत् ॥	३—बाल जीवों के अकाम-मरण बार- बार होता है । पण्डितों के सकाम-मरण उत्कथन एक बार होता है ।
४—तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसियं । काम-गिद्धे जहा वाले भिसं कूराइं कुव्वई ॥	तत्रैवं प्रथमं स्थानं महावीरेण वैशितम् । काम-गुर्वधो यथा बालो भूषां क्रूराणि करोति ॥	४—महावीर ने उन दो स्थानों में पहला स्थान यह कहा है, जैसे कामासक्त बाल-जीव बहुत क्रूर-कर्म करता है ।

१. महोर्धसि (बु० पा०) ।
२. तरह (बु०, बु०,); तिण्णे (बु० पा०) ।
३. पण्डमुदाहरे (बु० पा०, बु० पा०, छ०) ।
४. लल्ल (बु०); द (बु०) ।
५. बालाण ब (बु०) ।

११—तओ पुढो आयकेणं
गिलाणो परितप्पई ।
पभीओ परलोगस्स
कम्माणप्पेहि अप्पणो ॥

१२—सुया मे नरग, ठाणा
असीलाणं च जा गई ।
बालाणं कूर-कम्माणं
पगाढा जत्थ वेयणा ॥

१३—तत्थोववाइयं ठाणं
जहा मेयमणुस्सुयं ।
आहाकम्मेहि गच्छन्तो
सो पच्छा परितप्पई ॥

१४—जहा सागडिओ जाणं
समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो^१
'अक्खे भग्गमि'^२ सोयई ॥

१५—एवं धम्मं विउक्कम्म
अहम्मं पडिवज्जियं ।
बाले मच्चु-मुहं पत्ते
अक्खे भग्गे व सोयई ॥

१६—तओ से मरणन्तंमि
बाले सन्तस्सई^३ भया ।
अकाम-मरणं मरई
धुत्ते व कलिना जिए ॥

ततः स्पृष्टः आसक्तेन
ग्लानः परितप्यते ।
प्रभोतः परलोकान्त
कामानुप्रेक्षी आत्मनः ॥

भुतानि भया नरके स्थानानि
असीलानां च या गतिः ।
बालानां क्रूर-कर्मणां
प्रगाढा यत्र वेदनाः ॥

तत्रौपपातिकं स्थानं,
यथा ममैतदनुभूतम् ।
यथाकर्मभिर्गच्छन्,
सः पश्चात् परितप्यते ॥

यथा शाकटिको जानन्,
समं हित्वा महापथम् ।
विषमं मार्गमवलीर्णः,
अश्वे भग्ने शोचति ॥

एवं धर्मं व्युत्कम्प्य,
अधर्मं प्रतिपद्य ।
बालः मृत्यु-मुखं प्राप्य,
अश्वे भग्ने इव शोचति ॥

ततः स मरणान्ते,
बालः संनश्यति भयात् ।
अकाम-मरणेन क्षिप्यते,
धूर्तं इव कलिना जितः ॥

११—फिर वह रोग से स्पृष्ट होने पर
ग्लान बना हुआ परितप करता है । अपने
कर्मों का चिन्तन कर परलोक से भयभीत
होता है ।

१२—वह सोचता है—मैंने उन नारकीय
स्थानों के विषय में सुना है, जो शील
रहित तथा क्रूर-कर्म करने वाले अशानी
मनुष्यों की अन्तिम गति है और जहाँ प्रगाढ़
वेदना है ।

१३—उन नरकों में जैसा औपपातिक
(उत्पन्न होने का) स्थान है, वैसा मैंने सुना
है । वह आयुष्य क्षीण होने पर अपने कृत-
कर्मों के अनुसार वहाँ जाता हुआ अनुताप
करता है ।

१४—जैसे कोई गाड़ीवान् समतल राज-
मार्ग को जानता हुआ भी उसे छोड़कर विषम
मार्ग से चल पड़ता है और गाड़ी की धुरी
टूट जाने पर शोक करता है ।

१५—इसी प्रकार धर्म का उत्लंघन कर,
अधर्म को स्वीकार कर, मृत्यु के मुख में पड़ा
हुआ अशानी धुरी टूट हुए गाड़ीवान् की
तरह शोक करता है ।

१६—फिर मरणान्त के समय वह
अशानी मनुष्य परलोक के भय से संनस्त
होता है और एक ही बाध में हार जाने वाले
जुआरी की तरह शोक करता हुआ अकाम-
मरण से मरता है ।

१. मग्गमोगाढा (५०); मग्गमोगाढो (५० पा०) ।

२. अक्खमग्गमि (५०); अक्खस्स भग्गे (५०) ।

३. संतसई (५०) ।

१७—एयं अकाम-मरणं
बालाणं तु पवेइयं ।
एत्तो सकाम-मरणं
पण्डियाणं सुणेह मे ॥

१८—मरणं वि सपुण्याणं^१
जहा मेयमणुस्सुयं ।
विप्पसणमणाघायं^२
संजयाण वुत्तीमत्तो ॥

१९—न इमं 'सव्वेमु भिक्खू सु'^३
न इमं सव्वेमुग्गारिसु ।
णाणा-सीला अगारत्था
विसम-सीला य भिक्खुणो ॥

२०—सन्ति एगेहि भिक्खूहि
गारत्था संजमुत्तरा ।
गारत्थेहि य सव्वेहि
साहवा संजमुत्तरा ॥

२१—चीराजिनं नगिणिणं^४
जडो-संघाडि-मुण्डिणं ।
एयाणि वि न तायन्ति
दुस्सीठं परियागयं ॥

२२—पिण्डोलग व^५ दुस्सीले
नग्गाओ न मुच्चई ।
भिक्षाए वा गिहत्ये वा
सुव्वए कम्मई दिवं ॥

एतदकाम-मरणं,
बालानां तु प्रवेदितम् ।
इतः सकाम-मरणं,
पण्डितानां शृणुत मे ॥

मरणमपि सपुण्यानां,
यथामर्मेतदनुश्रुतम् ।
विप्रसन्नमनाघातं,
संयतानां वृषीमताम् ॥

नेवं सर्वेषां भिक्षुणां,
नेवं सर्वेषां अगारिणाम् ।
नानाशीला अगारस्थाः,
विषमशीलाश्च भिक्षवः ॥

सन्त्येकेभ्यो भिक्षुभ्यः,
अगारस्थाः संयमोत्तराः ।
अगारस्थेभ्यश्च सर्वेभ्यः,
साधवः संयमोत्तराः ॥

चीराजिनं नाम्न्यं,
जटित्वं सङ्घाटीमुण्डित्वम् ।
एतान्यपि न प्रायन्ते,
दुःशीलं पर्यागतम् ॥

पिण्डावलगो वा दुःशीलो,
नरकान्न मुच्यते ।
भिक्षादो वा गृहस्थो वा,
सुव्रतः कामति विवम् ॥

१७—यह अज्ञानियों के अकाम-मरण का
प्रतिपादन किया गया है । अब पण्डितों के
सकाम-मरण को मुझ से सुनो ।

१८—जैसा मैंने सुना भी है—पुण्य-
घाटी, संयमी और जितेन्द्रिय पुरुषों का मरण
प्रसन्न और आघात रहित होता है ।

१९—यह सकाम-मरण न सब भिक्षुओं
को प्राप्त होता है और न सभी गृहस्थों को ।
क्योंकि गृहस्थ विविध प्रकार के शील वाले
होते हैं और भिक्षु भी विषम-शील वाले
होते हैं ।

२०—कुछ भिक्षुओं से गृहस्थों का संयम
प्रधान होता है । किन्तु साधुओं का संयम
सब गृहस्थों में प्रधान होता है ।

२१—चीवर, चर्म, मग्नत्व, जटाधारिणत्व,
गण्डी (उत्तरीय वस्त्र) और निर मुद्राना —ये
सब दुष्टशील बाले साधु को रक्षा नहीं करते ।

२२—भिक्षा से जीवन चलाने वाला भी
यदि दुःशील हो तो वह नरक में नहीं छूटता ।
भिक्षु हो या गृहस्थ, यदि वह सुव्रती है तो
स्वर्ग में जाता है ।

१. सपुण्याणं (अ) ।

२. विप्पसणं अक्खायं (वृ० पा०, वृ०); विप्पसणमणाघायं (वृ०); विप्पसणमणाघायं (वृ० पा०) ।

३. सव्वेसि भिक्खूणं (वृ०) ।

४. गिसिणिणं (वृ०); गिणं (वृ०) ।

५. वि० (अ० वृ०) ।

२३—अगारि-सामाइयंगां

सइढी काएण फासए ।
पोसहं दुहुओ पक्कं
एगरायं न हावण ॥

अगारि-सामायिकाइयानि,
श्रद्धी कायेन स्पृशति ।
पोषणं द्रव्योः पक्षयोः,
एक रात्रं न हापयति ॥

२३—प्रद्वालु श्रावक गृहस्थ-सामायिक के अंगों का आचरण करे । दोनों पक्षों में किए जाने वाले पोषण को एक दिन-रात के लिए भी न छोड़े ।

२४—एवं शिक्षा-समापन्ने
गिह-वासे^१ वि सुव्वए ।
मुच्चई छवि-पव्वाआ
गच्छे जक्ख-सलोगयं ॥

एवं शिक्षा-समापन्नः,
गृह-वासेऽपि मुक्तः ।
मुच्यते छवि-पवणः,
गच्छेद्द यक्ष-सलोकताम् ॥

२४—इस प्रकार शिक्षा से समापन्न मुन्नती मनुष्य गृहवास में रहता हुआ भी औदारिक शरीर से मुक्त होकर देवलोक में जाता है ।

२५—अहं जे संवुडे भिक्खू
दाहं अन्नयरे^२ सिया ।
सव्वदुक्ख-प्पहीणे वा
देवे वावि महड्डहए ॥

अथ यः संवृतो भिक्षुः,
द्वयोरन्यतरः स्यात् ।
सर्वं दुःख-प्रहीणो वा,
देवो वाऽपि महद्विकः ॥

२५—जो संवृत-भिक्षु होता है, वह दोनों में से एक होता है—मग्न दुःखों से मुक्त या महान् ऋद्धि वाला देव ।

२६—उत्तराइं विमोहाइं
जुइमन्ताणुपुव्वसो ।
समाइण्णाइं जक्खेहि
आवासाइं जसंसिणो ॥

उत्तरा विमोहाः,
द्युतिमन्तोऽनुपूर्वशः ।
समाकीर्णा यक्षैः,
आवासा यक्षस्त्रिनः ॥

२६—देवताओं के आवास क्रमशः उत्तम, मोह रहित, द्युतिमान् और देवों से आकीर्ण होते हैं । उनमें रहने वाले देव यक्षन्वी—

२७—दीहाउया इड्डिमन्ता
समिद्धा काम-रुविणो ।
अहुणोववन्न-संकासा
भुज्जो अच्चिमालि-प्पभा ॥

दीर्घायुषः ऋद्धिमन्तः,
समुद्धाः काम-रूपिणः ।
अधुनोपपन्नसंकाशा,
भूयोऽर्चिमालिप्रभाः ॥

२७—दीर्घायु, ऋद्धिमान्, दीप्तिमान्, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, अभी उत्पन्न हुए हों—ऐसी कान्ति वाले और मूर्धन्य के समान अति-तेजस्वी होते हैं ।

२८—ताणि ठाणाणि गच्छन्ति
सिक्खित्ता संजमं तवं ।
भिक्षाए वा गिहत्थे वा
जे सन्ति परिनिव्वुडा ॥

तानि स्थानानि गच्छन्ति,
शिक्षित्वा संयमं तपः ।
भिक्षाया वा गृहस्था वा,
ये सन्ति परिनिर्मुक्ताः ॥

२८—जो उपशान्त होते हैं, वे संयम और तप का अभ्यास कर उन देव-आवासों में जाते हैं, जहाँ फिर वे भिक्षु हों या गृहस्थ ।

१. गिह-वासे (व) ।

२. एगयरे (वृ) ।

२९—तेसि सोच्चा सपुज्जाणं^१
संजयाण वुत्तीमओ ।
न संतसस्ति मरणन्ते
सीलवन्ता बहुसुया ॥

तेषां धुत्वा सत्पूज्यानां,
संयतानां वृत्तीमताम् ।
न संतस्यन्ति मरणान्ते,
शीलवन्तो बहुश्रुताः ॥

२९—उन सत्-पूजनीय, समयी और
जितेन्द्रिय भिक्षुओं का पूर्वोक्त विवरण सुनकर
शीलवान् और बहुश्रुत भिक्षु मरणकाल में भी
संयम्य नहीं होते ।

३०—तुलिया विसेसमादाय
दया-धम्मस्स खन्तिए ।
विप्पसीएज्ज मेहावी
तहा-भूएण अप्पणा ॥

तोलयित्वा विशेषमादाय,
दया-धर्मस्य क्षान्त्या ।
विप्रसीदन्मेधावी,
तथाभूतेनात्मना ॥

३०—मेधावी मुनि अपने आपको तोल
कर, अकाम और सकाम-मरण के भेद को
जानकर यति-धर्मोचित सहिष्णुता और तथा-
भूत (उपशान्त यौह) आत्मा के द्वारा प्रसन्न
रहे—मरण-काल में उद्विग्न न बने ।

३१—तओ काले अभिप्पेए
सड्ढी तालिसमन्तिए ।
विणएज्ज लोम-हरिसं
भेयं देहस्स कंखए ॥

ततः काल अनिप्रेते,
श्रद्धा तादृशमन्तिके ।
जिनबेज्जोष-हर्षं,
भेदं वेहस्य काङ्क्षेत् ॥

३१—जब मरण अनिप्रेत हो, उस समय
जिस श्रद्धा से मुनि-धर्म वा सत्लेखना को
स्वीकार किया, वैसी ही श्रद्धा रखने वाला
भिक्षु मरु के समीप कष्ट-जनि गोमांस को
दूर करे, शरीर के भेद की इच्छा करे—उसकी
आर संचाल न करे ।

३२—अह कालमि संपत्ते
'आघायाय समुत्सयं'^२
सकाम-मरणं मरई
तिष्ठमन्नयरं मुणी ॥
—त्ति बेमि ।

अथकाले संप्राप्ते,
आघातयन् समुज्ज्वयम् ।
सकाम-मरणेन छिद्यते,
त्रयाणामन्यतरेण मुनिः ॥

३२—वह मरण-काल प्राप्त होने पर
सत्लेखना के द्वारा शरीर का त्याग करना है,
भक्त-परिज्ञा, दङ्कित्वी या प्रादोषगमन—इन
तीनों में से किसी एक को स्वीकार कर
सकाम-मरण से मरता है ।

—इति त्वमीमि ।

—एता मै कहता हूँ ।

१. उपुज्जाणं (वृ०) ।

२. सतकथात समाहितो (वृ०) ; आघायाए समुज्ज्वयं (वृ० वा०) ।

सप्तमः अध्यायः :
खुद्दागनियंतिज्जं

षष्ठः अध्यायः :
क्षुद्धक निग्रन्थीय

आखुल

इस अध्ययन का नाम 'खुल्लुगनियंतिज्जं'—'खुल्लक निग्रन्धीय' है। दशवैकालिक के तीसरे अध्ययन का नाम 'सुद्धियायारकहा'—'खुल्लकाचार-कथा' और छठे अध्ययन का नाम 'महायारकहा'—'महाचार-कथा' है। इनमें क्रमशः मुनि के आचार का संक्षिप्त और विस्तृत निरूपण हुआ है। इसी प्रकार इस अध्ययन में भी निग्रन्ध के बाह्य और आन्तरिक ग्रन्थ-न्याय (परिग्रह-न्याय) का संक्षिप्त निरूपण है।^१

'निग्रन्ध' शब्द जैन-दर्शन का बहुत प्रचलित और बहुत प्राचीन शब्द है। बौद्ध-साहित्य में स्थान-स्थान पर भगवान् महावीर को 'निगण्ठ' (निग्रन्ध) कहा है। तपागच्छ पट्टावली के अनुसार सुधर्मा स्वामी से आठ आचार्यों तक जैनधर्म 'निग्रन्ध-धर्म' के नाम से प्रचलित था।^२ अशोक के एक स्तम्भ-लेख में भी 'निग्रन्ध' का द्योतक 'निघंट' शब्द प्रयुक्त हुआ है।^३

अविद्या और दुःख का गहरा सम्बन्ध है। जहाँ अविद्या है वहाँ दुःख है; जहाँ दुःख है वहाँ अविद्या है। पन्जालि के शब्दों में अविद्या का अर्थ है—अनिष्ट में निष्ठ की अनुभूति, अशुचि में शुचि की अनुभूति, दुःख में सुख की अनुभूति और अनात्मा में आत्मा की अनुभूति।^४

सूत्र की भाषा में विद्या का एक पक्ष है सत्य और दूसरा पक्ष है मंत्री—'अप्यणा सच्चमेसेज्जा नेप्पि मूएसु कपप (श्लोक ३)।' जो कोरे विद्यावादी या ज्ञानवादी हैं उनकी मान्यता है कि यथार्थ को जान लेना पर्याप्त है; प्रत्याख्यान की कोई आवश्यकता नहीं। क्रिया का आचरण उनके दृष्टि में व्यर्थ है। किन्तु भगवान् महावीर इसे नाग्वोर्य मानते थे; इसलिए उन्होंने आचरण-शून्य भाषावाद और विद्यानुशासन की आज्ञा बतलाया (श्लोक ८-५०)।

ग्रन्थ (परिग्रह) को ज्ञान मानना भी अविद्या है। इसलिए भगवान् महावीर ने कहा—'परिवार ज्ञान न्हो है', 'धन भी ज्ञान नहीं है' (श्लोक ३-५)। और तो क्या अपनी देह भी ज्ञान नहीं है। साधुदेह-सुख नहीं होता फिर भी प्रतिपक्ष उसके मन में यह चिन्तन होना चाहिए कि देह-धारण का प्रयोजन पूर्व-कर्मों को क्षीण करना है। लक्ष्य जो है वह बहुत ऊँचा है; इसलिए साधक को नीचे कहीं भी आसक्त नहीं होना चाहिए। उसकी दृष्टि सदा ऊर्ध्वगामी होनी चाहिये (श्लोक १३)। इस प्रकार इस अध्ययन में अध्यात्म की मौलिक विचारणायें उपलब्ध हैं।

इस अध्ययन के अन्तिम श्लोक का एक पाठान्तर है। उसके अनुसार इस अध्ययन के प्रज्ञापक भगवान् पार्श्वनाथ हैं।

मूल—

“एवं से उदाह् अणुत्तरनाणी अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे।

अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए वियाहिए ॥”

१. उत्तराध्ययन निर्वृत्ति, भाषा २४३ : सावज्जसंयमुक्का, अभिन्नवरत्नाहारेण गण्ये। एसा खलु निज्जुणी, खुल्लानिघंटुसत्तस ॥

२. तपागच्छपट्टावलि (५०) कल्याणविग्रह संपादित। भाग १, पृष्ठ २५३ : श्री सुधर्मास्वासिभीऽथै श्रीश्र बावत् निर्ग्रन्थाः।

३. दिक्खी-टोबरा का सप्तम स्तम्भ लेख : निघंटुषि मे कवे (.) इमे विद्याका होहंति।

४. पार्तजल योगसूत्र २।६ : अनित्याद्युचिदुःखानात्मकं निरुधुषिदुःखानात्मक्यातिरविद्या।

पाठान्तर—

एवं से उदाहृ अरिहा पासे पुरिसादाणीय ।

भगवं वेसालीयं बुद्धं परिणिक्कुर ॥ (बुद्धं वृत्ति, पत्र ३७०)

यद्यपि चूणि और टीकाकार ने इस पाठान्तर का अर्थ भी महावीर से सम्बन्धित किया है। 'पास' का अर्थ—'पश्यतीति पाशः' या 'पश्यः' किया है। किन्तु यह संगत नहीं लगता। पुरुषादानीय—यह भगवान् पार्श्वनाथ का सुप्रसिद्ध विशेषण है। इसलिये उसके परिपार्श्व में 'पास' का अर्थ पार्श्व ही होना चाहिये। यद्यपि 'वेसालीय' विशेषण भगवान् महावीर से अधिक सम्बन्धित है फिर भी इसके जो अर्थ किये गए हैं उनकी मर्यादा से वह भगवान् पार्श्व का भी विशेषण हो सकता है।^१ भगवान् पार्श्व इक्ष्वाकुवंशी थे। उनके गुण विशाल थे और उनका प्रवचन भी विशाल था, इसलिये उनके 'वंशालिक' होने में कोई आपत्ति नहीं आती। इस पाठान्तर के आधार से यह अनुमान किया जा सकता है कि यह अध्ययन मूलतः पार्श्व की परम्परा का रहा हो और इसे उत्तराध्ययन की शृंखला में सम्मिलित करते समय इसे महावीर की उपदेश-धारा का रूप दिया गया हो।

१. उत्तराध्ययन वर्णि, पृष्ठ १६६-६७ : गुणा अस्य विद्याला इति वेसालीयः, विद्यालं शासनं वा, विद्याले वा इक्ष्वाकुवंशे अथा वेसालिया ।

"वेसाली जननी यस्य, विद्यालं कुलमेव च । विद्यालं प्रवचनं वा, तेन वेसालिको जितः ॥"

छटमञ्जरी : षष्ठ अध्याय खुडुगनियंठिज्ज : क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

१—जावन्तऽविज्जापुरिसा,
'सव्वे ते दुक्खसंभवा ।'
नुप्पन्ति बहुसो मूढा
संसारंमि अणन्तए ॥

यावन्तोऽविद्याः पुरुषाः
सर्वे ते दुःख-सम्भवाः ।
लुप्यन्ते बहुशो मूढाः
संसारेऽनन्तके ॥

१—जितने अविद्यावान् (मिथ्यात्व से
अभिभूत) पुरुष हैं, वे सब दुःख को उत्पन्न करने
वाले हैं । वे दिग्मूढ़ की भाँति मूढ़ बने हुए
इस अनन्त संसार में बार-बार लुप्त होते हैं ॥

२—'समिक्ख पंडिए तम्हा'
पासजाईपहे बहू ।
अप्पणा^१ सच्चमेसेज्जा
मेत्ति भूएसु* कप्पए ॥

समीक्ष्य पण्डितस्तस्मान्
पाश-जातिपयान् बहून् ।
आत्मना सत्यमेवेषन्
मेत्री भूतेषु कल्पयेन् ॥

२—इसलिए पंडित पुरुष प्रचुर पाशों
(बन्धनों) व जाति-पशों (चौरासी लाख
योनियों) की समीक्षा कर स्वयं तस्य की
गवेषणा करे और सब जीवों के प्रति मैत्री का
आचरण करे ।

३—माया पिया ण्हसा भाया
भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
नालं ते मम ताणाय
नुप्पन्तस्स सकम्मुणा ॥

माता पिता स्नुषा भ्राता
भार्या पुत्राश्चोरसाः ।
नालं ते मम त्राणाय
लुप्यमानस्य स्वकर्मणा ॥

३—जब मैं अपने द्वारा किये गये कर्मों
से छेदा जाता हूँ, तब माता, पिता, पुत्र-बन्धु,
भाई, पत्नी और औरस पुत्र—ये सभी मेरी
रक्षा करने में समर्थ नहीं होते ।

४—एयमं सपेहाए
पासे समियदंसेण ।
छिन्द मेहि^२ सिणेहं च
न कखे पुव्वसंथवं ॥

एतमर्थं स्वप्रेक्षया
परयेन समित-दर्शनः ।
छिन्द्याह गृद्धि स्नेहं च
न काङ्क्षेत् पूर्व-तस्तत्त्वम् ॥

४—सम्यक्-दर्शन वाला पुरुष अपनी
बुद्धि से यह अर्थ देखे, गृद्धि और स्नेह का
छेदन करे, पूर्व परिचय की अभिलाषा न करे ।

१. ते सव्वे दुक्ख मज्झिमा (नागावुंतीयाः) ।

२. तम्हा समिक्ख मेहावी (बू०, वृ० पा०) ; समिक्ख पंडिए तम्हा (बू० पा०) ।

३. अण्ण्डा (बू० पा०) ।

४. भूएसु (बू०) ।

५. मेहं (व) ।

५—गवासं मणिकुंडलं
पसवो दासपोखंसं ।
सव्वमेयं चउत्ताणं
कामरूढी भविस्ससि ॥

१ [यावरं जंगमं चैव
घणं घणं उवक्खरं ।
पञ्चमाणस्स कम्मेहि
नालं दुक्खाउ भोयणं ॥]

६—अज्जत्थं सव्वओ सव्वं
दिस्स पाणे पियायए ।
'न हणे पाणिणो पाणे'
भयवेराओ उवरए ॥

७—आयाणं नरयं दिस्स
नायएज्ज तणामवि ।
'दोगुछी' अप्पणो पाए'
दिन्नं भुंजेज्ज भोयणं ॥

८—इहमेगे उ मन्नन्ति
अप्पच्चक्खाय पावगं ।
आयरियं विदित्ताणं
सव्वदुक्खा विमुच्चई ॥

९—भणन्ता अकरेन्ता य
बन्धमोक्खपइणिणो ।
वायाविरियमेत्तेण
समासासेन्ति अप्पयं ॥

गवासं मणि-कुण्डलं
पसवो दास-पोखेयं ।
सर्वमेतत् त्यक्त्वा
कामरूपी भविष्यति ॥

(त्यावरं जंगमं चैव
घनं धान्यमुत्तरम् ।
पञ्चमानस्य कर्मभिः
नालं दुःखान्मोचते ॥)

अध्यात्मं सर्वतः सर्वं
दृष्ट्वा प्राणान्प्रियायुषः ।
न हन्यात्प्राणिनः प्राणान्
भय-वेरादुपरतः ॥

आदानं नरकं दृष्ट्वा
नावदोत तुणमपि ।
जुगुप्सो आत्मनः पात्रे
दत्तं भुञ्जीत भोजनम् ॥

इहैके तु मन्यन्ते
अप्रत्याख्याय पापकम् ।
आचरितं विदित्वा
सर्व-दुःखा इमुच्यते ॥

भणन्तोऽकुरुन्तश्च
बन्धमोक्ष-प्रतिज्ञावन्तः ।
वाग्-वीर्य-भाशेण
समाश्वासयन्त्यात्मानम् ॥

५—गाय, घोड़ा, मणि, कुण्डल, पशु,
दास और पुरुष-समूह—उन सबको छोड़ । ऐसा
करने पर तू काम-रूपी (इच्छानुकूल रूप बनाने
में समर्थ) होगा ।

(चल और अचल संपत्ति, घन, धान्य
और गृहोपकरण—ये सभी पदार्थ कर्मों से
दुःख पाते हुए प्राणी को दुःख से मुक्त करने
में समर्थ नहीं होते हैं ।

६—सब दिशाओं से होने वाला सब
प्रकार का अध्यात्म (मुख) जैसे मुने इष्ट है,
बेसे ही दूसरों को इष्ट है और सब प्राणियों
को अपना जीवन प्रिय है—यह देखकर भय
और बरं से उपरत पुरुष प्राणियों के प्राणों का
घात न करे ।

७—“परिग्रह नरक है”—यह देखकर
वह एक तिनक को भी अपना बनाकर न रखे
(अथवा “अदत्त का आदान नरक है”—यह
देखकर बिना दिया हुआ एक तिनका भी न
ले) । असंयम से जुगुप्सा करने वाला मुनि
अपने पात्र में गृहस्थ द्वारा प्रदत्त भोजन करे ।

८—इस संसार में कुछ लोग ऐसा मानते
हैं कि पापों का त्याग किये बिना ही आचार
को जानने मात्र से जीव सब दुःखों से मुक्त
हो जाता है ।

९—“जान से ही मोक्ष होता है”—जो
ऐसा कहते हैं, पर उसके लिए कोई क्रिया
नहीं करते, वे केवल बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्त
की स्थापना करने वाले हैं । वे केवल बाणी
की वीरता से अपने आपको आश्वासन देने
वाले हैं ।

१. यह श्लोक वर्ण व बीका में व्याख्यात नहीं है ।

२. नो हितेज पाणिणं पाणे (५०) ; नो हणे पाणिणं पाणे (५० पा०) ।

३. दोगुछी (५०) ।

४. अप्पणो पाणिणस्ते (५० पा० १) ।

५. आचारियं (५० पा०, ३० छ०) ।

१०—न चित्ता तापए भासा
कओ विज्जाणुसासनं ?
विसन्ना पावकम्मेहि^१
बाला पंडियमाणिणो ॥

न चित्ता त्रायते भासा
कुतो विज्जानुसासनम् ?
विषय्याः पाप-कर्माभिः
बालाः पण्डित-मानिनः ॥

१०—विषय भाषाएँ त्राण नहीं होतीं ।
बिद्या का अनुशासन भी कहाँ त्राण देता है ?
(जो इनको त्राण मानते हैं वे) अपने आपको
पण्डित मानने वाले अज्ञानी मनुष्य विषय
प्रकार से पाप-कर्मों में डूबे हुए हैं ।

११—जे केई सरीरे सत्ता
वण्णे रुबे य सव्वसो ।
'मणसा कायवक्केण'^२
सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥

ये केचित् शरीरे सत्ताः
वर्णं रूपे च सर्वशः ।
मनसा काय-वाक्येन
सर्वे ते दुःखसंभावाः ॥

११—जो कोई मन, वचन और काया
से शरीर, वर्ण और रूप में सर्वशः आसक्त होते
हैं, वे सभी अपने लिए दुःख उत्पन्न करते हैं ।

१२—आवन्ना दीहमध्वाणं
संसारेमि अणंतए ।
तम्हा सव्वदिसं पस्स
अप्पमतो परिव्वए ॥

आपन्ना दीर्घमध्वानं
संसारेऽनन्तके ।
तस्मान् सर्वं दिशो दृष्ट्वा
अप्रमत्तः परिव्रजेत् ॥

१२—वे इस अनन्त संसार में जन्म-
मरण के लम्बे मार्ग को प्राप्त किए हुए हैं ।
इसलिए सब दिशाओं (उत्पत्ति स्थानों) को
देखकर मुनि अप्रमत्त होकर बिचरे ।

१३—बहिया उड्डमादाय
नावकंखे क्याइ वि ।
पुव्वकम्मखपट्ठाए
इमं देहं समुद्धरेत् ॥

बहिरूर्ध्वमादाय
नावकाङ्क्षेत् कदाचिदपि ।
पूर्वकर्मभयाय
इमं वेहं समुद्धरेत् ॥

१३—ऊर्ध्वलक्षी होकर कभी भी बाह्य
(विषयों) की आकांक्षा न करे । पूर्व कर्मों के
शय के लिए ही इस शरीर को धारण करे ।

१४—विविच्च^३ कम्मुणो हेउं
कालकंखी परिव्वए ।
मायं पिडस्स पाणस्स
कडं लद्धूण भक्खए ॥

विविच्य कर्मणो हेतुं
कालकांक्षी परिव्रजेत् ।
मात्रां पिण्डस्य पानस्य
कृतं लब्ध्वा भक्षयेत् ॥

१४—कर्म के हेतुओं को दूर कर मुनि
समयश होकर बिचरे । संयम-निर्वाह के लिए
आहार और पानी की जितनी मात्रा आवश्यक
हो, उतनी गृह्यस्य के घर में सहज निष्पन्न
प्राप्त कर भोजन करे ।

१५—सन्निहि च न कुव्वेज्जा
लेवमापाए संजए ।
पक्खी पत्तं समादाय
निरवेक्खो^४ परिव्वए ॥

सन्निधि च न कुर्वीत
लेप-मात्रया संयतः ।
भक्षो पात्रं समादाय
निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥

१५—संयमी मुनि लेप लगे उतना भी
संग्रह न करे—बासी न रखे । पक्षी की भौंति
कल की अपेक्षा न रखता हुआ पात्र लेकर
शिक्षा के लिए पर्यटन करे ।

१. पावकिकम्मेहि (हु० पा०) ।

२. मणसा वयसा येव (वृ०, हु) ; मणसा कायवक्केणं (हु० पा०) ।

३. विविच (अ, आ, इ, उ, हु० पा०) ।

४. निरवेक्खी (वृ०) ।

१६—एसणासमिओ लज्जू
गामे अणियओ चरे ।
अप्पमत्तो पमत्तेहि
पिडवायं गवेसए ॥

एषणा-समितो लज्जावान्
ग्रामेऽनियतश्चरेत् ।
अप्रमत्तः प्रमत्तेभ्यः
पिण्डपातं गवेक्षयेत् ॥

१६—एषणा-समिति से युक्त और
लज्जावान् मुनि गाँवों में अनियत विहार करे ।
वह अप्रमत्त रहकर गृहस्थों से पिण्डपात की
गवेक्षणा करे ।

१७—‘एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी
अणुत्तरदंसी अणुत्तरानाणदंसणधरे ।
अरहा नायपुत्ते
भगवं वेसालिए वियाहिए ॥’
—त्ति वेमि ।

एवं स उदाहृतवान् अनुत्तरज्ञानी
अनुत्तरदर्शी अनुत्तरज्ञानवर्धनधरः ।
अहंन् ज्ञातपुत्रः
भगवान् वंशालिको व्याख्याता ॥

१७—अनुत्तर-ज्ञानी, अनुत्तर-दर्शी,
अनुत्तर-ज्ञान-वर्धन-धारी, अहंन्, ज्ञातपुत्र,
वंशालिक और व्याख्याता भगवान् ने ऐसा
कहा है ।

—इति ऋषीमि

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सप्तमं अध्यायः :
उरभिर्ज्जं

सप्तम अध्यायः :
उरध्रीय

आयुष्मन्

इस अध्ययन का नामकरण इसके प्रारम्भ में प्रतिपादित 'उरभ्र' के दृष्टान्त के आधार पर हुआ है।

समवायांग (समवाय ३६) तथा उत्तराध्ययन निर्युक्ति में^१ इसका नाम 'उरभ्रिभ्रजं' है। किन्तु अनुयोग-द्वार (सूत्र १३०) में इसका नाम 'एलङ्गज' है। मूल पाठ (श्लोक १) में 'एलङ्ग' शब्द का ही प्रयोग हुआ है 'उरभ्र' का नहीं। उरभ्र और एलङ्ग—ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, इसलिए ये दोनों नाम प्रचलित रहे हैं।

भ्रामण्य का आधार अनासर्गिक है। जो विषय-वासना में आसक्त होता है, वह कभी दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। विषयायुगृद्धि में रसासर्गिक का भी प्रमुख स्थान है। जो रसनिर्झर पर विजय पा लेता है, वह अन्यान्य विषयों को भी सहजतया बश में कर लेता है। इस कथन को सूत्रकार ने दृष्टान्त से समझाया है। प्रथम चार श्लोकों में दृष्टान्त के संकेत दिए गए हैं। टीकाकार ने 'सम्प्रदायादवसेयम्' ऐसा उल्लेख कर उसका विस्तार किया है :

एक सेठ था। उसके पास एक गाय, गाय का बछड़ा और एक नेंदा था। वह नेंदे को खूब खिलाता-पिलाता। उसे प्रतिदिन स्नान कराता, शरीर पर हल्दी आदि का लेप करता। सेठ के पुत्र उससे नाना प्रकार की झोड़ा करते। कुछ ही दिनों में वह खूब हो गया। बछड़ा प्रतिदिन यह देखता और मन ही मन यह सोचता कि नेंदे का इतना लालन-पालन क्यों हो रहा है ? सेठ का हम पर इतना प्यार क्यों नहीं है ? नेंदे को खाने के लिए जौ देता है और हमें सूखी घास। यह अन्तर क्यों ? इन विचारों से उसका मन उदास हो गया। उसने स्नान-पान करना छोड़ दिया। उसकी माँ ने इसका कारण पूछा। उसने कहा—“माँ ! यह नेंदा पुत्र की तरह लालित-पालित होता है। उसे बढ़िया भोजन दिया जाता है। विशेष अलंकारों से उसे अलंकृत किया जाता है। और एक मैं हूँ मन्द-माग्य कि कोई भी मेरी परवाह नहीं करता। सूखी घास चरता हूँ और वह भी भरपेट नहीं मिलती। समय पर पानी भी नहीं मिलता। कोई मेरा लालन-पालन नहीं करता। ऐसा क्यों है माँ ?”

माँ ने कहा—

“आउरचिन्नाङ्गं एयाङ्गं जाङ्गं चरङ्गं न्दधिओ।

सुक्कतणोहिं लाढाङ्गि, एयं दीढाउलक्खणं ॥ (उत्त० नि० गा० २४६)

“वरस ! तू नहीं जानता। नेंदा जो कुछ खा रहा है, वह आतुर-लक्षण है। आतुर (मरणासन्न) प्राणी को पथ्य और अपथ्य जो कुछ वह चाहता है, दिया जाता है। सूखी घास खाकर जोना दीर्घायु का लक्षण है। इस नेंदे का मरण-काल सन्निकट है।”

कुछ दिन बीते। सेठ के घर मेहमान आए। बछड़े के देखते-देखते मोटे-ताजे नेंदे के गले पर छुरी चली और उसका मांस पकाकर मेहमानों को परोसा गया। बछड़े का दिल भय से मर गया। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। माँ ने कारण पूछा। बछड़े ने कहा—“माँ ! जिस प्रकार नेंदा मारा गया क्या मैं भी मारा जाऊँगा ?” माँ ने

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, पाथा २४६ :

उरभाङ्गामगोर्धं, वेपंती भावणी उ ओरभ्रो।

तथो सखुद्धिमिणं, उरभ्रिभ्रजसि अल्लक्षणं ॥

कहा—“वत्स ! यह भय वृथा है । जो रस-गुच्छ होता है, उसे उसका फल भी भोगना पड़ता है । तू सूखी बास चरता है; अतः तुझे ऐसा कटु विपाक नहीं सहना पड़ेगा ।”^१

इसी प्रकार द्विसक, अह, मुधावादी, मार्ग में लूटने वाला, चोर, मायावी, चुराने की कल्पना में व्यस्त, शठ, स्त्री और विधियों में गुच्छ, महाभारतम और महापरिग्रह वाला, सुरा और मांस का उपभोग करने वाला, दूसरों का दमन करने वाला, बकरे की तरह कर-कर शक्य करते हुए मांस खाने वाला, तौंद वाला और उपस्थित रक्त वाला व्यक्ति उसी प्रकार नरक के आवुष्य की आकांक्षा करता है जिस प्रकार मेमना पाड़ुने की । (श्लोक ५-७)

भगवान् महावीर ने कहा—“अल्प के लिए बहुत को मत सोओ । जो ऐसा करता है, वह पीछे पश्चात्ताप करता है ।” इसी भावना को सूत्रकार ने दो दृष्टान्तों से समझाया है :

(१) एक दमक था । उसने मोल मांग-मांग कर एक हजार कार्यापण एकत्रित किए । एक बार वह उन्हें साथ ले एक सार्धवाह के साथ अपने घर की ओर चला । रास्ते में भोजन के लिए उसने एक कार्यापण को काकिणियों में बदलाया और प्रतिदिन कुछ काकिणियों को स्तब्ध कर भोजन लेता रहा । कई दिन बीते । उसके पास एक काकिणी शेष बची । उसे वह एक स्थान पर भूल आया । कुछ दूर जाने पर उसे वह काकिणी याद आ गई । अपने पास के कार्यापणों की नौली को एक स्थान पर गाड़ उसे लाने दोड़ा । परन्तु वह काकिणी किसी दूसरे के हाथों पड़ गई । उसे बिना प्राप्त किए लौटा तब तक एक व्यक्ति उस नौली को लेकर भाग गया । वह लुट गया । उद्यो-त्यो वह घर पहुँचा और पश्चात्ताप में डूब गया ।^२

(२) एक राजा था । वह आम बहुत खाता था । उसे आम का अजीर्ण हुआ । वैद्य आए । चिकित्सा की । वह स्वस्थ हो गया । वैद्यों ने कहा—“राजन् । यदि तुम पुनः आम खाओगे तो जीवित नहीं बचोगे ।” उसने अपने राज्य के सारे आज्ञ के वृक्ष उखाड़ा दिए । एक बार वह अपने मन्त्री के साथ अश्व-क्रोड़ा के लिए निकला । अश्व बहुत दूर निकल गया । वह थक कर एक स्थान पर रुका । वहाँ आम के बहुत वृक्ष थे । मन्त्री के मिथेय करने पर भी राजा एक आज्ञ वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठा । वहाँ अनेक फल गिरे पड़े थे । राजा ने उन्हें छुआ

१. बृहद् वृत्ति पत्र २७२-७४ :

जहोः करणो पाहुणपणिमिंसं पोसिज्जति, सो पीणिषत्तरीो छद्दातो हलिहाविकथंगरागो कयकणकलतो कुमारया य तं नाणाविहंदि कीकाविसेहेहि कीकावेति, तं च वच्छमो एवं काळिजमागं वदतुण माउए गेहेण व गोविषं दोहएण व तथपुक्काए मुक्कमि खीरं ण पिषति रोतेण, ताए पुच्छिमो भणति—अम्मो ! एस गंदिमो सन्नेहि एएहि अम्हासिसाकेहि अद्देहि जवत्तमोरासणेहि तदुवधोगेहि च अलंकारविसेहेहि अलंकारितो पुच हव परिपाळिज्जति, अहं तु मंदमगो छद्दाणि तणापि काहेपि छप्पामि, तानिपि ण पज्जत्ताणि, एवं पाणिपयि, ण य मं कोऽपि कालेति । ताए भयणति—पुत्त ! जहा आवरो मरितकामो जं मगति पयं वा अपयं वा तं दिज्जति से, एवं सो गंठितो मारिज्जहि जहा तदा पेक्खहि । ततो सो वच्छमो तं गंठियं पाहुणमेह आगएह बचिज्जमागं वदतु तिसिरोऽपि अएण माउए धणं णामिखसति, ताए भयणति—कि पुत्त ! भयभीतोऽसि !, गेहेण एणुपयि मं ण पिषति, तेण भयण—अम्म ! कतो मे यणा मिखासो ?, णणु सो वरातो गंठितो अज केहिपि पाहुणएहि आगएहि मं भयतो विणिग्गवज्जीहो विलोक्कनयणो विस्सं रसंतो अत्ताणो असरणो मारितो, तन्मयातो कतो मे पाउमिच्छा ?, ततो ताए भयणति—पुत्त ! णणु तदा वेव ते काहं, जहा—“आवरणिणां पीहाउल्लखणं”, एस तेसि विवागो अनुपसो ।

२. बह्वी, पत्र २७६ :

एगो इमगो, तेण विपिं करेण सइस्सं काहावणाण अविज्जं, सो व सं गहाव सरणेण ससं सगिहं पत्थितो, तेण भयपणिमिंसं हवगो कारिणीहि भिम्भो, ततो विणे विणे कारिणीए भुंजति, तस्स व अयसेसा एरा कामणी, सा बिस्सारिया, तस्ये पहापिप सो चित्तेति—मा मे हवगो भिदियन्वो दीहंति गण्डलं दग्गथ गोवेडं काणिपीणिमिंसं पिपसो, सापि कारिणी अन्नेण हवा, सोऽपि गण्डतो अयणेण विट्ठो ठविरजंतो, सोपि तं पेक्कण गट्ठो, पक्खा सो धरं गतो सोचति ।

और सूँधा तथा खाने को इच्छा व्यक्त की । मंत्री ने निषेध किया पर राजा नहीं माना । उसने मरपेट आम खाए । उसको तत्काल मृत्यु हो गई ।^१

इसी प्रकार जो मनुष्य मानवीय काम-भोगों में आसक्त हो, धोड़ से सुख के लिए मनुष्य-जन्म गँवा देता है वह शाश्वत सुखों को हार जाता है । देवताओं के काम-भोगों के समक्ष मनुष्य के काम-भोग तुच्छ और अल्पकालीन हैं । दोनों के काम-भोगों में आकाश-पाताल का अन्तर है । मनुष्य के काम-भोग कुश के अग्रभाग पर टिके जल-बिन्दु के समान हैं और देवताओं के काम-भोग समुद्र के अपरिमित जल के समान हैं (श्लोक ३३) । अतः मानवीय काम-भोगों में आसक्त नहीं होना चाहिए ।

जा मनुष्य है और अगले जन्म में भी मनुष्य हो जाता है, वह मूल पूँजी को सुरक्षा है । जो मनुष्य-जन्म में अध्यात्म का आचरण कर आत्मा को पवित्र बनाता जाता है, वह मूल को बढ़ाता है । जो विषय-वासना में फँसकर मनुष्य जीवन का हार देता है—तथैव या मरक में चला जाता है—वह मूल को भोग गँवा देता है (श्लोक १५) । इस आशय को सूत्रकार ने निम्न व्यावहारिक दृष्टान्त से समझाया है :

एक बान्नीया था । उसके तीन पुत्र थे । उसने तीनों को एक-एक हजार कार्पाषण देते हुए कहा—“इनसे तुम ताने व्यापार करो और अमुक समय के बाद अपनी-अपनी पूँजी ले मेरे पास आओ ।” पिता का आदेश पा तीनों पुत्र व्यापार के लिए निकले । वे एक नगर में पहुँचे और तीनों अलग-अलग स्थानों पर ठहरे । एक पुत्र ने व्यापार आरम्भ किया । वह सादगो से रहता और भोजन आदि पर कम खर्च कर धन एकत्रित करता । इससे उसके पास बहुत धन एकत्रित हो गया । दूसरे पुत्र ने भी व्यापार आरम्भ किया । जो काम होता उसको वह भोजन, मकान, वस्त्र आदि में खर्च कर देता । इससे वह धन एकत्रित न कर सका । तीसरे पुत्र ने व्यापार नहीं किया । उसने अपने शरीर-पोषण और व्यसनो में सारा धन गँवा डाला ।

तीनों पुत्र यथासमय घर पहुँचे । पिता ने सारा वृत्तान्त पूछा । जिसने अपनी मूल पूँजी गँवा डाली थी, उसे नोकर के स्थान पर नियुक्त किया, जिसने मूल को सुरक्षा की थी, उसे गृह का काम-काज सौंपा और जिसने मूल को बढ़ाया था, उसे गृहस्वामी बना डाला ।^२

मनुष्य-भव मूल पूँजी है । देवगति उसका लाभ है और नरकगति उसका क्षेदन है ।

१. इन्द्र उच्चि, पत्र २७० :

जहा कस्सइ रण्णो अंबाजिण्णं विसुइया जाया, सा तस्स वेज्जेहि महता जत्तं तिमिच्छया, भणितो य—अदि पुणो अंबाजि खसि तो विणस्सति, तस्स य अतीव पीयाणि अंबाणि, तेण सदेसे सज्जे अंबा उच्छादिवा । अण्णया अस्सबाहुणिवाए णिग्गतो सह अमच्छेण, अस्सेण अवहरिओ, अस्सो दूरं रांणं परिस्सतो ित्तो, एगमि वणसंठं वृषच्छायाते अमच्छेण वारिज्जयाणोऽपि णिवदो, तस्स य हेट्ठं अंबाणि पट्ठियाणि, सो ताणि परामुसति, पच्छा अघाति, पच्छा बन्निखं गिदुइति, अमच्छो वारेह, पच्छा मक्खेत्तं सतो ।

२. वही, पत्र २७०-६ : जहा एगस्स बाणिग्गस्स तिन्नि पुत्ता, तेण तंति सइस्सं सइस्सं विन्निं काहावणाणं भणिया य—एएण ववहरिऊण एत्तिण्ण कालेण एज्जाह, ते तं मूलं वेत्तं णिग्गया सणारातो, पिथपिथं पहेणु िया, तथेयो भोयणच्छायणवत्तं जूयमज्जमंसेवाच-सणविरहितो विहीए ववहरमाणो विपुलामभसमन्वितो जातो, वितितो पुण मूलमवि इत्थंतो लाभं भोयणच्छायणमल्लालंकारादि उवभुंजति, ण य अच्चादरेण ववहरति, ततितो न किञ्चि संवहरति, केवलं जूयमज्जमंसेवसंगमल्लंतंबोलसरीरकिवाए अप्पेण कालेण तं इत्थं णिदुविधंति, जहावाहिकालस्स सएवमागया । तत्थ जो हिंन्मसूको सो सक्खस्स अनामी जातो, पेसए उवचरिज्जति, वितितो वरवावारे णित्तो भण्णणसंदुहो ण दावक्खमोत्तब्बेह वक्खसायति, ततितो वरवित्थरस्स सामी जातो ।

इस अध्ययन में पाँच दृष्टान्तों का निरूपण हुआ है ।^१ उनका प्रतिपाद्य भिन्न-भिन्न है । प्रथम (उरन्न) दृष्टान्त विषय-भोगों के कटु-विपाक का दर्शन है (श्लोक १ से लेकर १० तक) । दूसरे और तीसरे (काकिणी और आमफल) दृष्टान्तों का विषय देव-भोगों के सामने मानवीय-भोगों की तुच्छता का दर्शन है (श्लोक ११ से लेकर १३ तक) । चौथे (व्यवहार) दृष्टान्त का विषय आय-व्यय के विषय में कुशलता का दर्शन है (श्लोक १४ से २२ तक) । पाँचवे (सागर) दृष्टान्त का विषय आय-व्यय की तुलना का दर्शन है (श्लोक २३ से २४ तक) ।

इस प्रकार इस अध्ययन में दृष्टान्त श्रौंठी से गह्वन तत्त्व की बड़ी सरस अभिव्यक्ति हुई है ।

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २४७ : ओरन्ने अ काकिणी, अंबए अ बवहार सागरे वेव ।

पंचेण दिट्ठं ता, उरन्निमज्जंमि अक्कपणं ॥

सप्तमं अञ्जयणं : सप्तमं अञ्जयन

उरग्भिज्जं : उरग्रीयम्

मूल

१—जहाएसं समुद्दिस्स
कोइ पोसेज्ज एलयं ।
ओयणं 'जवसं देज्जा'
पोसेज्जा 'वि सयंगणे'^१ ॥

संस्कृत छाया

यथावेशं समुद्दिश्य
कोऽपि पोषयेदङ्कम् ।
ओदनं यवसं दद्यात्
पोषयेदपि स्वयङ्गणे ॥

हिन्वी अनुवाक

१—जैसे पाहुने के उद्देश्य से कोई मेमने
का पोषण करता है । उसे चावल, मूँग, उड़द
आदि खिलाता है और अपने अँगन में ही
पात्रता है ।

२—तओ से पुट्टे परिवूढे
जायमेए महोदरे ।
पीणिए विउले देहे
आएसं परिकंखए'^२ ॥

ततः स पुष्टः परिपूढः
जातमेवाः महोदरः ।
प्रीणितो विपुले देहे
आवेशं परिकाङ्क्षति ॥

२—इस प्रकार वह पुष्ट, बलवान्, मोटा,
बड़े पेट वाला, तृप्त और विपुल देह वाला
होकर पाहुने की आकाङ्क्षा करता है ।

३—जाव न एह^३ आएसे
ताव जीवइ से दुही ।
अह पत्तमि आएसे
सीसं छेतूण भुज्जई ॥

याचन्नेत्यावेशः
तावजीवति सोऽजुःखी ।
अथ प्राप्त आवेशे
शीघ्रं छित्त्वा भुज्यते ॥

३—जब तक पाहुना नहीं आता है तब
तक ही वह बेचारा जीता है । पाहुने के आने
पर उसका सिर छेदकर उसे खा जाते हैं ।

४—जहा खलु से उरग्भे
आएसाए समीहिए ।
एवं बाले अहम्मिहे
ईहई नरयाउयं ॥

यथा खलु स उरग्नः
आवेशाय समीहितः ।
एवं बालोऽवमिष्टः
ईहते नरकापुष्कम् ॥

४—जैसे पाहुने के लिए निश्चित किया
हुआ वह मेमना यथार्थ में उसकी आकाङ्क्षा
करता है, वैसे ही अवमिष्ट अज्ञानी जीव
यथार्थ में नरक के आयुष्य की इच्छा करता है ।

१. जवसे देति (वू०) ।

२. विसयंगणे (वू० पा०, वू०) ।

३. पवि० (वू०); परि० (वू० पा०) ।

४. एल्लति (वू०) ।

५—हिंसे बाले^१ मुसावाई
अद्धानिमि विलोवए ।
अन्नदत्तहरे तेणे^२
माई कण्ठहरे^३ सडे ॥

६—इत्थीविसयगिडे य
महारंभपरिग्गहे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं
परिवूढे परंदमे ॥

७—अयककरभोई य
तुदिदले चियलोहिण^४ ।
आउयं नरए कखे
जहाएंस व एलए ॥

८—आसनं सयणं जाणं
चित्तं कामे य भुंजिया ।
दुस्साहडं धणं हिच्चा
बहुं संचिणिया रयं ॥

९—तओ कम्मगुरू जन्तू
पच्चुप्पन्नपरायणे^५ ।
अयं व्व आगयाएसे
मरणन्तंमि सोयई ॥

१०—तओ आउपरिकवीणे
'चुया देहा'^६ विहिंसगा^७ ।
आमुरियं दिसं बाला^८
'गच्छन्ति अवसा'^९ तमं ॥

हिलो बालो मुसावादी
अब्बनि बिलोपकः ।
अन्यवत्तहरः स्तेनः
मायीकुलोहरः गडः ॥

स्त्री-विषय-गृहश्च
महारम्भ-परिग्रहः ।
भुञ्जानः सुरां मांसं
परिवृढः परन्दमः ॥

अयककरं भोजी च
तुम्बिलः चित्तलोहितः ।
आयुर्नरके काङ्क्षति
यथाऽऽदेशमिव एङकः ॥

आसनं शयनं यानं
चित्तं कामादिव भुङ्क्त्वा ।
दुःसहृतं धनं हित्वा
बहु संख्यं रजः ॥

ततः कर्मगुरुर्जन्तुः
प्रत्युत्पन्नपरायणः ।
अज इव आगते आवेशे
मरणान्ते शोचति ॥

तत आमुषि परिकीणे
च्युताः देहा इ विहिंसकाः
आमुरीयां विषां बालाः
गच्छन्ति अवशाः तमः ॥

५—हितक, अन्न, मुसावादी, मार्ग में से
छूटने वाला, दूसरों की चीजें बर्तु का बोध
में ही हरण करने वाला, चोर, मायावी, चुराने
की कल्पना में व्यस्त (किसका धन हरण
करूँगा—ऐसे अव्यवसाय वाला), शठ,

६—स्त्री और विषयों में गूढ़, महाराज
और महापरिग्रह वाला, सुरा और मांस का
उपभोग करने वाला, बलवान्, दूसरों का दमन
करने वाला,

७—बकरों की भैंसि कर-कर शब्द करते
हुए मांस को खाने वाला, तोड़ वाला और
उपचित लोही वाला व्यक्ति, उसी प्रकार नरक
के आयुष्य की आकाश्या करता है, जिस
प्रकार भेमना पाहुने की ।

८—आसन, शय्या, यान, धन और
काम-विषयों को भोगकर, दुःख से एकजित
किये हुए धन को खूट आदि के द्वारा गँवाकर,
बहुत कर्मों को संचित कर --

९—कर्मों से भारी बना हुआ, केवल
वर्तमान को ही देखने वाला जीव मरणान्त-
काल में उसी प्रकार शोक करता है जिस
प्रकार पाहुने के आने पर भेमना ।

१०—फिर आयु क्षीण होने पर वे ताना
प्रकार की हिंसा करने वाले कर्मवशावर्ती
अज्ञानी जीव देह से च्युत होकर अवकायपूर्ण
आमुरीय विषा (नरक) की ओर जाते हैं ।

१. कोही (वृ० पा०) ।

२. बाले (वृ०); तेणे (वृ० पा०) ।

३. कण्ठहरे (वृ०); कण्ठहरे (छ०) ।

४. स्तोणिण (ड, वृ०) ।

५. ०पल्लवणे (वृ०) ।

६. चुओदेहा (वृ०); चुयदेहो (वृ० पा०) ।

७. विहिंसगो (वृ०) ।

८. बालो (वृ०) ।

९. गच्छइ अवसो (वृ०) ।

११—जहा कागिणि हेउं
सहसं हारए नरो ।
अपत्थं अम्बगं भोच्चा
राया रज्जं तु हारए ॥

१२—एवं माणुस्सगा कामा
देवकामाण अन्तिए ।
सहस्सगुणिया भुजो
आउं कामा य' दिव्विया ॥

१३—अण्णवासानउया
जा सा पन्नवओ ठिई ।
जाणि जीयन्ति^१ दुम्मेहा
ऊणे वाससयाउए ॥

१४—जहा य तिन्नि वणिगा
मूलं वेत्तूण निग्गया ।
एगोऽत्थ लहई लाहं
एगो मूलेण आगओ ॥

१५—एगो मूलं पि हारित्ता
आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा
एवं धम्मे वियाणह ॥

१६—माणुसत्तं भवे मूलं
लाभो देवगई भवे ।
मूलच्छेएण जीवाणं
नरगतिरिक्खत्तणं धुव ॥

यथा काकिण्या हेतोः
सहस्रं हारयेन्मरः ।
अपथ्यमाश्रकं भुक्त्वा
राजा राज्यं तु हारयेत् ॥

एवं मानुष्यकाः कामाः
देवकामानामन्तिके ।
सहस्र-गुणिता भूयः
आयुः कामाश्च दिव्यकाः ॥

अनेकवर्ष-नयुतानि
या सा प्रज्ञावतः स्थितिः ।
यानि जीयन्ते दुर्मुखसः
ऊने वर्षशतायुषि ॥

यथा च त्रयो वणिजः
मूलं गृहीत्वा निगताः ।
एकोऽत्र लभते लाभम्
एको मूलेनागतः ॥

एकोमूलमपि हारयित्वा,
आगतस्तत्र वाणिजः ।
व्यवहार उपमेया
एवं धर्मं विजानीत ॥

मानुष्यत्वं भवेन्मूलं
लाभो देवगतिर्भवेत् ।
मूलच्छेदेन जीवानां
नरक-तिर्यकत्वं द्रुवम् ॥

११—जैसे कोई मनुष्य काकिणी के लिए
हजार (कार्षापण) गँबा देता है, जैसे कोई
राजा अपथ्य आम को खाकर राज्य से हाथ
धो बैठता है, वैसे ही जो व्यक्ति मानवीय भोगों
में आसक्त होता है, वह देवी भोगों को हार
जाता है ।

१२—देवी भोगों की तुलना में मनुष्य के
काम-भोग उतने ही नगण्य हैं जितने कि हजार
कार्षापणों की तुलना में एक काकिणी और
राज्य की तुलना में एक आम । दिव्य आयु
और दिव्य काम-भोग मनुष्य की आयु और
काम-भोगों से हजार गुना अधिक हैं ।

१३—प्रज्ञावान् पुरुष की देवलोक में
अनेक वर्ष नयुत (असंख्यकाल) की स्थिति होती
है—यह बात होने पर भी मूर्ख मनुष्य सी
वर्षों से कम जीवन के लिए उन दीर्घकालीन
सुखों को हार जाता है ।

१४—जैसे तीन वणिक् मूल पूँजी को
लेकर निकले । उनमें से एक लाभ उठाता है,
एक मूल लेकर लौटता है ।

१५—और एक मूल को भी गँबाकर
बापस आता है । यह व्यापार की उपमा है ।
इसी प्रकार धर्म के विषय में जानना चाहिए ।

१६—मनुष्यत्व मूलधन है । देवगति
लाभ रूप है । मूल के नाश से जीव निश्चित
ही नरक और तिर्यक गति में जाते हैं ।

१. उ (ऋ०) ।

१. हारित्ति (ऋ० पा०) ।

१७—दुहओ गई बालस्स
आवई वहूमूलिया ।
देवत्तं माणुसत्तं च
जं जिए लोला-शठः ॥

१८—तओ जिए सइं होइ
दुविहं दोगइं गए ।
दुल्लाहा तस्स उम्मज्जा
अट्ठाए मुइरादवि ॥

१९—एवं जियं^१ सपेहाए
तुलिया बालं च पंडियं ।
मूलियं ते पवेसन्ति
माणुसं जोणिमेत्ति^२ जे ॥

२०—वेमायाहिं सिकवाहिं
जे नरा गिहिमुक्खया ।
उवेत्ति माणुसं जोणि
कम्मसत्ता^३ हु पाणिणो ॥

२१—जेसि तु बिउला सिकवा
मूलियं ते अडच्छिया^४ ।
सोलवन्ता सवीसेसा
अदीणा जन्ति देवयं ॥

२२—एवमदीणवं^५ भिक्षुं
अगारि^६ च ब्रियाणिया ।
कहणुं जिच्चमेलिक्खं
'जिच्चमाणे न'^७ सविदे ? ॥

द्विधा गतिर्बालस्य
आपह वध-मूलिका ।
देवत्वं मानुषत्वं च
यच्चितो लोला-शठः ॥

ततो जितः सदा भवति
द्विविधां दुर्गतिं गतः ।
दुर्लभा तस्योन्मज्जा
अट्टायां मुचिरादपि ॥

एवं जितं सम्प्रेष्य
तोलयित्वा बालं च पण्डितम् ।
भौलिकं ते प्रविशन्ति
मानुषीं योनिमायान्ति ये ॥

विमान्नाभिः शिक्षाभिः
ये नरा गृहि-सुक्ताः ।
उपयन्ति मानुषीं योनिं
कर्म-सत्याः खलु प्राणिनः ॥

येषां तु बिपुला शिक्षा
भौलिकं तेऽतिक्रम्य ।
शोलवन्तः सविशेषाः
अदीना यान्ति देवताम् ॥

एवमर्धन्यवन्तं भिक्षुं
अगारिणं च ब्रिजाय ।
कथं नु ज्ञेयते ईदृशं
ज्ञेयमालो न संवित्ते ? ॥

१७—अज्ञानी जीव की दो प्रकार की गति होती है—नरक और तिर्यञ्च । वहाँ उसे वध-हेतुक आपदा प्राप्त होती है । वह लोलुप और बंचक पुण्य देवत्व और मनुष्यत्व को पहले हो डार जाता है ।

१८—द्विविध दुर्गति में गया हुआ जीव मरा डारा हुआ होना है । उसका उन्मेष बाहर निकलना दीर्घकाल के बाद भी दुर्लभ है ।

१९—इस प्रकार डारें हुए, को देवकर गया बाल और पण्डित की मुल्ला कर जो मानुषी योनि में आते हैं, वे मूलधन के साथ प्रवेश करते हैं ।

२०—जो मनुष्य विविध परिमाण वाली शिक्षाओं द्वारा घर में रहते हुए भी मुद्रनी है, वे मानुषी योनि में उत्पन्न होते हैं । क्योंकि प्राणी कर्म-मय होते हैं—अपने किये हुए का फल अवश्य पाते हैं ।

२१—जिनके पास विपुल शिक्षा है, वे शोल-मग्न और उत्तरोत्तर गुणों को प्राप्त करने वाले पराक्रमी (अर्धन) पुण्य मूलधन (मनुष्यत्व) का अतिप्रगमन करके देवत्व को प्राप्त होते हैं ।

२२—इस प्रकार पराक्रमी भिक्षु और पूज्य को (अर्धन) उनके पराक्रम-मूल को जानकर बिबेकी पुण्य ऐसे लाभ को कैसे कोषणा ? वह कथाओं के द्वारा पराजित होता हुआ क्या यह नहीं जानता कि "मैं पराजित हो रहा हूँ ?" यह जानते हुए उसे पराजित नहीं होना चाहिए ।

१. जिय (६०) ।

२. जोणिमेत्ति (उ, ५०) ।

३. कम्मसत्ता (६० पा०, ५० पा०) ।

४. अडच्छिया (अ) ; ते अट्ठाया (५०) ; ते अडच्छिया (५० पा०) ; बिउल्लिया, अतिद्विधा, अतिद्विधा (६०) ।

५. एवं अदीणवं (५०, ६०) ।

६. आगारि (उ, ५०) ।

७. जिच्चमाणं च (५०) ।

२३—जहा कुसग्गे उदगं
समुद्रेण समं मिणे ।
एवं माणुस्सगा कामा
देवकामाण अन्तिण ॥

२४—कुसग्गमेता इमे कामा
सन्निरुद्धंमि आउए ।
कस्स हेउं पुराकाउं
जोगक्खेमं न सविदे ? ॥

२५—इह कामाणियट्टस्स
अत्तट्टे अवरज्जई ।
'सोच्चा' नेयाउयं मग्गं
जं भुज्जो परिभस्सई' ॥

२६—इह कामणियट्टस्स
अत्तट्टे नावरज्जई ।
पूइदेहनिरोहेणं
भवे देवि ति मे सुयं ॥'

२७—डड्ढी जुई जसो वण्णो
आउं सुहमणुत्तरं ।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु
तत्थ से उववज्जई ॥

२८—बालस्स पस्स बालत्तं
अहम्मं पडिवज्जिया' ।
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्टे
नरए' उववज्जई ॥

यथा कुशापे उवकं
समुद्रेण समं भिनुयान् ।
एवं मानुष्यकाः कामाः
देव-कामानामन्तिके ॥

कुशाप-सात्रा इमे कामाः
सन्निरुद्धे आयुषि ।
कं हेतुं पुरस्कृत्य
योग-क्षेमं न सजिते ?

इह कामाऽनिवृत्तस्य
आत्मार्योऽपराध्यति ।
श्रुत्वा नैर्यातुकं मार्गं
यद्भूय परिभ्रष्टति ॥

इह काम-निवृत्तस्य
आत्मार्यां नापराध्यति ।
पूतिवेह-निरोधेन
भवेद्देव इति मयाश्रुतम् ॥

ऋद्धिर्द्युतिर्गोवर्णः
आयुः सुखमनुत्तरम् ।
भूयो यत्र मनुष्येषु
तत्र स उपपद्यते ॥

बालस्य पश्यबालत्वम्
अधर्मं प्रतिपद्य ।
त्यक्त्या धर्ममधर्मिणः
नरके उपपद्यते ॥

२३—मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग, देव सम्बन्धी काम-भोगों की तुलना में वैसे ही हैं, जैसे कोई व्यक्ति कुश की नोक पर टिके हुए जल-बिन्दु की समुद्र से तुलना करता है ।

२४—इस अति-संक्षिप्त आयु में ये काम-भोग कुशाप पर स्थित जल-बिन्दु जितने हैं । फिर भी किस हेतु को सामने रखकर मनुष्य योग-क्षेम को नहीं समझता ?

२५—इस मनुष्य भव में काम-भोगों से निवृत्त न होने वाले पुण्य का आत्म-प्रयोजन नष्ट हो जाता है । वह पार ले जाने वाले मार्ग को मुनकर भी बार-बार भ्रष्ट होता है ।

२६—इस मनुष्य भव में काम-भोगों से निवृत्त होने वाले पुण्य का आत्म-प्रयोजन नष्ट नहीं होता । वह पूतिवेह (शौचार्तिक शरीर) का निरोध कर देव होता है—रोमा देने मुता है ।

२७—(देवलोक से श्रुत होकर) वह जीव विपुल ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण, जीवित और अनन्तर सुख वाले मनुष्य-कुलों में उत्पन्न होता है ।

२८—नू बाल (अज्ञानी) जीव की मूर्खता को देख । वह अधर्म को प्रवृत्त कर, धर्म को छोड़, अधर्मिण वन नरक में उत्पन्न होता है ।

१. पुरोकाउं (५०) ।

२. पत्तो (५० पा०, ५० पा०) ।

३. पूइदेह निरोहेणं
अने देवे ति मे सुयं (५० पा०) ।

४. यह श्लोक धर्म में व्याख्यात नहीं है ।

५. पडिवज्जियो (अ, ५० पा०) ।

६. नरए (अ, ५) ।

उत्तरजभयणं (उत्तराध्ययन)

६२

अध्ययन ७ : श्लोक २६-३०

२९—धीरस्स पस्स धीरत्तं
सन्वधम्माणुवत्तिणो ।
चिच्चा अघम्मं धम्मिट्ठे'
देवेसु उववज्जई ॥

धीरस्य पश्य धीरत्वं
सन्वधमनुवर्तिनः ।
त्यक्त्वाऽधर्मं धर्मिष्ठः
देवेषु उपपद्यते ॥

२९—सब धर्मों का पालन करने वाले
धीर-पुरुष की धीरता को देख । वह अधर्म को
छोड़कर धर्मिष्ठ बन देवों में उत्पन्न होता है ।

३०—तुलियाण बालभावं
अबालं चेव पण्डिए ।
चदऊण बालभावं
अवा ऊं सेवए मुणि ॥
—त्ति वेमि ।

तोलयित्वा बाल-भावम्
अबालत्वं चैव पण्डितः ।
त्यक्त्वा बाल-भावम्
अबालत्वं सेवते मुनिः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३०—पण्डित मुनि बाल-भाव और
अबाल-भाव की तुलनाकर, बाल-भाव को
छोड़, अबाल-भाव का सेवन करता है ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अद्वैतम् अङ्गस्युषः :
काविलीयं

अष्टम अध्यायन :
कापिलीय

आस्तुष्य

कपिल ब्राह्मण था। लोभ की बाढ़ ने उसके मन में विरक्ति ला दी। उसे सही स्वरूप ज्ञात हुआ। वह मुनि बन गया। संयोगवशात् एक बार उसे चोरों ने घेर लिया। तब कपिल मुनि ने उन्हें उपदेश दिया। वह संगीतात्मक था। उसो का यहाँ संग्रह किया गया है। प्रथम मुनि गाते, चोर भी उनके साथ-ही-साथ गाने लग जाते। 'अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपवराए ।' 'न गच्छेज्जा ॥ यह प्रथम श्लोक ध्रुव पद था। मुनि कपिल द्वारा यह—अध्ययन गाया गया था, इसलिये इसे कापिलीय कहा गया है।^१ सूत्रकृताङ्ग चूर्णि में इस अध्ययन को 'गेय' माना गया है।^२

नाम दो प्रकार से होते हैं :—(१) निर्देश्य (विषय) के आधार पर और (२) निर्देशक (वक्ता) के आधार पर। इस अध्ययन का निर्देशक कपिल है, इसलिये इसका नाम कापिलीय रखा गया है।^३

इसका मुख्य प्रतिपाद्य है—उस सत्य की शोध जिससे दुर्गति का अन्त हो जाय। सत्य-शोध में जो बाधाएँ हैं उन पर भी बहुत सुन्दर प्रकाश डाला गया है। लोभ कैसे बढ़ता है, इसका स्वयं अनुभूत चित्र प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति के मन में पहले थोड़ा लोभ उत्पन्न होता है। वह उसकी पूर्ति करता है। मन पुनः लोभ से भर जाता है। उसकी पूर्ति का प्रयत्न होता है। यह क्रम चलता है परन्तु हर बार लोभ का उन्मार तीव्रता लिए होता है। उद्यो-उद्यो लोभ बढ़ता है त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता है। इसका अन्त तभी होता है जब व्यक्ति निर्लोभता की पूर्ण साधना कर लेता है।

उस काल और उस समय में कौशाम्बी नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसकी सभा में चौदह विद्याओं का पारगामी काश्यप नाम का ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम यशा था। उसके कपिल नाम का एक पुत्र था। राजा काश्यप से प्रभावित था। वह उसका बहुमान करता था। अचानक काश्यप की मृत्यु हो गई। उस समय कपिल की अवस्था छोटी थी। राजा ने काश्यप के स्थान पर दूसरे ब्राह्मण को नियुक्त कर दिया। वह ब्राह्मण जब घर से दरबार ने जाता तब छोड़े पर आरुढ़ हो छत्र धारण करता था। काश्यप की पत्नी यशा जब यह देखती तो पति की स्मृति में विह्वल हो रोने लग जाती थी। कुछ काल बीता। कपिल भी बड़ा हो गया था। एक दिन जब उसने अपनी माँ को रोते देखा तो इसका कारण पूछा। यशा ने कहा—“पुत्र। एक समय था जब तुम्हारे पिता इसी प्रकार छत्र लगाकर दरबार में जाया-आया करते थे। वे अनेक विद्याओं के पारगामी थे। राजा उनकी विद्याओं से आकृष्ट था। उनके निधन के बाद राजा ने वह स्थान दूसरे को दे दिया है।” तब कपिल ने कहा—“माँ। मैं भी विद्या पढ़ूँगा।”

१. बृहद् वृत्ति, पृष्ठ २८६ :

“...ताहे ताणवि पंचवि चोरसपाणि ताके कुड्ढेति, सोऽवि गावति पुवर्ग, “अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपवराए । किं नाम तं होज्ज कममं ? नेणाहं दुराहं ण गच्छेज्जा ॥१॥” एवं सम्बल्य सिलोगन्तरे पुक्कं गावति ‘अधुवेत्थाहि’, तत्थ केह पडमसिलोगे संकुद्धा, केह बीए, एवं जाव पंचवि सखा संकुद्धा पवतिपत्ति । “स हि भगवान् कपिलनामा” प्रवक्तं सत्प्रीतवान् ।

२. सूत्रकृताङ्ग चूर्णि, पृष्ठ ७ :

गेयं नाम सरसंचारेण, जवा काविकिज्जे—“अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपवराए ।” न गच्छेज्जा ॥”

३. भावश्यक निर्वृत्ति, गाथा १४१, वृत्ति :

निर्दयकवाजिनवचनं कापिलीयम् ।

यशा ने कहा—“ पुत्र ! यहाँ सारे ब्राह्मण ईर्ष्यालु हैं। यहाँ कोई भी तुम्हें विद्या नहीं देगा। यदि तू विद्या प्राप्त करना चाहता है तो श्रावस्ती नगरी में चला जा। वहाँ तुम्हारे पिता के परम मित्र इन्द्रदत्त नाम के ब्राह्मण हैं। वे तुम्हें विद्या पढ़ायेगे।”

कपिल ने माँ का आशीर्वाद ले श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया। पृष्ठते-पृष्ठते वह इन्द्रदत्त ब्राह्मण के यहाँ जा खड़ा हुआ। अपने समस्त रुक् अपरिचित युवक को देखकर इन्द्रदत्त ने पूछा—“तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?”

कपिल ने सारा वृत्तान्त सुनाया। इन्द्रदत्त कपिल के उत्तर से बहुत प्रभावित हुआ और उसके भोजन की व्यवस्था एक शास्त्रिभद्र नामक धनाढ्य वणिक् के यहाँ करके अध्यापन शुरू कर दिया। कपिल भोजन करने प्रतिदिन सैठ के यहाँ जाता और इन्द्रदत्त से अध्ययन करता। उसे एक दासी की पुत्री भोजन परोसा करती थी। वह हैसमुख स्वभाव की थी। कपिल कभी-कभी उससे मजाक कर लेता था। दिन बीते, उनका सम्बन्ध गाढ़ हो गया। एक बार दासी ने कपिल से कहा—“तू मेरा सर्वस्व है। तेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं निर्विहा के लिए दूसरों के यहाँ रह रही हूँ अन्यथा तो मैं तेरी आशा में रहती।”

इसी प्रकार कई दिन बीते। दासी-महोत्सव का समय निकट आया। दासी का मन बहुत उदास हो गया। रात्रि में उसे नींद नहीं आई। कपिल ने इसका कारण पूछा। उसने कहा—“दासी-महोत्सव आ गया है। मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। मैं कैसे महोत्सव को मनाऊँ? मेरी सखियाँ मेरी निर्धनता पर हँसती हैं और मुझे तिरस्कार को दृष्टि से देखती हैं।” कपिल का मन खिन्न हो गया। उसे अपने अपौरुष पर रोष आया। दासी ने कहा “तुम इतना धन्य मत खोजो। समस्या का एक समाधान भी है। इसी नगर में धन नाम का एक सैठ रहता है। जो ठयर्कि प्रातःकाल उसे सबसे पहले ब्रधाई देता है उसे वह दो माशा सोना देता है। तुम वहाँ जाओ। उस ब्रधाई देकर दो माशा सोना ले आओ। इससे मैं पूर्णता से महोत्सव मना लूँगी।”

कपिल ने बात मान ली। कोई व्यक्ति उससे पहले न पहुँच जाए, यह सोच वह तुरंत घर से रवाना हो गया। रात्रि का समय था। नगर-आरक्षक इधर-उधर घूम रहे थे। उन्होंने इसे धीरे समझ पकड़ कर बाँध लिया और प्रभत में उसे प्रसेनजित् राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजा ने उससे रात्रि में अकेले घूमने का कारण पूछा। कपिल ने सहज व सरल भाव से सारा वृत्तान्त सुना दिया। राजा उसकी स्पष्टवादिता पर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—“ब्राह्मण ! आज मैं तुम्हें पर बहुत प्रसन्न हूँ। तू जो कुछ माँगेगा वह मिलेगा।” कपिल ने कहा “राजन् ! मुझे कुछ सोचने का समय दिया जाए।” राजा ने कहा—“यथा इच्छा।”

कपिल राजा की आज्ञा ले अशोक वनिका में चला गया। वहाँ उसने सोचा—“दो माशा सोने से क्या होगा? क्यों न मैं १०० मोहरें माँग लूँ?” चिन्तन आगे बढ़ा। उसे १०० मोहरें भी तुच्छ लगने लगीं। हजार, लाख, करोड़ तक उसने चिन्तन किया। परन्तु मन नहीं भरा। सन्तोष के बिना शान्ति कहाँ? उसका मन आन्दोलित हो उठा। तत्क्षण उस समाधान मिल गया। मन वैराग्य से भर उठा। चिन्तन का प्रवाह मुड़ा। उसे जाति-स्पृति-ज्ञान प्राप्त हो गया। वह स्वयं-बुद्ध हो गया। वह स्वयं अपना लुंघन कर, प्रकुल वदन हो राजा के पास आया। राजा ने पूछा—“क्या सोचा है, जल्दी कहो।” कपिल ने कहा—“राजन् ! समय बीत चुका है। मुझे जो कुछ पाना था पा लिया है। तुम्हारी सारी वस्तुएँ मुझे तुम नहीं कर सकीं। किन्तु उनकी अनाकोंशा ने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया है। जहाँ लाभ है वहाँ लोभ है। ज्यों-ज्यों लाभ बढ़ता है त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है। दो माशा सोने को प्राप्त के लिए मैं घर से निकला था किन्तु मेरी वृत्ति करोड़ में भी नहीं हुई। वृष्णा अनन्त है। इसकी पूर्ति वस्तुओं की उपलब्धियों से नहीं होती, वह होती है त्याग से, अनाकोंशा से।”

राजा ने कहा—“ब्राह्मण ! मेरा वचन पूरा करने का मुझे अवसर दे। मैं करोड़ मोहरों भी देने के लिए तैयार हूँ।” कपिल ने कहा—“राजन् ! तुष्णा की अग्नि अब शान्त हो गई है। मेरे भीतर करोड़ से भी अधिक मृत्यवान् वस्तु पैदा हो गई है। मैं अब करोड़ का क्या करूँ ?” मुनि कपिल राजा के सान्निध्य से दूर चला गया। साधना चलती रहो। वे मुनि छह मास तक छद्मस्थ अवस्था में रहे।

राजगृही और कौशाम्बी के बीच १८ योजन का एक महा अरण्य था। वहाँ बलभद्र प्रमुख इन्द्रदास जाति के पाँच सौ चोर रहते थे। कपिल मुनि ने एक दिन ज्ञान-बल से जान लिया कि सभी चोर एक दिन अपनी पापकारी वृत्ति को छोड़कर संबुद्ध हो जायेंगे। उन सबको प्रतिबोध देने के लिए कपिल मुनि आवस्ती से चलकर उस महा अटवो में आये। चोरों के सन्देशवाहक ने उन्हें देस लिया। वह उन्हें पकड़ अपने सेनापति के पास ले गया। सेनापति ने इन्हें अमण समझ कर छोड़ते हुए कहा—“अमण ! कुछ संगान करो।” अमण कपिल ने हावभाव से संगान शुरू किया। “अधुवे असासयमि, संसारमि दुक्खपरार” —यह ध्रुवपद था। प्रत्येक श्लोक के साथ यह गाया जाता था। कई चोर प्रथम श्लोक सुनते ही संबुद्ध हो गये, कई दूसरे, कई तीसरे, कई चौथे श्लोक आदि सुनकर। इस प्रकार पाँच सौ चोर प्रतिबुद्ध हो गये। मुनि कपिल ने उन्हें दीक्षा दी और वे सभी मुनि हो गये।

प्रसंगवश इस अध्ययन में त्रायल्याग, संसार की असारता, कुतार्थिकों की अज्ञाता, अहिंसा-विवेक, क्षो-संगम का त्याग आदि-आदि विषय भी प्रतिपादित हुए हैं।

यह अध्ययन ‘ध्रुवक’ छन्द में प्रतिबद्ध है। जो छन्द सर्व प्रथम श्लोक में तथा प्रत्येक श्लोक के अन्त में गाया जाता है, उसे ‘ध्रुवक’ कहते हैं। वह तीन प्रकार का होता है—छह पदों वाला, चार पदों वाला और दो पदों वाला :—

ॐ गिज्जह् पुक्वं धिय, पुण पुणो सव्वकव्वबोधेसु।

धुवयांते तमिह निविहं, छप्पायं चउपयं दुपयं ॥ (बृहद् वृत्ति, पत्र २८६)

इस अध्ययन में चार पदों वाले ध्रुवक का प्रयोग हुआ है।

अट्ठमं अज्झयणं : अष्टम अध्यायन

काविलीयं : कापिलीयम्

मूल

१—'अधुवे असासयंमि'
संसारंमि दुक्खपउराए ।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं
'जेणाहं दोग्गहं न गच्छेज्जा'^१॥

२—विजहित्तु पुव्वसंजोगं
न सिणेहं कहिंचि कुव्वेज्जा ।
असिणेह सिणेहकरेहिं
दोसपओसेहि^२ मुच्चए भिक्खू ॥

३—तो नाणदंसणसमग्गो
हियन्तिस्सेसाए^३ सव्वजीवाणं ।
तेसि विमोक्खणट्ठाए
भासई मुणिवरो विगयमोहो ॥

४—सव्वं गन्थं कलहं च
विप्पज्जे तहाविहं^४ भिक्खू ।
सव्वेमु कामजाएसु^५
पासमाणो न लिप्पई ताई ॥

संस्कृत छाया

अधु वेऽशाश्वते
संसारं दुःख-प्रचुरके ।
किं नाम तद् भवेत्कर्मकं
येनाहं दुर्यति न गच्छेयम् ॥

विहाय पूर्व-संयोगं
न स्नेहं क्वचित् कुर्वीत ।
अस्नेहः स्नेहकरेषु
दोष-प्रदोषैः मुच्यते भिक्षुः ॥

ततो ज्ञान-दर्शन-समग्रः
हित-निःश्रेयसाय सर्वजीवानाम् ।
तेषां विमोक्षणार्थं
भाषते मुनिवरो विगत-मोहः ॥

सर्वं धन्यं कलहं च
विप्रजट्टान् तथाविधं भिक्षुः ।
सर्वेषु काम-जातेषु
पश्यन् न लिप्यते त्रायी ॥

हिन्दी अनुबाध

१—अधुब, अशाश्वत धीर दुःख-महल
संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है, जिससे मैं
दुर्यति में न जाऊँ ?

२—पूर्व सम्बन्धों का त्याग कर, किसी
भी वस्तु में स्नेह न करे । स्नेह करने वालों के
साथ भी स्नेह न करने वाला भिक्षु दोषों और
प्रदोषों से मुक्त हो जाता है ।

३—केवल ज्ञान और दर्शन से मुक्त तथा
विगतमोह मुनिवर ने सब जीवों के हित और
कल्याण के लिए तथा उन पाँच सौ चोरो की
मूर्ति के लिए कहा ।

४—भिक्षु कर्म-बन्ध की हेतुभूत सभी
प्रस्थियों और कलह का त्याग करे । काम-
भोगों के सब प्रकारों में दोष देखता हुआ
आत्म-रक्षक भूनि उनमें लिस न बने ।

१. अधुवासि मोहगहणए (नाराजुंजीपाः) ।

२. जेणाहं (धं) दुरगइतो मुच्छेज्जा (वृ०, वृ० पा०) ।

३. दोसपपइ (वृ०) ; दोसपदसेहि (वृ० पा०) ।

४. हियन्तिस्सेसाव (वृ०, छ०) ।

५. तहाविहो (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

६. सव्वेहि कामजाएहि (वृ०) ।

५—भोगामिसदोसविसणो
हियनिस्सेयसबुद्धिबोच्चत्थे ।
वाले य मन्दिण मूढे
बज्जई मच्छिप्पा व खेलमि ॥

६—दुपरिच्चया इमे कामा
नो मुजहा अधीरपुरिसेहि ।
अह सन्ति मुक्कया साहू
जे तरन्ति 'अतरं वणिया व' ॥

७—समणा मु एगे वयमाणा
पाणवहं मिया अयाणन्ता ।
मन्दा निरयं गच्छन्ति
वाला पावियाहि दिट्ठीहि ॥

८—न ह पाणवहं अणुजाणे
मुक्केज कयाइ सव्वदुक्खाणं ।
एवारिएहि अक्खायं
जेहि इमो साहुधम्मो पन्नतो ॥

९—पाणे य नाइवाएज्जा
से 'समि ए ति' वुच्चई ताई ।
तओ से पावयं कम्मं
निज्जाइ उदगं व थलाओ ॥

१०—'जगनिस्सिएहि भूएहि
तसनामेहि थावरेहि च ।'
नो तेसिमारभे दंडं
मणसा वयसा कायसा चेव ॥

भोगामिष-दोष-विषणः
व्यत्यस्त-हित-निःश्रेयस-बुद्धिः ।
बालश्च मन्दो मूढः
बध्यते मक्षिकेव क्षेले ॥

दुष्परित्यजा इमे कामाः
नो मुहानाः अधीर-पुरुषः ।
अथ सन्ति मुक्ताः साधवः
ये तरन्त्यतरं बणिज इव ॥

श्रमणाः स्मः एके बहन्तः
प्राण-वधं युगा अजानन्तः ।
मन्दा नरकं गच्छन्ति
बालाः पापिकाभिर्दृष्टिभिः ॥

न खलु प्राण-वधं अनुजानन्
मुच्येत कदाचित्सर्व-दुःखैः ।
एवमार्योराख्यातं
यैरयं साधु-धर्मः प्रज्ञप्तः ॥

प्राणादिव नातिपातयेत्
स समित इत्युच्यते त्रायी ।
ततः अथ पापकं कर्म
निर्याति उवकमिव स्थलात् ॥

जगन्निष्ठेषु भूतेषु
असनामसुथावरेषु च ।
न तेषु दण्डमारभेत
मनसा बज्रसाकायेन चैव ॥

५—आत्मा को दूषित करने वाले
भोगामिष (आसक्ति-जनक भोग) में निमग्न,
हित और श्रेयस् में विपरीत बुद्धि बाला,
अज्ञानी, मन्द और मूढ ओव उसी तरह
(कर्मों से) बंध जाता है जैसे श्लेष्म में मक्खी ।

६—ये काम-भोग दुस्त्यज हैं, अधीर
पुरुषों द्वारा ये मुत्यज नहीं हैं । जो मुक्ता
साधु हैं, वे दुस्तर काम-भोगों को उसी प्रकार
तर जाते हैं, जैसे बणिक् समुद्र को ।

७—कुछ पशु की भाँति अज्ञानी पुरुष
'हम श्रमण हैं' ऐसा कहते हुए भी प्राण-वध
को नहीं जानते । वे मन्द और बाल-पुरुष
अपनी पापमयी दृष्टियों से नरक में जाते हैं ।

८—प्राण-वध का अनुमोदन करने वाला
पुरुष कभी भी सर्व दुःखों से मुक्त नहीं हो
सकता । उन आर्य तीर्थङ्गियों ने ऐसा कहा है,
जिन्होंने हम माधु-धर्म की प्रज्ञापना की ।

९—जो जीवों की हिंसा नहीं करता,
उस त्रायी मुनि को 'समित' (सम्पक् प्रवृत्त)
कहा जाता है । उससे पाप-कर्म कैसे ही दूर
हो जाते हैं, जैसे उन्नत प्रदेश से पानी ।

१०—जगत् के आश्रित जो ब्रह्म और
स्वाभाव प्राणी हैं, उनके प्रति मन, बचन और
काया—किसी भी प्रकार से दण्ड का प्रयोग
न करे ।

१. सव्वे (वू) ।

२. वणिया व ससुहं (वू० पा०. वू०) ; अतरं वणिजा व (वू० पा०) ।

३. नरयं (वू० पा०, वू०) ।

४. एवारिएहि (अ, अ०) ; एवमारिएहि (आ, अ०) ।

५. समिष ति (वू०) ; समीए ति (अ) ; समीइ ति (उ, अ०) ।

६. मिसणाइ (वू० पा०) ।

७. जगनिस्सिपाण भूयानं तसानं थावराण व । (वू० पा०) ; जगनिस्सित भूतानं तसणाभानं च थावराणं व । (वू०) ;
जगनिस्सिसेध थावराणमेध भूतेषु तसणामेध व । (वू० पा०) ; जगनिस्सिएहि भूएहि तसनामेहि थावरे हि वा । (वू०) ।

काविलीयं (कापिलीय)

१०१

अध्ययन ८ : श्लोक ११-१६

११—सुदेसणाओ नचचाणं
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ।
जायाए धासमेसेज्जा
रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ॥

१२—पन्ताणि चैव सेवज्जा
सीयपिडं पुराणकुम्मासं ।
अदु बुक्कसं पुलगं वा
'जवणट्टाए नितेवए' मंथुं ॥

१३—जे लक्खणं च सुविणं च
अंगविज्जं च जे पउजन्ति ।
न हू ते समणा वुचचन्ति
एवं आयरिएहि^१ अक्खायं ॥

१४—इहजीवियं अणियमेत्ता
पट्ठट्टा समाहिजोएहि ।
ते कामभोगरसगिद्धा
उववज्जन्ति आसुरे काए ॥

१५—ततो वि य उवट्ठित्ता
संसारं बहु अणुपरियडन्ति^२ ।
बहुकम्मलेवलित्ताणं
बोही होइ^३ सुदुल्लहा तेसि ॥

१६—कसिणं पि जो इमं लोयं
पडिपुणं दलेज्ज इक्कस्स ।
तेणावि से न संतुस्से^४
इइ दुप्पूरए इमे आया ॥

शुद्धं घणं जात्वा
तत्रस्थापयेत् भिक्षुरात्मात्मनः ।
यात्रावेष्टासमेधयेद्
रस-गृद्धो न स्याद् भिक्षावः ॥

प्रान्तानि चैव सेवेत
शीत-पिण्डं पुराण-कुलमायम् ।
अथ 'बुक्कसं' पुलाकं वा
यापनायं निषेवेत मन्युम् ॥

ये लक्षणं च स्वप्नं च
अङ्ग-विद्यां च ये प्रयुञ्जन्ति ।
न खलु ते धमणा उच्यन्ते
एवमाचार्ये राह्यात्मनः ॥

इह जीवितं अनियम्य
प्रभ्रष्टाः समाधि-योगेभ्यः ।
ते कामभोग-रस-गृद्धाः
उपपद्यन्ते आसुरे काये ॥

ततोऽपि च उववृत्त्य
संसारं बहुमनुष्यं यदन्ति ।
बहुकर्म-लेप-लित्ताणां
बोधिर्भवति सुदुर्लभात्मा ॥

कृत्स्नमपि य इमं लोकं
प्रतिपूर्णं दद्यादेकस्मै ।
तेनापि स न सन्तुष्येत्
इति दुष्पूरकोऽयमात्मा ॥

११—भिक्षु सुद्ध एषणाओ की जानकर
उनमें अपनी आत्मा की स्थापित करे । यात्र
(संयम-निर्वाह) के लिए श्रास की एषणा करे ।
भिक्षा-जीवी रसों में गृद्ध न हो ।

१२—भिक्षु प्रान्त (नौरस) अन्न-पान,
शीत-पिण्ड, पुराण, बुक्कस (मारहीन),
पुलाक (रूखा) या मंथु (बैर या सत्तू का चूर्ण)
का जीवन-यापन के लिए सेवन करे ।

१३—जो लक्षण-धाम्म, स्वप्न-शास्त्र
और अङ्ग-विद्या का प्रयोग करते हैं, उन्हें खासु
नहीं कहा जाता—एसा आचार्यों ने कहा है ।

१४—जो इस जन्म में जीवन की
अनियमित रवकर समाधि-योग से परिभ्रष्ट
होते हैं, वे काम-भोग और रसों में आमल
बने हुए गुण्य असुर-काय में उत्पन्न होते हैं ।

१५—वहाँ से निकल कर भी वे संसार में
बहुत पर्यटन करते हैं । वे प्रचुर कर्मों के लेप
से लित होते हैं । इसलिए उन्हें बोधि प्राप्त
होना अत्यन्त दुर्लभ है ।

१६—धन-धान्य से परिपूर्ण यह समूचा
लोक भी यदि कोई किसी को दे दे—उससे
भी वह सन्तुष्ट नहीं होता—युम नहीं होता,
इतना दुष्पूर है यह आत्मा ।

१. जवणट्टा वा सेवए (वृ०); जवणट्टाए नितेवए (वृ० पा०) ।

२. आयरिएहि (अ, वृ०) ।

३. अनुपरियडन्ति (वृ०); अनुपरिसंति (अ, वृ०); अनुचरन्ति (वृ० पा०) ।

४. जत्थ (वृ० पा०) ।

५. संतुसिज्जा (वृ०); तुसिज्जा (उ); तुसिज्जा (अ); (सं) तुस्से (वृ०) ।

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

१०२

अध्ययन ८ : श्लोक १७-२०

१७—जहा लाहो तहा लोहो
लाहा लोहो पवडडई ।
दोमासकयं कज्जं
कोडीए वि न निट्ठियं ॥

यथा लाभस्तथा लोभः
लाभाल्लोभः प्रवर्धते ।
द्विमास-कृतं कार्यं
कोट्याऽपि न निष्ठितम् ॥

१७—जैसे लाभ होता है वैसे ही लोभ होता है । लाभ से लोभ बढ़ता है । दो मासे सोने से पुरा होने वाला कार्य करोड़ से भी पुरा नहीं हुआ ।

१८—नो रक्खसीसु गिज्जेज्जा
गंडवच्छासु ऽणगवित्तासु ।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता
खेल्लन्ति जहा व दासेहि ॥

न राक्षसीषु गुध्येत्
गण्डवक्षास्त्वनेक-चित्तासु ।
या पुरुषं प्रलोभ्य
खेलन्ति यथे व दासैः ॥

१८—वधू में शत्रिय (स्त्रियों) वाली, अनेक चित्त वाली नया राक्षसी की भाँति भयावह स्त्रियों में आमक्त न हो, जो पुरुष को प्रलोभन में डालकर उसे दाम की भाँति नचाती हैं ।

१९—नारीसु नोपगिज्जेज्जा
इत्थीविप्पजहे अणगारे ।
धम्मं च पेसलं नच्चा
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ॥

नारीषु नोपगुध्येत्
स्त्री-विप्रजहोऽनगारः ।
धर्मं च पेशलं ज्ञात्वा
तत्र स्थापयेद् भिक्षुरात्मानम् ॥

१९—स्त्रियों को त्यागने वाला अनगार उनमें गूढ़ न बने । भिक्षु धर्म को अति मनोज्ञ जानकर उसमें अपनी आत्मा को स्थापित करे ।

२०—इइ एस धम्मे अक्खाए
कविलेणं च विसुद्धपन्नेणं ।
तरिहन्ति जे उ काहिल्लि
तेहि आराहिया दुवे लोग ॥
—त्ति बेमि ।

इत्येष धर्म आख्यातः
कपिलेन च विशुद्ध-प्रज्ञेन ।
तरिष्यन्ति ये तु कश्चिद्यन्ति
नैराश्रयितोऽपि लोको ॥
—इति त्रयोमि ।

२०—इस प्रकार विगूढ़ प्रज्ञा वाले कपिल ने यह धर्म कहा । जो इसका आचरण करेंगे वे तमोग और उन्होंने दोनों लोकों को आराध लिया ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

नवमं अङ्गवर्णनं :
नमिपव्वज्जा

नवम अध्ययन :
नमि-प्रव्रज्या

आसुख

मुनि वहुो बनता है जिसे बोधि प्राप्त है। वे तीन प्रकार के होते हैं—स्वयं-बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध और बुद्ध-बोधित। (१) जो स्वयं बोधि प्राप्त करते हैं, उन्हें स्वयं-बुद्ध कहा जाता है, (२) जो किसी एक घटना के निमित्त से बोधि प्राप्त करते हैं, उन्हें प्रत्येक-बुद्ध कहा जाता है और (३) जो बोधि-प्राप्त व्यक्तियों के उपदेश से बोधि-लाभ करते हैं, उन्हें बुद्ध-बोधित कहा जाता है।^१

इस सूत्र में तीनों प्रकार के मुनियों का वर्णन है—(१) स्वयं-बुद्ध कपिल का आठवें अध्ययन में, (२)—प्रत्येक-बुद्ध नमि का नौवें अध्ययन में और (३) बुद्ध-बोधित—संजय का अठारहवें अध्ययन में।

इस अध्ययन का सम्बन्ध प्रत्येक-बुद्ध मुनि से है। करकण्डु, द्विमुख, नमि और नगगति—ये चारो सभकालीन प्रत्येक-बुद्ध हैं। इन चारों प्रत्येक-बुद्धों के जीव पुष्पोत्तर नाम के विमान से एक साथ च्युत हुए थे। चारों ने एक साथ पत्रजया ली, एक ही समय में प्रत्येक-बुद्ध हुए, एक ही समय में केवली बने और एक ही समय में सिद्ध हुए।^२

करकण्डु कटिग का राजा था, द्विमुख पंचाल का, नमि विदेह का और नगगति गंधार का।

बूढ़ा ब्रह्म, इन्द्रध्वज, एक कंकण की नीरवता और मंजरी-विहीन आम वृक्ष—ये चारों घटनाएँ क्रमशः चारों की बोधि-प्राप्ति की हेतु बनीं।

एक बार चारों प्रत्येक-बुद्ध विहार करते हुए क्षितिप्रतिष्ठित नगर में आए। वहाँ व्यन्तरदेव का एक मन्दिर था। उसके चार द्वार थे। करकण्डु पूर्व दिशा के द्वार से प्रविष्ट हुआ, द्विमुख दक्षिण द्वार से, नमि पश्चिम द्वार से और नगगति उत्तर द्वार से। व्यन्तरदेव ने यह सोच कर कि मैं साधुओं को पीठ देकर कैसे ब्रह्म अपना मुंह चारों ओर कर लिया।

करकण्डु खुजली से पीड़ित था। उसने एक कोमल कण्डूयन लिया और कान को खुजलाया। खुजला लेने के बाद उसने कण्डूयन को एक ओर धिपा लिया। द्विमुख ने यह देख लिया। उसने कहा—“मुने! अपना राज्य, राष्ट्र, पुर, अंतःपुर—आदि सब कुछ छोड़कर तुम इस (कण्डूयन) का संघय क्यों करते हो?” यह सुनते ही करकण्डु के उत्तर देने से पूर्व ही नमि ने कहा—“मुने! आपके राज्य में आपके अनेक कृत्यकर—आज्ञा पालने वाले थे। उनका

१—मंदी, सूत्र ३०।

२—(क) इसबोधो, पत्र १४४ : नगगति का मूल नाम सिद्धरथ था। वह कनकमाला (वेताव्य पर्वत पर तोरणपुर नगर के राजा इन्द्रवर्धन की पुत्री) से मिलने पर्वत पर जाया करता था। प्रायः वर्षों पर रहने के कारण उसका नाम ‘नगगति’ पड़ा।

(ख) क्रमकार जालक में डले तक्षशिला का राजा बताया गया है और नाम नगगती (नगगति) दिया है।

३—उत्तराख्ययन निर्युक्ति, गाथा २७० :

पुंजुतराव खणं पञ्चरत्ना होह एगसमणं।

पत्तेवज्जकेवलि सिद्धि गया एगसमणं॥

कार्य था दण्ड देना और दूसरों का पराभव करना । इस कार्य को छोड़ आप मुनि बने । आज आप दूसरों के दोष क्यों देख रहे हैं ?” यह सुन नगति ने कहा—“जो मोक्षार्थी हैं, जो आत्म-मुक्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, जिन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है, वे दूसरों की गद्दा कैसे करेंगे ?” तब करकण्ठ ने कहा—“मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त साधु और ब्रह्मचारी यदि अहित का निवारण करते हैं तो वह दोष नहीं है । नमि, द्विमुख और नगति ने जो कुछ कहा है, वह अहित-निवारण के लिए हो अतः वह दोष नहीं है ।”^१

ऋषिभाषित प्रकीर्णक में ४५ प्रत्येक-बुद्ध मुनियों का जीवन निबद्ध है । उनमें से २० प्रत्येक-बुद्ध अरिष्टनेमि के तीर्थ में, १५ पार्श्वनाथ के तीर्थ में और १० महावीर के तीर्थ में हुए हैं।^२

(१) अरिष्टनेमि के तीर्थ में होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—नारद	११—मंजली पुत्र
२—वसिष्ठ पुत्र	१२—धाक्षवत्य
३—असित दत्तिल	१३—मन्त्रय भयाली
४—भारद्वाज अंगिरस	१४—बाहक
५—पुष्पसाल पुत्र	१५—भद्ररायण
६—तत्कलचीरि	१६—सोरियायण
७—कुर्मा पुत्र	१७—विदु
८—केतकी पुत्र	१८—धर्षण कृष्ण
९—महाकाश्यप	१९—आदियायण
१०—तेतलि पुत्र	२०—तत्कलवादी

(२) पार्श्वनाथ के तीर्थ में होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—गाहावली-पुत्र तरुण	६—चन्द्रमान
२—द्वग्भाल	७—वायु
३—राम पुत्र	८—पद्म
४—हरिगिरि	९—गिरि
५—अम्बुज	१०—महाशाल-पुत्र अरुण
६—मालिग	११—ऋषिगिरि
७—वारतक	१२—उद्दालक
८—आर्द्रक	

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २७६-२७६ :

जया रज्जं च रट्टं च, पुरं अंतर्वरं तदा ।
सत्त्वमेवं परिचचज्ज, संख्यं किं करेसिं ? ॥
जया ते वेहण रज्जे, कया किण्णकरा वह् ।
तेसि किण्णं परिचचज्ज, अज्ज किण्णकरो भव ॥
जया सत्त्वं परिचचज्ज, सुक्खसाय चड्डीसं भव ।
परं गरहसी कीसं, असनीसेसकारण ॥
सुक्खसायं पवन्नेउ, साहुसं बभयसिं ।
अहिअत्थं निवारितो, न दोसं बभूमहिंसि ॥

२—इतिमासिय, षडमा संगहिणी, गाथा १ :

पत्तव बुद्धमिस्सिणो, कीसं तित्थे अरिट्ठोमिस्स ।
पामस्स य पण्णस्स, वीरस्स बिलीणमोहस्स ॥

(३) महावीर के तीर्थ में होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—वित तारायण

६—इन्द्रनाग

२—भोगिरि

७—सोम

३—सामि-पुत्र बुद्ध

८—यम

४—संजय

९—वत्थल

५—द्रोपायन

१०—वैश्रमण

करकण्णु आदि चार प्रत्येक-बुद्धों का उल्लेख इस तालिका में नहीं है।

विदेह राज्य में दो नमि हुए हैं। दोनों अपने-अपने राज्य का त्यागकर अनगर बने। एक तीर्थङ्कर हुए, दूसरे प्रत्येक-बुद्ध।^१ इस अध्ययन में दूसरे नमि (प्रत्येक-बुद्ध) की प्रवज्या का विवरण है, इसलिए इसका नाम नमि-प्रवज्या रखा गया है।

मालव देश के सुदर्शनपुर नगर में मणिरथ राजा राज्य करता था। उसका कनिष्ठ भाता युगबाहु था। मदनरेखा युगबाहु की पत्नी थी। मणिरथ ने कपट पूर्वक युगबाहु को मार डाला। मदनरेखा उस समय गर्भवती थी। उसने जंगल में एक पुत्र को जन्म दिया। उस शिशु को मिथिला-नरेश पद्मरथ ले गया। उसका नाम 'नमि' रखा।

पद्मरथ के श्रमण बन जाने पर 'नमि' मिथिला का राजा बना। एक बार वह दाह-उत्तर से आक्रान्त हुआ। छह मास तक धीरे वेदना रही। उपचार चला। दाह-उत्तर को शान्त करने के लिए रानियों स्वयं चन्दन घिसतीं। एक बार सभी रानियाँ चन्दन घिस रही थीं। उनके हाथों में पड़ने हुए कंकण बज रहे थे। उनकी आवाज से 'नमि' खिन्न हो उठा। उसने कंकण उतार लेने को कहा। सभी रानियाँ ने सौभाग्य-चिह्न स्वरूप एक-एक कंकण को छोड़कर शेष सभी उतार दिए।

कुछ देर बाद राजा ने अपने मन्त्री से पूछा—“कंकण का शब्द सुनाई क्यों नहीं दे रहा है?” मंत्री ने कहा—“स्वामिन्! कंकणों के घर्षण का शब्द आपको अप्रिय लग था इसलिए सभी रानियों ने एक-एक कंकण रखकर शेष सभी उतार दिए। एक कंकण से घर्षण नहीं होता और घर्षण के बिना शब्द कहाँ से उठे?”

राजा नमि प्रबुद्ध हो गया। उसने सोचा सुख अकेलेपन में है—जहाँ द्वन्द्व है—दो हैं—वहाँ दुःख है। विरक्त भाव से वह आगे बढ़ा। उसने प्रव्रजित होने का हृदय संकल्प किया।

अकस्मात् ही नमि को राज्य छोड़ प्रव्रजित होते देख उसकी परीक्षा के लिए इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर आता है, प्रणाम कर नमि को लुभाने के लिए अनेक प्रयत्न करता है और कर्णव्य-बोध देता है। राजा नमि ब्राह्मण को अध्यात्म का गहरी बात बताता है और संसार की असरता का बोध देता है।

इन्द्र ने कहा—“राजन्! हस्तगत रमणीय भोगों को छोड़कर अपरोक्ष काम-भोगों की वांछा करना वया उचित कहा जा सकता है (श्लोक ५१)।” राजा ने कहा—“ब्राह्मण! काम त्याज्य है, वैशत्य हैं, विष के समान हैं, आशोविष सर्प के तुल्य हैं। काम-भोगों की इच्छा करने वाले उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति को प्राप्त होते हैं (श्लोक ५३)।”

“आत्म-विजय ही परम विजय है”-इस तथ्य को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है। इन्द्र ने कहा—“राजन्! जो कई राजा तुम्हारे सामने नहीं झुकते, पहले उन्हें वश में करो, फिर मुनि बनना (श्लोक ३२)।” नमि ने कहा—

१—उत्तराध्ययन निर्णुक्ति, गाथा २६७:

दुग्गिहि नमी विदेहा, रजाहं पण्हिज्जण पण्हिया।

एगो नमितित्थयरो, एगो पत्तेबुद्धो अ॥

“जो मनुष्य दुर्जय संग्राम में दस लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो व्यक्ति एक आत्मा को जीतता है, वह उसकी परम विजय है। आत्मा के साथ युद्ध करना हो श्रेयस्कर है। दूसरों के साथ युद्ध करने से क्या लाभ ? आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जीत कर मनुष्य सुख पाता है। पाँच इन्द्रियाँ तथा क्रोध, मान, माया, लोभ और मन—ये दुर्जय हैं। एक आत्मा को जीत लेने पर ये सब जीत लिए जाते हैं (श्लोक ३४-३६)।”

“संसार में न्याय-अन्याय का विवेक नहीं है—इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति यहाँ हुई है। इन्द्र ने कहा—“राजन् ! अभी तुम चोरों, लुटेरों, गिरहकों का निग्रह कर नगर में शान्ति स्थापित करो, फिर मुनि बनना (श्लोक २८)।” नमि ने कहा—“ब्राह्मण ! मनुष्यों द्वारा अनेक बार मिथ्या-दण्ड का प्रयोग किया जाता है। अपराध नहीं करने वाले पकड़े जाते हैं और अपराध करने वाले छूट जाते हैं (श्लोक ३०)।”

इस प्रकार इस अध्ययन में जीवन के समग्र दृष्टिकोण को उपस्थित किया है। अन्यान्य आश्रमों से संन्यास आश्रम श्रेष्ठ है (श्लोक ४४), दान से संयम श्रेष्ठ है (श्लोक ४०), सन्तोष त्याग में है, भोग में नहीं (श्लोक ४८-४९) आदि-आदि भावनाओं का स्फुट निर्देश है। जब इन्द्र ने देखा कि राजा नमि अपने संकल्प पर अडिग है, तब उसने अपना मूल रूप प्रकट किया और नमि की स्तुति कर चला गया।

नवमं अङ्गवर्णनं : नवम अध्यायन नमिपव्वज्जा : नमि-प्रव्रज्या

मूल

१—चइऊण देवलांगाओ
उववन्नो माणुसंमि लोगमि ।
उवसन्तमोहणज्जो
सरई पोरणिणं जाइ ॥

संस्कृत छाया

च्युत्वा देवलोकान्
उपपन्नो मानुषे लोके ।
उपशान्त-मोहनीयः
स्मरति पौराणिकीं जातिम् ॥

हिन्दी अनुवाद

१—नमिराज का जीव देवलोक से घृप्त
होकर मनुष्य-लोक में उत्पन्न हुआ । उसका
मोह उपशान्त था जिससे उसे पूर्व-जन्म की
स्मृति हुई ।

२—जाइ सरित् भयवं
सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मं ।
पुत्तं ठवेत्तु रज्जे
अभिणिक्वमई नमो राया ॥

जाति स्मृत्वा भगवान्
स्वयं-संबुद्धोऽनुत्तरे धर्मे ।
पुत्रं स्थापयित्वा राज्ये
अभिनिष्कामति नमोराजा ॥

२—भगवान् नमिराज पूर्व-जन्म की
स्मृति पाकर अनुत्तर धर्म की आराधना के
लिए स्वयं-संबुद्ध हुआ और राज्य का भार पुत्र
के कंधों पर डालकर अभिनिष्क्रमण किया—
प्रव्रज्या के लिए चल पड़ा ।

३—से देवलांगसरिसं
अन्तेउरवरगओ वरे भाए ।
भुंजितु समी राया
बुद्धो भोगे परिस्सयई ॥

स देवलोक-सदृशान्
वरान्तःपुर-गतो वरान् भोगान् ।
भुक्त्वा नमोराजा
बुद्धो भोगान् परित्यजति ॥

३—उस नमिराज ने प्रवर अन्तःपुर में
रहकर देवलोक के भोगों के समान प्रधान
भोगों का भोग किया और संबुद्ध होने के
पश्चात् उन भोगों को छोड़ दिया ।

४—मिहिलं सपुरजणवयं
बलमोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिनिक्खन्तो
एगन्तमहिट्ठिओ अयवं ॥

मिथिलां सपुरजनपदां
बलमवरोधं च परिजनं सर्वम् ।
त्यक्त्वाऽभिनिष्कान्तः
एकान्तमधिष्ठितो भगवान् ॥

४—भगवान् नमिराज ने नगर और
जन-पद सहित मिथिला नगरी, सेना, रनिवास
और सब परिजनों का छोड़ कर अभिनिष्क्रमण
किया और एकान्तवासी बन गया ।

५—कोलाहलमभूयं
आसी मिहिलाए पव्वयन्लंमि ।
तइया रायरिसिंमि
नमिमि अभिणिक्वमन्तंमि ॥

कोलाहलकभूतम्
आसीन्मिथिलायां प्रव्रजति ।
तवाराज्ये
नमो अभिनिष्कामति ॥

५—जब राजर्षि नमि अभिनिष्क्रमण कर
रहा था, प्रव्रजित हो रहा था, उस समय
मिथिला में सब जगह कोलाहल होने लगा ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

११०

अध्ययन ६ : श्लोक ६-१२

६—अवमुद्रियं रायरिसि
पव्वजाठाणमुत्तमं ।
सको माहणरूपेण
इमं वयणमव्ववी ॥

७—किण्ण भो ! अज मिहिलाए
कोलाहलगसंकुला ।
मुव्वन्ति दारुणा सहा
पासाएसु गिहेसु य ? ॥

८—एयमट्ठं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमव्ववी ॥

९—मिहिलाए चेइए वच्छे
सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्तपुपफलोवेए
वट्ठणं वट्ठगुणे सया ॥

१०—वाएण हीरमाणंमि
चेइयंमि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता
एए कन्दन्ति भो ! खगा ॥

११—एयमट्ठं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

१२—एस अमी य वाऊ य
एयं डछफड मन्धिरं ।
भयवं ! अन्तेउरं तेणं
कीस णं नावपेक्खसि ? ॥

अभ्युत्थितं राजर्षिं
प्रज्या-स्थानमुत्तमम् ।
शक्रो ब्राह्मण-रूपेण
इदं वचनमब्रवीत् ॥

किन्तु भो ! अद्य मिथिलायां
कोलाहलक-संकुलाः ।
श्रूयन्ते दारुणाः शब्दाः
प्रासादेषु गृहेषु च ? ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-बोधितः ।
ततो नमो राजर्षिः
देवेन्द्रमिवमब्रवीत् ॥

मिथिलायां चैत्यो वृक्षः
शीतच्छाद्यो मनोरमः ।
पत्र-पुष्प-फलोपेतः
बहूनां बहु-गुणः सदा ॥

वातेन हियमाणे
चैत्ये मनोरमे ।
दुःखिता अशरणा आर्ताः
एते कन्दन्ति भो ! खगाः ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-बोधितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

एयोऽग्रिकव वायुवच
एतड् बहुते मन्धिरम् ।
भगवन् ! अन्तःपुरं तेन
कस्मान्नावप्रेक्षते ? ॥

६—उत्तम प्रज्या-स्थान के लिए उद्यत
हूँ राजर्षि से देवेन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में
आकर इस प्रकार कहा—

७—हे राजर्षि ! आज मिथिला के
ग्रामादों और गृहों में कोलाहल में परिपूर्ण
दारुण शब्द क्यों सुमार्दै दे रहे हैं ?

८—यह अर्थ गुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हूँ नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार
कहा—

९—मिथिला में एक चैत्य-वृक्ष था,
शीतल छाया वाला, मनोरम, पत्र, पुष्प और
फलों से लदा हुआ और बहुत पक्षियों के लिए
सदा उपकारी ।

१०—एक दिन हवा चली और उस
चैत्य-वृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया । हे ब्राह्मण ।
उनके आश्रित रहने वाले ये पक्षी दुःखी, अशरण
और पांडित होकर आक्रन्द कर रहे हैं ।

११—इस अर्थ का सुनकर हेतु और
कारण से प्रेरित हूँ देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

१२—यह अर्थ है और यह वायु है ।
यह आपका मन्दिर अल रहा है । भगवन् !
आप अपने रनिवास भी और क्यों नहीं देखते ?

नमिषवज्जा (नमि-प्रव्रज्या)

१११

अध्ययन ६ : श्लोक १३-१६

१३—एयमद्वं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमी रायगिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

१४—सुहं वसामो जीवामो
जेसि मो नत्थि किच्चन ।
मिहिलाए डज्झमाणीए
न मे डज्झइ किच्चन ॥

१५—चत्तपुत्तकलत्तस्स
निव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं न विज्झई किच्चि
अपियं पि न विज्झए ॥

१६—वहं खु मुणिणो भदं
अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विण्णमुक्कस्स
एकान्तमणुपस्सओ ॥

१७—एयमद्वं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमि रायगिसी
देविन्दो इणमव्ववी ॥

१८—पागारं कारइत्ताणं
गोपुरट्टालगाणि च ।
उत्तमूलगसयग्घोओ^१
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

१९—एयमद्वं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमी रायगिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षिः
बेवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

सुखं वसामो जीवामः
येषां नो नास्ति किञ्चन ।
मिथिलायां दह्यमानायां
न मे दह्यते किञ्चन ॥

त्पुत्र-पुत्र-कलत्रस्य
निर्व्यापारस्य भिक्षोः ।
प्रियं न विद्यते किञ्चित्
अप्रियमपि न विद्यते ॥

बहुं ललु मुनेभ्यं
अनगारस्य भिक्षोः ।
सर्वतो विप्रमुक्तस्य
एकान्तमनुपश्यतः ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षिः
बेवेन्द्र इवमब्रवीत् ॥

प्राकारं कारयित्वा
गोपुराट्टालकानि च ।
अवकूलक-शतघ्नोः
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षिः
बेवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

१३—यह अर्थ सुनकर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

१४—मे हूँ लोग, जिनके पास अपना
कुछ भी नहीं है, सुख पूर्वक रहते और
सुख से जीते हैं । मिथिला जल रही है उसमें
मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है ।

१५—पुत्र और बन्धियों से मुक्त तथा
व्यवसाय से निवृत्त भिक्षु के लिए कोई वस्तु
प्रिय भी नहीं होता और अप्रिय भी नहीं
होती ।

१६—महो बन्धनों से मुक्त, 'मैं अकाला
हूँ, मेरा कोई नहीं'—इस प्रकार एकत्व-दर्शी,
धृष्ट-स्वाधी एवं तपस्वी भिक्षु को विपुल सुख
होता है ।

१७—इस अर्थ को सुनकर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

१८—हे क्षत्रिय ! अभी तुम परकाटा,
बुजं बाले नगर-द्वार, खाई और शतघ्नो (एक
बार में सौ व्यक्तिओं का संहार करने वाला
यन्त्र) बनवाओ, फिर मुनि बन जाना ।

१९—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार
कहा—

उत्तरउभयणं (उत्तराध्ययन)

११२

अध्ययन ६ : श्लोक २०-२५

२०—सदं नगरं^१ किञ्चा
तवसंवरमगलं ।
'खर्त्ति निउणपागारं
तिगुत्तं दुप्पचंसयं"^२ ॥

२१—धणुं परक्कमं किञ्चा
जीवं च इरियं सया ।
विइं च केयणं किञ्चा
सच्चवेण पल्लिमन्थए^३ ॥

२२—तवतारायजुत्तेण
भेत्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो
भवाओ परिमुञ्चए ॥

२३—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

२४—पासाए^४ कारइत्ताणं
वद्धमाणगिहाणि य ।
बालगपोइयाओ य
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

२५—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमव्ववी ॥

अर्द्धां नगरं कृत्वा
तपःसंवरमंगलम् ।
क्षान्तिं निगुण-प्राकारं
विगुणं दुष्प्रवचकम् ॥

धनुः पराक्रमं कृत्वा
जीवांचेर्यां सदा ।
धृतिं च केतनं कृत्वा
सत्येन परिमथनीयान् ॥

तपो-ताराच-युक्तेन
भित्त्वा कर्म-कचुकम् ।
मुनीन्विगत-सङ्ग्रामः
भवात्परिमुच्यते ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

प्रासादान्कारयित्वा
वर्धमान-गृहाणि च ।
'बालगपौइयाओ' च
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षि
देवेन्द्र मिदमब्रवीत् ॥

२०—अर्द्धा को नगर, तप और संयम को अंगला, क्षमा को (दुर्ज, लाई और शतप्री स्थानीय) मन, वचन और काय-गुप्ति से मुरखित, दुर्ज और मुरधा-निगुण परकोटा बना,

२१—पराक्रम को धनुष, ईर्ष्या-समिति को उसकी डोर और धृति को उसकी मूठ बना, उसे सत्य से बाँधे ।

२२—तप-रूपी लोह-बाण से युक्त धनुष के द्वारा कर्म-रुपी कवच को भेद डाले । इस प्रकार संशय का अन्त कर मुनि संनार से मुक्त हो जाता है ।

२३—इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा—

२४ - हे क्षत्रिय ! अभी तुम प्रासाद, वर्धमान-गृह और चन्द्रशाला बनवाओ, फिर मुनि बन जाना ।

२५—यह अर्थ सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार कहा—

१. नगरं (५०) ।

२. खर्त्ति निउण पागारं तिगुत्तं दुप्पचंसयं (५० पा०) ।

३. पल्लिकंधए (५०) ।

४. पासायं (५०) ।

नमिपव्वज्जा (नमि-प्रवज्या)

११३

अध्ययन ६ : श्लोक २६-३२

२६—संसयं खलु सो कुणई
जो मग्गे कुणई धरं ।
जत्येव गन्तुमिच्छेज्जा
तत्थ कुव्वेज्ज सासयं ॥

२७—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

२८—आमोसे लोमहारे य
गंठिभेए य तकरे ।
नगरस्स खेमं काऊणं
तओ गच्छसि खत्तिआ ! ॥

२९- एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमव्ववी ॥

३०—असइं तु मणुस्सेहि
मिच्छा दण्डो पजुंजई ।
अकारिणोऽत्थ वज्झन्ति
मुच्चई कारओ जणो ॥

३१—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

३२—जे केइ पत्थिवा तुब्भं^१
नानमन्ति नराहिवा ! ।
वसे ते ठावइत्ताणं
तओ गच्छसि खत्तिआ ! ॥

संशयं खलु स कुले
यो मार्गे कुले गृहम् ।
यशैव गन्तुमिच्छेन्
तत्र कुर्वीत स्वाश्रयम् ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजपिं
देवेन्द्र इवमव्ववीत् ॥

आमोषान् लोम-हारान्
ग्रन्थि-भेदादिव तस्करान् ।
नगरस्य खेमं कृत्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजपिं
देवेन्द्र इवमव्ववीत् ॥

असकृत् मनुष्यैः
मिच्छा-दण्डः प्रयुज्यते ।
अकारिणोऽत्र बध्यन्ते
मुच्यन्ते कारको जनः ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजपिं
देवेन्द्र इवमव्ववीत् ॥

ये केचित् पार्थिवास्तुभ्यं
नानमन्ति नराधिप ! ।
वशे तांस्त्वापयित्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

२६—बह संशय ही बना रहता है जो
मार्ग में धर बनाता है । (न जाने कब उसे
छोड़ कर जाना पड़े) । अपना घर वहीं बनाना
चाहिए जहाँ जाने की इच्छा हो—जहाँ जाने
पर फिर कहीं जाना न हो ।

२७—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपिं से
इस प्रकार कहा—

२८—हे क्षत्रिय ! अभी तुम बटमारों,
प्राण हरण करने वाले छूंटों, गिरहकुटों और
चोरों का निग्रह कर नगर में शांति स्थापित
करो, फिर मुनि बन जाना ।

२९ यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए, नमि राजपिं ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

३०—मनुष्यों द्वारा अनेक बार मिथ्या-
दण्ड का प्रयोग किया जाता है । अपराध
नहीं करने वाले यहाँ पकड़े जाते हैं और
अपराध करने वाला छूट जाता है ।

३१—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपिं से
इस प्रकार कहा—

३२—हे नराधिप क्षत्रिय ! जो कई राजा
तुम्हारे सामने नहीं झुकते उन्हें बश में करो,
फिर मुनि बन जाना ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराज्ययन)

११४

अध्ययन ६ : श्लोक ३३-३६

३३—एयमष्टं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमब्बवी ॥

३४—जो सहस्सं सहस्साणं
संगामे जुज्जे जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं
एस से परमो जओ ॥

३५—अप्पाणमेव जुज्झाहि
किं ते जुज्जेण वज्जओ ? ।
अप्पाणमेव अप्पाणं
जइत्ता मुहमेहए ॥

३६—पंचिन्दियाणि कोहं
माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं
सब्बं अप्पे जिए जियं ॥

३७—एयमष्टं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमब्बवी ॥

३८—जइत्ता विउले जन्ने
भोइत्ता समणमाहणे ।
दब्बा भोच्चा य जट्ठा य
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

३९—एयमष्टं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमब्बवी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमो राजर्षिः
देवेन्द्रमिवमब्रवीत् ॥

यः सहस्रं सहस्राणां
सङ्ग्रामे दुर्जये जयेत् ।
एकं जयेदात्मानं
एष तस्य परमो जयः ॥

आत्मनैव युद्धयत्यत्र
किं ते युद्धेन बाह्यतः ।
आत्मनैव आत्मानं
जित्वा सुखमेधते ॥

पञ्चेन्द्रियाणि क्रोधः
मानो माया तथैव लोभश्च ।
दुर्जं यश्चैव आत्मा
सर्वमात्मनि जितेजितम् ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

याजयित्वा विपुलान् यजान्
भोजयित्वा श्रमण-ब्राह्मणान् ।
दत्त्वा भुक्त्वा च इष्ट्वा च
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमो राजर्षिः
देवेन्द्रमिवमब्रवीत् ॥

३३—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

३४—जो पुरुष दुर्जय संग्राम में दस
लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा
बहु एक अपने आपको जीतना है, यह उसकी
परम विजय है ।

३५—आत्मा के साथ ही युद्ध कर,
बाहरी युद्ध में कुछ क्या लाभ ? आत्मा को
आत्मा के द्वारा ही जीत कर, मनुष्य सुख
पाना है ।

३६—पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया,
लोभ और मन ये दुर्जय हैं । एक आत्मा को
जान गेन पर ये सब जीत लिए जाते हैं ।

३७—इन अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

३८—हे क्षत्रिय ! अभी तुम प्रचुर यज्ञ
करो, श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन कराओ,
दान दो, भोग भोगों और यज्ञ करो, फिर
मृति बन जाना ।

३९—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

नमिपव्वज्जा (नमि-प्रव्रज्या)

११५

अध्ययन ६ : श्लोक ४०-४५

४०—जो सहस्सं सहस्साणं
मासे मासे गावं दए ।
तस्सावि संजमो सेओ
अदित्तस्स वि किंचण ॥

यः सहस्रं सहस्राणां
मासे मासे गावां वध्नात् ।
तस्यापि संयमः श्रेयान्
अवदत्तोऽपि किंचन ॥

४०—जो मनुष्य प्रतिमास दस लाख
गायों का दान देता है उसके लिए भी संयम
ही श्रेय है, भले फिर वह कुछ भी न दे ।

४१—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
वेवेन्द्र इवमब्रवीत् ॥

४१—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

४२—घोरासमं चइत्ताणं^१
अन्नं पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसहरओ
भवाहि मणुयाहिवा ! ॥

घोराश्रम त्यक्त्वा
अन्नं प्राथयसे आश्रमम् ।
इहैव पोषध-रतः
भव मनुजाधिप ! ॥

४२—हे मनुजाधिप ! तुम घोराश्रम
(गार्हपत्य) को छोड़ कर दूसरे आश्रम (संन्यास)
की इच्छा करते हो, यह उचित नहीं । तुम
यहीं रह कर पोषध में रत होओ—अणुव्रत, तप
आदि का पालन करो ।

४३—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसि
देविन्दं इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षि
वेवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

४३—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार
कहा—

४४—मासे मासे तु जो बालो
कुसग्गेण तु^२ भुंजए ।
न सो सुयक्खायधम्मस्स
कलं अग्घइ सोलसि ॥

मासे मासे तु यो बालः
कुशाग्रेण तु भुङ्क्ते ।
न स स्वाक्याय-धर्मणः
कलामर्हति षोडशोम् ॥

४४—कोई बाल (अविबेकी) मास-मास
की तपस्या के अनन्तर कुशा की नोक पर टिके
उतना-सा आहार करे तो भी वह सु-आख्याय
धर्म (सम्यक्-चारित्र्य सम्पन्न मुनि) की सोलहवीं
कला की भी प्राप्त नहीं होता ।

४५—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
वेवेन्द्र इवमब्रवीत् ॥

४५—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

१. जहिंसाणं (बु० पा०) ।

२. च (अ) ।

उत्तरजम्भयणं (उत्तराध्ययन)

११६

अध्ययन ६ : श्लोक ४६-५१

४६—हिरण्यं सुवर्णं मणिमुत्तं
कंसं दूषं च वाहणं* ।
कोसं वड्ढावइत्ताणं
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

हिरण्यं सुवर्णं मणि-मुत्तां
कांस्यं दूष्यं च वाहनम् ।
कोशं वर्धयित्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

४६—हे क्षत्रिय ! अभी तुम चाँदी, सोना,
मणि, मोती, कौंसि के बर्तन, वस्त्र, वाहन और
अण्डार की वृद्धि करो, फिर मुनि बन जाना ।

४७—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमब्बवी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमो राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीन् ॥

४७—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए तमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

४८—सुवर्णरूपस्स उ^१ पव्वया भवे
सिया हुकेलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि^२ किंचि
इच्छा उ आगाससमा अणत्तिया ॥

सुवर्ण-रूपस्य च पर्वता भवेयुः
स्यात् खलुकैलास-समा असंख्यकाः ।
नरस्य लुब्धस्य न तैः किंचित्
इच्छा खलु आकाश-समा अनन्तिका ॥

४८—कदाचित् सोने और चाँदी के
कैलास के समान असंख्य पर्वत हो जाएँ, तो
भी लोभी पुण्य को उनसे कुछ भी नहीं होता,
क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है ।

४९—पुडवी साली जवा चेव
हिरण्यं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्यं^३ नालमेगस्स
इइ विज्जा तवं चरे ॥

पृथिवी शालियंवाश्चैव
हिरण्यं पशुभिः सह ।
प्रतिपूणं नालमेकस्मै
इति विदित्वा तपश्चरेत् ॥

४९—पृथ्वी, चावल, जौ, सोना और
पशु—ये सब एक की इच्छापूर्ति के लिए
पर्याप्त नहीं हैं, यह जान कर तप का आचरण
करे ।

५०—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमब्बवी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

५०—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए देवेन्द्र ने तमि राजर्षि से इस प्रकार
कहा—

५१—अच्छेरगमब्भुदए
भोए चयसि^४ पत्थिवा !^५ ।
असन्ते कामे पत्थेसि
संकपेण विहन्त्तसि ॥

आश्चर्यमभ्युदये
भोगास्त्यजसि पार्थिव ! ।
असतः कामान्प्रार्थयसे
संकल्पेन विहन्यसे ॥

५१—हे पार्थिव ! आश्चर्य है कि तुम
इस अभ्युदय-काल में सहज प्राप्त भोगों को
त्याग रहे हो और अप्राप्त काम-भोगों की इच्छा
कर रहे हो—इस प्रकार तुम अपने संकल्प से
ही प्रताड़ित हो रहे हो ।

१. सवाहणं (वृ० पा०, वृ०) ।

२. य (अ) ।

३. तेणं (वृ० पा०) ।

४. सव्वत्तं (वृ० पा०) ।

५. जहासि (वृ०); चयसि (वृ० पा०) ।

६. खत्तिया ! (वृ० पा०) ।

नमिपठवज्जा (नमि-प्रवज्या)

११७

अध्ययन ६ : श्लोक ५२-५७

५२—एयमईं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरसी
देविन्द इणमध्ववी ॥

एतमर्थ निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमो राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

५२—यह अर्थ मुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

५३—सवलं कामा विसं कामा
कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्येमाण
अकामा जन्ति दोग्गइं ॥

शल्यं कामा विलं कामाः
कामा आशीविषोपमाः ।
कामान्प्राप्यमाना
अकामा यान्ति दुर्गतिम् ॥

५३—काम-भोग शल्य हैं, विष हैं और
आशीविष सर्प के तुल्य हैं । काम-भोग की
इच्छा करने वाले, उसका सेवन न करते हुए भी
दुर्गति की प्राप्ति होते हैं ।

५४—अहे वयइ कोहेण
माणेणं अहमा गई ।
माया गईपडिग्गओ
लोभाओ दुहुओ भयं ॥

अधो व्रजति क्रोधेन,
मानेनाधमा गतिः ।
मायया गति-प्रतिघातः
लोभाइ द्विधा भयम् ॥

५४—मनुष्य क्रोध से अधोगति में जाता
है । मान से अधम गति होती है । माया से
सुगति का विनाश होता है । लोभ ने दोनों
प्रकार का— ऐहिक और पारलौकिक—भय
होना है ।

५५—अवउज्झऊण माहणरूवं
विउव्विऊण इन्दत्तं ।
वन्दइ अभित्थुणन्तो
इमाहि महुराहि वग्गहि ॥

अपोऽभ्युपगच्छन्-रूपं
विकृत्येन्द्रत्वम् ।
वन्दतेऽभिष्टुवन्
आभिमंघुराभिर्वाग्भिः ॥

५५—देवेन्द्र ने ब्राह्मण का रूप छोड़,
इन्द्र रूप में प्रकट हो नमि राजर्षि की वन्दना
की और उन मधुर शब्दों में स्तुति करने लगा ।

५६—अहो ! ते निज्जिओ कोहो
अहो ! ते माणो पराजिओ ।
अहो ! ते निरक्किया माया
अहो ! ते लोभो वसीकओ ॥

अहो ! त्वया निजितः क्रोधः
अहो ! त्वया मानः पराजितः ।
अहो ! त्वया निराकृता माया
अहो ! त्वया लोभो वसीकृतः ॥

५६—हे राजर्षि ! आश्चर्य है तुमने क्रोध
को जीता है । आश्चर्य है तुमने मान को
पराजित किया है ! आश्चर्य है तुमने माया
को दूर किया है ! आश्चर्य है तुमने लोभ को
वश में किया है !

५७—अहो ! ते अज्जवं साहु
अहो ! ते साहु मइवं ।
अहो ! ते उत्तमा खन्ती
अहो ! ते मुत्ति उत्तमा ॥

अहो ! ते आर्जवं साधु
अहो ! ते साधु मार्जवम् ।
अहो ! ते उत्तमा आनक्ति
अहो ! ते मुक्तिरत्तमा ॥

५७—अहो ! उत्तम है तुम्हारा आर्जव !
अहो ! उत्तम है तुम्हारा मार्जव ! अहो !
उत्तम है तुम्हारी क्षमा ! अहो ! उत्तम है
तुम्हारी निर्लोभता !

५८—इहं सि उत्तमो भन्ते !
पेष्वा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तम* ठाणं
सिद्धिं गच्छसि नीरओ ॥

इहास्युत्तमो भवन्त !
प्रेष्य भविष्यस्युत्तमः ।
लोकोत्तमोत्तमं स्थानं
सिद्धिं गच्छसि नीरजाः ॥

५८—भवन्! तुम इस लोक में भी उत्तम हो और परलोक में भी उत्तम होओगे । तुम कर्म-रज से मुक्त होकर लोक के सर्वोत्तम स्थान (मोक्ष) को प्राप्त करोगे ।

५९—एवं अभित्युणन्तो
रायरिसि उत्तमाए सद्धाए ।
पयाहिणं* करेन्तो
पुणो पुणो वन्दई सको ॥

एवमभिष्टुवन्
राजविमुत्तमया श्रद्धया ।
प्रदक्षिणां कुर्वन्
पुनः पुनर्वन्दते शकः ॥

५९—इस प्रकार श्रद्धा में उत्तम श्रद्धा से राजर्षि की स्तुति की और प्रदक्षिणा करते हुए बार-बार वन्दना की ।

६०—तो' वन्दिऊण पाए
चक्काकुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पडओ
ललियचवलकुंडलतिरीडी ॥

ततो वन्दित्वा पादौ
चक्रांकुश-लक्षणीं मुनिवरस्य ।
आकाशेनोत्पतितः
ललित-चपल-कुण्डल-किरीटी ॥

६०—इसके पदवात् मुनिवर नमि के चक्र आंग अंकुश से चिह्नित चरणों में वन्दना कर ललित और चपल कुण्डल एवं मुकुट का धारण करने वाला इन्द्र आकाश मार्ग से चला गया ।

६१—नमी नमेइ अप्पाणं
सक्खं* सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही
सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥

नमिर्नमयत्यात्मान
साक्षाच्छक्रेण चोदितः ।
त्यक्त्वा गृहं वंदेही
श्रामण्ये पर्युपस्थितः ॥

६१—नाम राजर्षि ने अपनी आत्मा का नमो किया—सयम के प्रतिममर्षित कर दिया । वे माक्ष्मि देवन्द के द्वारा प्रेरित होने पर भी धर्म से विचलित नहीं हुए और गृह और वंदेही (मिथिला) को त्याग कर श्रामण्य में उपस्थित हो गये ।

६२—एवं करेन्ति संबुद्धा*
पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु
जहा से नमी रायरिसि ॥
—ति वेमि ।

एवं क्वन्ति संबुद्धाः
पण्डिताः प्रविजक्षणाः ।
विनिवर्तन्ते भोगेभ्यः
यथा स नमी राजर्षिः ॥
इति ब्रह्मवि ।

६२—संबुद्ध, पण्डित और प्रविजक्षण पुरुष इसी प्रकार करते हैं—वे भोगों से निवृत्त होते हैं जैसे कि नमि राजर्षि हुए ।

— ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. लोगुत्तम सुत्तमं (बु० पा०) ।

२. पायाहिणं (वृ०) ।

३. स (बु० पा०) ।

४. सक्कं (श्रु०) ।

५. संपन्ना (वृ०) ।

षष्ठमं अध्यायः :
द्रुमपत्रयं

षष्ठम अध्यायः :
द्रुम-पत्रक

आशुबल

इस अध्ययन का नाम आशु-पद (आदान-पद) 'द्रुम-पत्र' के; आधार पर 'द्रुम-पत्रक' रखा गया है।^१ कई कारणों से गौतम गणधर के मन में विचिकित्सा हुई। भगवान् महावीर ने उसका निवारण करने के लिए इस अध्ययन का प्रातिपादन किया।

उस काल और उस समय पृष्ठचम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ शाल नाम का राजा था और सुवराज का नाम था महाशाल। उसके यशस्वती नाम की बहिन थी। उसके पति का नाम पिठर था। उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम गागली रखा गया। एक बार भगवान् महावीर राजगृह से विहार कर पृष्ठचम्पा पधारे। सुभूमि-भाग उद्यान में ठहरे। राजा शाल भगवान् की वन्दना करने गया। भगवान् से धर्म सुना और विरक्त हो गया। उसने भगवान् से प्रार्थना की—“भन्ने ! मैं महाशाल का राज्याभिषेक कर दीक्षित होने के लिए अभी वापस आ रहा हूँ।” वह नगर में गया। महाशाल से सारी बात कही। उसने भी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की। वह बोला—“मैं आपके साथ ही प्रव्रजित होऊँगा।” राजा ने अपने भानजे गागली को काम्पल्यपुर से बुलाया और उसे राज्य का भार सौंप दिया। गागली अब राजा हो गया। उसने अपने माता-पिता को भी वहाँ बुला लिया। इधर शाल और महाशाल भगवान् के पास दीक्षित हो गए। यशस्वती भी अमणोपासिका हुई। उन दोनों अमणों ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

भगवान् महावीर पृष्ठचम्पा से विहार कर राजगृह गए। वहाँ से विहार कर चम्पा पधारे। शाल और महाशाल भगवान् के पास आए और प्रार्थना की—“यदि आपकी अनुज्ञा हो तो हम पृष्ठचम्पा जाना चाहते हैं। सम्भव है किसी को प्रातिबोध मिले और कोई सम्यग्दर्शी बने।” भगवान् ने अनुज्ञा दी और गौतम के साथ उन्हें वहाँ भेजा। वे पृष्ठचम्पा गए। वहाँ के राजा गागली और उसके माता-पिता को दीक्षित कर वे पुनः भगवान् महावीर के पास आ रहे थे। मार्ग में चलते-चलते सुनि शाल और महाशाल के अध्यवसायों की पवित्रता बढ़ी और वे केवली हो गए। गागली और उसके माता-पिता—तीनों की केवलज्ञान हुआ। सभी भगवान् के पास पहुँचे। गौतम ने भगवान् की वन्दना की और उन सबको वन्दना करने के लिए कहा। भगवान् ने गौतम को सम्बोधित कर कहा—“गौतम ! केवलियों की आशानना मत करो।” गौतम ने उनसे क्षमा-याचना की; पर मन शंकाओं से भर गया। उन्होंने सोचा—“मैं सिद्ध नहीं होऊँगा।”

एक बार गौतम अष्टापद पर्वत पर गये। वहाँ पहले से ही तीन तापस अपने-अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों के परिवार से तप कर रहे थे। उनका नाम था कौडिन्य, दत्त और शंवाल।

दत्त जेले-जेले की तपस्या करता। वह नीचे पड़े पीले पत्ते खा कर रहता था। वह अष्टापद की दूसरी मेखला तक ही चढ़ पाया।

कौडिन्य उपवास-उपवास की तपस्या करता और पारण ने मूल, कन्द आदि सचित आहार करता था। वह अष्टापद पर्वत पर चढ़ा किन्तु एक मेखला से आगे नहीं जा सका।

१—उपराज्ययन निरुपुकि, भाषा २८२ :

द्रुमपत्रणोक्कमं अह्मिदिपु उवक्कमेणं च।

इत्थं कवं आहंसी तो तं द्रुमपत्रमज्जवणं ॥

उत्तरउभयणं (उत्तराध्ययन)

१२४

अध्ययन १० : श्लोक ६-१२

६—आउकायमद्गओ

उकोसं जीवो उ संवसे ॥
कालं संखाइयं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अए-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्यातीतं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

६—अए-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

७—तेउकायमद्गओ

उकोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाइयं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

तेजस्कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्यातीतं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

७—तेजस्-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

८—वाउक्कायमद्गओ

उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाइयं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

वायु-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्यातीतं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

८—वायु-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

९—वणस्सइकायमद्गओ

उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालमणन्तदुरन्तं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

वनस्पति-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालमनन्तं दुरन्तं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

९—वनस्पति-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक दुरन्त अनन्त-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१०—वेइन्दियकायमद्गओ

उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

द्वीन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्येय-संज्ञितं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

१०—द्वीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

११—वेइन्दियकायमद्गओ

उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

त्रीन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्येय-संज्ञितं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

११—त्रीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१२—चउरिन्दियकायमद्गओ

उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

चतुरिन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्येय-संज्ञितं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

१२—चतुरिन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

दुमपत्तयं (दुम-पत्रक)

।१२५

अध्ययन १० : श्लोक १३-१६

१३—पंचिन्द्रिकायमद्गओ
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
सत्तद्भवगहणे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१४—देवे नेरइए य अद्गओ
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
इक्किक्कभवगहणे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१५—एवं भव संसारे
संसरइ मुहामुहेहि कम्महि ।
जीवो पमायवहुलो
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१६—लद्धण वि माणुसत्तणं
आरिअत्तं पुणरावि दुल्लहं ।
बहव दमुया मिलक्कवुया
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१७—लद्धण वि आरियत्तणं
अहीणपंचिन्द्रियया हु दुल्लहा ।
विगलिन्द्रियया हु दोसई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१८—अहीणपंचिन्द्रियत्तं पि से लहे
उत्तमधम्ममुई हु दुल्लहा ।
कुत्तिन्निसेवए^१ जणे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१९—लद्धण वि उत्तमं सुइं
सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा ।
मिच्छत्तनिसेवए जणे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

पंचेन्द्रिय-कायमत्तिगतः
उत्कर्ष जीवस्तु संवसेत् ।
सप्ताष्ट भवग्रहणानि
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

देवान्नेरयिकांश्चातिगतः
उत्कर्ष जीवस्तु संवसेत् ।
एकैकभवग्रहणं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

एवं भव संसारे
ससरति शुभाशुभैः कर्मभिः ।
जीवः प्रमाद-बहुलः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वापि मानुषत्वं
आर्यत्वं पुनरपिबुल्लभम् ।
बहवो दस्यवो स्लेच्छाः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वाप्यार्यत्वं
अहीन-पंचेन्द्रियता खलु दुर्लभा ।
विकलेन्द्रियता खलु ददयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

अहीन-पंचेन्द्रियत्वमपि स लभेत
उत्तम-धर्म-श्रुतिः खलु दुर्लभा ।
कुतोचि-निषेधको जनों
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वाप्युत्तमां श्रुतिं
श्रद्धानं पुनरपि बुल्लभम् ।
मिथ्यात्व-निषेधको जनों
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

१३—पंचेन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव
अधिक से अधिक सात-आठ जन्म-ग्रहण तक
बहुत रह जाता है, इसलिए है गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

१४—देव और नरक-मीन में उत्पन्न
हुआ जीव अधिक से अधिक एक-एक जन्म-
ग्रहण तक कहाँ रह जाता है, इसलिए है
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१५—इस प्रकार प्रमाद-बहुल जीव
शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा जन्म-मृत्युमय संसार
में परिभ्रमण करता है, इसलिए है गौतम !
तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१६—मानव-जन्म दुर्लभ है, उसके मिलने
पर भी आर्य देश में जन्म पाना और भी दुर्लभ
है । बहुत सारे लोग मनुष्य हीकर भी दस्यु
और स्लेच्छा होते हैं, इसलिए है गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१७—आर्य देश में जन्म मिलने पर भी
पूर्वों इन्द्रियों से पूर्ण स्वस्थ होना दुर्लभ है ।
बहुत सारे लोग इन्द्रियहीन शीघ्र रहे हैं,
इसलिए है गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

१८—आर्य देश में पूर्ण स्वस्थ होने पर
भी उत्तम धर्म की श्रुति दुर्लभ है । बहुत सारे
लोग कुतोचिको की सेवा करने वाले होते हैं,
इसलिए है गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

१९—उत्तम धर्म की श्रुति मिलने पर
भी श्रद्धा होना और अधिक दुर्लभ है । बहुत
सारे लोग मिथ्यात्व का सेवन करने वाले होते
हैं, इसलिए है गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

१. कुत्तिन्न (वृ० पा०, सू०) ।

२०—धम्मं पि हु सदहन्तया
दुल्लह्या^१ काएण फासया ।
इह कामगुणेहि^२ मुच्छिय्या
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

धर्ममपि क्षलु व्यह्वसः
दुर्लभकाः कायेन स्पर्शकाः ।
इह काम-गुणेषु मूर्च्छिताः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२०—उत्तम धर्म में व्यथा होने पर भी
उसका आचरण करने वाले दुर्लभ हैं । इस
लोक में बहुत सारे लोग काम-गुणों में मूर्च्छित
होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

२१—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से सोयबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तच्छ्रोत्र-बलं च होयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२१—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और श्रोत्र का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२२—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से चक्खुबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तच्चक्षु-बलं च होयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२२—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और चक्षु का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

२३—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से घाणबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तहघ्राण-बलं च होयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२३—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और घ्राण का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

२४—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से जिव्भबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तज्जिह्वा-बलं च होयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२४—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और जिह्वा का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

२५—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से फासबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तत् स्पर्श-बलं च होयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२५—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और स्पर्श का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

१. दुल्लह्या (उ) ।

२. कामगुणेह (उ, म, ह०) ; कामगुणेहि (ह० पा०) ।

द्रुमपत्तयं (द्रुम-पत्रक)

१२७

अध्ययन १० : श्लोक २६-३१

२६—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से सव्वबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यंति ते शरीरकं
केसाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तत् सर्व-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२६—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और सब प्रकार का पूर्ववर्ती
बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२७—अरई गण्डं विसुइया
आयंका विविहा फुसन्ति ते ।
विबडइ विदंसइ ते सरोरयं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अरतिगण्डं विसृजिका
आतङ्कू विविधाः स्पृशन्ति ते ।
विपतति विष्वस्यते ते शरीरकं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२७—पित्त-रोग, फोड़ा-कुत्सी, हैजा और
विविध प्रकार के शीघ्र-घाती रोग शरीर का
स्पर्श करते हैं, जिन्से यह शरीर शक्तिहीन
और विनष्ट होता है, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२८—बोछिन्द सिणेहमप्पणो
कुमुयं सारइयं व' पाणियं ।
से सव्वसिणेहवज्जिए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

व्युच्छिद्यन् स्नेहमात्मनः
कुमुवं शारद-मिव पानीयम् ।
तत्सर्वस्नेह-वजितः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२८—जिस प्रकार शरद-ऋतु का कुमुद
(रक्त-कमल) जल में लित नहीं होता, उसी
प्रकार तू अपने स्नेह का विच्छेद कर निलित
बन । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

२९—चिच्चाण धणं च भारियं
पव्वइओ हि सि अणगारियं ।
मा वन्तं पुणो वि आइए
स मयं गोयम ! मा पमायए ॥

त्यक्त्वा धनं च भार्यां
प्रव्रजितो ह्यस्य नगरिताम् ।
मा वान्तं पुनरप्यापि
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२९—गाय आदि धन और पत्नी का
त्याग कर तू अनगर-वृत्ति के लिए धर से
निकला है । वसम किए हुए काम-भोगों को
फिर से मत पी । हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

३०—अवउज्झियं मित्थन्धवं
विउलं चैव धणोहसंचयं ।
मा तं बिइयं गवेसए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अपोऽभूय मित्र-बान्धवं
विपुलं चैव धनौघ-संचयम् ।
मा तद् द्वितीयं गवेषय
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३०—मित्र, बान्धव और विपुल धन-
राशि को छोड़कर फिर से उनकी गवेषणा मत
कर । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

३१—न हु जिणे अज्ज दिस्सई
बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए ।
संपइ नेयाउए पहे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

न खलु जिनाऽश्च दृश्यते
बहुमतो दृश्यते मार्ग-वेतिष्ठकः ।
सम्प्रति नैर्यागुके पथि
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३१—“आज जिन नहीं दीख रहे हैं, जो
मार्ग-दर्शक हैं वे एक मत नहीं हैं” —धम्मकी
पीडियों को इस कठिनाई का अनुभव होगा,
किन्तु अभी मेरी उपस्थिति में तुझे पार ले
जाने वाला (न्यायपूर्ण) पथ प्राप्त है, इसलिए
हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३२—अवसोहिय कण्ठगापहं
ओइण्णो सि पहं महालयं ।
गच्छसि मगं विसोहिया
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अवसोध्य कंठ-पथं
अवसोर्णोऽसि पन्थानं महालयं ।
गच्छसि मार्गं विशोध्य
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३२—कौंटों से भरे मार्ग को छोड़ कर तू
विशाल-पथ पर चला आया है । दृढ़ निश्चय के
साथ उठी मार्ग पर चल । हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

३३—अबले जह भारवाहए
मा मगे विसमे वगाहिया ।
पच्छा पच्छाणुतावए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अबलो यथा भार-वाहकः
मा मार्गं विषममवगाह्य ।
पश्चात्पश्चादनुतापकः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३३—बलहीन भार-वाहक की भाँति तू
विषम मार्ग में मत चले जाना । विषम-मार्ग में
जाने वाले को पछतावा होता है, इसलिए हे
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३४—तिण्णो हु सि अण्णवं महं
कि पुण चिट्ठसि तीरमागतो ।
अभितुर पारं गमित्ते
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

तीर्णः खलु असि अर्णवं महान्तं
कि पुनस्तिष्ठसि तीरमागतः ।
अभित्वरस्व पारं गन्तुं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३४—तू महान् समुद्र को तैर गया, अब
तीर के निकट पहुँच कर क्यों खड़ा है ? उसके
पार जाने के लिए जल्दी कर । हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३५—अकलेवरसेणिमुत्तिया
सिद्धि गोयम लायं गच्छसि ।
खेमं च सिवं अणुत्तरं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अकलेवर-श्रेणिमुच्छ्रित्य
सिद्धिं गौतम ! लोकं गच्छसि ।
क्षेमं च शिवमनुत्तरं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३५—हे गौतम ! तू क्षापक-श्रेणी पर
आरुढ़ होकर उस सिद्धि-लोक को प्राप्त होगा,
जो क्षेम, शिव और अनुत्तर है, इसलिए हे
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३६—बुद्धे परिनिब्बुडे चरे
गामगए नगरे व संयतए ।
सन्तिमगं च बहए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

बुद्धः परिनिर्बुतश्चरः
ग्रामे गतो नगरे वा संयतः ।
शान्तिमार्गं ब्रूह्ये
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३६—तू शान्त में या नगर में संयत, बुद्ध
और उपशान्त होकर विचरण कर, शान्ति-मार्ग
को बड़ा । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

३७—बुद्धस्स निसम्म भासियं
सुकहियमद्वयओवसोहियं ।
रागं दोसं च छिन्दिया
सिद्धिगई गए गोयमे ॥
—त्ति वेमि ।

बुद्धस्य निशम्य भाषितं
सुकथितमर्थपदोपशोभितम् ।
रागं द्वेषं च छिन्द्या
सिद्धिर्गतिं गतो गौतमः ॥
इति ऋषीमि ।

३७—अर्थ और पद से उपशोभित एवं
सुकथित भगवान् की वाणी को सुन कर राग
और द्वेष का छेदन कर गौतम सिद्धि-गति को
प्राप्त हुए ।

— ऐसा मैं कहता हूँ ।

इकारसमं अज्ज्ञयणं :
बहुस्सुयपुज्जा

एकादशम अध्ययन :
बहुश्रुत-पूजा

आमुख

इस अध्ययन ने बहुश्रुत की भाव-पूजा का निरूपण है; इसलिए इसका नाम 'बहुस्सुयपुज्जा'— 'बहुश्रुत-पूजा' रखा गया है। यहाँ बहुश्रुत का मुख्य अर्थ चतुर्दश-पूर्वी है। यह सारा प्रतिपादन उन्हीं से सम्बन्धित है। उपलक्षण से शेष सभी बहुश्रुत सुानियों की पूजनीयता भी प्राप्त होती है^१।

निशीथ-भाष्य-चूर्णि के अनुसार बहुश्रुत तीन प्रकार के होते हैं—

- १—जघन्य बहुश्रुत—जो निशीथ का ज्ञाता हो।
- २—मध्यम बहुश्रुत—जो निशीथ और चौदह-पूर्वी का मध्यवर्ती ज्ञाता हो।
- ३—उत्कृष्ट बहुश्रुत—जो चतुर्दश-पूर्वी को।

सूत्रकार ने बहुश्रुत को अनेक उपमाओं से उपासित किया है। सारी उपमाएँ बहुश्रुत की आन्तरिक शक्ति और तेजस्विता को प्रकट करती हैं—

- १—बहुश्रुत कम्बोज के धोड़ों की तरह शील संश्लेष होता है।
- २—बहुश्रुत हृष्ट पराक्रमी योद्धा की तरह अजेय होता है।
- ३—बहुश्रुत ६० वर्ष के बलवान हाथी की तरह अपराजेय होता है।
- ४—बहुश्रुत यथाधिपति वृषभ की तरह अपने गण का प्रमुख होता है।
- ५—बहुश्रुत सुधराजेय सिंह की तरह अन्य तीर्थिकों में श्रेष्ठ होता है।
- ६—बहुश्रुत वासुदेव की भाँति अबाधित पराक्रम वाला होता है।
- ७—बहुश्रुत चतुर्दश रत्नाधिपति चक्रवर्ती की भाँति चतुर्दश-पूर्वधर होता है।
- ८—बहुश्रुत देवाधिपति शक्र की भाँति संपदा का अधिपति होता है।
- ९—बहुश्रुत उगते हुए सूर्य की भाँति तप के तेज से प्रज्वलित होता है।
- १०—बहुश्रुत पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सकल कलाओं से परिपूर्ण होता है।
- ११—बहुश्रुत धान से भरे कोठों की भाँति श्रुत से परिपूर्ण होता है।
- १२—बहुश्रुत जम्बू वृक्ष की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १३—बहुश्रुत सीता नदी की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १४—बहुश्रुत मन्दर पर्वत की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १५—बहुश्रुत नाना रत्नों से परिपूर्ण स्वयम्भूरमण समुद्र की भाँति अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण होता है।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३१७ :

ते किर चउदसपुश्वी, सव्वक्खरसन्निवाइणो निउणा ।
जा तेसिं पुषा खलु, सा भावे ताइ अहिगारो ॥

२—निशीथ पीठिका भाष्य चूर्णि, पृष्ठ ४६६ :

बहुरूपं जस्य सो बहुवस्ती, सो तिसिद्धि—जहणो, मज्झिमो, उद्धोसो। जहणो जेणपक्खकणणं अवीतं, उद्धोसो बोद्धस्स पुब्बवरो, तम्मस्सो मज्झिमो ।

बहुश्रुता का प्रमुख कारण है विनय । जो व्यक्ति विनीत होता है उसका श्रुत फलवान् होता है । जो विनीत नहीं होता उसका श्रुत फलवान् नहीं होता । स्तब्धता, क्रोध, प्रमाद, रोग और आत्स्य—ये पाँच शिक्षा के विघ्न हैं ।^१ इनकी तुलना योगमार्ग के नौ विघ्नों से होती है ।^२

आठ लक्षण युक्त व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त होती है (श्लोक ४-५)—

१—जो हास्य नहीं करता ।

२—जो इन्द्रिय और मन का दमन करता है ।

३—जो मर्म प्रकाशित नहीं करता ।

४—जो चरित्रवान् होता है ।

५—जो दुःशील नहीं होता ।

६—जो रसों में अतिगृह्य नहीं होता ।

७—जो क्रोध नहीं करता ।

८—जो सत्य में रत रहता है ।

सूत्रकार ने अविनीत के १४ लक्षण और विनीत के १५ गुणों का प्रतिपादन कर अविनीत और विनीत की सुन्दर समीक्षा की है (श्लोक ६-१३) ।

इस अध्ययन में श्रुत-अध्ययन के दो कारण बताए हैं (श्लोक ३३)—

१—स्व की सुक्ति के लिए ।

२—पर की सुक्ति के लिए ।

दशवैकालिक में श्रुत-अध्ययन के चार कारण दिए हैं—

१—मुझे श्रुत प्राप्त होगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।

२—मैं एकाग्रचित्त होऊँगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।

३—मैं आत्मा को धर्म में स्थापित करूँगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।

४—मैं धर्म में स्थित होकर दूसरे को उसमें स्थापित करूँगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।

१—उत्तराध्ययन १।१३ :

अहं पंचहि ढाणेहि, मेहि सिक्खा न लभई ।

धम्मा कोहा पमाएणं, रोगेणाञ्जस्सएण य ॥

४—पार्तजल योगदर्शन १।३० :

अवाचिऽनमंश्चरमादाकस्वाशिरित्जानित्दर्शनालम्बभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविभ्रेश्चालेऽनृतायाः ।

४—दशवैकालिक ६।४ सू० ५ :

अयं मे भविस्सहं ति अन्धाहवणं भवहं । एतस्माच्चो भविस्सामि ति अन्धाहवणं भवहं । अपाणं ढावहस्सामि ति अन्धाहवणं भवहं ।

अतो परं ढावहस्सामि ति अन्धाहवणं भवहं ।

हकारसमं अञ्जयणं : एकादश अध्यायन

बहुस्सुयपुज्जा : बहुश्रुत-पूजा

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१--संजोगा विप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो । आयारं पाउकरिस्सामि आणुपुव्वि मुणेह मे ॥	संयोगाद् विप्रमुक्तस्य अनगारस्य भिक्षोः । आचारं प्रादुर्करिष्यामि आनुपूर्व्या शृणुत मे ॥	१ जो संयोग से भूक्त है, जो अनगार है, जो भिक्षु है, उसका मैं क्रमशः आचार करूँगा । मुझे सुनो ।
२--जे यावि होइ निव्विज्जे यत्ते लुद्धे अणिगग्गे । अभिक्खणं उल्लव्ढं अविणीए अबहुस्सुए ॥	यश्चापि भवति निर्विद्यः स्तब्धो लुब्धोऽतिग्रहः । अभीष्टणमल्लपति अविनीतोऽबहुश्रुतः ॥	२--जो विद्याहीन है, विद्यावान् होते हुए भी जो अभिमानी है, जो सरस आहार में लब्ध है, जो अजितेन्द्रिय है, जो बार-बार असम्बद्ध बोलता है, जो अविनीत है, वह अबहुश्रुत कहलाता है ।
३--अह पंचहि ठाणेहि जेहि सिक्खा न लब्धई । थम्भा कोहा पमाणं रोगेणाऽलस्सएण य ॥	अय पञ्चभिः स्थानैः यैः शिक्षा न लभ्यते । स्तम्भान् क्रोधान् प्रमादेन रोगेणालस्येन च ॥	३--मान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य--इन पाँच स्थानों (हेतुओं) में शिक्षा प्राप्त नहीं होती ।
४--अह अट्ठहि ठाणेहि सिक्खासीले त्ति वुच्चई । अहस्सिरे सया दत्ते न य मम्ममुदाहरे ॥	अथाष्टभिः स्थानैः शिक्षा-शील इत्युच्यते । अहसिता सदा दान्तः न च मर्म उदाहरेत् ॥	४--आठ स्थानों (हेतुओं) से व्यक्त की शिक्षा-शील कहा जाता है । (१) जो हास्य न करे, (२) जो सदा उन्मिद्य और मन का दमन करे, (३) जो मर्म-प्रकाशन न करे,
५--नासीले न विसीले न सिया अइलोलुए । अकोहुणे सच्चए सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥	नाशीलो न विसीलः न स्यादतिलोलुपः । अकोपनः सत्य-रतः शिक्षा-शील इत्युच्यते ॥	५--(४) जो चरित्र से हीन न हो, (५) जिसका चरित्र दोनों से कलुषित न हो, (६) जो रसों में अति कोलुष न हो, (७) जो क्रोध न करे, और (८) जो सत्य में रत हो--उसे शिक्षा-शील कहा जाता है ।

६—अह चउदसहि ठाणेहि
वट्टमाणे उ संजए ।
अविणीए वुच्चई सो उ
निव्वाणं च न गच्छइ ॥

७—अभिक्षणं कोही हवइ
पबन्धं च पकुब्बई ।
मेत्तिजमाणो वमइ
सुयं लद्धं मज्जई ॥

८—अवि पावपरिक्खेवी
अवि मित्तमु कृप्पई ।
मुप्पियस्सावि मित्तस्स
रहे भासइ पावगं ॥

९—पइण्णवाई दुहिले
थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अचियत्ते
अविणीए त्ति वुच्चई ॥

१०—अह पन्नरसहि ठाणेहि
मुविणीए त्ति वुच्चई ।
नीयावती अचवले
अमाई अकुउहले ॥

११—अपं चाऽहिक्खिवई^१
पबन्धं च न कुव्वई ।
मेत्तिजमाणो भयई
सुयं लद्धं न मज्जई ॥

अथ चतुर्दशसु स्थानेषु
वर्तमानस्तु संयतः ।
अविनीत उच्यते स तु
निर्वाणं च न गच्छति ॥

अभिक्षणं क्रोधी भवति
प्रबन्धं च प्रकरोति ।
मित्रोऽप्रमाणो वमति
श्रुतं लब्ध्वा माद्यति ॥

अवि पाप-परिक्षेयो
अपि मित्रेभ्यः कृप्यति ।
सुप्रियस्यापि मित्रस्य
रहसि भाषते पापकम् ॥

प्रकीर्ण-वादी द्रोघा
स्तब्धो लुब्धोऽनिग्रहः ।
असंविभागी 'अचियत्त'
अविनीत इत्युच्यते ॥

अथ पंचदशभिः स्थानः
सुविनीत इत्युच्यते ।
नीचवस्त्यं चपलः
अमाप्यकुतूहलः ॥

अल्पं चाधिशिपति
प्रबन्धं च न करोति ।
मित्रोऽप्रमाणो भजति
श्रुतं लब्ध्वा न माद्यति ॥

६—चौदह स्थानों (हेतुओं) में वर्तन करने वाला संयमी अविनीत कहा जाता है । वह निर्वाण को प्राप्त नहीं होता ।

७—(१) जो बार-बार क्रोध करता है, (२) जो क्रोध को टिका कर रखता है, (३) जो मित्रभाव रखने वाले को भी ठकुरता है, (४) जो श्रुत प्राप्त कर मद करता है,

८—(५) जो किसी की स्मलना होने पर उसका निरस्कार करता है, (६) जो मित्रों पर कृपित होता है, (७) जो अत्यन्त प्रिय मित्र की भी एकान्त में बुराई करता है,

९—(८) जो अमंजद-भाषी है, (९) जो द्रोही है, (१०) जो अभिमानी है, (११) जो मरग आहार आदि में लुब्ध है, (१२) जो अजितेन्द्रिय है, (१३) जो असंविभागी है, और (१४) जो अवीतिकर है—वह अविनीत कहलाता है ।

१०—पन्द्रह स्थानों (हेतुओं) से सुविनीत कहलाता है । (१) जो नष्ट व्यवहार करता है, (२) जो चपल नहीं होता, (३) जो मायावी नहीं होता, (४) जो कुतूहल नहीं करता,

११—(५) जो किसी का निरस्कार नहीं करता, (६) जो क्रोध को टिका कर नहीं रखता, (७) जो मित्रभाव रखने वाले के प्रति कृतज्ञ होता है, (८) जो श्रुत प्राप्त कर मद नहीं करता,

बहुसुयपुञ्जा (बहुभुत-पूजा)

१३५

अध्ययन ११ : श्लोक १२-१७

१२—न य पावपरिक्षेवी
न य मितेसु कुण्डं ।
अप्यिस्सावि मित्सस
रहे कल्लाण भासई ॥

१३—कलहडमरवज्जए
बुद्धे अभिजाइए ।
हिरिमं पडिसंलीणे
मुविणोए त्ति वुच्चई ॥

१४—वसे गुरुकुले निच्चं
जोगवं उवहाणवं ।
पियंकरे पियंवाई
से सिकवं लद्धमरिहई ॥

१५—जहा संखम्मि पयं
'निहियं दुहओ वि' विरायइ ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू
धम्मो कित्ति तहा सुयं ॥

१६—जहा से कम्बोयाणं
आइण्णे कत्थए सिया ।
आसे जवेण पवरे
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

१७—जहाइणसमारुद्धे
सूरे दढपरक्कमे ।
उभओ नन्दिघोसेणं
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

न च पाप-परिक्षेवी
न च मित्रेभ्यः कुण्डति ।
अप्रियस्यापि मित्रस्य
रहसि कल्याणं भासते ॥

कलह-डमर-वज्रकः
बुद्धोऽभिजातिगः ।
हौमान् प्रतिसंलीनः
विनीत इत्युच्यते ॥

वसेह गुरु-कुले नित्यं
योगवानुपद्यानवान् ।
प्रियङ्गुरः प्रियवादी
स शिक्षां लब्धुमर्हति ॥

यथाशङ्खे पयो
निहितं द्विधापि विराजते ।
एवं बहुभुते भिक्षो
धर्मः कीर्तिस्तथा श्रुतम् ॥

यथा स काम्बोजानां
आकीर्णः कन्यकः स्यात् ।
असौ जवेन प्रवरः
एष भवति बहुभुतः ॥

यथाऽऽकीर्ण-समारुद्धः
शूरो दृढ-पराक्रमः ।
उभयतो नन्दि-घोषेण
एष भवति बहुभुतः ॥

१२—(१) जो स्वल्पा होने पर किसी का निरस्कार नहीं करता, (१०) जो मित्रों पर क्रोध नहीं करता, (११) जो अप्रिय मित्र की भी एकान्त में प्रशंसा करता है,

१३—(१२) जो कलह और हाथापाई का बर्तन करता है, (१३) जो कुलीन होता है, (१४) जो लज्जावान् होता है और (१५) जो प्रतिसंलीन (इन्द्रिय और मन का संगोपन करने वाला) होता है—वह बुद्धिमान् मुनि विनीत कहलाता है ।

१४—जो सदा गुरु-कुल में वास करता है, जो गमाधियुक्त होता है, जो उपद्यान (श्रुत-अध्ययन के समय तप) करता है, जो प्रिय करता है, जो प्रिय बोलता है—वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

१५—जिस प्रकार शङ्ख में रखा हुआ दूध दोनों ओर (अपने और अपने आभार के गुणों) से मुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुभुत भिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत दोनों ओर (अपने और अपने आभार के गुणों) से मुशोभित होते हैं ।

१६—जिस प्रकार काम्बोज के घोड़ों में से कन्यक घोड़ा शील आदि गुणों से आकीर्ण और वेग से श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार भिक्षुओं में बहुभुत श्रेष्ठ होता है ।

१७—जिस प्रकार आकीर्ण (जातिमान्) अश्व पर चढ़ा हुआ दृढ़ पराक्रम वाला योद्धा दोनों ओर बजने वाले बाघों के घोष से अजेय होता है, उसी प्रकार बहुभुत अपने आसपास होने वाले स्वाध्याय-घोष से अजेय होता है ।

उत्तरउभयर्ण (उत्तराध्ययन)

१३६

अध्ययन ११ : श्लोक १८-२३

१८—जहा करेणुपरिकिणो
कुंजरे सहिहायणे ।
बलवन्ते अप्पडिहए
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा करेणुपरिकीर्णः
कुञ्जरः सहिहायनः ।
बलवानप्रतिहतः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

१८—जिस प्रकार हथिनियों से परिश्रुत
साठ वर्ष का बलवान् हाथी किसी से पराजित
नहीं होता, उसी प्रकार बहुश्रुत दूसरों से
पराजित नहीं होता ।

१९—जहा से तिकखसिंगे
जायखन्वे विरायई ।
वसहे जूहाहिवई
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स तीक्ष्ण-भृंगः
जात-स्कन्धो विराजते ।
वृषभो यथाधिपतिः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

१९—जिस प्रकार तीक्ष्ण सींग और
अत्यन्त पुष्ट स्कन्ध वाला बेल गृध्र का अधिपति
बन मुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत
आचार्य बनकर मुशोभित होता है ।

२०—जहा से तिकखदाढे
उदग्गे दुप्पहंसए ।
सीहे मियाण पवरे
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स तीक्ष्ण-दंष्ट्रः
उवग्रो दुष्टप्रधवंकः ।
सिंहो मुगाणां प्रवरः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२०—जिस प्रकार तीक्ष्ण दाढ़ों वाला
पूर्ण युवा और दुष्टप्राणेश सिंह आरम्भ-पक्षी
में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अन्य
नीतिकों में श्रेष्ठ होता है ।

२१—जहा से वासुदेवे
संखचक्रमयाधरे ।
अप्पडिहयबले जोहे
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स वासुदेवः
शङ्ख-चक्र-गदा-धरः ।
अप्रतिहत-बलो योधः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२१—जिस प्रकार शङ्ख, चक्र और गदा
का धारण करने वाला वासुदेव अबाधित बल
वाला योद्धा होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत
अबाधित बल वाला होता है ।

२२—जहा से चाउरन्ते
चकवट्टी महिडिहए ।
चउदसरयणाहिवई
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स चतुरन्तः
चक्रवर्ती महद्भिक्षुः ।
चतुर्दशरत्नाधिपतिः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२२—जिस प्रकार महान् कदिराली,
चतुरन्त चक्रवर्ती चौदह रत्नों का अधिपति
होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत चतुर्दश
होता है ।

२३—जहा से सहस्सक्खे
वज्जपाणी पुरन्दरे ।
सक्के देवाहिवई
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स सहस्राक्षः
वज्रपाणिः पुरन्दरः ।
शक्रो देवाधिपतिः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२३—जिस प्रकार सहस्रपक्षु, वज्रपाणि
और पुरों का विदारण करने वाला
शक्र देवों का अधिपति होता है, उसी प्रकार
बहुश्रुत देवी सम्पदा का अधिपति होता है ।

बहुस्सुयुज्जा (बहुभुत-पूजा)

१३७

अध्यायन ११ : श्लोक २४-२६

२४—जहा से तिमिरविद्धंसे
उत्तिष्ठन्ते दिवायरे ।
जलन्ते इव तेएण
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

२५—जहा से उडुवई चन्दे
नक्खत्तपरिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

२६—जहा से सामाइयाणं^१
काट्ठागारे सूरक्खिए ।
नाणाधन्नपडिपुण्णे
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

२७—जहा सा दुमाण पवरा
जम्बू नाम सुदंसणा ।
अणाडियस्स देवस्स
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

२८—जहा सा नईण पवरा
सलिला सागरंगमा ।
सीया नीलवन्तपवहा^२
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

२९—जहा से नगाण पवरे
सुमहं मन्दरे गिरी ।
नाणोसहिपज्जलिए
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स तिमिर-विध्वंसः
उत्तिष्ठन्दिवाकरः ।
ज्वलन्निव तेजसा
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा स उडुपतिचन्द्रः
नक्षत्र-परिवारितः ।
प्रतिपूणः पौर्णमास्यां
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा स सामाजिकानां
कोष्ठागारः सुरक्षितः ।
नानाधान्य-प्रतिपूणः
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा सा द्रुमाणां प्रवरा
जम्बूनाम्ना सुवर्शना ।
अनाहतस्य देवस्य
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा सा नदीनां प्रवरा
सलिला सागरङ्गमा ।
शीतानीलवत्प्रवहा
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा स नगानां प्रवरः
सुमहान्मन्दरो गिरिः ।
नामोषधि-प्रज्वलितः
एवं भवति बहुभुतः ॥

०४—जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला उगता हुआ सूर्य तेज से जलता हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार बहुभुत तप के तेज से जलता हुआ प्रतीत होता है ।

२५—जिस प्रकार नक्षत्र-परिवार से परिदृत ग्रहपति चन्द्रमा पूर्णिमा को प्रतिपूण होता है, उसी प्रकार साधुओं के परिवार से परिदृत बहुभुत सकल कलाओं में परिपूण होता है ।

२६—जिस प्रकार सामाजिकों (समुदाय युक्ति वालों) का कोष्ठागार सुरक्षित और अनेक प्रकार के धान्यों से परिपूण होता है, उसी प्रकार बहुभुत नाना प्रकार के भूत से परिपूण होता है ।

२७—जिस प्रकार अनाहत देव का आश्रय सुवर्शना नाम का जम्बू वृक्ष सब वृक्षों में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुभुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

२८—जिस प्रकार नीलवान् पर्वत से निकल कर समुद्र में मिलने वाली शीता नदी शेष नदियों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुभुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

२९—जिस प्रकार अतिशय महान् और अनेक प्रकार की औषधियों से दीप्त मंदर पर्वत सब पर्वतों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुभुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

१. सामाइयाणं (बु० पा०) ।

२. ^१पवहा (बु०) ; ^२पवहा (बु० पा०) ।
F. 35

३०—जहा से स्वयंभूरमणे
उदही अकखओदए ।
नाणारयणपडिपुण्णे^१
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

३१—समुद्गम्भीरसमा दुरासया
अचक्रिया केणइ दुप्पहंसया^२ ।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो
खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥

३२—तम्हा सुयमहिट्टज्जा
उत्तमद्गवेसए^३ ।
जेणऽप्राणं परं चैव
सिद्धिं संपाउणेज्जासि ॥
—त्ति बेमि ।

यथा स स्वयम्भूरमणः
उदधिरेक्ष्योदकः ।
नानारत्न-प्रतिपूणः
एवं भवति बहुभूतः ॥

समुद्गाम्भीर्यसमा दुरासदाः
अचक्रिताः केनापि दुष्प्रधर्षकाः ।
भूतेन पूर्णा विपुलेन त्रायिणः
अपयित्वा कर्मगतमुत्तमां गताः ॥

तस्माच्छ्रुतमधिष्ठेन
उत्तमार्थ-गवेषकः ।
येनात्मानं परं चैव
सिद्धिं संप्रापयेत् ॥

—इति ब्रवीमि ।

३०—जिस प्रकार अक्षय जल वाला
स्वयंभूरमण समुद्र अनेक प्रकार के रत्नों से भरा
हुआ होता है, उसी प्रकार बहुभूत अक्षय ज्ञान
से परिपूर्ण होता है ।

३१—समुद्र के समान गम्भीर, दुरासद
(कष्टों से अवाधित), अभय, किसी प्रतिवादी
के द्वारा क्षपराज्य, विपुलभूत से पूर्ण और
त्राता बहुभूत मुनि कर्मों का क्षय करके उत्तम
गति (मोक्ष) में गये ।

३२—इसलिए उत्तम-अर्थ (मोक्ष) की
गवेषणा करने वाला मुनि श्रुत का आश्रयण
करे, जिससे वह अपने आपको और दूसरों को
सिद्धि (मुक्ति) की प्राप्ति करा सके ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. 'संपुण्णे' (अ) ।

२. दुप्पहंसिया (ख०) ।

३. उत्तमिद्ग (अ) ।

चारसमं अज्ज्ञयणं :
हरिणसिञ्जं

द्वापक्षम अध्वयन :
हरिकेशीय

आसुरव

यह अध्ययन मुनि हारिकेशबल से सम्बन्धित है, इसलिए इसका नाम 'हारिकासंज्ञ'—'हारिकेशोय' है।

मयुरा नगरी के राजा 'शैल' विरक्त हुए मुनि बन गए। ग्रामानुग्राम घूमते हुए एक बार वे हास्तनागपुर (हास्तनापुर) आए और भिक्षा के लिए नगर का ओर थके। ग्राम-प्रवेश के दो मार्ग थे। मुनि ने एक ब्राह्मण से मार्ग पूछा। एक मार्ग का नाम 'वृताशन' था और वह अत्यन्त निकट था। वह अभी की तरह प्रज्वलित रहता था। ब्राह्मण ने कुतूहलवश उस ऊष्ण मार्ग को ओर संकेत कर दिया। मुनि निश्चल भाव से उसी मार्ग पर चल पड़े। वे लज्ज-सम्पन्न थे। अतः उनके पाद-स्पर्श से मार्ग ठण्डा हो गया। मुनि को अविचल भाव से आगे बढ़ते देख ब्राह्मण भी उसी मार्ग पर चल पड़ा। मार्ग की बर्फ जैसा ठण्डा देख उसने सोचा—'यह मुनि का ही प्रभाव है।' उसे अपने अनुचित कृत्य पर पश्चानाद हुआ। वह दीड़ा-दीड़ा मुनि के पास आया और उसने अपना पाप प्रकट कर क्षमा-आचना की। मुनि ने धर्म का उपदेश दिया। ब्राह्मण के मन ने विराक्त भाव उत्पन्न हुए। वह मुनि के पास प्रसाजित हो गया। उसका नाम सोमदत्त था। उसने जाति का अवलम्ब था। 'मैं ब्राह्मण हूँ, उत्तम जातीय हूँ'—यह मद्द उसने माना रहा। 'वाल्मीकि से मर कर वह देव बना। देव-आयुष्य की पूरा कर जाति-मद्द के परिपाक से गङ्गा नदी के तट पर हारिकेश का आध्यात्मिक 'बलकाण्ड' नामक पाण्डाल की पक्षी 'गारो' के गाने से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम बल रखा गया। यही बालक हारिकेशबल के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन वह अपने साथियों के साथ खेल रहा था। खेलते-खेलते वह लड़ने लगे। लोगों ने जब यह देखा तो उसका दूर दकेल दिया। दूसरे बालक पृथक् खेलने लगे किन्तु वह दशक मात्र ही रहा। इतने में ही एक संघट्ट संपन्निकला। लोगों ने उसे पत्थरों से मार डाला। कुछ ही क्षणों बाद एक अलसिया निकला। लोगों ने उस धाड़ दिया। दूर बैठे बालक हारिकेश ने यह सब देखा। उसने सोचा—'प्राणी अपने दावों से ही दुःख पाता है। यदि मैं तप के समान विषंता होता हूँ तो यह स्वामाधिक ही है कि लोग मुझे मारेंगे और यदि मैं अलस की तरह निविष्ट होता हूँ तो कोई दूसरा मुझे वधो सताएगा?' चिन्तन आगे बढ़ा। जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। ज्ञान-मद्द के विपाक का चित्र सामने आ गया। निवेद की प्राप्ति हो उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि हारिकेशबल आभय का विशुद्ध रूप से पालन करते हुए तपस्या में लीन रहने लगे। तपः प्रभाव से अनेक यक्ष उनकी सेवा करने लगे। मुनि यक्ष-मन्दिर में कायोंसंग, ध्यान आदि करते। एक बार वे ध्यानलीन खड़े थे। उस समय वाराणसी के राजा कीशलिक की लड़की मद्रा यक्ष की पूजा करने वहाँ आई। पूजा कर वह प्रदक्षिणा करने लगे। उसकी दृष्टि ध्यानलीन मुनि पर जा टिकी। उनके मैले कपड़े देख उसे घृणा हो आई। आवेश में आ उसने मुनि पर धूक दिया। यक्ष ने यह देखा। उसने सोचा—'इस कुमारी ने मुनि की आशतना की है। इसका फल इसे मिलना ही चाहिए।' यक्ष कुमारी के शरीर में प्रविष्ट हो गया। कुमारी पागल हो गयी। वह अनर्गल बातें कहने लगी। दासियाँ उस राजमहल में ले गयीं। उपचार किया गया पर सब व्यर्थ। यक्ष ने कहा—'इस कुमारी ने एक तपस्वी मुनि का निरस्त्र कर दिया है। यदि यह उस तपस्वी के साथ पाणिग्रहण करना स्वीकार कर लेती है तो मैं इसके शरीर से बाहर निकल सकता हूँ, अन्यथा नहीं।' राजा ने बात स्वीकार कर ली।

राजा अपनी कन्या को साथ ले यक्ष-मन्दिर में आया और मुनि को नमस्कार कर अपनी कन्या को स्वीकार करने की प्रार्थना की। मुनि ने ध्यान पारा और कहा—“राजन् ! मैं मुमुक्षु हूँ। स्त्री मोक्ष-मार्ग में बाधक है, इसलिए मैं इसका स्पर्श भी नहीं कर सकता।” इतना कह मुनि पुनः ध्यानहीन हो गए।

• कन्या को मुनि के चरणों में छोड़ राजा अपने स्थान पर आ गया। यक्ष ने मुनि का रूप बनाया और राजकन्या का पाणिग्रहण किया। रात भर कन्या वहीं रही। प्रभात में यक्ष दूर हुआ। मुनि ने सही-सही बात कन्या से कही। वह दीड़ी-दीड़ी राजा के पास गई और यक्ष द्वारा उगे जाने की बात बताई। राजा के पास बैठे रुद्रदेव पुरोहित ने कहा—“राजन् ! यह ऋषि-पत्नी है। मुनि ने इसे त्याग दिया है, अतः इसे किसी ब्राह्मण को दे देना चाहिए।” राजा ने उसी पुरोहित को कन्या सौंप दी। वह उसके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा। कुछ काल बीता। पुरोहित ने यक्ष किया। दूर-दूर से विद्वान्-ब्राह्मण बुलाए गए। उन सबके आतिथ्य के लिए प्रचुर भोजन-सामग्री एकत्रित की गई।

उस समय मुनि हरिकेशबल एक-एक मास का तप कर रहे थे। पारणा के दिन वे भिक्षा के लिए घर-घर घूमते हुए उसी यज्ञ-मण्डप में जा पहुँचे।

उसके बाद मुनि और वहाँ के वरिष्ठ ब्राह्मणों के बीच जो बातों-प्रसंग चला उसका संकलन सूत्रकार ने किया है। वार्ता के माध्यम से ब्राह्मण-धर्म और निग्रन्थ-प्रवचन का सार प्राप्तपादित हुआ है। सर्वप्रथम ब्राह्मण-कुमार मुनि की अवहेलना करते हैं परन्तु अन्त में वे उनसे मार्ग-दर्शन लेते हैं।

इस अध्ययन ने निम्न विषयो पर चर्चा हुई है—

- १—दान का अधिकार — श्लोक १२ से १८।
- २—जातिवाद — श्लोक ३६।
- ३—यज्ञ — श्लोक ३८ से ४४।
- ४—जल-स्नान — श्लोक ३८, ४५, ४६, ४७।

बौद्ध-साहित्य ने मालंग जातिक (४६७) ने यह कथा प्रकारान्तरे से मिलता है।

बारसमं अज्ज्ञयणं : द्वादशम अध्ययन

हरिणसिज्जं : हरिकेशीय

मूल

१—सोवागकुलसंभूतो

गुणत्तरधरो^१

हरिणसबलो

आसि भिक्खू जिइन्दिओ ॥

मुणी ।

नाम

संस्कृत छाया

वृषपाककुल-संभूतः

उत्तर-गुण-धरो मुनिः ।

हरिकेशबलो नाम

आसीद् भिक्षुजितेन्द्रियः ॥

हिन्दी अनुबाव

१—बाण्डाल-कुल में उत्पन्न, ज्ञान आदि

उत्तम गुणों को धारण करने वाला, धर्म-अधर्म

का मनन करने वाला हरिकेशबल नामक

जितेन्द्रिय भिक्षु था ।

२—हरिणसभासाए

उच्चारसमिइमु

जओ

संजओ

य ।

आयाणनिक्खेवे

सूसमाहिओ ॥

ईर्येयणाभावयां

उच्चारसमितौ च ।

यत आदान-निक्षेपे

संयतः सुसमाहितः ॥

२—वह ईर्ष्या, एषणा, भाया, उच्चार,

आदान-निक्षेप — इन समितियों में सावधान था,

संयमी और समाधिस्थ था ।

३—मणगुत्तो

कायगुत्तो

भिक्खट्ठा

जन्नवाडं

वयगुत्तो

जिइन्दिओ ।

बम्भइज्जम्मि

उवट्ठिओ ॥

मनो-गुप्तो बवो-गुप्तः

काय-गुप्तो जितेन्द्रियः ।

भिक्षार्थं ब्रह्मज्ये

यज्ञवाटे उपस्थितः ॥

३—वह मन, वचन और काया से गुप्त

और जितेन्द्रिय था । वह भिक्षा लेने के लिए

यज्ञ-मण्डप में गया, जहाँ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे ।

४—तं

तवेण

पन्तोवहिउवगरणं

उवहसन्ति

पासिऊणमेज्जन्तं

परिसोसियं ।

अणारिया ॥

तं दृष्ट्वाऽऽयान्त

तपसा परिशोधितम् ।

प्रान्तोपध्युपकरणं

उपहसन्त्यनार्याः ॥

४—वह तप से कुछ हो गया था । उसके

उपधि और उपकरण प्रान्त (जीर्ण और मलिन)

थे । उसे आते देख, वे अनार्य (ब्राह्मण) हँसे ।

५—जाईमयपडिथद्धा^२

हिसगा

अवम्भचारिणो

इमं

अजिइन्दिया ।

बाला

वयणमब्बवी ॥

जातिमव-प्रतिस्तरुवाः

हिसका अजितेन्द्रियाः ।

अब्रह्मचारिणो बालाः

इदं वचनमब्रुवन् ॥

५—जाति-मद से मत, हिंसक, अजितेन्द्रिय,

अब्रह्मचारी और अज्ञानी ब्राह्मणों ने परम्पर

इस प्रकार कहा—

१. भणुत्तरधरो (अ, वृ० पा०, चू०) ।

२. 'पडिथद्धा' (उ, वृ० पा०) ।

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

१४४

अध्ययन १२ : श्लोक ६-११

६—'कयरे' आगच्छइ^१ दित्स्ववे
काले विगराले फोक्तासे ।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए
संकरदूसं परिहरिय कण्ठे ॥

७—कयरे^२ तुमं इय अदंसणिज्जे
काए व आसा इहमागओ सि ।
ओमचेलगा पंसुपिसायभूया
गच्छ क्वयाहि किमिहं ठिओसि ? ॥

८—जकवां तहि तिन्दुयस्ववासी
अणुक्मओ तस्स महामुणिसस ।
पच्छायड्ढता नियगं सरीरं
इमाइ वयणाइमुदाहरित्वा ॥

९—समणो अहं संजओ बम्भयारी
विरओ धणपयणपरिग्गहाओ ।
पग्गवित्तस्स उ भिक्खकाले
अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥

१०—वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जइ य
अन्नं पभूयं भवयाणमेयं ।
जाणाहि मे 'जायणजीविणुत्ति'^३
सेसावसेसं लभउ तवस्सी ॥

११—उवकवडं भोगण माहणाणं
अट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं ।
न ऊ वयं एरिसमन्तपाणं
दाहामुत्तुज्जं किमिहं ठिओसि ? ॥

कतर आगच्छति दीप्तरूपः
कालो विकरालः 'फोक्क' नासः ।
अवम-चेलकः पांशु-पिशाचभूतः
संकर-दूष्यं परिधाय कण्ठे ? ॥

कतरस्त्वमित्यदर्शनीयः
कया वाऽऽशयेहगतोऽसि ? ।
अवम-चेलकः पांशु-पिशाचभूतः
गच्छ अपसर किमिह स्थितोसि ? ॥

यक्षस्तस्मिन् तिन्दुकवृक्ष-वासी
अनुक्मपक्षस्तस्य महामुनेः ।
प्रच्छाद्य निजकं शरीरं
इमानि वचनानि उदाहर्षोन् ॥

श्रमणोऽहं संयतो ब्रह्मचारी
विरतो धन-पचन-परिग्रहान् ।
पर-प्रवृत्तस्य तु भिक्षाकाले
अन्नस्यार्थं इहाऽगतोऽस्मि ॥

वित्तीयते स्वाद्यते भुज्यते च
अन्नं प्रभूतं भवतामेतन् ।
जानीत मां याचना-जीविनमिति
शेषवशेषं लभतां तपस्यो ॥

उपस्कृतं भोजनं ब्राह्मणानां
आत्मायिकं सिद्धमिहेक-पक्षम् ।
न तु वयमोदशमन्त-पाणं
वास्यामः तुभ्यं किमिह स्थितोऽसि ? ॥

६—बीभत्य रूप वाला, काला, विकराल
और बड़ी नाक वाला, अधनट्टा, पांशु-पिशाच
(चुडेल) सा, गले में संकर-दूष्य (उकुरडी से
उठाय हुआ चिथड़ा) डाले हुए वह कौन आ
रहा है ?

७—ओ अदर्शनीय मुनि ! तुम कौन हो ?
किस भाषा से यहाँ आए हो ? अद्यतने तुम
पांशु पिशाच (चुडेल) में लगे रहे हो । जानो,
श्रोत्रों में घरे चले जाओ ! यहाँ क्यों खड़े हो ?

८—उम समय महामुनि हारकेशबल को
अनुकम्पा करने वाला तिन्दुक (आम्रस) वृक्ष
का वासी यक्ष अपने शरीर का गोपन कर
मुनि के शरीर में प्रवेश कर एक प्रकार वाला—

९—“मैं श्रमण हूँ, संयमी हूँ, ब्रह्मचारी
हूँ, धन व पचन-पाचन और परिग्रह में विरत
हूँ । यह भिक्षा का काल है । मैं सहज निष्पन्न
भोजन पाने के लिए यहाँ आया हूँ ।”

१०—“आपके यहाँ पर यद बहुत मारा
भोजन दिया जा रहा है, खाया जा रहा है
और भोगा जा रहा है । मैं भिक्षा-जीवी हूँ,
यह आपको जान होना चाहिए । अच्छा ही है
कुछ बचा भोजन इस तपस्वी को मिल जाए ।”

११—(शोमवेय—) यहाँ जो भोजन
बना है, वह केवल ब्राह्मणों के लिए
ही बना है । वह एक-पाक्षिक है— अश्राद्धण को
अदेय है । ऐसा अन्न-पात्र हम तुम्हें नहीं
देवे, फिर यहाँ क्यों खड़े हो ?

१. कयरे तुमं पस्सिध (वृ०); कयरे आगच्छति (वृ० पा०); को रे आगच्छइ (वृ० पा०) ।

२. को रे (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

३. 'जीवणोत्ति' (वृ० पा०) ।

१२—धलेसु बीयाइ ववन्ति कासगा
तहेव निन्नेसु य आससाए ।
एयाए सद्दाए दलाह मज्जं
'आराहए पुण्णमिणं खु खेतं' ॥

१३—खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोण
जहि पकिण्णा विरुहन्ति पुण्णा ।
जे माहणा जाइविज्जोववेया
ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥

१४—कोहां य माणो य व्हो य जेसि
मांसं अदत्तं च परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइविज्जाविहूणा
ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥

१५—तुम्हेत्थ भो ! भारधरा गिराण
अट्ठं न जाणाह अहिज्ज वेए ।
उच्चावयाइं मुणिणो चरन्ति
ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥

१६—अज्झावयाणं पडिकूलभासी
पभाससे किं तु समासि अम्हं ।
अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं
न य णं दहामु तुमं नित्यप्पा ॥

१७—समिईहि मज्जं सुसमाहियस्स
गुत्तीहि गुत्तस्स जिइन्दियस्स ।
जइ मे न दाहिय अहेसणिज्जं
किमज्ज जन्ताण लहिय लाहं ॥

स्थलेषु बीजानि वपन्ति कर्षकाः
तथैव भिम्बेषु चाऽऽशंसया ।
एतया श्रद्धया दक्षिणं मह्यं
आराधयत पुण्यमिव खलु क्षेत्रम् ॥

क्षेत्राण्यस्माकं विदितानि लोके
येषु प्रकीर्णानि विरोहन्ति पूर्णानि ।
ये ब्राह्मणा जातिविद्योपेताः
तानि तु क्षेत्राणि सुपेसलानि ॥

क्रोधश्च मानश्च वधश्च येषां
मृषा अवत्तं च परिग्रहश्च ।
ते ब्राह्मणा जाति-विद्या-विहीनाः
तानि तु क्षेत्राणि सुपापकानि ॥

यूयमत्र भो ! आरधरा गिरां
अर्थं न जानीथाद्योत्थ वैशात् ।
उच्चावचानि चरन्ति मुनयः
तानि तु क्षेत्राणि सुपेसलानि ॥

अध्यापकानां प्रतिकूलभाषी
प्रभाषसे किं तु सकाशेऽस्माकम् ।
अप्येतद् वित्तयतु अन्न-पानं
न च दास्यामः तुभ्यं निर्यन्थ ॥

समितिभिर्मह्यं सुसमाहिताय
गुप्तिसिर्गुप्ताय जितेन्द्रियाय ।
यदि मह्यं न दास्यथाऽप्येषणीयं
किमद्य यत्नानां लप्स्यथ्ये लाभम् ? ॥

१२—(यक्ष—) "अच्छी उपज की आधा
से किसान बंते स्थल (ऊँची भूमि) में बीज
बोते हैं, बंसे हो नीची भूमि में बोते हैं ।
इसी थदा से (भरपूर आपकी निम्न भूमि और
मुझे स्थल तुल्य मानते हुए भी तुम) मुझे दान
दो, पुण्य की आराधना करो । यह क्षेत्र है,
बीज खाली नहीं जाएगा ।"

१३—(सामदेव—) "जहाँ बीए हुए सारे
के सारे बीज उग जाते हैं, वे क्षेत्र इस लोक
में हमें ज्ञान हैं । जो ब्राह्मण जाति और विद्या
से युक्त हैं, वे ही पुण्य-क्षेत्र हैं ।"

१४—(यक्ष—) "जिनमें क्रोध है, मान
है, हिंसा है, झूठ है, चोरी है और परिग्रह
है—वे ब्राह्मण जाति-विहीन, विद्या-विहीन
और पाप-क्षेत्र हैं ।"

१५—"हे ब्राह्मण ! इस संसार
में तुम केवल वाणीका भार ढो रहे हो । वेदों
को पढ़ कर भी उनका अर्थ नहीं जानते । जो
मुनि उष्ण और नीच घरों में भिक्षा के लिए
जाते हैं, वे ही पुण्य-क्षेत्र हैं ।"

१६—(सोमदेव—) "ओ ! अध्यापकों के
प्रतिकूल बोलने वाले साधु ! हमारे समक्ष तू
क्या बड़-बड़ कर बोल रहा है ? हे निर्यन्थ !
यह अन्न-पान मले ही सड़ कर नष्ट हो जाए
किन्तु तुझे नहीं देने ।"

१७—(यक्ष—) "मैं समितियों से समाहित,
गुप्तियों से गुप्त और जितेन्द्रिय हूँ । यह एषणीय
(बिषुद्ध) आहार यदि तुम मुझे नहीं दोगे, तो
इन यशों का आज तुम्हें क्या लाभ होगा ?"

१. आराहणा होहिम पुण्ण खेतं (४० पा०) ।

२. भारधरा (४० पा०) ।

३. सत्पाणं (४०) ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

१४६

अध्ययन १२ : श्लोक १८-२३

१८—के एत्थ खत्ता उवजोइया वा
अज्जावया वा सह खण्डिहहि ।
एयं^१ दण्डेण फलेण हन्ता
कण्ठम्मि घेत्तुण खलेज्ज जो णं ?॥

१९—अज्जावयाणं वयणं मुणेत्ता
उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दण्डेहि विस्सेहि कसेहि चेव
समागया तं^२ 'इसि तालयन्ति'^३ ॥

२०—गन्तां तहि कोसलियस्स धूया
भद्दि त्ति नामेण अणिन्दियंमी ।
तं पासिया संजय हम्ममाणं
कुद्धे कुमारे पग्गिन्ववेइ ॥

२१—देवाभियोगेण निओइएणं
दिन्ता मु रन्ता मणसान भाया ।
नरिन्देवेदिन्दुग्गिभिवन्दिएणं
जेणम्हि वन्ता इसिणा स एसो ॥

२२—एसो हुं सो उगतवो महप्पा
जिइन्दिओ संजओ बम्भयारी ।
'जो मे'^४ तया नेच्छइ दिज्जमाणिं
पिउणा सयं कोसलिण रन्ता ॥

२३—महाजसो एस महानुभागे^५
घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ।
मा एयं हीलह अहीलणिज्जं
मा सव्वे तेएण मे निदुहेज्जा ॥

केऽत्र अत्रा उपज्योतिषा वा
अध्यापका वा सह खण्डिकैः ।
एयं खलु दण्डेन फलेन हत्वा
कण्ठे गृहीत्वा स्खलयेयुः ये ? ॥

अध्यापकानां वचनं श्रुत्वा
उद्धावितास्तत्र बहवः कुमाराः ।
दण्डेर्वेत्रैः कक्षैश्चैव
समागतास्तमृषिं ताडयन्ति ॥

राजस्तत्र कौशलिकस्य दुहिता
भद्रं ति नाम्ना अनिन्दिताङ्गो ।
तं दृष्ट्वा संयतं हन्यमानं
क्रुद्धान्कुमारान्परिनिर्वापयति ॥

देवाभियोगेन नियोजितेन
दत्ता ऽस्मि राजा मनसा न ध्याता ।
नरेन्द्रवेन्द्राभिवन्दितेन
येनास्मि वान्ता ऋषिणा स एवः ॥

एव खलु स उग्र-तपा महात्मा
जितेन्द्रियः संयतो ब्रह्मचारी ।
यो मां तवा नेच्छति दीयमानं
पित्रास्वयं कौशलिकेन राजा ॥

महायशो एव महानुभावः
घोर-प्रतो घोर-पराक्रमश्च ।
मैनं हीलयताहीलनीयं
मा सर्वान् तेजसा भवतो निषाक्षीन् ॥

१८—(सोमदेव—) "यहाँ कौन है क्षत्रिय,
रतोइया, अध्यापक या छात्र, जो दण्डे और
फल से पीट, मलहत्वा दे इस निर्गन्ध को यहाँ
से बाहर निकाले ?"

१९—अध्यापकों का वचन सुनकर बहुत से
कुमार उग्र दौड़े। वहाँ आ दण्डों, बेंतों और
चाबुकों से उस ऋषि को पीटने लगे ।

२०—राजा कौशलिक की सुन्दर पुत्री
भद्रा यज्ञ-मण्डप में मुनि की प्रनामिता होने देख
क्रुद्ध कुमारों को घात करने लगी ।

२१—(भद्रा—) "राजाओं और इन्द्रो से
पूजित यह बड़ ऋषि हैं, जिसने मेरा त्याग
किया । देवता के अभियोग से प्रेरित हो कर
राजा द्वारा मैं दी गई, किन्तु जिसने मुझे मन
से भी नहीं चाहता ।

२२—"यह बड़ी उग्र तपस्वी, महात्मा,
जितेन्द्रिय, संयमो और ब्रह्मचारी है, जिसने
मुझे मेरे पिता राजा कौशलिक द्वारा दिये जाने
पर भी नहीं चाहा ।

२३—"यह महान् यशस्वी है । महान्
अनुभाव (अभित्य-शक्ति) से सम्पन्न है । घोर
शक्ती है । घोर पराक्रमी है । इसकी अवहेलना
मन करो, यह अवहेलनीय नहीं है । कहीं यह
अपने तेज से तुम लोगों को भस्मवात् न कर
डाले ?"

१. एयं सु (अ, उ); एयं दु (आ) ।

२. इसि तावयन्ति (उ, ऋ०) ।

३. जो मं (अ, आ) ।

४. महानुभावो (ह० पा०, षू०) ।

२४—एयाइं तीसे वयणाइ सोचा
पत्तीइ भद्दाइ मुहासियाइं ।
इसिस्स वेयावडियइयाए
जक्खा कुमारे विणिवाडयन्ति ॥

२५—ते घोररूपा ठिय अन्तलिक्खे
असुरा तर्हि तं जणं तालयन्ति ।
ते भिन्नदेहे रहिरं वमन्ते
पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ॥

२६—गिग्गि नहेहि खण्ह
अयं दन्तेहि खावथ ।
जायतेयं पाएहि हण्ह
जं भिक्खुं अवमन्नह ॥

२७—आसीविसो उमातवो महेसी
घोरव्वओ घोरपक्कमा य ।
अगणि व पक्कन्द पयंगसेणा
जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह ॥

२८—सीसेण एयं सरणं उवेह
समागया सव्वजणेण तुव्वे ।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा
लोगं पि एसो कुवितो डहेज्जा ॥

२९—अवहेडिय^१ पिड्डसउत्तमंगे
पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे ।
निव्वेरियिच्छे रहिरं वमन्ते
उड्डंमुहे निग्गयिजीहेते ॥

एतानि तस्या बबनानि भूत्वा
पत्न्या भद्रायाः सुभाषितानि ।
ऋषेर्वैद्यापुत्रार्थं
यथाः कुमारान् विनिवारयन्ति ॥

ते घोर-रूपाः स्त्रियता अन्तरिक्षे
अमुरास्तत्र तं जनं ताडयन्ति ।
तान् भिन्न-देहान् रहिरं वमन्तः
दृष्ट्वा भद्र दमाह भूयः ॥

गिरि नरवैः खनय
अयो दन्तैः खावथ ।
जाततेजसं पार्वर्हथ
ये भिक्षुसबस्यध्वे ॥

आशीविष उग्र-तपा महर्षिः
घोर-व्रतो घोर-पराक्रमदत्त ।
अग्निमिव प्रस्कन्दथ पतङ्गसेना
ये भिक्षुक-अक्त-काले विध्यथ ॥

शीर्षेणं शरणमुपेत
समागताः सर्वजनेन युयम् ।
यदीच्छथ जीवितं वा धनं वा
लोकमप्येष कुपितो बहेत् ॥

अवहेडित-पृष्ठ-सबुत्तमाङ्गान्
प्रसारित बाह्वकमंचेष्टान् ।
प्रसारिताङ्गान् रहिरं वमन्तः
ऊर्ध्व-मुक्षान्निगंत-जिह्वा-नेत्रान् ॥

२४—सोमदेव पुरोहित की पत्नी भद्रा के
सुभाषित बचनों को सुन कर यक्षों ने ऋषि का
वैद्यापुत्र्य (परिचर्या) करने के लिए कुमारों
को भूमि पर गिरा दिया ।

२५—घोर रूप वाले यक्ष आकाश में
स्थिर हो कर उन छात्रों को मारने लगे । उनके
गिरियों को धत-विक्षान और उन्हे रहिर का
वमन करते देख भद्रा फिर कहने लगी—

२६—“जो इस भिक्षु का अपमान कर
रहे हैं, वे नखों से पर्वत खोद रहे हैं, दौंतों से
लोहे को चबा रहे हैं और पैरों से अग्नि को
प्रताड़ित कर रहे हैं ।

२७—“बह महर्षि आशीविष-लक्षि से
सम्पन्न हैं । उग्र तपस्वी हैं । घोर व्रती और
घोर पराक्रमी हैं । मित्रा के समय जो भिक्षु
का वध कर रहे हैं, वे पतंग-सेना की भाँति
अग्नि में झंपापात कर रहे हैं ।

२८—“यदि तुम जीवन श्रेष्ठ धन चाहते
हो तो सब मिलकर, शिर झुका कर इस मृनि
की शरण में आओ । कुपित होने पर यह
समूचे संसार को भस्म कर सकता है ।”

२९—उन छात्रों के मिर पीठ की ओर
झुक गए । उनकी मुजाएँ फैल गईं । वे
निष्क्रिय हो गए । उनकी आँखें खुली की
खुली रह गईं । उनके मुँह से रहिर निकलने
लगा । उनके मुँह ऊपर की ओर गए । उनकी
जीभें और नेत्र बाहर निकल आए ।

१. विणिवारयन्ति (वृ० पा०) ।

२. इणेह (वृ०) ।

३. आवडिय (वृ० पा०) ।

३०—ते पासिया खण्डिय कट्ठूए
विमणो विसणो अहमाहणो सो।
इसि पसाएइ सभारियाओ
हीलं च निन्दं च खमाह भन्ते ! ॥

३१—बालेहि मूढेहि अयाणएहि
जं हीलिया तस्स खमाह भन्ते !।
महप्पसाया इसिणो हवन्ति
न हु मुणी कोवपरा हवन्ति ॥

३२—“पुत्वि च इण्हि च अणागयं च”
मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ।
जक्खा हु वेप्पावडियं करेन्ति
तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥

३३—अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा
तुढे न वि कुप्पह भूइप्पन्ना।
तुढं तु पाए सरणं उवेमो
समागया सव्वजणेण अम्हे ॥

३४—अच्चेमु ते महाभाग !
न ते किंचि न अच्चिमो।
भुंजाहि सालिमं कूरं
नाणावजणसंजुयं ॥

३५—इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं
तं भुजसू अम्ह अणुगाहदा।
बाढं ति पडिच्छइ भत्तपाणं
मासस्स ऊ पारणए महप्पा ॥

तान् टट्ठ्वा खण्डिकान्काण्ठमृतान्
विमना विषण्णोऽयं ब्राह्मणः सः।
अर्थं प्रसादयति सभार्याकः
हीलां च निन्दां च क्षमस्व भवन्त ! ॥

बालैर्मूढैरजैः
यश्च हीलितास्तत्क्षमस्व भवन्त !।
महाप्रसादा ऋषयो भवन्ति
न खलु मुनयः कोवपरा भवन्ति ॥

पूर्वं चेदानीं जानागतं च
मनः-प्रदोषो न मेऽस्ति कोऽपि।
यक्षाः खलु बैयापुत्वं कुर्वन्ति
तस्मात् खलु एतेनिहताः कुमाराः ॥

अर्थं च धर्मं च विजानन्तः
ययं नापि कुप्यथ भूति-प्रज्ञाः।
मुठ्माकं तु पादो शरणमुपेयः
समागताः सर्वकलेन वयम् ॥

अर्चयामस्ते महाभाग !
न ते किञ्चिन्नार्चयामः।
भुञ्क्ष्व शास्त्रिमत् कूरं
नानाव्यञ्जन-संयुतम् ॥

इदं च मेऽस्ति प्रभूतमन्नं
तत्प्रभुञ्ज्यवास्माकमनुग्रहायम्।
बाढमिति प्रतीच्छति भक्त-पात्रं
मासस्य तु पारणके महात्मा ॥

३०—उन छात्रों को काठ की तरह
निश्चेष्ट देख कर वह सोमदेव ब्राह्मण उदास
और, घबराया हुआ अपनी पत्नी सहित मुनि
के पास आ उठे प्रसन्न करने लगा—“भन्ते !
हमने जो अवहेलना और निन्दा की उसे क्षमा
करें।

३१—“भन्ते ! मूढ़ बालकों ने अज्ञानवश
जो आपकी अवहेलना की, उसे आप क्षमा
करें। ऋषि महान् प्रसन्नचित्त होते हैं।
मुनि कोप नहीं किया करते ।”

३२—(मुनि—) “मेरे मन में कोई प्रदोष
न पहले था, न अभी है और न आगे भी होगा।
किन्तु यक्ष मेरा वंद्यापुत्र्य कर रहे हैं। इसी-
लिए ये कुमारा प्रताडित हुए ।”

३३—(सोमदेव—) “अर्थ और धर्म को
जानने वाले भूति-प्रज्ञ (मंगल-प्रज्ञा युक्त)
आप कोप नहीं करते। इसलिए हम सब
मिल कर आपके चरणों की शरण ले रहे हैं।

३४—“महाभाग ! हम आपकी अर्चा
करते हैं। आपका कुछ भी ऐसा नहीं है,
जिसकी हम अर्चा न करें। आप नाना व्यंजनों
से युक्त चावल-निष्कल भोजन ले कर खाइए।

३५—“मेरे यहाँ यह प्रचुर भोजन पड़ा
है। हमें अनुग्रहित करने के लिए आप कुछ
खाएं।” महात्मा हरितेरावल ने हाँ भर ली
और एक मास की तपस्या का पारणा करने
के लिए भक्त-पात्र लिया।

१. पुत्वि च पच्छा व सहेव सज्जे (व० पा०) ; पुत्वि च पच्छा व अणागयं च (व०) ।

२. महाभाग ! (अ, ड, झ०) ।

३६—तहियं गन्धोदयपुष्पवासं
दिन्वा तहि वसुहारा य बुद्धा ।
पहयाओ' दुन्दुहीओ सुरेहि
आगासे अहो दाणं च धृष्टं ॥

३७—सक्कं खु दीसइ तवोविसेसो
न दीसई जाइविसेस कोई ।
'सोवागपुत्ते हरिणससाह'^१
जन्तेरिसा इड्ढि महाणभागा ॥

३८ वि माहणा ! जोइसमारभन्ता
उदणसोहि बहिया विमग्गहा ।
जं मग्गहा वाहिरियं विसोहि
न तं सुदिदं कुसला वयन्ति ॥

३९—कुसं च ज्वं तणकट्टमग्गि
सायं च पायं उदगं कुसन्ता ।
पाणाइ भूयाइ विहेडयन्ता
भुजो वि मन्दा ! पगरेहु पावं ॥

४०—कहं चरे ? भिक्खु ! वयं जयामो ?
पावाइ कम्माइ पणोल्लयामो ? ।
अक्खाहि णे संजय ! जक्खपुइया !
कहं मुजहं कुसला वयन्ति ? ॥

तस्मिन् गन्धोदक-पुष्पवर्षः
विष्या तस्मिन् वसु-धारा च वृष्टा ।
प्रहता दुन्दुभयः सुरैः
आकाशेऽहो दानं च ध्रुष्टम् ॥

साक्षान् खलु दृश्यते तपो-विशेषः
न दृश्यते जाति-विशेषः कोऽपि ।
इवपाक-पुत्रं हरिकेश-साधुं
यस्येदृशो ऋद्धिमं हानुभागा ॥

किं ब्राह्मण ! ज्योतिः समारभमाणाः
उवकेन श्रद्धिं बाह्यां विमार्गयथ ।
यइ मार्गयथ बाह्यां विश्रद्धिं
न तन् मुदष्टं कुसला ववन्ति ॥

कुशं च ययं तुण-काठमग्गि
सायं च प्रातरुवकं स्पृशन्तः ।
प्राणान् भूतान् विहेडयन्तः
भूयोऽपि मन्दा प्रकुरुष पापम् ॥

कथं चरामो ? भिक्षो ! वयं यजामः ?
पापानि कर्मानि प्रणुदामः ? ।
आख्याहि नः संयत ! यक्षपूजित !
कथं दिवष्टं कुसला ववन्ति ? ॥

३६—देवो ने वहाँ सुगन्धिन जल, पुष्प
और दिव्य-धन की वर्षा की । आकाश में
दुन्दुभि बजाई और 'अहो दानम्' (आश्चर्यकारी
दान) —इस प्रकार का घोष किया ।

३७—यह प्रत्यक्ष ही तप की महिमा
दीप्त रही है, जानि की कोई महिमा नहीं है ।
जिसकी श्रद्धि ऐसी महान् (अचिन्त्य शक्ति
मय) है, वह हरिकेश मुनि चाण्डाल का
पुत्र है ।

३८—(मुनि—) 'ब्राह्मणो ! अग्नि का
समारम्भ (यज्ञ) करते हुए तुम बाहर से
(जल में) श्रद्धि की क्या माँग कर रहे हो ?
जिस श्रद्धि की बाहर से माँग कर रहे हो, उसे
कुसल लोग मुदष्ट (सम्पराधान) नहीं कहते ।

३९—'दर्श, यय (यज्ञ-स्तम्भ), तुण, काष्ठ
और अग्नि का उपयोग करते हुए, संख्या और
प्रातःकाल में जल का स्पर्श करते हुए, प्राणों
और भूतों की हिंसा करते हुए, मदबुद्धि वाले
तुम बार-बार पाप करते हो ।"

४०—(सोमदेव—) "हे भिक्षो ! हम कैसे
प्रभूत हों ? यज्ञ कैसे करें ? जिससे पाप-कर्मों
का नाश कर सकें । यज्ञ-पूजित संयत ! आप
हमें बताएं—कुसल पुरुषों ने मुदष्ट (श्रेष्ठ-यज्ञ)
का विधान किस प्रकार किया है ?"

१. पहया (उ, ख०) ।

२. सोवागपुत्ते हरिणससाहु (बु० पा०) ।

४१—छञ्जीवकाए असमारभन्ता
मोसं अदत्तं च असेवमाणा ।
परिग्रहं इत्थिओ माणमायं
एयं परिन्ताय चरन्ति^१ दन्ता ॥

वडञ्जीवकायानसमारभमाणाः
मुयाअदत्तं चासेवमानाः ।
परिग्रहं स्त्रियो मानं मायां
एतत्परिन्ताय चरन्ति दान्ताः ॥

४१—(मुनि—) “मन और इन्द्रियों का दमन करने वाले छह जीव-निकाय की हिंसा नहीं करते; असत्य और चोरी का सेवन नहीं करते; परिग्रह, स्त्री, मान और माया का परित्याग कर के विचरन करते हैं ।

४२—सुसंबुडो^२ पंचहि संवरेहि
इह जीवियं अणवकंखमाणो^३ ।
वोसट्ठकाओ^४ मुइचत्तदेहो^५
महाजयं जयई जन्मसिट्ठं^६ ॥

सुसंबुताः पञ्चभिः संवरैः
इह जीवितमनवकांशन्तः ।
व्युत्सृष्ट-कायः शुचि-त्यस्तदेहः
महाजयं यजते यज्ञ-श्रेष्ठम् ॥

४२—“जो पाँच संवरों से मुग्धवृत्त होता है, जो असंयम-जीवन की इच्छा नहीं करता, जो काय का व्युत्सर्ग करता है, जो शुचि है और जो देह का त्याग करता है, वह महाजयी श्रेष्ठ यज्ञ करता है ।”

४३—के ते जोई^१ ? के व ते जोइठाणो ?
का ते सुया^२ ? कि व^३ ते कारिसंगं ?
एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खू !
कयरेण होमेण ठुणासि जोई^४ ? ॥

कि ते ज्योतिः ? कि वा ते ज्योतिः-स्थानं ?
कास्ते श्रुवः ? कि वा ते करोवाङ्गम् ?
एघाश्च ते कतराः ? शान्तिः ? भिक्षो !
कतरेण होमेन जुहोषि ज्योतिः ? ॥

४३—(सोमदेव—) “भिक्षो ! तुम्हारी ज्योति कौन-सी है ? तुम्हारा ज्योति-स्थान (अग्नि-स्थान) कौन-सा है ? तुम्हारे बी डालने की करछियाँ कौन-सी हैं ? तुम्हारे अग्नि को जलाने के कण्डे कौन-से हैं ? तुम्हारे ईंधन और शान्ति-पाठ कौन-से हैं ? और किस होम से तुम ज्योति को द्रुत (प्रीणित) करते हो ?”

४४—तवो जोई जीवो जोइठाणं
जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्म एहा संजमजोगसन्ती
होमं ठुणामी इसिणं पसत्थं ॥

तपोज्योतिर्जीवो ज्योतिः-स्थानं
योगाः श्रुवः शरीरं करोवाङ्गम् ।
कर्मधाः संयम-योगाः शान्तिः
होमं जुहोमि ऋषीणां प्रशस्तम् ॥

४४—(मुनि—) “तप ज्योति है । जीव ज्योति-स्थान है । योग (मन, वचन और काया की सत् प्रवृत्ति) बी डालने की करछियाँ हैं । शरीर अग्नि जलाने के कण्डे हैं । कर्म ईंधन है । संयम की प्रवृत्ति शान्ति-पाठ है । इस प्रकार मैं ऋषि प्रशस्त (अहिंसक) होम करता हूँ ।”

४५—के ते हरए ? के य ते सन्तितिये ?
कहिंसि ण्हाओ व रयं जहासि ? ।
आइक्व गे संजय ! जक्खपूइया !
इच्छामो नाउं भवओ सगासे ॥

कस्ते तदः ? किं च ते शान्ति-तीर्थं ?
कस्मिन् स्नातो वा रजो जहासि ? ।
आचक्ष्व नः संयत ! यक्षपूजित !
इच्छामो ज्ञानुं भवतः सकाशे ॥

४५—(सोमदेव—) “आपका नद (जलाशय) कौन-सा है ? आपका शान्ति-तीर्थ कौन-सा है ? आप कहाँ नहा कर कर्मरज धोते हैं ? हे यक्ष-पूजित संयत ! हम आपसे जानना चाहते हैं—आप बताइए ।”

१. चरेज (वृ०) ; चरन्ति (वृ० पा०) ।

२. सुसंबुडा (उ, छ) ।

३. अणवकंखमाणो (उ, छ) ।

४. वोसट्ठकाया (उ, छ) ।

५. मुइचत्तदेहा (उ, छ) ।

६. च (उ, ऋ०) ।

हरिषसिञ्जं (हरिकेशीय)

१५१

अज्ययन १२ : श्लोक ४६-४७

४६—धम्मे हरए बम्भे सन्तितित्ये
अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिंसि प्हाओ विमलो विमुद्धो
सुसीइभूओ^१ पजहामि दोसं ॥

४७—एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं
महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
'जहिंसि प्हाया'^२ विमला विसुद्धा
महारिसी उत्तम ठाण पत्त ॥
—त्ति वेमि ।

धर्मो ह्रस्वः ब्रह्म शान्ति-तीर्थं
अनाविले आत्मप्रसन्न-लेख्ये ।
यस्मिन् स्नातो विमलो विशुद्धः
सुशीतोभूतः प्रजहामि दोषम् ॥

एतस्नानं कुशलैर्दृष्टं
महास्नानभूषीणां प्रशस्तम् ।
यस्मिन्स्नाता विमला विशुद्धाः
महर्षय उत्तमं स्थानं प्राप्ताः ॥
—इति ब्रवीमि ।

४६—(मुनि—) “अकलुषित एवं आत्मा
का प्रसन्न-लेख्या वाला धर्म मेरा नद (जलाशय)
है । ब्रह्मचर्य मेरा शान्ति-तीर्थ है । जहाँ
नहा कर मैं विमल, विशुद्ध और सुशीतल होकर
कर्म-रज का त्याग करता हूँ ।”

४७—“यह स्नान, कुशल पुरुषों द्वारा दृष्ट
है । यह महा स्नान है । अतः ऋषियों के लिए
यही प्रशस्त है । इस धर्म-नद में नहाए हुए
महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम-स्थान
(मुक्ति) को प्राप्त हुए ।”

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. सुशीतभूतो (सु० पा०) ।

२. जहि सिणाया (अ, घ, झ) ।

तेरसमं अज्झयणं :
चित्तसम्भूदज्जं

त्रयोदश अध्यायन :
चित्र-सम्भूतीय

आन्सुख

इस अध्ययन में चित्र और संभूत के पारस्परिक सम्बन्ध और विसम्बन्ध का निरूपण है; इसलिए इसका नाम 'चित्तसम्भूत' 'चित्र-सम्भूतीय' है ।¹

उस काल और उस समय साकेत नगर में चन्द्रावन्तसक राजा का पुत्र मुनिचन्द्र राज्य करता था । राज्य का उपभोग करते-करते उसका मन काम-भोगों से विरक्त हो गया । उसने मुनि सागरचन्द्र के पास दीक्षा ग्रहण की । वह अपने गुरु के साथ-साथ देशान्तर जा रहा था । एक बार वह भिक्षा लेने गाँव में गया, पर सार्थ से बिछुड़ गया और एक भयानक अटवी में जा पहुँचा । वह भूख और प्यास से व्याकुल हो रहा था । वहाँ चार ग्वाल-पुत्र गारें चरा रहे थे । उन्होंने मुनि की अवस्था देखी । उनका मन कलुषा में भर गया । उन्होंने मुनि की परिचर्या की । मुनि स्वस्थ हुए । चारों ग्वाल-बालकों को धर्म का उपदेश दिया । चारों बालक प्रतिबुद्ध हुए और मुनि के पास दीक्षित हो गए । वे सभी आनन्द से दीक्षा-पर्याय का पालन करने लगे । किन्तु उनमें से दो मुनियों के मन में मैले कपड़ों के विषय में जुगुप्सा रहने लगी । चारों मर कर देव-गति में गए । जुगुप्सा करने वाले दोनों देवलोक से च्युत हो दशपुर नगर में शीतल्य ब्राह्मण की दासी यशोमती की कुक्षी से युगल रूप में जन्मे । वे युवा हुए । एक बार वे जंगल में अपने खेल की रक्षा के लिए गए । रात हो गई । वे एक वट वृक्ष के नीचे सो गए । अचानक ही वृक्ष की कोटर से एक सर्प निकला और एक की डँस कर चला गया । दूसरा जागा । उसे यह बात मालूम हुई । तत्काल ही वह सर्प की खोज में निकला । वही सर्प उसे मो डँस गया । दोनों मर कर कालिंजर पर्वत पर एक मुंगी के उदर से युगल रूप से उत्पन्न हुए । एक बार दोनों आसपास चर रहे थे । एक व्याध ने एक ही बाण से दोनों को मार डाला । वहाँ से मर कर वे गंगा नदी के तीर पर एक राजहँसिनी के गर्भ में आए । युगल रूप में जन्मे । वे युवा बने । वे दोनों साथ-साथ धूम रहे थे । एक बार एक मछुआ ने उन्हें पकड़ा और गर्दन मरोड़ कर मार डाला ।

उस समय वाराणसी नगरी में चाण्डालों का एक अधिपति रहता था । उसका नाम था भूतदत्त । वह बहुत समृद्ध था । वे दोनों हँस मर कर उसके पुत्र हुए । उनका नाम चित्र और संभूत रखा गया । दोनों माइओं में अपार स्नेह था ।

उस समय वाराणसी नगरी में शङ्ख राजा राज्य करता था । नसुधि उसका मंत्री था । एक बार उसके किसी अपराध पर राजा क्रुद्ध हो गया और वध की आज्ञा दे दी । चाण्डाल भूतदत्त को यह कार्य सौंपा गया । उसने नसुधि को अपने घर में छिपा लिया और कहा—“मंत्रिन् । यदि आप मेरे तल-घर में रहकर मेरे दोनों पुत्रों को अध्यापन कराना स्वीकार करें तो मैं आपका वध नहीं करूँगा ।” जीवन की आशा से मंत्री ने बात मान ली । अब वह चाण्डाल के पुत्रों—चित्र और संभूत को पढ़ाने लगा । चाण्डाल-पत्नी नसुधि की परिचर्या करने लगी । कुछ काल बीता । नसुधि चाण्डाल-स्त्री में आसक्त हो गया । भूतदत्त ने यह बात जान ली । उसने नसुधि को मारने का विचार किया । चित्र और संभूत दोनों ने अपने पिता के विचार जान लिए । गुरु के प्रति कृतज्ञता से प्रेरित हो उन्होंने नसुधि को कहीं

¹—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २३२ :

चित्तसंभूतार्थं वेदंती, भावधो न भाववन्तो ।

ततो समुद्भिन्नमिदं, अन्वयधो चित्तसंयुतं ॥

भाग जाने की सलाह दी। नमुषि वहाँ से भाग-भाग हस्तिनापुर में आया और चक्रवर्ती सनत्कुमार का मन्त्री बन गया।

चित्र और संभूत बड़े हुए। उनका रूप और लावण्य आकर्षक था। नृत्य और संगीत में वे प्रवीण हुए। वाराणसी के लोग उनकी कलाओं पर मुग्ध थे।

एक बार मदन-महोत्सव आया। अनेक गायक-टोलियाँ मधुर राग में अलाप रही थीं और तरुण-तरुणियों के अनेक गण नृत्य कर रहे थे। उस समय चित्र-संभूत की नृत्य-मण्डली भी वहाँ आ गई। उनका गाना और नृत्य सबसे अधिक मनोरम था। उसे सुन और देख कर सारे लोग उनकी मण्डली की ओर चले आए। युवातियाँ मंत्र-मुग्ध सी हो गयीं। सभी तन्मय थे। ब्राह्मणों ने यह देखा। मन में ईर्ष्या उभर आई। जातिवाद की आड़ में वे राजा के पास गए और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने दोनों मातंग-पुत्रों को नगर से निकाल दिया। वे अन्यत्र चले गए।

कुछ समय बीता। एक बार कौमुदी-महोत्सव के अवसर पर वे दोनों मातंग-पुत्र पुनः नगर में आए। वे मुँह पर ऋषड़ा डाले महोत्सव का आनन्द ले रहे थे। चलते-चलते उनके मुँह से संगीत के स्वर निकल पड़े। लोग अवाक रह गए। वे उन दोनों के पास आए। आवरण हटाते ही उन्हें पहचान गए। उनका रक्त ईर्ष्या से उबल गया। “वे थाण्डाल-पुत्र हैं”—ऐसा कहकर उन्हें लातों और चाटों से मारा और नगर से बाहर निकाल दिया। वे बाहर एक उद्यान में ठहरे। उन्होंने सोचा—“धिक्कार है हमारे रूप, यौवन, सौभाग्य और कला-कौशल को। आज हम थाण्डाल होने के कारण प्रत्येक वर्ग से तिरस्कृत हो रहे हैं। हमारा सारा गुण-समूह वृषित हो रहा है। ऐसा जीवन जीने से लाभ ही क्या?” उनका मन जीने से ऊब गया। वे आत्म-हत्या का हृदयकल्प ले वहाँ से चले। एक पहाड़ पर इसी विचार से खड़े। ऊपर चढ़कर उन्होंने देखा कि एक भ्रमण ध्यान-लीन है। वे साधु के पास आए और बैठ गए। ध्यान पूर्ण होने पर साधु ने उनका नाम-धाम पूछा। दोनों ने अपना पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया। मुनि ने कहा—“तुम अनेक कला-शास्त्रों के पारगामी हो। आत्म-हत्या करना नीच व्यक्तियों का काम है। तुम्हारे जैसे विमल-बुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए वह उचित नहीं। तुम इस विचार को छोड़ो और जिन-धर्म की शरण में आओ। इससे तुम्हारे शारीरिक और मानसिक सभी दुःख उद्बिल हो जायेंगे।” उन्होंने मुनि के वचन को शिरोधार्य किया और हाथ जोड़कर कहा—“भगवन्! आप हमें दीक्षित करें।” मुनि ने उन्हें योग्य समझ दीक्षा दी। गुरु-चरणों की उपासना करते हुए वे अध्ययन करने लगे। कुछ समय बाद वे गीताई हुए। विचित्र तपस्याओं से आत्मा को भावित करते हुए वे ज्ञानाभ्यास विहार करने लगे। एक बार वे हस्तिनापुर आए। नगर के बाहर एक उद्यान में ठहरे। एक दिन मास-क्षमण का पारण करने के लिए मुनि संभूत नगर में गए। भिक्षा के लिए वे घर-घर घूम रहे थे। मंत्री नमुषि ने उन्हें देख कर पहचान लिया। उसकी सारी स्मृतियाँ सद्यक हो गईं। उसने सोचा—यह मुनि मेरा सारा वृत्तान्त जानता है। वहाँ के लोगों के समक्ष यदि इसने कुछ कह डाला तो मेरी महत्ता नष्ट हो जायगी। ऐसा विचार कर उसने लाठी और मुक्तों से मार कर मुनि को नगर से बाहर निकालना चाहा। कई लोग मुनि को पीटने लगे। मुनि शान्त रहे। परन्तु लोग जब अत्यन्त उग्र हो गए, तब मुनि का धित अशान्त हो गया। उनके मुँह से धुआ निकली और सारा नगर अन्धकारमय हो गया। लोग घबड़ाए। अब वे मुनि को शान्त करने लगे। चक्रवर्ती सनत्कुमार भी वहाँ आ पहुँचा। उसने मुनि से प्रार्थना की—“भंते! यदि हम से कोई ऋति हुई हो तो आप क्षमा करें। आगे हम ऐसा अपराध नहीं करेंगे। आप महान् हैं। नगर-निवासियों को जीवन-दान दें।” इतने से मुनि का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उद्यान में बैठे मुनि चित्र ने यह सम्वाद सुना और आकाश को धूम से आच्छादित देखा। वे तत्काल वहाँ आये और उन्होंने मुनि संगत से कहा—“मुने! क्रोधानल को उपशान्त करो, उपशान्त करो! महर्षि उपशम-प्रधान होते हैं। वे अपराधों पर भी क्रोध नहीं करते। तुम अपनी शक्ति का संवरण करो।” मुनि संगत का मन शान्त हुआ। उन्होंने तैजोलेश्या का संवरण किया। अंधकार मिट गया। लोग प्रसन्न हुए। दोनों मुनि उद्यान में

लौट गए। उन्होंने सोचा—“हम काय-संलेखना कर चुके हैं, इसलिए अब अनशन करना चाहिए।” दोनों ने बड़े धैर्य के साथ अनशन ग्रहण किया।

चक्रवर्ती सनत्कुमार ने जब यह जाना कि मन्त्री नमुचि के कारण ही सभी लोगों को संत्रास सहना पड़ा है तो उसने मन्त्री को बाँधने का आदेश दिया। मन्त्री को रस्सों से बांध कर मुनियों के पास लाए। मुनियों ने राजा को समझाया और उसने मन्त्री को मुक्त कर दिया। चक्रवर्ती दोनों मुनियों के पैरों पर गिर पड़ा। रानी सुनन्दा भी साथ थी। उसने भी वन्दना की। अकस्मात् ही उसके केश मुनि सम्भूत के पैरों को छू गए। मुनि सम्भूत को अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। उसने निदान करने का विचार किया। मुनि चित्र ने ज्ञान-शक्ति से यह जान लिया और निदान न करने की शिक्षा दी, पर सब व्यर्थ। मुनि सम्भूत ने निदान किया—“यादें मेरी नपस्या का फल है तो मैं चक्रवर्ती बनूँ।”

दोनों मुनियों का अनशन चालू था। वे मर कर सौधर्म देवलोक में देव बने। वहाँ का आयुष्य पूरा कर श्वेत का जीव पुरिमताल नगर में एक इन्ध्र सेठ का पुत्र बना और सम्भूत का जीव कपिलस्थपुर में ब्रह्म राजा की रानी चुलनी के गर्भ में आया। रानी ने चौदह महा स्वप्न देखे। बालक का जन्म हुआ। उसका नाम ब्रह्मदत्त रखा गया।

राजा ब्रह्म के चार मित्र थे—(१) काशी देश का अधिपति कटक, (२) गजपुर का राजा कणोरवल, (३) कोशल देश का राजा दीर्घ और (४) चम्पा का अधिपति पुष्पचूल। राजा ब्रह्म का इनके साथ अगाध प्रेम था। वे सभी एक-एक वर्ष एक-एक के राज्य में रहते थे। एक बार वे सब राजा ब्रह्म के राज्य में समुदित हो रहे थे। उन्होंने दिनों की बात है, एक दिन राजा ब्रह्म को असह्य मस्तक-वेदना उत्पन्न हुई। स्थिति चिन्ताजनक बन गई। राजा ब्रह्म ने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को चारों मित्रों को सौंपते हुए कहा—“इसका राज्य तुम्हें चलाना है।” मित्रों ने स्वीकार किया।

कुछ काल बाद राजा ब्रह्म की मृत्यु हो गई। मित्रों ने उसका अन्त्येष्टि-कर्म किया। उस समय कुमार ब्रह्मदत्त छोटी अवस्था में था। चारों मित्रों ने विचार-विमर्श कर कोशल देश के राजा दीर्घ को राज्य का सारा भार सौंपा और बाद में सब अपने-अपने राज्य की ओर चले गए। राजा दीर्घ राज्य की व्यवस्था करने लगा। सर्वत्र उसका प्रवेश होने लगा। रानी चुलनी के साथ उसका प्रेम-बन्धन गाढ़ होता गया। दोनों निःसंकोच विषय-वासना का सेवन करने लगे।

रानी के इस दुश्चरण को जानकर राजा ब्रह्म का विद्रवस्त मन्त्री धनु चिन्ताग्रस्त हो गया। उसने सोचा—“जो व्यक्ति अधम आचरण में फँसा हुआ है, वह भला कुमार ब्रह्मदत्त का क्या हित साध सकेगा?”

उसने रानी चुलनी और राजा दीर्घ के अवैध-सम्बन्ध की बात अपने पुत्र वरधनु के द्वारा कुमार तक पहुँचाई। कुमार को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने एक उपाय ढूँढ़ा। एक कौवे और एक कौकिल को पिंजरे में बन्द कर अन्तःपुर में ले गया और रानी चुलनी को सुनाते हुए कहा—“जो कोई भी अनुचित सम्बन्ध जोड़ेगा, उसे मैं इसी प्रकार पिंजरे में डाल दूँगा।” राजा दीर्घ ने यह बात सुनी। उसने चुलनी से कहा—“कुमार ने हमारा सम्बन्ध जान लिया है। मुझे कौवा और तुम्हें कौकिल मान संकेत दिया है। अब हमें सावधान हो जाना चाहिए।” चुलनी ने कहा—“वह अभी बच्चा है। जो कुछ मन में आता है कह देता है।” राजा दीर्घ ने कहा—“नहीं, ऐसा नहीं है। वह हमारे प्रेम में बाधा डालने वाला है। उसको मारे बिना अपना सम्बन्ध नहीं निभ सकता।” चुलनी ने कहा—“जो आप कहते हैं, वह सही है किन्तु उसे कैसे मारा जाय? लोकापवाद से भी तो हमें डरना चाहिए।” राजा दीर्घ ने कहा—“अनापवाद से बचने के लिए पहले हम इसका विवाह कर दें, फिर उद्यो-त्यो इसे मार देंगे।” रानी ने बात मान ली।

एक शुभ-वेला में कुमार का विवाह सम्पन्न हुआ। उसके त्रयन के लिए राजा दीर्घ ने हजार स्तम्भ वाता एक लाक्षा-गृह बनवाया।

इधर मन्त्री धनु ने राजा दीर्घ से प्रार्थना की—“स्वामिन्। मेरा पुत्र वरधनु मन्त्री-पद का कार्यभार संभालने के योग्य हो गया है। मैं अब कार्य से निवृत्त होना चाहता हूँ।” राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और क्षलपूर्वक कहा—“तुम और कहीं जा कर क्या करोगे? यहीं रहो और दान आदि धर्मों का पालन करो।” मन्त्री ने राजा की बात मान ली। उसने नगर के बाहर गङ्गा नदी के तट पर एक विशाल प्याठ बनाई। वहाँ वह पथिकों और परित्राजकों को प्रचुर अन्न-पान देने लगा। दान और सम्मान के वशीभूत हुए पथिकों और परित्राजकों द्वारा उसने लाक्षा-गृह से प्याठ तक एक सुरंग खुदवाई। राजा-रानी को इस सुरंग की बात ज्ञात नहीं हुई।

रानी सुलती ने कुमार ब्रह्मदत्त को अपनी नवयवू के साथ उस लाक्षा-गृह में भेजा। दोनों वहाँ गए। रानी ने शेष सभी ज्ञाति-जन्यों को अपने-अपने घर भेज दिया। मन्त्री का पुत्र वरधनु वहाँ रहा। राजा के दो पहर बोले। कुमार ब्रह्मदत्त गाढ़ निद्रा में लीन था। वरधनु जाग रहा था। अचानक लाक्षा-गृह एक ही क्षण में प्रदीप्त हो उठा। हाहाकार मचा। कुमार जाग और दिकूदृष्ट बना हुआ वरधनु के पास आ बोला—“यह क्या हुआ? अब क्या करे?” वरधनु ने कहा—“यह राज-कन्या नहीं है, जिसके साथ आपका पाणिग्रहण हुआ है। इसमें प्रतिबन्ध करना उचित नहीं है। चलो हम चले।” उसने कुमार ब्रह्मदत्त को एक संकेतित स्थान पर लात मारने को कहा। कुमार ने लात मारी। सुरंग का द्वार खुल गया। वे उसमें घुसे। मन्त्री ने पहले ही अपने दो विश्वासो पुरुष सुरंग के द्वार पर नियुक्त कर रखे थे। वे धोखे पर चढ़े हुए थे। उयों ही कुमार ब्रह्मदत्त और वरधनु सुरंग से बाहर निकले त्यों ही उन्हें धोखे पर चढ़ा दिया। वे दोनों वहाँ से चले। पचास योजन दूर जा कर लहरे। लम्बी यात्रा के कारण धोखे खिन्न हो कर तंग पड़े। अब वे दोनों वहाँ से पंदल चले। वे चलते-चलते बाराणसी पहुँचे। राजा कटक ने जब यह संवाद सुना तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और पूर्ण सम्मान से कुमार ब्रह्मदत्त का नगर में प्रवेश करवाया। अपनी पुत्री कटकावली से उसका विवाह किया। राजा कटक ने दूत भेजकर सेना सहित पुष्पधूल को बुला लिया। मन्त्री धनु और राजा कणेरुदन भी वहाँ आ पहुँचे। और भी अनेक राजा मिल गए। उन सबने वरधनु को सेनापति के पद पर नियुक्त कर कौपिल्यपुर पर चढ़ाई कर दी। घमासान युद्ध हुआ। राजा दीर्घ मारा गया। “चक्रवर्ती को विजय हुई”—यह घोष चारों ओर फैल गया। तैनों ने आकाश से फूल बरसाए। “बारहवीं चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ है”—यह नाद हुआ। सामन्तों ने कुमार ब्रह्मदत्त का चक्रवर्ती के रूप में अभिषेक किया।

राज्य का परिपालन करता हुआ ब्रह्मदत्त सुखपूर्वक रहने लगा। एक बार एक नट आया। उसने राजा से प्रार्थना की—“मैं आज मधुकरी गीत नामक नाट्य-विधि का प्रदर्शन करना चाहता हूँ।” चक्रवर्ती ने स्वीकृति दे दी। अपराह्न में नाटक होने लगा। उस समय एक कर्मकरी ने फूल-मालाएँ ला कर राजा के सामने रखीं। राजा ने उन्हें देखा और मधुकरी गीत सुना। तब चक्रवर्ती के मन में एक विकल्प उत्पन्न हुआ—“ऐसा नाटक उसके पहले भी कहीं देखा है।” वह इस चिन्तन में लीन हुआ और उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हो आई। उसने जान लिया कि ऐसा नाटक मैंने सौधर्म देवलोक के पद्मगुह्य नामक विमान में देखा था।

इसकी स्मृति मात्र से वह मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ा। पास में बैठे हुए सामन्त उठे, चन्दन का लेप किया। राजा की चेतना लौट आई। सम्राट् आश्वस्त हुआ। पूर्वजन्म के भाई की याद सताने लगी। उसकी खोज करने के लिए उसने एक मार्ग ढूँढ़ा। रहस्य की खिपाते हुए सम्राट् ने महामात्य वरधनु से कहा—“आस्वदासी, मृगो हंसो; भातंगवमरी तथा”—इस श्लोकाद् को सब जगह प्रचारित करो और यह घोषणा करो कि इस श्लोक की पूर्ति करने वाले को सम्राट् अपना आधा राज्य देगा। प्रतिदिन यह घोषणा होने लगी। यह अर्द्ध श्लोक दूर-दूर तक प्रसारित हो गया और व्यक्ति-व्यक्ति को कण्ठस्थ हो गया।

इधर बिज का जीव देवलोक से च्युत हो कर पुरिमताल नगर में एक इन्ध्र सेठ के घर जन्मा । युवा हुआ । एक दिन पूर्व-जन्म की स्मृति हुई और वह मुनि बन गया । एक बार ग्रामानुग्राम विहार करते-करते वहाँ का पितृपुर में आया और मनोरम नाम के कानन में ठहरा । एक दिन वह कायोत्सर्ग कर रहा था । उसी समय रहैट को चलाने वाला एक व्यक्ति वहाँ बोल उठा—

“आस्वदासी मृगौ हंसौ, मातंगवमरौ तथा ।”

मुनि ने यह सुना और उसके आगे के दो शरण पूरा करते हुए कहा—

“एषा नौः षष्ठिका जातिः, अनन्योन्याभ्यां विद्युक्तयोः ॥”

रहैट चलाने वाले उस व्यक्ति ने उन दोनों शरणों को एक पत्र में लिखा और आधा राज्य पाने की सुशी में यह नौड़ा-नौड़ा राज-दरबार में पहुँचा । सम्राट् की अनुमति प्राप्त कर वह राज्यसभा में गया और एक ही साँस में पूरा श्लोक सम्राट् को सुना डाला । उसे सुनते ही सम्राट् स्नेहवश मूर्च्छित हो गए । सारी सभा क्षुब्ध हो गई । सभासद क्रुद्ध हुए और उसे पीटने लगे । उन्होंने कहा—“तू ने सम्राट् को मूर्च्छित कर दिया । यह कैसे तेरी श्लोक-पूति ?” मर पड़ी तब वह बोला—“मुझे मत मारो । श्लोक की पूर्ति मैंने नहीं की है ।” “तो किसने की है ?” —सभासदों ने पूछा । वह बोला—“मेरे रहैट के पास सड़े एक मुनि ने की है ।” अनुकूल उपचार पा कर सम्राट् सचेतन हुआ । मारो बात की जानकारी प्राप्त की और वह मुनि के दर्शन के लिए सपरिवार चल पड़ा । कानन में पहुँचा । मुनि को देखा । वन्दना कर विनयपूर्वक उनके पास बैठ गया । बिछुड़ा हुआ योग पुनः मिल गया । अब वे दोनों भाई पुनः पुनः के फल-विपाक की चर्चा करने लगे । वही चर्चा इस अध्ययन में प्रतिपादित है । बौद्ध ग्रंथों में भी इस कथा का प्रकारान्तर से उल्लेख मिलता है ।

६—दासा दसण्णे आसी
मिया कालिजरे नगे ।
हंसा मयंगतीरे^१
सोवागा^२ कासिभूमि^३ ॥

दासी दशार्णव आस्व
मृगो कालिजरे नगे ।
हंसी मृत-गङ्गातीरे
दबपाकौ काशीभूम्याम् ॥

६—“हम दोनों दशार्ण देश में दास,
कालिजर पर्वत पर हरिण, मृत-गङ्गा के
किनारे हंस और काशी देश में चाण्डाल थे ।

७—देवा य^४ देवलोगम्मि
आसि अम्हे महिद्धिया ।
‘इमा नो’^५ छट्ठिया जाई
अन्नमन्नेण जा विणा ॥

देवौ च देवलोकै
आस्वाऽऽवां महर्द्धिकौ ।
इयं नो षष्ठिका जातिः
अन्योज्येन या विना ॥

७—“हम दोनों सौधर्म देवलोक में महान्
ऋद्धि वाले देव थे । यह हमारा छठवां जन्म
है, जिनमें हम एक दूसरे से बिछड़ गये ।”

८—कम्मा नियाणप्पगडा
तुमे राय विचिन्तिया ।
तेसि फलविवागेण
विप्पओगमुवागया ॥

कर्माणि निवान-प्रकृतानि
त्वया राजन् ! विचिन्तितानि ।
तेषां फल-विपाकेन
विप्रयोगमुपागतौ ॥

८—(मुनि—) “राजन् ! तू ने निदान-
कृत (भोग-प्राप्त्यर्थ) मे बदयमान) कर्मों का
चिन्तन किया । उनके फल-विपाक से तम
बिछुड़ गये ।”

९—सच्चसोयप्पगडा
कम्मा मा^६ पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो
कि तु चित्ते वि से तथा ? ॥

सत्य-शौच-प्रकटानि
कर्माणि मया पुराकृतानि ।
तान्यद्य परिभुंजे
किन्तु चित्रोऽपि तानि तथा ? ॥

९—(चक्री—) “चित्र ! मैंने पूर्व-जन्म में
गत्व और शौचमय द्वाभ अनुष्ठान किये थे ।
आज मैं उनका फल भोग रहा हूँ । क्या
तू भी बेना ही भोग रहा है ?”

१०—सर्वं सुचिण्णं सफलं नराणं
कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहि
आया मम पुण्यफलोववेए ॥

सर्वं सुचीर्णं सफलं नराणां
कृतेभ्यः कर्मभ्यो न मोक्षोऽस्ति ।
अर्थः कामैश्चोत्तमैः
आत्मा मम पुण्य-फलोपेतः ॥

१०—(मुनि—) “मनुष्यों का सब सुचीर्ण
(सुष्ठु) सफल होता है । किण्, हुण्, कर्मों का
फल भोगे बिना मुक्ति नहीं होती । मेरी
आत्मा उत्तम अर्थ और कामों के द्वारा पुण्य-
फल से युक्त है ।”

११—जाणासि संभूय ! महानुभागं
महिद्धियं पुण्यफलोववेयं ।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं !
इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया ॥

जाणासि सम्भूत ! महानुभागं
महर्द्धिकं पुण्य-फलोपेतम् ।
चित्रमपि जानीहि तथैव राजन् !
ऋद्धिर्द्युतिस्तस्यापि च प्रभूता ॥

११—“सम्भूत ! जिस प्रकार तू अपने
को महान् अनुभाग (अचिन्त्य-शक्ति) सम्पन्न,
महान् ऋद्धिमान् और पुण्य-फल से युक्त मानता
है, उसी प्रकार चित्र को भी जान । राजन् !
उसको भी प्रचुर ऋद्धि और शुक्ति थी ।

१. मयंगतीराप् (अ, उ, ऋ०) ।

२. चंडाला (उ, ऋ०) ।

३. सि (उ) ।

४. इमामे (इ०) ; इमाणो (इ० पा०) ।

तेरसमं अङ्गवर्णनं : त्रयोवक्त्र आध्ययन चित्तसम्भूदज्जं : चित्र-सम्भूतीयम्

- | | | |
|--|--|---|
| <p style="text-align: center;">मूल</p> <p>१—जाईपराजिओं खलु
कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ।
चुलणीए बम्भदत्तो
उववन्तो पउमगुम्माओ ॥</p> | <p style="text-align: center;">संस्कृत छाया</p> <p>जाति-पराजितः खलु
अकार्योत् निदानं तु हस्तिनापुरे ।
चुलन्यां ब्रह्मदत्तः
उपपन्नः पद्मगुल्मात् ॥</p> | <p style="text-align: center;">हिन्दी अनुवाद</p> <p>१—जाति से पराजित हुए सम्भूत ने
हस्तिनापुर में निदान (चक्रवर्ती होऊँ—ऐसा
सङ्कल्प) किया । वह पद्म-गुल्म नामक विमान
में देव बना । वहाँ से च्युत होकर चुलनी की
कोख में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में उत्पन्न
हुआ ।</p> |
| <p>२—कम्पिले संभूओ
चित्तो पुण जाओ पुरिमनालम्मि ।
सेट्टिकुलम्मि विसालं
धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥</p> | <p>काम्पिल्ये सम्भूतः
चित्रः पुनर्जातः पुरिमताले ।
श्रष्टि-कुले विशाले
धर्म-श्रुत्वा प्रव्रजितः ॥</p> | <p>२—सम्भूत काम्पिल्य नगर में उत्पन्न
हुआ । चित्र पुरिमताल में एक विशाल श्रष्टि-
कुल में उत्पन्न हुआ । वह धर्म सुन प्रव्रजित
हो गया ।</p> |
| <p>३—कम्पिलम्मि य नयरे
समागया दां वि चित्तसम्भूया ।
मुहदुक्खफलविवागं
कहेत्ति ते एकमेकस्स ॥</p> | <p>काम्पिल्ये च नगरे
समागतौ द्वावपि चित्र-सम्भूतौ ।
सुख-दुःख-फल-विपाकं
कथयतस्तावैकैकस्य ॥</p> | <p>३—काम्पिल्य नगर में चित्र और सम्भूत
दोनों मिले । दोनों ने परस्पर एक दूसरे के
सुख-दुःख के विपाक की बात की ।</p> |
| <p>४—चक्रवट्टी महिड्ढीओ
बम्भदत्तो महायसो ।
भायरं बहुमाणेणं
इमं वयणमब्ववी ॥</p> | <p>चक्रवर्ती महिद्विकः
ब्रह्मदत्तो महायशः ।
भ्रातरं बहु-मानेन
इदं वचनमब्रवीत् ॥</p> | <p>४—महान् श्रष्टि-सम्पन्न और महान्
यशस्वी चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने बहुमान-पूर्वक
अपने भाई से इस प्रकार कहा—</p> |
| <p>५—आसिमो भायरा दो वि
अन्नमन्नवसानुगा ।
अन्नमन्नमणूरत्ता
अन्नमन्नहिएसिणो ॥</p> | <p>आस्व भ्रातरो द्वावपि
अन्नोऽन्न्यवशानुगी ।
अन्नोऽन्न्यमनुरत्तो
अन्नोऽन्न्यं हितेषिणी ॥</p> | <p>५—“हम दोनों भाई थे—एक दूसरे के
वशवर्ती, परस्पर अनुरक्त और परस्पर हितेषी ।</p> |

१२—महत्स्वरूपा वयणप्भूया
गाहाणुगीया नरसंघमज्जे ।
जं भिक्षुणो सीलगुणोववेया
'इहज्जयन्ते समणो' म्हि जाओ ॥

महायैरूपा वचनाऽल्पभूता
गाथाऽनुगीता नर-संघ-मध्ये ।
यां भिक्षवः सील-गुणोपेताः
इहार्जयन्ति श्रमणोऽस्मि जातः ॥

१२—“स्वविरो ने जन-समुदाय क बीच
बल्पाक्षर और महान् अर्थ वाली जो गाथा
मार्ई, जिते सील और श्रुत से सम्पन्न भिक्षु बडे
यल से अर्जित करते हैं, उमे मुनकर मैं श्रमण
हो गया ।”

१३—उच्चोयए मधु कक्के य बम्भे
पवेइया आवसहा 'य रम्मा' ।
इमं गिहं चिन्धणप्पभूय*
पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥

उच्चोदयो मधुः ककंठश्च ब्रह्मा
प्रवेदिता आवसथाश्च रम्माः ।
इदं गृहं प्रभूत-चित्र-धनं
प्रसाधि पञ्चालगुणोपेतम् ॥

१३—(चको) “उच्चोदय, मधु, ककं,
मव्य और ब्रह्मा—ये प्रधान प्राणाद तथा दूसरे
अनेक रम्य प्रासाद है । पंचाल देश की विशिष्ट
वस्तुओं में युक्त और प्रचुर एवं विचित्र हिरण्य
आदि से पूर्ण यह घर है—इसका तू उपभोग
कर ।

१४—नट्टहि गोएहि य वाइएहि
नारीजणाइं परिवारयन्तो* ।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्षु !
मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥

नाट्यैर्गीतैश्च वादित्रैः
नारी-जनान् परिवारयन् ।
भुङ्क्ष्व भोगानिमान् भिक्षो !
महा रोचते प्रव्रज्या खलु दुःखम् ॥

१४—“हे भिक्षु ! तू नाट्य, गीत और
बाद्यो के साथ नारी-जनो को परिभूत करना
हवा इन भोगों को भोग । यह मुझे रुचता है ।
प्रव्रज्या बान्धव में ही कष्टकर है ।”

१५—नं पुव्वनेहेण कयानुरागं
नराहिवं कामगुणेषु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेहो
चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था* ॥

नं पुर्व-स्नेहेन कृतानुरागं
नराधिपं काम-गुणेषु गूढम् ।
धर्माश्रितस्तस्य हितानुप्रेषो
चित्र इदं वचनमुदाहार्थिनः ॥

१५—धर्म में स्थित और उस (राजा)
का हित चाहने वाले चित्र मुनि ने पूर्व-भव के
स्नेह-वश अपने प्रति अनुगम रखने वाले काम-
गणों में आसक्त राजा से यह वचन कहा—

१६—सर्वं विलवियं गीयं
सर्वं नट्टं विडम्बियं^१ ।
सर्वे आभरणा भारा
सर्वे कामा दुहावहा ॥

सर्वं विलपितं गीतं
सर्वं नाट्यं विडम्बितम् ।
सर्वाभ्याभरणानि भाराः
सर्वे कामा दुःखावहाः ॥

१६—“सब गीत विलाप हैं, सब नाट्य
विडम्बना हैं, सब आभरण भार हैं और सब
काम-भोग दुःखकर हैं ।

१. इहज्जयन्ते छमणो (वृ० पा०) ; इहज्जयन्ते छमणो (वृ० पा०) ।

२. उत्तरम्मा, छरम्मा वा (वृ० पा०) ।

३. विसयणोववेयं (वृ०) ; वणवित्तोववेयं (वृ०) ; चित्तवणप्ययुयं (वृ० पा०) ।

४. परिवारयन्तो (वृ० पा०) ; परिवारयन्तो (अ, क, ऋ०) ।

५. वक्क (वृ०) ; वयण (वृ० पा०) ।

६. विडम्बणा (उ, वृ०) ।

१७—‘बालाभिरामेषु दुहावहेसु
न तं सुहं कामगुणेषु रायं ! ।
विरक्तकामाण तवोधणाणं
जं भिक्षुणं सीलगुणे रयाणं ॥’

१८—नरिदं जाई अहमा नराणं
सोवागजाई दुहुओ गयाणं ।
जहिं वयं सञ्चजणस्स वेस्सा
वसीय सोवागनिवेशेणु ॥

१९—तीसे य जाईइ उ पावियाए
वुच्छामु सोवागनिवेशेणु ।
सञ्चस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा
इहं तु कम्माई पुरेकडाई ॥

२०—सो दाणि सि राय ! महाणुभागे
महिडिओ पुण्यफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइ असासयाई
‘आयाणहेउं अभिणिक्वमाहि’ ॥

२१—इह जीविए राय ! असासयम्मि
धणियं तु पुण्णाइ अकुव्वमाणो ।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए
धम्मं अकाऊण परंसि लोए ॥

२२—जहेह सीहो व मियं गहाय
मच्चु नरं नेइ हु अन्तकाले ।
न तस्स माया ‘व पिया व भाया’*
कालम्मि तम्मसहरा* भवन्ति ॥

बालाभिरामेषु दुःखावहेषु
न तत्सुखं काम-गुणेषु राजन् ! ।
विरक्त-कामानां तपोधनानां
यइ भिक्षूणां शील-गुणे रतानाम् ॥

नरेन्द्र ! जातिरधमा नराणां
इवपाक-जातिर्द्वयोः गतयोः ।
यस्यामावां सर्वजनस्य द्वे ध्यो
अवसाव इवपाक-निवेशेणु ॥

तस्यां च जातो तु पापिकायाम्
उचितो आवां इवपाक-निवेशेणु ।
सर्वस्य लोकस्य जुगुप्सनीयो
इह तु कर्माणि पुराकृतानि ॥

स इदानीं राजा महानुभागः
महाद्विकः पुण्य-फलपेतः ।
त्यक्त्वा भोगानशाश्वतान्
आवात-हेतोरभिनिष्कामः ॥

इह जीविते राजन् ! अशाश्वते
अत्यर्थं तु पुण्यान्यकुर्वाणः ।
स शोचति मृत्युमुखोपनीतः
धर्ममकृत्वा परस्मिन्लोके ॥

यथेह सिंहो वा मृगं गृहीत्वा
मृत्युनरं नयति खलु अन्तकाले ।
न तस्य माता वा पिता वा भ्राता
काले तस्यांशवरा भवन्ति ॥

१७—‘‘राजन् ! अज्ञानियों के लिए
रमणीय और दुःखकर काम-गुणों में वह मुख
नहीं है, जो सुख कामों से विरक्त, शील और
गुण में रत तपोधन भिक्षु को प्राप्त होता है ।

१८—‘‘नरेंद्र ! मनुष्यों में चाण्डाल-
जाति अधम है । उसमें हम दोनों उत्पन्न हो
चुके हैं । वहाँ हम चाण्डालों की बन्दी में
रहते थे और सब लोग हम से द्वेष करते थे ।

१९—‘‘दोनों ने कुत्सन चाण्डाल-जाति
में जन्म लिया और चाण्डालों की बन्दी में
निवास किया । सब लोग हमसे घृणा करने
थे । इस जन्म में जो उच्चता प्राप्त हुई है, वह
पूर्व-कृत शुभ कर्मों का फल है ।

२०—‘‘उसी के कारण वह तू महान्
अनुभाव (अचिन्त्य-शक्ति) सम्पन्न, महान्
महाद्विक और पुण्य-फल युक्त राजा बना
है । इसीलिए तू अशाश्वत भोगों को छोड़
कर चारित्र्य-धर्म की आराधना के लिए
अभिनिष्क्रमण कर ।

२१—‘‘राजन् ! जो इस अशाश्वत जीवन
में प्रचुर शुभ अनुष्ठान नहीं करता, वह मृत्यु
के मुंह में जाने पर पश्चात्ताप करता है
और धर्म की आराधना नहीं होने के कारण
परलोक में भी पश्चात्ताप करता है ।

२२—‘‘जिस प्रकार सिंह हरिण को पकड़
कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्तकाल में मृत्यु
मनुष्य को ले जाती है । काल घटाने पर
उसके माता-पिता या भाई अंशधर नहीं होते—
अपने जीवन का भाग दे कर बचा नहीं पाते ।

१. यह श्लोक चूर्ण में व्याख्यात नहीं है ।

२. आदानमेव अलुप्पितवाहि (च०) ; आदान हेतुं अभिणिक्वमाहि (च० पा०) ; जायायमेवा अलुप्पितवाहि (इ० पा०) ।

३. न पिया न भाया (उ) ।

४. तम्मसहरा (उ) ।

२३—न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ
न मित्तवग्गान सुया न बन्धवा ।
एको सयं पच्चणुहोइ दुक्खं
कर्तारमेवं अणुजाइ कम्मं ॥

२४—चेच्चा दुपयं च चउण्णयं च
खेत्तं गिहं धणधन्नं च सर्व्वं ।
कम्मपवीओ^१ अवसो पयाइ
परं भवं सुंदर पावगं वा ॥

२५—तं इक्कं तुच्छसरीरगं से
विईगयं ड्हिय उ पावगणं ।
भज्जाय पुत्ता^२ वि य नायआय
दायारमन्नं अण्णकमन्ति ॥

२६—उवणज्जई जीवियमप्पमायं
वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं ! ।
पंचालराया ! वयणं सुणाहि
मा कासि कम्माइ महालयाइ ॥

२७—अहं पि जाणामि 'जेहेह साहू !'^३
जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं ।
भोगा इमे संगकरा हवन्ति
जे दुज्जया अज्जो ! अम्हारिसेहि ॥

२८—हत्थिणपुरम्मि चित्ता !
दड्ढा नरवड्ढं महिड्डियं ।
कामभोगेसु गिद्धेणं
नियानमसुहं कडं ॥

न तस्य दुःखं विभयन्ति ज्ञातयः
न मित्र-वर्गा न सुता न बान्धवाः ।
एकः स्वयं प्रत्यनुभवति दुःखं
कर्तारमेवानुयाति कर्म ॥

त्यक्त्वा द्विपदं च चतुष्पदं च
क्षेत्रं गृहं धन-धान्यं च सर्वम् ।
कर्मसि-द्वितीयोऽवशः प्रयाति
परं भवं सुन्दरं पापकं वा ॥

तदेकं तुच्छ-शरीरकं तस्य
चित्ति-गतं दण्ड्वा तु पावकैः ।
भार्या च पुत्रोपि च ज्ञातयश्च
दातारमन्यमनुसङ्गामन्ति ॥

उपनीयते जीवितमप्रमादं
वर्णं जरा हरति नरस्य राजन् ! ।
पञ्चाल-राज ! वचनं शृणु
मा कार्षीः कर्मणि महालयानि ॥

अहमपि जानामि येहेह साधो !
यन्म त्वं साधयसि वाक्यमेतत् ।
भोगा इमे सङ्गकरा भवन्ति
ये दुर्जया आर्य ! अस्मादसौः ॥

हस्तिनापुरे चित्र !
टड्डा नरपति महिज्जकम् ।
काम-भोगेषु गृद्धेन
निदानमशुभं कृतम् ॥

२३—“ज्ञाति, मित्र-वर्ग, पुत्र और
बान्धव उसका दुःख नहीं बँटा सकते । वह
स्वयं अकेला दुःख का अनुभव करता है ।
क्योंकि कर्म कर्ता का अनुगमन करता है ।

२४—“यह पराधीन आत्मा द्विपद,
चतुष्पद, खेत, घर, धन, धान्य, वस्त्र आदि सब
कुछ छोड़ कर केवल अपने किये कर्मों को साथ
लेकर सुखदा या दुःखदा-पर-भव में जाता है ।

२५—“उस अकेले और अमार शरीर
को अग्नि से चिता में जलाकर रस्ती, पुत्र और
ज्ञाति किसी दूसरे दाना (जीविका देने वाले)
के पीछे चले जाते हैं ।

२६—“राजन् ! कर्म बिना भूल किए
(निरन्तर) जीवन को मृत्यु के समीप ले जा रहे
हैं । बुढ़ापा मनुष्य के वर्ण (मुनिव्य कर्ति)
का हरण कर रहा है । पंचाल-राज ! मेरा
वचन सुन । प्रचुर कर्म मन कर ।”

२७—(चक्रो—) “साधो ! तू जो मुझे
यह वचन जेते कह रहा है, वैसे मैं भी जानता
हूँ कि ये भोग आसक्तिजनक होते हैं । किन्तु
हे आर्य ! हमारे जैसे व्यक्तियों के लिए वे
दुर्जय हैं ।

२८—“चित्र मुने ! हस्तिनापुर में महान्
श्रद्धि वाले चक्रवर्ती (सम्राटकुमार) को देख
भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान
(भोग-सङ्कल्प) कर डाला ।

१. सक्कम्मपवीओ (ठ) ; सक्कम्मवीओ (अ) ; कम्मपविहो (अ) ।

२. पुत्तो (हू) ।

३. ओ एव सातो (बू पा० ५०) ।

२९—तस्स मे अपडिक्कन्तस्स
इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणो वि जं धम्मं
कामभोगसु मुच्छिओ ॥

तस्मान्मेऽप्रतिक्कन्तस्य
इवमेतादृशं फलम् ।
जानन्पि यह धर्मं
काम-भोगेषु मुच्छितः ॥

२९—“उमका मैंने प्रतिक्रमण
(प्रायश्चित्त) नहीं किया । उसी का यह ऐसा
फल है कि मैं धर्म को जानता हुआ भी
काम-भोगों में मुच्छित हो रहा हूँ ।

३०—नागो जहा पंकजलावसन्नो
ददुं थलं नाभिसमेह तीरं ।
एवं वयं कामगुणेषु गिद्धा
न भिक्खुणो मग्गमणुत्त्वयामो ॥

नागो यथा पङ्क-जलावसन्न
दृष्ट्वा स्थल नाभिसमेति तीरम् ।
एवं वयं काम-गुणेषु गृद्धाः
न भिक्षुर्मांसमनुव्रज्यामः ॥

३०—“जैसे पंक-जल (दलदल) में कैमा
हुआ हाथी स्थल को देखता हुआ भी किनारे
पर नहीं पहुँच पाता, वैसे ही काम-गणों में
आसक्त बने हुए हम भ्रमण-धर्म को जानते हुए
भी उमका अनुसरण नहीं कर पाते ।”

३१—अच्चेइ कालो तूरन्ति गइओ
न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिसं चयन्ति
दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥

अत्येति कालस्त्वरन्ते रात्रयः
न चापि भोगाः पुरुषाणां निष्याः ।
उपेत्य भोगाः पुरुषं त्यजन्ति
दुःमं यथा क्षीणफलमिव पक्षी ॥

३१—(मनि—) “जावन बीत रहा है ।
रात्रियाँ लौटो जा रही हैं । मरणों के भोग
भी निष्य नहीं हैं । वे मनुष्य को प्राप्त कर उसे
छोड़ देते हैं, जैसे क्षीण फल वाले वृक्ष को
पक्षी ।

३२—‘जइ ता सि’ भोगे चइउअसत्तो
अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं ।
धम्मे ठिआं सव्वपयाणुकम्पी
तोहोहिमि देवोइओ विउव्वी ॥

यदि तावदसि भोगान् त्यक्तुमशक्तः
आर्याणि कर्माणि कुरु राजन् ! ।
धर्मे स्थितः सर्वप्रज्ञानुकम्पी
तस्मात्तु भविष्यसि देव इतो वैक्रिय ॥

३२—“राजन् ! यदि तू भोगों का त्याग
करने में असमर्थ है तो आर्य-कर्म कर । धर्म
में स्थित होकर सब जीवों पर अनुकम्पा
करने वाला तू, जिसमें तू जन्मान्तर में वैक्रिय
मार्ग वाला देव होगा ।

३३—न तुज्ज भोगे चइऊण बुद्धी
गिद्धो सि आरम्भपरिग्गहेसु ।
मोहं कूतं एतवान् विप्रलापो
गच्छामि रायं ! आमन्तिओ सि ॥

न तव भोगान् त्यक्तुं बुद्धिः
गृद्धोसि आरम्भ-परिग्रहेषु ।
मोहं कृत एतवान् विप्रलापः
गच्छामि राजन् ! आमन्त्रितोऽसि ॥

३३—“तुम में भोगों को त्यागने की बुद्धि
नहीं है । तू आरम्भ और परिग्रह में आसक्त
है । मैंने व्यर्थ ही इतना प्रलाप किया । तुझे
आमन्त्रित (सन्बोधित) किया । राजन् ! अब
मैं जा रहा हूँ ।”

३४—पंचालराया वि य बम्भदत्तो
साहुस्स तस्स वयणं अकाउं ।
अणुत्तरे भुजिय कामभोगे
अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥

पञ्चाल-राजोपि च ब्रह्मदत्तः
साधोस्तस्य वचनमकृत्वा ।
अनुत्तरान् भुक्त्वा काम-भोगान्
अनुत्तरे स नरके प्रविष्टः ॥

३४—पंचाल जनपद के राजा ब्रह्मदत्त ने
मुनि के वचन का पालन नहीं किया । वह
अनन्तर काम-भोगों को भोग कर अनुत्तर नरक
में गया ।

१. जहति (बु०) ।

२. जइ तंसि (उ, बु० पा०, ऋ०) ; जइंसि (बु०) ।

३. तस्सा (अ, आ, इ, स) ।

३५—चित्तो वि कामेहि विरक्तकामो
उदग्गचारित्तवो^१ महेसी ।
अणुत्तरं संजम पालइत्ता
अणुत्तरं सिद्धिगडं गओ ॥
—त्ति बेमि ।

चित्रोपि कामेभ्यो विरक्त-कामः
उदग्ग-चारित्र-तपा महर्षिः ।
अनुत्तरं संयमं पालयित्वा
अनुत्तरां सिद्धि-गतिं गतः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३५—कामना से विरक्त और प्रधान
चारित्र-तप वाला महर्षि चित्र अनुत्तर संयम
का पालन कर अनुत्तर सिद्धि-गति को प्राप्त
हुआ ।

—ऐसा मैं कहना हूँ ।

निर्युक्तिकार ने ग्यारह गाथाओं में कथावस्तु को प्रस्तुत किया है। उसमें सभी पात्रों के पूर्व-भव, वर्तमान-भव में उनकी उत्पत्ति तथा निर्वाण का संक्षिप्त चित्रण है।^१

पूर्व अध्ययन में वर्णित पित्र और सम्भूत के पूर्व-जन्म में दो ग्वाले मित्र थे। उन्हें साधु के अनुग्रह से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। वे वहाँ से मर कर देवलोक में गए। वहाँ से च्युत हो कर उन्होंने क्षितिप्रतिष्ठित नगर के एक इन्ध-कुल में जन्म लिया। वे बड़े हुए। चार इन्ध-पुत्र उनके मित्र बने। उन सबने सुखावस्था में काम-भोगों का उपभोग किया, फिर स्वयिं से धर्म सुन प्रव्रजित हुए। चिरकाल तक संयम का अनुपालन किया। अन्त में अनशन कर सौधर्म देवलोक के पद्मगुल्म नामक विमान में चार पत्न्य की स्थिति वाले देव बने। दोनों ग्वाल-पुत्रों की छोड़ कर शेष चारों मित्र वहाँ से च्युत हुए। उनमें एक कुल जनपद के इक्षुकार नगर में इक्षुकार नाम का राजा हुआ और दूसरा उसी राजा की रानी कमलावती। तीसरा भृगु नाम का पुरोहित हुआ और चौथा भृगु पुरोहित की पत्नी यश। ब्रह्म काल बीता। भृगु पुरोहित के कोई पुत्र नहीं हुआ। पति-पत्नी चिन्तित रहने लगे।

एक बार उन दोनों ग्वाल-पुत्रों ने, जो अभी देव-भव में थे, अवधिज्ञान से जाना कि वे भृगु पुरोहित के पुत्र होंगे। वे वहाँ से चले। अमण का रूप बना भृगु पुरोहित के पास आए। भृगु और यश दोनों ने वन्दना की। मुनियों ने धर्म का उपदेश दिया। भृगु-दम्पति ने श्रावक के व्रत स्वीकार किए। पुरोहित ने पूछा—“भगवन्! हमको कोई

१ - उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ३६६-३७३ :

पुत्रभवे संचिद्धा सपीभा अन्नमन्नमणुरा।
भुषण भोगभोगे निर्गन्धा पच्ये समणा ॥
काङ्क य सामन्नं पडमगुम्मे विमाणि उववन्ना।
पलिभोवमाहं चदरो ढई उकोसिभा तेसि ॥
ततो य बुभा संता कुलजनवधपुरवर्मि उडभारे।
छावि जणा उववन्ना चरिमसरीरा विगबमोहा ॥
राया उडुधारेो या कमलावह देवि भगमहिंसी ते।
भिगुनामं य पुरोहिप वासिद्धा मारिभा तस्व ॥
उडभारपुरे नवरे उडभारपुरोहिभो अ अणवचयो।
पुत्तस्स कए बहुसो परितप्यंती दुअगावि ॥
काङ्क समणस्स तहियं देवो पुरोहिअं भणह।
होहिंति तुज्ज पुत्ता दुप्पि जणा देवलोगयुआ ॥
तेहि अ पव्वइअस्स जहा य न करेह अंतरायं णं।
तं पव्वइआ संता बोहेहिती जणं बहुअं ॥
तं वयणं सोऊणं नगराभो चित्ति तं वयगामे।
वहुंति अ ते तहियं गाहिंति अ णं असम्माअं ॥
एए समणा पुत्ता पेणपिसाया य पोस्साया य।
मा तेसि अल्लिअहा मा भे पुत्ता ! विणासिआ ॥
दट्ठेण तहिं समणे आहं पोरणिअं य सरिऊणं।
बोहितस्समापिअरं उडभारं राधयुत्त ॥
सीमंजरो य राया भिगुअ वासिद्ध राधपत्ती य।
अमणी दारगा वेव छप्पेए परिमिज्जुआ ॥

चउवसमं अङ्गवयणं :
उसुयारिज्जं

चतुर्दशे अध्ययन :
इषुकारीय

पुत्र होगा या नहीं ?” अमण युगल ने कहा—“तुम्हें दो पुत्र होंगे किन्तु वे बाल्यावस्था में ही दीक्षित हो जायेंगे। उनकी प्रवृत्ति में तुम्हें कोई व्याघात उपस्थित नहीं करना होगा। वे दीक्षित होकर धर्म-शासन की प्रमाणा करेंगे।” इतना कह दोनों अमण वहाँ से चले गए। पुरोहित पति-पत्नी को प्रसन्नता हुई। कालान्तर में वे दोनों देव पुरोहित पत्नी के गर्भ में आए। दीक्षा के भय से पुरोहित नगर को छोड़ व्रज गाँव में जा बसा। वहाँ पुरोहित की पत्नी यशो ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वे कुछ बड़े हुए। माता-पिता ने सोचा ये कहीं दीक्षित न हो जाएँ अतः एक बार उनसे कहा—“पुत्रो ! ये अमण सुन्दर-सुन्दर बालकों को उठा ले जाते हैं और मार कर उनका मांस खाते हैं। उनके पास तुम दोनों कभी मत जाना।”

एक बार दोनों बालक खेलते-खेलते गाँव से बहुत दूर निकल गए। उन्होंने देखा कि कई साधु उसी मार्ग से आ रहे हैं। भयभीत हो वे एक वृक्ष पर चढ़ गए। संयोगवश साधु भी उसी वृक्ष की सघन छाया में आ बैठे। बालकों का भय बढ़ा। माता-पिता की शिक्षा स्मृति-पटल पर नाथने लगे। साधुओं ने कुछ विश्राम किया। भोली से पात्र निकाले और सभी एक मण्डली में भोजन करने लगे। बालकों ने देखा कि मुनि के पात्रों में मांस जैसी कोई वस्तु नहीं थी। साधुओं की सामान्य भोजन करते देख बालकों का भय कम हुआ। बालकों ने सोचा—“अहो ! हमने ऐसे साधु अन्वयत्र भी कभी देखे हैं।” चिन्तन चला। उन्हें जातिस्मृति-ज्ञान उत्पन्न हुआ। वे नीचे उतरे, मुनियों की नन्दना की और सीधे अपने माता-पिता के पास आए।

तब उन्होंने माता-पिता से कहा—“हमने देखा कि मातृ-जीवन अनित्य है, विघ्न-बहुल है और आयु धार्ष्ट्य है इसलिए धर्म से हटने कोई आनन्द नहीं है। हम मुनि-चर्या को स्वीकार करने के लिए आपकी अनुमति चाहते हैं।” (श्लोक ९)

पिता ने कहा—“पुत्रो ! मेरी को जानने वाले इस प्रकार कहते हैं कि उनके पुत्र नहीं होता उनकी गति नहीं होती। इसलिए वेदों की पढ़ी। ब्राह्मणों को भोजन कराओ। तंत्रियों के साथ भोग करो। पुत्रोत्पन्न करो। पत्नी का विवाह कर, लहंगे घर सौंप किन्तु अरण्यवासी प्रशस्त मुनि हो जाना।” (श्लोक ८-९)

पुत्रो ने कहा—“वेद पढ़ने पर भी वे ब्राह्मण नहीं होते। ब्राह्मणों का भोजन कराने पर वे नरक में ले जाते हैं। औरस पुत्र भी ब्राह्मण नहीं होते। य काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल दुःख देने वाला, बहुत दुःख और धोखा सुख देने वाला संसार-सृष्टि के विरोधी और अनर्थों की खान है। कात् सदा संयम खड़ा है। इसी सिद्धि से प्रभाव कैसे किया जाए ?” (श्लोक १२, १३, १४)

पिता ने कहा—“पुत्रो ! जिसके लिए सामान्यतया लोग तप किया करते हैं वह सब कुछ—प्रभुर धन, स्थला, स्वजन और इन्द्रियों के विषय तुम्हें यहाँ प्राप्त हैं फिर तुम किसलिए अमण होना चाहते हो ?” (श्लोक १५)

पुत्रों ने कहा—“जहाँ धर्म की धुरा का बहान करने का अधिकार है वहाँ धन-स्वजन और इन्द्रियों का गन्ध का क्या प्रयोजन ? हम सभी प्रातःबन्धों से मुक्त होकर भिक्षा से निर्वाह करने वाले अमण होंगे।” (श्लोक १७)

नास्तिक मान्यता का यह घोष था कि शरीर से मर्त्य कोई चेतन्य नहीं है। पाँच भूतों के समवाय से उसका उत्पाद होता है और जब वे भूत विलग्न हो जाते हैं तब चेतन्य भी नष्ट हो जाता है। “अराण में आग, दूध में घृत और मेल में तेल अविद्यमान होने पर भी उचित प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न हो जाते हैं। उसी प्रकार भूतों से चेतन्य की उत्पत्ति माननी चाहिए।” (श्लोक १८)

आस्तिक मान्यता को स्पष्ट करते हुए पुत्रों ने कहा—“आत्मा अमूर्त है इसलिए यह इन्द्रियों द्वारा गन्ध नहीं है। यह अमूर्त है इसलिए नित्य है। आत्मा के आन्तरिक दोष हो उसके बन्धन के हेतु हैं और बन्धन ही संसार का हेतु है।” (श्लोक १९)

आस्त्य

इस अध्ययन के छह पात्र हैं—(१) महाराज इषुकार, (२) रानी कमलावती, (३) पुरोहित भृगु, (४) पुरोहित की पत्नी यश और (५-६) पुरोहित के दो पुत्र ।

इनमें भृगु पुरोहित का कुटुम्ब ही इस अध्ययन का प्रधान पात्र है । किन्तु राजा की लौकिक प्रधानता के कारण इस अध्ययन का नाम 'इषुकारीय' रखा गया है ।^१

इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है 'अन्यत्त्व भावना' का उपदेश । आगम-काल में कई मतावलम्बियों की यह मान्यता थी कि पुत्र के बिना गति नहीं होती, स्वर्ग नहीं मिलता । जो व्यक्ति गृहस्थ-धर्म का पालन करता है वह स्वर्ग प्राप्त कर लेता है । जिसके कोई सन्तान नहीं है उसका कोई लोक नहीं होता । पुत्र से ही परमत्व होता है—सुधरता है । इसी के फलस्वरूप—

१--“अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च ।

गृहिधर्ममनुष्ठाय, तेन स्वर्गं गमिष्यति ॥”

२--“अनपत्यस्य लोका न सन्ति ।”

३--“पुत्रेण जायते लोकः, इत्येषा वेदिकी भुक्तिः ।

अथ पुत्रस्य पुत्रेण, स्वर्गलोके महीयते ॥”

आदि-आदि सूक्त प्रचलित हो रहे थे और लोगों का अधिक भाग इसमें विश्वास करने लगा था । पुत्र-प्राप्ति के लिए सभी संभावित प्रयत्न किए जाते थे । पुत्रोत्पत्ति से जीवन की महान् सफलता मानी जाती थी । इस विचार-धारा ने दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया था, परन्तु अध्यात्म के प्रति उदासीन भाव प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे । उस समय यह भी मान्यता प्रचलित थी कि यदि पुत्र से ही स्वर्ग-प्राप्ति हो जाती है तो दान आदि धर्म व्यर्थ हैं ।

भगवान् महावीर स्वर्ग और नरक की प्राप्ति में व्यक्ति-व्यक्ति की प्रवृत्ति को महत्त्व देते थे । उन्होंने कहा—
“पुण्य-पाप व्यक्ति-व्यक्ति का अपना होता है । माता-पिता, भाई-बन्धु, पुत्र-स्त्री आदि कोई भी प्राणी प्राणी नहीं होता । सबको स्वतंत्र रूप से अपने-अपने कर्मों का फल-विपाक भोगना पड़ता है ।” इस अध्ययन में इस भावना का स्फुट चित्रण है ।

१—उत्तराध्यायन निर्गुण, पाया ३६१ :

उद्यभारामगोष्ट्यं वेधतो भावथो अ उद्यभारो ।

ततो समुद्रिषमिणं उद्यभारिर्जति अन्कषणं ॥

चतुर्वस्रं अङ्गयणं : चतुर्वक्ष अध्वयन उस्यारिज्जं : इषुकारीयम्

मूल

१—देवा भवित्ताण पुरे भवम्मी
केई जुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे उस्यारनामे
खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥

२—सकम्मसेसेण पुराकएणं
कुलेसु दग्गेमु^१ य ते पसूया ।
निव्विणसंसारभया जहाय
जिणिन्दमग्गं सरणं पवन्ता ॥

३—पुमत्तमागम्म कुमार दो वी
पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालकित्ती य तहोसुयारो
रायत्थ देवी कमलावई य ॥

४—जाईजरामच्चुभयाभिभूया^२
बहिंविहारानिनिविट्ठचित्ता ।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा
दट्ठण ते कामगुणे विरत्ता ॥

५—पियपुत्तगा दोन्नि वि माहुणस्स
सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।
सरित्तु पोरानिय तत्थ जाई
तहा सुचिण्णं तवसंजमं च ॥

संस्कृत छाया

देवा भूत्वा पुरा भवे
केचिच्छ्रुयुता एकविमान-वासिनः ।
पुरे पुराणे इषुकारनाम्नि
क्याते समृद्धे सुरलोक-रम्भे ॥

स्वकर्म-शेषेण पुराकृतेन
कुलेष्वदेषु च ते प्रसूताः ।
निव्विण्णाः संसार-भयाहं हित्वा
जिनेन्द्र-मार्गं शरणं प्रपन्नाः ॥

पुंस्त्वमाऽऽगम्य कुमारो द्वावपि
पुरोहितः तस्य यशा च पत्नी ।
विशालकोटिश्च तथेष्टकारः
राजात्र देवी कमलावती च ॥

जाति-जरा-मृत्यु-भयाभिभूतो
बहिर्विहारानिनिविष्टचित्तो ।
संसार-चक्रस्य विमोक्षणार्थं
दट्ट्वा तो काम-गुणेश्चो विरक्तो ॥

प्रिय पुत्रको द्वावपि ब्राह्मणस्य
स्वकर्म-शीलस्य पुरोहितस्य ।
स्मृत्या पौराणिकीं तत्र जातिं
तथा सुचोर्णं तपः-संयमं च ॥

हिन्दी अनुबाव

१—पूर्व-जन्म में, देवता हो कर एक ही
विमान में रहने वाले कुछ जीव देवलोक से
स्थित हुए । उस समय इषुकार नाम का एक
नगर था—प्राचीन, प्रसिद्ध, समृद्धिवाली और
देवलोक के समान ।

२—उन जीवों के अपने पूर्वकृत पुण्य-
कर्म बाकी थे । कलस्वरूप से इषुकार नगर के
उत्तम कुलों में उत्पन्न हुए । संसार के भय से
बिन्न होकर उन्होंने भोगों को छोड़ा और
जिनेन्द्र-मार्ग की शरण में चले गए ।

३—दोनों पुरोहित कुमार, पुरोहित, उसकी
पत्नी यशा, विशाल कीर्ति वाला इषुकार
राजा और उसकी रानी कमलावती—ये छहों
व्यक्ति मनुष्य-जीवन प्राप्त कर जिनेन्द्र-मार्ग की
शरण में चले गए ।

४-५—ब्राह्मण के योग्य यश आदि करने
वाले पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्रों ने एक बार
निर्ग्रन्थ को देखा । उन्हें पूर्व-जन्म की स्मृति
हुई और भली-भाँति आचरित तप और संयम
की स्मृति जाग उठी । वे जन्म, जरा और
मृत्यु के भय से अभिभूत हुए । उनका चित्त
मोक्ष की ओर स्थिर गया । संसार-चक्र से
मुक्ति पाने के लिए वे काम-गुणों से विरक्त हो
गए ।

१. दत्तेड (वृ०, वृ०) ; दग्गेड (वृ०) ।

२. अभ्याभिभूय (वृ० पा०) ।

पिता-पुत्र का यह वार्तालाप आगे चलता है। पिता ब्राह्मण-संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर बातें करते हैं और दोनों पुत्र श्रमण-संस्कृति की भिषि पर चर्चा करते हैं। अन्त में पुरोहित को संसार को असारता और क्षणभंगुरता पर विश्वास पैदा हो जाता है और उसका मन संवेग से भर जाता है। वह अपनी पत्नी को समझाता है। पूर्ण विचार-विमर्श कर चारों (माता-पिता तथा दोनों पुत्र) प्रव्रजित हो जाते हैं।

यहाँ एक सामाजिक तथ्य का उद्घाटन हुआ है। उस समय यह राज्य का विधान था कि जिसके कोई उपराधिकारी नहीं होता उसको सम्पत्ति राजा की मानी जाती थी। भृगु पुरोहित का सारा परिवार दोषित हो गया। राजा ने यह बात सुनी। उसने सारी सम्पत्ति पर अधिकार करना चाहा। रानी कमलावती को यह मालूम हुआ और उसने राजा से कहा—“राजन्। वमन को खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती। आप ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हैं यह वमन पीने जैसा है।” (श्लोक ३७-३८)

रानी ने भोगों की असारता पर पूर्ण प्रकाश डाला। राजा के मन में विराग जाग उठा। राजा-रानी दोनों प्रव्रजित हो गए।

इस प्रकार यह अध्ययन ब्राह्मण-परम्परा तथा श्रमण-परम्परा की मौलिक मान्यताओं की चर्चा प्रस्तुत करता है। निर्युक्तिकार ने राजा के लिए ‘सीमंधर’ नाम का भी प्रयोग किया है।^१ व्युत्पिकार ने ‘इधुकार’ को राज्य-कालीन नाम और ‘सीमंधर’ को राजा का मौलिक नाम होने की कल्पना की है।^२

बौद्ध-साहित्य के हस्तिपाल जातक (५०६) में कुछ परिवर्तन के साथ इस कथा का निरूपण हुआ है।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, भाषा ३४३ :

सीमंधरी य राधा.....।

२—बृहद् वृत्ति, पृष्ठ २६४ :

अत्र येधुकारमिति राज्यकालनाम्ना सीमन्धरमिति मौलिकनाम्नेति सम्भावयामः ।

६—ते कामभोगेसु असज्जमाणा
माणस्सएसुं जे यावि दिव्वा ।
मोक्खाभिकंखी अभिजायसइडा
तायं उवागम्म इमं उदाहु ॥

७—असायं दट्ठु इमं विहारं
बहुअन्तरायं न य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि न रइं लहामो
आमन्तयामो चरिस्सामो मुणो ॥

८—अहं तायगो तत्थ मुणीण तंसि
तवस्स वाघायकरं वयासी ।
इमं वयं वेयविओ वयन्ति
जहा न हांई असुयाण लोगो ॥

९—अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे
पुत्ते पडिट्ठप्पं गिहंसि जाया ! ।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहि
'आरण्णागा हाह मुणी पसत्था' ॥

१०—सोयगिणा आयगुणिन्धणेणं
माहाणिला पज्जलणाहिणं ।
संतत्तभावं परित्तप्पमाणं
लोलुप्पमाणं बहुधा बहु च ॥

११—पुरोहिंयं तं कमसोऽणुणन्तं*
निमंतयन्तं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहिं^१ चेव
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ॥

तौ काम-भोगेज्जसज्जन्तौ
मानुष्यकेषु ये चापि दिव्याः ।
मोक्षाभिकाङ्क्षिणावभिजात-भद्रौ
तात्तमुपागम्येदमुदाहरताम् ॥

अशाश्वतं दृष्ट्वेमं विहारं
बह्वन्तरायं न च दीर्घमायुः ।
तस्माद् गृहे न रतिं लभावहे
आमंत्रयावहे चरिष्यावो मोक्षम् ॥

अथ तातकस्तत्र मुन्येस्तयोः
तपसो द्वाघातकरमवादीनु ।
इमां वाचं वेद-विदो वदन्ति
यथा न भवत्यसुतानां लोकः ॥

अधोत्य वेदान् परिवेष्य विप्रान्
पुत्रान् प्रातिष्ठाप्य गृहे जातो ! ।
भुक्त्वा भोगान् सह स्त्रीभिः
आण्ड्यको भलः मुनी प्रवर्तते ॥

शोकार्तिना आत्म-गुणेभ्यनेन
मोहानिलान् प्रज्वलनाधिकेन ।
संतप्त-भावं परित्यज्यमानं
लोलुप्यमानं बहुधा बहु च ॥

पुरोहित तं क्रमशोऽनुनयन्तं
निमंत्रयन्तं च सुतौ धनेन ।
यथाक्रमं काम-गुणैश्चैव
कुमारको तौ प्रसमोक्ष्य वाक्यम् ॥

६—उनकी मनुष्य और देवता सम्बन्धी
काम-भोगों में आसक्त जाती रही । मोक्ष की
अभिलाषा और धर्म की श्रद्धा से घेरित होकर
पिता के पास आएं और इस प्रकार कहने
लगे—

७—“हमने देखा है कि यह मनुष्य-जीवन
अनित्य है, उसमें भी विघ्न बहुत हैं और आयु
योही है । इसलिए घर में हमें कोई आनन्द नहीं
है । हम मुनि-चर्यों को स्वीकार करने के लिए
आपकी अनुमति चाहते हैं ।”

८—उनके पिता ने उन कुमार मुनियों
को तपस्या में बाधा उत्पन्न करने वाली बातें
कही—“पुत्रों ! कष्टों को जानने वाले इस
प्रकार कहते हैं कि जिनको पुत्र नहीं होता
उनकी गति नहीं होती ।

९—“पुत्रों ! इसलिए वेदों को पढ़ो ।
ब्राह्मणों को भोजन कराओ । मित्रों के साथ
भोग करो । पुत्रों को उत्पन्न करो । उनका
विवाह कर, घर का भार सोप फिरे अग्रज्यामी
प्रशस्त मान हो जाना ।”

१०-११—दोनों कुमारों ने मोक्ष-विचार
पूर्वक उन पुरोहित को जिनका मन और
परीर, आत्म-मान रूपी धर्म्य और माह रूपी
एवम ते अध्ययन प्रवर्धित शास्त्राग्नि से, संतप्त
और अग्निमान हो रहा था, जिसका हृदय
वियोग की आशंका से अतिशय छिन्न हो
रहा था, जो एक-एक कर अपना अभिप्राय
अपने पुत्रों को समझा रहा था और उन्हें धन
और क्रम-शः काम-भोगों का निर्मंत्रण दे
रहा था—ये वाक्य कहे—

१. परिदृष्ट्य (६० पा०) ।

२. पच्छा वणप्पवेस पसत्थं (६०) ।

३. णिणन्तं (उ) ।

४. कामगुणेश (६० पा०) ।

१२—वेया अहोया न भवन्ति ताणं
भुत्ता दिया नित्ति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं
को णाम ते अणुमन्नेज्ज^१ एयं ॥

१३—खणमेतसोक्खा बहुकालदुक्खा
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥

१४—परिव्वयन्ते अणियत्तकामे
अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे
पप्पोति मच्चुं पुरिसे जग्गं च ॥

१५—इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि
इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं
हरा हरंति त्ति कहं पमाए ? ॥

१६—धणं पभूयं सह इत्थियाहिं
सयणा तहा कामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो
तं सब्ब साहीणमिहेव तुब्बं ॥

१७—धणेण किं धम्मधुराहिगारे
सयणेण वा कामगुणेहिं जेव ।
समंणा मंविस्सामु गुणोहंभारी
बहिंविहारा अभिगम्म मिकखं ॥

वेदा अचीता न भवन्ति त्राणं
भोजिता हिंसा नयन्ति लभस्समसि ।
कत्ताएव पुत्रा न भवन्ति त्राणं
को नाम तच्चानुमन्नेतत्तम् ॥

क्षणमात्र-सौख्या बहुकाल-दुःखाः ।
प्रकाम-दुःखा अनिकाम-सौख्याः ।
संसार-मोक्षस्य विपक्ष-भूयाः
खानिरन्यानां तु काम-भोगाः ॥

परिव्रजन्निवृत्त-कामः
अङ्गि च रात्रौ परितप्यमानः ।
अन्य-प्रमत्तो धनमेव यन्
प्राप्नोति मृत्युं पुरुषो जरां च ॥

इदं च मेऽस्ति इदं च नास्ति
इदं च मे कृत्यमिदमकृत्यम् ।
तमेवमेवं लालप्यमानं
हरा हरन्तीति कथं प्रमादः ? ॥

धनं प्रभूतं सह स्त्रीभिः
स्वजनास्तथा काम-गुणाः प्रकामाः ।
तपः कृते तत्पथसि यत्थ लोकाः
तत् सर्वं क्वाथोक्तमिहेव युक्त्योः ॥

धनेन किं धर्म-धुराधिकारे
स्वजनेन वा कामगुणैश्चैव ।
अपगौ अभिष्ठावो गुणोच्चवारिणो
बहिर्विहारमभिगम्य भिक्षात् ॥

१२—“वेद पढ़ने पर भी वे भाग नहीं
होते । बाहुण्यो को भोजन करने पर वे नरक
में ले जाते हैं । ओरस पुत्र भी त्राण नहीं होते ।
इसलिए आपने जो कहा उसका अनुमोदन
कौन कर सकता है ?

१३—“ये काम-भोग क्षण भर सुख और
विरकाल दुःख देने वाले हैं, बहुत दुःख और
बोझा सुख देने वाले हैं, संसार-मुक्ति के विरोधी
हैं और अनर्थों की खान हैं ।

१४—“जिते कामनाओं से मुक्ति नहीं
मिली वह पुण्य अटुनी की अग्नि से संतप्त
होकर दिन-रात परिश्रमण करता है । दूसरों
के लिए प्रमत्त होकर धन की खोज में लगा
हुआ वह जरा और मृत्यु को प्राप्त होता है ।

१५—“यह मेरे पास है और यह नहीं है,
यह मुझ करना है और यह नहीं करना है—
इस प्रकार भ्रष्टा बकवास करते हुए पुण्य को
उठाने वाला (काल) उठा लेता है । इस
स्थिति में प्रमाद कैसे किया जाय ?”

१६—“जिसके लिए लोग तप किया करते
हैं वह सब कुछ—प्रचुर धन, स्त्रियों, स्वजन
और इन्द्रियों के विषय नुहें यहाँ प्राप्त हैं फिर
किसलिए तुम धमण होना चाहते हो ?”—पिता
ने कहा ।

१७—पुत्र बोले—“पिता ! जहाँ धर्म की
धुरा को बहन करने का अधिकार है वहाँ धन,
स्वजन और इन्द्रिय-विषय का क्या प्रयोजन
है ? कुछ भी नहीं । हम गुण-समूह से संपन्न
अप्यन होंगे, प्रसिद्ध-भूक्त होकर गाँवों और
नगरों में शिक्षार करने वाले और भिक्षा लेकर
जीवन चलाते वाले ।”

१८—जहा य अग्गी अरणीउऽस्तो
खीरे धयं तेव्हा महातिलेसु ।
एमेव जाया ! सरीरंसि सत्ता
संमुख्छई नासइ नावचिडे ॥

१९—नो इन्द्रियग्जेज्ज अमुत्तभावा
अमुत्तभावा वि य होइ निब्बो ।
अज्जकल्यहेउं निययऽस्स बन्वो
संसारहेउं च वयन्ति बन्धं ॥

२०—जहा वयं धम्ममज्जाणमाणा
पावं पुरा कम्ममकासि मोहा ।
ओल्लज्जमाणा परिरक्सियन्ता
तं तेव भुज्जो वि समायरामो ॥

२१—अव्वाहयंमि लोअंमि
सव्वओ परिवारिए ।
'अमोहाहि पडन्तीहि'
गिहंसि न रइ लभे ॥

२२—केण अव्वाहओ लोगो ?
केण वा परिवारिओ ? ।
का वा अमोहा वुत्ता ?
जाया ! चित्तावरो हुमि ॥

२३—सच्चुणाऽव्वाहओ लोगो
जराए परिवारिओ ।
अमोहा रयणी वुत्ता
एवं ताय ! वियाणह ॥

यथा वाग्निररणितोऽसन्
क्षारे घृतं तैलं महातिलेषु ।
एवमेव जातो ! शरीरे सत्त्वाः
संमुख्यन्ति नश्यन्ति नावतिष्ठन्ते ॥

नो इन्द्रिय-प्राप्तोऽमूर्त-भावात्
अमूर्त-भावावपि च भवति नित्यः ।
आध्यात्म-हेतुनियतोऽस्य बन्धः
संसार-हेतुं च वदन्ति बन्धम् ॥

यथाऽऽर्वा धर्ममज्जानानो
पावं पुरा कर्माकाण्डं मोहान् ।
अवरूप्यमानो परिरक्ष्यमाणो
तन्मेव भूयोऽपि समाचरावः ॥

अभ्याहते लोके
सर्वतः परिवारिते ।
अमोघाभिः पतन्तोभिः
गृहे न रतिं लभावहे ॥

केनाभ्याहते लोकः ?
केन वा परिवारितः ? ।
का वाऽमोघा उक्ताः ?
जातो ! चित्तापरो भवामि ॥

सूत्र्याऽभ्याहते लोकः
जरया परिवारितः ।
अमोघा रात्रय उक्ताः
एवं तात ! विजानीहि ॥

१८—“पुत्रो ! जिस प्रकार अरणी में
ज्वलिमान आग उत्पन्न होती है, दूध में घी
और तिल में तैल पैदा होता है, उसी प्रकार
शरीर में जीव उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो
जाते हैं । शरीर का नाश हो जाने पर उनका
अस्तित्व नहीं रहता” —पिता ने कहा ।

१९—कुमार बोले—“पिता ! आत्मा
अमूर्त है इसलिए यह इन्द्रियों के द्वारा नहीं
जाना जा सकता । यह अमूर्त है इसलिए नित्य
है । यह निश्चय है कि आत्मा के आन्तरिक
दोष ही उसके बन्धन के हेतु हैं और बन्धन ही
समाग का हेतु है—ऐसा कहा है ।

२०—“हम धर्म को नहीं जानते थे तब
घर में रहे, हमारा पालन होता रहा और
मोह-बुद्धि हममें पाप-कर्म का आचरण किया ।
किन्तु अब फिर पाप-कर्म का आचरण नहीं
करेंगे ।

२१—“यह लोक पीड़ित हो रहा है, चारों
ओर से घिरा हुआ है, अमोघा आ रही है ।
इस स्थिति में हमें मुख नहीं मिल रहा है ।”

२२—“पुत्रो ! यह लोक किससे पीड़ित
है ? किससे घिरा हुआ है ? अमोघा किस
कहा जाता है ? मैं जानने के लिए चिन्तित
हूँ” —पिता ने कहा ।

२३—कुमार बोले—“पिता ! आप जानें
कि यह लोक मृत्यु से पीड़ित है, जरा से घिरा
हुआ है और रात्रि को अमोघा कहा जाता है ।

२४—जा जा वच्चइ रयणी
न सा पडिनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स
अफला जन्ति राइओ ॥

२५—जा जा वच्चइ रयणी
न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स
सफला जन्ति राइओ ॥

२६—एगओ संवसित्ताणं
दुहआं सम्मतसंजुया ।
पच्छा जाया ! गमिस्सामो
भिक्षवमाणा कुले कुले ॥

२७—जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं
जस्स वऽत्थि' पलायणं ।
जो जाणे न मरिस्सामि
सो हु कंखे सुए सिया ॥

२८—अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो
जहि पवन्ता न पुणवभवामो ।
अणागयं नेव य अत्थि किञ्चि
सद्धाखम्मं णे विणहत्तु रागं ॥

२९—पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो
वासिहि ! भिक्षायरियाइ कालो ।
साहाहि रक्खो लहए समाहि
छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ॥

या या व्रजति रजनी
न सा प्रतिनिवर्तते ।
अधमं कुर्वाणस्य
अफला यान्ति रात्रयः ॥

या या व्रजति रजनी
न सा प्रतिनिवर्तते ।
धर्मं च कुर्वाणस्य
सफला यान्ति रात्रयः ॥

एकतः समूह्य
द्वये सम्यक्त्व-संयुताः ।
पश्चाज्जातो ! गमिष्यामः
भिक्षमाणाः कुले कुले ॥

यस्यास्ति मृत्युना सख्यं
यस्य वास्ति पलायनम् ।
यो जानीते न मरिष्यामि
स खलु काङ्क्षति श्वः स्व्याम् ॥

अर्धं व धर्मं प्रतिपद्यामहे
य प्रपन्ना न पुनर्भक्षिष्यामः ।
अनागतं नैव वास्ति किञ्चित्
श्रद्धाश्रमं नो विनीय रागम् ॥

प्रहीण पुत्रस्य खलु नास्ति वासः
वासिष्ठि ! भिक्षाचर्यायाः कालः ।
शास्त्राभिर्बुधो लभते सर्वार्थं
छिन्नाभिः शास्त्राभिस्तमेव स्व्याणुम् ॥

२४—“जो-जो रात बीत रही है, वह
लोट कर नहीं आती । अधर्म करने वाले की
रात्रियाँ निष्फल चली जाती हैं ।

२५—“जो-जो रात बीत रही है वह
लोट कर नहीं आती । धर्म करने वाले की
रात्रियाँ सफल होती हैं ।”

२६—“पुत्रो ! पहले हम सब एक साथ
रह कर सम्यक्त्व और व्रतों का पालन करें
फिर तुम्हारा यौवन बीत जाने के बाद घर-
घर से भिक्षा लेते हुए विहार करेंगे”—पिता
ने कहा ।

२७—पुत्र बोले—“पिता ! कल की इच्छा
वही कर सकता है, जिसकी मृत्यु के साथ
मैत्री हो, जो मौत के मुँह से बच कर
पलायन कर सके और जो जानता हो—मैं
नहीं मरूँगा ।

२८—“हम आज ही उस मुनि-धर्म को
स्वीकार कर रहे हैं, जहाँ पहुँच कर फिर जन्म
लेना न पड़े । भोग हमारे लिए अप्राप्त नहीं
है—हम उन्हें अनेक बार प्राप्त कर चुके हैं ।
राग-भाव को दूर कर श्रद्धा पूर्वक श्रम की
प्राप्ति के लिए हमारा प्रयत्न युक्त है ।”

२९—“पुत्रों के चले जाने के बाद मैं
घर में नहीं रह सकता । हे वासिष्ठि ! अब
मेरे भिक्षाचर्या का काल आ चुका है । इस
शास्त्राचार्य से समर्थ को प्राप्त होता है । उनके
कट जाने पर लोग उसे दूँट कहते हैं ।

३०—पंखाविहृणो व्व^१ जहेह^२ पक्खी
भिच्चाविहृणो^३ व्व^४ रणे नरिन्दो ।
विबन्नसारो वणिओ व्व पोए
पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि ॥

३१—सुसंभिया कामगुणा इमे ते
संपिण्डिया अगारसापभूया^१ ।
भुंजामु ता कामगुणे पंगामं
पच्छा गमिस्सामु पहाणमगं ॥

३२—भुत्ता रसा भोइ^१ ! जहाइ णे वओ
न जीवियइ पजहामि भोए ।
लामं अलामं च सुहं च दुक्खं
संविक्खमाणो^२ चरिस्सामि^३ भोणं ॥

३३—मा ह तुमं सोयरियाण सम्भरे
जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी ।
भुंजाहि भोगाइ ए समानं
दुक्खं खु भिक्खायरियाविहारो ॥

३४—जहा य भोइ^१ ! तण्यं भुयंगो^२
निम्मोरयणि हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमेए^३ जाया पयहन्ति भोए
‘ते हं’^४ कहं नाणुगमिस्समेक्को ? ॥

पक्ष-विहीन इव यथेह पक्षी
मृत्यु-विहीन इव रणे नरैन्द्रः ।
विपन्न-सारो वणिगिव पोते
प्रहीण-पुत्रोऽस्मि तच्चाग्रहमपि ॥

सुसंभूताः काम-गुणा इमे ते
सम्पिण्डिता अयु-रस-प्रभूताः ।
भुंजीवहि तावत् काम-गुणान् प्रकामं
पञ्चात् तन्मिष्यावः प्रधान-भागम् ॥

भुक्ता रसा भवति ! जहाति नो वयः
न जीवितार्थं प्रजहामि भोगान् ।
लाभमलामं च सुखं च दुःखं
संबोधमानश्चरिष्यामि भोगम् ॥

मा खलु त्वं सोदयणां स्मार्योः
जीणं इव हंसः प्रतिश्रोतोऽंगमी ।
भुंक्ष्व भोगान् सदा समं
दुःखं खलु भिक्षाचर्यो-विहारः ॥

यथा व भवति ! तनुजं भुजंगः
निर्माधनो हित्वा पर्येति मृतः ।
एवमेतो जातो प्रजहीतो भोगान्
तो अहं कथं नानुगमिष्याम्येकः ? ॥

३०—“बिना पंख का पक्षी, रण-भूमि में
सेना रहित राजा और जल-पोत पर घन-रहित
व्यापारी जंसा असहाय होता है, पुत्रों के चले
जाने पर मैं भी वैसा ही हो जाता हूँ ।”

३१—बाण्डि ने कहा—“ये सुसंस्कृत
और प्रचुर शृंगार-रस से परिपूर्ण इन्द्रिय-
वियय, जो तुम्हें प्राप्त हैं, उन्हें अभी हम खूब
भोगें । उसके बाद हम मोक्ष-भाग को स्वीकार
करेंगे ।”

३२—पुरोहित ने कहा—“हे भवति !
हम रसों को भोग चुके हैं, वय हमें छोड़ते
बला जा रहा है । मैं असंयम-जीवन के लिए
भोगों को नहीं छोड़ रहा हूँ । लाभ-अलाभ
और सुख-दुःख को समदृष्टि से देखता हुआ
मन-वश का आचरण करूँगा ।”

३३—बाण्डि ने कहा—“प्रतिश्रोत में
बहने वाले बूढ़े हैं तो तरह तुम्हें पीछे धपने
बन्धुओं को याद करना न पड़े, इसलिए मेरे
साथ भोगों का सेवन करो । यह भिक्षाचर्या
और भ्रामानुभ्राम विहार सचमुच दुःखदायी है ।”

३४—“हे भवति ! जैसे साँप अपने शरीर
को केंचुली को छोड़ मुक्त-भाग से बँटता है
वैसे ही पुत्र भोगों को छोड़ कर चले जा रहे
हैं । पीछे मैं अकेला क्यों रहूँ, उनका अनुगमन
क्यों न करूँ ?

१. व (उ, ऋ०) ।

२. जहेव (अ, उ, ऋ०) ।

३. भिच्चाविहृणो (ऋ०) ; भिण्णुविहृणो (ऋ०) ।

४. व (उ, ऋ०) ।

५. अगारसंभूयामु (उ, ऋ०) ।

६. होइ (ऋ०) ।

७. संविक्खमाणो (ऋ०, उ०) ।

८. चरिस्सामि (अ, ऋ०) ; चरिस्सामि (ऋ०) ।

९. भोणि (ऋ० पा०) ।

१०. भुयंगसो (अ, ऋ०) ।

११. इमेति (ऋ० पा०) ।

१२. तहं (उ, ऋ०) ; वोहं (अ) ।

३५—छिन्दितु जालं अबलं व रोहिया
मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
घोरेयसीला तवसा उदारा
वीरा हु भिक्षायरियं चरन्ति ॥

छिन्त्वा जालमबलमिव रोहिताः
मत्स्या यथाकाम-गुणान् प्रहाय ।
घोरेय-शीलास्तपसा उदाराः
वीराः खलु भिक्षाचर्यां चरन्ति ॥

३५—“जैसे रोहित मछड़ जबरित जाल को काट कर बाहर निकल जाते हैं वैसे ही उठाए हुए मार को बहुत करने वाले प्रधान तपस्वी और धीर पुरुष काम-भोगों को छोड़ कर भिक्षाचर्या को स्वीकार करते हैं ।”

३६—नहेव कुंचा समइकमन्ता
तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ।
पलेन्ति पुत्ता य पई य मज्झं
‘तेहं’ कहं नानुगमिस्समेका ? ॥

नभसीव क्रौंचाः समतिक्रमन्तः
तसानि जालानि दलित्त्वा हंसाः ।
परियान्ति पुत्रो व पतिद्वयं मम
तान्हं कथं नानुगमिष्याम्येका ? ॥

३६—वाशिष्ठी ने कहा—“जैसे क्रौंच पक्षी और हंस बहेलियों द्वारा बिछाए हुए जालों को काट कर आकाश में उड़ जाते हैं वैसे ही मेरे पुत्र और पति जा रहे हैं । पीछे मैं अकेली क्यों रहूँ ? उनका अनुगमन क्यों न करूँ ?”

३७—पुरोहिंयं तं ससुयं सदारं
सोच्चाज्जमिन्नकम्म पहाय भोगे ।
कुटुम्बसारं विउलुत्तमं तं
रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥

पुरोहितं तं ससुतं सदारं
श्रुत्वाऽभिनिष्कम्प्य प्रहाय भोगान् ।
कुटुम्ब-सारं विपुलोत्तमं तत्
राजाकम्यभीक्ष्णं समुवाच देवी ॥

३७—पुरोहित अपने पुत्र और पत्नी के साथ भोगों को छोड़ कर प्रव्रजित हो चुका है, यह सुन राजा ने उसके प्रचुर और प्रधान धन-धान्य आदि को लेना चाहता सब बहाराजाने कमलावती ने बार-बार कहा—

३८—वन्तासी पुरिसो रायं !
न सो होइ पसंसिओ ।
माहणेण परिच्छत्तं
धणं आदाउमिच्छसि ॥

वन्तासी पुरुषो राजन् !
न स भवति प्रसंस्तोयः ।
ब्राह्मणेन परित्यक्तं
धनमावाप्तुमिच्छसि ॥

३८—“राजन् ! ब्रह्म खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती । तुम ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हो—यह क्या है ?

३९—सव्वं जगं जइ तुहं
सव्वं वावि धणं भवे ।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं
नेव ताणाय तं तव ॥

सर्वं जगद् यदि तव
सर्वं वाचि धनं भवेत् ।
सर्वंयति ते अर्घ्याहं
नेव त्राणाय तत्सव ॥

३९—“यदि सम्भवा जगत् तुम्हें मिल जाए अथवा सम्भवा धन तुम्हारा हो जाए तो भी वह तुम्हारी इच्छा-पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होगा और वह तुम्हें त्राण भी नहीं दे सकेगा ।

४०—वरिहिसि रायं ! जवा तथा वा
मनोरसे कामगुणे पहाय* ।
एको हु धम्मो नरदेव ! ताणं
न विज्झई अन्तमिहेह किञ्चि ॥

वरिष्यसि राजन् ! कस्य तस्य वा
मनोरमस्य काम-गुणान् प्रहाय ।
एकः खलु धर्म्मो नरदेव ! त्राणं
न विज्झीत्यन्तमिहेह किञ्चित् ॥

४०—“राजन् ! इन मनोरम काम-भोगों को छोड़ कर जब कभी मरना होया । हे नरदेव ! एक धर्म ही त्राण है । उसके सिवाय कोई दूसरी वस्तु त्राण नहीं दे सकती ।

१. ताई (द, ५०) ; तोई (अ) ।

२. जहाय (५०) ।

४१—नाहं रमे पक्खिणि पंजरे वा
सताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं ।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा
परिग्गहारम्भनियत्तदोसा ॥

४२—दवग्गिणा जहा रण्णे
डज्झमाणेसु जन्तुसु ।
अन्ते सत्ता पमोयन्ति
रागद्दोसवसं गया ॥

४३—एवमेव वयं मूढा
कामभोगेसु मुच्छिन्ना ।
डज्झमाणं न वृज्झामो
रागद्दोसग्गिणा जगं ॥

४४—भोगे भोक्ता वमिता य
लहुभूयविहारिणे ।
आमोयमाणा गच्छन्ति
दिया कामकमा इव ॥

४५—इमे य बद्धा^१ फन्दन्ति
मम हृत्यज्जमागया ।
वयं च सत्ता कामेसु
भविस्सामो जहा इमे ॥

४६—सामिसं कुललं दिस्स
वज्झमाणं निरामिसं ।
आमिसं सव्वमुज्झिता
विहरिस्सामि निरामिसा ॥

नाहं रमे पक्खिणी पंजर इव
छिन्न-सन्ताना चरिष्यामि भौनम् ।
अकिंचना ऋजु-कृता निरामिषा
परिग्रहारम्भ-दोष-निवृत्ता ॥

दवाग्निना यथारण्ये
बहुमानेषु जन्तुषु ।
अन्ये सत्त्वाः प्रमोदन्ते
राग-द्वेष-वशं गताः ॥

एवमेव वयं मूढाः
काम-भोगेषु मूर्च्छिताः ।
बहुमानं न बुध्यामहे
राग-द्वेषाग्निना जगन् ॥

भोगान् भुक्त्वा वात्स्वा च
लघुभूत-विहारिणः ।
आमोदमाना गच्छन्ति
ट्टिजाः काम-क्रमा इव ॥

इमे च बद्धाः स्पर्शन्ते
मम हस्तमायं ! आगताः ।
वयं च सक्ताः कामेषु
अविद्याभो यथेमे ॥

सामिषं कुललं दृष्ट्वा
बाध्यमानं निरामिषम् ।
आमिषं सर्वमुज्झिता
विहरिष्यामि निरामिषा ॥

४१—“जैसे पक्षिणी पिण्ड में आनन्द नहीं
मानवी, वैसे ही मुझे इस बन्धन में आनन्द नहीं
मिल रहा है । मैं स्नेह के जाल को तोड़ कर
अकिंचन, सन्न क्रिया वाली, विषय-वाचना
से दूर और परिग्रह एवं हिंसा के दोषों से मुक्त
हो कर मनि-धर्म का आचरण करूँगी ।

४२—“जैसे दवाग्नि लगो हुई है, अरण्य
में जीव-जन्तु जल रहे हैं, उन्हें देव राग-द्वेष
क वशीभूत हो कर दूसरे जीव प्रमदित होते हैं,

४३—“उसी प्रकार काम-भोगों में मूर्च्छित
हो कर हम मूढ़ लोग यह नहीं समझ पाते कि
यह समूचा संसार राग-द्वेष की अग्नि में जल
रहा है ।

४४—“विवेकी पुरुष भोगों को भोग कर
फिर उन्हें छोड़ बायु की तरह अप्रतिबद्ध-
विहार करते हैं और वे स्वेच्छा में विचरण
करते वाले पक्षियों की तरह प्रसन्ननागूर्वक
स्वतंत्र विहार करते हैं ।

४५—“आयें ! जो काम-भोग अपने हाथों
में आए हुए हैं और जिनको हमने नियंत्रित
कर रखा है, वे कूद-फाँद कर रहें हैं । हम
कामनाधी में आसक्त बने हुए हैं किन्तु अब
हम भी वैसे ही होंगे, जैसे कि अपनी पत्नी
और पुत्रों के साथ मृग हुए हैं ।

४६—“जिस गीध के पास मांस होता है
उस पर दूसरे पक्षी भपटते हैं और जिसके पास
मांस नहीं होता उस पर नहीं भपटते—यह
देख कर मैं आमिष (धन, धान्य आदि) को
छोड़, निरामिष हो कर विचरूँगी ।

१. एवमेव (४०) ।

२. लब्धा (४०) ।

४७—गिद्धोवमे उ नब्बाणं
कामे संसारवड्ढणे ।
उरगो सुवण्णपासे व^१
संक्रमाणो तणुं चरे ॥

गुप्धोपमास्तु ज्ञात्वा
कामान् संसार-वर्धनान् ।
उरगः सौपर्ण्य-पाशवै इव
शङ्कमानस्तनु चरेत् ॥

४७—“गीध की उपमा से काम-भोगों को
संसार-वर्धक जान कर मनुष्य को इनसे इसी
प्रकार शक्ति होकर चलना चाहिए, जिस
प्रकार गरुड के सामने सौपर्ण्य शक्ति होकर
चलता है ।

४८—नागो व्व बन्धनं छिन्ता
अप्पणो वसहिं वए ।
एयं पत्थं महारायं !
उस्यारि त्ति मे सुयं ॥

नाग इव बन्धनं छिन्त्वा
आत्मनो वसतिं व्रजेत् ।
एतत्पथ्यं महाराज !
इषुकार ! इति मया श्रुतम् ॥

४८—“जैसे बन्धन को तोड़ कर हाथी
अपने स्थान (बिम्बाटवी) में चला जाता है,
वैसे ही हमें अपने स्थान (मोक्ष) में चले जाना
चाहिए । हे महाराज इषुकार ! यह पथ है,
इसे मैंने ज्ञानियों से सुना है ।”

४९—चइत्ता विउलं रज्जं^१
कामभोगे य दुच्चए ।
निव्विसया निरामिसा
निन्नेहा निप्परिगह्हा ॥

त्यक्त्वा विपुलं राज्यं
काम-भोगांश्च दुस्त्यजान् ।
निर्विषयो निरामिषो
निःस्नेहो निष्परिग्रहो ॥

४९—राजा और रानी विपुल राज्य
और दुष्पथ्य काम-भोगों को छोड़ निर्विषय,
निरामिष, निःस्नेह और निष्परिग्रह हो गए ।

५०—सम्मं धम्मं वियाणित्ता
वेच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झह्मस्सवायं^२
घोरं घोरपरक्कमा ॥

सम्यग् धर्मं विज्ञाय
त्यक्त्वा काम-गुणान् वरान् ।
तपः प्रगृह्य यथाख्यातं
घोरं घोर-पराक्रमो ॥

५०—धर्म को सम्यक् प्रकार से जान,
आकर्षक भोग-विलास को छोड़, वे तीर्थङ्कर के
द्वारा उपदिष्ट घोर तपश्चर्या को स्वीकार कर
समय में घोर पराक्रम करने लगे ।

५१—एवं ते कमसो बुद्धा
सव्वे धम्मपरायणा^३ ।
जम्ममच्चुभउव्विमा
दुक्खस्सन्तगवेसिणो ॥

एवं ते क्रमशो बुद्धाः
सर्व धर्म-परायणाः ।
जन्म-मृत्यु-भयोद्दिनाः
दुःखस्थान्त-गवेषिणः ॥

५१—इस प्रकार वे सब क्रमशः बुद्ध
हो कर, धर्म-परायण, जन्म और मृत्यु के भय
से उद्दिप्त बन गए तथा दुःख के अन्त की खोज
में लग गए ।

१. छवण्णपासेव्व (ड, व०, छ०) ; छवण्णपासित्ता (ष्ट०) ; छवण्णपासिव्वा (झ०) ।

२. रट्ठं (वृ०, वृ०) ; रज्जं (वृ० पा०) ।

३. ० अहकामं (वृ० पा०) ।

४. ० परंपरा (वृ० पा०) ।

उत्तरञ्जयणं (उत्तराध्ययन)

१८४

अध्ययन १४ : श्लोक ५२-५३

५२—सासणे विगयमोहानं
पुर्व्वि भावणभाविता ।
अचिरेणैव कालेण
दुःखस्सन्तमुवागया ॥

५३—राया सह देवीए
माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चैव
सव्वे ते परिनिब्बुड^१ ॥
—त्ति भेमि ॥

शासने विगत-मोहानां
पूर्वं भावना-भाविताः ।
अचिरेणैव कालेन
दुःखस्यान्तमुपगताः ॥

राजा सह वेव्या
ब्राह्मणश्च पुरोहितः ।
ब्राह्मणी वारको चैव
सर्वे ते परिनिर्बुताः ॥
—इति ब्रवीमि ॥

५२-५३—जिनकी आत्मा पूर्व-जन्म में
कुशल-भावना से भावित थी वे सब—राजा,
रानी, ब्राह्मण पुरोहित, ब्राह्मणी और दोनों
पुरोहित कुमार अर्हत् के शासन में आकर दुःख
का अंत पा गए—मुक्त हो गए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

पनरसमं अङ्गवर्णनं :
सभिक्खुयं

पंचदश अध्ययन :
सभिक्षुक

निर्युक्तिकार ने भिक्षु के लक्षण इस प्रकार बतलाए हैं^१ —

भिक्षु वह है जो राग-द्वेष को जीत लेता है ।

भिक्षु वह है जो मन, वचन और काया—इन तीनों दण्डों में सावधान रहता है ।

भिक्षु वह है जो न सावध कार्य करता है, न दूसरों से करवाता है और न उसका अनुमोदन करता है ।

भिक्षु वह है जो ऋद्धि, रस और सात्ता का गौरव नहीं करता ।

भिक्षु वह है जो मायावी नहीं होता; जो निदान नहीं करता और जो सम्यग्दर्शी होता है ।

भिक्षु वह है जो विषयाओं से दूर रहता है ।

भिक्षु वह है जो आहार, भय, मैथुन और परिग्रह—इन चार संज्ञाओं को जीत लेता है ।

भिक्षु वह है जो कथाओं पर विजय पा लेता है ।

भिक्षु वह है जो प्रमाद से दूर रहता है ।

भिक्षु वह है जो कर्म-बन्धन को तोड़ने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है ।

जो ऐसा होता है वह समस्त ग्रन्थियों का वेदन कर अजर-अमर पद को पा लेता है ।

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, शाखा ३७८, ३७९ : राघवोसा दंवा ओणा तह गारवा ष सक्का य ।

विगहाओ सण्णाओ सुहं कसाया पसाया य ॥

एवाहं पु सुहाहं ने कल्ल भिरंति वण्णया रिसओ ।

ते भिण्णकम्मगंडी उचिति अथारमं ठाणं ॥

आयुर्वेद

इस अध्ययन में भिक्षु के लक्षणों का निरूपण है, इसलिए इसका नाम 'समिवसु'—'समिष्ट' रखा गया है। भिक्षु अकेला होता है। उसके न कोई मित्र होता है और न कोई शत्रु। वह सभी सम्बन्धों से विप्रयुक्त होता है। वह साधना करता है। वह अध्यात्म की कला को कभी जीविका-उपार्जन के लिए प्रयुक्त नहीं करता। वह सदा जितेन्द्रिय रहता है। (श्लोक १६)

जोवन मयाकुल है। उसके प्रत्येक चरण में भय ही भय है। भिक्षु अभय की साधना करता है। पहले-पहल वह भय को जीतने के लिए उपाश्रय में ही मध्य रात्रि में उठ कर अकेला हो कायोत्सर्ग करता है। दूसरी बार उपाश्रय से बाहर, तीसरी बार दूर चौराहे पर, चौथी बार शून्य-गृह में और अन्त में ज्ञान में अकेला जा कायोत्सर्ग करता है। वह भय-मुक्त हो जाता है। अभय अहिंसा का परिपाक है। (श्लोक १४)

सुनि को प्रत्येक वस्तु याचित हो मिलती है। अयाचित कुछ भी नहीं मिलता। जो इच्छित वस्तु मिलने पर प्रसन्न और न मिलने पर अप्रसन्न नहीं होता वह भिक्षु है। भिक्षु के लिए सभी द्वार खुले हैं। कोई दाता देता है और कोई नहीं भी देता। इन दोनों स्थितियों में जो सम रहता है वह भिक्षु है। (श्लोक ११-१२)

सुनि सरस आहार भिक्षु ने पर उसकी प्रशंसा और नीरस भिक्षु ने पर उसकी गद्गल न करे। ऊँचे कुलों की भिक्षा करने के साथ-साथ प्रान्त कुलों से भी भिक्षा ले। भिक्षा में जो कुछ प्राप्त हो उसी में सन्तोष करने वाला भिक्षु होता है। (श्लोक १३)

सुनि अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए हीन-भाव से किसी के आगे हाथ नहीं पसारता। वह याचना में भी अपने आत्म-गौरव को नहीं खोता। बड़े व्यक्तियों को न वह चापलूसी करता है और न छोटे व्यक्तियों का तिरस्कार, न वह धनवानों की श्लाघा करता है और न निधनों की निन्दा। सबके प्रति उसका बर्ताव सम होता है। (श्लोक ६)

दशवैकालिक का दसवाँ अध्ययन 'समिवसु' है। उसमें २१ श्लोक हैं। इस अध्ययन में १६ श्लोक हैं। उद्देश्य-साम्य होने पर भी दोनों के वर्णन में अन्तर है। कहीं-कहीं श्लोकों के पदों में शब्द-साम्य है। इस अध्ययन में प्रयुक्त भिक्षु के कई विशेषण नए हैं। इसके समय अध्ययन से भिक्षु की जीवन-यापन विधि का अर्थ से इति तक सम्यक् परिज्ञान हो जाता है।

इस अध्ययन में अनेक दार्शनिक तथा सामाजिक तथ्यों का संकलन हुआ है। आगम काल में कुछ भ्रमण और ब्राह्मण मंत्र, चिकित्सा आदि का प्रयोग करते थे। भगवान् महावीर ने जन-मुनि के लिए ऐसा करने का निषेध किया है।

वसन, विरेचन और धूमनेत्र—ये चिकित्सा-प्रणाली के अङ्ग हैं। आयुर्वेद में प्रचलित 'पंचकर्म' की प्रक्रिया में प्रथम दो का महत्त्वपूर्ण स्थान है और आज भी इस प्रक्रिया से चिकित्सा की जाती है। धूमनेत्र मस्तिष्क-सम्बन्धी रोगों का निवारण करने के लिए प्रयुक्त होता था। इसका उल्लेख दशवैकालिक ३६ और सूत्रकृतांग ३१४।६७ में भी हुआ है।

सातवें श्लोक में अनेक विद्याओं का उल्लेख हुआ है। आजीवक आदि भ्रमण इन विद्याओं का प्रयोग कर अपनी आजीविका चलाते थे। इससे लोगों में आकर्षण और विकर्षण—दोनों होते थे। साधना भंग होती थी। भगवान् ने इन विद्या-प्रयोगों से आजीविका चलाने का निषेध किया है।

पनरसमं अज्जयणं : पंचदश अध्यायन समिक्खुयं : समिक्खुम्

मूल

१—मोणं चरिस्सामि^१ समिच्च धम्मं
सहिए उज्जुकडे नियाणछिन्ने ।
संथवं जहिज्ज अकामकामे
अन्नायएसी परिव्वए जे स भिक्खू॥

संस्कृत छाया

मोणं चरिष्यामि समेत्य धर्मं
सहितः उज्जुतः छिन्न-निदानः ।
संस्तवं जहायकाम-कामः
अज्ञातं परिप्रजेत् स भिक्षुः ॥

हिन्दी अनुबाव

१—'धर्म' को स्वीकार कर मुनि-व्रत का
आचरण करूँगा—जो ऐसा संकल्प करता
है, जो दूसरे भिक्षुओं के साथ रहता है,
जिसका अनुष्ठान ऋतु है, जो वासना के
संकल्प का छेदन करता है, जो परिचय का
त्याग करता है, जो काम-भोगों की अमिलाया
को छोड़ चुका है, जो तप आदि का परिचय
दिए बिना भिक्षा की खोज करता है, जो
अप्रतिबद्ध विहार करता है—वह भिक्षु है ।

२—राआंवरयं^२ चरेज्ज लाडे
विरए वेयवियाऽऽयरक्खिए ।
पन्तं अभिभूय सव्वदंसी
जे कम्महिचि^३ न मुच्छिए स भिक्खू॥

रात्र्युपरतं चरेत् 'लाडे'
विरतो वेदविवात्म-रहितः ।
प्राज्ञोऽभिभूय सर्व-वशां
यः कल्मसन्नपि न मूर्च्छितः स भिक्षुः॥

२—जो रात्रि-भोजन या रात्रि-विहार
नहीं करता, जो निर्दोष आहार से जीवन-
यापन करता है, जो विरत, आगम को जानने
वाला और आत्म-रक्षक है, जो प्राज्ञ है, जो
परीवर्षों को जीतने वाला और सब जीवों को
आत्म-तुल्य समझने वाला है, जो किसी भी
वस्तु में मूर्च्छित नहीं होता—वह भिक्षु है ।

३—अक्कोसवहं विइत्तु धीरे
मुणी चरे लाडे निच्चमायगुत्ते ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्टे
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥

आक्रोश-वर्धं बिहित्वा धीरः
मुनिश्चरेत् 'लाडे' नित्यमात्म-गुप्तः ।
अव्यग्र-मना असंप्रहृष्टः
यः कृत्स्नमध्यास्ते स भिक्षुः ॥

३—जो धीर मुनि कठोर बचन और
ताड़ना को अपने कर्मों का फल जान कर शांत
भाव से विचरण करता है, जो प्रशान्त है, जो
सदा आत्मा का संवरण किये रहता है, जिसका
मन आकुलता और हर्ष से रहित होता है, जो
सब कुछ सहन करता है—वह भिक्षु है ।

४—पन्तं सयणासणं भइत्ता
सीउण्हं विविहं च दंसमसगं ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्टे
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥

प्रान्तं शयनासनं भुक्त्वा
शीतोष्णं विविधं च दंश-मशकम् ।
अव्यग्र-मना असंप्रहृष्टः
यः कृत्स्नमध्यास्ते स भिक्षुः ॥

४—निकृष्ट शयन और आसन का सेवन
करके तथा सर्दों, गर्मियों, डांस और मच्छरों की
प्रास को सहन करके भी जिसका मन आकुलता
और हर्ष से रहित होता है, जो सब कुछ सहन
करता है—वह भिक्षु है ।

१. चरिस्सामो (ह०) ।

२. रागोवरयं (ह०) ; रात्रोवरयं (ह० पा०) ।

३. कम्महि चि (अ, उ, ऋ०) ।

५—नो सक्कियमिच्छई न पूयं
नो वि य वन्दणं कुओ पसं ? ।
से संजए सुव्वए तवस्सी
सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥

नो सत्कृतमिच्छति न पूजां
नो अपि च वन्दनं कुतः प्रशंसा ? ।
स संयतः सुव्रतस्तपस्वी
सहित आत्म-गवेयकः स भिक्षुः ॥

५—जो सत्कार, पूजा और वन्दना की
इच्छा नहीं करता वह प्रशंसा की इच्छा कैसे
करेगा ? जो संयत, सुव्रत, तपस्वी, दूसरे
भिक्षुओं के साथ रहने वाला और आत्म-गवेयक
है—वह भिक्षु है ।

६—जेण पुण जहाइ जीवियं
मोहं वा कसिणं नियच्छई ।
नरनारि पजहे सया तवस्सी
न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ॥

येन पुनर्जहाति जीवितं
मोहं वा कृत्स्नं नियच्छति ।
नर-नारि प्रजह्यान् सदा तपस्वी
न च कुतूहलमुपैति स भिक्षुः ॥

६—जिसके संयोग मात्र से संयम-जीवन
छूट जाय और समग्र मोह से बंध जाए कैसे
स्त्री या पुरुष की संगति का जो त्याग करता
है, जो सदा तपस्वी है, जो कुतूहल नहीं
करता—वह भिक्षु है ।

७—छिन्नं सरं भोमं अन्तल्लिखं
सुमिणं लक्षणदण्डवत्पुविज्जं ।
अंगवियारं सरस्स विजयं
जो विज्जाहिं न जीवइ स भिक्खू ॥

छिन्नं स्वरं भोमन्तरिक्षं
स्वप्नं लक्षण-दण्ड-वास्तु-विद्यां ।
अंग-विकारः स्वरस्य विजयः
यो विद्याभिनें जीवति स भिक्षुः ॥

७—जो छिन्न (छिद्र-विद्या), स्वर
(सप्त-स्वर विद्या), भोम, अन्तरिक्ष, स्वप्न,
लक्षण, दण्ड, वास्तु-विद्या, अंग-विकार और
स्वर-विज्ञान (पञ्च-पक्षी स्वर-विद्या)—इन
विद्याओं के द्वारा जो आजोविका नहीं
करता वह भिक्षु है ।

८—मन्तं मूलं विविहं वेज्जचिन्तं
वमणविरेयणधूमणत्तसिणाणं ।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च
तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

मन्त्रं मूलं विविधां वंश-चिन्तां
वमन-विरेचन-धूमनेत्र-स्नानम् ।
आतुरे शरणं चिकित्सितं च
तत् परिज्ञाय परिब्रजेत् स भिक्षुः ॥

८—मन्त्र, मूल, विविध प्रकार की
आयुर्वेद मन्त्राधी चिन्ता, वमन, विरेचन,
धूम-पान की नली, स्नान, आतुर होने पर
स्वजन की शरण, चिकित्सा—इनका परित्याग
कर जो परिब्रजन करता है—वह भिक्षु है ।

९—खत्तिगणउगगारायपुत्ता
माहणभोइय विविहा 'य सिप्पिणो' ।
नो तेसि वयइ^१ सिलोगपूयं
तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

क्षत्रियगणोदराजपुत्राः
ब्राह्मण-भोगिका विविधाश्च शिल्पिनः ।
नो तेषां वदति श्लोक-पूजे
तत्परिज्ञाय परिब्रजेत् स भिक्षुः ॥

९—क्षत्रिय, गण, उग्र, राजपुत्र, ब्राह्मण,
भोगिक (सामन्त) और विविध प्रकार के
शिल्पी जो होते हैं, उनकी श्लाघा और पूजा
नहीं करता किन्तु उसे दोष-पूर्ण जान उसका
परित्याग कर जो परिब्रजन करता है—वह
भिक्षु है ।

१. सिप्पिणोऽणे (बु० पा०) ।

२. वरेइ (वृ०) ।

१०—गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा
अप्पव्वइएण व संथुया ऽविज्जा ।
तेसि इहलोइयफलट्ठा^१
जो संथवं न करेइ स भिक्खू ॥

गृहिणो ये प्रवर्जितेन दृष्टाः
अप्रवर्जितेन च संस्तुता भवेयुः ।
तेषां मिहलौकिकफलायं^२
यः संस्तवं न करोति स भिक्षुः ॥

१०—दीक्षा लेने के पश्चात् जिनमें देवा
हो या उससे पहले जो परिचित हों उनके साथ
इहलौकिक फल (वस्त्र-पात्र आदि) की प्राप्ति
के लिए जो परिचय नहीं करता—वह भिक्षु है ।

११—सयणासणपाणभोयणं
विविहं खाइमसाइमं परेसि ।
अदए पडिसेहिए नियण्ठे
जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥

शयनासन-पात्र-भोजनं
विविधं खाद्य-स्वाद्यं परेभ्यः ।
अवदइभ्यः प्रतिषिद्धो निर्ग्रन्थः
यस्तत्र न प्रवृध्यति स भिक्षुः ॥

११—शयन, आसन, पात्र, भोजन और
विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य ग्रहस्थ न दे तथा
कारण विशेष से माँगने पर भी इन्कार हो
जाए, उस स्थिति में जो प्रवृत्ति न करे—वह
भिक्षु है ।

१२—जं किंचि आहारपाणं^३ विविहं
खाइमसाइमं परेसि लद्धं ।
जो तं ति विहेण नाणुकम्पे
मणवकायसुसंवुडे स भिक्खू ॥

यत्किंचिदाहार-पात्रं
विविधं खाद्य-स्वाद्यं परेभ्योः लब्ध्वा ।
यस्तेन त्रिविधेन नानुकम्पते
संवृत-मनोवाह्यायः स भिक्षुः ॥

१२—ग्रहस्थों के घर से जो कुछ आहार,
पात्र और विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य
प्राप्त कर जो ग्रहस्थ की मन, वचन और काया
से अनुकम्पा नहीं करता—उन्हें आशीर्वाद
नहीं देता, जो मन, वचन और काया से
मुसंभृत होता है—वह भिक्षु है ।

१३—आयामगं चैव जवोदगं च
'सीयं च सोवीरजवोदगं च'^४ ।
नो होलए पिण्डं नीरसं तु
पन्तकुलाइं परिव्वए स भिक्खू ॥

आयामकं चैव यवोदगं च
शीतं सोवीरं यवोदकं च ।
न होलयेन पिण्डं नीरसं तु
प्रान्त-कुलानि परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥

१३—आसामन, जो का दलिया, ठण्डा-
वासी आहार, कौजी का पानी, जो का पानी
जैसी नीरस भिक्षा की जो निन्दा नहीं करता,
जो सामान्य घरों में भिक्षा के लिए जाता है—
वह भिक्षु है ।

१४—सदा विविहा भवन्ति लोए
दिव्वा माणुस्सगा तथा तिरिच्छा^५ ।
भीमा भयभेरवा उराला
जो सोखा न वहिजई^६ स भिक्खू ॥

शब्दा विविधा भवन्ति लोके
विख्या मानुष्यकास्तरिदवाः ।
भीमा भय-भैरवा उदाराः
यः श्रुत्वा न बिभेति स भिक्षुः ॥

१४—लोक में देवता, मनुष्य और
तिर्यज्जों के अनेक प्रकार के रौद्र, अमित भयंकर
और अद्भुत शब्द होते हैं, उन्हें मुनकर जो
नहीं डरता—वह भिक्षु है ।

१. इहलौकिकफलट्ठाए (भ, आ, इ, पृ०) ।

२. वाहार ० (ज) ।

३. सीयं सोवीरं च जवोदगं च (स, छ) ।

४. माणुस्सगा तिरिच्छा च (पृ०) ।

५. वहिप (ड) ।

१५—बादं विविहं समिक्च लोए
सहिण् खेयाणुणए य कोवियप्पा ।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी
उवसन्ते अविहेडए^१ स भिक्खू ॥

बादं विविहं समेत्थ लोके
सहितः खेयानुगतश्च कोविवात्मा ।
प्राशोऽभिभूय सर्वदंसी
उपशान्तोऽविहेडकः स भिक्षुः ॥

१५—लोक में विविध प्रकार के बाहों को जान कर भी जो भिक्षुओं के साथ रहता है, जो संवर्धी है, जिसे आगम का परम अर्थ प्राप्त हुआ है, जो प्राप्त है, जो पतोष्यों को जीतने वाला और सब जीवों को धारण-मुल्य समझने वाला है, जो उपशान्त और किसी को भी अपमानित न करने वाला होता है—वह निष्ठ है ।

१६—असिप्पजीवी^२ अगिहे अमित्ते
जिइन्दिए सव्वओ विप्पमुक्के ।
अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी
चेच्चा गिहं एणवरे स भिक्खू ॥
—त्ति वेमि ।

असिक्पजीव्यगृहोऽमित्रः
जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
अणु-कषायी लघ्वल्पभक्षी
त्यक्त्वा गृहमेकवरः स भिक्षुः ॥
—इति अशीति ।

१६—जो शिल्प-जीवी नहीं होता, जिसके घर नहीं होता, जिसके मित्र नहीं होते, जो जितेन्द्रिय और सब प्रकार के परिग्रह से मुक्त होता है, जिसका कषाय मन्द होता है, जो थोड़ा और निस्सार भोजन करता है, जो घर को छोड़ अकेला (राग-द्वेष से रहित हो) विचरता है—वह निष्ठ है ।

—ऐसा मैं कहना हूँ ।

१. अविहेडए (ड) ।

२. असिप्पजीवी (झ) ।

सोलसमं अङ्गवर्णः :
बम्भचेरसमाहिठाणं

षोडश अध्ययनः :
ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान

आस्तुत्य

ब्रह्मचर्य-समाधि का निरूपण होने के कारण इस अध्ययन का नाम ‘ब्रम्हचैरसमाहितान्’—‘ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान’ है। इसमें ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थानों का वर्णन है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग में भी ब्रह्मचर्य की नौ गुणियों का वर्णन प्राप्त होता है। गुरुनात्मक तालिका यों है :

स्थानाङ्ग तथा समवायाङ्ग में वर्णित नौ गुणियाँ :

१—निग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शयन और आसन का सेवन न करे।

२—केवल स्त्रियों के बीच कथा न कहे अर्थात् स्त्री-कथा न करे।

३—स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।^१

४—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को न देखे और न अवधान पूर्वक उनका चिन्तन करे।

५—प्रणीत रसभोजी न हो।

६—मात्रा से अधिक न खाए और न पीए।

७—पूर्व-क्रोड़ाओं का स्मरण न करे।

८—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा श्लोक-कीर्ति में आसक्त न हो।

९—साता और सुख में प्रतिबद्ध न हो।

उत्तराध्ययन के दस स्थान :

१—निग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आक्षीण शयन और आसन का प्रयोग न करे।

२—स्त्रियों के बीच कथा न कहे।

३—स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।

४—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ाकर न देखे।

५—स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, ह्रास्य, विलाप आदि के शब्द न सुने।

६—पूर्व-क्रोड़ाओं का अनुस्मरण न करे।

७—प्रणीत आहार न करे।

८—मात्रा से अधिक न खाए और न पीए।

९—विभूषा न करे।

१०—शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श में आसक्त न हो।

उत्तराध्ययन में जो दसवाँ स्थान है, वह स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग में आठवाँ स्थान है। अन्य स्थानों का वर्णन प्रायः समान है। केवल पाँचवाँ स्थान स्थानाङ्ग तथा समवायाङ्ग में नहीं है।

१—(क) स्थानाङ्ग ६।६।३ :

नव ब्रम्हचरगुप्तीतो ष० सं०—विबिधाहं स्वभासाणाहं सेविता भवति णो इत्थ्यसंस्तथाहं नो पद्यसंस्तथाहं नो पञ्चमसंस्तथाहं १; नो इत्थिणं कर्हं कहेता २; नो इत्थिणाणाहं सेविता भवति ३; नो इत्थीणमिदिताहं मणोरमाहं मणोरमाहं आकोइता निष्काइता भवइ ४; नो पणीतरसभोई ५; नो पाणभोषणस्स अतिमसं आहारते सता भवति ६; नो पुज्जरत्तं पुज्जकीकिणं समरेसा भवति ७; नो सहायुवाही नो स्वायुवाही नो सिकोगायुवाही ८; नो सातलोक्कपडिबद्धे वाधि भवति ९।

(ख) समवायाङ्ग समवाय ६ :

नव ब्रम्हचरगुप्तीतो ष० सं०—नो इत्थीपङ्कपङ्कमसंस्तथाणि सिखासाणाणि सेविता भवइ १; नो इत्थीणं कर्हं कहेता भवइ २; नो इत्थीणं गणाहं सेविता भवइ ३; नो इत्थीणं इत्थिणाणि मणोरमाहं मणोरमाहं आकोइता निष्काइता भवइ ४; नो पणीतरसभोई ५; नो पाणभोषणस्स अहमापाए आहारत्ताहं ६; नो इत्थीणं पुज्जरत्ताहं पुज्जकीकिणाहं समरइता भवइ ७; नो सहायुवाहं नो स्वायुवाहं नो गन्धायुवाहं नो रसायुवाहं नो कासायुवाहं नो सिकोगायुवाहं ८; नो सावासोपक्कपडिबद्धे वाधिमवइ ९।

१—समवायाङ्ग में इसके स्थान पर—निग्रन्थ स्त्री-समुदाय की उपासना न करे—ऐसा पाठ है। देखें पा० टि० १ (क)।

प्रस्तुत अध्ययन में चक्षु-गृद्धि की भाँति पाँचवें स्थान में शब्द-गृद्धि का भी वर्जन किया गया है और दसवें स्थान में पाँचों इन्द्रियों की आसक्ति का समवेत रूप में वर्जन किया गया है।

यहाँ दस समाधि-स्थानों का वर्णन बहुत ही मनोवैज्ञानिक दंग से हुआ है। शयन, आसन, काम-कथा, स्त्री-पुरुष का एक आसन पर बैठना, चक्षु-गृद्धि, शब्द-गृद्धि, पूर्व-क्रोड़ा का स्मरण, सरस आहार, अतिमात्र आहार, विभूषा, इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति—ये सब ब्रह्मचर्य की साधना में विघ्न हैं। इसलिए इनके निवारण को 'ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान' या 'ब्रह्मचर्य-गुप्ति' कहा गया है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्ति-निग्रह है। वह पाँचों इन्द्रियों तथा मन के संयम के बिना प्राप्त नहीं होता। इसलिए उसका अर्थ 'सर्वेन्द्रिय-संयम' है। ये समाधि-स्थान इन्द्रिय-संयम के ही स्थान हैं :

स्वर्गन-इन्द्रिय-संयम के लिए सह-शयनासन और एक आसन पर बैठना वर्जित है।

रसन-इन्द्रिय-संयम के लिए सरस और अति-मात्रा में आहार करना वर्जित है।

घ्राण इन्द्रिय-संयम के लिए कोई पृथक् विभाग निर्दिष्ट नहीं है।

चक्षु इन्द्रिय-संयम के लिए स्त्री-देह व उसके ह्राव-भावों का निरीक्षण वर्जित है।

श्रोत्र-इन्द्रिय-संयम के लिए हास्य-विमोक्षण पूर्ण शब्दों का सुनना वर्जित है।

मानसिक-संयम के लिए काम-कथा, पूर्व-क्रोड़ा का स्मरण और विभूषा वर्जित है।

दसवाँ स्थान इन्द्रिय-संयम का संकलित रूप है।

मूलाधार में शील-विराधना (अब्रह्मचर्य) के दस कारण बतलाए गए हैं^१—

१—स्त्री-संसर्ग—स्त्रियों के साथ संसर्ग करना।

२—प्रणोत-रस-भोजन—अत्यन्त गृद्धि से पाँचों इन्द्रियों के विकारों को बढ़ाने वाला आहार करना।

३—गंधमात्र्य-संस्पर्श—सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्पों के द्वारा शरीर का संस्कार करना।

४—शयनासन—शयन और आसन में ग्राह्य रखना।

५—भूषण—शरीर का मण्डन करना।

६—गीत-वाद्य—नाट्य, गीत आदि को अभिलाषा करना।

७—अर्थ-संप्रयोजन—स्वर्ण आदि का व्यवहार।

८—कुशील-संसर्ग—कुशील व्यक्तियों का संसर्ग।

९—राज-सेवा—विषयों की पूर्ति के लिए राजा का गुण कीर्तन करना।

१०—राज-संचरण—बिना प्रयोजन राज में द्धर-उधर जाना।

दिग्गम्बर-विद्वान् पाण्डित आशाधरजों ने ब्रह्मचर्य के दस नियमों को निम्न रूप में रखा है^२—

१—मूलाधार ११६३, १४ : इत्थीसंसर्गं पणीदरसभोजनं गधमङ्गसंठणं।

सपणासनभूषणं, छट्ठं पुण गीयवाह्यं वेव ॥

अत्यस्स संपभोगो, कुशीलसंसर्गं रायसेवा व।

रत्ति वि व संवरणं, दस सीक विराहणा भण्णवा ॥

२—अनगारजमण्डित ५६१ : मा रूपाविरसं पिपासं धुत्तां मा वत्तिमोसं कृथा,

कृत्थं स्त्रीशयनाविकं व भज मा मा वा बराज्जे दूषय्।

मा स्त्रीं सत्कुट मा च संत्कुट रत्तं वत्तं स्वरस्माथं मा,

वत्त्थंयेच्छ सुपत्थ मेवविषयान् द्वि-पक्षपा मङ्गणे ॥६१४

१—मा रूपादिरसं विपासा सुदृशाम्—ब्रह्मचारी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द के रसों को पान करने की इच्छा न करे ।

२—मा वस्तिमोक्षं कृथा—वह ऐसे कार्य न करे, जिससे लिङ्ग-विकार हो ।

३—बुध्यं मा भज—वह कामोद्दीपक आहार न करे ।

४—स्त्रीशयनादिकं च मा भज—स्त्री तथा शयन-आसन आदि का प्रयोग न करे ।

५—वराज्ञे दृशं मा दा—स्त्रियों के अंगों को न देखे ।

६—स्त्रीं मा सत्कुल—स्त्रियों का सत्कार न करे ।

७—मा च संस्कुल—शरीर-संस्कार न करे ।

८—रतं वृत्तं मा स्मर—पूर्व सेवित का स्मरण न करे ।

९—वत्स्यन् मा इच्छ—भविष्य में क्रीड़ा करने का न सोचे ।

१०—इष्ट विषयान् मा जुजस्व—इष्ट रूपादि विषयों से मन को युक्त न करे ।

इनमें क्रमांक १, ३, ४, ५, ७ और ८ तो वे ही हैं जो श्वेताम्बर-आगमों में हैं, शेष भिन्न हैं ।

वेद अथवा उपनिषदों में ब्रह्मचर्य को रक्षा के लिए ऐसे शृङ्खलाबद्ध नियमों का उल्लेख नहीं मिलता । स्मृति में कहा है—स्मरण, कांक्षा, देखना, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रिया—इस प्रकार मैथुन आठ प्रकार के हैं । इन सबसे बचकर ही ब्रह्मचर्य को रक्षा करने चाहिए ।^१

ब्रह्म-साहचर्य में भी ब्रह्मचर्य-गुणियों जैसा कोई व्यवस्थित क्रम नहीं मिलता, किन्तु विकीर्ण रूप में कुछ नियम मिलते हैं । वहाँ रूप के प्रात आसक्ति-भाव को दूर करने के लिए अद्युधि भावना के चिन्तन का मन्त्र मान्य रहा है । यह 'कायगता-स्मृति' ने नाम स विख्यात है ।^२

बुद्ध मुन्यु-शय्या पर ये तत्र शिष्यो ने पूछा—“भते । स्त्रियों के साथ हम कंसा व्यवहार करेंगे ?”

“अदर्शनं, आनन्द ।”

“दर्शनं हाने पर भगवन् । कसा बर्ताव करेंगे ?”

“आलाप न करना, आनन्द ।”

“बाने करने वाले को कंसा करना चाहिए ?”

“स्मृति को संभाल रखना चाहिए ।”^३

उक्त अनेक परम्पराओं के संदर्भ में इस समाधि-स्थानों का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है ।

१—दशस्मृति ७।३१-३३ : ब्रह्मचर्य सदा रक्षेत्पञ्चा मैथुनं वृषक् ।

स्मरणं कीर्तनं केचिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥

सङ्कल्पोऽव्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ।

पुनर्नैधुनसप्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

न ज्ञातव्यं न वक्तव्यं न कर्तव्यं कदाचन ।

पुनः तथैः सप्तम्पन्नो वतिसंवति नेतरः ॥

१—सप्तनिपात १।११; विबुद्धि मग (प्रथम भाग) परिच्छेद ८, पृष्ठ २१८-२१९ ।

२—श्रीधर्मिकाय (महापरिनिष्वाण सप्त) २।३ ।

सू० ३—इमे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तम्भयारी सया अणमत्ते विहरेज्जा, तं जहा— 'विवित्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा', से निग्गन्थे।^१ नो इत्थीपमुपण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेविता हवइ, से निग्गन्थे।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु इत्थीपमुपण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंवा वा, वित्तिगिच्छा वा समुपज्जज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपिन्नत्ताओ 'वा धम्माओ'^२ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थिपमुपण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेविता हवइ, से निग्गन्थे।

इमानि खलु स्थविरभंगवज्जिदंश ब्रह्मचर्यं-समाधि-स्थानानि प्रकृतानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य, संयम-बहुलः, संवर-बहुलः, समाधि-बहुलः, गुप्तः, गुप्तेन्द्रियः, गुप्त-ग्रहचारी, सदाश्रमसो विहरेत्। तद्यथा—
विश्विक्तानि शयनासनानि सेवेत
स निग्रन्थः नो स्त्री-पशु-पण्डक-
संसक्तानि शयनासनानि सेविता
भवति स निग्रन्थः।

तन् कयमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु स्त्री-पशु-पण्डक-संसक्तानि शयना-
सनानि सेवमानस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं
शङ्का वा कालक्षा वा विश्विक्तत्वा वा
समुत्पद्यन्त, भेदं वा लभेत्, उन्मादं
वा प्राप्नुयान्, दीर्घकालिको वा रोगा-
तङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञात् धर्माद्
अश्रयेत्, तस्मान्नो स्त्री-पशु-पण्डक-
संसक्तानि शयनासनानि सेविता भवति
स निग्रन्थः।

३—स्थविर भगवान् नो ब्रह्मचर्यं-समाधि के दस स्थान ये बतलाए हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके बर्ण का निश्चय कर, भिक्षु संयम, संवर, और समाधि का पुनः-पुनः अभ्यास करे। मन, वाणी और शरीर का गोपन करे। इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाए, ब्रह्मचर्य को नो मुग्धताओं से सुरक्षित रखे और सदा अग्रमत्त होकर विहार करे। वे इस प्रकार हैं—
जो एकान्त शयन और आसन का सेवन करता है, वह निग्रन्थ है। निग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आर्काणं शयन और आसन का सेवन नहीं करता।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्री, पशु और नपुंसक से आर्काणं शयन और आसन का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शङ्का, कंठा या विश्विक्तत्वा उत्पन्न होता है अथवा प्रज्ञाचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से अष्ट हो जाता है, इसलिए जो स्त्री, पशु और नपुंसक से आर्काणं शयन और आसन का सेवन नहीं करता, वह निग्रन्थ है।

१. सेविज्जा हवइ (उ)।

२. × (बु०)।

३. धम्माओ (उ, इ)।

सोलसमं अज्ज्ञवर्णः षोडशम् अध्वयनम् बम्भचेरसमाहिठाणः ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानम्

मूल

सू० १—सुर्यं मे, आउसं ! तेणं
भगवया एवमक्खायं—

इह खलु थेरेहि भगवन्तेहि दस
बम्भचेरसमाहिठाणा पन्तत्ता, जे
भिकखू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले,
संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते,
गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया
अप्पमत्ते विहरेज्जा ।

संस्कृत छाया

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन
भगवतैवमाख्यातम्—इह खलु स्थविरै
भंगवद्भिर्ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानानि
प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य,
संयम-बहुलः, संवर-बहुलः, समाधि-
बहुलः, गुप्तः, गुप्तेन्द्रियः, गुप्त-ब्रह्मचारी,
सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ।

हिन्दी अनुवाद

१—आयुष्मन् ! मैंने सुना है, भगवान्
(प्रज्ञापक आचार्य) ने ऐसा कहा है—
निर्ग्रन्थ प्रवचन में जो स्थविर (गणधर)
भगवान् हुए हैं उन्होंने ब्रह्मचर्य-समाधि के दस
स्थान बताए हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ
का निश्चय कर, भिक्षु संयम, संवर और
समाधि का पुनः-पुनः अभ्यास करे । मन,
वाणी और शरीर का गोपन करे, इन्द्रियों को
उनके विषयों से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ
सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त
होकर विहार करे ।

सू० २—कयरे खलु ते थेरेहि

भगवन्तेहि दस बम्भचेरसमाहिठाणा
पन्तत्ता जे भिकखू सोच्चा, निसम्म,
संजमबहुले, संवरबहुले समाहिबहुले,
गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया
अप्पमत्ते विहरेज्जा ?

कतराणि खलु तानि स्थविर-

भंगवद्भिर्ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानानि
प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य,
संयम-बहुलः, संवर-बहुलः, समाधि-
बहुलः, गुप्तः, गुप्तेन्द्रियः, गुप्त-
ब्रह्मचारी, सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ?

२—स्थविर भगवान् ने वे कौन से

ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान बताए हैं,
जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निश्चय कर,
भिक्षु संयम, संवर और समाधि का पुनः-पुनः
अभ्यास करे । मन, वाणी और शरीर का
गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाए,
ब्रह्मचर्य को नौ सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और
सदा अप्रमत्त होकर विहार करे ?

सू० ४—नो इत्थीणं कहुं कहिता ह्वइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयग्याह—निगन्थस्स खलु इत्थीणं कहुं कहेमाणस्स, बम्भयारिस्स बम्भचरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । 'तम्हा नो इत्थीणं' कहुं कहेज्जा ।

नो स्त्रीणां कथां कथयिता भवति, स निग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु स्त्रीणां कथां कथयतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञासाद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मान्नो स्त्रीणां कथां कथयेत् ।

४—जो केवल स्त्रियों के बीच में कथा नहीं करता वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—केवल स्त्रियों के बीच कथा करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए केवल स्त्रियों के बीच में कथा न करे ।

सू० ५—नो इत्थीहि^१ सद्धि सन्निसेज्जागए विहरित्ता ह्वइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयग्याह—निगन्थस्स खलु इत्थीहि सद्धि सन्निसेज्जागयस्स, बम्भयारिस्स बम्भचरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु ना निगन्थे इत्थीहि सद्धि सन्निसेज्जागए विहरेज्जा^२ ।

नो स्त्रीभिः सार्धं सन्निवद्यगतो विहर्ता भवति स निग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु स्त्रीभिः सार्धं सन्निवद्यगतस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञासाद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात् खलु नो निग्रन्थः स्त्रीभिः सार्धं सन्निवद्यगतो विहरेत् ।

५—जो स्त्रियों के साथ पीठ आदि एक आसन पर नहीं बैठता, वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे ।

१. तम्हा खलु निगन्थे नो इत्थीणं (ड) ।

२. इत्थीणं (अ, झ०) ।

३. विहरइ (अ) ।

सू० ६—नो इत्थीणं इन्दियाइं
मणोहराईं, मणोरमाईं आलोइत्ता,
निज्झाइत्ता हवइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु
इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराईं,
मणोरमाईं आलोएमाणस्स, निज्झाय-
माणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका
वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा
समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं
वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नताओ
वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु
'निगन्थे नो' इत्थीणं इन्दियाइं
मणोहराईं, मणोरमाईं आलोएज्जा,
निज्झाएज्जा ।

नो स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि
मनोरमाण्यालोकयिता निष्प्राप्ता भवति
स निर्ग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु
स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनो-
रमाण्यलोकमानस्य निष्प्राप्यतो
ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा
वा विचिकित्सा वा समुत्पद्यते, भेदं
वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घ-
कालिको वा रोगात्कुपो भवेत्, केवल-
प्रज्ञाहा वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात्
खलु नो निर्ग्रन्थः स्त्रीणामिन्द्रियाणि
मनोहराणि मनोरमाण्यालोकयेन्न-
ध्ययिन् ।

६—जो स्त्रियों की मनोहर और मनोरम
इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर नहीं देखता, उनके
विषय में चिन्तन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पुरुष पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों
की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि
गड़ा कर देखने वाले और उनके विषय में
चिन्तन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को
ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या
विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य
का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता
है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता
है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो
जाता है, इसलिए स्त्रियों के मनोहर और
मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर न देखे और
उनके विषय में चिन्तन न करे ।

सू० ७—नो इत्थीणं कुडुन्तरंसि वा, दूस्सन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसदं वा, रुइयसदं वा, गीयसदं वा, हसियसदं वा, थणियसदं वा, कन्दियसदं वा, विलवियसदं वा, सुणेता ह्वइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु इत्थीणं 'कुडुन्तरंसि वा, दूस्सन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा'^१, कुइयसदं वा, रुइयसदं वा, गीयसदं वा, हसियसदं वा, थणियसदं वा, कन्दियसदं वा, विलवियसदं वा, सुणेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिजा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउजिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हुवेज्जा, केवलपिन्तताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु निगन्थे नो इत्थीणं कुडुन्तरंसि वा, दूस्सन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसदं वा, रुइयसदं वा, गीयसदं वा, हसियसदं वा, थणियसदं वा, कन्दियसदं वा, विलवियसदं वा सुणेमाणे विहरेज्जा ।

नो स्त्रीणां कुडुपान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भिरयन्तरे वा, कूजित-शब्दं वा, रुवित-शब्दं वा, गीत-शब्दं वा, हसित-शब्दं वा, स्तनित-शब्दं वा कन्वित-शब्दं वा, विलपित-शब्दं वा श्रोता अवति सनिप्रन्थः ।

तत्कथमिति जेत ?

आचार्य आह—निप्रन्थस्य खलु स्त्रीणां कुडुपान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भिरयन्तरे वा कूजित-शब्दं वा, रुवित-शब्दं वा, गीत-शब्दं वा, हसित-शब्दं वा, स्तनित-शब्दं वा, कन्वित-शब्दं वा, विलपित-शब्दं वा शृण्वतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्कु वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा सम्प्लुष्टेत्, भेवं वा लभेत्, उन्मादं वा प्राप्नुयान्, दीर्घकालिको वा रोगात्कृरो भवेत्, केवल-प्रज्ञात् वा धर्माद् भक्ष्यते । तस्मात् खलु नो निप्रन्थः स्त्रीणां कुडुपान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भिरयन्तरे वा कूजित-शब्दं वा, रुवित-शब्दं वा, गीत-शब्दं वा, हसित-शब्दं वा, स्तनित-शब्दं वा, कन्वित-शब्दं वा, विलपित-शब्दं वा शृण्वन् विहरेत् ।

७—ओ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को नहीं सुनता, वह निप्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पुरुष पर आचार्य कहते हैं—मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को सुनने वाले ब्रह्मचारी निप्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को न सुने ।

१. भित्ति अंतरंसि वा (अ, ५०) ; भित्तिरंसि (उ) ।

२. कुडुन्तरंसि वा भित्तन्तरंसि वा दूस्सन्तरंसि वा (५०, स) ; कुडुन्तरंसि वा (अ) ।

सू० ८—नो निगन्थे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु पुव्वरयं^१, पुव्वकीलियं अणुसर-माणस्स बम्भयारिस्स बम्भवेरे संका वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल-पन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु नो निगन्थे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा ।

सू० ९—नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु पणीयं पाणभोगं आहारेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भवेरे संका वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा समु-पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु नो निगन्थे पणीयं आहारं आहारेज्जा ।

नो निग्रन्थः पूर्व-रतं पूर्व-क्रीडित मनुस्मर्ता भवेत्, स निग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु स्त्रीणां पूर्व-रतं पूर्व-क्रीडितमनुस्मरतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घ-कालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञाद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मान् खलु नो निग्रन्थः स्त्रीणां पूर्व-रतं पूर्व-क्रीडित-मनुस्मरेत् ।

नो प्रणीतमाहारमाहर्ता भवति, स निग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु प्रणीतमाहारमाहरतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचि-कित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञाद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात् खलु नो निग्रन्थः प्रणीतमाहारमाहरेत् ।

८—जो यहवास में की हुई रति और क्रीडा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—यहवास में की हुई रति और क्रीडा का अनुस्मरण करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कंखा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कवित धर्म में भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए यहवास में की हुई रति और क्रीडा का अनुस्मरण न करे ।

९—जो प्रणीत आहार नहीं करता, वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—प्रणीत पान-भोजन करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कंखा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कवित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए प्रणीत आहार न करे ।

सू० १०—नो अइमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता हवइ, से निगम्ये ।

नो अतिमात्रया पान-भोजनमाहर्ता भवति, सनिग्रन्थः ।

तं कहमिति चे ?

आयगियाह—निगम्यस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बम्भयागिस्स बम्भचैरे सका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपिन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु नो निगम्ये अइमायाए पाणभोयणं भुंजिज्जा ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खल्वति-मात्रया पान-भोजनमाहर्तो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञाहा वा धर्माद् अश्रयेत् । तस्मान् खलु नो निग्रन्थाऽतिमात्रया पान-भोजनं भुञ्जीत ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—मात्रा से अधिक पीने और खाने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांखा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से अष्ट हो जाता है, इसलिए मात्रा से अधिक न पीए और न खाए ।

सू० ११—नो विभूसाणुवाई हवइ, से निगम्ये ।

नो विभूसानुपाती भवति, स निग्रन्थः ।

तं कहमिति चे ?

आयगियाह—विभूसावत्तिए^१, विभूसियसरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ । तओ णं तस्स इत्थिजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बम्भचैरे सका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपिन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु नो निगम्ये विभूसाणुवाई सिया ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—विभूसावत्तिको विभूषितशरीरः स्त्रीजनस्याभिलषणीयो भवति । तत्तत्तस्य स्त्रीजनैनाभिलष्यमाणस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञाहा वा धर्माद् अश्रयेत् । तस्मान् खलु नो निग्रन्थो विभूसानुपाती स्यात् ।

११—जो विभूषा नहीं करता—शरीर को नहीं सजाता, वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—जिसका स्वभाव विभूषा करने का होता है, जो शरीर को विभूषित किए रहता है, उसे स्त्रियों चाहने लगती हैं । पश्चात् स्त्रियों के द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शङ्का, काङ्क्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से अष्ट हो जाता है, इसलिए विभूषा न करे ।

सू० १२—नो सदृख्वरसगन्ध-
फासाणुवाई हवइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु
सदृख्वरसगन्धफासाणुवाइस्स बम्भ-
यारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा
वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,
भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा
पाउणिज्जा, दीहकालियं वा
रोगायकं हवेज्जा, केवल्लिपन्तताओ
वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु
नो निगन्थे सदृख्वरसगन्धफासाणु-
वाई हविज्जा । दसमे बम्भचेर-
समाहिठाणे हवइ ।

भवन्ति इत्थं मिलोमा, तं जहा—

नो शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शानु-
पातो भवति, सनिग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु
शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शानुपातिनो
ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्क वा काङ्क्षा
वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं
वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्,
दीर्घकालिको वा रोगातङ्गो भवेत्,
केवल-प्रज्ञासह वा धर्माह भ्रयेत् ।
तस्मान् खलु नो निग्रन्थः शब्द-रूप-
रस-गन्ध-स्पर्शानुपातो भवेत् । दशमं
ब्रह्मचर्यं-समाधि-स्थानं भवति ।

भवन्ति अत्र श्लोकाः, तद् यथा—

१२—जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और
स्पर्श में आसक्त नहीं होता, वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पुरुष पर आचार्य कहते हैं शब्द,
रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त होने वाले
ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका,
कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा
ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद
पैदा होना है अथवा दीर्घकालिक रोग और
आसक्त होना है अथवा वह केवली-कथित धर्म
से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए शब्द, रूप, रस,
गन्ध और स्पर्श में आसक्त न बनें । ब्रह्मचर्य
की समाधि का यह दसवाँ स्थान है ।

यहाँ श्लोक हैं जैसे—

१—जं वित्तमणाडणं
रहियं धीजणेण य ।
बम्भचेरस्स रक्खट्ठा
आलयं तु निसेवए ॥

२—मणपत्थायजणं
कामरागविवड्ढणि ।
बम्भचेररओ भिक्खु
धीकहं तु विवज्जए ॥

३—समं च संथवं धीहि
संकहं च अभिक्खणं ।
बम्भचेररओ भिक्खु
निच्चसो पविज्जए ॥

यो विवित्तोनाकीणः
रहितं स्त्रीजनेन च ।
ब्रह्मचर्यस्य रक्षायाम्
आलयं तु निषेवते ॥

मनः-प्रह्लाव-जननीं
काम-राग-विवर्धनीम् ।
ब्रह्मचर्यं-रतो भिक्षुः
स्त्री-कथां तु विवर्जयेत् ॥

समं च संस्तवं स्त्रीभिः
संकथां चाभिरुणम् ।
ब्रह्मचर्यं-रतो भिक्षुः
नित्यशः परिवर्जयेत् ॥

१—ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए मृत्ति वसे
आलय में रहे जो एकाग्र, अनाकीर्ण और
श्रियों में रहित हो ।

२—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
मन को आह्लाद देने वाली तथा काम-राग
बढ़ाने वाली स्त्री-कथा का वर्जन करे ।

३—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
स्त्रियों के साथ परिचय और बार-बार वार्ता-
लाप का सदा वर्जन करे ।

४—अंगपच्चंगसंठाणं
चारुल्लवियपेहियं ।
बम्भचेररओ धीणं^१
चक्खुगिज्झं विवज्जा ॥

अंग-प्रत्यंग-संस्थानं
चारुल्लपित्त-प्रेक्षितम् ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणां
चक्षु-प्राह्णं विवर्जयेत् ॥

४—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु स्त्रियों के चक्षु-प्राह्ण, अंग-प्रत्यंग, आकार, बोलने की मनहर-मुद्रा और चितवन को न देखे—देखने का यत्न न करे ।

५—कुइयं रुइयं गीयं
हसियं धणियकन्दियं ।
बम्भचेररओ धीणं
सोयगिज्झं विवज्जा ॥

कूजितं रुदितं गीतं
हसितं स्तनित-कन्दितम् ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणां
श्रोत्र-प्राह्णं विवर्जयेत् ॥

५—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु स्त्रियों के श्रोत्र-प्राह्ण कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गजन और कन्दन को न सुने—सुनने का यत्न न करे ।

६—'हासं किट्ठं रडं दप्पं
सहसाऽवत्तासियाणं^२ य'^३ ।
बम्भचेररओ धीणं
नाणुचिन्ते कयाइ वि ॥

हासं कीडां रति दपं
सहसाऽवत्तासितानि च ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणां
नानुचिन्तयेन् कवाचिदपि ॥

६—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु पूर्व-जीवन में स्त्रियों के साथ अनुभूत हास्य, कीडा, रति, अभिमान और आकस्मिक त्रास का काशी भी अनुचिन्तन न करे ।

७—पणीयं भत्तपाणं तु^४
खिणं मयविवडुढणं ।
बम्भचेररओ भिक्खू
निच्चसो परिवज्जा ॥

प्रणीतं भक्ष-पानं तु
क्षिप्रं मद-विवर्धनम् ।
ब्रह्मचर्य-रतो भिक्षुः
नित्यशः परिवर्जयेत् ॥

७—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु शीघ्र ही काष-वासना को बढ़ाने वाले प्रणीत भक्ष-पान का सदा वर्जन करे ।

८—धम्मलद्धं^५ मियं काले
जत्तथं पणिहणव्वं ।
नाइमत्तं तु भुज्जेज्जा
बम्भचेररओ सया ॥

धर्म्य-लब्धं मितं काले
यात्रार्थं प्रणिधानवान् ।
नातिमात्रं तु भुञ्जीत
ब्रह्मचर्य-रतः सदा ॥

८—ब्रह्मचर्य-रत और स्वल्प चित्त वाला भिक्षु जीवन निर्वाह के लिए उचित समय में निर्दोष, भिक्षा द्वारा प्राप्त, परिमित भोजन करे, किन्तु मात्रा से अधिक न खाए ।

१. भिक्खू (बू०) ।

२. सहसाविषा० (बू०) ; सहस्रुता० (अ०) ।

३. इत्थं दप्पं रडं किट्ठं सहस्रुता० (बू० वा०) ।

४. च (अ०) ।

५. धम्मं कद्धं (बू०) ; धम्मलद्धं, धम्मलद्धं (बू० वा०) ।

९—विभूषं परिवज्जेज्जा
सरीरपरिमण्डणं ।
वम्भचेररओ भिक्खू
सिगारत्थं न धारए ॥

विभूषां परिवज्जयेन्
शरीर-परिमण्डनम् ।
ब्रह्मचर्यं-रतो भिक्षुः
शृङ्गारार्थं न धारयेत् ॥

६—ब्रह्मचर्यं में रत रहने वाला भिक्षु
विभूषा का वर्जन करे और शरीर की घोभा
बढ़ाने वाले केश, दाढ़ी आदि को शृङ्गार के
लिए धारण न करे ।

१०—सट्ठे रुवे य गन्धे य
रसे फासे तहेव य ।
पंचविहे कामगुणे
निच्चसो परिवज्जेए ॥

शम्भान् रूपांश्च गंधांश्च
रसान् स्पर्शांस्तथैव च ।
पञ्चविधान् काम-गुणान्
नित्यशः परिवज्जयेत् ॥

१०—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श—
इन पाँच प्रकार के काम-गुणों का सदा वर्जन
करे ।

११—आलओ थीज्जणाइण्णो
थीकहा य मणोरमा ।
संथवो चैव नारीणं
तासि इन्दियदरिसणं ॥

आलयः स्त्रीजनाकीर्णः
स्त्री-कथा च मनोरमा ।
संस्तव्यश्चैव नारीणां
तासामिन्द्रिय-दर्शनम् ॥

११—(१) स्त्रियों से आकीर्ण आलय,
(२) मनोरम स्त्री-कथा,
(३) स्त्रियों का परिचय,
(४) उनके इन्द्रियों को देखना,

१२—कुइयं रुइयं गीयं
हसियं^१ भुत्तासियाणि य ।
पणीयं भत्तपाणं च
अइमायं^२ पाणभोयणं ॥

कूजितं रुदितं गीतं
हसितं भुक्तासितानि च ।
प्रणीतं भक्त-पात्रं च
अतिमात्रं पान-भोजनम् ॥

१२—(५) उनके कूजन, रोदन, गीत और
हास्य-युक्त शब्दों को सुनना,
(६) भक्त-भोग और महावस्थान,
को याद करना,
(७) प्रणीत पान-भोजन,

१३—गतभूषणमिट्ठं च
कामभोगा य दुज्जया ।
नरस्स ज्तगवेसिस्स
विसं तालउडं जहा ॥

गात्र-भूषणमिष्टं च
काम-भोगाश्च दुर्जयाः ।
नरस्यात्म-गर्भेक्षिणः
विषं तालपुटं यथा ॥

१३—(८) मात्रा से अधिक पान-भोजन,
(९) शरीर को सजाने की इच्छा और
(१०) दुर्जय काम-भोग—ये दस
आत्म-गर्भेक्षी मनुष्य के लिए
तालपुट विष के समान हैं ।

१. नारिहि (ङ०) ।

२. लहभुवा ० (अ०) ।

३. अइमाणं (ङ०) ।

बम्भचैरसमाहिटाणं (ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान) २०६

अध्ययन १६ : श्लोक १४-१७

१४—दुज्जए कामभोगे य
निब्वसो परिवज्जए ।
संकट्टाणाणि सव्वाणि
वज्जेज्जा^१ पणिहाणवं ॥

दुर्जयान् काम-भोगांश्च
नित्यतः परिव्रजेत् ।
शंका-स्थानानि सर्वाणि
व्रजेत् प्रणिधानवान् ॥

१४—एकाग्रचित्त वाला मुनि दुर्जय
काम-भोगों और ब्रह्मचर्य में शंका उत्पन्न करने
वाले पूर्वोक्त सभी स्थानों का वर्जन करे ।

१५—धम्मारामे चरे भिक्खु
धिइमं धम्मसारही ।
धम्मारामरए दन्ते
बम्भचैरसमाहिए ॥

धर्मारामे चरे^२ भिक्षुः
धृतिमान् धर्म-सारधिः ।
धर्माराम-रतो दान्तः
ब्रह्मचर्य-समाहितः ॥

१५—धर्मवान्, धर्म के रथ को चलाने
वाला, धर्म के आराम में रत, दान्त और
ब्रह्मचर्य में चित्त का समाधान पाने वाला
भिक्षु धर्म के आराम में विचरण करे ।

१६—देवदाणवगन्धव्वा
जक्खरक्खसकिन्नरा ।
बम्भयारि नमंसन्ति
दुक्करं जे करन्ति तं^३ ॥

देव-दानव-गन्धर्वाः
यक्ष-राक्षस-किन्नराः ।
ब्रह्मचारिणं नमस्कुर्यन्ति
दुष्करं यः करोति तन् ॥

१६—उत्त ब्रह्मचारी को देव, दानव,
गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर—ये सभी
नमस्कार करते हैं, जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का
पालन करता है ।

१७—एस धम्मे धुवे निअए
सासए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण
सिज्झिस्सन्ति तहापरे ॥
—त्ति वेमि ॥

एष धर्मो ध्रुवो नित्यः
शाश्वतो जिन-देशितः ।
सिद्धाः सिध्यन्ति चानेन
तेत्स्यन्ति तथापरे ॥

—इति ब्रवीमि ।

१७—यह ब्रह्मचर्य-धर्म ध्रुव, नित्य,
शाश्वत और अहंत् के द्वारा उपदिष्ट है ।
इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, हो
रहे हैं और भविष्य में भी होंगे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. वज्जिया (वृ०) ।

२. ते (अ) ।

५—आयरियउवज्जायाणं

सम्मं नो पडितप्पइ ।
अप्पडिप्पयए थड्ढे
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

६—सम्मट्ठमाणे

पाणाणि हरियाणि य ।
असंजए संजयमन्तमाणे
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

७—संधारं

फलमं पीढं
निसंज्जं पायकम्बलं ।
अप्पमज्जियमारुहइ
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

८—दवदवस्स

चरई
पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चण्डे य
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

९—पडिलेहेड

पमत्ते
अवउज्झइ पायकम्बलं ।
पडिलेहणाअणाउत्ते*
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

१०—पडिलेहेड

पमत्ते
से किंचि हु निसामिया ।
गुरुपरिभावए* निच्चं
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

आचार्योपाध्यायानां

सम्यग् न प्रतिपद्यते ।
अप्रतिपूजकः स्तब्धः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

संमर्दयन् प्राणान्

बीजानि हरितानि च ।
असंयतः संयतोऽप्रीतिः मन्यमानः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

संस्तारं फलकं पीढं

निवद्यां पाव-कम्बलम् ।
अप्रमुखादरोहति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

द्रवं द्रवं चरति

प्रमत्तश्चाभिक्षणम् ।
उल्लंघनद्वय चण्डद्वय
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

प्रतिलेखयति प्रमत्तः

अपोज्झति पाव-कम्बलम् ।
प्रतिलेखनाऽनायुक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

प्रतिलेखयति प्रमत्तः

सकिञ्चि खलु निशम्य ।
गुरु-परिभावको नित्यं
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

५—जो आचार्य और उपाध्याय के कार्यों की सम्यक् प्रकार से चिन्ता नहीं करता—उनकी सेवा नहीं करता, जो बड़ों का सम्मान नहीं करता, जो अभिमानी होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

६—हान्द्रिय आदि प्राणी तथा बीज और हरियाली का मर्दन करने वाला, असंयमी होते हुए भी अपने आपको संयमी मानने वाला, पाप-श्रमण कहलाता है ।

७—जो बिछोने, पाट, पीठ, आसन और पैर पीछने के कम्बल का प्रमाज्जन किए बिना (तथा दल बिना) उन पर बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

८—जो दूतगति से चलता है, जो बार-बार प्रमाद करता है, जो प्राणियों को लांच कर—उनके ऊपर होकर चला जाता है, जो कोपी है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

९—जो अनावधानी से प्रतिलेखन करता है, जो पाद-कम्बल को जहाँ कहीं रख देता है, इस प्रकार जो प्रतिलेखना में असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१०—जो कुछ भी बातचीत हो रही हो उसे सुनकर प्रतिलेखना में असावधानी करने लगता है, जो गुरु का तिरस्कार करता है—शिक्षा देने पर उनके सामने बोलने लगता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१. पडिलेहा ० (घ) । †

२. गुरु परिभावह (अ) ; गुरुपरिभावए (ह०) ; गुरुपरिभावए (ह० पा०) ।

सप्तमं अङ्गवर्णः :
पावसमणिज्जं

सप्तमं अध्ययनः :
पाप-धर्मणीयम्

११—बहुमाई पमुहरे'
थढ़े लुढ़े अणिगहे ।
असंविभागी अनियत्ते
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१२—विवादं च उदीरेइ
अहम्मं अत्तपन्तहा' ।
वुग्गहे कलहे रत्ते
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१३—अथिरासणं कुक्कुईए
जत्थ तत्थ निसीयई ।
आसणम्मि अणाउत्ते
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१४—ससग्गवपाए सुवई
सेज्जं न पडिलेइइ ।
संघाराण अणाउत्ते
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१५—दुद्धदहीविगईओ
आहारेइ अभिक्खणं ।
अए य तवोक्कमे
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१६—अत्यन्तम्मि' य मूरम्मि
आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ
पावसमणि ति वुच्चई ॥

बहुमायी प्रमुहुरे:
स्तब्धो लुब्धोऽतिग्रहः ।
असंविभागी 'अनियत्ते'
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

बिबावं छोदीरयति
अघर्मे आत्म-प्रज्ञाहा ।
व्यवहारे कलहे रक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

अस्थिरासनः कौकुक्षिकः
यत्र तत्र निषीदति ।
आसनेऽनायुक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

ससरजस्क-पावः स्वपिति
शय्यां न प्रतिलिखयति ।
संस्तारकेऽनायुक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

दुग्ध-दधि-विकृतीः
आहरत्यभोक्षणम् ।
अरतश्च तपः-कर्मणि
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

अस्तान्ते च सूर्यो
आहरत्यभोक्षणम् ।
चोदितः प्रतिचोदयति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

११—जो बहुत कपटी, बाचाल,
अभिमानी, लालची, हान्य और मन पर
निग्रह न रखने वाला, भक्त-पान आदि का
संविभाग न करने वाला और गुरु आदि से
प्रेम न रखने वाला होता है, वह पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१२—जो शान्त हुए विवाद को फिर से
उभाड़ता है, जो सदाचार से शून्य होता है,
जो (कुतर्क से) अपनी प्रज्ञा का हनन करता
है, जो कदाग्रह और कलह में रक्त होता है,
वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१३—जो स्थिरासन नहीं होता—बिना
प्रयोजन इधर-उधर चक्कर लगाता है, जो हाथ,
पैर आदि अवयवों को हिलाता रहता है, जो
जहाँ कहीं बैठ जाता है—इस प्रकार आसन
(या बैठने) के विषय में जो असावधान होता
है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१४—जो सचित्त रज से भरे हुए परे
का प्रयोजन किए बिना ही सो जाता है, सोने
के स्थान का प्रतिलिखन नहीं करता—इस
प्रकार बिछोने (या सोने) के विषय में जो
असावधान होता है, वह पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१५—जो दूध, दही आदि विकृतियों का
बार-बार आहार करता है और तपस्या में रत
नहीं रहता, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१६—जो सूर्य के उदय से लेकर अस्त
होने तक बार-बार खाता रहता है । 'ऐसा
नहीं करना चाहिए'—इस प्रकार सीख देने
वाले को कहता है कि तुम उपदेश देने में
कुशल हो, करने में नहीं, वह पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१. पमुहरी (इ. वृ०. स) ।

२. अत्तपण्णहा (वृ०) ; अत्तपण्णहा (वृ० पा०) ।

३. अत्यंसमर्थमि (वृ० पा०) ।

सतरसमं अज्झयणं : सप्तदश अध्ययन

पावसमणिज्जं : पाप-श्रमणीयम्

मूल

१—जे 'के इमे' पव्वइए नियण्ठे
धम्मं मुणिता विणओववन्ते ।
सुदुब्बहं लहिउं बांहिलाभं
विहरेज्ज पच्छा य जहामुहं तु ॥

संस्कृत छाया

यः कश्चिदयं प्रव्रजितो निर्ग्रन्थः
धर्मं श्रुत्वा विनयोपपन्नः ।
सुदुर्लभं लब्ध्वा बोधि-लाभं
विहरेन् पदवाञ्छ यथामुखं तु ॥

हिन्दी अनुबाद

१—जो कोई निर्ग्रन्थ धर्म को सुन,
तुल्यभूतम बोधि-लाभ को प्राप्त कर विनय से
युक्त हो प्रव्रजित होता है किन्तु प्रव्रजित होने
के परवान स्वच्छ-व-विहारी हो जाना है,

२—सेज्जा दढा पाउण्णं मे अत्थि
उप्पज्जई भोत्तुं तहेव पाउं ।
जाणामि जं वट्ठइ आउमु ! ति
कि नाम काहामि सुएण भन्ते ! ॥

शय्या दढ़ा प्रावरणं मेऽस्ति,
उत्पद्यते भोक्तुं तथैव पातुम् ।
जानामि यद्वनेत आयुष्मन् ! इति
कि नाम करिष्यामि श्रुतने भवन्त ? ॥

२—(यग के द्वारा अध्ययन की प्रेरणा
प्राप्त होने पर वह कहता है—) मुझे रहने को
अच्छा उपाय मिल रहा है, कपड़ा भी मेरे
पास है, खान-पीने को भी मिल जाता है ।
आयुष्मन् ! जो हो रहा है, उमे में जान गेता हूँ ।
भन्ते ! फिर मैं श्रुत का अध्ययन कर के क्या
करूँगा ?

३—जे के इमे पव्वइए
निट्ठासीले पगामसो ।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ^१
पावसमणि ति वुच्चई ॥

यः कश्चिदयं प्रव्रजितो
निट्ठाशीलः प्रकामशः ।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं स्वपिति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

३—जो प्रव्रजित होकर बार-बार नींद
लेता है, खा-पी कर आराम में लेट जाता है,
वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

४—आयरियउवज्झाएहि
सुयं विणयं च गाहिण ।
ते चेव खिसई बाले
पावसमणि ति वुच्चई ॥

आचार्योपाध्यायः
श्रुतं विनयं च ग्राहितः ।
तस्मै च खसिति बालः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

४—जिन आचार्य और उपाध्याय ने
श्रुत और विनय सिलाया उन्हीं की निन्दा
करता है, वह विवेक-विकल भिक्षु पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१. केह उ (४०, ४०, ४०) ; के इमे (४० पा) ।

२. सुवु (४०) ।

३. वसइ (४० पा०) ।

आस्तुक्

इस अध्ययन में पाप-भ्रमण के स्वरूप का निरूपण है, इसलिए इसे 'पावसमणिजं—'पाप-भ्रमणीय' कहा गया है।

भ्रमण दो प्रकार के होते हैं—श्रेष्ठ-भ्रमण और पाप-भ्रमण। जो ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप और वीर्य—इन पाँच आधारों का पालन करता है वह श्रेष्ठ-भ्रमण है। उसके लक्षण पन्द्रहवें अध्ययन में बताए गए हैं। जो ज्ञान आदि आधारों का सम्यक् पालन नहीं करता, इस अध्ययन में वर्णित अकरणीय कार्यों का आचरण करता है वह पाप-भ्रमण होता है।¹

जो प्रव्रज्या ग्रहण कर सुख-शील हो जाता है—'सोहृत्ताय णिकल्लंते सियालत्ताय विहरति'—सिद्ध की भाँति निष्क्रान्त होने पर भी गोदड़ की तरह प्रव्रज्या का पालन करता है, वह पाप-भ्रमण होता है। (श्लो० १)

जो स्वा-पीकर सो जाता है वह पाप-भ्रमण होता है। जैन-परम्परा में यह औत्सर्गिक मर्यादा रही है कि सुनिं दिन में न सोए। इसके कई अपवाद भी हैं। जो सुनिं विहार से परिश्रान्त हो गया हो, बुझ हो गया हो, रोगी हो, वह सुनिं आचार्य से आज्ञा लेकर दिन में भी सो सकता है, अन्यथा नहीं।²

आयुर्वेद के ग्रन्थों में सोने का विधान इस प्रकार है—नींद लेने का उपयुक्त काल रात है। यदि रात में पुरी नींद न आए तो प्रातःकाल भोजन से पूर्व सोए। रात में जागने से रुक्षता³ और दिन में लेट कर नींद लेने से स्निग्धता पैदा होती है। परन्तु दिन में चंटे-बंटे नींद लेना रुक्षता पैदा करता है और न स्निग्धता। यक्ष स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

जो सुनिं आचार्य और उपाध्याय का प्रत्यनीक होता है, पापों से नहीं डरता, कलह की उदीरणा करता है, चंचल होता है, रस-गुच्छ होता है, तपःकर्म नहीं करता, गण और गणी को छोड़ देता है, वह पाप-भ्रमण है।

इस अध्ययन में—

श्लोक १-४ में ज्ञान-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

श्लोक ५ में दर्शन-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

श्लोक ६-१४ में चरित्र-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

श्लोक १५-१६ में तपः-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

श्लोक १७-१८ में वीर्य-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

१. उत्तराध्ययन निबुक्ति, भाषा ३६० : जे भावा अकरणिजा, इहमरुक्कणमि वनिअ विणेहि।

त भावे सेवंतो नायण्वो पावसमणोति॥

२. ओषनिबुक्ति, भाषा ४१६

: अद्धान परिस्संतो, गिलाण बुद्धो अणुप्पवेणा।
संधारणपरिहो, अत्थरण निवज्जणा कोमं॥

३. अष्टांगहृदय सूत्रस्थान ७।६४, ६५

: यथाकाल मतो निद्रा, रात्रौ सेवेत सात्मतः॥
असात्म्याद् जागरादर्थं, प्रातः स्वप्न्याद्भुक्त्वा॥

रात्रौ जागरणं रुक्षं, स्निग्धं प्रत्यपनं विद्वा।
अरुक्षमनमिस्थिति, त्वासीनप्रवृत्तामिच्छ॥

१७—आययिपरिचार्द्ध

परपासण्डसेवए ।

गाणंगणिए दुब्भूए

पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

१८—सयं गेहं परिचज्ज

परसेहंसि वावडे^१ ।

निमित्तेण य ववहरई

पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

१९—सन्नाइपिण्डं जेमैइ

नेच्छई सामुदाणियं ।

गिहिनिसेज्जं च वाहेइ

पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

२०—गयारिसे पंचकुसीलसंबुडे

रुबंधरे मुणिपवराण हेडिमे ।

अयंसि लाए विसमेव गरहिए

न से इहं नेव परत्थ लाए ॥

२१—जे वज्जए एए सया उ दोसे

से मुच्चए होइ मुणीण मज्जे ।

अयंसि लाए अमयं व पूइए

आराहए 'दुहओ लोगमिण'^२ ॥

—ति वेमि ॥

आचार्य-परित्यागो

पर-पाषण्ड-सेवकः ।

गाणङ्गणिको दुर्भूतः

पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

स्वकं गेहं परित्यज्य

पर-गेहे व्याप्रियते ।

निमित्तेन च व्यवहरति

पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

स्व-ज्ञाति-पिण्डं जेमति

नेच्छति सामुदानिकम् ।

गृहि-निषदां च वाहयति

पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

एतादृशः पंच-कुशीलाऽसंबुतः

रूपधरो मुनि-प्रवराणामवस्तनः ।

अस्मिँल्लोके विषमिव गहितः

न स इह नैव परत्र लोके ॥

यो वर्जयत्येतान् सदा तु बोधान्

स सुवतो भवति मुनीनां मध्ये ।

अस्मिँल्लोकेऽमृतमिव पूजितः

आराधयति लोकमिमं तथा परम् ॥

—इति ब्रवीमि

१७—जो आचार्य को छोड़ दूसरे धर्म-

सम्प्रदायों में चला जाता है, जो छह मास की

अवधि में एक गण से दूसरे गण में संक्रमण

करता है, जिसका आचरण निन्दनीय है, वह

पाप-श्रमण कहलाता है ।

१८—जो अपना घर छोड़ कर (प्रयत्नित

होकर) दूसरों के घर में व्यापृत होता है—

उनका कार्य करता है, जो शुभाशुभ बता कर

धन का अंजन करता है, वह पाप-श्रमण

कहलाता है ।

१९—जो अपने ज्ञाति-जनो के घरों में

भाजन करता है, किन्तु सामुदायिक भिक्षा

कमाना नहीं चाहता, जो ग्रहस्थ की धोया पर

बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

२०—जो पूर्वोक्त आचरण करने वाला,

पाँच प्रकार के कुशील साधुओं की तरह

असंबुत, मुनि के वेश को धारण करने वाला

और मुनि-प्रवरों की अपेक्षा तुच्छ संयम वाला

होता है, वह इस लोक में विष की तरह

निधिन होता है । वह न इस लोक में कुछ

होता है और न परलोक में ।

२१—जो इन दोषों का सदा वर्जन

करता है वह मुनियों में गुप्त होता है । वह

इस लोक में अमृत की तरह पूजित होता है

तथा इस लोक और परलोक—दोनों लोकों

की आराधना करता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. वावरे (वृ०, छ०) ; ववहरे (वृ० पा०) ।

२. लोगमिणं तद्धारं (उ, स, छ०, ऋ०) ।

अद्वैतारसमं अङ्गव्ययणं :
संजइउजं

अष्टावस्तु अध्ययन :
संजयीयम्

आस्तुष्ट

यह अध्ययन राजा संजय के वर्णन से समुत्पन्न है, इसलिए इसका नाम 'संजयवृत्त'—'संजयीय' है।^१

कौपित्य नगर में संजय नाम का एक राजा राज्य करता था। एक बार वह शिकार के लिए निकला। उसके साथ चारों प्रकार की सेनाएँ थी। वह कैसर उद्यान में गया। वहाँ उसने संजय मृगों को मारा। इधर-उधर देखते उसकी दृष्टि गर्दभाली मुनि पर जा टिकी। वे ध्यानस्थ थे। उन्हें देख वह संभ्रान्त हो गया। उसने सोचा—मैंने यहाँ के मृगों को मार मुनि की आशानना की है। वह थोड़े से नीचे उतरा। मुनि के पास जा, वन्दना कर बोला—“भगवन्! मुझे क्षमा करें।” मुनि ध्यानलीन थे। वे कुछ नहीं बोले। राजा का भय बढ़ा। उसने सोचा—यदि मुनि क्रुद्ध हो गए तो वे अपने तेज से समूचे विश्व को नष्ट कर देंगे। उसने पुनः कहा—“भंते! मैं राजा संजय हूँ। मौन तोड़ कर मुझे कुछ कहें।” (श्लोक १-१०)

मुनि ने ध्यान पारा और अभयदान देते हुए बोले—“राजन्! तुम्हें अभय है। तू भी अभयदाता बन। इस अनित्य जीव-लोक में तू क्यों हिंसा में आसक्त हो रहा है।” (श्लोक ११) मुनि ने जीवन की अस्थिरता, ज्ञाति-सम्बन्धी को असाक्षात्, कर्म-परिणामों की निश्चितता का उपदेश दिया। राजा ने सुना। वीरग्य उभर आया। वह राज्य को त्याग कर मुनि गर्दभाली के पास श्रमण बन गया।

एक दिन एक क्षत्रीय मुनि संजय। मुनि के पास आया और पूछा—“तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारा गोत्र का? है? किसलिए तुम माहन्—मुनि बने हो? तुम किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो और किस प्रकार विनीत बहलाने हो।” (श्लोक २१)

मुनि संजय ने उत्तर दिया—“नाम से मैं संजय हूँ। गोत्र मेरा गौतम है। गर्दभाली मेरे आचार्य हैं। मुक्ति के लिए मैं माहन् बना हूँ। आचार्य के उपदेशानुसार मैं सेवा करता हूँ इसलिए मैं विनीत हूँ।” (श्लोक २२, २३)

क्षत्रीय मुनि ने उनके उत्तर से आकृष्ट हो बिना पूछे ही कई तथ्य प्रकट किए और मुनि संजय को जैन प्रवचन में विशेष दृष्ट कर देने के लिए महापुरुषों के अनेक उदाहरण दिए। (श्लोक २३-३३)

इस अध्ययन में भरत, सगर, मध्व, सनत्कुमार, शक्ति, अर, कुन्धु, महापद्म, हरिवेण, जय आदि चक्रवर्ती राजाओं के नाम हैं।

दशार्णभद्र, नमि, करकन्धु, द्विमुख, नगति, उद्वायण, काशीराज, विजय, महाबल आदि नरेश्वरों के नाम हैं।

दशार्ण, कालिग, पाषाण, विदेह, गन्धार, सौवीर, काशी आदि देशों के नाम हैं।

यह अध्ययन प्रागैतिहासिक व ऐतिहासिक जैन-शासन की परम्परा का संकलन-सूत्र जैसा है। इसमें महावीर कालीन क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद का उल्लेख हुआ है। (श्लोक २३)

१. उत्तराध्ययन निर्मुक्ति, भाषा ३६४ : संजयनामं गोयं, वेयंतो भावसंजयो होइ।

ततो समुद्रियमणं, अक्खणं संजयवृत्तं॥

अष्टारसमं अज्ज्ञयणं : अष्टावक्ष अध्वबन संजइज्जं : संजयीयम्

मूल
१—कम्पिल्ले नयरे राया
उदिण्णबलवाहणे ।
नामेणं संजए नाम
मिगव्वं उवणिस्माए ॥

संस्कृत छाया
काम्पिल्ये नगरे राजा
उदार्ण-बल-बाहनः ।
नाम्ना संजयो नाम
मृगव्याघ्रपनिगतः ॥

हिन्दी अनुबाव
१—कांपिल्य नगर में सेना और बाहनों
से सम्पन्न संजय नाम का राजा था । एक दिन
वह शिकार करने के लिए गया ।

२—हयाणीए गयाणीए
रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया
सव्वओ परिवारिए^१ ॥

हयानीकेन गजानीकेन
रथानीकेन तथैव च ।
पावतानीकेन महता
सर्वतः परिवारितः ॥

२—वह घोड़े, हाथी और रथ पर आरुढ़
तथा पैदल चलने वाले महान् सैनिकों द्वारा
चारों ओर से घिरा हुआ था ।

३—मिए छुभित्ता हयगओ
कम्पिल्लुज्जाणकेसरे ।
भीए सन्ते मिए तत्थ
वहेइ रसमुच्छिए ॥

मृगान् शिष्यत्वा हय-गतः
काम्पिल्योद्यानकेसरे ।
भीतान् धान्तान् मृगान् तत्र
व्ययते रस-मूच्छितः ॥

३—वह घोड़े पर चढ़ा हुआ था । सैनिक
हिरणों को कांपिल्य नगर के केशर नामक
उद्यान की ओर ढकेल रहे थे । वह रस-मूच्छित
होकर उन डरे हुए और बलिन बने हुए हिरणों
को वहाँ व्यथित कर रहा था—मार रहा था ।

४—अह केसरम्मि उज्जाणे
अणगारे तवोध्दणे ।
सज्झायज्झाणजुत्ते
धम्मज्झाणं भियायई ॥

अथ केसर उद्याने
अनगरस्तपोवनः ।
स्वाध्याय-ध्यान-संपुक्तः
धर्म्य-ध्यानं ध्यायति ॥

४—उस केशर नामक उद्यान में
स्वाध्याय और ध्यान में लीन रहने वाले एक
तपोवन अनगर धर्म्य-ध्यान में एकाग्र हो
रहे थे ।

५—अप्फोवमण्डवम्मि

भायई भवियासवे* ।
तस्साए मिए पासं
बहेई से नराहिवे ॥

६—अह आसगओ राया
खिप्पमागम्म सो तहि ॥
हए मिए उ पासित्ता
अणगारं तत्थ पासई ॥

७—अह राया तत्थ संभन्तो
अणगारो मणाऽऽहुओ ।
मए उ मन्दपुण्णेणं
रसगिद्धेण घन्तुणा* ॥

८—आसं विसज्जइत्ताणं
अणगारस्स सो निवो ।
विणएण वन्दए पाए
भगवं ! एत्थ मे खमे ॥

९—अह मोणेण सो भगवं
अणगारे भ्राणमस्सिए ।
रायाणं न पडिमन्तेइ
तओ राया भयद्दुओ ॥

१०—संजओ अहमस्सीति
भगवं ! वाहराहि मे ।
कुद्धे तेएण अणगारे
डहेज्ज नरकोडिओ ॥

*अप्फोव' मण्डवे

ध्यायति अर्पितास्त्रवः ।
तस्यागस्तान् मृगान् पाश्वं
विध्यति स नराधिपः ॥

अथाश्वगतो राजा
क्षिप्रमागम्य स तस्मिन् ।
हतान् मृगान् तु दृष्ट्वा
अनगारं तत्र पश्यति ॥

अथ राजा तत्र सम्भ्रान्तः
अनगारो मनागाहतः ।
मया तु मन्द-पुण्येन
रस-गुद्धेन घातकेन ॥

अश्वं विसृज्य
अनगारस्य स नृपः ।
विनयेन वन्दते पादो
भगवन् ! अत्र मे क्षमस्व ॥

अथ मौनेन स भगवान्
अनगारो ध्यानमाश्रितः ।
राजानं न प्रतिमन्त्रयते
ततो राजा भय-द्दुःखः ॥

संजयोऽहमस्मीति
भगवन् ! व्याहर मासु ।
क्रुद्धस्तेजसाऽनगारः
बहेन् नर-कोटीः ॥

५—कर्म-बन्धन के हेतुओं को निर्मूल
करने वाले अनगार लता-मण्डप में ध्यान कर
रहे थे । राजा ने उनके समीप आए हुए
हिरणों पर बाणों के प्रहार किए ।

६—राजा अश्व पर आरुढ़ था । वह
तुरन्त वहाँ आया । उसने पहले मरे हुए हिरणों
को ही देखा, फिर उसने उसी स्थान में अनगार
को देखा ।

७—राजा अनगार को देख कर भय-
भ्रान्त हो गया । उसने सोचा—मैं भाग्यहीन,
रस-लोलुप और जीवों को मारने वाला हूँ ।
मैंने बुद्ध प्रयोजन के लिए, मुनि को आह्वान
किया है ।

८—वह राजा घोड़े को छोड़ कर विनय
पूर्वक अनगार को वन्दना करता और कहता
है - “भगवन् ! इस कार्य के लिए मुझे क्षमा
कर ।”

९—वे अनगार भगवान् सीत पूर्वक ध्यान
में लीन थे । उन्होंने राजा को प्रत्युत्तर नहीं
दिया । उससे राजा और अधिक भयाकुल हो
गया ।

१०—राजा बोला—“हे भगवन् ! मैं संजय
हूँ । आप मुझसे बातचीत कीजिए । अनगार
क्रुषित होकर अपने तेज से करोड़ों मनुष्यों को
जला डालता है ।”

१. खविवासवे (ख) ।

२. घन्तुणा (ड) ; घम्मुणा (ञ०)

११—अभयो^१ पत्थिवा ! तुभं
अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि
किं हिसाए पसज्जसि ? ॥

अभयं पाथिव ! य
अभय-वाता भव च ।
अनित्ये जीव-लोके
किं हिसायां प्रसजसि ? ॥

११—अनगर बोले—“पाथिव ! तुम अभय
है और तू भी अभयदाता बन । इस अनित्य
जीव-लोक में तू क्यों हिसा में आसक्त हो
रहा है ?

१२—जया सव्वं परिञ्ज
गन्तव्वमवसस्स ते ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि
किं रज्जमि^२ पसज्जसि ? ॥

यदा सर्वं परित्यज्य
गन्तव्यमवशस्य ते ।
अनित्ये जीव-लोके
किं राज्ये प्रसजसि ? ॥

१२—“जबकि तू परार्थीन है और इसलिए
सब कुछ छोड़ कर तुझे चले जाना है तब इस
अनित्य जीव-लोक में तू क्यों राज्य में आसक्त
हो रहा है ?

१३—जीवियं चैव रूपं च
विज्जुसंपायचंचलं ।
जत्थ तं मुञ्जसी रायं
पेच्चत्थं नावबुञ्जसे ॥

जीवितं चैव रूपं च
विदुःसम्पात-चंचलम् ।
यत्र त्वं मुह्यसि राजन् !
प्रेत्याथं नावबुध्यसे ॥

१३—“राजन् ! तू जहाँ मोह कर रहा है
वह जीवन और सौन्दर्य विजली की चमक के
समान चंचल है । तू परलोक के हित को क्यों
नहीं समझ रहा है ?

१४—‘दाराणि य सुया चैव
मिता य तह बन्धवा ।
जीवन्तमणुजीवन्ति
मयं नाणुव्वयन्ति य ॥’^३

दाराश्च सुताश्चैव
मित्राणि च तथा बान्धवाः ।
जीवन्तमनुजीवन्ति
मृतं नानुव्रजन्ति च ॥

१४—“पित्रियों, पुत्र, मित्र और बान्धव
जीवन व्यक्ति के साथ जीते हैं किन्तु वे मृत
के पीछे नहीं जाते ।

१५—नीहरन्ति मयं पुत्ता
पियरं परमदुक्खिया ।
पियरो वि तहा पुत्ते
बन्धू रायं ! तवं चरे ॥

निःसारयन्ति मृतं पुत्राः
पितरं परम-दुःखिताः ।
पितरोऽपि तथा पुत्रान्
बन्धवो राजन् ! तपश्चरेः ॥

१५—“पुत्र अपने मृत पिता को परम
दुःख के साथ दमनान ले जाते हैं और इसी
प्रकार पिता भी अपने पुत्रों और बंधुओं को
दमनान में ले जाना है, इसलिए हे राजन् !
तू तपश्चरण कर ।

१६—तओ तेणज्जिए दव्वे
दारे य परिरक्खिए ।
कीलन्तज्जे नरा रायं !
हट्ठुमं ठंकिया ॥

ततस्तेनाजिते ब्रह्मे
वारेषु च परिरक्षितेषु ।
कीडन्त्यन्धे नरा राजन् !
हृष्ट-तुष्टाऽलङ्कृताः ॥

१६—“राजन् ! मृत्यु के पश्चात् उस
मृत व्यक्ति के द्वारा अजित धन और सुरक्षित
स्त्रियों को हृष्ट, तुष्ट और अलङ्कृत होकर
दूसरे व्यक्ति भोगते हैं ।

१. अभयं (भ, भा) ।

२. रज्जेण (ज, झ०) ; हिसाए (ह० पा०) ।

३. इदं सुखं चिरन्तनहृत्कृता न व्याख्यातं, प्रत्यन्तरेषु च दृश्यत इत्यस्मादित्यन्तीत्यर्थः (ह०) ।

१७—तेणावि जं कयं कम्मं
सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मुणा तेण संजुत्तो
गच्छई उ परं भवं ॥

तेनापि यत् कृतं कर्म
सुखं वा यवि वा दुःखम् ।
कर्मणा तेन संयुक्तः
गच्छति तु परं भवम् ॥

१७—“उस मरने वाले व्यक्ति ने भी जो
कर्म किया—सुखकर या दुःखकर—उसी के
साथ वह परभव में चला जाता है ।”

१८—सोऊण तस्स सो धम्मं
अणगारस्स अत्तिए ।
महया संवेगनिव्वेयं
समावन्नो नराहिवो ॥

श्रुत्वा तस्य स धर्मम्
अनगरस्यान्तिके ।
महान्तं संवेग-निर्व्वेदं
समापन्नो नराधिपः ॥

१८—वह संजय राजा अनगर के समीप
महान् आवर के साथ धर्म सुन कर मोक्ष का
दृष्ट्युक्त और संसार से उद्धिन्न हो गया ।

१९—संजओ चइउं रज्जं
निक्खन्तो जिणसासणे ।
गद्दभालिस्स भगवओ
अणगारस्स अत्तिए ॥

संजयस्त्वक्त्वा राज्यं
निष्क्रान्तो जिन-शासने ।
गर्दभालिभगवतः
अनगरस्यान्तिके ॥

१९—संजय राज्य छोड़ कर भगवान्
गर्दभालि अनगर के समीप जिन-शासन में
रीक्षित हो गया ।

२०—चिच्चा रट्ठं पव्वइए
खत्तिए परिभासइ ।
जहा ते दीसई रूवं
पसन्नं ते तहा मणो ॥

त्यक्त्वा राष्ट्रं प्रयजितः
क्षत्रियः परिभाषते ।
यथा ते दृश्यते रूपं
प्रसन्नं ते तथा मनः ॥

२०—जिम्मे राष्ट्र को छोड़ कर प्रयज्या
क्षी, उस क्षत्रिय ने (अप्रतिबद्ध बिहारी राजवि
मजय ने) कहा—“तुम्हारे आकृति जैसे प्रसन्न
दीख रही है वैसे ही तुम्हारा मन भी प्रसन्न
दीख रहा है ।

२१—किनामे ? किंमोते ?
कस्सट्ठाए व माहणे ? ।
कहं पडियरसी बुद्धे ?
कहं विणीए ति वुच्चसि^१ ? ॥

किं नामा ? किं गोत्रः ?
कस्मिं अर्याय वा माहन् ? ।
कथं प्रतिचरसि बुढान् ?
कथं विनीत इत्थुज्यसे ? ॥

२१—“तुम्हारा नाम क्या है ? गोत्र क्या
है ? किसलिए तुम माहन्—मुनि बने हो ? तुम
किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो ?
और किस प्रकार विनीत कहलाते हो ?”

२२—संजओ नाम नामेणं
तहा गोत्तेण गोयमो ।
गद्दभाली ममाचारिया
विज्जाचरणपारगा ॥

संयतो नाम नाम्ना
तथा गोत्रेण गोत्रमा ।
गर्दभाल्यो ममाचार्याः
विज्जा-चरण-पारगाः ॥

२२—“नाम से मैं संजय हूँ । गोत्र से मैं
गोत्रम हूँ । गर्दभालि मेरे आचार्य हैं—विद्या
और चारित्र के पारगामी । मुक्ति के लिए मैं
माहन् बना हूँ । आचार्य के उपदेशानुसार मैं
सेवा करता हूँ इसलिए मैं विनीत कहलाता हूँ ।”

२३—किरियं अकिरियं विणयं
अन्नाणं च महामुणी ! ।
एएहि चउहि ठाणंहि
मेयन्ने^१ कि पभासई ? ॥

क्रियाऽक्रिया विनयः
अज्ञानं च महामुने ! ।
एतद्वस्तुभिः स्थानं
मेयज्ञाः कि प्रभावन्ते ॥

२३—वे क्षत्रिय श्रमण बोले—“महामुने !
क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञान—इन चार
स्थानों के द्वारा एकान्तवादी तत्त्ववेत्ता क्या
तत्त्व बतलाते हैं—

२४—इइ पाउकरे बुद्धे
नायए परिनिब्बुडे ।
विज्जाचरणसंपन्ने
सत्त्वे सच्चपरक्कमे ॥

इति प्रादुरकरोऽ बुद्धः
ज्ञातकः परिनिर्बुतः ।
विद्या-चरण-संपन्नः
सत्यः सत्य-पराक्रमः ॥

२४—“उसे तत्त्ववेत्ता ज्ञात-बंधीय,
उपशान्त, विद्या और चारित्र्य से सम्पन्न, सत्य-
वाक् और सत्य-पराक्रम वाले भगवान् महावीर
ने प्रकट किया है ।

२५—पडन्ति नरए घोरे
जे नरा पावकारिणो ।
दिव्वं च गइं गच्छन्ति
चरित्ता धम्ममारियं ॥

पतन्ति नरके घोरे
ये नरा पाप-कारिणः ।
दिव्यां च गतिं गच्छन्ति
चरित्वा धर्ममार्यम् ॥

२५—“जो मनुष्य पाप करने वाले हैं वे
घोर नरक में जाते हैं और आर्य-धर्म का
धाचरण कर मनुष्य दिव्य-गति को प्राप्त
होते हैं ।

२६—‘मायाबुद्ध्यमेयं तु
मुसाभासा निरत्थिया ।
संजममाणो वि अहं
वसामि इरियामि य’ ॥^२

मायोक्तमेतत् तु
मुषाभासा निरर्थिका ।
संयच्छन्त्यहम्
वसामि ईरे च ॥

२६—“इन एकान्त-दृष्टि वाले क्रियावादी
आदि वादियों ने जो कहा है, वह माया-पूर्ण
है इसलिए वह मिथ्या-वचन है, निरर्थक है ।
मैं उन माया-पूर्ण एकान्तवादों से बच कर
रहता हूँ और चलता हूँ ।

२७—सव्वे ते विइया मज्झं
मिच्छादिद्वी अणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए
सम्मं जाणामि अप्पणं ॥

सर्वे ते विविता मम
मिथ्यादृष्टयोऽनार्याः ।
विद्यमाने परे लोके
सम्यग् जानाम्यात्मानम् ॥

२७—“मैंने उन सबको जान लिया है जो
मिथ्या-दृष्टि और अनार्या हैं । मैं परलोक के
अस्तित्व में आत्मा को भली-भाँति जानता हूँ ।

२८—अहमासी महापाणे
जुइमं वरिससओवमे ।
जा सा पाली महापाली
दिब्बा वरिससओवमा ॥

अहमासं महाप्राणे
व्युत्तिमान् वर्षशतोपमः ।
या सा पाली महा-पाली
दिव्या वर्षशतोपमा ॥

२८—“मैं महाप्राण नामक विमान में
काल्पितमान देव था । मैंने वहाँ पूर्ण आयु का
भोग किया । जैसे यहाँ सौ वर्ष की आयु पूर्ण
होती है, वैसे ही देवलोक में पल्लोपम और
सागरोपम की आयु पूर्ण मानी जाती है ।

१. मिथ्या (वृ०) ।

२. इदमपि सूत्रं प्राचो न दृश्यते (वृ०) ।

२९—से चुए' बम्भलोगाओ
माणुसं भवमागए ।
अण्णो य परेसि च
आउं जाणे जहा तथा ॥

३०—नाणारुहं च छन्दं च
परिवज्जेज्ज संजए ॥
अण्णो जे य सव्वया
इइ विज्जामणुसंचरे ॥

३१—पडिक्कामि पसिणाणं
परमत्तेहि वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं
इइ विज्जा तवं चरे ॥

३२—जं च मे पुच्छसी काले
सम्मं सुद्धेण^१ चेतसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे
तं नाणं जिणसासणे ॥

३३—किरियं च रोयए धीरे
अकिरियं परिवज्जेण ।
दिट्ठीए दिट्ठिसंपन्ने
धम्मं चर सुदुच्चरं ॥

३४—एयं पुण्णपयं सोबा
अत्यधम्मोवसोहियं ।
भरहो वि भारहं वासं
चेच्चा कामाइ पव्वए ॥

अथ व्युतो ब्रह्म-लोकान्
मानुष्यं भवमागतः ।
शास्त्रमनुच परेषां च
आयुर्जनानि यथा तथा ॥

नानार्थि च छन्दश्च
परिवर्जयेत् संयतः ।
अनर्था ये च सर्वत्र
इति विद्या मनुसंचरे ॥

प्रतिक्रमामि प्रश्नेभ्यः
पर-मन्त्रोभ्यो वा पुनः ।
अहो उत्पितोऽहोरात्रम्
इति विद्वान् तपस्वचरे ॥

यश्च मां पुच्छति काले
सम्यक् सुद्धे न चेतसा ।
तत् प्रादुरकरोद् बुद्धः
तज्ज्ञानं जिन-शासने ॥

क्रियां च रोचयेद् धीरः
अक्रियां परिवर्जयेत् ।
दृष्ट्या दृष्टि-संपन्नः
धर्मं चर सुदुश्चरम् ॥

एतन् पुण्य-पवं भुत्वा
अर्थ-धर्मोपशोभितम् ।
भरतोऽपि भारतं वर्षं
त्यक्त्वा कामान् प्राव्रजन् ॥

२९—“वह मैं ब्रह्मलोक से व्युत होकर
मनुष्य-लोक में आया हूँ । मैं जिस प्रकार
अपनी आयु को जानता हूँ उसी प्रकार दूसरों
की आयु को भी जानता हूँ ।

३०—“संयमी कां नाना प्रकार की शक्ति,
अभिप्राय और जो सब प्रकार के अनर्थ हैं
उत्तका वर्जन करना चाहिए—इस विद्या के
पथ पर बुद्ध द्वारा संचरण हो” — (साध्वि मुनि
ने राजर्षि से कहा)—

३१—“मैं (गुणागुभ सूचक) प्रश्नों और
सहस्य-कार्य-सम्बन्धी मंत्रणाओं से दूर रहता हूँ ।
अहो ! मैं दिन-रात धर्माचरण के लिए
सावधान रहता हूँ—यह समझ कर तुम तप
का आचरण करो ।

३२—“जो तुम मुझे सम्यक् सुद्ध-चित्त से
आयु के विषय में पूछते हो, उसे सर्वज्ञ भगवान्
ने प्रकट किया है, वह ज्ञान जिन-शासन में
विद्यमान है ।

३३—“धीर-पुरुष को क्रियावाद पर शक्ति
करनी चाहिए और अक्रियावाद को त्याग
देना चाहिए । सम्यक् दृष्टि के द्वारा दृष्टि-
सम्पन्न होकर तुम सुदुश्चर धर्म का आचरण
करो ।

३४—“अर्थ और धर्म से उपलोभित इस
पवित्र उपवेश को सुनकर भरत चक्रवर्ती ने
भारतवर्ष और काम-भोगों को छोड़कर
प्रव्रज्य ली ।

१. बुबा (अ) ।

२. बुद्धेण (५०) ।

संजड्जं (संजयीय)

२२६

अध्ययन १८ : श्लोक ३५-३६

३५—सगरो वि सागरन्तं
भरह्वासं नराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हित्वा
दयाए परिनिवृत्ते ॥

सगरो पि सागरान्तं
भरतवर्षं नराधिपः ।
ऐश्वर्यं केवलं हित्वा
दयया परिनिवृत्तः ॥

३५—“सगर चक्रवर्ती सागर पर्यन्त
भारतवर्ष और पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़, संयम की
आराधना कर मुक्त हुए ।

३६—चड्ता भारहं वासं
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
पव्वज्जमभुवगओ
मघवं नाम महाजसो ॥

त्यक्त्वा भारतं वर्षं
चक्रवर्ती महद्विकः ।
प्रव्रज्यामभ्युपगतः
मघवा नाम महायशः ॥

३६—“महद्विक और महान् यशस्वी
मगवा चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर
प्रव्रज्या ली ।

३७—सणकुमारो मणुस्सिन्दा
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
पुनं रज्जे ठवित्ताणं^१
सो वि राया तवं चरे ॥

सनत्कुमारो मनुष्येन्द्रः
चक्रवर्ती महद्विकः ।
पुनः राज्ये स्थापयित्वा
सोऽपि राजा तपोऽचरन् ॥

३७—“महद्विक राजा सनत्कुमार
चक्रवर्ती ने पुनः को राज्य पर स्थापित कर
तपश्चरण किया ।

३८—चड्ता भारहं वासं
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
सन्ती सन्तिकरे लोए
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

त्यक्त्वा भारतं वर्षं
चक्रवर्ती महद्विकः ।
शान्तिः शान्तिकरो लोके
प्राप्नो गतिमनुत्तरम् ॥

३८—“महद्विक और लोक में शान्ति
करने वाले शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष
को छोड़कर अनुत्तर गति प्राप्त की ।

३९—इक्खागरायवसओ
कुन्धू नाम नराहिवो ।
विक्खायकित्ती धिइमं^२
‘मोक्खं गओ अणुत्तरं’^३ ॥

इक्ष्वाकु-राज-मुषभः
कुन्धुर्नामनराधिपः ।
विक्र्याप्त-कीर्तिर्धृतिमान्
मोक्षं गतोऽनुत्तरम् ॥

३९—“इक्ष्वाकु कुल के राजाओं में श्रेष्ठ,
विक्र्याप्त कीर्ति वाले, धृतिमान् भगवान् कुन्धु
नरेश्वर ने अनुत्तर मोक्ष प्राप्त किया ।

१. परिनिवृत्ते (व, ऋ०) ।

२. ठवेऊण (व, ऋ०) ।

३. भाग्यं (व, ऋ०) ।

४. पत्तो गइमणुत्तरं (व, ऋ०) ।

४०—सागरन्तं जहिताणं^१
'भरहं वासं नरीसरो'^२ ।
अरो य अरयं^३ पत्तो
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

सागरान्तं हित्वा
भरत-वर्षं नरैश्वरः ।
अरश्चकारजः प्राप्नोः
प्राप्नो गतिमनुत्तराम् ॥

४०—“सागर पर्यन्त भारतवर्ष को छोड़-
कर, कर्म-रज से मुक्त हो कर नरेश्वर ने
अन्तर गति प्राप्त की ।

४१—चइत्ता भारहं वासं
चकवट्टी नराहिओ^४ ।
चइत्ता उत्तमे भोए
महापउमे तवं चरे ॥

त्यक्त्वा भारतं वर्षं
चक्रवर्ती नराधिपः ।
त्यक्त्वा उत्तमान् भोगान्
महापद्मस्तपोऽचरन् ॥

४१—“विपुल राज्य, मेना और वाहन
तथा उत्तम भोगों को छोड़कर महापद्म चक्रवर्ती
ने तप का आचरण किया ।

४२—एगच्छत्तं पसाहिता
महि माणनिमूरणो ।
हरिसेणो मणुस्सिन्दो
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

एक-छद्मत्रां प्रसाध्य
महीं मान-निषूदनः ।
हरिवेणो मनुष्येन्द्रः
प्राप्नो गतिमनुत्तराम् ॥

४२—“ (शत्रु-राजाओं का) मान-मर्दन
करने वाले हरिवेण चक्रवर्ती ने गृध्वा पर एक-
छत्र धामन किया, फिर अन्तर गति प्राप्त की ।

४३—अन्निओ रायसहस्सेहि
सुपरिच्चाई दमं चरे ।
जयनामो जिणक्खायं
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

अन्विता राज-सहस्रौः
सुपरित्यागो दमचरन् ।
जयनामा जिनारुपातं
प्राप्नो गतिमनुत्तराम् ॥

४३—“जय चक्रवर्ती ने हजार राजाओं
के साथ राज्य का परित्याग कर जिन-भाषित
दम का आचरण किया और अन्तर गति
प्राप्त की ।

४४—दसणरज्जं मुद्यं
चइत्ताणं मुणी चरे ।
दसणभट्ठो निक्खत्तो
सक्खं सक्केण चोइओ ॥

दशार्ण-राज्यं मुदितं
त्यक्त्वा मुनिरचरन् ।
दशार्णभट्टो निष्क्रान्तः
साक्षाच्छक्रेण बोधितः ॥

४४—“साक्षात् शक्र के द्वारा प्रेरित
दशार्णभट्ट ने दशार्ण देश का प्रमुदित राज्य
छोड़ कर प्रव्रज्या ली और मुनि-धर्म का
आचरण किया ।

१. चइत्ताणं (उ, ऋ०; स) ।

२. भरहं नरवरीसरो (उ, ऋ०) ।

३. अरयं (ऋ० पा०) ।

४. महिहिडओ (उ, ऋ०) ।

५. तओ (ऋ) ।

| नमी नमेइ अप्पाणं
सक्खं सक्केण चोइओ ।
वड्डण गेहं वड्डेही
सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥ १'

(नमि-नमयति आत्मानं
साक्षाच्छरणं चोदितः ।
त्यक्त्वा गेहं वैदेही
श्रामण्ये पर्युपस्थितः ॥)

“(विदेह के अधिपति नमिराज ने, जो
यह को त्याग कर श्रामण्य में उपस्थित हुए
और वैदेन्द्र ने जिन्हे साक्षात् प्रेरित किया,
आत्मा को नमा लिया—वे अत्यन्त नम्र बन
गए ।)

४५—करकण्डू कलिंगेषु
पंचालसु य दुम्मुहो^१ ।
नमी राया विदेहेषु
गन्धारेसु य नगई ॥

करकण्डुः कलिङ्गेषु
पञ्चालेषु च द्विमुखः ।
नमी राजा विदेहेषु
गान्धारेषु च नगतिः ॥

४५—“कलिंग में करकण्डु, पंचाल में
द्विमुख, विदेह में नमि राजा और गान्धार में
नगति—

४६—एए^२ नरिन्दबसभा
निक्खन्ता जिनशासणे ।
पुत्ते रज्जे ठवित्ताणं^३
सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥

एते नरेन्द्रः-बुधभाः
निष्कान्ता जिन-शासने ।
पुत्रान् राज्ये स्थापयित्वा
श्रामण्ये पर्युपस्थिताः ॥

४६—“राजाओं में बुधभ के समान ये
अपने-अपने पुत्रों को राज्य पर स्थापित कर
जिन-शासन में प्रव्रजित हुए और श्रमण-धर्म
में सदा यत्न-शील रहे ।

४७—सोवीररायवसभो
‘वेच्चा रज्ज’^४ मुणी चरे ।
उद्दायणो^५ पव्वइओ
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

सोवीर-राज-बुधभः
व्यक्त्वा राज्यं मुनिराचरत् ।
उद्दायणः प्रव्रजितः
प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥

४७—“सोवीर राजाओं में बुधभ के
समान उद्दायण राजा ने राज्य को छोड़ कर
प्रव्रज्या ली, मुनि-धर्म का आचरण किया और
अन्तर्गत गति प्राप्त की ।

४८—तद्देव कासीराया
सेओसच्चपरकमे ।
कामभोगे परित्यज्ज
पह्णे कम्ममहावणं ॥

तथैव काशी-राजः
श्रेयः-सत्य-पराक्रमः ।
काम-भोगान् परित्यज्य
प्राहन् कर्म-महावनम् ॥

४८—“इसी प्रकार श्रेय और सत्य के
लिए पराक्रम करने वाले काशीराज ने काम-
भोगों का परित्याग कर कर्म-रूपी महावन का
उन्मूलन किया ।

१. × (जा, इ, स, ल०, ह०) ।

२. दुम्मुहा (ऋ०) ।

३. पुषं (ड, ऋ०) ।

४. ठवेळणं (ड, ऋ०) ।

५. उद्दायण (अ, ड, ऋ०) ।

६. उद्दायणो (ऋ०) ; उद्दायणो (ह०, जा, ड, ऋ०) ।

४९—तदेव विजयो राया
'अण्टाकिति' पञ्चा^१ ।
रज्जं तु गुणसमिद्धं
पयहितु महाजसो ॥

तथैव विजयो राजा
अनष्ट-कीर्तिः प्राव्रजत् ।
राज्यं तु गुण-समृद्धं
प्राप्य महायशः ॥

४९—“इसी प्रकार विमल-कीर्ति, महा-यशस्वी विजय राजा ने गुण से समृद्ध राज्य को छोड़ कर जित-शासन में प्रव्रज्य ली ।

५०—तदेवमं^२ तवं किञ्चा
अवविखलेण ज्ञेयसा ।
महाबलो^३ रायरिसी
अदाय^४ सिरसा सिरं^५ ॥

तथैवोप तपः कृत्वा
अध्याक्षितेन ज्ञेयसा ।
महाबलो राजविः
आवित शिरसा शिरः ॥

५०—“इसी प्रकार अनाकुल-चित्त से उग्र तपस्या कर राजपति महाबल ने अपना शिर देकर शिर (मोक्ष) को प्राप्त किया ।

५१—कहं धीरो अहेतुहि
उन्मत्तो^६ व्व^७ महि चरे ? ।
एण विससमादाय
मूरा दढपरक्कमा ॥

कथं धीरः अहेतुभिः
उन्मत्त इव महीं चरेत् ? ।
एते विशेषमादाय
शूरा दृढ़-पराक्रमाः ॥

५१—“ये भरत आदि दूर और दृढ़ पराक्रम-शाली राजा दूसरे धर्म-शासनो से जित-शासन में विशेषता पाकर यहीं प्रव्रजित हुए तो फिर धीर पुरुष एकान्त-दृष्टिमय अहेतुवादो के द्वारा उन्मत्त की तरह कैसे पृथ्वी पर विचरण करे ?

५२—अचचन्तनियणखमा
सच्चा^८ मे भासिया वई ।
अतरिस्सु तरन्तेने^९ ।
तरिस्सन्ति अणागया^{१०} ॥

अत्यन्त-निवान-क्षमा
सत्या मया भाषिता वाक् ।
अतीर्षुः तरन्त्येके
तरिष्यन्ति अनागताः ॥

५२—“मैंने यह अत्यन्त युक्तियुक्त बात कही है । उसके द्वारा कई जीवों ने संसार-समुद्र का पार पाया है, पा रहे हैं और भविष्य में पाएंगे ।

१. अण्टा = (वृ०) ; आण्टा = (ख०) ।

२. आण्टा किं पञ्चा (वृ० पा०) ।

३. तदेवमं (अ) ।

४. महाबलो (अ, आ, ऋ०) ; महाबलो (उ) ।

५. आदाय (उ, ऋ०, ख, वृ०-पा०) ।

६. सिरि (वृ० पा०, अ, आ, उ, ऋ०) ।

७. उन्मत्तु (उ, ऋ०) ।

८. व (अ) ।

९. एसा (वृ०) ; सच्चा, सच्चा (वृ० पा०) ।

१०. तरन्तेने (वृ० पा०) ।

११. अणागयं (अ) ।

संजड्जं (संजयीय)

५३—कहं धीरे अहेऊहि
अत्ताणं^१ परियावसे ? ।
सव्वसंगविनिम्मुक्के
सिद्धे हवइ नीरणे ॥
—ति वेमि ॥

२३३

कथं धीरः अहेतुभिः
आत्मानं पर्यावासयेत् ? ।
सर्व-सङ्ग-विनिर्मुक्तः
सिद्धो भवति नीरजाः ॥
—इति वेमि ।

अध्ययन १८ : श्लोक ५३

५३—“धीरः पुरुष एकान्त-दृष्टिमय
अहेतुबाधों में अपने आपको कैसे लगाए ? जो
सब संगों से मुक्त होता है वह कर्म-रहित
होकर सिद्ध हो जाता है ।”
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. अत्ताणं (वृ०) ; अत्ताणं (वृ० पा०) ।

सगूणविसङ्गमं अङ्गवर्णनं :
मियापुतिज्जं

सकोनविषयं अध्ययनं :
मृगापुत्रीयम्

आसुख

निर्युक्तिकार के अनुसार इस अध्ययन का नाम 'मिगपुत्तिजं'—'मृगापुत्रीय' है। मृगा रानी के पुत्र से यह अध्ययन समुत्पन्न है, इसलिए इसका नाम 'मृगापुत्रीय' रखा गया है।¹

समवायिग के अनुसार इसका नाम 'नियचारिया'—'मृगचारिका' है।¹ यह नामकरण प्रतिपाद्य के आधार पर है।

सुग्रीव नगर में बलभद्र नाम का राजा राज्य करता था। उसको पटरानी का नाम मृगावती था। उसके एक पुत्र था। माता-पिता ने उसका नाम बलश्री रखा। वह लोक में मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। युवा हुआ। पाणि-ग्रहण सम्पन्न हुआ। एक बार वह अपनी पत्नियों के साथ प्रासाद के भरोसे नें बंटा हुआ कोड़ा कर रहा था। मार्ग में लोग आ-जा रहे थे। स्थान-स्थान पर नृत्य-संगीत की मण्डलियां आयोजित थीं। एकाएक उसकी दृष्टि राजमार्ग पर मन्द गति से चलते हुए निर्यन्त्र पर जा पड़ी। मुनि के तेजोरोम ललाट, चमकते हुए नेत्रों तथा तपस्या से कृश शरीर को वह अनिमेष दृष्टि से देखता रहा। मन आलोलित हुआ। चिन्तन तीव्र हुआ। उसने सोचा—“अन्यत्र भी मैंने ऐसा रूप देखा है।” विचारों में लीन हुआ और उसे ज्ञात-स्मृति ज्ञान उत्पन्न हो गया। पूर्व जन्म की सारी घटनाएं प्रत्यक्ष हो गईं। उसने जान लिया कि पूर्व-भव में वह भ्रमण था। इस अनुभूति से उसका मन तराव से भर गया। वह अपने माता-पिता के पास आया और बोला—“माता! मैं प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ। शरीर अनिर्यन्त्र है, अशुचिभय है, दुःख और क्लेशों का भाजन है। मुझे इसमें कोई रस नहीं है। जिसे आज या कल छोड़ना हों होगा, उसे मैं अभी छोड़ देना चाहता हूँ। संसार में दुःख ही दुःख है। जन्म दुःख है, मरण दुःख है, जरा दुःख है और रोग दुःख है। सारे भोग आपात-भद्र हैं, परिणाम-विरस।”

माता-पिता ने उसे समझाया और भ्रामण्य की कठोरता और उसकी दुश्चरता का दिग्दर्शन कराया। उन्होंने कहा—

“पुत्र! भ्रामण्य दुश्चर है। मुनि को हजारों गुण धारण करने होते हैं। उसे जीवन भर प्राणान्तिपात से विरति करने होती है। इसी प्रकार मृषावाद, अन्वक्षचय और अपरिग्रह का विवर्जन करना होता है। रात्रि-भोजन का सर्वथा त्याग अत्यन्त कठिन है। अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं।

“भिक्षाचर्या दुःखप्रद होती है। याचना और अलाम दोनों को सहना दुष्कर है। साधु को कुक्षि-संबल होना पड़ता है।

“तुम सुकोमल हो, भ्रामण्य अत्यन्त कठोर है। तुम उसका पाठन नहीं कर सकोगे। दूसरी बात है कि यह भ्रामण्य यावज्जीवन का होता है। इसमें अवधि नहीं होती। भ्रामण्य वातुका-कवक की तरह निःस्वाद और असि-धारा की तरह दुश्चर है। इसका पाठन करना लोहे के चने खबाने जैसा है।”

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ४०८:

मिगपुत्तिजं, बलसिरिनासा समुत्पन्नं जम्हा।

तम्हा मिगपुत्तिजं, अरुक्कणं होह नाषणं ॥

२—सप्तशत ३६

इस प्रकार मृगापुत्र और उसके माता-पिता के बीच सुन्दर संवाद चलता है। माता-पिता उसे भोग की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं और वह साधना की ओर अग्रसर होना चाहता है। माता-पिता ने भ्रामण्य को जिन उपमाओं से उपमित किया है वे संयम की गुरुता और दुष्करता को प्रभावित करती हैं।

मृगापुत्र का आत्म-विश्वास मूर्ख हो जाता है और वह इन सबको आत्मसात् करने के लिए अपने आपको योग्य बताता है।

अन्त में माता-पिता कहते हैं—“वत्स ! जो कुछ तू कहता है वह सत्य है परन्तु भ्रामण्य का सबसे बड़ा दुःख है—निष्प्रतिकर्मता अर्थात् रोग की चिकित्सा न करना।” (श्लोक ७५)

मृगापुत्र ने कहा—“तात् । अरण्य में बसने वाले मृग आदि पशुओं तथा पक्षियों की कौन चिकित्सा करता है ? कौन उनको औषधि देता है ? कौन उनको सुख-पृथ्वा करता है ? कौन उनको भक्ष-पान देता है ? मैं भी उन्हीं की भाँति रहूँगा—मृग-चारिका से अपना जीवन बिताऊँगा।” (श्लोक ७६-७७)

माता-पिता ने मृगापुत्र की बातें सुनीं। उसकी संयम-ग्रहण की दृढ़ता से पराभूत हो उन्होंने प्रव्रज्या की आज्ञा दी। मृगापुत्र मुनि बन गया। उसने पवित्रता से भ्रामण्य का पाठन किया और अन्त में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गया।

सगूणविसङ्गमं अजज्ञयणं : एकोनविंश अध्यायन
मियापुतिज्जं : मृगापुत्रीयम्

१—सुमीवे मूल नयरे रम्मे
काणगुजाणसोहिए ।
राया बलभट्टो ति
मिया तस्सग्गमाहिंसी ॥

२—तेसि पुत्ते बलसिरी
मियापुत्ते ति विस्सुए ।
अम्मापिऊण दइए
जुवराया दमीसरे ॥

३—नन्दणे सो उ पासाए
कीलए' सह इत्थिहि ।
देवो दोगुन्दगो चैव
निच्चं मुइयमाणसो ॥

४—मणिरयणकुट्टिमतले
पासायालोयणट्टिओ ।
आलोएइ नगरस्स
चउकतियचच्चरे ॥

५—अह तत्थ अइच्छन्तं
पासई समणसंजयं ।
तवनियमसंजमघरं
सीलङ्कं गुणागारं ॥

संस्कृत छाया
सुप्रोवे नगरे रम्मे
काननोद्यान-शोभिते ।
राजा बलभट्ट इति
मृगा तस्याग्रमहिंसी ॥

तयोः पुत्रौ बलश्रीः
मृगापुत्र इति विभूतः ।
अम्मापित्रोर्द्वयितः
युवराजो दमीश्वरः ॥

नन्दने स तु प्रासादे
काङ्क्षति सह स्त्रीभिः ।
देवो गोगुन्दकश्चैव
नित्यं मुदित-मानसः ॥

मणि-रत्न-कुट्टिम-तले
प्रसादाशोकन-स्थितः ।
आलोकते नगरस्थ
चतुष्क-त्रिक-चत्वरणि ॥

अथ तत्रातिक्रामन्तं
पश्यति धम्मण-संयतम् ।
तपो-नियम-संयम-घरं
शीलाद्यं गुणाकरम् ॥

हिन्दी अनुबाद

१—कानन और उद्यान से शोभित सुरम्भ
सुप्रोव नगर में बलभट्ट राजा था । मृगा उसकी
पटरानी थी ।

२—उनके 'बलश्री' नाम का पुत्र था ।
जनता में वह 'मृगापुत्र'—इस नाम से विभूत
था । वह माता-पिता को प्रिय, युवराज और
दमीश्वर था ।

३—वह दोगुन्धग देवों की भाँति सदा
प्रमुदित-मन रहता हुआ आनन्द देने वाले
प्रासाद में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था ।

४—मणि और रत्न से जड़ित फर्श वाले
प्रासाद के गबाज में बैठा हुआ मृगापुत्र नगर
के चौराहों, तिराहों और चौहट्टों को देख
रहा था ।

५—उसने वहाँ जाते हुए एक संयत
धम्मण को देखा, जो तप नियम और संयम
को धारण करने वाला, शील से समृद्ध और
गुणों का आकर था ।

६—तं देहई^१ मियापुत्ते
दिट्ठीए अणिसिए उ ।
कहि मन्नेरिसं रूपं
दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥

तं पश्यति मृगापुत्रः
दृष्ट्वाऽनिमेषया तु ।
कुत्र मन्ये ईदृशं रूपं
दृष्ट-पूर्वं मया पुरा ? ॥

६—मृगापुत्र ने उसे अनिमेष-दृष्टि से देखा और मन ही मन चिन्तन करने लगा—
‘मैं मानता हूँ कि ऐसा रूप मैंने पहले कहीं देखा है ।’

७—साहुस्स दरिसणे तस्स
अज्झवसाणम्मि सोहणे ।
मोहंगयस्स सन्तस्स
जाईसरणं समुप्पन्नं ॥

साधोर्दशने तस्य
अध्यवसाने शोभने ।
मोहं गतस्य सतः
जाति-स्मरणं समुत्पन्नम् ॥

७—गायु के दर्शन और अध्यवसाय पवित्र होने पर ‘मैंने ऐसा कहीं देखा है’—ऐसी सचन चित्त-वृत्ति हुई और उमे पूर्व-जन्म की स्मृति हो आई ।

देवलो ग चुओ संतो
माण्सं भवमागओ ।
सन्निनाणे समुप्पण्णे
जाइं सरइ पुराणयं ॥ १०

देवलोक-च्युतः सन्
मानुषं भवमागतः ।
संज्ञि-ज्ञाने समुत्पन्ने
जाति स्मरति पौराणिकीम् ॥]

[देवलोक में चरन हो मनुष्य-जन्म में आया । ममनस्क-ज्ञान उत्पन्न हुआ तब पूर्व-जन्म की स्मृति हुई ।]

८—जाईसरणे समुप्पन्ने
मियापुत्ते महिड्डिए ।
सरई पौराणियं जाइं
सामण्णं च पुराकयं ॥

जाति-स्मरणे समुत्पन्ने
मृगापुत्रो महद्भिकः ।
स्मरति पौराणिकीं जातिं
श्रामण्यं च पुराकृतम् ॥

८—जाति-स्मृति ज्ञान उत्पन्न होने पर महद्भिक मृगापुत्र को पूर्व-जन्म और पूर्व-ज्ञत श्रामण्य की स्मृति हो आई ।

९—विसएहि अरज्जन्तो
रज्जन्तो संजमम्मि य ।
अम्मापियरं उवागम्म
इमं वयणमम्बवी ॥

विषयेष्वरज्यन्
रज्यन् संयमे च ।
अम्मापित्रावुपागम्य
इदं वचनमम्बवीन् ॥

९—अब विषयों में उसकी आसक्ति नहीं रही । वह संयम में अन्तर्गत हो गया । माता-पिता के समीप आ उमने इस प्रकार कहा—

१०—सुयाणि मे पंच महव्वयाणि
नरएमुदुक्खं च तिरिक्खजोणिषु ।
निविण्णकामो मि^२ महण्णवाओ
अनुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ! ॥

धृतानि मया पंच महाव्रतानि
नरकेषु दुःखं च तिर्यग-योनिषु ।
निविण्णा-कामोऽस्मि महार्णवात्
अनुजानात प्रव्रजिष्यामि मातः ॥

१०—‘मैंने पाँच महाव्रतों को मना है । नरक और तिर्यक योनियों में दुःख है । मैं संसार समुद्र के निविण्ण-काम (विरक्त) हो गया हूँ । मैं प्रव्रजित होऊँगा । माता ! मुझे आप अनुज्ञा दें ।’

१. पेहई (दृ०) ।

२. × (आ, इ, स, छ०, बू०, दृ०) ।

३. झि (स) ।

मियापुतिजं (मृगापुत्रीय)

२४१

अध्ययन १६ : श्लोक ११-१६

११—अम्मताय ! मए भोगा
भुत्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा
अणुबन्धदुहावहा ॥

अम्ब-तात ! मया भोगाः
सुक्ता विष-फलोपमाः ।
पश्चात् कटुक-विपाकाः
अनुबन्ध-दुःखावहाः ॥

११—“माता-पिता ! मैं भोगों को भोग
बुका हूँ । ये भोग विष के तुल्य हैं, इनका
परिणाम कटु होता है और ये निरन्तर दुःख
देने वाले हैं ।

१२—इमं शरीरं अणिच्चं
अमुद्दं अमुद्दसंभवं ।
असायावासमिणं
दुक्खकेसाण भायणं ॥

इदं शरीरमनित्यम्
अशुच्यशुचि-संभवम् ।
अशाश्वतावासमिदं
दुःख-क्लेशानां भाजनम् ॥

१२—“यह शरीर अनित्य है, अशुचि है,
अशुचि से उत्पन्न है, आत्मा का यह अशाश्वत
आवास है तथा दुःख और क्लेशों का
भाजन है ।

१३—असासए^१ शरीरम्मि
रद्धं नोवलभामहं ।
पच्छा पुरा व चइय्वे
फेणवुब्बुयसन्निभे ॥

अशाश्वते शरीरे
रतिं नोपलभेऽहम् ।
पश्चान् पुरा वा त्यक्तव्ये
फेन-बुलबुल-सन्निभे ॥

१३—“इस अशाश्वत-शरीर में मुझे
आनन्द नहीं मिल रहा है । इसे पहले या पीछे
जब कभी छोड़ना है । यह पानी के बुलबुले
के समान नश्वर है ।

१४—माणसत्ते असारम्मि
वाहीरोगाण आलए ।
जरा मरणघत्थम्मि
खणं पि न रमामऽहं ॥

मानुषत्वे असारे
व्याधि-रोगाणामालये ।
जरा-मरण-प्रस्ते
क्षणमपि न रमेऽहम् ॥

१४—“मनुष्य-जीवन असार है, व्याधि
और रोगों का घर है, जरा और मरण से ग्रस्त
है । इसमें मुझे एक क्षण भी आनन्द नहीं मिल
रहा है ।

१५—जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं
रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हू संसारो
जत्थ कीसन्ति जन्तवो^२ ॥

जन्म दुःखं जरादुःखं
रोगाश्च मरणानि च ।
अहो दुःखं हलु संसारः
यत्र विलयन्ति जन्तवः ॥

१५—“जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है,
रोग दुःख हैं और मृत्यु दुःख है । अहो !
संसार दुःख ही है, जिसमें जीव क्लेश रा
खे हैं ।

१६—खेत्तं वत्थुं हिरण्यं च
पुत्तदारं च बन्धवा^३ ।
चइत्ताणं इमं देहं
गन्तव्वमवससस मे ॥

क्षेत्रं वास्तु हिरण्यं च
पुत्र-वारादिव बान्धवान् ।
त्यक्तव्यमेष देहं
गन्तव्यमवशस्य मे ॥

१६—“भूमि, घर, सोना, पुत्र, स्त्री,
बान्धव और इस शरीर को छोड़ कर मुझे
अवश हो कले जाना है ।

१. आसासए (अ, ड) ।

२. जम्मणो (धा, ङ) ; पाणिणो (ड, स) ।

३. बन्धवं (ड) ।

१७—जहा किम्पागफलाणं
परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं
परिणामो न सुन्दरो ॥

यथा किम्पाक-फलानां
परिणामो न सुन्दरः ।
एवं भुक्तानां भोगानां
परिणामो न सुन्दरः ॥

१७—“जिस प्रकार किम्पाक-फल खाने का परिणाम सुन्दर नहीं होता उसी प्रकार भोग हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता ।

१८—अद्धानं जो महत्तं तु
अपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो दुहो होइ
छुहानप्हाए पीडिओ ॥

अध्वानं यो महान्तं तु
अपाथेयः प्रवर्जितः ।
गच्छन् स दुःखो भवति
शुधा-तृष्ण्या पीडितः ॥

१८—“जो मनुष्य लम्बा मार्ग लेता है और साथ में सम्बल नहीं लेता, वह भूख और प्यास से पीड़ित हो कर चलता हुआ दुःखी होता है ।

१९—एवं धम्मं अकाऊणं
जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो दुहो होइ
वाहीरेगेहि पीडिओ ॥

एवं धर्ममकृत्वा
यो गच्छति परं भवम् ।
गच्छन् स दुःखो भवति
व्याधि-रोगः पीडितः ॥

१९—“इसी प्रकार जो मनुष्य धर्म किए बिना परभव में जाता है वह व्याधि और रोग में पीड़ित होकर जीवन-यापन करना हुआ दुःखी होता है ।

२०—अद्धानं जो महत्तं तु
सपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो मुहो होइ
छुहातप्हाविवज्जिओ ॥

अध्वानं यो महान्तं तु
सपाथेयः प्रवर्जितः ।
गच्छन् स मुखो भवति
शुधा-तृष्णा-विषजितः ॥

२०—“जो मनुष्य लम्बा मार्ग लेता है, किन्तु सम्बल के साथ, वह भूख-प्यास से रहित हो कर चलता हुआ मुखी होता है ।

२१—एवं धम्मं पि काऊणं
जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो मुहो होइ
अप्पकम्मं अवेयणे ॥

एवं धर्ममपि कृत्वा
यो गच्छति परं भवम् ।
गच्छन् स मुखो भवति
अल्पकर्मज्जिदनः ॥

२१—“इसी प्रकार जो मनुष्य धर्म की आराधना कर परभव में जाता है, वह अल्प-कर्म वाला और वेदना रहित हो कर जीवन-यापन करता हुआ मुखी होता है ।

२२—जहा गेहे पलितम्मि
तस्स गेहस्स जो पह ।
सारभण्डाणि तीणेइ
असारं अवउज्झइ ॥

यथा गेहे प्रवीण्ये
तस्य गेहस्य यः प्रभुः ।
सार-भाण्डानि गमयति
असारमपोज्झति ॥

२२—“जैसे घर में आग लग जाने पर उस घर का जो स्वामी होता है, वह मूल्यवान् वस्तुओं को उसमें से निकालता है और मूल्य-हीन वस्तुओं को वहीं छोड़ देता है,

२३—एवं लोए पलित्तिमि
जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि
तुब्भेहि अणुमन्निओ ॥

एवं लोके-प्रदीप्ते
जरया मरणेन च ।
आत्मानं तारयिष्यामि
युष्माभिरनुमतः ॥

२३—“इसी प्रकार यह लोक जरा और
मृत्यु से प्रज्वलित हो रहा है । मैं आपकी
आशा पाकर उसमें से अपने आपको
निकालूँगा ।”

२४—तं बित ऽम्मापियरो
सामणं पुत्त ! दुक्खरं ।
गुणाणं तु सहस्साइं
धारेयव्वाइं भिक्खुणो ॥

तंबूतोऽम्बापितरो
श्रामण्यं पुत्र ! दुःखरम् ।
गुणानां तु महद्वाणि
धारयितव्यानि भिक्षोः ॥

२४—माता-पिता ने उससे कहा—
“पुत्र ! श्रामण्य का धारण बहुत कठिन है ।
भिक्षु को हजारों गण धारण करने होते हैं ।

२५—समया सव्वभूएसु
सत्तुमिन्तंमु वा जये ।
पाणाइवायविई
जावज्जीवाए दुक्करा ॥

समता सर्व-भूतेषु
शत्रु-मित्रेषु वा जयति ।
प्राणातिपात-विरतिः
यावज्जीवं दुष्करा ॥

२५—“विष्व के शत्रु और मित्र सभी
जीवों के प्रति समभाव रखना और यावज्जीवन
प्राणातिपात की विरति करना बहुत ही कठिन
कार्य है ।

२६—निच्चकालऽप्पमत्तेणं
मुसावायविवज्जणं ।
भासियव्वं हियं सच्चं
निच्चाउत्तेण दुक्करं ॥

नित्य-कालाप्रमत्तेन
मृषावाद्य-विवर्जनम् ।
भाषितव्यं हितं सत्यं
नित्यायुक्तेन दुष्करम् ॥

२६—“सदा अप्रमत्त रह कर मृषावाद
का वर्जन करना और सतत सावधान रह कर
हितकारी सत्य वचन बोलना बहुत ही कठिन
कार्य है ।

२७—दन्तसोहणमाइस्स
अदत्तस्स विवज्जणं ।
अणवज्जेसणिज्जस्स
गेण्ठणा अवि दुक्करं ॥

दन्तशोघनादेः
अदत्तस्य विवर्जनम् ।
अनवद्येषणीयस्य
ग्रहणमपि दुष्करम् ॥

२७—“दंतों कादि को भी बिना दिए
न लेना और ऐसी दत्त वस्तु भी वही लेना, जो
अनवद्य और एषणीय हो - बहुत ही कठिन
कार्य है ।

२८—विरई अबम्मचेरस्स
कामभोगरसनुणा ।
उगं महव्वयं बम्मं
धारेयव्वं सुदुक्करं ॥

विरतिरब्रह्मचर्यस्य
काम-भोग-रसक्षेपः ।
उषं महाव्रतं ब्रह्म
धारयितव्यं सुदुष्करम् ॥

२८—“काम-भोग का रस जानने वाले
व्यक्ति के लिए ब्रह्मचर्य की विरति करना
और उष ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करना
बहुत ही कठिन कार्य है ।

१. भिक्खुणा (बु०) ; भिक्खुणो (बु० पा०) ।

२. दुक्करं (बु०, ख०) ।

२९—धणधन्नपेसवगेसु
परिग्रहविवज्जणं^१ ।
सव्वारम्भपरिञ्चाओ
निम्ममत्तं सुदुक्करं^२ ॥

धन-धान्य-प्रेष्यवर्गेषु
परिग्रह-विवर्जनम् ।
सर्वारम्भ-परित्यागः
निर्म्ममत्वं सुदुष्करम् ॥

२९—“धन-धान्य और प्रेष्य-वर्ग के परिग्रहण का वर्जन करना, सब आरम्भों (द्रव्य की उत्पत्ति के व्यापारों) और ममत्व का त्याग करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३०—चउव्विहे वि आहारे
राईभोयणवज्जणा ।
सन्निहीसंचओ चेव
वज्जेयव्वो सुदुक्करो^३ ॥

चतुर्विधेऽप्याहारे
रात्रि-भोजन-वर्जनम् ।
सन्निधि-संचयश्चैव
वर्जयितव्यः सुदुष्करः ॥

३०—“चतुर्विध आहार को रात में खाने का त्याग करना तथा सन्निधि और संचय का वर्जन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३१—छुहा तप्हा य सीउण्हं
दंसमसगवेयणा ।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य
तणफासा जल्लमेव य ॥

क्षुधा तृषा च शीतोष्णं
दंश-मशक-वेदना ।
आक्रोशा दुःख-शय्या च
तृण-स्पर्शा ‘जल्ल’ मेव च ॥

३१—“भूल, व्यास, सर्प, गर्मी, झोंस और मच्छरों का कट, आक्रोश-वचन, कष्टप्रद उपाश्रय, घास का बिछोना, मैल,

३२—तालणा तज्जणा चेव
वह्वन्नपरीसहा ।
दुक्खं भिक्षापरिया
जायणा य अलाभया ॥

ताडना तर्जना चैव
वध-बन्धो परीषहौ ।
दुःखं भिक्षा-चर्या
याचना चालाभता ॥

३२—ताडना, तर्जना, वध, बन्धन का कष्ट, भिक्षा-चर्या, याचना और अलाभ—इन्हे सहन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३३—कावोया जा इमा वित्ती
केसलोओ य दारुणो ।
दुक्खं बम्भवयं घोर
घारेउं अ महप्पणो ॥

कापोती वयं वृत्तिः
केश-लोचन-वारुणः ।
दुःखं ब्रह्मव्रतं घोरं
धारयितुं च महात्मनः ॥

३३—“यह जो कापोती-वृत्ति (कबूतर के समान दोष-भीरु वृत्ति), वारुण केश-लोच और घोर-ब्रह्मचर्य को धारण करना है, वह महान् आत्माओं के लिए भी दुष्कर है ।

३४—सुहोइओ तुमं पुत्ता !
सुकुमालो सुमज्जिओ ।
न ह सी पभू तुमं पुत्ता !
सामण्णमणुपालिउं^४ ॥

सुखोचितस्त्वं पुत्र !
सुकुमारश्च सुसम्भितः ।
न खलु अस्मि प्रभुस्त्वं पुत्र !
धाम्मण्यमनुपालयितुम् ॥

३४—“पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है, सुकुमार है, साफ-सुधरा रहने वाला है । पुत्र ! तू श्रामण्य का पालन करने के लिए समर्थ नहीं है ।

१. ० विवज्जणा (भा, इ, इ०) ।

२. सुदुक्करं (उ) ।

३. ० पालिया (भ, भा, इ, उ, इ०) ।

मियापुतिज्जं (मृगापुत्रोय)

२४५

अध्ययन १६ : श्लोक ३५-४०

३५—जावज्जीवमविस्सामो

गुणाणं तु महाभरो ।
गुरुओ लोहभारो व्व
जो पुत्ता ! होइ दुव्वहो ॥

यावज्जीवमविधामः

गुणानां तु महाभरः ।
गुरुको लोहभार इव
यः पुत्र ! भवति दुर्बलः ॥

३५—“पुत्र ! आश्रम्य में जीवन पर्यन्त विषम नहीं है । यह गुणों का महान् भार है । भारी भरकम लोह-भार की भाँति इसे उठाना बहुत ही कठिन है ।

३६—आगासे गंगसोउ व्व
पडिसोओ व्व दुत्तरो ।
बाहार्हि सागरो चेव
तरियव्वो गुणोयही ॥

आकाशे गङ्गा-स्रोत इव
प्रतिस्नोत इव दुस्तरः ।
बाहुभ्यां सागरश्चैव
तरितव्यो गुणोदधिः ॥

३६—“आकाश-गंगा के स्रोत, प्रति-स्रोत और भुजाओं से सागर को तैरना जैसे कठिन कार्य है वैसे ही गुणोदधि-संयम को तैरना कठिन कार्य है ।

३७—वालुयाकवले^१ चेव
निरस्साए उ^२ संजमे ।
असिधारगमणं चेव
दुक्करं चरित्तं तवो ॥

बालुका-कवलश्चैव
निरास्वादस्तु संयमः ।
असि-धारा-गमनं श्वेव
दुष्करं चरित्तुं तपः ॥

३७—“मंथम बालू के कोर की तरह स्वाद-रहित है । तप का आचरण करना तलवार की धार पर चलने जैसा है ।

३८—अहोवेगन्तदिट्ठीए
चरित्ते पुत्ता ! दुच्चरे ।
जवा लोहमया चेव
चावेयव्वा सुदुक्करं ॥

अहिरिवैकान्तदृष्टया
चारित्र्यं पुत्र ! दुष्चरम् ।
यथा लोहमयाश्चैव
ध्वंसयितव्या सुदुष्करम् ॥

३८—“पुत्र ! साँप जैसे एकाग्र-दृष्टि से चलता है, वैसे एकाग्र-दृष्टि से चारित्र्य का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है । लोहे के जवों को चबाना जैसे कठिन है वैसे ही चारित्र्य का पालन कठिन है ।

३९—जहा अगिसिहा दित्ता
पाउं होइ सुदुक्करं^३ ।
तह दुक्करं करेउं जे
तारुणे समणत्तणं ॥

यथाग्निशिखा दीप्ता
पातुं भवति सुदुष्करम् ।
तथा दुष्करं कर्तुं ‘जे’
तारुण्ये श्रमणत्वम् ॥

३९—“जैसे प्रज्वलित अग्नि-शिखा को पीना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही श्रमण में श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

४०—जहा दुक्खं भरेउं जे
होइ वायस्स कोत्थलो ।
तहा दुक्खं करेउं जे
कोवेणं समणत्तणं ॥

यथा दुःखं भर्तुं ‘जे’
भवति वायोः ‘कोत्थलो’
तथा दुष्करं कर्तुं ‘जे’
बलीजेन श्रमणत्वम् ॥

४०—“जैसे वस्त्र के थोले को हवा से भरना कठिन कार्य है वैसे ही सत्वहीन व्यक्ति के लिए श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

१. * कवळा (क) ।

२. व (ड) ।

३. सुदुक्करा (सु० पा०) ।

४१—जहा तुलाए तोलेउं
दुक्करं मन्दरो गिरी ।
तहा निहुयं नीसकं
दुक्करं समणत्तणं ॥

यथा तुलया तोलयितुं
दुष्करं मन्दरो गिरिः ।
तथा निभृतं निःशङ्कं
दुष्करं भ्रमणत्वयम् ॥

४१—“जैसे मेघ-वर्षत को तराजू से तोलना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही निष्कल और निर्भय भाव से भ्रमण-धर्म का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

४२—जहा भुयाहि तरिउं
दुक्करं रयणागरो ।
तहा अणुवसन्तेणं
दुक्करं दमसागरो ॥

यथा भुजाभ्यां तरितुं
दुष्करं रत्नाकरः ।
तथाऽणुपशान्तेन
दुष्करं दम-सागरः ॥

४२—“जैसे समुद्र को भुजाओं से तरना बहुत ही कठिन कार्य है, वैसे ही उपसमहीन व्यक्ति के लिए दम्पती समुद्र को तरना बहुत ही कठिन कार्य है ।

४३—भुज माणुस्सए भोगे
पंचलक्षणए तुमं ।
भुतभोगी तओ जाया !
पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥

भुङ्क्ष्व मानुषकान् भोगान्
पंच-लक्षणान् त्वम् ।
भुक्त-भोगी ततो जात !
पश्चाद् धर्मं चरेः ॥

४३—“पुत्र ! तू मनुष्य सम्बन्धी पाँच इन्द्रियो के भोगों का भोग कर । फिर भुक्त-भोगी हो कर मुनि-धर्म का आचरण करना ।”

४४—‘तं बित ऽम्मापियरो’
एवमेयं जहा फुडं ।
इह लोए निप्पिवासस्स
नरिय किचि वि दुक्करं ॥

तद् ब्रूतो अम्बापितरो
एवमेतद् यथास्फुटम् ।
इह लोके निष्पिपासस्य
नास्ति किंचिदपि दुष्करम् ॥

४४—सृष्टापुत्र ने कहा—“माता-पिता ! जो आपने कहा वह सही है किन्तु जिस यत्नि की ऐहिक सुखों की प्यास बुझ-चुकी है उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।

४५—सारीरमाणसा चेव
वेयणाओ अणत्तसो ।
मए सोढावो भीमाओ
असइं दुक्खभयाणि य ॥

शारीरमानस्यश्चैव
वेदनास्तु अनन्तशः ।
मया सोढा भीमाः
असकृद् दुःख-भयानि च ॥

४५—“मैंने भयंकर शारीरिक और मानसिक वेदनाओं को अनन्त बार सहा है और अनेक बार दुःख एवं भय का अनुभव किया है ।

४६—जरावरणकन्तारे
चाउरन्ते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमानि
जम्मानि मरणानि य ॥

जरा-मरण-कान्तारे
चतुरन्ते भयाकरे ।
मया सोढानि भीमानि
जन्मानि मरणानि च ॥

४६—“मैंने चार जल बाले और भय के आकर जन्म-मरणरूपी जंगल में भयंकर जन्म-मरणों को सहा है ।

१. दुक्करं (आ) ।

२. सो वे अम्मापियरो (उ, दू० पा०, दू०) ; तो ब्रूतो अम्मापियरो (दू० पा०) ।

४७—जहा इहं अगणी उण्णो
'एतोऽणन्तगुणे तहि' ।
नरएमु वेयणा उण्णो
अस्साया वेइया मए ॥

४८—जहा 'इमं इहं' सीयं
'एतोऽणन्तगुणं तहि' ।
नरएसु वेयणा सीया
अस्साया वेइया मए ॥

४९—कन्दन्तो कंदुकुम्भीसु
उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलन्तम्मि
पक्खुवो अणन्तसो ॥

५०—महादवग्गिसंकासे मरुम्मि
वहरवालुए ।
कलम्बवालुयाए य
दड्ढपुवो अणन्तसो ॥

५१—रसन्तो कंदुकुम्भीसु
उड्ढं बढो अबन्धवो ।
करवत्तकरकायईहि
छिन्नपुवो अणन्तसो ॥

५२—अइतिक्खकण्टगाइण्णे
तुंगे सिम्बलिपायवे ।
खेवियं पासबढेणं
कड्ढोकड्ढाहि दुकरं ॥

यथेहान्निकणः
इतोऽणन्तगुणस्तत्र ।
नरकेषु वेदना उच्छता
असता वेदिता मया ॥

यथेदमिह शीलम्
इतोऽणन्तगुणं तत्र ।
नरकेषु वेदना शीता
असतावेदिता मया ॥

कन्दन् कन्दु-कुम्भीसु
ऊर्ध्व-पादोऽधः-शिरोः ।
हुताग्ने ज्वलति
पक्व-पूर्वोऽनन्तशः ॥

महाववाग्नि-संकाशे
मरो वज्र-बालुकायाम् ।
कलम्ब-बालुकायां च
वध-पूर्वोऽनन्तशः ॥

रसन् कन्दु-कुम्भीसु
ऊर्ध्वं बढोऽबान्धवः ।
करपत्र-क्रकचैः
छिन्न-पूर्वोऽनन्तशः ॥

अतितीक्ष्ण-कण्टकाकीर्णं
तुंगे शाल्मलि-पादवे ।
लोपितं पाश-बद्धं न
कर्त्तव्यकर्व्वुं चकरम् ॥

४७—“जैसे यहाँ अग्नि उष्ण है, इससे
अनन्त गुना अधिक दुःखमय उष्ण-वेदना वहाँ
नरक में होने लगी है ।

४८—“जैसे यहाँ यह शीत है, इससे
अनन्त गुना अधिक दुःखमय शीत-वेदना वहाँ
नरक में होने लगी है ।

४९—“पकाने के पात्र में, जलती हुई
अग्नि में पेटों को ऊँचा और सिर को नीचा
कर आक्रमण करता हुआ मैं अनन्त बार पकाया
गया हूँ ।

५०—“महा दवाग्नि और महा-वेश और
वज्रबालुका जैसे कदम्ब नदी के बासु में मैं
अनन्त बार जलाया गया हूँ ।

५१—“मैं पाक-पात्र में बाण रहित हो
कर आक्रमण करता हुआ ऊँचा बाँधा गया तथा
करबत और बारा आदि के द्वारा अनन्त बार
छेदा गया हूँ ।

५२—“अत्यन्त तीखे काँटों वाले ऊँचे
शाल्मलि वृक्ष पर पाश से बाँध, इधर-उधर
लींच कर भरसक वेचना से मैं लिन्न किया
गया हूँ ।

१. इतोऽणन्तगुणा तहि (वृ० पा०) ।
२. इह इमं (व, ऋ०) ।
३. एतोऽणन्तगुणा तहि (वृ० पा०) ।
४. खेवियं (वृ०) ।

५३—महाजन्तेसु उच्छू वा
आरसन्तो सुभेरवं ।
पीलओ मि सकम्मेहि
पावकम्मो अणन्तसो ॥

महायन्त्रोष्मिधुरिव
आरसन् सुभेरवम् ।
पीडितोऽस्मि स्वकर्मभिः
पाप-कर्मजिन्तसः ॥

५३—“पापकर्मां मैं अति भयंकर आक्रमण करता हुआ अपने ही कर्मों द्वारा महायंत्रों में जल की भाँति अनन्त बार घेरा गया हूँ ।

५४—कूबन्तो कोलसुणएहि
सामेहि सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो
विस्फुरन्तो^१ अणगसो ॥

कूजन् कोल-शूनकैः
प्रयामैः शबलैश्च ।
पातितः स्फाटितः छिन्नः
विस्फुरन्नेकशः ॥

५४—“मैं इधर-उधर जाता और आक्रमण करता हुआ काले और चितकबरे सूअर एवं कुत्तों के द्वारा अनेक बार गिराया, फाड़ा और काटा गया हूँ ।

५५—असीहि^२ अयसिवण्णाहि
भल्लीहि पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य
ओइण्णो^३ पावकम्मुणा ॥

असिभिरतसो-वर्णाभिः
भल्लीभिः पट्टिभ्यश्च ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नश्च
उपपन्नः पाप-कर्मणा ॥

५५—“पाप-कर्मों के द्वारा नरक में अक्षतरित हुआ मैं अलसी के फूलों के समान नीले रंग वाली तलवारों, भस्त्रियों और लोह-दण्डों के द्वारा छेदा, भेदा और छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त किया गया हूँ ।

५६—अवसो लोहरहे जुतो
जलन्ते^४ समिलाजुए ।
चोइओ तोत्तमुत्तेहि
रोज्ज्मो वा जह पाडिओ ॥

अवसो लोह-रथे युक्तः
ज्वलति समिला-युते ।
चोवितस्तोत्र-योक्तेः
‘रोज्ज्मो’ वा यथा पातितः ॥

५६—“युग-कीलक (जूए के छेदों में डाली जाने वाली लकड़ी की कीलों) से युक्त जलते हुए लोह-रथ में परवश बनाया गया मैं जोता गया, बाबुक और रस्सी के द्वारा हांका गया तथा रोज की भाँति भूमि पर गिराया गया हूँ ।

५७—हुयासणे जलन्तम्मि
चियासु महिसो विव ।
दड्डो पक्को य अवसो
पावकम्मेहि पाविओ ॥

हुताशने ज्वलति
चितासु महिष इव ।
दग्धः पक्कदलावशः
पाप-कर्मभिः प्रायुतः ॥

५७—“पाप-कर्मों से चिरा और परवश हुआ मैं भैंसे की भाँति अग्नि की जलती हुई चिताओं में जलाया और पकाया गया हूँ ।

५८—बला संडासतुण्डेहि
लोहतुण्डेहि पक्खिहि ।
विलुत्तो विलवन्तो हं
ढंकगिद्धेहि^५णन्तसो ॥

बलाशु संदश-तुण्डैः
लोह-तुण्डैः पक्षिभिः ।
विलुप्तो विलपन्नहम्
ढंक-गुर्ध्रै रजन्तसः ॥

५८—“संडासी जैसी चौच वाले और लोहे जैसी कठोर चौच वाले ढंक और गीध पक्षियों के द्वारा बिलाप करता हुआ मैं बल-प्रयोग पूर्वक अनन्त बार मोचा गया हूँ ।

१. विस्फुरन्तो (५४, ५०) ।

२. अरसाहि (५०) ; असीहि (५० पा०) ।

३. उयवण्णो (५०) ।

४. जलन्त (५० पा०) ।

मियापुतिजं (मृगापुत्रीय)

२४६

अध्ययन १६ : श्लोक ५६-६३

५९—तण्हाकिलन्तो घावन्तो
पत्तो वेयरणि नदि ।
ज उं 'पाहिं ति' चिन्तन्तो
खुरधाराहि विवाइओ* ॥

तृष्णा-बलान्तो घावन्
प्राप्तो वेत्रणी नदीम् ।
जलं पास्यामोति चिन्तयन्
खुर-धाराभिविपादितः ॥

५९—'व्यास से पीड़ित होकर मैं दोड़ता हुआ वेत्रणी नदी पर पहुँचा । जल पीऊँगा— यह सोच रहा था, इतने में खुरे की धार से मैं चीरा गया ।

६०—उण्हाभित्तो संपत्तो
असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहि पडन्तेहि
छिन्नपुव्वो अणेगसो* ॥

उष्णाभितप्तः संप्राप्तः
असि-पत्रं महावनम् ।
असि-पत्रोः पतद्भिः
छिन्न-पुर्वोऽनेकदाः ॥

६०—'गर्मी से संतप्त होकर असि-पत्र महावन में गया । वहाँ गिरते हुए तलवार के समान तीखे पत्तों से अनेक बार छेदा गया हूँ ।

६१—मुग्गरेहि मुसंडीहि
सुलेहि मुसलेहि य ।
गयासं भग्गत्तेहि
पत्तं दुक्खं अणन्तसो ॥

मुद्गरैः 'मुसंडीहि'
शूलैर्मुसलेश्च ।
गताशं भग्न-गात्रोः
प्राप्तं दुःखमनन्तशः ॥

६१—'मुद्गरों, गुण्डियों, दूलों और मुसलों से त्राण-हीन दशा में मेरा शरीर चूर-चूर किया गया—इस प्रकार मैं अनन्त बार दुःख को प्राप्त हुआ हूँ ।

६२—खुरेहि तिक्खधारेहि*
छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो
उक्तो* य अणेगसो* ॥

खुरैः तीक्ष्ण-धारैः
क्षुरिकाभिः कल्पनीभिश्च ।
कल्पितः पाटितश्छिन्नः
उत्क्रान्तश्चानेकदाः ॥

६२—'तेज धार वाले छुरों, छुरियों और कंचियों से मैं अनेक बार खण्ड-खण्ड किया गया, टुक किया गया और छेदा गया हूँ तथा मेरी चमड़ी उतारी गई है ।

६३—पासेहि कूडजालेहि
मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ* बद्धख्खो अ
'बहु सो' चेव विवाइओ ॥

पाशैः कूट-जालैः
मृग इव अवशोऽहम् ।
बाहितो बद्ध-रुद्धो वा
बहुशस्त्रैश्च विपादितः ॥

६३—'पाशों और कूटजालों द्वारा मृग की भाँति परवश बना हुआ मैं अनेक बार ठारा गया, बाँधा गया, रोका गया और मारा गया हूँ ।

१. पाहं ति (वृ०) ।

२. विपादितो (वृ०) ; विवाइओ (वृ० पा०) ।

३, ८. अणंतसो (उ, ऋ०) ।

४. तिक्ख धारेहि (उ) ।

५. छुरीहि (ऋ०) ।

६. उक्खितो (वृ० पा०, छ) ।

७. वाहिओ (वृ० पा०) ।

८. विपत्तो (उ, ऋ०) ।

६४—गलेहि मगरजालेहि
मच्छो वा अवसो अहं ।
उल्लिओ^१ फालिओ गहिओ
मारिओ य अणन्तसो ॥

गलेमंकर-जालैः
मत्स्य इव अवसोऽहम् ।
उल्लिखितः पाटितो गृहीतः
मारितश्चाऽनन्तशः ॥

६४ - "मछली के फँसाने की कंटियों और मगरों को पकड़ने के जालों के द्वारा मत्स्य की तरह परवश बना हुआ मैं अनन्त बार लीचा, फाड़ा, पकड़ा और मारा गया हूँ ।

६५—वीदंसएहि^२ जालेहि
लेप्पाहि सउणो विव ।
गहिओ लगो^३ बद्धो य
मारिओ य अणन्तसो ॥

विदंशकंजालैः
लेपैः शकुन इव ।
गृहीतो लग्नो बद्धश्च
मारितश्चाऽनन्तशः ॥

६५—"बाज पक्षियों, जालों और बन्ध-लेपों के द्वारा पक्षी की भाँति मैं अनन्त बार पकड़ा, चिपकाया, बाँधा और मारा गया हूँ ।

६६—कुहाडफरसुमाईहि
बड्ढईहि दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिन्तो
तच्छिओ य अणन्तसो ॥

कुठार-परशवादिभिः
वधं किमिदं म इव ।
कुट्टितः पाटितश्छिन्नः
तक्षितश्चाऽनन्तशः ॥

६६ - "बड़ई के द्वारा दूध की भाँति कुल्हाड़ी और फरवा आदि के द्वारा मैं अनन्त बार कूटा, दो टूक किया, छंदा और छील गया हूँ ।

६७—चवेडमुट्ठिमाईहि
कुमारेहि अयं विव ।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो
चुण्णिओ य अणन्तसो ॥

चपेटा-मुष्ट्यादिभिः
कुमारे रय इव ।
ताडितः कुट्टितो भिन्नः
चूर्णितश्चाऽनन्तशः ॥

६७—"लोहार के द्वारा लोह की भाँति चपट और मूट्टी आदि के द्वारा मैं अनन्त बार पीटा, कूटा, भेदा और चूरा किया गया हूँ ।

६८—तताई तम्बलोहाई
तउयाई सीसयाणि य ।
पाइओ कलकलन्ताई
आरसन्तो सुभेरवं ॥

तथानि ताघ-लोहानि
श्रपुकानि सीसकानि च ।
पायितः कलकलायमानानि
आरसन् सुभेरवम् ॥

६८—"भयंकर आकन्द करते हुए मुझे गर्म और कलकल शब्द करता हुआ ताँबा, लोहा, राँगा और मीसा पिलाया गया ।

१. उल्लिओ (उ, ऋ०) ।

२. वीदंसएहि (ऋ०) ; वीदं देहिण (व) ।

३. लगो (ल) ।

मियापुतिज्जं (मृगापुत्रीय)

२५१

अध्यायन १६ : श्लोक ६६-७३

६९—तुहं प्रियाइं मंसाइं
खण्डाईं सोल्लाणि य ।
खाविओ मि^१ समंसाइं
अग्निवण्णाइं णेगसो ॥

तव प्रिया मांसाणि
खण्डानि शूल्यकानि च ।
खावितोऽस्मि स्व-मांसाणि
अग्निवर्णान्यनेकशः ॥

६९—‘तुमो खण्ड किया हुआ और शूल में
खीस कर पकाया हुआ मांस प्रिय था—यह
याद दिलाकर मेरे शरीर का मांस काट अग्नि
जैसा लाल कर मुझे खिलाया गया ।

७०—तुहं प्रिया सुरा सीह
मेरओ य मूहणि य ।
पाइओ^२ मि जलन्तीओ
वसाओ रुहिराणि य ॥

तव प्रिया सुरा सीधुः
मेरकइव मयूनि च ।
पावितोऽस्मि ज्वलन्तीः
वसा रुधिराणि च ॥

७०—‘तुमो सुरा, सीधु, मैरेय और मयू—
ये मविरागे प्रिय थीं—यह याद दिलाकर मुझे
जलन्ती हुई चर्बी और रुधिर खिलाया गया ।

७१—निच्चं^३ भीएण तत्थेण
दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा
वेयणा वेइया मए ॥

नित्यं भीतेन त्रस्तेन
दुःखितेन व्यथितेन च ।
परमा दुःख-संबद्धा
वेदना वेदिता मया ॥

७१—‘सदा भयभीत, संत्रस्त, दुःखित
और व्यथित रूप में रहते हुए मैंने परम दुःखमय
वेदना का अनुभव किया है ।

७२—तिव्वचण्डप्पगाढाओ
घोराओ अइदुस्सहा ।
मह्वभयाओ^४ भीमाओ
नरएसु वेइया मए ॥

तीव्र-चण्ड-प्रगाढाः
घोरा अतिदुस्सहाः ।
मह्वभया भीमाः
नरकेषु वेदिता मया ॥

७२—‘तीव्र, चण्ड, प्रगाढ़, घोर, अत्यन्त
दुःसह, भीम और अत्यन्त भयंकर वेदनाओं का
मैंने नरक-लोक में अनुभव किया है ।

७३—जारिसा माणुसे लोए
ताया ! दीसन्ति वेयणा ।
एत्तो^५ अणन्तमुणिया
नरएसु दुक्खवेयणा ॥

यादृश्यो मानुषे लोके
तात ! दृश्यन्ते वेदनाः ।
इतोऽनन्तमुणियाः
नरकेषु दुःख-वेदनाः ॥

७३—‘माता-पिता ! मनुष्य-लोक में
जैसी वेदना है उससे अनन्तगुना अधिक दुःख
वेदने वाली वेदना नरक-लोक में है ।

१. वि (ऋ०) ।

२. धञ्जितो (वृ०) ।

३. निच्च (अ, ऋ०) ।

४. महाकथा (वृ० पा०) ।

५. एत्तो (अ) ; इत्तो (अ, ऋ०) ।

७४—सव्वभवेसु अस्साया
वेयणा वेइया मए ।
निमेसन्तरमित्तं पि
अं साया नत्थि वेयणा ॥

सर्व-भवेऽवसता
वेदना वेदिता मया ।
निमेषान्तर-मात्रमपि
यत् साता नास्ति वेदना ॥

७४—“मैंने सभी जन्मों में दुःखमय वेदना का अनुभव किया है । वहाँ एक निमेष का अन्तर पड़े उतनी भी मुखमय वेदना नहीं है ।”

७५—तं बित्तंस्मापियरो
छन्देण पुत्त ! पव्वया ।
नवरं पुण सामण्णे
दुक्खं निण्डिकम्मया ॥

तं ब्रूतोऽम्बापितरो
छन्वसा पुत्र ! प्रव्रज ।
‘नवरं’ पुनः आसन्धे
दुःखं निवृत्तिकर्मता ॥

७५—माता-पिता ने उससे कहा—“पुत्र !
तुम्हारी इच्छा है तो प्रव्रजित हो जाओ ।
परन्तु श्रमण बनने के बाद रोगों की चिकित्सा
नहीं की जाती, यह कितना कठिन मार्ग है ।
(यह जानते हो ?)”

७६—सो बित्तं स्मापियरो !
एवमेयं जहाकुडं ।
पडिकम्मं को कुणई
अरण्णे मियपक्खिणं ? ॥

स ब्रूतेऽम्बापितरो !
एवमेतद् यथाऽस्फुटम् ।
प्रतिकर्म कः करोति
अरण्ये मृग-पक्षिणम् ? ॥

७६—उसने कहा—“माता-पिता ! आपने
जो कहा वह ठीक है । किन्तु जंगल में रहने
वाले हरिण और पक्षियों की चिकित्सा कौन
करता है ?

७७—एगभूओ अरण्णे वा
जहा उ चरई मिगो ।
एवं धम्मं चरिस्सामि
संजमेण तवेण य ॥

एकभूतोऽरण्ये वा
यथा तु चरति मृगः ।
एवं धर्मं चरिष्यामि
संयमेन तपसा च ॥

७७—“जैसे जंगल में हरिण अकेला
बिचरता है, वैसे मैं भी संयम और तप के साथ
एकाकी भाव को प्राप्त कर धर्म का आचरण
करूँगा ।

७८—जया मिगस्स आयंको
महारणम्मि जायई ।
अच्छत्तं रुक्खमूलम्मि
को णं ताहे तिगिच्छई^१ ? ॥

यथा मृगस्थालङ्कः
महारण्ये जायते ।
तिष्ठन्तं वृक्ष-मूले
क एनं तथा चिकिस्सति ? ॥

७८—“जब महावन में हरिण के शरीर
में आतंक उत्पन्न होता है तब किसी वृक्ष के
पास बैठे हुए उस हरिण को कौन चिकित्सा
करता है ?

७९—को वा से ओसहं देई ?
को वा से पुच्छई सुहं ? ।
को से भत्तं च ‘पाणं च’^२
आहरित्त पणामए ? ॥

को वा तस्मै औषधं दत्ते ?
को वा तस्य पृच्छति सुखम् ? ।
कस्तस्मै भक्ष्यं च पानं च
आहृत्याऽर्पयेत् ? ॥

७९—“कौन उसे औषध देता है ? कौन
उससे सुख की बात पूछता है ? कौन उसे
खाने-पीने को भक्ष्य-पान लाकर देता है ?

१. विगिच्छई (ड) ; चिगिच्छई (क०) ।

२. पाणं वा (ञ०) ।

८०—जया य से सुही होइ
तया गच्छइ गोयरं ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए
वल्लराणि सराणि य ॥

८१—खाइता पाणियं पाउं
वल्लरेहिं सरेहि वा ।
मिगचारियं चरित्ताणं
गच्छई मिगचारियं ॥

८२—एवं समुद्धिओ भिक्खू
एवमेव अणेगओ^१ ।
मिगचारियं चरित्ताणं
उड्ढं पक्कमई दिसं ॥

८३—जहा मिगे एग अणेगचारी
अणेगवासे धुवगोयेरे य ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे
नो हीलए नो वि य खिसएज्जा ॥

८४—मिगचारियं चरिस्सामि
एवं पुत्ता ! जहासुहं ।
अम्मापिऊहिअणुन्नाओ
जहाइ उवहिं तओ ॥

८५—मियचारियं चरिस्सामि
सव्वदुक्खविमोक्खणिं ।
तुव्भेहिं अम्म ! णुन्नाओ
गच्छ पुत्ता ! जहासुहं ॥

यदा च स सुखी भवति
तदा गच्छति गोचरम् ।
भक्त-पानस्याऽर्थाय
वल्लराणि सरांसि च ॥

खातिवा पानीयं पीत्वा
वल्लरेषु सरस्सु वा ।
मृग-चारिकां चरित्वा
गच्छति मृग-चारिकाम् ॥

एवं समुत्थितो भिक्षुः
एवमेवाऽनेकैकः ।
मृग-चारिकां चरित्वा
ऊर्ध्वां प्रक्षमति विशम् ॥

यथा मृग एकोऽनेकचारी
अनेकवासो ध्रुव-गोचरश्च ।
एवं मुनिर्गोचर्यां प्रविष्टः
नो हीलयेन्नो अपि च खिसयेत् ॥

मृग-चारिकां चरिष्यामि
एवं पुत्र ! यथासुखम् ।
अम्मापितृभ्यामनुनातः
जहात्पुर्णार्थं ततः ॥

मृग-चारिकां चरिष्यामि
सर्व-दुःख-विमोक्षणाय ।
यथाभ्यासम्बद्धं अनुज्ञातः
गच्छ पुत्र ! यथासुखम् ॥

८०—“जब वह स्वस्थ हो जाता है तब
गोचर में जाता है । स्वाने-पाने के लिए लता-
निकुनों और जलाशयों में जाता है ।

८१—“लता-निकुनों और जलाशयों में
खा-पीकर वह मृग-चर्या (कुदान) के द्वारा
मृग-चर्या (स्वतंत्र-विहार) की चला
जाता है ।

८२—“इसी प्रकार संयम के लिए उठा
हुआ भिक्षु स्वतंत्र विहार करता हुआ मृग-
चर्या का आचरण कर ऊँची-पिशा—मोक्ष को
चला जाता है ।

८३—“जिस प्रकार हरिण अनेक अनेक
स्थानों में भक्त-पान लेने वाला, अनेक स्थानों
में रहने वाला और गोचर से ही जीवन-यापन
करने वाला होता है, उसी प्रकार गोचर-
प्रविष्ट मुनि जब भिक्षा के लिए जाता है
तब किसी की अवज्ञा और निन्दा नहीं करता ।

८४—“मैं मृग-चर्या का आचरण करूँगा ।”
“पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो ।” इस
प्रकार माता-पिता की अनुमति पाकर वह
उपधि को छोड़ रहा है ।

८५—“मैं तुम्हारी अनुमति पाकर सब
दुःखों से मुक्ति दिलाने वाली मृग-चर्या का
आचरण करूँगा ।” (माता-पिता ने कहा)—
“पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो ।”

१. अणेगसो (अ, ऋ०) ; अणिएण्णे (ऋ० पा०) ।

८६—एवं सो अम्मापियरो
अणुमाणिताण बहुविहं ।
ममत्तं छिन्दई ताहे
महानागो व्व कंचुयं ॥

एवं सोऽम्मापितरो
अनुमान्य बहुविधम् ।
ममत्वं छिनत्ति तवा
महानाग इव कंचुकम् ॥

८६—“इस प्रकार वह नाना उपायों से
माना-पिता को अनुमति के लिए राजी कर
ममत्व का छेदन कर रहा है जैसे महानाग
कांचुली का छेदन करता है ।

८७—इड्ढि वित्तं च मित्ते य
पुत्तदारं च नायओ ।
रेणुयं व पडे लग्गं
निद्धुणित्ताण निग्गओ ॥

ऋद्धि वित्तं च मित्राणि च
पुत्र-वारांश्च ज्ञातोन् ।
रेणुकमिव पटे लग्नं
निधूय निर्गतः ॥

८७—“ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, कन्य और
ज्ञातिजनों को कपड़े पर लगी हुई धूलि की
भोंति खटकाकर वह निकल गया—प्रव्रजित
हो गया ।

८८—पंचमहव्वयजुत्तो
पंचसमिओ तिगुत्तिगुत्तो य ।
सब्धिभन्तराहिरओ
तवोकम्मसि उज्जुओ ॥

पञ्चमहाव्रत-युक्तः
पञ्चभिः समितस्त्रिगुण-गुणैश्च ।
साभ्यन्तरबाह्ये
तपः-कर्मणि उज्जुक्तः ॥

८८—“वह पाँच महाव्रतों से युक्त, पाँच
समितियों से समित, तीन गुणियों से गुप्त,
आन्तरिक और बाहरी तपस्या में तत्पर—

८९—निम्ममो निरहंकारो
निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएमु
तसेसु थावरेसु य ॥

निर्ममो निरहंकारः
निस्तङ्गस्त्यक्त-गौरवः ।
समश्च सर्व-भूतेषु
त्रतेषु स्थावरेषु च ॥

८९—“ममत्व-रहित, अहंकार-रहित,
निर्लभ, गौरव को त्यागने वाला, अस और
स्थावर-सभी जीवों में समभाव रखने वाला—

९०—लाभालाभे सुहे दुक्खे
ओविए मरणे तहा ।
समो निन्दापसंसासु
तहा माणावमाणओ ॥

लाभालाभे सुखे दुःखे
ओषिते मरणे तथा ।
समो निन्दा-प्रशंसयोः
तथा मानापमानयोः ॥

९०—“लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-
मरण, निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान में सम
रहने वाला—

९१—गारवेसु कसाएसु
दण्डसल्लभएसु य ।
नियत्तो हाससोगाओ
अनियाणो अबन्धणो ॥

गौरवेभ्यः कषायेभ्यः
दण्ड-शल्प-भयेभ्यश्च ।
निवृत्तो हास्य-शोकान्
अनिदानोऽबन्धनः ॥

९१—“गौरव, कषाय, दण्ड, शल्प, भय,
हास्य और शोक से निवृत्त, निदान और बन्धन
से रहित—

९२—अणिस्सिओ इहं लोए
परलोए अणिस्सिओ ।
वासोचन्दणकप्पो य
असणे अणसणे तहा ॥

अनिधित इह लोके
परलोकेऽनिधितः ।
वासो-चन्दन-कल्पश्व
अशनेऽनशने तथा ॥

६२—“इहलोक और परलोक में अनासक्त,
बसले से काटने और चन्दन लगाने पर तथा
बाहार मिलने या न मिलने पर सम रहने
वाला—

९३—अप्पसत्थेहि दारेहि
सव्वओ पिहियासवे ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहि
पसत्थदमसासणे ॥

अप्रशस्तेभ्यो द्वारेभ्यः
सर्वतः पिहितालवः ।
अध्यात्म-ध्यान-योगीः
प्रशस्त-दम-शासनः ॥

६३—“प्रशस्त द्वारों से आने वाले कर्म-
पुद्गलों का सर्वतोनिरोध करने वाला, धुम-
ध्यान की प्रवृत्ति से प्रशस्त एवं उपशम-प्रधान
शासन में रहने वाला हुआ ।

९४—एवं नाणेण चरणेण
दंसणेण तवेण य ।
भावणाहि ‘य सुद्धाहि’
सम्मं भावेत्त अप्पयं ॥

एवं ज्ञानेन चरणेन
दर्शनेन तपसा च ।
भावनाभिश्च शुद्धाभिः
सम्यग् भावयित्वाऽऽस्थानम् ॥

६४—“इस प्रकार ज्ञान, चारित्र्य, तप और
बिभुद्ध भावनाओं के द्वारा आत्मा को शली-
भौति भावित कर—

९५—बहुयाणि उ^१ वासाणि
सामण्णमणुपालिया ।
मासिएण उ^२ भत्तेण
सिद्धि पत्तो अणुत्तरं ॥

बहुकानि तु वर्षाणि
श्रामण्यमनुपाल्य ।
मासिकेन तु भक्तेन
सिद्धिं प्राप्नोऽनुत्तरम् ॥

६५—“बहुत वर्षों तक श्रमण-धर्म का
पालन कर, अन्त में एक महीने का अनशन कर
बहु अनुत्तर सिद्धि—मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

९६—एवं करन्ति संबुद्धा^३
पण्डिया पवियक्खणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु
मियापुत्ते जहारिसी^४ ॥

एवं कुर्वन्ति संबुद्धाः
पण्डिताः प्रविचक्षणाः ।
विनिबर्तन्ते भोगेभ्यः
मृगा-पुत्रो यथा ऋषिः ॥

६६—“संबुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण जो
होते हैं वे ऐसा करते हैं । वे भोगों से उसी
प्रकार निवृत्त होते हैं, जिस प्रकार मृगा-पुत्र
ऋषि हुए थे ।

१. विच्छाहि (छ०, छ) ।

२. ओ (उ) ; अ (ऋ०) ।

३. य (य) ।

४. संपन्ना (उ, छ०) ।

५. जहामिसी (छ०, छ) ।

९७—महापभावस्त महाजसस्त
मियाइ पुत्तस्स निसम्म भासियं ।
तवप्पहाणं चरियं^१ च उत्तमं
गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं ॥

९८—वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं
ममत्तबंधं च महब्भयावहं ।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं
धारेह निब्बाणगुणावहं* महं ॥
—ति बेमि ॥

महाप्रभावस्त महाजसः
मृगायाः पुत्रस्य निशम्य भक्षितम् ।
तपः-प्रधानं चरितं शीतलं
प्रधान-गति च त्रिलोक-विश्रुताम् ॥

बिषाय दुःख-विवर्धनं वनं
ममत्त्व-बन्धं च महाभयावहम् ।
सुखावहं धर्म-धुरामनुत्तरं
धारय निर्वाण-गुणावहं महतीम् ॥
—इति ब्रवीमि ।

६७—“महा प्रभावशाली, महान् यशस्वी
मृगा-पुत्र का कथन, तप-प्रधान उत्तम-
आचरण और त्रिलोक-विश्रुत प्रधान-गति
(मोक्ष) को सुनकर—

६८—वन को दुःख बढ़ानेवाला और ममता
के बन्धन को महान् भयंकर जानकर सुख देने
वाली, अनुत्तर निर्वाण के गुणों को प्राप्त कराने
वाली, महान् धर्म की धुरा को धारण करो ।”
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. चरियं (अ) ।

२. नेब्बाणु* (अ) ।

विंशद्वयं अष्टादशयुगं :
महानियण्टिज्जं

विंशति अभ्युयन :
महानिर्ग्रन्थीय

आप्सुषा

मगध देश का सम्राट् ओणिक एक बार विहार-यात्रा के लिए मंडितकुङ्गि नामक उद्यान में आया। घूम-फिर कर उसने उद्यान की शोभा निहारी। देखते-देखते उसकी आँखें एक ध्यानस्थ मुनि पर जा टिकी। राजा पास में गया। वन्दना की। मुनि के रूप-लावण्य को देख वह अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने पूछा—‘मुने! भोग-काल में संन्यास-ग्रहण की बात समझ में नहीं आती। आप तरुण हैं, भोग भोगने योग्य हैं। इस अवस्था में आप मुनि क्यों बने?’ मुनि ने कहा—‘राजन्! मैं अनाथ हूँ। मेरा कोई भी नाथ नहीं है, ज्ञाण नहीं है। इसीलिए मैं मुनि बना हूँ।’ राजा ने मुस्कराते हुए कहा—‘शरीर-सम्पदा से आप ऐश्वर्यशाली लगते हैं फिर अनाथ कैसे? कुछ भी हो मैं आपका नाथ बनता हूँ। आप मेरे साथ चलें। सुखपूर्वक भोग भोगें। मुने! मनुष्य-भव बार-बार नहीं मिलता।’ मुनि ने कहा—‘तुम स्वयं अनाथ हो। मेरे नाथ कैसे बन सकोगे?’ राजा को यह वाक्य तीर की भाँति चुभा। उसने कहा—‘मुने! आप झूठ क्यों बोलते हैं। मैं अपार-सम्पत्ति का स्वामी हूँ। मेरे राज्य में मेरी हर आज्ञा अखण्ड रूप से प्रवर्तित होती है। मेरे पास हजारों हाथी, घोड़े, रथ, सुभट और नौकर-चाकर हैं। सारी सुख-सामग्री उपनीत है। मेरे आश्रय में हजारों व्यक्ति पढ़ते हैं। ऐसी अवस्था में मैं अनाथ कैसे?’ मुनि ने कहा—‘तुम अनाथ का अर्थ नहीं जानते और नहीं जानते कि कौन व्यक्ति कैसे सनाथ होता है और कैसे अनाथ?’

मुनि ने आगे कहा—‘मैं कौशाम्बी नगरी में रहता था। मेरे पिता अपार धन-राशि के स्वामी थे। हमारा कुल सम्पन्न था। मेरा विवाह उच्च कुल में हुआ था। एक बार मुझे असह्य आँसू-रोग उत्पन्न हुआ। उसको मिटाने के लिए नानाविध प्रयत्न किए गए। पिता ने अपार धन-राशि का व्यय किया। सभी परिवार वालों ने नानाविध प्रयत्न किए, पर सब व्यर्थ। मेरे सगे-सम्बन्धियों ने मेरी वेदना पर अपार आँसू बहाए। पर मेरी वेदना को वे न बँटा सके। यह थी मेरी अनाथता। यदि इस पीड़ा से मैं मुक्त हो जाऊँ तो मैं मुनि बन जाऊँ—इस संकल्प को साथ ले मैं सो गया। जैसे-जैसे रात बीती वैसे-वैसे रोग शान्त होता गया। सूर्योदय होते-होते मैं स्वस्थ हो गया। मैं साधु बना—मैं अपना नाथ बन गया। अपना ज्ञान मैं स्वयं बन गया। त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का नाथ बन गया। उन सबको मुझ से ज्ञान मिल गया। यह है मेरी सनाथता। मैंने आत्मा पर शासन किया—यह है मेरी सनाथता। मैं ब्राम्हण का विधिपूर्वक पालना करता हूँ—यह है मेरी सनाथता।’

राजा ने सनाथ और अनाथ का यह अर्थ पहली बार सुना। उसके ज्ञान-चक्षु खुले। वह बोला—‘महर्षे! आप ही वास्तव में सनाथ और सबान्धव हैं। मैं आपसे धर्म का अनुशासन चाहता हूँ।’ (श्लोक ५५)

मुनि ने उसे निर्ग्रन्थ धर्म की दीक्षा दी। वह धर्म में अनुरक्त हो गया।

इस अध्ययन में अनेक विषय चर्चित हुए हैं—

१—आत्मकर्तृत्व के लिए ३६, ३७ एवं ४८ श्लोक मननीय हैं।

२—४४वें श्लोक में विषयोपपन्न धर्म के परिणामों का दिग्दर्शन है। जैसे पीया हुआ कालकूट विष, अविविध से पकड़ा हुआ शस्त्र और अनियन्त्रित तेलाल विनाशकारी होता है, वैसे ही विषयों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है।

३—द्रव्य-लिंग से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती; इसके लिए ४९ से ५० श्लोक मननीय हैं।

मिलाइए—सुख निपात—महावग—पवज्जा सुख।

विसङ्गमं अज्ज्ञयणं : विंशति अध्ययन महानियण्टिज्जं : महानिर्घन्धीयम्

	मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुबाध
१—	सिद्धाणं नमो किञ्चा संजयाणं च भावओ । अत्यधम्मगइ ^१ तच्च अणुसट्ठिं सुण्ह मे ॥	सिद्धेभ्यो नमः कृत्वा संयतेऽवदम्भ भावतः । अर्थ-धर्म-गतिं तच्छायाम् अनुशिष्टिं शृणुत मे ॥	१—सिद्धों और संयत-आत्माओं को भाव-धरा तमस्कार कर मैं अर्थ (साध्य) और धर्म का ज्ञान कराने वाली तध्य-पूर्ण अनुशासना का निरूपण करता हूँ । वह मुझसे मुनो ।
२—	पभूयरयो राया सेणिओ मगहाहिवो । विहारजतं तिज्जाओ मण्डिकुच्छिसि चेइए ॥	प्रभूत-रत्नों राजा श्रेणिको मगधाधिपः । बिहार-यात्रां निर्यातः मण्डिकुलो जैत्ये ॥	२—प्रचुर रत्नों से सम्पन्न, मगध का अधिपति राजा श्रेणिक मण्डिकुलि नामक उद्यान में बिहार-यात्रा (क्रीड़ा-यात्रा) के लिए गया ।
३—	नाणादुमलयाइणं नाणापक्खिनिसेवियं । नाणाकुसुमसंछन्नं उज्जाणं नन्दणोवमं ॥	नाना-द्रव्य-लताकीर्णं नाना-पक्षि-निषेवितम् । नाना-कुसुम-संछन्नम् उद्यानं नन्दनोपमम् ॥	३—वह उद्यान नाना प्रकार के द्रव्यों और लताओं से आकीर्ण, नाना प्रकार के पक्षियों से आश्रित, नाना प्रकार के कुसुमों से पूर्णतः ढका हुआ और नन्दनवन के समान था ।
४—	तत्थ सो पासई साहुं संजयं सुसमाहित्यं । निसल्लं रुक्खमूलम्मि सुकुमालं सुहोइयं ॥	तत्र स पश्यति साधुं संयतं सुसमाहितम् । निवर्णं वृक्ष-मूले सुकुमारं सुलोचितम् ॥	४—यहाँ राजा ने संयत, मानसिक समाधि से सम्पन्न, वृक्ष के पास बैठे हुए सुकुमार और सुल्ल भोगने योग्य साधु को देखा ।
५—	तस्स रूपं तु पासित्ता राइणो तम्मि संजए । अकन्तपरमो आसी अउलो रूपविम्हओ ॥	तस्य रूपं तु दृष्ट्वा राजा तस्मिन् संयते । अत्यन्त-परम आसीत् अतुलो रूप-विस्मयः ॥	५—उसके रूप को देखकर राजा उस संयत के प्रति आकृष्ट हुआ और उसे अत्यन्त अकृष्ट और अनुजनीय विस्मय हुआ ।

१. ० गसं (अ) ; ० वई (इ ० पा ०) ।

६—अहो ! वण्णो अहो ! ख्वं
अहो ! अज्जस्स सोमया ।
अहो ! खन्ती अहो ! मुत्तो
अहो ! भोगे असंगया ॥

अहो ! वणो अहो ! रूपम्
अहो ! आर्यस्य सोमता ।
अहो ! क्षान्तिरहो ! मुक्तिः
अहो ! भोगेऽसङ्गता ॥

६—आश्चर्य ! कैसा वर्ण और कैसा रूप है ।
आश्चर्य ! आर्य की कैसी सोम्यता है ।
आश्चर्य ! कैसी धमा और निर्लोभता है ।
आश्चर्य ! भोगों में कैसी अनासक्ति है ।

७—तस्स पाए उ बन्दिता
काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूरमणासन्ने^१
पंजली पडिपुच्छई ॥

तस्य पादो तु बन्दिता,
कृत्वा च प्रदक्षिणाम् ।
नातिदूरमनासन्नेः
प्राञ्जलिः प्रतिपृच्छति ॥

७—उसके चरणों में नमस्कार और
प्रदक्षिणा कर न अतिदूर न अतिनिष्ठ रह राजा
ने हाथ जोड़कर पूछा ।

८—तरुणो सि अज्जो ! पव्वइओ
भोगकालम्मि संजया ! ।
उवट्ठिओ^२ सि सामण्णे
एयमट्ठं सुणेमि ता ॥

तरुणोऽस्यायं ! प्रव्रजितः
भोग-काले संयत ! ।
उपस्थितोऽसि भ्रामण्ये
एनमर्थं शृणोमि तावन् ॥

८—“आर्य ! अभी तुम तरुण हो । संयत !
तुम भोग-काल में प्रव्रजित हुए हो, भ्रामण्य के
लिए उपस्थित हुए हो, इसका क्या प्रयोजन है ?
मैं सुनना चाहता हूँ ।”

९—अणाहो मि महाराय !
नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पगं सुहि वावि
'कंचि नाभिससेमइ'^३ ॥

अनायोऽस्मि महाराज !
नाथो मम न विद्यते ।
अनुकम्पकं सुहृदं वापि
कंचिन्नाभिससेम्यहम् ॥

९—“महाराज ! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई
नाथ नहीं है । मुझ पर अनुकम्पा करने वाला
या मित्र कोई नहीं पा रहा हूँ ।”

१०—तओ सो पव्हसिओ राया
सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्डिमन्तस्स
कहं नाहो न विज्जई ? ॥

ततः स प्रहमितो राजा
श्रेणिको मगधाधिपः ।
एवं ते श्रद्धिमतः
कथं नाथो न विद्यते ? ॥

१०—यह सुनकर मगधाधिपति राजा
श्रेणिको जोर से हँसा और उसने कहा—“तुम
ऐसे सहज सोभाम्यन्त्राली हो फिर कोई तुम्हारा
नाथ कैसे नहीं होगा ?

१. निस्सण्णो वाइत्थरिस्स (भा०) ।

२. उवट्ठितो (वृ० पा०) ।

३. कंचीनादि तुमे मयं (वृ०, छ०) ; कंची नाभिससेमइ (वृ० पा०) ।

११—होमि नाहो भयन्ताणं !
भोगे भुंजाहि संजया ! ।
मिसनाईपरिवुडो
माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥

१२—अप्पणा वि अणाहो सि
सेणिया ! मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो सन्तो
कहं^१ नाहो भविस्ससि ? ॥

१३—एवं वुत्तो नरिन्दो सो
मुसंभन्तो सुविम्विओ ।
वयणं अस्सुपपुव्वं
साहुणा विम्वह्यन्निओ^२ ॥

१४—अस्सा हत्थी मणुस्सा मे
पुरं अन्तेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोगे^३
आणाइस्सरियं च मे ॥

१५—एरिसे सम्पयग्गम्मि^४
सव्वकामसम्मिए ।
कहं अणाहो भवइ ?
'मा ह्नु भन्ते ! मुसं वए'^५ ॥

१६—न तुमं जाणे अणाहस्स
अत्थं 'पोत्थं व'^६ पत्थिवा ! ।
जहा अणाहो भवई
सणाहो वा नराहिवा ? ॥

भवामि नाथो भवन्तानां !
भोगान् भुङ्क्ष्व संयत ! ।
मित्र-ज्ञाति-परिवृतः
मानुष्यं ललु कुलंभम् ॥

आत्मनाप्यनाथोऽसि
श्रेणिक ! मगधाधिप ! ।
आत्मनाज्ज्ञातः सन्
कथं नाथो भविष्यसि ? ॥

एवमुक्त्वो नरेन्द्रः सः
सुसम्भ्रान्तं सुविस्मितः ।
वचनमभ्युतपूर्वं
साधुना विस्मयान्वितः ॥

अथवा हस्तिनो मनुष्या मे
पुरमन्तःपुरं च मे ।
भुज्जिम मानुषान् भोगान्
आज्ञां शक्यं च मे ॥

ईदृशे सम्पदप्रे
समर्पित-सव्वकामे ।
कथमनाथो भवामि ?
मा ललु भवन्त ! मृषावादीः ॥

न त्वं जानीषेज्ज्ञायस्य
अर्थं प्रोत्थां वा पार्थिव ! ।
यथाज्ञाथो भवन्ति
सनाथो नराधिप ? ॥

११—“हे भदन्त ! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ ।
संयत ! मित्र और ज्ञातियों से परिवृत होकर
विषयों का भोग करो ! यह मनुष्य-जन्म बहुत
दुर्लभ है ।”

१२—“हे मगध के अधिपति श्रेणिक ! तुम
स्वयं अनाथ हो । स्वयं अनाथ होते हुए भी तुम
दूसरों के नाथ कैसे होओगे ?”

१३—“श्रेणिक पहले ही विस्मयान्वित बना
हुआ था और साधु के द्वारा—तू मनाथ है—
ऐसा अनुत्तमपूर्व-वचन कहें जाने पर वह अत्यन्त
व्याकुल और अत्यन्त आश्चर्यमन्त हो गया ।

१४—“मेरे पास हाथी और घोड़े हैं, तगर
और अन्तःपुर हैं, मैं मनुष्य सम्बन्धी भोगों को
भोग रहा हूँ, आज्ञा और ऐश्वर्य मेरे पास हैं ।

१५—“जिसने मुझे सब काम-भोग समर्पित
किए हैं वैसे उलूखट सम्पदा होते हुए मैं अनाथ
कैसे हूँ ? भदन्त ! असत्य मत बोलो ।”

१६—“हे पार्थिव ! तू अनाथ शब्द का अर्थ
और उसकी उत्पत्ति—मैंने तुझे अनाथ क्यों
कहा—इसे नहीं जानता, इसलिए जैसे अनाथ
या समाध होता है, वैसे नहीं जानता ।

१. ललु (ल) ।

२. विम्वह्यन्निओ (अ, व, लु०) ।

३. कोए (अ) ।

४. सम्पयग्गम्मि (बु० पा०) ।

५. म्ही ! माहु मुसं वए (वु० पा०) ।

६. उत्थं व (वु०); पोत्थं च (अ); पोत्थं व (बु० पा०) ।

१७—सुणेह मे महाराय !
अव्वक्खित्तेण^१ चेयसा ।
जहा अणाहो भवई
जहा मे य पवत्तियं ॥

१८—कोशाम्बी नाम नयरी
पुराणपुरभेयणी^२ ।
तत्थ आसी पिया भज्ज
पभूयधणसंचओ ॥

१९—पढमे वए महाराय !
अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो^३ दाहो
'सव्वंगेसु य'^४ पत्थिवा ! ॥

२०—सत्थं जहा परमतत्त्वं
सरीरविवरन्तरे^५ ।
पवेसेज्ज^६ अरी कुढो
एवं मे अच्छिवेयणा ॥

२१—तियं मे अन्तरिक्षं च
उत्तमंगं च पीडयति ।
इन्द्रासणिस्मा घोरा
वेयणा परमदाहणा ॥

शृणु मे महाराज !
अव्व्याप्पित्तेन चेतसा ।
यथाज्ञाद्यो भवति
यथा मया च प्रवर्तितम् ॥

कौशाम्बी नाम नगरी
पुराणपुर-भेदिनी ।
तत्रासीन् पिता मम
प्रभूत-धन-संचयः ॥

प्रथमे वयसि महाराजः !
अतुला मेऽग्नि-वेदना ।
अभूत् विपुलो दाहः
सर्वाङ्गेषु च पाचिषः ॥

शस्त्रं यथा परम-तीक्ष्णं
शरीर-विबरान्तरे ।
प्रवेदयिष्यतिः क्रुद्धः
एवं मेऽग्नि-वेदना ॥

जिह्वं मे अन्तरेण्ड्रं च
उत्तमांगं च पीडयति ।
इन्द्राग्नि-स्मा घोरा
वेदना परम-दाहणा ॥

१७—“महाराज ! तू अव्याकुल चित्त से
सुन—जैसे कोई पुण्य बनाय होता है और
जिस रूप में मैंने उसका प्रयोग किया है ।

१८—“प्राचीन नगरी में असाधारण
सुन्दर कौशाम्बी नाम की नगरी है । वहाँ
मेरे पिता रहते हैं । उनके पास प्रचुर धन का
संचय है ।

१९—“महाराज ! प्रथम-वय (यौवन)
में मेरी आँखों में असाधारण वेदना उत्पन्न
हुई । पाचिष ! मेरा समूचा शरीर पीड़ा देने
वाली जलन से जल उठा ।

२०—“जैसे क्रुधित बना हुआ शत्रु शरीर
के छेदों में अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्रों को घुसेलता,
है, उसी प्रकार मेरी आँखों में वेदना हो
रही थी ।

२१—“मेरे कटि, हृदय और मस्तिष्क में
परम दारुण वेदना हो रही थी, जैसे इन्द्र का
वज्र लगने से घोर वेदना होती है ।

१. अव्विक्खित्तेण (ज्ञ०) ।

२. महाराज पुण्यभेयणं (वृ० पा०) ।

३. तितलो (वृ०); चित्तो (वृ० पा०) ।

४. सव्वंगेसु (वृ०); सव्वंगेसु च (वृ० पा०) ।

५. सरीर कीच अंतरे (वृ० पा०) ।

६. जाचिज्ज (च, व० पा०, वृ०) ।

२२—उवट्ठिया मे आयरिया
विज्जामन्ततिगिच्छा^१ ।
'अबीया सत्थकुसला'^२
मन्तमूलविसारया ॥

उपस्थिता मे आचार्याः
विज्ञा-मन्त्र-चिकित्सकाः ।
अद्वितीयाः शास्त्र-कुशलाः
मन्त्र-मूल-विशारदाः ॥

२२—'विज्ञा और मन्त्र के द्वारा चिकित्सा करने वाले मन्त्र और औषधियों के विशारद अद्वितीय शास्त्र-कुशल प्राणाचार्य मेरी चिकित्सा करने के लिए उपस्थित हुए ।

२३—ते मे तिगिच्छं कुव्वन्ति
चाउप्पायं जहाहियं ।
न य दुक्खा विमोचयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

ते मे चिकित्सां कुर्वन्ति
चतुष्पादां यथा हितम् ।
न च दुःखाद् विमोचयन्ति
एषा समाप्तायता ॥

२३—'उन्होंने जैसे मेरा हित हो वैसे चतुष्पाद-चिकित्सा (बंध, रोगी, औषध और परिचारक) की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनायता है ।

२४—पिया मे सव्वसारं पि
दिज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा^३ विमोएइ^४
एसा मज्झ अणाहया ॥

पिता मे सर्वसारमपि
वद्यान्मम कारणान् ।
न च दुःखाद् विमोचयति
एषा समाप्तायता ॥

२४—'मेरे पिता ने मेरे लिए उन प्राणाचार्यों को बहुमूल्य वस्तुएँ दीं, किन्तु वे (पिता) मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनायता है ।

२५—माया य^५ मे महाराय !
पुत्तसोगदुहट्ठिया^६ ।
न य दुक्खा^७ विमोएइ^८
एसा मज्झ अणाहया ॥

माता च मे महाराज !
पुत्र-सोक-दुःखार्ता ।
न च दुःखाद् विमोचयति
एषा समाप्तायता ॥

२५—'महाराज ! मेरी माता पुत्र-शोक के दुःख से पीड़ित होती हुई भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनायता है ।

२६—आयरो^९ मे महाराय !
सगा जेठ्ठकणिट्ठया ।
न य दुक्खा^{१०} विमोचयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

भ्रातरौ मे महाराज !
स्वका ज्येष्ठ-कनिष्ठकाः ।
न च दुःखाद् विमोचयन्ति
एषा समाप्तायता ॥

२६—'महाराज ! मेरे बड़े-छोटे सगे भाई भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनायता है ।

१. ० विगिच्छा (ञ०) ।

२. नामा सत्थत्थ कुसला (वृ० पा०) ; अभीया..... (अ) ।

३. दुक्खाओ (ञ०) ; दुक्खाड (ड) ।

४. विमोचयति (व०) । एवं सर्वत्र ।

५. पि (ड) ।

६. ० दुहट्ठिया (वृ० पा०) ।

७. दुक्खाओ (ञ०) ; दुक्खाड (ड) ।

८. भाया (ड) ।

९. दुक्खाओ (ञ०) ; दुक्खाड (ड) ।

२७—भइणीओ मे महाराय !
सगा जेइकणिट्ठया ।
न य दुक्खा^१ विमोचयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

२८—भारिया मे महाराय !
'अणुरक्ता अणुव्वया'^२ ।
अंसुपुण्णेहि नयणेहि
उरं मे परिसिचई ॥

२९—अन्नं पाणं च ण्हाणं च
गन्धमल्लविलेपणं ।
'मए नायमणायं वा'^३
सा बाला नांवभुंजई ॥

३०—खणं पि मे महाराय !
पासाओ वि^४ न फिट्ठई ।
न य दुक्खा विमोचइ
एसा मज्झ अणाहया ॥

३१—तओ हं एवमाहंसु
दुक्खमा हू पुणो पूणो ।
वेयणा अणुभविउं जे
संसारम्मि अणन्तए ॥

३२—सई^५ च जइ मुच्चेज्जा
वेयणा विउला इओ ।
खत्तो दन्तो निरारम्भो
पव्वए^६ अणारियं ॥

भगिन्यो मे महाराज !
स्वका ज्येष्ठ-कनिष्ठकाः ।
न च दुःखाद् विमोचयन्ति
एषा ममाज्ञायता ॥

भार्या मे महाराज !
अनुरक्ताऽनुवता ।
अधु-पूर्णाभ्यां नयनाभ्याम्
उरो मे परिक्षिति ॥

अन्नं पानं च स्नानं च
गन्ध-मास्य-विलेपनम् ।
मया ज्ञातमज्ञातं वा
सा बाला नोपभुङ्क्ते ॥

अणमपि मे महाराज !
पाइवंतोपि न भ्रश्यति ।
न च दुःखाद् विमोचयति
एषा ममाज्ञायता ॥

ततोऽहमेवमबोचम्
दुःक्षमा खलु पुनः पुनः ।
वेदनाज्जुभक्षितं 'जे'
संसारैऽनन्तके ॥

सकृच्च यदि मुच्ये
वेदनया विपुल्या इतः ।
क्षान्तो दान्तो निरारम्भः
प्रक्रजेयमनगारिताम् ॥

२७—“महाराज ! मेरी बही-छोटी सगी
बहन भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—
यह मेरी अनापता है ।

२८—“महाराज ! मुझमें अनुरक्त और
परिव्रता मेरी पत्नी और भरे नयनों से मेरी
छानो को भिगाती रही ।

२९—“वह बाला मेरे प्रत्यक्ष या परोक्ष
मे अन्न, पान, स्नान, गन्ध, मास्य और
विलेपन का भोग नहीं कर रही थी ।

३०—“महाराज ! वह क्षण भर के लिए
भी मरने से दूर नहीं हो रही थी, किन्तु वह
मैंने दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी
अनापता है ।

३१—“तब मैंने इस प्रकार कहा—इस
अन्त संसार में बार-बार दुस्साहस वेदना का
अनुभव करना होता है ।

३२—“इस विपुल वेदना से यदि मैं एक
बार ही मुक्त हो जाऊँ तो काल, दान्त और
निरारम्भ होकर अनगारिता को स्वीकार
कर लूँ ।

१. दुक्खाओ (ऋ०); दुक्खाउ (उ०) ।

२. अणुरक्तमणुव्वया (उ०, ऋ०); अणुरक्तमणुव्वया (ऋ० पा०) ।

३. तारिसं रोममावणं (ऋ० पा०) ।

४. य (अ, आ, उ) ।

५. सयं (उ, ह०); सयं (अ) ।

६. पव्वए (उ०) ।

३३—एवं च चिन्तयित्वा
पमुत्तो मि नराहिवा ! ।
परियट्ठन्तीए राईए
वेयणा मे खयं गया ॥

एवं च चिन्तयित्वा
प्रमुक्षोऽस्मि नराधिप ! ।
परिवर्तमानायां रात्रौ
वेदना मे क्षयं गता ॥

३३—“हे नराधिप ! ऐसा चिन्तन कर
मैं सो गया । बीतती हुई रात्रि के साथ-साथ
मेरी वेदना भी क्षीण हो गई ।

३४—तओ कल्ले पभायस्मि
आपुच्छित्ताण बन्धवे ।
खन्तो दन्तो निरारम्भो
पव्वइओऽणगारिय ॥

ततः कल्यः प्रभाते
आपृच्छ्य बान्धवान् ।
क्षान्तो दान्तो निरारम्भः
प्रव्रजितोऽनगारिताम् ॥

३४—“उसके पस्चात् प्रभातकाल में मैं
स्वस्थ हो गया । मैं अपने बन्धु-जनों को पूछ,
क्षान्त, दान्त और निरारम्भ होकर अनगर-
वृत्ति में आ गया ।

३५—ततो हं नाहो जाओ
अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसि चैव भूयाणं
तसाण थावराण य ॥

ततोऽहं नाथो जातः
आत्मनश्च परस्य च ।
सर्वेषां चैव भूतानां
ऋसानां त्वावराणां च ॥

३५—“तब मैं अपना और दूसरों का
सभी—जस और त्वावर जीवों का नाथ हो
गया ।

३६—अप्पा नई वेयरणो
अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेनु
अप्पा मे नन्दणं वणं ॥

आत्मा नवी वैतरणी
आत्मा मे कूट-आत्मली ।
आत्मा काम-बुधा धेनुः
आत्मा मे नन्दनं वनम् ॥

३६—“मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है
और आत्मा ही कूट आत्मली वृक्ष है, आत्मा
ही काम-बुधा-धेनु है और आत्मा ही नन्दन-
वन है ।

३७—अप्पा कत्ता विकत्ता य
दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च
दुप्पट्ठियसुपट्ठिओ ॥

आत्मा कर्ता विकर्ता च
दुःखानां च सुखानां च ।
आत्मा मित्रममित्रं च
दुष्प्रस्थितः सुप्रस्थितः ॥

३७—“आत्मा ही दुःख-सुख की करने
वाली और उनका क्षय करने वाली है ।
सत्प्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा ही मित्र है और
दुष्प्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा ही शत्रु है ।

३८—इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !
तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि ।
नियण्ठधम्मं लहियाण वी जहा
सीयन्ति एगे बहुकायरा नरा ॥

इयं खलु अन्याप्यनाथता गृप !
तामेकचित्तो निभूतः शृणु ।
निग्रन्थ-धर्मे लब्ध्वाऽपि यथा
सौख्यस्यैक बहुकालरा नराः ॥

३८—“हे राजन् ! यह एक दूसरी
अनाथता ही है । एकाग्र-चित्त, स्थिर-क्षान्त
होकर तुम उसे मुक्त से सुनो ! जैसे कई एक
व्यक्ति बहुत कायर होते हैं ! वे निग्रन्थ-धर्म
को पाकर भी कष्टानुभव करते हैं—निग्रन्था-
चार का पालन करने में शिथिल हो जाते हैं ।

३९—जो पञ्चदशताण महव्यवसायं
सम्भं नो 'कासयई' पमाया ।
अनिगहत्वा य रसेषु गिद्धे
न मूल्यो छिन्दइ बन्धनं से ॥

४०—आउत्तया जस्स न अत्थि काइ
इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाणनिकसेवदुगु छणाए
न वीरजाय^१ अणुजाइ मगं ॥

४१—चिरं पि से मुण्डरूई भवित्ता
अधिरव्वए तव नियमेहि भट्टे ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता
न पारए होइ हु संपराए ॥

४२—'पोल्ले व'^२ मुट्ठी जह से असावे
अयत्तिए कूडकहावणे वा ।
राढामणी बेरलियप्पमाणे^३
अमहरवए होइ य जाणएमु ॥

४३—कुसीललिगं इह धारइत्ता
इसिज्जकयं जीविय बूहइत्ता ।
असंजए संजयलप्पमाणे^४
विणिवायमागच्छइ से चिरं पि ॥

यः प्रवक्ष्य महाव्रतानि
सम्यक् च नो स्पृशति प्रमादात् ।
अनिग्रहात्मा च रसेषु गुडः
न मूलतः छिनत्ति बन्धनं सः ॥

आयुक्ता यस्य नास्ति कापि
ईर्यायां भाषायां तथैवणायाम् ।
आदान-निक्षेप-जगुप्सनायां
न वीरयातमनुयाति मार्गम् ॥

चिरमपि स मुण्ड-रुचिभूत्वा
अस्थिर-व्रतस्तपो-नियमैर्म्यो ज्ञष्टः ।
चिरमप्यात्मानं क्लेशयित्वा
न पारगो भवति क्षलु संपरायस्य ॥

'पोल्ला' एव मुष्टयं वा सोऽसारः,
अयन्निव्रतः कूट-कावपिणो वा ।
राढा-मणिवैडूर्य-प्रकाशः
अमहाघर्षो भवति च श्रेष्ठ ॥

कुसील-लिगमिह धारयित्वा
इसिज्ज-कयं जीविकां बूहयित्वा ।
असंयतः संयतं रूपम्
विनिघातमागच्छति स चिरमपि ॥

३९—'जो महाव्रतों को स्वीकार कर
भलीभाँति उनका पालन नहीं करता, अपनी
आत्मा का निग्रह नहीं करता, रसों में मूच्छित
होता है, वह बन्धन का मूलोच्छेद नहीं कर
पाता ।

४०—'ईर्या, भाषा, एवणा, आदान-
निक्षेप और उच्चार-प्रवचन की परिस्थापना
में जो सावधानी नहीं बर्तता, वह उस मार्ग
का अनुगमन नहीं कर सकता जिस पर वीर-
गुलब बले हैं ।

४१—'जो व्रतों में स्थिर नहीं है, तप
और नियमों से ज्ञष्ट है, वह चिरकाल से
मुण्डन में रुचि रखकर भी और चिरकाल तक
आत्मा को कष्ट देकर भी संसार का पार नहीं
पा सकता ।

४२—'जो पोली मुट्ठी की भाँति असार
है, जोटे सिक्के की भाँति नियन्त्रण-रहित है,
काचमणि होते हुए भी वैडूर्य जैसे धमकता है,
वह जानकार व्यक्तियों की दृष्टि में मूल्य-हीन
हो जाता है ।

४३—'जो कुसील-वेष्टा और इसिज्ज-व्यज
(रजोहरण बादि मुनि-चिन्तों) को धारण
कर उनके द्वारा जीविका चलाता है, असंयत
होते हुए भी अपने आपको संयत कहता है,
वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है ।

१. कासइ (ड, ऋ०) ।

२. वीरजाय (ड०) ।

३. पोहारा (ड० पा०) ।

४. ^० काममाणे (ड० पा०) ।

४४—‘विसं तु पीयं’^१ जह कालकूडं
हणाइ सत्थं जह कुगहीयं ।
‘एसे व’^२ धम्मो विसओववन्तो
हणाइ वेयाल इवाविक्कन्तो^३ ॥

विषं तु पीतं यथा कालकूट
हन्ति शस्त्रं यथा कुगुहीतम् ।
एष एवं धर्मो विषयोपपन्नः
हन्ति वेताल इवाविक्कन्तः ॥

४४—‘पिया हुआ काल-कूट विष,
अविधि से पकड़ा हुआ शस्त्र और नियन्त्रण में
नहीं लाया हुआ वेताल जैसे विनाशकारी
होता है, ऐसे ही यह विषयों से युक्त धर्म भी
विनाशकारी होता है ।

४५—जे लक्खणं सुविण पउजमाणे
निमित्तकोअहलरं पगाडे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवो
न गच्छई सरणं तम्मि काले ॥

यो लक्षणं स्वप्नं प्रयुज्जानः
निमित्त-कृतहल-संप्रगाढः ।
कुहेट-विद्याभ्यन्तार-जीवो
न गच्छति शरणं तस्मिन् काले ॥

४५—“जो लक्षण-शास्त्र, स्वप्न-शास्त्र का
प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कोतुक कार्य
में अत्यन्त आसक्त है, मिथ्या आश्चर्य उत्पन्न
करने वाले विद्यार्थक आश्रय द्वार से जीविका
चलाता है, वह कर्म का फल भुगतने के समय
किसी की शरण को प्राप्त नहीं होता ।

४६—तमंतमेणव उ से असीले
सया दुही विपरियामुवेइ^४ ।
संधावई नरगतिरिक्खजोणि
मोणं विराहेत्तु असाहुल्लवे ॥

तमस्तमसंब तु स अशोलः
सदा दुःखो विपर्यासमुपैति ।
संधावति नरक-तिर्यग्-योनीः
मोनं विराध्याऽसाधु-रूपः ॥

४६—“वह शील-रहित साधु अपने तीव्र
अज्ञान से सतत दुःखी होकर विपरीत दृष्टि-
वाला हो जाता है । वह असाधु प्रकृति वाला
मुनि धर्म की विराधना कर नरक और तिर्यग्-
योनि में जाता-जाता रहता है ।

४७—उदेसियं कीयगडं नियागं
न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खो भवित्ता
इओ चुओ गच्छई कट्टु पावं ॥

ओहं शिकं क्रीत-कृतं नित्याग्रं
न मुञ्चति किञ्चिदनेषणीयम् ।
अग्निरिव सर्वभक्षी भूत्वा
इतच्छ्रुतो (दुर्गति) गच्छति कृत्वा
पापम् ॥

४७—“जो ओहं शिक, क्रीतकृत, नित्याग्र
और कुछ भी अनेषणीय को नहीं छोड़ता, वह
अग्नि की तरह सर्व-भक्षी होकर, पाप-कर्म
का अर्जन करता है और यहाँ से मरकर दुर्गति
में जाता है ।

४८—न तं अरी कण्ठछेत्ता करेइ
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा^५ ।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥

न तस्मिन् कण्ठछेत्ता करोति
यं तस्य करोत्यात्मनोया दुरात्मता ।
स त्मात्यति मृष्य-मुलं तु प्राशः
पश्चादनुतापेन दया-विहीनः ॥

४८—‘अपनी दुष्प्रवृत्ति जो अनर्थ उत्पन्न
करती है वह अनर्थ मला काटने वाला शत्रु
भी नहीं करता । वह दुष्प्रवृत्ति करने वाला
दया-विहीन मनुष्य मृत्यु के मूल में पहुँचने के
समय पश्चात्ताप के साथ इस तथ्य को जान
पाएगा ।

१. विसं पिबिता (अ, आ) ; किसं पिबन्ती (इ०) ।

२. एल्लो वि (अ) ; एल्लो व (इ०) ।

३. इवाविक्कन्तो (इ० पा०) ।

४. एसेइ (अ) ।

५. दुरप्पया (इ०) ।

४९—निरट्टिया नगच्छे उ तस्स
जे उत्तमट्टं विवज्जासमेई ।
इमे वि से नत्थि परे वि लीए
दुहो वि से भिज्जइ तत्थ लीए ॥

५०—एमेवऽहाछन्दकुसीलरूवे
मगं विराहेतु जिणुत्तमाणं ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा
निरट्टसोया परियावमेइ ॥

५१—सोच्चाण मेहावि सुभासियं इमं
अणुसासणं नाणगुणोववेयं ।
मगं कुसीलाण जहाय सव्वं
महानियण्ठाण वए पहेणं ॥

५२—चरितमायारगुणन्निए' तओ
अणुत्तरं संजम पालियाणं ।
निरासवे संखवियाण कम्मं
उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥

५३—एवुगदन्ते वि महातवोधणे
महामुणो महापइन्ने महायसे ।
महानियण्ठिज्जमिणं महामुयं
से काहए महया वित्थरेणं ॥

५४—तुटो य सेणिओ राया
इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहतं जहाभूयं
सुट्ठ मे उवदंसियं ॥

निराधिका नाम्ब-हविस्तु तस्य
य उत्तमायं विपर्यासमेति ।
अथमपि तस्य नास्ति करोऽपिलोकः
द्विधातोपि स शीयते तत्र लोके ॥

एवमेव ययान्छन्दकुसीलरूपः
मगं विराध्य जिनोत्तमानाम् ।
कुररी इव भोग-रसानुगुद्धा
निरय-शोका परितपमेति ॥

श्रुत्वा मेधावी सुभाषितमिदं
अनुशासनं ज्ञान-गुणोपेतम् ।
मार्गं कुशीलानां हित्वा सर्वं
महानिग्रन्थानां व्रजेत् पथा ॥

चरित्राचारगुणान्वितस्ततः
अनुत्तरं संयमं पालयित्वा ।
निरासवः संक्षपत्य कर्म
उपैति स्थानं विपुलोत्तमं ध्रुवम् ॥

एवमुपवान्तोपि महातपोधनः
महामुनिर्महाप्रतिज्ञो महायशः ।
महानिग्रन्थीयमिदं महाधृतं
सोऽवीकयन् महता विस्तरेण ॥

तुष्टइव श्रेणिको राजा
इवमुदाहृ कृताञ्जलिः ।
अनापत्यं यथाभूतं
सुष्ठु मे उपवसितम् ॥

४९—“जो अन्तिम समय की आराधना में भी विपरीत बुद्धि रखता है—दुष्प्रवृत्ति को मत् प्रवृत्ति मानता है उसकी संयम-हवि भी निरर्थक है । उसके लिए यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं है । वह दोनों लोकों से अष्ट होकर दोनों लोकों के प्रयोजन की पूर्ति न कर सकने के कारण चिन्ता से छीज जाता है ।

५०—“इसी प्रकार यथाछन्द (स्वच्छन्द भाव से विहार करने वाले) और कुसील साधु विनोत्तम भगवान् के मार्ग की विराधना कर परित्याग का प्राप्त होते हैं, जैसे—भोग-रस में आसक्त होकर अर्थ-हीन चिन्ता करने वाली गीध पक्षिणी ।

५१—“मेधावी पुरुष इस सुभाषित, ज्ञान-गुण से युक्त अनुशासन को सुनकर कुशील व्यक्तियों के पूर्ण मार्ग को छोड़कर महा-निग्रन्थ के मार्ग से चले ।

५२—“फिर चरित्र के आचरण और ज्ञान आदि गुणों से सम्पन्न निग्रन्थ अनुत्तर गयम का पालन कर, कर्मों का क्षय कर निरासव होता है और वह विपुलोत्तम शारवत-मोक्ष में चला जाता है ।”

५३—इस प्रकार उग्र-दान्त, महा-तपोधन, महा-प्रतिज्ञ, महान् यशस्वी उस महामुनि ने इस महाधृत, महानिग्रन्थीय अध्ययन को महान् विस्तार के साथ कहा ।

५४—श्रेणिक राजा तुष्ट हुआ और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—
“सगबन् ! तुमने अनाप का यथायं स्वस्थ मुझे समझाया है ।

५५—तुज्जं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी ! ।
तुब्बे सणाहा य सबन्धवा य
जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं ॥

५६—तं सि नाहो अणाहाणं
सव्वभूयाण संजया ! ।
खामेमि ते महाभाग !
इच्छामि अणुसासितं ॥

५७—पुच्छिऊण मए तुब्बं
भाणविग्घो उ' जो कओ ।
निमन्तिओ' य भोगेहि
तं सव्वं मरिसेहि मे ॥

५८—एवं धुणित्ताण स रायसीहो
अणागरसिंहं परमाइ भत्तिए ।
'सओरोहो य सपरियणो य'^१
धम्मणुरत्तो विमलेण चेतसा ॥

५९—उत्तसियरोमकूवो
काऊण य पयाहिणं ।
अभिवन्दिऊण सिरसा
अइयाओ' नराहिवो ॥

६०—इयरो वि गुणसमिद्धो
तिगुत्तिमुत्तो तिदण्डविरओ य ।
विहग इव विष्णुमुक्को
विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥
—त्ति बेमि ॥

तब सुलद्धं सलु मनुष्य-जन्म
लाभा: सुलब्धाश्च स्वया महर्षे ! ।
यूयं सनायाश्च सन्धान्वाश्च
यश्च भवन्तः स्थिता मार्गे
जिनोत्तमागम् ॥

त्वमसि नाभोज्यायानां
सर्वभूतानां संयत ! ।
अमर्यामि त्वां महाभाग !
इच्छाम्यनुशासयितुम् ॥

पृष्ट्वा मया तव
ध्यान-विघ्नस्तु यः कृतः ।
निमन्त्रितश्च भोगे:
तन् सर्वं मर्षय मे ॥

एवं स्तुत्वा स राज-सिंहः
अनागार-सिंहं परमया भक्त्या ।
सावरोधश्च सपरिजनश्च
धर्मानुरक्तो विमलेन चेतसा ॥

उच्छ्र्वसित-रोमकूपः
कृत्वा च प्रदक्षिणाम् ।
अभिवन्द्य शिरसा
अतियातो नराधिपः ॥

इतरोऽपि गुण-समृद्धः
त्रिगुप्ति-गुणस्त्रिदण्ड-विरतश्च ।
विहग इव विप्रमुक्तः
विहरति वसुधां विगत-मोहः ॥

—इति ऋषीणि ।

५५—'हे महर्षि ! तुम्हारा मनुष्य-जन्म
सुलब्ध है—सफल है । तुम्हें जो उपलब्धियाँ
हुई हैं वे भी सफल हैं । तुम सनाय हो,
सन्धान्वा हो, क्योंकि तुम जिनोत्तम (तीर्थंकर)
के मार्ग में अवस्थित हो ।

५६—'तुम अनाथों के नाथ हो, तुम
सब जीवों के नाथ हो । हे महाभाग ! मैं
तुमसे क्षमा चाहता हूँ और तुमसे मैं
अनुशासित होना चाहता हूँ ।

५७—'मैंने तुमसे प्रश्न कर जो ध्यान में
विघ्न किया और भोगों के लिए निमन्त्रण
दिया उन सबको तुम मर्दन करो—क्षमा
करो ।'

५८—इस प्रकार राज-सिंह—अंगिक
अनागार-सिंह की परम भक्ति से द्युति कर
बपने विमल चित्त से रतिवास, परिजन और
बन्धु-जन सहित धर्म में अनुरक्त हो गया ।

५९—राजा के रोम-कूप उच्छ्र्वसित
हो रहे थे । वह मुनि की प्रदक्षिणा कर, सिर
मुका, वन्दना कर चला गया ।

६०—'वह गुण से समृद्ध, त्रिगुणियों से
गुप्त, तीन दण्डों से विरत और निर्मोह मुनि भी
विहग की भाँति स्वतन्त्रभाव से भूतल पर
विहार करने लगे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. ज (ऋ०) ।

२. निमन्तिआ (अ, आ, इ, उ) ।

३. सओरोहो सपरियणो सर्वबंधो (अ, आ, इ) ।

सगविसहमं अध्वन्यः :
समुद्रपालीयं

सर्कविसहमं अध्वन्यः :
समुद्रपालीयं

आस्तुख

इस अध्ययन का प्रतिपादन 'समुद्रपाल'—'समुद्रपाल' के माध्यम से हुआ है; इसलिए इसका नाम 'समुद्रपालीय'—'समुद्रपालीय' रखा गया है।

'यम्पा' नाम की नगरी थी। वहाँ पालित नाम का सार्यवाह रहता था। वह अमणोपासक था। निर्ग्रन्थ-प्रवचन में उसे भूदा था। दूर-दूर तक उसका व्यापार फैला हुआ था। एक बार वह सामुद्रिक यात्रा के लिए 'यान-पात्र' पर आरुढ़ हो घर से निकला। वह अपने साथ गणिम—सुपारी आदि तथा धरिम—स्वर्ण आदि ले चला। जाते-जाते समुद्र के तट पर 'पिण्डण्ड' नगर में रुका। अपना माल बेचने के लिए वह वहाँ कई दिनों तक रहा। नगर-वासियों से उसका परिचय बढ़ा और एक सेठ ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

कुछ समय वहाँ रह कर वह स्वदेश को चला। उसकी नवोद्गा गर्भवती हुई। समुद्र-यात्रा के बीच उसने एक सुन्दर और लक्ष्मणोपेत पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम 'समुद्रपाल' रखा गया। वैभव से उसका लालन-पालन हुआ। वह ७२ कलाओं में प्रवीण हुआ। जब वह युवा बना तब ६४ कलाओं में पारंगत 'रूपिणी' नामक कन्या के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। वह उसके साथ देव-तुल्य भोगों का उपभोग करता हुआ आनन्द से रहने लगा। एक बार वह प्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ नगर की शोभा देख रहा था। उसने देखा कि राजकुल एक व्यक्ति को वध-भूमि की ओर लिए जा रहे हैं। वह व्यक्ति लाल-वस्त्र पहने हुए था। उसके गले में लाल कनैर की मालाएँ थीं। उसे यह समझते नर न लगी कि इसका वध किया जाएगा। यह सब देख कुमार का मन संवेग से भर गया। 'अच्छे कर्मों का फल अच्छा होता है और बुरे कर्मों का फल बुरा'—इस चिन्तन से उसका मार्ग स्पष्ट हो गया। माता-पिता की आज्ञा ले वह द्वाक्षित हुआ। साधना की और कर्मों को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुआ।

आत्मानुशासन के उपायों के साथ-साथ इस अध्ययन में समुद्र-यात्रा का उल्लेख महत्वपूर्ण है। उस काल में भारत के व्यापारी दूर-दूर तक व्यापार के लिए जाते थे। सामुद्रिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। व्यापारियों के निजी यान-पात्र होते थे और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल लेकर आते-जाते थे। उस समय अनेक वस्तुओं का भारत से निर्यात होता था। उनमें सुपारी, स्वर्ण आदि-आदि मुख्य थे। यह विशेष उल्लेखनीय है कि उस काल में भारत के पास प्रचुर सोना था। वह उसका दूसरे देशों को निर्यात करता था।

इस अध्ययन में 'व्यवहार' (श्लोक ३)—'व्यवहार' और 'वज्रमण्डलसोभाग' (श्लोक ८)—'वध्यमंडल-शोभाक'—ये दो शब्द ध्यान देने योग्य हैं। आगम-काल में 'व्यवहार' शब्द क्रय-विक्रय का द्योतक था। आयात और निर्यात इसी के अन्तर्गत थे।^१

'वध्यमंडल-शोभाक'—यह शब्द उस समय के दण्ड-विधान की ओर संकेत करता है। उस समय चोरी करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था। जिसे वध की सजा दी जाती, उसे कनैर के लाल फूलों की माला पहनाई जाती। उसको लाल कपड़े पहनाए जाते। शरीर पर लाल चन्दन का लेप किया जाता। सारे नगर में उसके कुङ्कुमों की जानकारी दी जाती और उसे नगर के राज-मार्ग से वध-भूमि की ओर ले जाया जाता था।^२

१—सुप्रहस्य, ११११।

२—बही, १।६ : बृहद् हृत्ति, पत्र १।१०।

इस अध्ययन में सांस्कृतिक राज्य-व्यवस्था का उल्लेख मी हुआ है। ग्रन्थकार कहते हैं—“मुनि तथित काल में एक स्थान से दूसरे स्थान में जाए।” यह कथन सामान्य है। उस समय भारत अनेक इकाइयों में बंटा हुआ था। छोटे-छोटे राष्ट्र होते थे। आपसो कलङ्क सोमा पार कर चुका था। इसीलिए मुनि को गमनागमन में पूर्ण सावधान रहने के लिए कहा है (श्लोक १६)। मौलिक दृष्टि से इस अध्ययन में ‘चम्पा’ (श्लोक १) और ‘पिङ्गण्ड’ (श्लोक ३) नगरों का उल्लेख हुआ है। पौबीस श्लोकों का यह छोटा-सा अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

सर्गविसहस्रमं अञ्जयणं : सर्कविज्ञ अध्ययन समुद्रपालीयं : समुद्रपालीयम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—चम्पाए पालिए नाम सावए आसि वाणिए । महावीरस्स भगवओ सीमे सो उ महप्पणो ॥	चम्पायां पालितो नाम श्रावक आसीद् वाणिजः । महावीरस्य भगवतः शिष्यः स तु महात्मनः ॥	१—चम्पा नगरी में पालित नामक एक बणिक्-श्रावक हुआ । वह महात्मा भगवान् महावीर का शिष्य था ।
२—निगन्थे पावयणे सावए से विकोविए । पाणण ववहरन्ते पिहुण्डं नगरमागए ॥	नैर्ग्रन्थे प्रवचने श्रावकः स विकोविदः । पोनेन वयवहरन् पिहुण्डं नगरमागतः ॥	२—वह श्रावक निर्ग्रन्थ-प्रवचन में कीर्ति था । वह पौन ने व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नगर में आया ।
३—पिहुण्डे ववहरन्तम्म वाणिओ देइ धयरं । तं ससत्तं पइगिज्झ सदेसमह पत्थिओ ॥	पिहुण्डे वयवहरन्ते वाणिजो ब्रूवाति ब्रुहितरम् । तां ससत्तां प्रतिगृह्य स्वदेशमथ प्रस्थितः ॥	३—पिहुण्ड नगर में व्यापार करते समय उने क्रिया बणिक् ने पुत्री दी । कुछ समय टहरने के पश्चात् वह गर्भवती को लेकर स्वदेश की जिदा हुआ ।
४—अह पालियस्स धरणी समुट्ठमि पसवई । अह 'दारए' तहि ^१ जाए समुट्ठपालि त्ति नामए ॥	अथ पालितस्य गृहिणी समुद्रे प्रसूते । अथ दारक-स्तस्मिन्-जातः समुद्रपाल इति नामकः ॥	४—पालित की स्त्री ने समुद्र में पुत्र का प्रसव किया । वह समुद्र में उत्पन्न हुआ, इसलिए उसका नाम समुद्रपाल रखा ।
५—खेमेण आगए चम्पं सावए वाणिए घरं । संवड्ढई घरे तस्स दारए से सुहोइए ॥	क्षेमेणागतश्चम्पां श्रावको वाणिजो गृहम् । संबधेते गृहे तस्य दारकः स सुखोचितः ॥	५—वह बणिक्-श्रावक समुद्रपाल चम्पा नगरी में अपने घर आया । वह सुखोचित पुत्र अपने घर में बड़ने लगा ।

१. बाळए (उ) ।

२. बाळए तम्मि (ऋ०) ।

उत्तरजम्भयणं (उत्तराध्ययन)

२७८

अध्ययन २१ : श्लोक ६-१०

६—बावत्तरि कलाओ य
सिक्खए' नोइकोविए ।
जोव्वणेण य संपन्ने^१
सुखे पियदंसणे ॥

हासहसित कलाइव
शिक्षते नीति-कोविदः ।
यौवनेन च सम्पन्नः
सुखः प्रिय-दर्शनः ॥

६—उसने बहतर कलाएँ सीखी और
बह नीति-कोविद बना । वह पूर्ण यौवन में
सुख और प्रिय लगने लगा ।

७—तस्स रुववइ भज्जं
पिया आणइ रुविणि ।
पासाए कीलए रम्मे
देवो दोगुन्दओ जहा ॥

तस्य रूपवती भार्या
पिताऽनयति रूपिणीम् ।
प्रासादे कीडति रम्ये
देवो दोगुन्दको यथा ॥

७—उसका पिता उसके लिए रूपिणी
नामक सुन्दर स्त्री लाया । वह दोगुन्दक देव
की भाँति उसके साथ सुरम्य प्रासाद में क्रीड़ा
करने लगा ।

८—अह् अन्नया कयाई
पासायालोयणे ठिओ ।
वज्झमण्डनसोभागं
वज्झं पासइ वज्झगं ॥

अथान्यथा कदाचित्
प्रासादालोके स्थितः ।
वध्यमण्डनशोभाकं
वध्यं पश्यति बाह्यागम् ॥

८—वह कभी एक बार प्रासाद के
भरोखे में बैठे हुआ था । उसने वध्य-जनोचित
मण्डनों से शोभित वध्य को नगर से बाहर के
जाते हुए देखा ।

९—तं पासिऊण संविग्गो^२
समुदपालो इणमव्ववी ।
अहोमुभाण कम्मणं
निज्जाणं पावगं इमं ॥

तं दृष्ट्वा संविग्रः
समुद्रपाल इवमव्ववीत् ।
अहो अशुभानां कर्मणां
निर्याणं पापकर्मिणाम् ॥

९—उमे देख वैराग्य में भीगा हुआ
समुद्रपाल यों बोला : “अहो ! यह अशुभ कर्मों
का दुःख अवसान है ।”

१०—संबुद्धो सो तहि भगवं
'परं संबेगमागओ'^३ ।
आपुच्छज्झापियरो
पव्वए^४ अणगारियं ॥

संबुद्धः स तत्र भगवान्
परं संबेगमागतः ।
आपृच्छ ज्झापितरो
प्राज्ञाजीवनगारिताम् ॥

१०—वह भगवान् परम वैराग्य को
प्राप्त हुआ और संबुद्ध बन गया । उसने माता-
पिता को पूछकर साधुत्व स्वीकार किया ।

१. सिक्खए (उ, ऋ०, वृ०) ; सिक्खए (वृ० पा०) ।

२. अपकुणं (वृ०) ; सम्पन्ने (वृ० पा०) ।

३. संबेगं (उ, ऋ०, वृ०) ।

४. परमसंनियुसागओ (उ) ।

५. पव्वए (उ) ।

११—‘जहितु संगं च’^१ महाकिलेसं
महन्तमोहं कसिणं भयावहं^२ ।
परियायधम्मं चऽभिरोयएज्जा
वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥

१२—अहिंस सत्त्वं च अतेणगं च
ततो य ‘बम्भं अपरिमाहं च’^३ ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विउ ॥

१३—सव्वेहि भूएहि दयाणुकम्पी^४
खत्तिकवमे संजयवम्भयारी ।
सावज्जजोगं परिवज्जयन्तो
चरिज्ज भिक्खु सुसमाहिइन्दिए ॥

१४—कालेण कालं विहरेज्ज रट्टे^५
बलाबलं जाणिय अप्पणो य^६ ।
सिहो व सदेण न संतसेज्जा
वयजोग सुच्चा न असम्भमाहु ॥

१५—उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा
पियमप्पियं सव्व तित्तिक्खएज्जा ।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा
न यावि पूयं गरहं च संए ॥

हित्वा सङ्गच्छ महाकलेसं
महामोहं कुण्ठं भयानकम् ।
पर्याय-धर्मं चाभिरोचयेत्
व्रतानि शीलानि परीक्षेद्वाच ॥

अहिंसां सत्यं आस्तन्यकं च
ततश्च ब्रह्मापरिग्रहं च ।
प्रतिपद्य पंचमहाव्रतानि
चरेद् धर्मं जिन-वैशितं विद्वान् ॥

सर्वेषु भूतेषु दयानुकम्पी
क्षान्ति-क्षमः संयतो ब्रह्मचारी ।
सावद्य-योगं परिवर्जयन्
चरेद् भिक्षुः सुसमाहितेन्द्रियः ॥

कालेन कालं विहरेत् राष्ट्रं
बलाबलं ज्ञात्वाऽऽत्मनश्च ।
सिंह इव शब्देन न संश्रयेत्
वज्रोयोगं श्रुत्वानासम्भमाह ॥

उपेक्षमाणस्तु परिवर्जयेत्
प्रियमप्रियं सर्वं तितिक्षेत ।
न सर्वं सर्वत्राभिरोचयेत्
न चापि पूजां गर्हां च संयतः ॥

११—मुनि महान् क्लेश और महान्
मोह को उत्पन्न करने वाले कुण्ठ व भयावह
संग (आसक्ति) को छोड़कर पर्याय-धर्म
(भ्रवण्या), व्रत और शील तथा परीक्षा में
अभिरुचि ले ।

१२—अहिंसा, सत्य, अचोराय, ब्रह्मचर्य
और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतों को
स्वीकार कर विद्वान् मुनि बीतराग-उपविष्ट
धर्म का आचरण करे ।

१३—सुसमाहित-इन्द्रिय वाला भिक्षु
सब जीवों के प्रति दयानुकम्पी रहे । क्षान्ति-
क्षम (क्षमा-भाव से कुवचनों को सहने वाला),
संयत और ब्रह्मचारी हो । वह सावद्य योग का
वर्जन करता हुआ विचरण करे ।

१४—मुनि अपने बलाबल को तौलकर
कालोचित कार्य करता हुआ राष्ट्र में विहरण
करे । वह सिंह की भाँति भयावह शब्दों से
संश्रुत न हो । वह कुवचन मुन असम्भ वचन न
बोले ।

१५—संयमी मुनि कुवचनों की उपेक्षा
करता हुआ परिवर्जन करे । प्रिय और अप्रिय
सब कुछ सहें । सर्वत्र सब (जो कुछ देखें उसी)
की अभिलाषा न करे तथा पूजा और गर्हा
की भी अभिलाषा न करे ।

१. जहितु संगं य (वृ०) ऽजहितुऽसंगं य (वृ०) ; जहितु संगं य (वृ०) ; जहितु संगं य (वृ० पा०) ।

२. भयावहं (वृ०, वृ०) ।

३. अम्भं अपरिमाहं च (वृ० पा०) ।

४. दयाणुकम्पी (वृ० पा०) ।

५. रट्टे (वृ०) ।

६. य (वृ०) ।

१६—अणेगच्छन्दाइह^१ माणवेहिं
जे भावओ संपगरेइ^२ भिक्खु ।
भयभेरवा तत्थ उइन्ति^३ भीमा
दिब्बा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा॥

१७—परीसहा दुव्विसहा अणेगे
सीयन्ति जत्था बहुकायरा नरा ।
से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू
संगामसीसे इव नागराया ॥

१८—सीओसिणा दंसमसा य फासा
आयंका विविहा फुसन्ति देहं ।
अकुक्कुओ^४ तत्थऽहियासएज्जा
ग्याइं^५ खेवेज्ज पुरेकडाइं ॥

१९—पहाय रागं च तथैव दोसं
मोहं च भिक्खु सययं वियक्खणो ।
मेरु एव वाण्ण अकम्पमाणो
परीसहे आयुगुत्ते सहेज्जा ॥

२०—अणुन्नए नावणए महेसी
न यावि पुयं गरहं च संजए ।
स उज्जुभावं पडिवज्ज संजए
निव्वानमग्गं विरए उवेइ ॥

अनेकच्छन्वः इह मानवेषु
यान् भावतः संप्रकरोति भिक्षुः ।
अयभेरवास्तत्रोद्यन्ति भीमाः
विम्बा मानुष्याः अथवा तैरदृष्टाः॥

परीषहा दुर्विषहा अनेके
सीदन्ति यत्र बहुकातरा नराः ।
स तत्र प्राप्तो न डययेन् भिक्षुः
सङ्ग्राम-शोषं इव नागराजः ॥

क्षीतोष्णं दंसमशकाश्च स्पर्शाः
आतङ्का विविधाः स्पृशन्ति देहम् ।
अकुक्कुजस्तत्राघिसहेतु
रजांसि क्षपयेत् पुराकृतानि ॥

प्रहाय रागं च तथैव दोषं
मोहं च भिक्षुः सततं विचक्षणः ।
मेरुरिव वातेनाऽकम्पमानः
परीषहान् आत्म-गुप्तः सहेतु ॥

अनुन्नतो नावनतो महर्षिः
न चापि पुत्रां गृहीतं च सज्जेत ।
स ऋजुभावं प्रतिपद्य संयतः
निर्वाण-मार्गं विरत उपैति ॥

१६—पंवार में मनुष्यों में जो अनेक
अभिप्राय होते हैं वस्तु-वृष्ट्या वे भिक्षु में भी
होते हैं । किन्तु भिक्षु उन पर अनुशासन करे
और साधुपन में देव, मनुष्य अथवा तिर्यञ्च
सम्बन्धी भय पैदा करने वाले भीषण-भीषणतम
उपयग उत्पन्न हों, उन्हें सहन करे ।

१७—जहाँ अनेक दुस्सह परीषह प्राप्त
होते हैं, वहाँ बहुत सारे कायर लोग सिन्न हो
जाते हैं । किन्तु भिक्षु उन्हें प्राप्त होकर व्यथित
न बने—जैसे संग्राम-शीर्ष (मोर्च) पर नाग-
राज व्यथित नहीं होता ।

१८—शीत, उष्ण, दौल, मच्छर, तृण-
स्पर्श और विविध प्रकार के आनन्द जब देह
का स्पर्श करें तब मति शात्म भाव में उन्हें
सहन करे, पूर्वकृत रजों (कर्मों) को क्षीण
करे ।

१९—विचक्षण भिक्षु राग, द्वेष और
मोह का सतत त्याग कर, वायु से मेघ की
भौति अकम्पमान होकर तथा आत्म-गुप्त बनकर
परीषहों को सहन करे ।

२०—पूजा में उन्नत और गहरी में
अवनत न होने वाला महर्षी मति उन (पूजा
और गहरी) में लिप्त न हो । अलिप्त रहने वाला
बहु विरत समयों आर्जव को स्वीकार कर
निर्वाण-मार्ग को प्राप्त होता है ।

१. ण्छन्दासिह (वृ०) ।

२. सोयगरेइ (वृ०) ।

३. उवेन्ति (वृ० पा०) ।

४. अकुक्कुरे (वृ० पा०, वृ०) ।

५. रजाइ (वृ०) ।

समुद्रपालीयं (समुद्रपालीय)

२८१

अध्ययन २१ : श्लोक २१-२४

२१—अरद्हरइसहे पहीणसंथवे
विरए आयहिण पहाणवं ।
परमद्वपएहि चिद्वई
छिन्नसोए अममे अकिचणे ॥

२२—विवित्तलयणाइ भएज्ज ताई'
निरोवलेवाइ असंथडाइ ।
इसीहि चिण्णाइ महायसेहि
काएण फासेज्ज परीसहाइ ॥

२३—सन्नाणनाणोवगए^१ महेसी
अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।
अणुत्तरेनाणधरे^२ जसंसी
ओभासई सूरिए वन्तलिकखे^३ ॥

२४—दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं
निरंगणे^४ सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुदं व महाभवोचं
समुद्रपाले 'अपुणागमं गए'^५ ॥
—त्ति वेमि ॥

अरति-रतिसहः प्रहोण-संस्तवः
विरतः आत्म-हितः प्रवानवान् ।
परमार्थ-पदेषु तिष्ठति
छिन्न-शोकोऽममोऽकिचनः ॥

विविक्त-लयनानि भजेत त्रायी
निरुपलेपान्पसंसृतानि ।
शेषिभिश्वीणानि महायशोभिः
कायेन स्पृशेन् परीषहान् ॥

सज्ज्ञानज्ञानोपगतो महर्षिः
अनुत्तरं चरित्वा धर्म-संचयम् ।
अनुत्तर-ज्ञानधरः यशस्वी
अवभासते सूर्य इवान्तरिक्षे ॥

द्विविधं क्षपयित्वा च पुण्य-पापं
निरङ्गणः सर्वतो चिप्रमुक्तः ।
तरित्वा समुद्रमिव महाभयोचं
समुद्रपालोऽपुनरागमां गतः ॥
—इति ब्रह्मो मि ।

२१—जो अरति और रति को सहने
बाला, परिचय को क्षीण करने वाला,
अकर्तव्य से विरत रहने वाला, आत्म-हित
करने वाला तथा प्रधानवान् (संयमवान्)
होता है, वह छिन्न-शोक (अशोक), अभय
और अकिचन होकर परमार्थ-पदों में स्थित
होता है ।

२२—त्रायी मुनि महामहास्वी श्रुषियों
द्वारा आशीर्ण, अलित और असंस्तुत (बीज
भादि से रहित) विविक्त लयनों (एकान्त
स्थानों) का सेवन करे तथा काया से परीषहों
को सहन करे ।

२३—सद्ज्ञान में ज्ञान-प्राप्त करने
वाला महर्षी मुनि अनुत्तर धर्म-संचय का
आचरण कर अनुत्तर ज्ञानधारी और यशस्वी
होकर अन्तरिक्ष में सूर्य की भाँति दीप्तिमान्
होता है ।

२४—समुद्रपाल संयम में निश्चल और
सर्वतः मुक्त होकर, पुण्य और पाप दोनों को
क्षीण कर तथा विशाल संसार-प्रवाह को
समुद्र की भाँति तरकर अपुनरागम-गति (मोक्ष)
में गया है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. तावा (ह०) ।

२. सन्नाणं (ह०) ; सन्नाण (ह० पा०) ; सन्नाण (ह०) ।

३. पुणुत्तरे (ह० पा०) ।

४. वल्लिकल (अ) ।

५. निरंगणे (ह०) ; निरंगणे (ह० पा०) ।

६. 'गए' गड (अ, ह०, ह०, ह०) ।

वर्द्धापन हुआ। विवाह से पूर्व समस्त कार्य सम्पन्न हुए। विवाह का दिन आया। राजीमती अलंकृत हुई। कुमार भी अलंकृत हो मत्त हाथी पर आरुढ़ हुए। सभी दशाहं एकत्रित हुए। बाजे बजने लगे। मंगल दीप जलाए गए। वर-यात्रा प्रारम्भ हुई। हजारों लोगों ने उसे देखा। वह विवाह-मण्डप के पास आई। राजीमती ने दूर से अपने भावो पति को देखा। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई।

उसी समय अरिष्टनेमि के कानों में कठण शब्द पड़े। उन्होंने सारथी से पूछा—“यह शब्द क्या है?” सारथी ने कहा—“देव। यह कठण शब्द पशुओं का है। वे आपके विवाह में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों के लिए भोज्य बनेंगे। मरण-भय से वे आक्रन्दन कर रहे हैं।” अरिष्टनेमि ने कहा—“यह कंसा आनन्द। जहाँ हजारों मूक और दीन पशुओं का वध किया जाता है। ऐसे विवाह से क्या जो संसार के परिभ्रमण का हेतु बनता है।” हाथी को अपने निवास की ओर मोड़ दिया। अरिष्टनेमि की मुड़ते देख राजीमती सूक्ष्मित हो भूमि पर गिर पड़ी। स्वजनो ने उण्डा जल छिड़का, पंखा फेला। सूत्रों दूर हुई। चैतन्य प्राप्त कर वह लक्ष्य करने लगे। अरिष्टनेमि ने अपने माता-पिता के पास जा प्रव्रज्या के लिए आज्ञा माँगी। तीन सौ वर्ष तक अगारवास में रह आवण शुक्ला ५ को सहस्रवन उद्यान में बेली की तपस्या में दीक्षित हो गए।

अब रथनेमि राजीमती के पास आने-जाने लगे। उन्होंने कहा—“देवो! विषाद मत कर। अरिष्टनेमि वीतराग हैं। वे विषयानुबन्ध नहीं करते। तू मुझे स्वीकार कर। मैं जीवन भर तुम्हारी आज्ञा मानूँगा।” भगवती राजीमती का मन काम-भोगों से निर्विण्ण हो चुका था। उसे रथनेमि की प्रार्थना अयुक्त लगी। एक बार उसने मधु-वृत्त संयुक्त पेय पोया और जब रथनेमि आए तब मदन फल खा उल्टी की और रथनेमि से कहा—“इस पेय को पोरों।” उसने कहा—“वमन किए गए को कैसे पौँछें?” राजीमती ने कहा—“क्या तुम यह जानते हो?” रथनेमि ने कहा—“इस बात को बालक भी जानता है।” राजीमती ने कहा—“यदि यह बात है तो मैं भी अरिष्टनेमि द्वारा वान्त हूँ। मुझे ग्रहण करना क्यों चाहते हो? धिक्कार है तुम्हें जो वमा हुई वस्तु को पीने की इच्छा करते हो। इससे तो तुम्हारा मरना श्रेयस्कर है।” इससे बाद राजीमती ने धर्म कहा। रथनेमि जागृत हुए और आसक्ति से उपरत हुए। राजीमती दीक्षाभिमुख हो अनेक प्रकार के तप और उपधानों को करने लगी।

भगवान् अरिष्टनेमि केवली हुए। देवों ने केवली-महोत्सव किया। रथनेमि प्रव्रजित हुए। राजीमती भी अनेक राज-कन्याओं के साथ प्रव्रजित हुईं। एक बार भगवान् अरिष्टनेमि रत्नकर पर्वत पर समवसृत थे। साध्वी राजीमती अनेक साध्वियों के साथ वन्दना करने गईं। अचानक ही वर्षा प्रारम्भ हो गई। साथ वाली सभी साधवियाँ इधर-उधर युकाओं में चली गईं।^१ उसी युका में सुनि रथनेमि पहले से ही बैठे हुए थे। राजीमती को यह ज्ञात नहीं था। युका में अन्धकार व्याप्त था। उसने अपने कपड़े सुखने के लिए फैलाए। गन्गावस्था में उसे देख रथनेमि का मन विचलित हो गया। अचानक ही राजीमती ने रथनेमि को देख लिया और शीघ्र ही अपनी बाहों से अपने आपको ढकती हुई बैठ गई। रथनेमि ने कहा—“मैं तुम में अत्यन्त अनुरक्त हूँ। तेरे बिना मैं शरीर धारण नहीं कर सकता। तू मुझे स्वीकार कर। अवस्था आने पर हम दोनों संयम-मार्ग को स्वीकार कर लेंगे।” राजीमती ने विषयों के दारुण-विपाक, जीवन की अस्थिरता और त्रत-भंग के फल का निरूपण किया। उसे धर्म कहा। वह संबुद्ध हुआ। राजीमती का अभिनन्दन कर वह अपने माण्डलिक साधुओं में चला गया। राजीमती भी आधिका के पास चली गईं। संयम की विशुद्ध पालने हुए दोनों सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

इस अध्ययन के ४२, ४३, ४४, ४५ और ४६—ये पाँच श्लोक दशवेकालिक के दूसरे अध्ययन में उसी-के-स्थों आए हैं।

इस अध्ययन में आए हुए भोज, अन्धक और बुद्धि—ये तीन शब्द प्राचीन कुलों के द्योतक हैं।

१—उस युका को आज भी राजीमती युका कहा जाता है।—विश्व तीर्थ दर्शन, १-६

षाहसमं अज्झवणं :
रहनेमिज्जं

द्वारिषस अज्झवण :
रहनेमीय

वाङ्मयसमं अज्ज्ञयणं : द्वाविंश अध्यायः

रहनेमिज्जं : रथनेमीयम्

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुबाह

१—सोरियपुरमि नयरे
आसि राया महिड्डिए ।
वसुदेवे त्ति नामेणं
रायलक्खणसंजुए ॥

सोरियपुरे नगरे
आसीद्वाजा महद्विकः ।
वसुदेव इति नाम्ना
राज-लक्षण-संयुतः ॥

१—सोरियपुर नगर में राज-लक्षणों
से युक्त वसुदेव नामक महान् शूद्धिमान् राजा
था ।

२—तस्स भज्जा दुवे आसी
रोहिणी देवई तहा ।
तासि दोहं पि दो पुत्ता
इट्टा रामकेसवा ॥

तस्य भार्ये द्वे आस्तां
रोहिणी देवकी तथा ।
तयोर्द्वयोरपि द्वौ पुत्रौ
इष्टौ राम-केशवौ ॥

२—उसके रोहिणी और देवकी नामक
दो भार्याएँ थीं : उन दोनों के राम और
केशव—ये दो प्रिय पुत्र थे ।

३—सोरियपुरमि नयरे
आसी राया महिड्डिए ।
समुद्विजए नामं
रायलक्खणसंजुए ॥

सोरियपुरे नगरे
आसीद्वाजा महद्विकः ।
समुद्विजयो नाम
राज-लक्षण-संयुतः ॥

३—सोरियपुर नगर में राज-लक्षणों
से युक्त समुद्विजय नामक महान् शूद्धिमान्
राजा था ।

४—तस्स भज्जा सिवा नाम
तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिष्टनेमि त्ति
लोगनाहे दमोसरे ॥

तस्य भार्या शिवानाम्ना
तस्याः पुत्रो महायशः ।
भगवानरिष्टनेमिरिति
लोक-नाथो दमोश्वरः ॥

४—उसके शिवा नामक भार्या थी ।
उसके भगवान् अरिष्टनेमि नामक पुत्र हुआ ।
बहू लोकनाथ एवं जितेन्द्रियों में प्रधान था ।

५—सोऽरिष्टनेमिनामो उ
लक्खणस्सरसंजुओ^१ ।
अट्टसहस्सलक्खणघरो
गोयमो कालकण्ठवी ॥

सोऽरिष्टनेमिनामा तु
स्वर-लक्षण-संयुतः ।
अष्ट-सहस्र-लक्षण-धरो
गौतमः कालकण्ठविः ॥

५—बहू अरिष्टनेमि स्वर-लक्षणों से
युक्त, एक हजार आठ सृष्ट-लक्षणों का धारक,
गौतम गोत्री और व्याम वर्ण वाला था ।

आशुष

इस अध्ययन में अन्धक-कुल के नेता समुद्रविजय के पुत्र रथनेमि का वृत्तान्त है, इसलिए इसका नाम 'रहनेमिउज्जलि'—'रथनेमियो' है।

सोरियपुर नाम का नगर था। वहाँ वृष्णि-कुल के वसुदेव राज्य करते थे। उनके दो रानियाँ थीं—रोहिणी और देवकी। रोहिणी के एक पुत्र था। उसका नाम 'बलराम' था और देवकी के पुत्र का नाम 'केशव' था।

उसी नगर में अन्धक-कुल के नेता समुद्रविजय राज्य करते थे। उनकी पटरानी का नाम शिवा था। उसके चार पुत्र थे—अरिष्टनेमि, रथनेमि, सत्यनेमि और दृढ़नेमि। अरिष्टनेमि बार्हस्पत्य तीर्थङ्कर हुए और रथनेमि तथा सत्यनेमि प्रत्येक बुद्ध हुए।¹

उस समय सोरियपुर में दूध-राज्य था। अन्धक और वृष्णि—ये दो राजनैतिक दल वहाँ का शासन चलाते थे। वसुदेव वृष्णियों के नेता थे और समुद्रविजय अन्धकों के। इस प्रकार की राज्य-प्रणाली को 'धिरुद्ध-राज्य' कहा जाता था।

कार्तिक कृष्णा द्वादशी को अरिष्टनेमि का जीव शिवा रानी के गर्भ में आया। माता ने १४ स्वप्न देखे। श्रावण शुक्ला ५ को रानी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया। स्वप्न में रिष्टरत्नमय नेमि देखे जाने के कारण पुत्र का नाम अरिष्टनेमि रखा। वे आठ वर्ष के हुए। कृष्ण ने कंस का वध कर डाला। महाराज जरासंध यादवों पर कुपित हो गया। मरने के भय से सभी यादव पश्चिमी समुद्र तट पर चले गए। वहाँ द्वारवती नगरी में सुख से रहने लगे। कुछ समय के बाद बलराम और कृष्ण ने जरासंध को मार डाला और वे राजा बन गए। अरिष्टनेमि युवा बने। वे इन्द्रिय-विषयों से पराङ्मुख रहने लगे। एक बार समुद्रविजय ने केशव से कहा—“ऐसा कोई उपक्रम किया जाए जिससे कि अरिष्टनेमि विषयों में प्रवृत्त हो सके।” केशव ने रुक्मणी, सत्यभामा आदि को इस ओर प्रयत्न करने के लिए कहा। अनेक प्रयत्न किए गए। अनेक प्रलोभनों से उन्हें विचलित करने का प्रयास किया गया। पर वे अपने लक्ष्य पर स्थिर रहे। एक बार केशव ने कहा—“कुमार! ऋषभ आदि अनेक तीर्थङ्कर भी गृहस्थाश्रम के भोगों को भोग कर, पश्चिम-वय में दीक्षित हुए थे। उन्होंने भी मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह परमार्थ है।” अरिष्टनेमि ने नियति को प्रबलता जान केशव की बात स्वीकार कर ली। केशव ने समुद्रविजय को सारी बात कह दी। वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और योग्य कथा को गवेषणा करने लगे। भोज-कुल के राजन्य उग्रसेन की पुत्री राजीमती को अरिष्टनेमि के योग्य समझ विवाह को बातचीत की। उग्रसेन ने इसे अनुग्रह मान स्वीकार कर लिया। दोनों कुलों में

१—उत्तराध्यायन निर्गुक्त, गाथा ४३२-४४६ :

सोरियपुरासि नगरे, आसी राधा समुद्रविजर्भासि ।
तत्सासि अगमहिती, सिवति देवी अयुज्जंगी ॥
तेसि पुषा चढरो, अरिष्टनेमी तहेव रहनेमी ।
तहमो अ सचचनेमी, चडत्चमो होइ द्दवनेमी ॥
ओ सो अरिष्टनेमी, बावीसहमो अहेसि सो अरिहा ।
रहनेमि सचचनेमी, एए पणेचकुडा उ ॥

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

२८८

अध्ययन २२ : श्लोक ६-१०

६—वज्ररिसहसंघयो

समचउरंसो भसोयरो ।

तस्स राईमइं कन्नं

भज्जं जायइ केसवो ॥

वज्ररिसहसं-संहननः

समचतुरस्रो भसोवरः ।

तस्य राजीमतीं कन्यां

आर्यां याचते केशवः ॥

६—बह्व वज्ररिसहसं संहनन और सम-चतुरस्र संस्थान वाला था । उसका उदर मछली के उदर जैसा था । केशव ने उसके लिए राजीमती कन्या की माँग की ।

७—अह सा रायवरकन्ना

सुसीला चारुपेहिणी ।

सव्वलक्षणसंपुन्ना^१

विज्जुसोयामणिप्पभा ॥

अथ सा राजवर-कन्या

सुशीलाचारप्रेक्षिणी ।

सर्वलक्षण-सम्पूर्णा

विज्जुसोयामनी-प्रभा ॥

७—बह्व राजकन्या सुशील, चारु-प्रेक्षिणी (मनोहर-चितवन वाली), स्त्री-जनोचित सर्व-लक्षणों से परिपूर्ण और चमकती हुई बिजली जैसी प्रभा वाली थी ।

८—अहाह जणओ तीसे

वामुदेवं महिड्डियं ।

इहागच्छऊ कुमारो

जा से कन्नं दलाम हं ॥

अथाह जनकस्तरुपाः

वामुदेवं महद्विक्रमम् ।

इहागच्छतु कुमारः

येन तस्मै कन्यां दहाम्यहम् ॥

८—उसके पिता उपरसेन ने महान् क्रुद्धिमान् वासुदेव से कहा—“कुमार यहाँ जाए तो मैं उसे अपनी कन्या दे सकता हूँ ।”

९—सव्वोसहीहि ण्हविओ

कयकोउयमंगलो ।

दिव्वजुयलपरिहिओ

आभरणेहि विभूसिओ^२ ॥

सर्वोद्यधिभिः स्नापितः

कृत-कोतुक-मंगलः ।

परिहित-दिव्य-युगलः

आभरणै-विभूषितः ॥

९—अरिष्टनेमि को सर्व औपयियों के जल से नहलाया गया, कोतुक और मंगल किए गए, दिव्य वस्त्र-युगल पहनाया गया और आभरणों से विभूषित किया गया ।

१०—मत्तं च गन्धहत्थिं^३

वामुदेवस्स जेट्ठमं ।

आलुडो सोहए अहियं

सिरे चूडामणो जहा ॥

मत्तं च गन्धहत्तिनं

वासुदेवस्य ज्येष्ठकम् ।

आलुङ्कः शोभतेऽधिकं

शिरसि चूडामणिर्यथा ॥

१०—वासुदेव के मतवाले ज्येष्ठ गन्ध-हस्ति पर आलुङ्क अरिष्टनेमि शिर पर चूडामणि की भाँति बहुत सुशोभित हुआ ।

१. ^१ संपन्ना (व०, क०) ।

२. विभूषणै (क०) ।

३. ^३ हत्थि च (अ, आ, इ, उ) ।

११—‘अहं ऊसिएण’^१ छत्तेण
चामराहि य सोहिए ।
दसारचक्केण य सो
सब्बओ परिवारिओ ॥

१२—चउरगिणीए सेनाए
रइयाए जहकम्म ।
तुरियाण सन्निनाएण
दिब्बेण गगणं फुस ॥

१३—एयारिसीए इड्ढीए
जुईए उत्तिमाए य ।
नियगाओ भवणाओ
निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥

१४—अहं सो तत्थ निज्जन्तो
दिस्स पाणे भयदुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च
सन्निरुद्धे^२ सुदुक्खिए ॥

१५—जीवियन्तं तु संपत्ते
मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासेत्ता से महापन्ने
सारहिं इणमन्ववी ॥

१६—कस्स अट्ठा ‘इमे पाणा’^३
एए सब्बे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च
सन्निरुद्धा य अञ्छहिं ? ॥

अथोच्छिन्नं तेन छत्रेण
चामराभ्यां च शोभितः ।
दशार्हं चक्रेण च स
सर्वतः परिवारितः ॥

चतुरङ्गिण्या सेनया
रक्षितया यथाक्रमम् ।
तूर्याणां सन्निनादेन
दिब्बेन गगन-स्पृशा ॥

एतादृश्या आढ्या
हृत्पा उत्तमया च ।
निजकान् भवणान्
निर्घातो वृल्लिप्त-पुङ्गवः ॥

अथ स तत्र नियन्
दृष्ट्वा प्राणान् भय-द्रुतान् ।
वाटेः पञ्जरं च
सन्निरुद्धान् सुदुःखितान् ॥

जीवितान्तं तु सम्प्राप्तान्
मांसार्थं भक्षयितव्यान् ।
दृष्ट्वा स महाप्राज्ञः
सारथिभिर्दमन्वबान् ॥

कस्यार्थादिमे प्राणा
एते सर्वे सुलैषिणः ।
वाटेः पञ्जरं च
सन्निरुद्धाश्च आसते ? ॥

११—अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र-चामरों से
सुशोभित और दशार-चक्र से सर्वतः परि-
वृत था ।

१२—यथाक्रम सजाई हुई चतुरगिनी
सेना और बाघों के गगन-स्पर्शी दिव्यनाद —

१३—ऐसी उत्तम ऋद्धि और उत्तम-
धुति के साथ वह वृष्णि-पुङ्गव अपने भवन से
बला ।

१४—उसने वहाँ जाते हुए भय से
संश्रित, बाघों और पिंजरो में निरुद्ध, सुदुःखित
प्राणियों को देखा ।

१५—ये मरणासन्न दशा को प्राप्त थे
और मांसाहार के लिए खाए जाने वाले थे ।
उन्हें देख कर महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने सारथि
से इस प्रकार कहा—

१६—“सुख की चाह रखने वाले ये सब
प्राणी किसलिए इन बाघों और पिंजरो में
रोके हुए हैं ?”

१. से ओसिएण (४० पा०) ।

२. सन्निरुद्धे (४० पा०) ।

३. वडुपाणे (४० पा०) ।

१७—अह सारही तओ भणइ
एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झं विवाहकज्जमि
भोयावेउं बहु जणं ॥

अथ सारथिस्ततो भणति
एते भद्रास्तु प्राणिनः ।
तच्च विवाह-कार्यं
भोजयितुं बहु जनम् ॥

१७—सारथि ने कहा—“ये भद्र प्राणी
तुम्हारे विवाह-कार्य में बहुत जनो को खिलाने
के लिए यहाँ रोके हुए हैं ।”

१८—सोऊण तस्स^१ वयणं
बहुपाणिविणासणं^२ ।
चिन्तेइ से महापण्णे
साण्णकोसे जिएहि उ ॥

श्रुत्वा तस्य वचन
बहुप्राणि-विनाशनम् ।
चिन्तयति स महाप्राज्ञः
सानुकोशो जीवेषु तु ॥

१८—सारथि का बहुत जीवा के वध
का प्रतिपादक वचन सुन कर जीवों के प्रति
सकल उक्त महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने मोचा—

१९—जइ मज्झ कारणा एए
'हम्मिहिंति बहु'^३ जिया ।
न मे एयं तु निस्सेसं
परलोमे भविस्सई ॥

यदि मम कारणादृते
हनिष्यन्ते बहवो जीवाः ।
न मे एतसु निःशेषसं
परलोके भविष्यति ॥

१९—“यदि मेरे निमित्त से उन बहुत मे
जीवों का वध होने वाला है तो यह परलोके
मे मेरे लिए शेषस्वर नहीं होगा ।”

२०—सो कुण्डलाण जुयलं
मुत्तगं च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि^४
सारहिस्स पणामए ॥

स कुण्डलयोर्युगलं
सूत्रकं च महायशः ।
आभरणानि च सर्वाणि
सारथ्ये अपयति ॥

२०—उक्त महायशस्वी अरिष्टनेमि ने
दो कुण्डल करखनी और सारे आभूषण उतार
कर सारथी को दे दिए ।

२१—मणपरिणामे य कए
देवा य जहोइयं समोइण्णा^५ ।
सव्वड्ढोए सपरिसा
निक्खमणं तस्स काउं जे ॥

मनः-परिणामश्च कृतः
देवाश्च ययोजितं समवतीर्णाः ।
सर्वद्व्यां सपरिषदः
निष्क्रमणं तस्य कर्तुं 'जे' ॥

२१—अरिष्टनेमि के मन में जैसे ही
निष्क्रमण (दीक्षा) की भावना हुई, जैसे ही
उसका निष्क्रमण-महोत्सव करने के लिए
कोचित्य के अनुसार देवता आए । उनका
समस्त वैभव और उनकी परिषद उनके
साथ थी ।

१. तस्स सो (उ, ऋ०) ।

२. बहुपाण (वृ०) ।

३. हम्मिंति तुक्क (उ, ऋ०, वृ०) ; हम्मिहिंति छक्क (वृ० पा०) ।

४. ससाणि (उ, ऋ०) ।

५. समोवहिंसा (वृ० पा०) ।

रहनेमिजं (स्थनेमीय)

२६१

अभ्ययन २२ : श्लोक २२-२६

२२—देवमणुस्सपरिवुडो
सीयारयणं^१ तओ समारुडो ।
निक्खमिय बारमाओ
रेवययंमि द्विओ भगवं ॥

देव-मनुष्य-परिवृतः
शिबिका-रत्नं ततः समारुढः ।
निष्क्रम्य द्वारकातः
रैवतके स्थितो भगवान् ॥

२२—देव और मनुष्यों से परिवृत
भगवान् अरिष्टनेमि शिबिका-रत्न में आरुढ़
हुआ । द्वारका से चल कर वह रैवतक
(गिरनार) पर्वत पर स्थित हुआ ।

२३—उज्जाणं संपत्तो
ओइण्णो उत्तिमाओ सीयाओ^२ ।
साहस्सोए परिवुडो
अह निक्खमई उ चित्ताहि ॥

उद्यानं सम्प्राप्तः
अवतोणः उत्तमायाः शिबिकातः ।
साहस्रया परिवृतः
अथ निष्कामति तु चित्रायाम् ॥

२३—अरिष्टनेमि सहस्राश्रमण उद्यान में
पहुँच कर उत्तम शिबिका से नीचे उतरा ।
भगवान् ने एक हजार मनुष्यों के साथ चित्रा
नद्यत्र में निष्क्रमण किया ।

२४—अह से सुगन्धगन्धि^३
तुरियं मउयकुच्चिण^४ ।
सयमेव लुंचई केसे
पंचमुट्टीहि^५ समाहिओ ॥

अथ स सुगन्धि-गन्धिकान्
त्वरितं मृदुक-कुचितान् ।
स्वयमेव लुंचति केशान्
पञ्च-मुष्टिभिः समाहितः ॥

२४—समाहित अरिष्टनेमि ने सुगन्ध से
सुवासित मृदुमार और लूँघराखे बालों का
पञ्चमुष्टि में अपने आप तुरन्त लोच किया ।

२५—वामुदेवो य णं भणइ
लुत्तकेशं जिइन्दियं ।
इच्छियमणोरहे तुरियं
पावेमू^६ तं दमीसरा ! ॥

वामुदेवश्चेभं भणति
लुप्त-केशं जितेन्द्रियम् ।
इच्छित-मनोरथं त्वरितं
प्राप्नुहि त्वं दमीश्वर ! ॥

२५—वामुदेव ने लुप्त-केश और जितेन्द्रिय
भगवान् से कहा—दमीश्वर ! तुम अपने
इच्छित-मनोरथ को क्षीघ्र प्राप्त करो ।

२६—नाणेणं दंसणेणं च
चरित्तेण तहेव^७ य ।
खत्तीए मुत्तीए^८
वड्डमाणो भवाहि य ॥

ज्ञानेन दर्शनेन च
चारित्र्येण तथैव च ।
क्षान्त्या मुक्त्या
वर्धमानो भव च ॥

२६—तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, क्षान्ति
और मुक्ति से बढ़ो ।

१. सीइया^१ (ऋ०) ।
२. सीइया (ऋ०)
३. छगधि^३ (ऋ०, इ०) ।
४. मउयण^४ (अ०) ।
५. पंचमुट्टाहि (इ०) ।
६. पावेमू (इ०) ।
७. तहेव (छ०) ।
८. मुत्तीए सेव (ड०) ।

उत्तरज्ज्जयणं (उत्तराध्ययन)

२६२

अध्ययन २२ : श्लोक २७-३१

२७—एवं ते रामकेसवा
दसारा य बहू जणा ।
अरिष्टणेमि वन्दिता
अइगया बारगापुरि ॥

एवं तो रामकेशवी
बसार्हाइच बहुवा जनाः ।
अरिष्टनेमि बन्दिता
अतिगता द्वारका-पुरीम् ॥

२७—इस प्रकार राम, केशव, दसारा तथा दूसरे बहुत से लोग अरिष्टनेमि को बन्धना कर द्वारका पुरी में लौट आए ।

२८—सोऊण रायकन्ना
पव्वज्जं सा जिणस्स उ ।
नीहासा य निराणन्दा
सोगेण उ समुत्थया ॥

श्रुत्वा राजकन्या
प्रव्रज्यां सा जिनस्य तु ।
निर्हासा च निराणन्दा
शोकैव तु समवसृता ॥

२८—अरिष्टनेमि के प्रव्रज्या की बात को सुन कर राजकन्या राजीमती अपनी हँसी, छुशी और आनन्द को छोड़ बैठी । वह शोक से स्तब्ध हो गई ।

२९—राईमई विचिन्तेइ
धिरत्थु मम जीवियं ।
जा हं तेण परिञ्चता
'सेयं पव्वइउ' मम ॥

राजीमती विचिन्तयति
धिगस्तु मम जीवितम् ।
याहं तेन परित्यक्ता
अयः प्रव्रजितुं मम ॥

२९—राजीमती ने सोचा—मेरे जीवन को धिक्कार है । जो मैं अरिष्टनेमि के द्वारा परित्यक्त हूँ । अब मेरे लिए प्रव्रजित होना ही श्रेय है ।

३०—अह सा भमरसन्निभे^१
कुब्बफणगपसाहिण^२ ।
सयमेव लुंछई केसे
धिइमन्ता ववस्सिया^३ ॥

अथ सा भ्रमर-सन्निभान्
कूर्च-फणक-प्रसाधितान् ।
स्वयमेव लुञ्चति केशान्
धृतिमती उयवसिता ॥

३०—घोर एवं कृत-निश्चय राजीमती ने कूर्च व केशों से संचारे हुए और जैसे काले केशों का अपने आप लुञ्च किया ।

३१—वासुदेवो य णं भणइ
लुत्तकेसं जिइन्दियं ।
संसारसागरं चोरं
तर कन्हे ! लहुं लहुं ॥

वासुदेवस्त्वेषां भणति
कुस-केशां जितेन्द्रियाम् ।
संसार-सागरं चोरं
तर कन्धे ! लघु लघु ॥

३१—वासुदेव ने कुस-केशा और जितेन्द्रिय राजीमती से कहा—“हे कन्धे ! तू चोर संसार-सागर का अतिशीघ्रता से पार प्राप्त कर ।”

१. समुत्थिया (अ) ; समुत्थया (आ) ।

२. सेउं पव्वइउ (ङ) ; सेओ पव्वइओ (ङ) ; सेउं पव्वइयं (अ) ।

३. 'संसार' (अ) ।

४. 'कलया' (अ) ।

५. वि तवस्सिया (अ) ।

३२—सा पव्वइया सन्ती
पव्वावेसी^१ तहिं बहु ।
सयणं परियणं चैव
सीलवन्ता बहुसुया ॥

सा प्रव्रजिता सती
प्रवीव्रजन् तत्र बहु ।
स्वजनं परिजनं चैव
शीलवती बहुधृता ॥

३२—शीलवती एवं बहुधृत राजीमती ने
प्रव्रजित हो कर द्वारका में बहुत स्वजन और
परिजन को प्रव्रजित किया ।

३३—गिरि रेवययं^२ जन्ती
वासणुहा उ अन्तरा ।
वासन्ते अन्धयारंमि
अन्तो लयणस्स सा ठिया ॥

गिरि रैवतक यान्ती
वर्षेणाद्रा त्वन्तरा ।
वर्षेत्यन्धकारे
अन्तलयनस्य सा स्थिता ॥

३३—वह रैवतक पर्वत पर जा रही
थी । वीच में वर्षा से भीग गई । वर्षा हो
रही थी, अन्धेरा छाया हुआ था, उस समय
वह लयन (गफा) में छहर गई ।

३४—चीवराइं विसारन्ती
जहा जाय ति पासिया ।
रहनेमी भग्गचित्तो
पच्छा दिट्ठा य तीइ वि ॥

चीवराणि विसारयन्ती
यथाजालेति दृष्टा ।
रथनेमिभंगमचिन्तः
पश्चाद् दृष्टश्च तयाऽपि ॥

३४—चीवरा को मुलाने के लिए
फैलानी हुई राजामती को रथनेमि ने यथा-
जान (तद्रूप) रूप में देखा । वह भग्न-चित्त हो
गया । बाद में राजीमती ने भी उसे देख
लिया ।

३५—भीया य सा तहि दट्ठुं
एगन्ते संजयं तयं ।
बाहाहि काउं संगोफं
वेवमाणो निसीयई ॥

भीता च सा तत्र दृष्ट्वा
एकान्ते संयतं तस्मै ।
बाहुभ्यां कृत्वा संगोपं
वेपथुना निषीदति ॥

३५—एकाल में उस संयति को देख वह
हरी और दोनों भुजाओं के गुम्फन से बल को
ठाक कर, कांपनी हुई बैठ गई ।

३६—अह सो वि रायपुत्तो
समुद्विजयंगञ्जो ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं
इमं बक्कं उदाहरे ॥

अथ सोऽपि राज-पुत्रः
समुद्रविजयाऽङ्गजः ।
भीतां प्रवेपितां दृष्ट्वा
इदं वाक्यमुवाहरन् ॥

३६—उस समय समुद्रविजय के अंगज
राज-पुत्र रथनेमि ने राजीमती को भीत और
प्रकम्पित देख कर यह वचन कहा—

३७—रहनेमी अहं भदे !
सुख्खे ! चारुभासिणि !
ममं^३ भयाहि सुयण !
न ते पीला भविस्सई ॥

रथनेमिरहं भद्रे !
सुख्ये ! चारुभाषिणि !
मां नश्यन् सुतनु !
न ते पीडा अभिषिञ्चिषि ॥

३७—“भद्रे ! मैं रथनेमि हूँ । सुख्ये !
चारुभाषिणि ! तू मुझे स्वीकार कर । सुतनु !
मुझे कोई पीडा नहीं होगी ।

१. पव्वावेसी (अ) ।

२. रेवययं (अ) ।

३. मम (ब = पा०) ।

३८—एहि ता भुंजिमो भोगे
माणुसं खु सुदुल्लभं ।
'भुक्तभोगा तओ'^१ पच्छा
जिणमणं चरिस्सिमो ॥

एहि तावत् भुंजमहे भोगान्
मानुष्यं खलु सुदुल्लभम् ।
भुक्त-भोगास्ततः पश्चाद्
जित-मार्गं चरिष्यामः ॥

३८—“आ, हम भोग भोगें । निश्चित ही
मनुष्य-जीवन बहुत दुर्लभ है । भुक्त-भोगी हो,
फिर हम जित-मार्ग पर चलेंगे ।”

३९—दट्ठूण रहनेमि तं
भग्गुजोयपराइयं ।
राईमई असम्भन्ता
अप्पाणं संवरे तहि ॥

ट्टट्ठ्ठा रथनेमि तं
भग्नोद्योग-पराजितम् ।
राजोमत्यसम्भ्रान्ता
आत्मानं समवारीत् तत्र ॥

३९—रथनेमि को समय में उल्लाहहान
और भोगों में पराजित देख कर राजाभिमती
संभ्रान्त नहीं हुई । उनमें वही अपने शरीर को
बन्धों से ढँक लिया ।

४०—अह सा रायवरकन्ना
सुट्टिया नियमव्वए ।
जाई कुलं च सीलं च
रक्खमाणी तयं वए ॥

अथ सा राजवर-कन्या
सुस्थिता नियम-व्रते ।
जाति कुलं च शीलं च
रक्षन्ती तत्कमवदन् ॥

४०—नियम और व्रत में सुस्थित
राजवर-कन्या राजाभिमती ने जाति, कुल और
शील की रक्षा करने हुए, रथनेमि से कहा—

४१—जइ सि रुवेण वेसमणो
ललिएण नलकूबरो ।
तहा वि ते न इच्छामि
जइ सि सक्खं पुरन्दरो ॥

यद्यसि रूपेण वैश्रमणः
ललितेन नलकूबरः ।
तथापि त्वां नेच्छामि
यद्यसि साक्षान् पुरन्दरः ॥

४१—“यदि तू रूप में वैश्रमण है, लालित्य
में नलकूबर है और तू क्या, यदि तू साक्षात्
दण्ड है तो भी मैं तुझे नहीं चाहती ।

[पक्खंदे जलियं जाई
धूमकेतुं दुरासयं ।
नेच्छन्ति वंतयं भोत्तुं
कुले जाया अगंधण ॥]^२

(प्रस्कन्दन्ति ज्वालिनं ज्योतिषं
धूमकेतुं दुरासदम् ।
नेच्छन्ति वान्तकं भोक्तुं
कुले जाता अगन्धने ॥)

“[अगंधन कुल में उत्पन्न मर्प ज्वालिन,
बिकराल, धूमधिव-अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं
परन्तु (जीने के लिए) बमन किए हुए विष को
वापस पीने की इच्छा नहीं करते ।]

४२—धिरत्थु ते जसोकामी !
जो तं जीवियकारणा ।
वन्तं इच्छसि आवेउं
सेयं ते मरणं भवे ॥

विमस्तु त्वां यशस्कामिन् !
यस्त्वं जीवित-कारणान् ।
वान्तमिच्छस्यापातुं
अयस्ते मरणं भवेत् ॥

४२—“हे यशःकामिन् ! बिकार है तुझे ।
जो तू भोगी-जीवन के लिये बन्धी हुई वस्तु को
पीने की इच्छा करता है । इससे तो तेरा
मरना श्रेय है ।

१. भुक्तभोगी तओ (उ, ऋ०) ; भुक्तभोगा पुणो (ऋ०) ।

२. (ष इ, ऋ०, स, छ०, ष०, ह०) ।

४३—अहं च भोयरायस्स
तं च सि अन्धगवण्हिणो ।
मा कुले गन्धना होमो
संजमं निहुओ चर ॥

अहं च भोज-राजस्य
त्वं चाऽसि अन्धक-वृष्णेः ।
मा कुले गन्धनी भूय
‘यम’ निभृतश्चर ॥

४३—“मैं भोज-राज की पुत्री हूँ और तू
अन्धक-वृष्णि का पुत्र । हम कुल में गन्धन
सर्प की तरह न हों । तू निभृत हो—स्थिर
मन हो—संयम का पालन कर ।

४४—जइ तं काहिसि भावं
जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धो व्व हदो
अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥

यदि त्वं करिष्यसि भावं
या या इष्यसि नारीः ।
वाताविद्धः इव हटः
अस्थितात्मा भविष्यसि ॥

४४—“यदि तू स्त्रियों को देव उनके प्रति
इस प्रकार राग-भाव करेगा तो वायु से
आहत हट की तरह अस्थितात्मा हो जाएगा ।

४५—गोवालो भण्डवालो^१ वा
जहा तहव्वऽणिस्सरो ।
एवं अणिस्सरो तं पि
सामण्यस्स भविस्ससि ॥

गोपालो भाण्डपालो वा
यथा तद्वद्व्यानीश्वरः ।
एवमनीश्वरस्त्वमपि
श्रामण्यस्य भविष्यसि ॥

४५—“जैसे गोपाल और भाण्डपाल
गायों और किरान के स्वामी नहीं होते,
इसी प्रकार तू भी श्रामण्य का स्वामी नहीं
होगा ।

[कोहं माणं निगिण्हित्ता
मायं लोभं च सव्वसो ।
इन्द्रियाइं वसे काउं
अप्पाणं उवसंहरे ॥]^२

(कोषं मानं निगृह्य
मायां लोभं च सर्वशः ।
इन्द्रियाणि वशीकृत्य
आत्मानमुपसंहरेः ॥)

“(तू कोष और मान का निग्रह कर ।
माया और लोभ पर सब प्रकार से विजय
पा । इन्द्रियों को अपने अधीन बना । अपने
शरीर का उपसंहार कर—उत्ते अनाचार से
निवृत्त कर ।)”

४६—तीसे सो वयणं सोच्चा
संजयाए सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो
घम्मे संपडिवाइओ ॥

तस्याः स वचनं श्रुत्वा
संयतायाः सुभाषितम् ।
अंकुशेन यथा नागो
धर्मं सम्प्रतिपादितः ॥

४६—संयमिनी के इन मुभाषित वचनों
को सुन कर, रथनेमि धर्म में जैसे ही स्थिर हो
गया, जैसे अंकुश से हाथी होता है ।

४७—मणगुतो वयगुत्तो
कायगुत्तो जिइन्दिओ ।
सामण्णं निच्चलं फासे
जावज्जीवं दढव्वओ ॥

मनो-गुप्तो वचो-गुप्तः
काय-गुप्तो जितेन्द्रियः ।
श्रामण्यं निश्चलमस्त्रासीत्
यावज्जीवं दृढ़-व्रतः ॥

४७—वह मन, वचन, और काया से
गत, जितेन्द्रिय तथा दृढ़व्रती हो गया । उसने
फिर आजीवन निश्चल भाव से श्रामण्य का
पालन किया ।

१. वण्डपाळो (वृ० पा०) ।

२. × (अ. व, ऋ०, स, छ०, चू०, वृ०) ।

उत्तरउभयणं (उत्तराध्ययन)

२६६

अध्ययन २२ : श्लोक ४८-४९

४८—उभयं तव चरित्ताणं
जाया दोष्णि वि केवली ।
सर्वं कर्म खवित्ताणं
सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥

उभं तपश्चरित्वा
जातो द्वाषापि केवलिनौ ।
सर्वं कर्म क्षपयित्वा
सिद्धिं प्राप्तावनुत्तराम् ॥

४८—उभ-तप का आचरण कर तथा सब
कर्मों को क्षया, वे दोनों (राजीमती और
रघुनेमि) अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुए ।

४९—एवं करेन्ति संबुद्धा
पण्डया पवियस्सणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु
जहा सो पुरिसोत्तमो ॥
—त्ति वेमि ।

एवं कुर्वन्ति सम्बुद्धाः
पण्डिताः प्रविचक्षणाः ।
विनिवर्तन्ते भोगेभ्यः
यथा स पुण्योत्तमः ॥
इति ब्रवीमि ।

४९—सम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण
पुण्य ऐसा ही करते हैं—वे भोगों से वंचे ही
दूर हो जाते हैं, जैसे कि पुण्योत्तम रघुनेमि
हुआ ।

ऐसा मैं कहता हूँ ।



तृतिसहस्रं अध्यायः :
केसिगोयमिज्जं

त्रयोविंश अध्यायः :
केशि-गौतमीय

आप्तुष्ट

इस अध्ययन में पार्श्वपत्थीय कुमार-भ्रमण केशी और भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गौतम का संवाद है। इसलिए इसका नाम 'केसिगोयमिज्ज'—'केशी-गौतमीय' है।^१

भगवान् पार्श्वनाथ जैन-परम्परा के तेईसवें तीर्थंकर थे और उनका शासन-काल भगवान् महावीर से द्वाई शताब्दी पूर्व का था।^२ भगवान् महावीर के शासन-काल में अनेक पार्श्वपत्थीय भ्रमण तथा आवक रहते थे। पार्श्व-नाथ की परम्परा के भ्रमणों तथा आवकों का भगवान् महावीर के शिष्यों से आलाप-संलाप और मिलन हुआ। उसका उल्लेख आगमों तथा व्याख्या-ग्रंथों में मिलता है। भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथ की परम्परा को मानने वाले भ्रमणोपासक थे।^३

भगवती सूत्र में 'कालास्यवैशिक पुत्र' पार्श्वपत्थीय भ्रमण का उल्लेख है। वे अनेक निर्ग्रन्थ स्थविरों से मिलते हैं। उनसे तात्त्विक चर्चा कर समाधान पाते हैं और अपनी पूर्व परम्परा का विसर्जन कर भगवान् महावीर की परम्परा को स्वीकार कर लेते हैं।^४

एक बार भगवान् महावीर राजगृह में समवसुत थे। वहाँ भगवान् पार्श्व की परम्परा के कई स्थविर आए और भगवान् से तात्त्विक चर्चा की। उनका मूल प्रश्न यह था—“इस परिमित लोक में अनन्त रात-दिन या परिमित रात-दिन की बात कैसे संगत हो सकती है?” भगवान् महावीर उन्हें समाधान देते हैं और वे सभी स्थविर चातुर्वर्ग-धर्म से पंचयाम-धर्म में दीक्षित हो जाते हैं।^५

भगवान् महावीर वाणिज्य ग्राम में थे। पार्श्वपत्थीय भ्रमण गांगेय भगवान् के पास आया। उसने जीवों की उत्पास और रक्षुति के बारे में प्रश्न किए। उसे पूरा समाधान मिला। उसने भगवान् की सर्वज्ञता पर विश्वास किया और उनका शिष्य बन गया।^६

उदक पेठाल पार्श्वनाथ की परम्परा में दीक्षित हुआ था। एक बार जब गणधर गौतम नालन्दा में स्थित थे तब वह उनके पास गया। चर्चा की और समाधान पा उनका शिष्य हो गया।^७

भगवान् महावीर कालाय सन्निवेश से विहार कर पत्रालय ग्राम से होते हुए कुमार सन्निवेश में आए

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा, ४५१ :

गौतम-केसाओ आ, संवाच-समुत्तिष्ठं तु जम्बेवं ।

तो केसि-गोयमिज्जं, अज्जकणं होइ नाचणं ॥

२—आवस्यक निर्युक्ति, मल्लियारिद्धि, पत्र २४१ :

पासजिणाओ य होइ वीरजिणो ।

अङ्गाहज्जसपह्णि गएहि चरिमो समुप्पन्नो ॥

३—आचारंग २, खण्डिका २, सूत्र ४०१ :

समनस्स जं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासवक्खिआ समणोवासगा वारिह होत्था ।

४—भगवती, १।९

५—वही, ५।६

६—वही, ६।३२

७—सूत्रकथा, २।७

और चम्पक रमणीय उद्यान में ठहरे। उसी सन्निवेश में पात्रार्थापत्योय स्थविर मुनिचन्द्र अपने शिष्य परिवार के साथ कूपनक नामक कुंभकार की शाला में ठहरे हुए थे। वे जिनकल्प-प्रतिमा की साधना कर रहे थे। वे अपने शिष्य को गण का भार दे स्वयं 'सत्त्व-भावना' में अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे।

गोशाला भगवान् के साथ था। उसने गाँव में घूमते-घूमते पात्रार्थापत्योय स्थविर मुनिचन्द्र को देखा। उनके पास जा पूछा—तुम कौन हो ?

उन्होंने कहा—हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं।

गोशाला ने कहा—अबो तुम कैसे श्रमण निर्ग्रन्थ ? निर्ग्रन्थ होते हुए भी तुम अपने पास इतने ग्रन्थ—परिग्रह क्यों रखते हो ?

इतना कह उसने भगवान् की बात उनसे कही और पूछा—क्या तुम्हारे संघ में भी ऐसा कोई महात्मा है ? मुनिचन्द्र ने कहा—जैसे तुम हो वैसे ही तुम्हारे आचार्य होंगे।

इस पर गोशाला कृपित हो गया। उसने क्रोधाग्नि से जलते हुए कहा—यदि मेरे धर्माचार्य के तप का प्रभाव है तो तुम्हारा यह प्रतिश्रय—आश्रय जल कर भस्म हो जाए।

मुनिचन्द्र ने कहा—तुम्हारे कहने मात्र से हम नहीं जलेंगे।

गोशाला भगवान् के पास आया और बोला—भगवन् ! आज मैंने सारम्भ, सपरिग्रहो साधुओं को देखा है।

भगवान् ने कहा—वे पार्श्वनाथ की परम्परा के साधु हैं।

रात का समय हुआ। कुंभकार कूपनक विकाल वेली में बाहर से अपने घर पहुँचा। उसने एक ओर एक व्यक्ति को ध्यानस्थ रखे देखा और यह सोच कर कि 'यह चोर है', उसके गले को पकड़ा। स्थविर मुनिचन्द्र का गला घुटने लगा। असह्य-वेदना हो रही थी पर वे अकम्प रहे। ध्यान की लीनता बढ़ी। वे केवलो हुए और समस्त कर्मों को क्षीण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए।^१

एक बार भगवान् महावीर चोराग सन्निवेश में गए। गोशाला साथ था। वहाँ के अधिकारियों ने इन्हें गुप्तचर समझ पकड़ लिया। गोशाले को एक रस्सी से बाँध कर कुएँ में लटक दिया। वहाँ उपलब्ध की दो बहनें—सोभा और जयन्ति रहती थीं। वे दोनों दोक्षित होने में असमर्थ थीं, अतः पार्श्वार्थापत्योय परित्राजिकाओं के रूप में रहती थीं। उन्होंने लोगों को महावीर के विषय में यथार्थ जानकारी दी। अधिकारियों ने महावीर तथा गोशाला को बन्धन-मुक्त कर दिया।^२

एक बार भगवान् 'सम्भ्राक' ग्राम में गए। वहाँ पार्श्वार्थापत्योय स्थविर नन्दिसेण अपने बहुभूत सुनियों के बहुत बड़े परिवार के साथ आए हुए थे। आचार्य नन्दिसेण जिनकल्प-प्रतिमा में स्थित थे। गोशाले ने उन्हें देखा और उनका तिरस्कार किया। गाँव के अधिकारियों ने भी आचार्य को 'घर' समझ पकड़ भालों से आहत किया। असह्य वेदना को समभाव से सहते हुए उन्हें केवलज्ञान हुआ। वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए।^३

एक बार भगवान् 'कूचिय' सन्निवेश में गए। गोशाला साथ था। वहाँ के अधिकारियों ने दोनों को 'गुप्तचर' समझ कर पकड़ लिया। वहाँ पार्श्वार्थापत्योय परम्परा की दो परित्राजिकाओं—विजया और प्रगल्भा ने आकर उन्हें छुड़ाया।^४

१—भावयक नियुक्ति, वृत्ति पत्र, २७८

२—वही, खाँ पत्र, २७८, २७९

३-४—वही पत्र २८१

इस प्रकार पार्श्वनाथ की परम्परा के साधुओं की जानकारी देने वाले अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं। मूल आगम-साहित्य में अनेक स्थलों पर भगवान् महावीर के मुख से पार्श्व के लिए 'पुरुषादानोय' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह आवर सूचक शब्द है।

कुमार-भ्रमण केशी भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के चौथे पट्टधर थे। प्रथम पट्टधर आचार्य शुभदत्त हुए। उनके उत्तराधिकारी आचार्य हरिदत्तसूरि थे। जिन्होंने वेदान्त-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य 'लौक्यि' से शास्त्रार्थ कर उनको ५०० शिष्यों सहित दीक्षित किया। इन नव दीक्षित मुनियों ने सौराष्ट्र, तैलंग आदि प्रान्तों में विहार कर जैन-शासन की प्रभावना की। तीसरे पट्टधर आचार्य समुद्रसूरि थे। इनके काल में विदेशी नामक एक प्रचारक आचार्य ने उज्जैन नगरी में महाराजा जयसेन, उनको रानी अनंगसुन्दरी और उनके राजकुमार 'केशी' को दीक्षित किया।^१ एके चल कर मुनि केशी ने नारिकेल राजा परदेशी को समझाया और उसे जैन-धर्म में स्थापित किया।^२

एक बार कुमार-भ्रमण केशी ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए 'आवस्सी' में आए और 'तिन्दुक' उद्यान में ठहरे। भगवान् महावीर के शिष्य गणधर गौतम भी संयोगवश उसी नगर में आए और 'कोष्ठक' उद्यान में ठहरे। नगर में आते-जाते दोनों परम्पराओं के शिष्य एक दूसरे से मिले। दोनों के मन जिज्ञासा से भर गए। आपस में ऊहापोह करते हुए वे अपने-अपने आचार्य के पास आए। उनसे पारस्परिक भेदों की चर्चा की।

कुमार-भ्रमण केशी और गणधर गौतम विशिष्ट ज्ञानी थे। वे सब कुछ जानते थे। परन्तु अपने शिष्यों के समाधान के लिए वे कुछ व्यावहारिक प्रयत्न करना चाहते थे। कुमार-भ्रमण केशी पार्श्व की परम्परा के आचार्य होने के कारण गौतम से उगेष्ठ थे, इसलिए गौतम अपने शिष्यों को साथ ले 'तिन्दुक' उद्यान में गए। आचार्य केशी ने आसन आदि दे उनका सत्कार किया। कई अन्य मतावलम्बी संन्यासी तथा उनके उपासक भी आए। आचार्य केशी तथा गणधर गौतम में संवाद हुआ। प्रश्नोत्तर चले। उनमें चातुर्याम और पंचयाम धर्म तथा सचेतकत्व और अचेतकत्व के प्रश्न मुख्य थे।

आचार्य केशी ने गौतम से पूछा—“भंते! भगवान् पार्श्व ने चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की और भगवान् महावीर ने पंचयाम धर्म की। दोनों का लक्ष्य एक है। फिर यह भेद क्यों? क्या यह पार्थक्य संदेह उपपन्न नहीं करता?” (श्लो० २३, २४)

गौतम ने कहा—“भंते! प्रथम तीर्थङ्कर के भ्रमण ऋजु-जड़, अन्तिम तीर्थङ्कर के वक्र-जड़ और मध्यवर्ती बाईस तीर्थङ्करों के भ्रमण ऋजु-प्राज्ञ होते हैं। प्रथम तीर्थङ्कर के भ्रमणों के लिए मुनि के आधार को यथावत् ग्रहण करना कठिन है, चरम तीर्थङ्कर के भ्रमणों के लिए आधार का पालन करना कठिन है और मध्यवर्ती तीर्थङ्करों के मुनि उसे यथावत् ग्रहण करते हैं तथा सरलता से उसका पालन भी करते हैं। इन्हीं कारणों से धर्म के ये दो भेद हुए हैं।” (श्लो० २५, २६, २७)

आचार्य केशी ने पुनः पूछा—“भंते! एक ही प्रयोजन के लिए अभिनिष्क्रमण करने वाले इन दोनों परम्पराओं के मुनियों के वेश में क्या विविधता क्यों है? एक सवस्त्र हैं और दूसरे अवस्त्र।” (श्लो० २८, ३०)

गौतम ने कहा—“भंते! मोक्ष के निश्चित साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य हैं। वेश तो बाह्य उपकरण है। लोगों को यह प्रतीत हो कि वे साधु हैं, इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना की है। संयम जीवन-यात्रा को निभाना और 'मैं साधु हूँ'—ऐसा ध्यान आते रहना—वेश धारण के ये प्रयोजन हैं।” (श्लो० ३२, ३३)

१—समरसिंह: पृष्ठ ७५, ७६

२—नाभिगन्धोद्धार प्रबन्ध १३६ :

केषिमासा तद्-विशेषः, यः प्रदेशीनरेष्वपरम् ।

प्रबोध नाटिकाद् धर्माद्, जैनधर्मोऽप्यरीपयत् ॥

इन दो विषयों से यह आकलन किया जा सकता है कि किस प्रकार भगवान् महावीर ने अपने संघ में परिष्कार, परिवर्द्धन और सम्वर्द्धन किया था। चार महाव्रतों की परम्परा को बदल पाँच महाव्रतों की स्थापना की। सचेल परम्परा के स्थान पर अचेल परम्परा को मान्यता दी। सामाजिक-चारित्र के साथ-साथ द्वेदोपस्थापनीय-चारित्र की प्ररूपणा की तथा समिति-गुप्ति का प्रथक् निरूपण कर उनका महत्त्व बढ़ाया।^१

भगवान् महावीर ने सचेल और अचेल—दोनों परम्पराओं के साधकों को मान्यता दी और उनकी साधना के लिए निश्चित पथ निर्दिष्ट किया। दोनों परम्पराएँ एक ही क्षेत्र-क्षेत्र में पनपीं, फूली-फलीं और उनमें कभी संघट्टन नहीं हुआ। भगवान् प्रारम्भ में सचेल थे। एक देवदुष्य धारण किए हुए थे। तदनन्तर वे अचेल बने और जीवन भर अचेल रहे। किन्तु उन्होंने सचेल और अचेल किसी एक को एकान्ते मान्यता नहीं दी। दोनों के अस्तित्व को स्वीकार कर उन्होंने संघ को विस्तार दिया।

इस अध्ययन में आत्म-विजय और मनोनुशासन के उपायों का अच्छा निरूपण है।

१—मूलाचार, ७।३६-२८ :

बावीसं तित्थयरा, सामाह्वसंनमं उव्विसंति ।
 द्वेदुवठावणियं पुण, भयवं उसहो य बीरो ष ॥
 आचक्खिदुं विभज्जिदुं, विवणादुं चावि छह्वरं होदि ।
 पदेण कारणेण दु, महव्वद्द पंच पयणत्ता ॥
 आदीप दव्विसोचणे, णिहणे तह छट्ठ दुरणुपाके ष ।
 उरिमा य पच्छिमा वि हु, कप्पाकप्पं ण ज्ञाणत्ति ॥

तेतिसडमं अङ्गप्रथमं : त्रयोविंश अध्यायन केसिगोयमिज्जं : केशि-गौतमीयम्

मूल	संस्कृत द्वाया	हिन्दी अनुबाध
१—जिणे पासे त्ति नाभेण 'अरहा लोगपूइओ । संबुद्धप्पा य सव्वन्नु धम्मतिथ्यरे जिणे' ॥	जिनः पार्श्वं इति नाम्ना । अहं लोक-पूजितः । संबुद्धात्मा च सर्वज्ञः धर्म-तीर्थकरो जिनः ॥	१—पार्श्वं नाम के जिन हुए । वे अहं, लोक-पूजित, संबुद्धात्मा, सर्वज्ञ, धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक और बीतराग थे ।
२—तस्स लोगपईवस्स आसि सीसे महायसे । केसीकुमारसमणे विजाचरणपारगे ॥	तस्य लोक-प्रवीणस्य आसीच्छिष्यो महायशः । केशिः कुमार-धम्मणः विद्या-चरण-पारगः ॥	२—लोक को प्रकाशित करने वाले उन भगवान् पार्श्व के केली नामक शिष्य हुए । वे महान् यशस्वी, विद्या और आचार के पार-गामी, कुमार-धम्मण थे ।
३—ओहिनाणसुए बुद्धे सीससंघसमाउले । गामाणुगामं रीयन्ते सावत्थि नगरिमागए ॥	अवधिज्ञान-भूताभ्यां बुद्धः शिष्य-संघ-समाकुलः । ग्रामानुग्रामं रोयमाणः आवस्तीं नगरोमागतः ॥	३—वे अवधि-ज्ञान और भूत-सम्पदा से तत्त्वों को जानते थे । वे शिष्य-संघ से परिबृत्त हो कर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आवस्ती में आए ।
४—तिन्दुयं नाम उज्जाणं तम्मी नगरमण्डले । फामुए सिज्जसंधारे तत्थ वासमुवागए ॥	तिन्दुकं नामोद्यानं तस्मिन् नगर-मण्डले । प्रासुके शय्या-संस्तारे तत्र वासमुपागतः ॥	४—उस नगर के पार्श्व में 'तिन्दुक' उद्यान था । वहाँ जीव-जन्तु रहित शय्या (मकान) और संस्तार (आसन) लेकर वे ठहर गए ।
५—अह तेणव कालेणं धम्मतिथ्यरे जिणे । भगवं वद्धमाणो त्ति सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥	अथ तस्मिन्नेव काले धर्म-तीर्थकरो जिनः । भगवान् वर्धमान इति सर्वलोक के विभूतः ॥	५—उस समय भगवान् वर्धमान विहार कर रहे थे । वे धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक, जिन और समूचे लोक में विभूत थे ।

१.अरिहा लोगविच्छप् ।
सव्वन्नु सव्वदस्सी च धम्मतिथ्यस्स देसए ॥ (६० पा०) ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

३०४

अध्ययन २३ : श्लोक ६-११

६—तस्स लोपपईवस्स
आसि सीसे महायसे^१ ।
भगवं गोयमे नामं
विज्जाचरणपारगे ॥

७—बारसंभञ्जि बुद्धे
सीससंघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयन्ते
से वि सावत्थिमागए ॥

८—कोट्ठगं नाम उज्जाणं
तम्मो नयरमण्डले ।
फासुए सिज्जसंघारे
तत्थ वासमुवागए ॥

९—केसीकुमारसमणे
गोयमे य महायसे ।
उभओ वि तत्थ विहरिस्सु
अलीणा^२ सुसमाहिया ॥

१०—उभओ सीससंघाणं
संजयाणं तवस्सिणं ।
तत्थ कित्ता समुपपन्ना
गुणवन्ताण ताइणं ॥

११—केरिसो वा इमो धम्मो ?
इमो धम्मो व केरिसो ? ।
आयारधम्मपणिही
इमा वा सा व केरिसी ? ॥

तस्य लोक-प्रवीणस्य
आसीच्छिष्यो महायशः ।
भगवान् गौतमो नाम
विद्या-चरण-पारगः ॥

द्विवासांगविह बुद्धः
शिष्य-संघ-समाकुलः ।
ग्रामानुग्रामं रीयमाणः
सोऽपि श्रावस्तीमागतः ॥

कोष्ठकं नामोद्यानं
तस्मिन्नगर-मण्डले ।
प्रासुके शय्या-संस्तारे
तत्र वासमुवागतः ॥

केसिः कुमार-श्रमणः
गौतमस्य महायशः ।
उभावपि तत्र क्यहाण्डास्म
आलीनो सुसमाहितौ ॥

उभयोः शिष्य-सङ्घानां
संयतानां तपस्विनाम् ।
तत्र चित्तत्र सङ्कुपन्ना
गुणवतां त्रयिण्याम् ॥

कौटशो वायं धर्मः ?
अयं धर्मो वा कौटशः ? ।
आचार-धर्म-श्रीणिभिः
अयं वा सा वा कौटशः ? ॥

६—लोक को प्रकाशित करने वाले उन
भगवान् वर्धमान के गौतम नाम के शिष्य थे ।
वे महान् यशस्वी, भगवान् तथा विद्या और
आचार के पारगामी थे ।

७—वे बारह अंगों को जानने वाले और
बुद्ध थे । शिष्य-संघ से परिचुत हो कर ग्रामानु-
ग्राम विहार करते हुए वे भी श्रावस्ती में
आ गए ।

८—उस नगर के पार्श्व-भाग में 'कोष्ठक'
उद्यान था । वहाँ जीव-जन्तु रहित शय्या और
संस्तार लेकर वे ठहर गए ।

९—कुमार-श्रमण केशी और महान्
यशस्वी गौतम—दोनों वहाँ विहार कर रहे थे ।
वे आत्म-लीन और मन की समाधि से
सम्पन्न थे ।

१०—उन दोनों के शिष्य-समूहों को वहाँ
एक तर्क उत्पन्न हुआ, जो संयत, तपस्वी,
गुणवान् और कर्मवी थे ।

११—यह हमारा धर्म कैसा है ? और
यह धर्म कैसा है ? आचार-धर्म की व्यवस्था
यह हमारी कैसी है ? और यह उनकी
कैसी है ?

१. महिषिण (अ) ।

२. अलीणा (वृ० पा०) ।

१२—चाउज्जामो य जो धम्मो
जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण
पासेण य महामुणी ॥

चातुर्थांश-धर्म यो धर्मः
योऽयं पंच-शिक्षितः ।
देशितो वर्धमानेन
पाश्वेण च महामुनिना ॥

१२—जो चातुर्थांश-धर्म है, उसका
प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने किया है । और
यह जो पंच-शिक्षात्मक-धर्म है, उसका
प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है ।

१३—अचेलगो य जो धम्मो
जो इमो सन्तस्सुरो ।
एगकज्जपवन्नाणं
विसेसे किं नु कारणं ? ॥

अच्छेलकश्च यो धर्मः
योऽयं सान्तरोत्तरः ।
एककार्यं-प्रपन्नयोः
विशेषे किन्तु कारणम् ? ॥

१३—महामुनि वर्धमान ने जो आचार-
धर्म की व्यवस्था की है वह अच्छेलक है और
महामुनि पार्श्व ने जो यह आचार-धर्म की
व्यवस्था की है, वह सान्तर (वर्ण आदि से
विशिष्ट) तथा उत्तर (मूल्यवान् वस्त्र वाली)
है । जबकि हम एक ही उद्देश्य से चले हैं तो
फिर इस भेद का क्या कारण है ?

१४—अहं ते तत्थ सीसाणं
विन्नाय पवित्थियं ।
समागमे कयमई
उभओ केसिगोयमा ॥

अथ तौ तत्र शिष्याणां
विन्नाय प्रवित्तिर्कर्म ।
समागमे कृतमती
उभौ केशि-गौतमौ ॥

१४—उन दोनों—केशी और गौतम ने
अपने-अपने शिष्यों की वित्तकृपा को जान कर
परस्पर मिलने का विचार किया ।

१५—गोयमे पडिरूवन्नु
सीससंघसमाउले ।
जेट्ठं कुलमवेक्खन्तो
तिन्दुयं वणमागओ ॥

गौतमः प्रतिरूपतः
शिष्य-सङ्घ-समाकुलः ।
ज्येष्ठं कुलमपेक्षमाणः
तिन्दुकं वनमागतः ॥

१५—गौतम ने विनय की मर्यादा का
अधिकृत्य देखा । केशी का कुल ज्येष्ठ था,
इसलिए वे शिष्य-संघ को साथ लेकर तिन्दुक वन
में चले आए ।

१६—केसीकुमारसमणे
गोयमं दिस्समागयं ।
पडिरूवं पडिवत्ति
सम्मं संपडिवज्जई ॥

केशिः कुमार-धमणः
गौतमं दृष्ट्वागतम् ।
प्रतिरूपां प्रतिपत्तिम्
सम्यक् संप्रतिपद्यते ॥

१६—कुमार धमण केशी ने गौतम को
आए देख कर सम्यक् प्रकार से उनका उपयुक्त
आदर किया ।

१७—पलालं फासुयं तत्थ
पंचमं कुसतणाणि य ।
गोयमस्स निसेज्जाए
खिप्पं संपणामए ॥

पलाशं प्रासुकं तत्र
पंचमं कुश-तृणानि च ।
गौतमस्य निषिद्धार्थं
क्षिप्य संपर्ययति ॥

१७—उन्होंने तुरन्त ही गौतम को बैठने
के लिए प्रासुक पयाल (चार प्रकार के
अनाजों के बंडल) और पाँचवीं कुश नाम की
घास दी ।

२९—अचेलमो य जो धम्मो
जो इमो सन्तरोत्तरो ।
देसिओ वडमाणेण
पासेण य महाजसा^१ ॥

अचेलकदम यो धर्मः
योऽयं सान्तरोत्तरः ।
देशितो धर्ममानेन
पाद्वेण च महायशसा ॥

२९—महामुनि धर्ममान ने जो आचार-धर्म की व्यवस्था की है वह अचेलक है और महान् यशस्वी पादर्व ने जो यह आचार-धर्म की व्यवस्था की है वह सान्तर (धर्म आदि से विशिष्ट) तथा उत्तर (मूलवान् वस्त्र वाली) है ।

३०—एगकज्जपवन्नाणं
विसेसे किं नु कारणं ? ।
लिंगे दुविहे मेहावि !
कहं विप्पञ्चओ न ते ? ॥

एककार्य-प्रपन्नयोः
विशेषे किन्तु कारणम् ? ।
लिङ्गे द्विविधे मेधाविन् !
कथं विप्रत्ययो न ते ? ॥

३०—एक ही उद्देश्य के लिए हम चले हैं तो फिर इस भेद का क्या कारण है ? मेधाविन् ! वेध के इन प्रकारों में तुम्हें संदेह कैसे नहीं होता ?

३१—केसिमेवं बुवाणं तु
गोयमो इणमञ्चवी ।
विन्नाणेण समागम्य
धम्मसाहणमिच्छियं ॥

केशिमेवं बुवाणं तु
गौतम इवमञ्चवी ।
विज्ञानेन समागम्य
धर्म-साधनमिच्छितम् ॥

३१—केशी के कहते-कहते ही गौतम ने इस प्रकार कहा—विज्ञान से यथोचित ज्ञान कर ही धर्म के साधनों—उपकरणों की अनुमति दी गई है ।

३२—पञ्चयत्थं च लोगस्स
नाणाविहविगप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च
लोगे लिगप्पजोयणं ॥

प्रत्ययार्थं च लोकस्य
नामाविध-विकल्पनम् ।
यान्त्रार्थं ग्रहणार्थं च
लोके लिङ्गप्रयोजनम् ॥

३२—सोंगों को यह प्रतीति हो कि ये साधु हैं, इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना की गई है । जीवन-याना को निभाना और 'मैं साधु हूँ', ऐसा ध्यान आते रहना—वेध-धारण के इस लोक में ये प्रयोजन हैं ।

३३—अहं भवे पइन्ना उ
मोक्खसम्भूयसाहणे^२ ।
नाणं च दंसणं चैव
चरित्तं चैव निच्छए ॥

अथ भवेत्प्रतिज्ञा तु
मोक्ष-सहभूत-साधने ।
ज्ञानं च दशानं चैव
चारित्र्यं चैव निश्चये ॥

३३—यदि मोक्ष की वास्तविक साधना की प्रतिज्ञा हो तो निश्चय-दृष्टि में उसके साधन, ज्ञान, दशान और चारित्र्य ही हैं ।

३४—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहमु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽग्रम् ।
अन्वयोऽपि संशयो मय
तं मां कथय गौतम ! ॥

३४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

१. महासुणी (६०) ; महाजसा (६० पा०) ।

२. मुक्ख संभूय^० (उ, ५०) ; मोक्खे सम्भूय^० (अ) ।

३५—अणेगाणं सहस्साणं
मज्जे चिद्दसि गोयमा ! ।
ते य ते अहिगच्छन्ति
कहं ते निज्जिया तुमे ? ॥

अनेकेषां सहस्राणां
मध्ये तिष्ठसि गौतम ! ।
ते च त्वामभिगच्छन्ति
कथं ते निजितास्त्वया ? ॥

३५—गौतम ! तुम हजारों-हजारों शत्रुओं
के बीच खड़े हो । वे तुम्हें जीतने को तुम्हारे
सामने आ रहे हैं । तुमने उन्हें कैसे पराजित
किया ?

३६—एगे जिए जिया पंच
पंच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताणं
सव्वसत्तु जिणामहं ॥

एकस्मिन् जिते जिताः पंच
पंचसु जितेषु जिता दश ।
दशया तु जित्वा
सर्वशत्रून् जयाम्यहम् ॥

३६—एक को जीत लेने पर पाँच जीते
गए । पाँच को जीत लेने पर दस जीते गए ।
दसों को जीत कर मैं सब शत्रुओं को जीत
लिता हूँ ।

३७—सत्तु य इह के वृत्ते ?
केसी गोयममव्ववी ।
तओ केसि वुवंतं तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

शत्रवश्च इति के उक्ताः ?
केसिः गोतममव्ववी ।
ततः केशि श्रुत्वा
गौतम इवमव्ववीत् ॥

३७—शत्रु कौन कहलाता है ?—केसी ने
गौतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

३८—एगप्पा अजिए सत्तु
कसाया इन्द्रियाणि य ।
ते जिणित्तु जहानायं
विहरामि अहं मुणी ! ॥

एक आत्माऽजितः शत्रुः
कषाया इन्द्रियाणि च ।
तान् जित्वा यथान्यायं
विहराम्यहं मुने ! ॥

३८—एक न जीती हुई आत्मा शत्रु है ।
कषाय और इन्द्रियाँ शत्रु हैं । मुने ! मैं उन्हें
जीत कर नीति के अनुसार बिहार कर
रहा हूँ ।

३९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्जं
तं मे कहमु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

३९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसको
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

४०—दीसन्ति बहवे लोए
पासबद्धा सरीरिणो ।
मुक्कपासो लहुम्भूओ
कहं तं विहरसी ? मुणी ! ॥

दृश्यन्ते बहवो लोके
पाश-बद्धाः शरीरिणः ।
मुक्त-पाशो कम्बुभूतः
कथं त्वं विहरसि ? मुने ! ॥

४०—इस संसार में बहुत जीव पाश से
बन्धे हुए दीख रहे हैं । मुने ! तुम पाश से
मुक्त और पवन की तरह प्रतिबंध-रहित
हो कर कैसे बिहार कर रहे हो ?

४१—ते पासे सबसो छित्ता
निहन्तूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुबभूओ
बिहरामि अहं मुणि ! ॥

तान् पाशान् सर्वशच्छिन्ना
निहन्त्योपायतः ।
मुक्त-पाशो लघुभूतः
बिहराम्यहं मुने ! ॥

४१—मुने ! उन पाशों को सर्वथा काट
कर, उपायों से विनष्ट कर मैं पाश-मुक्त और
प्रतिबन्ध-रहित हो कर बिहार करता हूँ ।

४२—पासा य इइ के वुत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं वुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

पाशाश्चेति के उक्ताः ?
केशिः गौतमप्रबोत् ।
केसिमेवं ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमप्रबोत् ॥

४२—पाश किसे कहा गया है ?—केसी
ने गौतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

४३—रागहोसादओ तिब्बा
नेहपासा भयंकरा ।
ते छिन्दित्तु जहानायं
बिहरामि जहक्कम् ॥

राग-द्वेषादयस्तीव्राः
स्नेह-पाशा भयङ्कराः ।
तान् छिन्त्वा यथान्यायं
बिहरामि यथाक्रमम् ॥

४३—प्रगाढ़ राग-द्वेष और स्नेह भयंकर
पाशा हैं । मैं उन्हें काट कर मुनि-धर्म की नीति
और आचार के साथ बिहार करता हूँ ।

४४—साहु गोयम ! पन्ता ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रश्ना ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

४४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रश्ना ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

४५—अन्तोहिययसंभूया
लया चिट्ठइ गोयमा ! ।
फलेइ विसभक्खीणि^१
सा उ उद्धरिया कहं ? ॥

अन्तर्हृदय-संभूता
लता चिट्ठति गौतम ! ।
फलति विष-भक्ष्याणि
सा तूवधृता कथम् ? ॥

४५—गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न जो
लता है जिसके विष-मुल्य फल लगते हैं, उसे
तुमने कैसे उखाड़ा ?

४६—तं लयं सबसो छित्ता
उद्धरित्ता समूलियं ।
बिहरामि जहानायं
मुक्को मि विसभक्खणं ॥

तां लतां सर्वशच्छिन्ना
उद्धृत्य समूलिकाम् ।
बिहरामि यथान्यायं
मुक्तोऽस्मि विष-भक्षणात् ॥

४६—उस लता को सर्वथा काट कर, जड़
से उखाड़ कर मैं मुनि-धर्म की नीति के अनुसार
बिहार करता हूँ, इसलिए मैं विष-फल के क्षाने
से मुक्त हूँ ।

४७—लया य इह का वुत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं वुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

लता च इति का उक्ता ?
केशिः गौतममब्बवात् ।
ततः केशि ब्रुवन्सं तु
गौतम इवमब्बवात् ॥

४७—लता किसे कहा गया है ?—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

४८—भवतण्हा लया वुत्ता
भीमा भीमफलोदया ।
तमुद्धरितुं जहानायं
विहरामि महामुणी ! ॥

भव-तृष्णा लता उक्ता
भीमा भीमफलोदया ।
तामुद्धृत्य यथान्यायं
विहरामि महामुने ! ॥

४८—भव-तृष्णा को लता कहा गया है । वह भयंकर है और उसमें भयंकर फलों का परिपाक होता है । महामुने ! मैं उसे उखाड़ कर मुनि-धर्म की नीति के अनुसार विहार करता हूँ ।

४९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अम्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

४९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

५०—संपज्जलिया घोरा
अग्गी चिट्ठइ गोयमा ! ।
'जे डहन्ति सरीरत्था'^१
कहं विज्झाविया तुमे ? ॥

संप्रज्वलिता घोराः
अग्नयस्तिष्ठन्ति गौतम ! ।
ये बहन्ति शरीरस्थाः
कथं विज्यापितास्त्वया ? ॥

५०—गौतम ! घोर-अग्नियों प्रज्वलित हो रही हैं, जो शरीर में रहती हुई मनुष्य को जला रही हैं । उन्हें तुमने कैसे बुझाया ?

५१—महामेहप्पसूयाओ
गिज्झ वारि जलुत्तमं ।
'सिचामि सययं देहं'^२
सित्ता नो व डहन्ति मे ॥

महामेघ-प्रसूतात्
गृहीत्वा वारि जलोत्तमम् ।
सिचामि सततं देहं
सिक्ता नो एव बहन्ति माम् ॥

५१—महामेघ से उत्पन्न निर्भर से सब जलों में उत्तम जल लेकर मैं उन्हें सींचता रहता हूँ । वे सींची हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलाती ।

१. लघुच्छिन्नं (उ, ख०) ; लघुद्धरिता (ग०) ।

२. जा बहेति सरीरत्था (व० पा०) ।

३. सिचामि सययं ते ओ (ते उ) (उ, ख०, व०) ; सिचामि सययं देहा, सिचामि सययं सं तु (व० पा०) ।

५२—अग्नी य इह के वृत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

अग्नयश्चेति के उक्ताः ?
केशिः गौतममब्बवीत् ।
ततः केसि ब्रुवन्तं तु
गौतम इवमब्बवीत् ॥

५२—अग्नि किन्हें कहा गया है ?—
केसी ने गौतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

५३—कसाया अग्निणो वृत्ता
सुयसीलतवो जलं ।
सुयधारामिहया सन्ता
मिन्ना हु न डहन्ति मे ॥

कसाया अग्नय उक्ताः
श्रुत-शील-तपो जलम् ।
श्रुतधारामिहताः सन्तः
मिन्ना 'हु' न बहन्ति माम् ॥

५३—कसायों को अग्नि कहा गया है ।
श्रुत, शील और तप यह जल है । श्रुत की
धारा से आहत किए जाने पर निस्तेज बनी
हुई वे मुझे नहीं जलातीं ।

५४—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ! !
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

५४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा !
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
बिषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

५५—अयं साहसिओ भीमो
दुइस्सो परिधावई ।
जंसि गोयम ! आरुडो
कहं तेण न हीरसि ? ॥

अयं साहसिको भीमः
दुष्टाश्वः परिधावति ।
यस्मिन् गौतम ! आरुडः
कथं तेन न हियसे ? ॥

५५—यह साहसिक, अयंकार, दुष्ट-अश्व
दौड़ रहा है । गौतम ! तुम उस पर चढ़े हुए
हो । वह तुम्हें उन्मार्ग में कैसे नहीं ले
जाता ?

५६—पघावन्तं निगिण्हामि
सुयस्सोसमाहियं ।
न मे गच्छइ उम्मगं
मगं च पडिवज्जई ॥

प्रधावन्तं निगृह्णामि
श्रुतरश्मि-समाहितम् ।
न मे गच्छन्त्युन्मार्गं
मार्गं च प्रतिपद्यते ॥

५६—मैंने इसे श्रुत की लगाम से बांध
लिया है । यह जब उन्मार्ग की ओर दौड़ता
है तब मैं इस पर रोक लगा देता हूँ । इसलिए
मेरा अश्व उन्मार्ग को नहीं जाता, मार्ग में ही
चलता है ।

५७—अस्से य इह के वृत्ते ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

अग्नयश्चेति क उक्ताः ?
केशिः गौतममब्बवीत् ।
ततः केसि ब्रुवन्तं तु
गौतम इवमब्बवीत् ॥

५७—अश्व किसे कहा गया है ?—केसी
ने गौतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

५८—मणो साहसिजो भीमो
दुष्टस्तो परिधावई ।
तं सम्मं निगिष्ठांमि
धम्मसिक्खाए कण्यं ॥

मनः साहसिको भीमः
दुष्टादयः परिधावति ।
तत् सम्पक्कं निगृह्णाति
धर्म-शिक्षया कन्यकम् ॥

५८—यह जो साहसिक, भयंकर, दुष्ट-
अथ दोष रहता है, वह मन है । उसे मैं भली-
भाँति अपने अधीन रखता हूँ । धर्म-शिक्षा के
द्वारा वह उत्तम-जाति का अथ हो गया है ।

५९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहस् गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

५९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

६०—कुप्पहा बहवो लोए
जेहि नासन्ति जंतवो ।
अद्धाने कह वट्टन्ते
तं न नस्ससि ? गोयमा ! ॥

कुपथा बहवो लोके
यनंदयन्ति जन्तवः ।
अध्वानि कथं वर्तमानः
त्वं न नश्यसि ? गौतम ! ॥

६०—लोक में कुमार्ग बहुत हैं । जिन
पर चलने वाले लोग भटक जाते हैं । गौतम !
मार्ग में चलते हुए तुम कैसे नहीं भटकते ?

६१—जे य मग्गेण गच्छन्ति
'जे य उम्ममगपट्टिया' ।
ते सब्बे विइया मज्झं
तो न नस्सामहं मुणी ! ॥

ये च मार्गेण गच्छन्ति
ये उन्मार्ग-प्रस्थिताः ।
ते सर्वे बिबिता मया
ततो न नश्यामहं मुने ! ॥

६१—जो मार्ग में चलते हैं और जो
उन्मार्ग से चलते हैं, वे सब मुझे ज्ञात हैं ।
मुने ! इसीलिए मैं नहीं भटक रहा हूँ ।

६२—मग्गे य इइ के वुत्ते ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

मार्गश्चेति क उच्यते ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

६२—मार्ग किसे कहा गया है ?—केशी
ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

६३—कुप्पवयणपासण्डी
सब्बे उम्ममगपट्टिया ।
सम्ममं तु जिणक्खायं
एस मग्गे हि उत्तमे ॥

कुप्रवचन-पाषण्डिनः
सर्वे उन्मार्ग-प्रस्थिताः ।
सन्मार्गस्तु जिनाख्यातः
एष मार्गो हि उत्तमः ॥

६३—जो कुप्रवचन के वती हैं, वे सब
उन्मार्ग की ओर चले जा रहे हैं । जो राम-
द्वेष को जीतने वाले जिन ने कहा है, वह
सन्मार्ग है, क्योंकि यह सबसे उत्तम मार्ग है ।

१. जे उम्ममग पट्टिया (अ) ।

२. कस्सामिह (अ) ।

३. हे (अ) ।

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

३१४

अध्ययन २३ : श्लोक ६४-६६

६४—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

६४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

६५—महाउदगवेगेणं
वुज्झमाणाण पाणिणं ।
सरणं गई पइट्ठा य
दीवं 'कं मन्नसी ?' मुणी ! ॥

महोदकवेगेन
उद्दामानां प्राणिनाम् ।
शरणं गतिं प्रतिष्ठा च
द्वापं कं मन्यसे ? मुने ! ॥

६५—मुने ! महान् जल-प्रवाह के वेग
से बहते हुए जीवों के लिए तुम शरण, गति,
प्रतिष्ठा और द्वीप किन्ते मानते हो ?

६६—अत्थि एगो महादीवो
वारिमज्जे महालओ ।
महाउदगवेगस्स
गई तत्थ न विज्जई ॥

अस्त्येको महाद्वीपः
वारिमध्ये महालयः ।
महोदक-वेगस्य
गतिस्तत्र न विद्यते ॥

६६—जल के मध्य में एक लम्बा-चोड़ा
महाद्वीप है । वहाँ महान् जल-प्रवाह की गति
नहीं है ।

६७—दीवे य इह के वुत्ते ?
केसो गोयममब्बवी ।
केसिमेवं वुत्तं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

द्वीपश्चेति क उक्तः ?
केशिः गौतममब्बवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्बवीत् ॥

६७—द्वीप किसे कहा गया है ?—केही
ने गौतम से कहा । केही के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

६८—जरामरणवेगेणं
वुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो 'पइट्ठा य'^१
गई सरणमुत्तमं ॥

जरा-मरण-वेगेन
उद्दामानां प्राणिनाम् ।
धर्मो द्वीपः प्रतिष्ठा च
गतिः शरणमुत्तमम् ॥

६८—जरा और मृत्यु के वेग से बहते
हुए प्राणियों के लिए धर्म द्वीप, प्रतिष्ठा, गति
और उत्तम शरण है ।

६९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

६९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

१. कम्म्युगसी ? (अ) ।

२. पइट्ठा णं (अ) ।

केसिगोयमिज्जं (केशि-गौतमीय)

३१५

अव्ययन २३ : श्लोक ७०-७५

७०—अण्वंसि महोहंसि
नावा विपरिधावई ।
जंसि गोयममारूढो
कहं पारं गमिस्सति ? ॥

अण्वे सहीचे
नौविपरिधावति ।
यस्यां गौतम ! आरूढः
कथं पारं गमिष्यति ? ॥

७०—महा-प्रवाह वाले समुद्र में नौका
तीव्र गति से चली जा रही है । गौतम ! तुम
उसमें आरूढ़ हो । उस पार कैसे पहुँच
पाओगे ?

७१—जा उ अस्साविणी' नावा
न सा पारस्स गामिणी ।
जा निरस्साविणी नावा
सा उ पारस्स गामिणी ॥

या त्वाधाविणी नौः
न सा पारस्य गामिनी ।
या निराधाविणी नौः
सा तु पारस्य गामिनी ॥

७१—जो खेव वाली नौका होती है,
वह उस पार नहीं जा पाती । किन्तु जो
नौका खेव वाली नहीं होती, वह उस पार चली
जाती है ।

७२—नावा य इइ का वुत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं वुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

नौवर्धति कोक्ता ?
केशिः गौतममब्बवीम् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इवमब्बवीम् ॥

७२—नौका किसे कहा गया है ?—केशी
ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

७३—सरीरमाहु नाव त्ति
जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्वो वुत्तो
जं तरन्ति महेसिणो ॥

शरीरमाहुर्नौरिति
जीव उच्यते नाविकः ।
संसारोऽण्व उच्यतः
यं तरन्ति महर्षयः ॥

७३—शरीर को नौका, जीव को
नाविक और संसार को समुद्र कहा गया है ।
महान् मोक्ष की एण्या करने वाले इसे तैर
जाते हैं ।

७४—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्नोऽपि संशयो मम
न मां कथय गौतम् ॥

७४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

७५—अन्धयारे तमे घोरे
चिद्धन्ति पाणिणो बह्व ।
को करिस्सइ उज्जोयं
सव्वलोगमि पाणिणं ? ॥

अन्धकारे तमसि घोरे
तिष्ठन्ति प्राणिनो बहवः ।
कः करिष्यत्युद्योतं
सर्वलोके प्राणिनाम् ? ॥

७५—लोगों को अन्ध बनाने वाले
तिमिर में बहुत लोग रह रहे हैं । इस समूचे
लोक में उन प्राणियों के लिए प्रकाश कौन
करेगा ?

७६—उगगो विमलो भाणू
सर्वलोगपमंकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं
सर्वलोगमि पाणिणं ॥

उदुगतो विमलो भानुः
सर्वलोक-प्रभकारः ।
सः करिष्यत्युद्योतं
सर्वलोके प्राणिनाम् ॥

७६—समूचे लोक में प्रकाश करने वाला
एक विमल भानु उगा है । वह समूचे लोक में
प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ।

७७—भाणू य इह के वुत्ते ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

भानुश्चेति क उक्तः ?
केशिः गोतममब्बवी ।
ततः केसिं प्रबुधन्तं तु
गोतम इदमब्बवी ॥

७७—भानु किसे कहा गया है ?—केसी
ने गोतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गोतम इस प्रकार बोले—

७८—उगगो लीणसंसारो
सव्वन्नू जिणभक्खरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं
सर्वलोर्यमि पाणिणं ॥

उदुगतः क्षीण-संसारः
सर्वलो जिन-भास्करः ।
स करिष्यत्युद्योतं
सर्वलोके प्राणिनाम् ॥

७८—जिसका संसार क्षीण हो चुका है,
जो सर्वज्ञ है वह अहंत-रूपी भास्कर समूचे
लोक के प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ।

७९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गोतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गोतस्य ! ॥

७९—गोतम ! उसम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुम्हारे धर इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गोतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

८०—सारीरमाप्पसे दुक्खे
वज्झमणाणं पाणिणं ।
खेमं सिवमणाभा हं
ठाणं किं मन्थसी ? मुणी ! ॥

शारीरमानसैर्बलैः
वाध्यमानानां प्राणिनाम् ।
खेमं शिक्खणाब्बावं
स्थानं किं मन्थसे ? मुने ! ॥

८०—शारीरिक और मानसिक दुःखों
से पीड़ित होते हुए प्राणियों के लिए खेम,
शिव और अनावाध स्थान किसे मानते हो ?
मुने !

८१—अत्थि एगं बुवं ठाणं
लोगगमि दुरारुहं ।
जत्थ नत्थि जरा मज्झू
वाहिणो वेयणा तहा ॥

अस्त्येकं श्रुवं स्थानं
लोकगमे दुरारोहं ।
यत्र नास्ति जरा मज्जुः
व्याधये वेयवस्तथा ॥

८१—लोक के शिखर में एक वैरा
वास्तव स्थान है, जहाँ पट्टेच पाना बहुत
कठिन है और जहाँ नहीं है—जरा, मृत्यु,
व्याधि और वेयना ।

८२—ठाणे य इह के वृत्ते ?
केसी गोयममव्ववी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

स्थानं चेति किमुक्तं ?
केशिः गौतममव्ववीन् ।
ततः केशिः ब्रुवन्तं तु
गौतम इवमव्ववीन् ॥

८२—स्थान किसे कहा गया है ?—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

८३—निव्वणं ति अवाहं ति
सिद्धो लोगम्ममेव य ।
खेमं सिवं अणावाहं
जं चरन्ति महेसिणो ॥

निर्वाणमित्यत्रायमिति
सिद्धिलोकाग्रमेव च ।
क्षेमं शिवमनावाध
यश्चरन्ति महेशिणः ॥

८३—जो निर्वाण है, जो अवाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनावाध है, जिसे महान् की एषणा करने वाले प्राप्त करते हैं—

८४—तं ठाणं सासयंवासं
लोगम्ममि दुरारुहं ।
जं संपत्ता न सोयन्ति
भवोहन्तकरा मुणो ॥

तत् स्थानं शाश्वतं वासं
लोकाग्रं दुरारोहम् ।
यत्सम्प्राप्ता न शोचन्ति
अवौघान्तकराः मुनयः ॥

८४—भव-प्रवाह का अन्त करने वाले मुनि जिसे प्राप्त कर शोक से मुक्त हो जाते हैं, जो लोक के शिखर में शाश्वत-रूप से अवस्थित है, जहाँ पहुँच पाना कठिन है, उसे मैं स्थान कहता हूँ ।

८५—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संशयो इमो ।
नमो ते संशयाइय
सव्वसुत्तमहोयहो ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
नमस्तुभ्यं संशयातीत !
सर्वसूत्र-महोदधे ! ॥

८५—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । हे संशयातीत ! हे सर्वसूत्र-महोदधि ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।

८६—एवं तु संशये छिन्ने
केसी घोरपरक्कमे ॥
'अभिवन्दिता सिरसा
गोयमं तु महायसं' ॥

एवं तु संशये छिन्ने
केशिः घोर-पराक्रमः ।
अभिवन्द्य शिरसा
गौतमं तु महायशस्म् ॥

८६—इस प्रकार संशय दूर होने पर घोर-पराक्रम वाले केशी महान् यशस्वी गौतम का शिर से अभिवन्दन कर—

८७—'पंचमहव्वयधम्मं
पडिबज्जइ भावओ ।
पुरिमस्स पच्छिममी'^१
मग्गे तत्थ सुहावहे ॥'^२

पंचमहाव्रत-धर्म
प्रतिपद्यते भावतः ।
पूर्वस्य पश्चिमे
मार्गे तत्र सुहावहे ॥

८७—पूर्व मार्ग से सुहावह पश्चिम मार्ग में प्रविष्ट हुए ।

१. बंदिषु पञ्चलिङ्गो गोतमं तु महासुणी (५०) ।

२. पच्छिमस्सी (अ) ।

३. पंच महव्वय सुत्तं भावतो पडिबज्जया ।

धम्मं पुरिमस्स पच्छिममि मग्गे सुहावहे ॥ (५०) ।

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

३१८

अध्ययन २३ : ८८-८९

८८-केसिगोयमओ निच्चं
तम्मि आसि समागमे ।
सुयसीलसमुक्करिसो
महत्थऽत्थविण्छओ ॥

केशि-गोतमयोनित्थं
तस्मिन्मासान् समागमे ।
श्रुत-शील-समुत्कर्षः
महार्थविनिश्चयः ॥

८८—उस वत में होने वाला केशी और
गोतम का सतत मिलन श्रुत और शील का
उत्कर्ष करने वाला और महान् प्रयोजन वाले
अर्थों का विनिश्चय करने वाला था ।

८९-तोसिया परिता सज्जा
'सम्मगं' 'समुवट्ठिया'^१ ।
'संयुया ते पसीयन्तु'
भयवं केसिगोयमे ॥
—त्ति वेमि ।

तोषिता परिश्रुत सर्वा
सन्मार्गं समुपस्थिताः ।
संस्तुतौ तौ प्रसीदताम्
भगवन्तौ केशि-गोतमौ ॥
—इति ब्रवीमि ।

८९ — जिनकी गति-विधि से परिश्रुत को
सन्तोष हुआ और वह सन्मार्ग पर उपस्थित
हुई, वे परिश्रुत द्वारा प्रशंसित भगवान् केशी
और गोतम प्रसन्न हुए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ पञ्जुवट्ठिया (५० पा०) ।

२. सम्मग्ने पञ्जुवट्ठिया (५०) ।

३. संस्तुता ते पसीसन्तु (५०) ।

चतुर्विंशत्तमं अध्यायः :
पवयण-माता

चतुर्विंश अध्यायः :
प्रवचन-माता

आप्तुष्ट

जार्ज सरपेन्टियर के अनुसार सभी आदर्शों में इस अध्ययन का नाम 'समिर्द्धयो' है।^१ समवायांग में भी इसका यही नाम है।^२ निर्युक्तिकार ने इसका नाम 'प्रवचन-मात' या 'प्रवचन-माता' माना है।^३

ईयाँ, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्ग—इन पाँच समितियों तथा मनो-गुप्ति, वाग्-गुप्ति और काय-गुप्ति—इन तीनों गुप्तियों का संयुक्त नाम 'प्रवचन-माता' या 'प्रवचन-मात' है। (श्लो० १)

रत्नत्रयी (सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-दर्शन और सम्यग्-चारित्र्य) को भी प्रवचन कहा जाता है। उसकी रक्षा के लिए पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ माता-स्थानीय हैं। अथवा प्रवचन (गुप्ति) के समस्त चारित्र्य के उत्पादन, रक्षण और विशेषण के ये आठों अनन्य साधन हैं अतः उन्हें 'प्रवचन-माता' कहा गया है।^४

इनमें प्रवचन (गणिपिटक—द्वादशाङ्ग) समा जाता है। इसलिए उन्हें 'प्रवचन-मात' भी कहा जाता है। (श्लो० ३)

मन, वाणी और शरीर के गोपन, उत्सर्ग या विसर्जन को गुप्ति और सम्यग्-गात, भाषा, आहार की एषणा, उपकरणों का ग्रहण-निक्षेप और मल-मूत्र आदि के उत्सर्ग को समिति कहा जाता है। गुप्ति निवर्तन है और समिति सम्यक्-प्रवर्तन। प्रथम श्लोक में इनका पृथक्-विभाग है किन्तु तीसरे श्लोक में इन आठों को समिति भी कहा गया है।

समिति का अर्थ है सम्यक्-प्रवर्तन। सम्यक् और असम्यक् का मापदण्ड अहिंसा है। जो प्रवृत्ति अहिंसा से संबलित है वह समिति है। समितियों पाँच हैं—

१—ईयाँ समिति—गमनागमन सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

२—भाषा समिति—भाषा सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

३—एषणा समिति—जीवन-निर्वाह के आवश्यक उपकरणों—आहार, वस्त्र आदि के ग्रहण और उपभोग सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

४—आदान समिति—दैनिक व्यवहार में आने वाले पदार्थों के व्यवहरण सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

५—उत्सर्ग समिति—उत्सर्ग सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

१—उत्तराध्ययन सूत्र, वी, वृष्ट ३६५।

२—समवायांग, समवाय ३६

३—(क) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, शाखा ४५८:

जाणमासरीरमविद् तज्जइरिसे अ भायणे इयं।

भावंमि अ समिर्द्धो भावं ललु पवयणं जत्थ ॥

(क) वही, शा० ४५८:

अट्ठइवि समिर्द्धे अ दुवाकसंगं समोअइ अम्हा।

तम्हा पववणमाया अज्जमयणं होइ नावज्जं ॥

४—मूलाराधना, आगवास ६, श्लोक ११८५; मूलाराधना द्विपण, वृष्ट ११७०:

प्रवचनस्य रत्नत्रयस्य मातर इव पुत्राणां मातर इव सम्यग्दर्शनादीनां अवायनिवारणपरायणास्ति श्री गुप्तयः, पंचसमितयश्च। अथवा प्रवचनस्य बुद्धेचारित्र्यमात्रस्योत्पादनरक्षण-विशेषविधानात् तास्तथा व्यवसियन्ते।

इन पाँच समितियों का पालन करने वाला मुनि जीवाकुल संसार में रहता हुआ भी पापों से लिन नहीं होता ।^१

जिस प्रकार हृद् कवचधारी योद्धा बाणों की वर्षा होने पर भी नहीं झँका जा सकता, उसी प्रकार समितियों का सम्यक् पालन करने वाला मुनि साधु-जीवन के विविध कार्यों में प्रवर्तमान होता हुआ भी पापों से लिन नहीं होता ।^२

गुणि का अर्थ है निवर्तन । ते तीन प्रकार की हैं—

१—मनोगुणि—असत् चिन्तन से निवर्तन ।

२—वचनगुणि—असत् वाणी से निवर्तन ।

३—कायगुणि—असत् प्रवृत्ति से निवर्तन ।

जिस प्रकार क्षेत्र की रक्षा के लिए बाढ़, नगर की रक्षा के लिए सार्ई या प्राकार होता है, उसी प्रकार आमण्य की सुरक्षा के लिए, पाप के निरोध के लिए गुणि हैं ।^३

महाव्रतों की सुरक्षा के तीन साधन हैं—

१—रात्रि-भोजन की निवृत्ति ।

२—आठ प्रवचन-माताओं में जागरूकता ।

३—भावना (संस्कारापादन—एक ही प्रवृत्ति का पुनः-पुनः अभ्यास) ।

इस प्रकार महाव्रतों की परिपालना समिति-गुणि-सापेक्ष है । इनके होने पर महाव्रत सुरक्षित रहते हैं और न होने पर असुरक्षित ।^४

यह अध्ययन साधु आचार का प्रथम और अनिवार्य अंग है । कहा गया है कि चौदह पूर्व पद लेने पर भी जो मुनि प्रवचन-माताओं में निपुण नहीं है, उसका ज्ञान अज्ञान है । जो व्यक्ति कुछ नहीं जानता और प्रवचन-माताओं में निपुण है, सचेत है, वह व्यक्ति स्व-पर के लिए ज्ञाण है ।

मुनि कैसे साध ?, कैसे बोले ?, कैसे चले ?, वस्तुओं का व्यवहारण कैसे करे ? उत्सर्ग कैसे करे ?—

इनका स्पष्ट विवेचन इस अध्ययन में दिया गया है ।

मुनि जब चले तब गमन की क्रिया में उपयुक्त हो जाए, एक तान हो जाए । प्रत्येक चरण पर उसे यह मान रहे कि—“मैं चल रहा हूँ ।” वह चलने की स्मृति को क्षण मात्र के लिए भी न भूले । युग-मात्र भूमि को देख कर चले । चलते समय अन्यान्य विषयों का वर्जन करे । (३०० ६:७:८)

१—मूळाराधना, ६:१२०० :

पुद्दिहि सवा शुचो, समिदीहि जगमि बिहरमाणे हु ।
हिंसादिहि न किय्वा, जीबनिकावाकळे साहु ॥

२—बही, ६:१२०२ :

सरवासे वि पंडते, जह एवकवचो ण विज्झवि सरैहि ।
वह समिदीहि ण किय्वा, साधु कायु हरिंथो ॥

३—बही, ६:१२०६ :

जेत्तस्स बही णयरस्स, काहया अहण होइ पावारी ।
वह पावस्स जित्थो, ताभो गुणीभो साहुस्स ॥

४—मूळाराधना, ६:१२०६ :

तेसि चैव वराणं, रक्खहुं राधिभोजणियिणी ।
अट्ठपक्कणमादाभो भावणाभो व सत्ताभो ॥

विजयोपेया वृत्ति, पृष्ठ ११०२ : सत्ता रात्रि भोजन-निवृत्तौ प्रवचनमातृकाश्च भावनाश्च वा सतीत्यु हिंसादिभ्यामुत्तर्ज्य भवति । न तावत्सतीत्यु हिंति ॥

मुनि झूठ न बोले। झूठ के आठ कारण हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, मोक्ष और विद्या। मुनि इनका वर्जन करे। यह भाषा समिति का विवेक है।

मुनि दृष्ट, श्रवण, चरे। गन्ध, रस, स्पर्श और स्पर्श के दोषों का वर्जन करे। (श्लो० ११, १२)

मुनि को प्रत्येक वस्तु याचित मिलती है। उसका पूर्ण उपयोग करना उसका कर्तव्य है। प्रत्येक पदार्थ का व्यवहार उपयोग-सहित होना चाहिये। वस्तु को लेने या रखने में अहिंसा की दृष्टि होनी चाहिये। (श्लो० १३, १४)

मुनि के उत्सर्ग करने की विधि भी बहुत विवेक-पूर्ण होनी चाहिये। क्यों-क्यों, जहाँ-कहाँ वह उत्सर्ग नहीं कर सकता। जहाँ लोगों का आवागमन न हो, जहाँ चुड़ों आदि के बिल न हों, जो तस या स्यावर प्राणियों से दूख न हो—ऐसे स्थान पर मुनि को उत्सर्ग करना चाहिये। यह विधि अहिंसा की पोषक तो है ही किन्तु सम्यजन-सम्मत भी है। (श्लो० १५, १६, १७, १८)

मानसिक तथा वाचिक संवर्धनों से पूर्णतः निवृत्त होना मनोगुप्ति तथा वचनगुप्ति है।

मनोयोग चार प्रकार का है—

- १—सत्य मनोयोग।
- २—असत्य मनोयोग।
- ३—मिश्र मनोयोग।
- ४—व्यवहार मनोयोग।

वचनयोग चार प्रकार का है—

- १—सत्य वचनयोग।
- २—असत्य वचनयोग।
- ३—मिश्र वचनयोग।
- ४—व्यवहार वचनयोग।

काययोग—

स्थान, निषीदन, शयन, उत्थान, गमन और इन्द्रियों के व्यापार में अस्पर्श का वर्जन करना—काय-गुप्ति है।

सम्पूर्ण दृष्टि से देखा जाय तो यह अध्ययन समूचे साधु-जीवन का उपलक्ष्य है। इसके माध्यम से ही आत्मण का शुद्ध परिपाकन संभव है। जिस मुनि की प्रवचन-माताओं के पाठन में विशुद्धता है उसका समूचा आधार विशुद्ध है। जो इसमें स्तब्ध होता है वह समूचे आधार में स्तब्ध होता है।

चतुर्विंशदमं अङ्गवर्णनं : चतुर्विंश अध्यायः

पवयण-माया : प्रवचन-माता

मूल
१—अट्ट पवयणमायाओ
समिई गुत्ती तहेव य ।
पंचेव य समिईओ
तओ गुत्तीओ आहिया ॥

संस्कृत छाया
अष्टोप्रवचन-मातरः
समितयो गुप्तयस्तथैव च ।
पंचैव च समितयः
तिल्लो गुप्तय आख्याताः ॥

हिन्दी अनुवाद
१—आठ प्रवचन माताएँ हैं—समिति
और गुप्ति । समितियाँ पाँच और गुप्तियाँ
तीन ।

२—इरियाभासेसणादाने
उच्चारें समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती
कायगुत्ती य' अट्टमा ॥

ईयांभाषेयणादाने
उच्चारें समितिरिति ।
मनोगुप्तिवचोऽगुप्तिः
कायगुप्तिश्चाष्टमी ॥

२—ईयाँ-समिति, भाषा-समिति, एषणा-
समिति, आदान-समिति, उच्चार-समिति, मनो-
गुप्ति, वचन-गुप्ति और आठवीं काय-गुप्ति है ।

३—एयाओ अट्ट समिईओ
समासेण वियाहिया ।
दुवालसंगं जिणक्खायं
मायं जत्थ उ पवयणं ॥

एता अष्टो समितयः
समासेन व्याख्याताः ।
द्वावशाङ्गं जिनाख्यातं
मातं यत्र तु प्रवचनम् ॥

३—ये आठ समितियाँ संक्षेप में कही
गई हैं । इनमें जिन-भाषित द्वादशाङ्ग-रूप
प्रवचन समाया हुआ है ।

४—आलम्बणेण कालेण
मग्गेण जयणाइ य ।
चउकारणपरिसुद्धं
संजए इरियं रिए ॥

आलम्बनेन कालेन
मार्गेण यतनया च ।
चतुष्कारण-परिशुद्धं
संयत ईयां रोयेत ॥

४—संयमी मुनि आलम्बन, काल, मार्ग
और यतना—इन चार कारणों से परिशुद्ध
ईयाँ (गति) से चले ।

५—तत्थ आलंबणं नाणं
दंसणं चरणं तहा ।
काले य दिवसे वुत्ते
मग्गे उप्पहवजिए' ॥

तत्रालम्बनं ज्ञानं
दर्शनं चरणं तथा ।
कालश्च विषय उत्कृष्टः
मार्ग उत्पथ-वर्जितः ॥

५—उनमें ईयाँ का आलम्बन, ज्ञान,
दर्शन और चारित्र्य है । उसका काल विषय है
और उत्पथ का वर्जन करना उसका मार्ग है ।

१. उ (अ) ।

२. दुप्पह वजिए' (अ) ।

१२—उगमुप्यायणं पढमे
बीए सोहेज्ज एसणं ।
परिभोगे चउक्क
विसोहेज्ज जयं जई ॥

१३—ओहोवहोवग्गहियं
भण्डगं दुविहं मुणी ।
गिण्हन्तो निक्खवन्तो य
पउंजेज्ज इमं विहिं ॥

१४—चक्खुसा पडिलेहिता
पमउंजेज्ज जयं जई ।
आइए निक्खवेज्जा वा
दुहो वि समिए सया ॥

१५—उच्चारं पासवणं
खेलं सिघाणजल्लियं ।
आहारं उवहिं देहं
अन्नं वावि तहाविहं ॥

१६—अणावायमसंलोए
अणावाए चेव होइ संलोए ।
आवायमसंलोए
आवाए चेय संलोए ॥

उद्गमोत्पादनं प्रथमायां
द्वितीयायां शोधयेरेवणाम् ।
परिभोगे चतुष्क
विशोषयेत् यत् यतिः ॥

ओष्ठोपधोपग्रहिकं
भाण्डकं द्विविधं मुनिः ।
गृह्णन्तिक्षिपेत्तच्च
प्रयुज्यतेमं विधिम् ॥

चक्षुषा प्रतिलिख्य
प्रमार्जयेद् यत् यतिः ।
आश्वासितं निक्षिपेद् वा
द्विघातोपि सवितः सदा ॥

उच्चारं प्रसवणं
क्वेलं सिङ्घाणं जल्लिकम् ।
आहारमूर्पाधि देहं
अन्यद्वापि तथाविधम् ॥

अनापातमसंलोकम्
अनापातं चैव भवति संलोकम् ।
आपातमसंलोकम्
आपातं चैव संलोकम् ॥

१२—यतनाशील यति प्रथम एवणा
(गवेषणा-एवणा) में उद्गम और उत्पादन—
दोनों का शोधन करे । दूसरी एवणा (ग्रहण-
एवणा) में एवणा (ग्रहण) सम्बन्धी दोषों का
शोधन करे और परिभोगेवणा में दोष-चतुष्क
(संयोजना, अप्रमाण, अंगार-धूम और कारण)
का शोधन करे ।

१३—मुनि ओष्ठ-उपधि (सामान्य
उपकरण) और औपग्रहिक-उपधि (विशेष
उपकरण)—दोनों प्रकार के उपकरणों को लेने
और रखने में इस विधि का प्रयोग करे—

१४—सदा मम्यक-प्रवृत्त और यतनाशील
यति दोनों प्रकार के उपकरणों का चक्षु से
प्रतिलिखन कर तथा रजोहरण आदि में प्रमांजन
कर उन्हें ले और रखे ।

१५—उच्चारं, प्रसवण, दलेष्म, नाक का
मेल, मैत्र, आहार, उपधि, शरीर या उसी
प्रकार की दूसरी कोई उत्सर्ग करने योग्य
वस्तु का उपयुक्त स्थण्डिल में उत्सर्ग करे ।

१६—स्थण्डिल चार प्रकार के होते हैं—
१—अनापात-असंलोक—जहाँ लोगों का
आवागमन न हो, वे दूर से भी न दीखते हों ।
२—अनापात-संलोक—जहाँ लोगों का
आवागमन न हो, किन्तु वे दूर से दीखते हों ।
३—आपात-असंलोक—जहाँ लोगों का
आवागमन हो, किन्तु वे दूर से न दीखते हों ।
४—आपात-संलोक—जहाँ लोगों का
आवागमन भी हो, और वे दूर से दीखते
भी हैं ।

६—द्वओ खेतओ चेव
कालओ भावओ तहा ।
जयणा^१ चउव्विहा वुत्ता
तं मे कित्तयओ सुण ॥

द्रव्यतः क्षेत्रतश्चैव
कालतो भावतस्तथा ।
यतना चतुर्विधा उक्ता
तां मे कीर्तयतः शृणु ॥

६—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से
यतना चार प्रकार की कही गई हैं । वह मैं कह
रहा हूँ, सुनो ।

७—द्वओ चक्खुसा पेहे
जुगमित्तं च खेतओ ।
कालओ जाव रीएज्जा
उवउत्ते य भावओ ॥

द्रव्यतश्चक्षुषा प्रेक्षेत
युग-मात्रं च क्षेत्रतः ।
कालतो यावद्रीयेत
उपयुक्तद्व भावतः ॥

७—द्रव्य से—आँखों से देखे । क्षेत्र से—
युग-मात्र (गाड़ी के जुए जितनी) भूमि को
देखे । काल से—जब तक चले तक तक देखे ।
भाव से—उपयुक्त (गमन में दस्तबिल) रहे ।

८—इन्द्रियत्वे विवज्जित्ता
सज्जायं चेव पंचहा ।
तम्मूत्ती तत्पुरस्कारे
उवउत्ते इरियं^२ रिए ॥

इन्द्रियार्थान् विवर्ज्यं
स्वाध्यायं चैव पंचधा ।
तन्मूर्तिः तत्पुरस्कारः
उपयुक्त ईर्या^३ रीयेत ॥

८—इन्द्रियों के विषयों और पाँच प्रकार
के स्वाध्याय का वर्जन कर, ईर्या में तन्मय हो,
उसे प्रमूख बना उपयोग पूर्वक चले ।

९—'कोहे माणे य मायाए
लोभे य उवउत्तया^४ ।
हासे भए मोहरिए
विगहासु तहेव च ॥'^५

क्रोध माने च मायायां
लोभे चोपयुक्ता ।
हासे भये मोक्षय्ये
विक्रयानु तथैव च ॥

९—क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य,
भय, वाचालता और विक्रय के प्रति सावधान
रहे—इनका प्रयोग न करे ।

१०—एयाइं अट्ट^६ ठाणाइं
परिवज्जित्तु संजए ।
असावज्जं मियं काले
भासं भासेज्ज पन्नवं ॥

एतान्पट्टां स्थानानि
परिवर्ज्य संयतः ।
असावज्जां मितान् काले
भाषां भाषेत प्रज्ञावान् ॥

१०—प्रज्ञावान् मुनि इन आठ स्थानों
का वर्जन कर यथा-समय निरवकाश और परि-
मित वचन बोले ।

११—'गवेसणाए गहणे य
परिभोगेसणा य जा ।
आहारोवहिसेज्जाए
एए तिन्नि विसोहए ॥'^७

गवेयणायां ग्रहणे च
परिभोगेयणा च या ।
आहारोपविश्यायां
एतास्तिलो विशोषयेत् ॥

११—आहार, उपवि और शय्या के
विषय में गवेयणा, ग्रहणेयणा और परिभोगेयणा
इन तीनों का विशेषण करे ।

१. जायणा (ऋ०) ।

२. रियं (ऋ०) ।

३. उवउत्तओ (अ) ।

४. कोहे य माणे य माया च लोभे य तहेव च ।

हास भय मोहरीए विकहा च तहेव च । (ऋ० पा०) ।

५. गवेसणाए गहणेणं परिभोगेसणाणि च ।

आहारसुखाइ सेज्ज एए तिन्नि विसोहिये । (ऋ० पा०) ।

१७—अणावायमसंलोए
परस्सऽणुवधाइए ।
समे अज्झुसिरे यावि
अचिरकालकयंमि य ॥

१८—वित्थिण्णे दूरमोगाढे
नासन्ने बिलवज्जिए ।
तसपाणवीयरहिए
उच्चारईणि वोसिरे ॥

१९—एयाओ पंच समिईओ
समासेण वियाहिया ।
एत्तो य तओ गुत्तीओ
वोच्छामि अणुपुब्बसो ॥

२०—सच्चा तहेव मोसा य
सच्चांमासा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा
मणगुत्ती चउव्विहा ॥

२१—संरम्भसमारम्भे
आरम्भे य तहेव य ।
मणं पवत्तमाणं तु
नियत्तेज्ज जयं जई ॥

२२—सच्चा तहेव मोसा य
सच्चांमासा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा
वइगुत्ती चउव्विहा ॥

२३—संरम्भसमारम्भे
आरम्भे य तहेव य ।
वयं पवत्तमाणं तु
नियत्तेज्ज जयं जई ॥

आनापातेऽसंलोके
परस्याऽणुपचातिके ।
समेऽणुसिरे चापि
अचिरकालकृते च ॥

विस्तीर्णे दूरमवगाढे
नासन्ने बिलवज्जिते ।
असप्राणबीजरहिते
उच्चारदोनि व्युत्सृज्येत् ॥

एताः पंचतमितयः
समासेन व्याख्याताः ।
इतश्च तिष्ठो गुप्थोः
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

सत्या तथैव मृषा च
सत्यामृषा तथैव च ।
चतुर्थ्यसत्यामृषा
मनोगुप्तिश्चतुर्विधा ॥

संरम्भ-समारम्भे
आरम्भे च तथैव च ।
मनः प्रवर्तमानं तु
निवर्तयेद्यतं यतिः ॥

सत्या तथैव मृषा च
सत्यामृषा तथैव च ।
चतुर्थ्य सत्यामृषा
वचो-गुप्तिश्चतुर्विधा ॥

संरम्भ-समारम्भे
आरम्भे च तथैव च ।
वचः प्रवर्तमानं तु
निवर्तयेद्यतं यतिः ॥

१७—जो स्थण्डिल, अनापात-असंलोक,
पर के लिए अनुपचातकारी, सम, अणुधिर
(पोल या दरार रहित) कुछ समय पहले ही
निर्जीव बना हुआ—

१८—कम से कम एक हाथ विस्तृत
तथा नीचे से चार अंगुल भी निर्जीव परत
बाला, गाँव आदि से दूर, बिल रहित और अस
प्राणी तथा बीजों से रहित हो—उसमें उच्चार
आदि का उत्पन्न करे ।

१९—ये पाँच तमितियाँ संक्षेप में कहीं
गई हैं । यहाँ से क्रमशः तीन गुप्तियाँ कहेंगे ।

२०—सत्या, मृषा, सत्यामृषा और
बीबी असत्यामृषा—इस प्रकार मनो-गुप्ति के
चार प्रकार हैं ।

२१—यतनाशील यति संरम्भ, समारम्भ
और आरम्भ में प्रवर्तमान मन का निवर्तन
करे ।

२२—सत्या, मृषा, सत्या-मृषा और
असत्या-मृषा—इस प्रकार वचन-गुप्ति के चार
प्रकार हैं ।

२३—यतनाशील यति संरम्भ, समारम्भ
और आरम्भ में प्रवर्तमान वचन का निवर्तन
करे ।

पवयण-माया (प्रवचन-माता)

३२६

अध्ययन २४ : श्लोक २४-२७

२४—ठाणे निसीयणे चैव
तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लंघणपल्लंघणे
इन्दियाण य जुंजणे ॥

स्थानेनिषदने चैव
तथैव च त्वग्-वर्तने ।
उल्लङ्घन-प्रलङ्घने
इन्द्रियाणां च योजने ॥

२४—ठहरने, बैठने, लेटने, उल्लंघन-
प्रलंघन करने और इन्द्रियों के व्यापार में—

२५—संरम्भसमारम्भे
आरम्भम्मि तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु
नियत्तेज्ज जयं जई ॥

संरम्भ-समारम्भे
आरम्भे तथैव च ।
कायं प्रवर्तमानं तु
निवर्तयेद्यत् यतिः ॥

२५—संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में
प्रवर्तमान काया का निवर्तन करे ।

२६—एयाओ पंच समिईओ
चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता
अमुभत्थेमु सव्वसो ॥

एताः पंच समितयः
चरणस्य च प्रवर्तने ।
गुप्तयो निवर्तने उक्ताः
अशुभायर्थेभ्यः सव्यभ्यः ॥

२६—ये पाँच समितियाँ चारित्र की
प्रवृत्ति के लिए हैं और तीन गुप्तियाँ सब अशुभ
विषयों से निवृत्ति करने के लिए हैं ।

२७—एया पवयणमाया
जे सम्मं आयरे मुणो ।
से खिप्पं सव्वसंसारो
विप्पमुच्चइ पण्डित ॥
— त्ति वेमि ।

एताः प्रवचन-मातृः
यः सम्यगाचरेन्मुनिः ।
स शिप्रं सर्वसंसारान्
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२७—जो पण्डित मुनि इन प्रवचन-
माताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह
शीघ्र ही सर्व संसार से मुक्त हो जाता है ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

मुनि को भोजन के लिए, पान के लिए, वस्त्र के लिए, वसती के लिए आदि-आदि कारणों से धर्मोपदेश नहीं देना चाहिए, किन्तु केवल आत्मोद्धार के लिए ही उपदेश देना चाहिए। इसी तथ्य को स्पष्टता से ध्येय करते हुए जयधोष मुनि ब्राह्मण विजयधोष से कहते हैं—

“मुनि न अन्न के लिए, न जल के लिए और न किसी अन्य जीवन-निर्वाह के साधन के लिए, लेकिन सुक्ति के लिए धर्मोपदेश देते हैं। मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं। तुम निष्काम कर मुनि-जीवन को स्वीकार करो। (३७० १०, ३८)

“भोग आसक्ति है और अभोग अनासक्ति। आसक्ति संसार है और अनासक्ति मोक्ष। मिट्टी के दो गोले हैं—एक गोला और दूसरा सूखा। जो गोला होता है वह मिट्टी पर चिपक जाता है और जो सूखा होता है वह नहीं चिपकता। इसी प्रकार जो व्यक्ति आसक्ति से भरा है, कर्म-पुद्गल उसके चिपकते हैं और जो अनासक्ति है, कर्म उसके नहीं चिपकते। (३७० ३८ से ४१)

“ब्राह्म-चिह्न, वेष आदि आन्तरिक पवित्रता के द्योतक नहीं हैं। ब्राह्म-रिग सम्प्रदायानुगत अस्तित्व के द्योतक मात्र हैं। मुण्डित होने मात्र से कोई भ्रमण नहीं होता। ऊँकार का ज्ञाप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, अरण्य में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता, दर्म-वल्कल आदि धारण करने मात्र से कोई तापस नहीं होता। (३७० २६)

“समभाव से समण होता है, ब्रह्मचर्य का पाठन करने से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तपस्या से तापस होता है। (३७० ३१)

“जातिवाद अतात्त्विक है। अपने-अपने कार्य से व्यक्ति ब्राह्मण आदि होता है। जाति कार्य के आधार पर विभाजित है, जन्म के आधार पर नहीं। मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से शूद्र।” (३७० ३१)

वेद, यज्ञ, धर्म और नक्षत्र का मूल क्या है? अपनी तथा दूसरों की आत्मा का सुचारु करने में कौन समर्थ है?—इन प्रश्नों का समाधान मुनि जयधोष ने विस्तार से दिया है। (३७० १६ से ३७)

**पंचविंशतमं अध्यायः :
जन्मइज्जं**

**पंचविंश अध्यायः :
यज्ञीय**

पंचविंशद्वयं अज्ज्ञयणं : पंचविंश अध्वयन

जन्मइज्जं : यज्ञीयम्

मूल

१—माहणकुलसंभूतो
आसि विप्रो महायसो ।
जायाई जमजन्ममि
जयघोसे त्ति नामओ ॥

संस्कृत छाया

माहन-कुल-संभूतः
आसौ विप्रो महायशः ।
यायाजी यम-यज्ञे
जयघोष इति नामतः ॥

हिन्दी अनुबाद

१—ब्राह्मण कुल में उत्पन्न एक महान्
यशस्वी विप्र था । वह जीव-संहारक यज्ञ में
रुग्ना रहता था । उसका नाम था जयघोष ।

२—इन्द्रियगामनिग्गाही
मग्गामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयन्ते
पत्ते वाणारसि पुरि ॥

इन्द्रिय-ग्राम-निष्ठाही
मार्ग-गामी महामुनिः ।
ग्रामानुग्रामं रीयमाणः
प्राप्नो वारणसीं पुरीम् ॥

२—वह इन्द्रिय-समूह का निग्रह करने
वाला मार्ग-गामी महामुनि हो गया । एक गाँव
से दूसरे गाँव जाता हुआ वह वाराणसी पुरी
पहुँच गया ।

३—वाणारसीए^१ बहिया
उज्जाणमि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसंधारे
तत्थ वासमुवाणए ॥

वारणस्या बहिः
उज्जाने मनोरमे ।
प्रासुके शय्या-संस्तारे
तत्र वासमुपागतः ॥

३—वारणसी के बाहर मनोरम उद्यान
में प्रासुक शय्या और बिछीना लेकर वहाँ
रहा ।

४—अह तेणेव कालेणं
पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति नामेण
ज्जलं जयइ देयवी ॥

अथ तस्मिन्नेव काले
पुर्यां तत्र माहणः ।
विजयघोष इति नाम्ना
यज्ञं यजति वेद-विद् ॥

४—उसी समय उस पुरी में वेदों को
जानने वाला विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ
करता था ।

५—अह से तत्थ अणगारे
मासक्खमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्ममि
भिक्षुमग्गा^२ उवट्ठिए ॥

अथ स तस्मिन्महारः
मास-अवध-पर्यन्ते ।
विजयघोषस्य यज्ञे
भिक्षामंशुकीकृतः ॥

५—वह जयघोष मुनि एक मास की
तपस्या का पारणा करने के लिए विजयघोष
के यज्ञ में भिक्षा लेने को उपस्थित हुआ ।

१. वाणारसीए (अ, वृ०) ।

२. भिक्षुमग्गा अग्गा (वृ० वा०) ।

आस्तुतः

इस अध्ययन का नाम 'जन्मद्वय'—'यज्ञीय' है। इसका मुख्य विवक्षित विषय यज्ञ है।^१ यज्ञ शब्द का अर्थ देव-पूजा है। जीव-वध आदि ब्राह्म अनुष्ठान के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ को जैन-परम्परा में द्रव्य (अवास्तविक)-यज्ञ कहा है। वास्तविक यज्ञ भाव-यज्ञ होता है। उसका अर्थ है—तप और संयम में यतना—अनुष्ठान करना।^२

प्रसंगवश इस अध्ययन में (१६ वें श्लोक से ३२ वें श्लोक तक) ब्राह्मण के मुख्य गुणों का उल्लेख हुआ है।

वाराणसी नगरी में जयघोष और विजयघोष नाम के दो ब्राह्मण रहते थे। वे काश्यप-गोत्रीय थे। वे पूजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान और प्रतिग्रह इन छह कर्मों में रत और चार वेदों के अध्यधीता थे। वे दोनों सुगल रूप में जन्मे हुए थे। एक बार जयघोष स्नान करने नदी पर गया हुआ था। उसने देखा कि एक सर्प मेढक को निगल रहा है। इतने में एक कुरर पक्षी वहाँ आया और सर्प को पकड़ कर खाने लगा। मरणकाल आसन्न होने पर भी सर्प मेढक को खाने में रत था और इधर कम्पायमान सर्प को खाने में कुरर आसक्त था। इस दृश्य को देख जयघोष उद्भिन्न हो उठा। एक दूसरे के उपपात को देख कर उसका मन वेंराग्य से भर गया। वह प्रतिबुद्ध हो गया। गंगा को पार कर श्रमणों के पास पहुँचा। अपने उद्देग का समाधान पा श्रमण हो गया।

एक बार मुनि जयघोष एक-रात्रि को प्रतिमा को स्वीकार कर ग्रामासुग्राम विहार करते हुए वाराणसी आए। बहिर्भाग में एक उद्यान में ठहरे। आज उनके एक महीने की तपस्या का पारणा था। वे भिक्षा लेने नगर में गए। उसी दिन ब्राह्मण विजयघोष ने यज्ञ प्रारम्भ किया था। दूर-दूर से ब्राह्मण बुलाए गए थे। उनके लिए विविध भोजन-सामग्री तैयार की गई थी। मुनि जयघोष भिक्षा लेने यज्ञ-वाट में पहुँचे। भिक्षा की याचना की। प्रमुख याजक विजयघोष ने कहा—'मुने। मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूंगा। तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ। जो ब्राह्मण वेदों को जानते हैं, जो यज्ञ आदि करते हैं, जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और उद्योतिष—वेद के इन छह अंगों के पारगामी हैं तथा जो अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं—उन्हीं को यह प्रणीत अन्न दिया जाएगा, तुम जैसे व्यक्तियों को नहीं।' (श्लो ६, ७, ८)

मुनि जयघोष ने यह बात सुनी। प्रतिबिद्ध किए जाने पर रुस्ट नहीं हुए। सम-भाव का आचरण करते हुए स्थिर-चित्त हो, भोजन पाने के लिए नहीं किन्तु याजकों को सही ज्ञान कराने के लिए कई तथ्य प्रकट किए। ब्राह्मणों के लक्षण बताए। मुनि के वचन सुन विजयघोष ब्राह्मण समबुद्ध हुआ और उनके पास दीक्षित हो गया। सम्यक् आराधना कर दोनों सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

१—इतराज्ययन, निर्दुक्त गाथा ४६२ :

जयघोषा भवपारा विजयघोस्तस जन्मकिंचिन्मि ।

ततो समुद्रिषसिगं अश्वयं जन्मद्वयमिति ॥

२—वही, गाथा ४६१ :

तत्संयमेव जयणा मावे जन्मो मुनेयज्जो ॥

जन्मइज्जं (यज्ञीय)

३३७

अव्ययन २५ : श्लोक १२-१७

१२—जे समत्था समुद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ।
न ते तुमं वियाणासि
अह जाणासि तो भण ॥

ये समर्थाः समुद्धत्तुं
परमात्मानमेव च ।
न तान् त्वं विजानासि
अथ जानासि तदा भण ॥

१२—“जो अपना और पराया उद्धार करने में समर्थ है, उन्हें तू नहीं जानता । यदि जानता है तो बता ।”

१३—तस्सऽक्खेवपमोक्खं च
अचयन्तो तहि दिओ ।
सपरिसो पंजली हंउं
पुच्छई तं महामुणि ॥

तस्याज्ञेयप्रमोक्षं च
अशक्नुवन् तत्र द्विजः ।
स-परिवन् प्राजलिभूत्वा
पृच्छति तं महामुनिम् ॥

१३—मुनि के प्रश्न का उत्तर देने में अपने को असमर्थ पाते हुए द्विज ने परिषद् सहित हाथ जोड़ कर उन महामुनि से पूछा—

१४—वेयाणं च मुहं बूहि
बूहि जन्ताण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं बूहि
बूहि धम्माण वा मुहं ॥

वेदानां च मुखं ब्रूहि
ब्रूहि यज्ञानां यन्मुखम् ।
नक्षत्राणां मुखं ब्रूहि
ब्रूहि धर्माणां वा मुखम् ॥

१४—“तुम कहो वेदों का मुख क्या है ? यज्ञ का जो मुख है वह तुम्हीं बतलाओ । तुम कहो नक्षत्रों का मुख क्या है ? धर्मों का मुख क्या है ? तुम्हीं बतलाओ ।

१५—जे समत्था समुद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ।
एयं मे संसयं सव्वं
साहू कहयं पुच्छिओ ॥

ये समर्थाः समुद्धत्तुं
परमात्मानमेव च ।
एनं मे संशयं सर्वं
साधो ! कथय पृष्टः ॥

१५—“जो अपना और पराया उद्धार करने में समर्थ है (उनके विषय में तुम्हीं कहो) । हे साधु ! यह मुझे सारा संशय है, तुम मेरे प्रश्नों का समाधान दो ।”

१६—अग्निहोत्तमुहा वेया
जन्मद्वी वेयसां मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं चन्दो
धम्माणं कासवो मुहं ॥

अग्निहोत्र-मुखा वेदाः
यज्ञार्थो वेदसां मुखम् ।
नक्षत्राणां मुखं चन्द्रः
धर्माणां काश्यपो मुखम् ॥

१६—“वेदों का मुख अग्निहोत्र है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी है, नक्षत्रों का मुख चन्द्रमा है और धर्मों का मुख काश्यपः ऋषिगणेश है ।

१७—‘जहा चन्दं गहाईया
चिट्ठन्ती पंजलीउडा ।
वन्दमाणा नमंसन्ता
उत्तमं मणहारिणो ॥’^१

यथा चन्द्रं ग्रहाविकाः
तिष्ठन्ति प्राजलि-पुटाः ।
वन्दमाना नमस्यन्तः
उत्तमं मनोहारिणः ॥

१७—“जिस प्रकार चन्द्रमा के सम्मुख ग्रह आदि हाथ जोड़े हुए, वन्दना-नमस्कार करते हुए और विनीत भाव से मन का हरण करते हुए रहते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रेष्ठ के सम्मुख सब लोग रहते थे ।

१. कहई (अ) ।

२. जहा चन्दे गहाईये चिट्ठन्ती पंजलीउडा ।

जन्मसमाणा बंधली कद्धकमणहारिणो [उद्धत्त मणहारिणो] ॥ (बु० पा०) ।

६—समुवट्ठियं तहिं सन्तं
जायगो पडिसेहए ।
न हु दाहामि ते भिक्षुं
भिक्षू जायाहि अन्नओ ॥

समुपस्थितं तत्र सन्तं
याजकः प्रतिषेधयति ।
न ह्यलु दास्यामि तुभ्यं भिक्षां
भिक्षो ! यावत्स्थान्यतः ॥

६—यज्ञ-कर्त्ता ने वहाँ उपस्थित हुए मुनि
को निषेध की भाषा में कहा—“भिक्षो ! तुझे
भिक्षा नहीं दूंगा और कहीं याचना करो ।

७—जे य वेयविऊ विप्पा
जन्नाट्टा य ‘जे दिया’^१ ।
जोइसंगविऊ जे य
जे य धम्माण पारगा ।

ये च वेद-विदो विप्राः
यज्ञार्थादथ ये द्विजाः ।
ज्योतिषांविदो ये च
ये च धर्माणां पारगाः ॥

७—“हे भिक्षो ! यह सबके द्वारा
अभिलषित भोजन उन्हीं को देना है जो वेदों
को जानने वाले विप्र हैं, यज्ञ के लिए जो द्विज
हैं, जो ज्योतिष आदि वेद के छहों अंगों को
जानने वाले हैं, जो धर्म-शास्त्रों के पारगामी
हैं, जो अपना और पराया उद्धार करने में
समर्थ हैं ।”

८—जे समत्था समुद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ।
तेसि अन्नमिणं देयं
भो भिक्षू सव्वकामियं ॥

ये समर्थाः समुद्धर्तुं
परमात्मानमेव च ।
तेभ्योऽन्नमिदं देयं
भो भिक्षो ! सर्व-कामितम् ॥

९—सो ‘एवं तत्थ’^२ पडिसिद्धो
जायगेण महामुणी ।
न वि रुद्धो न वि तुद्धो
उत्तमद्दग्वेसओ ॥

स एवं तत्र प्रतिषिद्धः
याजकेन महामुनिः ।
नापि रुद्धो नापि तुष्टः
उत्तमार्थ-गन्धेयकः ॥

९—वह उत्तम अर्थ की गवेषणा करने
वाला महामुनि वहाँ यज्ञ-कर्त्ता के द्वारा
प्रतिषेध किए जाने पर न रुष्ट ही हुआ और
न तुष्ट ही ।

१०—नज्जट्ठं पाणहेउं वा
न वि निव्वाहणाय वा ।
तेसि विमोक्खणाथंय
इमं वयणमव्ववी ॥

नान्नार्थं पान-हेतुं वा
नापि निर्वहणाय वा ।
तेषां विमोक्षणाथंय
इदं वचनमव्ववीत् ॥

१०—न अन्न के लिए, न जल के लिए
और न किसी जीवन-निर्वाह के साधन के लिए,
किन्तु उनकी विमुक्ति के लिए यदि ने इस
प्रकार कहा—

११—नवि जाणसि वेयमुहं
नवि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं जं च
जं च धम्माण वा मुहं ॥

नापि जानासि वेद-मूलं
नापि यज्ञानां यन्मुखम् ।
नक्षत्राणां मूलं यज्ञ
यज्ञ धर्माणां वा मुखम् ॥

११—“तू वेद के मूल को नहीं जानता ।
यज्ञ का जो मूल है, उसे भी नहीं जानता ।
नक्षत्र का जो मूल है और धर्म का जो मूल
है, उसे भी नहीं जानता ।

१. जिह दिया (आ) ।

२. तत्थ एव (वृ०) ।

१८—अजाणगा जन्तुवाई
विज्जामाहणसंपया ।
गूढा सज्जायतवसा
भासच्छन्ना इवऽग्निणो ॥

१९—जो लोए बम्भणो वुत्तो
अग्गी वा महिओ जहा ।
सया कुसलसंदिट्ठं
तं वयं ब्रूम माहणं ॥

२०—जो न सज्जइ आगन्तुं
पव्वयन्तो न सोयई^१ ।
रमए अज्जवयणंमि
तं वयं ब्रूम माहणं ॥

२१—जायरूवं जहामट्ठं^२
निद्धन्तमलपावगं ।
रागदोसभयाईयं
तं वयं ब्रूम माहणं ॥

[तवस्सियं किसं दन्तं
अवचियमसंसोणियं ।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं
तं वयं ब्रूम माहणं]^३

अजायकाः अज्ञ-बाहिनः
विद्या-माहन-सम्भवाः ।
गूढाः स्वाध्याय-तपसा
अस्म-च्छन्ना इवाग्नयः ॥

यो लोके ब्राह्मण उक्तः
अग्निर्वा महितो यथा ।
तदा कुशल-संदिष्टं
तं वयं ब्रूयो ब्राह्मणम् ॥

यो न स्वच्छत्यागान्तुं
प्रव्रजन्तु शोचति ।
रमते आर्थ-वचने
तं वयं ब्रूयो ब्राह्मणम् ॥

जातरूपं यथामुष्टं
निर्भासु-मल-पापकम् ।
राग-दोष-भयातीतं
तं वयं ब्रूयो ब्राह्मणम् ॥

[तपस्विनं कृपां दान्तं
अपचित-मांस-शोणितम् ।
सुव्रतं प्राप्त-निर्वाणं
तं वयं ब्रूयो ब्राह्मणम् ॥]

१८—“जो यज्ञ-बाहो हैं वे ब्राह्मण की सम्प्रदा—विद्या से अनभिज्ञ हैं। वे बाहर में स्वाध्याय और तपस्या से उली प्रकाश के हुए हैं जिस प्रकार अग्नि राख से उली हुई होती है।

१९—“जिसे कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है, जो अग्नि की भाँति सदा लोक में पूजित है, उसे हम कुशल पुण्य द्वारा कहा हुआ ब्राह्मण कहते हैं।

२०—“जो आने पर आसक्त नहीं होता, जाने के समय शोक नहीं करता, जो आर्थ-वचन में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

२१—“अग्नि में तपा कर मुष्ट किए हुए और बिसे हुए सोने की तरह जो विमुक्त है तथा राग-द्वेष और भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

^४[जो तपस्वी है, कृपा है, दान्त है, जिसके मांस और शोणित का अपचय हो चुका है, जो सुव्रत है, जो शान्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।]

१. गूढा (५०) ; गूढा (५० वा०) ।
२. छल्लइ (५) ।
३. महामट्ठं (५०) ; महामट्ठं (५० वा०) ।
४. यह श्लोक बुद्ध् वृत्ति में व्याख्यात नहीं है ।

२२—तत्सपाणे वियाणेत्ता
संगहेण 'य थावरे'^१ ।
जो न हिसइ तिविहेण^२ ।
तं वयं बूम माहणं ॥

२३—कोहा वा जइ वा हासा
लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं न वयई जो उ
तं वयं बूम माहणं ॥

२४—चित्तमन्तमचित्तं वा
अप्पं वा जइ वा बहुं ।
न गेप्पइ अदत्तं जो
तं वयं बूम माहणं ॥

२५—दिक्खमाणुसतेरिच्छं
जो न सेवइ मेहुणं ।
मणसा कायवक्केणं
तं वयं बूम माहणं ॥

२६—जहा पोमं जले जायं
नोवलप्पइ वारिणा ।
एवं अलितो^३ कामेहि
तं वयं बूम माहणं ॥

२७—अलोलुयं मुहाजीवी^४
अणगारं अकिवणं ।
असंसत्तं गिहल्लेसु
तं वयं बूम माहणं ॥

जस-प्राणिको विच्छाय
संगहेण वा स्वावरात् ।
यो न हितस्ति विविचेन
तं वयं बूमो माहनम् ॥

कोषाह वा यदि वा हासात्
लोभाद्वा यदि वा भयान् ।
मृषा न वदति यस्तु
तं वयं बूमो माहनम् ॥

चित्तवदचित्तं वा
अप्पं वा यदि वा बहुम् ।
न गृह्णात्यवस्तं यः
तं वयं बूमो माहनम् ॥

विष्य-मानुष-नैरश्चं
यो न सेवते मेयुनम् ।
मनसा काय-वाक्येन
तं वयं बूमो माहनम् ॥

यथा प्लवं जले जातं
नोवलप्यते वारिणा ।
एवमलितः कामेः
तं वयं बूमो माहनम् ॥

अलोलुपं मृषा-जीविनं
अणगारमकिवनम् ।
असंसत्तं गृहल्लेषु
तं वयं बूमो माहनम् ॥

२१—“जो तस और आत्मा जीवों को
मलीगुंति जान कर मन, वाणी और धारी से
उनकी हिंसा नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण
कहते हैं ।

२३—“जो शोष, हास्य, लोभ या भय
के कारण आत्मा नहीं बोलता, उसे हम ब्राह्मण
कहते हैं ।

२४—“जो सचित्त या अचित्त कोई भी
पदार्थ, मोहा या अधिक कितना ही क्यों न
हो, उसके अधिकारी के दिए बिना नहीं लेता,
उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२५—“जो देव, मनुष्य और तिर्यक्ष
सम्बन्धी मैथुन का मन, बचन और काय से
सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२६—“जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ
कमल जल से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार
काम-भोग के वातावरण में उत्पन्न हुआ
जो वस्तु उससे लिप्त नहीं होता, उसे हम
ब्राह्मण कहते हैं ।

२७—“जो लोलुप नहीं है, जो निर्दोष
निष्ठा से जीवन का निर्वाह करता है, जो
गृह-स्वामी है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थों में
अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

१. थावारे (६० पा०) ।

२. यत्तं तु (६०) ; विविहेण (६० पा०) ।

३. अलितं (भा. इ. छ०) ।

४. मुहाजीवि (६० पा०) ।

[जहिता पुव्वसंजोगं
नाइसंगे' य वन्धवे ।
जो न सज्जइ एएहि'^१
तं वयं वूम माहणं ॥]'

[त्यक्त्वा पूर्व-संयोगं
ज्ञाति-संगोऽथ बान्धवान् ।
यो न स्वयति एतेषु
तं वयं वूमो माह्वम् ॥]

[जो पूर्व-संयोगो, ज्ञाति-जनो की आसक्ति
और बान्धवो को छोड़ कर उनमें आसक्त नहीं
होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।]

२८—पसुबन्धा^१ सव्ववेया^२
जट्टं च पावकम्मुणा ।
न तं तायन्ति दुस्सीलं
कम्माणि बलवन्ति ह ॥

पशु-बन्धाः सर्व-वेदाः
इष्टं च पाप-कर्मणा ।
न तं त्रापन्ते दुःशीलं
कर्मणि बलवन्ति ह ॥

२८—“जिनके शिक्षा-पद पशुओं को बलि
के लिए यज्ञस्तूपों में बांधे जाने के हेतु
बनते हैं, वे सब वेद और पशु-बलि आदि पाप-
कर्म के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ द्वारा-
सम्पन्न उस यज्ञ-कर्त्ता को त्राण नहीं देते,
क्योंकि कर्म बलवान् होते हैं ।

२९—न वि मुण्डिण समणो
न ओंकारेण बम्भणो ।
न मृणी रणवासेणं
कुसचीरेण न तावसो ॥

नापि मुण्डितेन श्रमणः
न ओंकारेण ब्राह्मणः ।
न मुनिररण्य-वासेन
कुश-चीवरेण न तापसः ॥

२९—“केवल सिर मुंड लेने में कोई श्रमण
नहीं होता, ‘ओम्’ का जप करने मात्र से कोई
ब्राह्मण नहीं होता, केवल अरण्य में रहने से
कोई मुनि नहीं ज्ञाता और कुश का बीवर
पहनने मात्र से कोई तापस नहीं होता ।

३०—समयाए समणो होइ
बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणण य मुणी होइ
तवेणं होइ तावसो ॥

समतया श्रमणो भवति
ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः ।
ज्ञाने च मुनिर्भवति
तपसा भवति तापसः ॥

३०—“समभाव की साधना करने से
श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण
होता है, ज्ञान की आराधना—मनन करने से
मुनि होता है, तप का आचरण करने से
तापस होता है ।

३१—कम्मुणा बम्भणो होइ
कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइस्सो कम्मुणा होइ
सुदो हवइ^३ कम्मुणा ॥

कर्मणा ब्राह्मणो भवति
कर्मणा भवति क्षत्रियः ।
वैश्यो कर्मणा भवति
शूद्रो भवति कर्मणा ॥

३१—“मन्य कर्म से ब्राह्मण होता है,
कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है
और कर्म से ही शूद्र होता है ।

१. नाइ संजोगे (ऋ०) ।

२. भोगेख (ऋ०) ; एएछ (ङ०) ।

३. यह श्लोक बहुदृष्टि में पाठान्तर रूप में स्वीकृत है ।

४. पसव्वा (ऋ० पा०) ।

५. सव्व वेया य (अ०) ।

६. होइय (अ०) ; होइ ङ (ऋ०)

३२—एए 'पाउकरे वुद्धे'
जेहि होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविनिम्मुक्कं
तं वयं ब्रूम माहणं ॥

३३—एवं गुणसमाउत्ता
जे भवन्ति दिउत्तमा ।
ते समन्था उ उद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ॥

३४—एवं तु संसए छिन्ने
विजयघांसं य माहणे ।
'समुदाय तय' तं तु'
जयघासं महामुणि ॥

३५—तुद्धं य विजयघांसं
इणमुदाहु कयज्जं ।
माहणत्तं जहाभूयं
सुद्धं मे उवर्दासय ॥

३६—तुब्भे जइया जन्ताणं
तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुब्भे
तुब्भे धम्माण पारगा ॥

३७ तुब्भे समन्था उद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ।
तमण्णुगहं करेहग्गहं
भिकखेणं^१ भिकवुउत्तमा ॥

एताम्पावुरकार्योऽ बुद्धः
यंभेवति स्मातकः ।
सर्व-कर्म-विनिर्मुक्तः
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥

एवं गुण-समायुक्ताः
ये भवन्ति द्विजोत्तमाः ।
ते समर्थास्तुद्धधर्तुं
परमात्मानमेव च ॥

एवं तु संशये छिन्ने
विजयघोषदन् माहनः ।
समुदाय तर्का तं तु
जयघोष महापुनिम् ॥

तुष्टश्च विजयघोषः
इवमुदाहृ कृतांजलिः ।
माहनत्वं यथाभूतं
सुद्धं मे उपवर्दासय ॥

यूयं यष्टारो यज्ञानां
यूयं वेद-विदो विदः ।
ज्योतिषांग-विदो यूयं
यूयं धर्माणां पारगाः ॥

यूयं समर्थाः उद्बधत्तुं
परमात्मानमेव च ।
तवपुत्रहं कुरुतास्याकं
श्रेष्ठेण भिक्षुत्तमाः ॥

३२—“इन तपस्वी को अहं ने प्रकट किया है । इनके द्वारा जो मनुष्य स्नातक होता है, जो सब कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

३३—“इस प्रकार जो गुण-सम्पन्न द्विजोत्तम होते हैं, वे ही अपना और परमा उद्धार करने में समर्थ हैं ।”

३४—“इस प्रकार संशय दूर होने पर विजयघोष ब्राह्मण ने जयघोष की वाणी को भली-भाँति समझा और - -

३५—“महामुनि जयघोष से संतुष्ट हो, हाथ-जोड़ कर इस प्रकार कहा—“तुमने मुझे यथायं ब्राह्मणत्व का बहुत ही अच्छा अर्थ समझाया है ।

३६—“तुम यज्ञों के यज्ञकर्त्ता हो, तुम केशों को जानने वाले विद्वान् हो, तुम वेद के ज्योतिष आदि छहों अंगों को जानते हो, तुम कर्मों के पारगामी हो ।

३७—“तुम अपना और परमा उद्धार करने में समर्थ हो, इसलिए हे भिक्षु-प्रेष्ठ ! तुम हम पर भिशा लेने का अनुरोध करो ।”

१. पाउकराधम्मा (वृ० पा०) ।

२. बभणे (वृ०) ; माहणे (वृ० पा०) ।

३. तस्मै (अ, छ०, म०) ।

४. संजाणतो तस्मै तं तु (वृ० पा०) ; समादाय तथं तं व (उ) ।

५. करे भम्मं (अ, इ) ।

६. भिक्षुणं (वृ०) ।

३८—न कज्जं मज्झं भिक्खेण
खिप्पं निक्खममू दया ।
मा भमिहिसि भयावट्टे^१
घोरे^२ संसारसागरे ॥

३९—उवलेवो होइ भोगेमु
अभोगी नोवल्लिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे
अभोगी विप्पमुच्चई ॥

४०—उल्लो सुक्को य दो छुडा
गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिया कुट्टे
जो उल्लो सोतत्थ^३ लग्गई ॥

४१—एवं लग्गन्ति दुम्मेहा
जे नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लग्गन्ति
जहा सुक्को उ गोलओ ॥

४२—एवं से विजयघोसे
जयघोसस्स अन्तिए ।
अणगारस्स निक्खन्तो
धम्मं^४ 'सोच्चा अणुत्तरं' ॥

४३—खविता पुव्वकम्माइं
संजमेण तवेण य ।
जयघोसविजयघोसा
सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥
—ति वेमि ।

न कार्यं मम भैक्ष्येण
क्षिप्रं निष्काम द्विज ! ।
मा भ्रमी भयावर्त्ते
घोरे संसार-सागरे ॥

उपलेपो भवति भोगेषु
अभोगी नोपलप्यते ।
भोगी भ्रमति संसारे
अभोगी विप्रमुच्यते ॥

आर्द्रः शुष्कश्च द्वौ क्षिप्रौ
गोलको मृत्तिकाप्रयो ।
हावप्यापतितो कुट्टे
य आर्द्रः स तत्र लगति ॥

एवं लगन्ति दुर्मेक्षः
ये नराः काम-लालसाः ।
विरक्तास्तु न लगन्ति
यथा शुष्कस्तु गोलकः ॥

एवं स विजयघोषः
जयघोषस्यान्तिके ।
अनगारस्य निष्कान्तः
धर्मं श्रुत्वाऽनुत्तरम् ॥

अपयित्वा पूर्वं-कर्मणि
संयमेन तपसा च ।
जयघोष-विजयघोषौ
सिद्धिं प्राप्तावनुत्तराम् ॥
—इति त्रयोमि ।

३८—“मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है । हे द्विज ! तू तुरन्त ही निष्काम कर मुनि-जीवन को स्वीकार कर । जिससे भय के आवर्त्तों से आकीर्ण इस घोर संसार-सागर में मुझे चक्कर लगावा न पड़े ।

३९—“भोगों में उपलब्ध होता है । अभोगी लित नहीं होता । भोगी संसार में भ्रमण करता है । अभोगी उससे मुक्त हो जाता है ।

४०—“मिट्टी के दो गोले—एक गीला और एक सूखा-केक गए । दोनों भीत पर गिरे । जो गीला था वह वहाँ चिपक गया ।

४१—“इसी प्रकार जो मनुष्य पुद्गुद्धि और काम-भोगों में आसक्त होते हैं, वे विषयों से चिपट जाते हैं । जो विरक्त होते हैं, वे उनसे नहीं चिपटते, जैसे सूखा गोला ।”

४२—“इस प्रकार वह विजयघोष जयघोष अनगार के समीप अनुत्तर धर्म सुन कर प्रव्रजित हो गया ।

४३—“जयघोष और विजयघोष ने संयम और तप के द्वारा पूर्वं संचित कर्मों को क्षीण कर अनुत्तर सिद्धि प्राप्त की ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. भयावर्त्ते (६० पा०) ।

२. हीहं (६० पा०) ।

३. सोत्थ (६०, ६०) ।

४. सोच्चाण केवलं (६० पा०) ।

कवीसङ्गमं अन्वयवर्णनं :
सामाचार्य

षष्ठ्विंश अध्यायन :
सामाचार्य

आस्तुख

इस अध्ययन में 'इच्छा' आदि का समाचरण वर्णित है इसलिए इस अध्ययन का नाम 'सामाचारी'—
'सामाचारी' है ।

“णाणस्स सारं आचारो”—ज्ञान का सार है आचार । आचार जीवन-सुक्ति का साधन है । जैन मनीषियों ने जिस प्रकार तत्त्वों की सूक्ष्मतम छानबीन की है उसी प्रकार आचार का सूक्ष्मतम निरूपण भी किया है । आचार दो प्रकार का होता है—व्रतात्मक-आचार और व्यवहारात्मक-आचार । व्रतात्मक-आचार अहिंसा है । वह शाश्वत धर्म है । व्यवहारात्मक-आचार है परस्परानुग्रह । वह अनेक विध होता है । वह अशाश्वत है ।

जो मुनि संधीय-जीवन यापन करते हैं उनके लिए व्यवहारात्मक-आचार भी उतना ही उपयोगी है जितना कि व्रतात्मक-आचार । जिस संघ या समूह में व्यवहारात्मक-आचार की उन्नत विधि है और उसकी सम्यक् परि-
पालना होती है, वह संघ दीर्घायु होता है । उसकी एकता अखण्ड होती है ।

जैन आचार-शास्त्र में दोनों आचारों का विशद् निरूपण प्राप्त है । प्रस्तुत अध्ययन में व्यवहारात्मक-
आचार के दस प्रकारों का स्फुट निदर्शन है । ये दस प्रकार सम्यक्-आचार के आधार हैं इसलिए इन्हें 'समाचार',
सामाचार या सामाचारी कहा है ।

सामाचारी के दो प्रकार हैं—

- १—ओघ सामाचारी ।
- २—पद-विभाग सामाचारी ।

प्रस्तुत अध्ययन में ओघ सामाचारी का निरूपण है । टीकाकार ने अध्ययन के अन्त में यह जानकारी
प्रस्तुत की है कि ओघ सामाचारी का अन्तर्भाव धर्मकथानुयोग में होता है और पद-विभाग सामाचारी का चरण-
करणानुयोग में । उत्तराध्ययन धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत है ।^१ ओघ सामाचारी के दस प्रकार हैं । (ङ्को० ३, ४)

- | | |
|--------------|---------------|
| १—आवश्यक | २—नैषेधिक |
| ३—आपृच्छा | ४—प्रतिपृच्छा |
| ५—छन्दना | ६—इच्छाकार |
| ७—मिच्छाकार | ८—तथाकार |
| ९—अभ्युत्थान | १०—उपसंपदा |

स्यानाङ्ग (१०।७४९) तथा भगवती (२५।७) में दस सामाचारी का उल्लेख है । इनमें क्रम-भेद के अतिरिक्त
एक नाम-भेद भी है—‘अभ्युत्थान’ के बदले ‘निमंत्रणा’ है । नियुक्ति (गाथा ४८२) में भी ‘निमंत्रणा’ ही दिया है ।
मूलाधार (गाथा १२५) में स्यानाङ्ग में प्रतिपादित क्रम से ओघ सामाचारी का प्रतिपादन हुआ है ।

^१—बृहद् सूत्रि, पृष्ठ ५४७ :

अन्तरात्मा सामाचारी दशविधा ओघका च पदविभागात्मिका येह भोक्ता धर्मकथाऽनुयोगत्वात्स्य क्षेत्रपूत्रार्त्तातत्त्वाच्च तस्याः— ।

दिगम्बर-साहित्य में सामाचारि के स्थान पर समाधार, सामाधार शब्द का प्रयोग हुआ है और इसके पार अर्थ किए हैं—

- १ समता का आधार ।
- २—सम्यग् आधार ।
- ३ सम (तुल्य) आधार ।
- ४—समान (परिमाण सहित) आधार ।^१

वचचित् चक्रवाल-सामाचारि का भी उल्लेख मिलता है । वर्द्धमान देशना (पत्र १०२) में शिक्षा के दो प्रकार बताए हैं—आसेवना शिक्षा और ग्रहण शिक्षा ।

आसेवना शिक्षा के अन्तर्गत दस-विध चक्रवाल सामाचारि का उल्लेख हुआ है ।^२

- | | |
|--------------|----------------------------|
| १—प्रतिलेखना | ६—भोजन |
| २—प्रमार्जना | ७—पात्रक धावन |
| ३—मिक्षा | ८—विचारण (बहिर्भूमि-गमन) |
| ४—चर्या | ९—स्थण्डिल |
| ५—आलोचना | १०—आवश्यक |

उपर्युक्त दस सामाचारियों में आवश्यकी विभाग में सारी औषधिक सामाचारियों का ग्रहण हुआ है ।

सामाचारि का अर्थ है—मुनि का आचार-व्यवहार या इति-कर्तव्यता । इस व्यापक परिभाषा से मुनि-जीवन की दिन-रात की समस्त प्रवृत्तियों 'सामाचारि' शब्द से व्यवहृत हो सकती हैं । दस-विध औषधिक सामाचारि के साथ-साथ प्रस्तुत अध्ययन में अन्यान्य कर्तव्यों का निर्देश भी हुआ है ।

शिक्षा के लिए आवश्यक है कि वह जो भी कार्य करे गुरु से आज्ञा प्राप्त कर करे । (श्लो० ८:६:१०) दिन-चर्या की व्यवस्था के लिए दिन के चार भागों और उनमें करणीय कार्यों का उल्लेख श्लो० ११ और १२ में है । श्लो० १३ से १६ तक देवसिक काल-ज्ञान—दिन के चार प्रहरों को जानने की विधि है । श्लो० १७ और १८ में रात्रि-चर्या के चार भागों और उनमें करणीय कार्यों का उल्लेख है । श्लो० १९ और २० में रात्रिक काल-ज्ञान—रात के चार प्रहरों को जानने की विधि और प्रथम और चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करने का निर्देश है । श्लो० २१ में तपश्चि-प्रतिलेखना और स्वाध्याय का विधान है । ८ व २३ श्लोक में भी यह विषय प्रतिपादित है । यहाँ थोड़े परिवर्तन के साथ पुनरुक्त है । श्लो० २३ में पात्र-प्रतिलेखना तथा २३ में उसका क्रम है । श्लो० २४ से २८ तक वस्त्र-प्रतिलेखना की विधि है । श्लो० २९ और ३० में प्रतिलेखना-प्रमाद के दोष का निरूपण है । श्लो० ३१ से ३५ तक में दिन के तीसरे प्रहर के कन्दय-मिक्षाचर्या, आहार तथा दूसरे गाँव में मिक्षार्थ जाने आदिक का विधान है । श्लो० ३६ एवं ३७ तथा ३८ के प्रथम दो चरणों तक चतुर्थ प्रहर के कर्तव्य—वस्त्र-पात्र-प्रतिलेखन, स्वाध्याय, शय्या और उच्चार-भूमि की प्रतिलेखना का विधान है । श्लो० ३८ के अन्तिम दो चरणों से ४३ के तीन चरणों तक देवसिक प्रतिक्रमण का विधान है । चतुर्थ चरण में रात्रिक काल-प्रतिलेखना का विधान है । श्लो० ४३ व ४८ व ४९ का पुनरुक्त है तथा ४४ व ४५ व ४६ का पुनरुक्त है । श्लो० ४५ से ५१ तक रात्रिक प्रतिक्रमण का विधान है । ५२ व २३ श्लोक में उपसंहार है । २० व २३ श्लोक तक एक प्रकार से ओष सामाचारि (दिन और रात की चर्या) का प्रतिपादन हो चुकता है । श्लोक २१ से ५१ तक प्रतिपादित विषय का ही विस्तार से प्रतिपादन किया है । इसलिए यत्र वचचित् पुनरुक्तियाँ भी हैं ।

१—मूलवार, गाथा १२३ :

समदा सामाचारि, सम्माचारि समो व आचारो ।

सर्वेभि सम्मार्थ, सामाचारि इ आचारो ॥

२—प्रवचन सारोद्धार, गाथा ७६०, ७६१ में 'इच्छा, मिच्छा' आदि की बह्वाक्ष-सामाचारि के अन्तर्गत माना है और गाथा ७६८ में प्रतिलेखना, प्रमार्जना आदि की प्रकारान्तर से दस-विध सामाचारि माना है ।

मुनि दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे में ध्यान, तीसरे में शिक्षाचर्या और चौथे में पुनः स्वाध्याय । (श्लो० १२)

मुनि रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे में ध्यान, तीसरे में निद्रा-मोक्ष (शयन) और चौथे में पुनः स्वाध्याय । (श्लो० १८)

यह मुनि के औत्सर्गिक कर्तव्यों का निर्देश है । इसमें कई अपवाद भी हैं ।

दैनिक-कृत्यों का विस्तार से वर्णन २१ वें से ३८ वें श्लोक तक हुआ है और रात्रिक-कृत्यों का ३९ वें से ५१ वें श्लोक तक ।

यह सारा वर्णन सामाचारी के अन्तर्गत आता है । सामाचारी संघीय जीवन जीने की कला है । इससे पारस्परिक एकता की भावना पनपती है और इससे संघ दृढ़ बनता है । दस-विध सामाचारी की सम्यक् परिपालना से व्यक्ति में निम्न विशेष गुण उत्पन्न होते हैं—

१—आवश्यकता और नेषेधिकता से निष्प्रयोजन गमनागमन पर नियन्त्रण रखने की आदत पनपती है ।

२—निष्काकार से पापों के प्राप्ति सजगता के भाव पनपते हैं ।

३—आपृच्छा और प्राप्तपृच्छा से अमशील तथा दूसरों के लिए उपयोगी बनने के भाव बनते हैं ।

४—धनदना से अतिथि-सत्कार की प्रवृत्ति बढ़ती है ।

५—इच्छाकार से दूसरों के अनुग्रह को सहर्ष स्वीकार करने तथा अपने अनुग्रह में परिवर्तन करने की कला आती है ।

परस्परानुग्रह संघीय-जीवन का अनिवार्य तत्त्व है । परन्तु व्यक्ति उस अनुग्रह को अधिकार मान बैठता है, वहाँ स्थिति जटिल बन जाती है । दूसरों के अनुग्रह की हार्दिक स्वीकृति स्वयं में विनय पैदा करती है ।

६—उपसम्पदा से परस्पर-ग्रहण की अभिलाषा पनपती है ।

७—अभ्युत्थान (गुरु-पूजा) से गुरुता की ओर अभिमुखता होती है ।

८—तथाकार से आग्रह की आदत छूट जाती है, विचार करने के लिए प्रवृत्ति सदा तन्मुख रहती है ।

उत्तराभ्ययणं (उत्तराभ्ययन)

३५०

अभ्ययन २६ : श्लोक ५-८

५—गमणे आवस्सियं कुञ्जा
ठाणे कुञ्जा निसीहियं ।
आपुच्छणा सयंकरणे
परकरणे पडिपुच्छणा ॥

६—छन्दणा दव्वजाएणं
इच्छाकारो य सारणे ।
मिच्छाकारो य निन्दाए
तहकारो य^१ पडिस्सिए ॥

७—अवमुद्धानं गुरुपूया
अच्छणे उपसंपदा ।
'एवं' दुपंचसंयुता^२
सामायारी पवेइया ॥

८—पुव्विल्लमि चउग्भाए
आइच्चमि समुट्टिए ।
भण्डयं पडिलेहिता
वन्दिता य तओ गुरुं ॥

गमने आवस्यकीं कुर्यात्
स्थाने कुर्यान्निषीधिकाम् ।
आप्रच्छन्ता स्वयं करणे
पर-करणे प्रतिप्रच्छन्ता ॥

छन्दना द्रव्यजातेन
इच्छाकारश्च सारणे ।
मिथ्याकारश्च निन्दायां
तथाकारश्च प्रतिश्रुते ॥

अभ्युत्थानं गुरु-पूजायां
आसने उपसम्पदा ।
एवं द्विपंच-संयुक्ता
सामाचारो प्रवेदिता ॥

पूर्वस्मिन् वस्तुभागे
आवित्ये समुत्थिते ।
भाण्डकं प्रतिलिख्य
वन्दित्वा च ततो गुरुम् ॥

५—(१) स्थान से बाहर जाने समय आवस्यकी करे—आवस्यकी का उच्चारण करे ।
(२) स्थान में प्रवेश करते समय नैवेधिकी करे—नैवेधिकी का उच्चारण करे ।
(३) अपना कार्य करने से पूर्व आपृच्छा करे—गुरु से अनुमति ले ।
(४) एक कार्य से दूसरा कार्य करते समय प्रतिपृच्छा करे—गुरु से पुनः अनुमति ले ।

६—(५) पूर्व-गृहीत द्रव्यों से छन्दना करे—गुरु आदि को निमज्जित करे ।
(६) सारणा (ओचित्य से कार्य करने और कराने) में इच्छाकार का प्रयोग करे—आपकी इच्छा हो तो मैं आपका अमुक कार्य करूँ । आपकी इच्छा हो तो कृपया मेरा अमुक कार्य करे ।
(७) अनाश्रित की निन्दा के लिए मिथ्याकार का प्रयोग करे ।
(८) प्रतिश्रवण (गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश की स्वीकृति) के लिए तयाकार (सह मेरे ही हैं) का प्रयोग करे ।

७—(९) गुरु-पूजा (आचार्य, ग्लान, बाल आदि साधुओं) के लिए अभ्युत्थान करे—आहार आदि लाए ।
(१०) दूसरे गण के आचार्य आदि के पास रहने के लिए उपसम्पदा ले—मर्यादित काल तक उनका सिध्यत्त्व स्वीकार करे—इस प्रकार दश-विंश सामाचारों का निरूपण किया गया है ।

८—सूर्य के उदय होने पर दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भाण्ड-उपकरणों की प्रतिलेखना करे । तदनन्तर गुरु को वन्दना कर—

१. × (ङ) ।

२. यथा क्लृप्ता साहचर्यं (६० पा०) ।

द्वितीयं अङ्गवर्णनं : षड्विंश अध्यायः सामायारी : सामाचारी

मूल
१—सामायारि पवक्वामि
सव्वदुक्खविमोक्खणि ।
जं चरित्ताण निग्गन्था
तिण्णा संसारसागरं ॥

संस्कृत छाया
सामाचारी प्रवक्ष्यामि
सर्व-दुःख-विमोक्षणीम् ।
यां चरित्वा निग्रन्थाः
तीर्णाः संसार-सागरम् ॥

हिन्दी अनुवाद
१—मैं सब दुःखों से मुक्त करने वाली
उस सामाचारी का निरूपण करूँगा, जिसका
आचरण कर निर्गन्ध संसार-सागर को तिर
गए ।

२—पढमा आवस्सिया नाम
विइया य^१ निसीहिया ।
आपुच्छणा य तइया
चउत्थो पडिपुच्छणा ॥

प्रथमा आवश्यकी नाम्नी
द्वितीया च निषोधिका ।
आप्रच्छन्ता च तृतीया
चतुर्थी प्रतिप्रच्छन्ता ॥

२—पहली आवश्यकी, दूसरी नैषेधिकी,
तीसरी आपृच्छन्ता, चौथी प्रति-प्रच्छन्ता—

३—पंचमा छन्दणा नाम
इच्छाकारो य छट्ठओ ।
सत्तमो मिच्छाकारो य^२
तट्ठारो य अट्ठमो ॥

पंचमी छन्दना नाम्नी
इच्छाकारश्च षष्ठः ।
सप्तमः मिच्छाकारश्च
तथाकारश्च अष्टमः ॥

३—पाँचवीं छन्दना, छठे इच्छाकार,
सातवीं मिच्छाकार, आठवीं तथाकार—

४—अब्भुत्थानं नवमं
दसमा उपसंपदा ।
एसा दसंगा साहूणं
सामायारी पवेइया ॥

अभ्युत्थानं नवमं
दशमी उपसम्पदा ।
एसा दशांगा साधूनां
सामाचारी प्रवेक्षिता ॥

४—नौवीं अभ्युत्थान, दशवीं उपसंपदा—
भगवान् ने इस दश अंग वाली साधुओं की
सामाचारी का निरूपण किया है ।

१. होइ (व) ।

२. उ (आ, इ) ।

सामायारी (सामाचारी)

३५१

अध्ययन २६ : श्लोक ६-१४

९—पुच्छेज्जा पंजलिउडो
किं कायव्वं मए इहं ? ।
इच्छं निओइउं भन्ते !
वेयावच्चे व सज्झाए ॥

पुच्छेत् प्रांजलिपुटः
किं कर्तव्यं मया इह ? ।
इच्छामि नियोजयितुं भवन्त !
वैयावृत्ये वा स्वाध्याये ॥

९—हाथ जोड़ कर पूछे—अब मुझे क्या करना चाहिए ? भन्ते ! मैं चाहता हूँ कि आप मुझे वैयावृत्य या स्वाध्याय में से किसी एक कार्य में नियुक्त करें ।

१०—वेयावच्चे निउत्तेणं
कायव्वं अगिलायओ ।
सज्झाए वा निउत्तेणं
सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥

वैयावृत्ये नियुक्तेन
कर्तव्यमगलायकैन ।
स्वाध्याये वा नियुक्तेन
सर्व-दुःख-विमोक्षणे ॥

१०—वैयावृत्य में नियुक्त किए जाने पर अग्लान भाव से वैयावृत्य करे अथवा सर्व दुःखों से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किए जाने पर अग्लान भाव से स्वाध्याय करे ।

११—दिवसस्स चउरो भागे
कुज्जा भिक्खू वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा
दिणभागेसु चउसु वि ॥

दिवसस्य चतुरो भागान्
कुर्याद् भिक्षुर्विचक्षणः ।
तत् उत्तर-गुणान् कुर्यान्
दिन-भागेषु चतुर्ध्वयि ॥

११—विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे । उन चारों भागों में उत्तर-गुणों (स्वाध्याय आदि) की आराधना करे ।

१२—पढमं पोरिसि सज्झायं
बीयं भाणं भियायई ।
तइयाए भिक्खायरियं
पुणो चउत्थीए सज्झायं ॥

प्रथमां पौर्वीं स्वाध्याय्यं
द्वितीयां ध्यानं ध्यायति ।
तृतीयायां भिआचर्या
पुनश्चतुर्थ्यां स्वाध्याययम् ॥

१२—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे में ध्यान करे । तीसरे में भिक्षाचर्य और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे ।

१३—आसाढे मासे दुपया
पोसे मासे चउपया ।
चित्तासोएसु मासेसु
तिपया हवइ पोरिसी ॥

आषाढे मासे द्विपदा
पौषे मासे चतुष्पदा ।
चैत्रादिचतुर्धोमासयोः
त्रिपदा भवति पौर्वी ॥

१३—आषाढ़ मास में दो पाद प्रमाण, पौष मास में चार पाद प्रमाण, चैत्र तथा आश्विन मास में तीन पाद प्रमाण पौर्वी होती है ।

१४—अंगुलं सत्तरत्तेणं
पक्खेण य दुअंगुलं ।
वड्डए हायए वाकी
मासेणं चउरंगुलं ॥

अंगुलं सप्त-रात्रेण
पक्षेण च द्व्यंगुलम् ।
वर्षंते हीयते चापि
मासेन चतुरंगुलम् ॥

१४—सात दिन रात में एक अंगुल, पक्ष में दो अंगुल और एक मास में चार अंगुल वृद्धि और हानि होती है । आषाढ मास से पौष मास तक वृद्धि और माघ से आषाढ़ तक हानि होती है ।

१५—आसाढबहुलपक्षे

भद्वए कत्तिए य पोसे य ।
फगुणवइसाहेसु य
नायव्वा^१ अमोरत्ताओ ॥

१६—जेठामूले आसाढसावणे
छहि अंगुलेहि पडिलेहा ।
अट्टहि दीयतियंमी
तइए दस अट्टहि चउत्ये ॥

१७—रत्ति पि चउरो भागे
भिकखू कुज्जा वियक्खणे ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा
राइभाएमु चउस् वि ॥

१८—पढमं पोरिसि सज्झायं
बीयं ऋणं फियायई ।
तइयाए निद्धमोक्खं तु
चउत्थी भुज्जो^२ वि सज्झायं ॥

१९—जं नेइ जया रत्ति
नक्खत्तं तंमि नहचउव्भाए ।
संपत्ते विरमेज्जा
सज्झायं पओसकालम्मि ॥

२०—तम्मेव य नक्खत्ते
गयणचउव्भागसावसेसंमि ।
वेरत्तियं पि कालं
पडिलेहिता मुणी कुज्जा ॥

आषाढ-बहुलपक्षे
भाद्रपदे कार्तिके च पोसे च ।
फाल्गुन-वैशाखयोश्च
ज्ञातव्या अवम-रात्रयः ॥

ज्येष्ठा-मूले आषाढ-श्रावणे
वद्विभरंमूलेः प्रतिलेखा ।
अष्टाभिद्वितीयत्रिके
तृतीये दशभिरष्टमिद्वचतुर्थे ॥

रात्रिमपि चतुरो भागान्
भिभुः कुर्याद् विचक्षणः ।
तत उत्तर-गुणान् कुर्यान्
रात्रि-भागेषु चतुर्वपि ॥

प्रथमां पौर्णमीं स्वाध्यायं
द्वितीयां ध्यानां ध्यायति ।
तृतीयायां निद्रा-मोक्षं तु
चतुर्थ्यां भूयोपि स्वाध्यायम् ॥

यन्मयति यदा रात्रि
नक्षत्रं तस्मिन् नभश्चतुर्भागे ।
सम्प्राप्ते विरमेत
स्वाध्यायान् प्रदोषकाले ॥

तस्मिन्नेव च नक्षत्रे
गगन-चतुर्भाग-सावशेषे ।
वैरात्रिकमपि कालं
प्रतिलिख्य मुनिः कुर्यात् ॥

१५—आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, पौष,
फाल्गुन और वैशाख—इनके कृष्ण-पक्ष में
एक-एक अहोरात्र (तिथि) का क्षय होता है ।

१६—ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण इस प्रथम-
त्रिक में छह, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक इस
द्वितीय-त्रिक में आठ, मृगशिर, पौष, माघ
इस तृतीय-त्रिक में दश और फाल्गुन, चैत्र,
वैशाख इस चतुर्थ-त्रिक में आठ आंगुल की
वृद्धि करने से प्रतिलेखना का समय होता है ।

१७—विचक्षण भिक्षु रात्रि के भी चार
भाग करे । उन चारो भागों में उत्तर-गुणों की
आराधना करे ।

१८—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में
ध्यान, तीसरे में नींद और चोप में पुनः
स्वाध्याय करे ।

१९—जो नक्षत्र जिस रात्रि की पूर्ति
करता हो, वह (नक्षत्र) जब आकाश के
चतुर्थ भाग में आए (प्रथम प्रहर समाप्त हो)
तब प्रदोष-काल (रात्रि के प्रारम्भ) में
प्रारम्भ स्वाध्याय से विरत हो जाए ।

२०—वही नक्षत्र जब आकाश के चतुर्थ
भाग में शेष रहे तब वैरात्रिक काल (रात
का चतुर्थ प्रहर) आया हुआ जान फिर
स्वाध्याय में प्रवृत्त हो जाए ।

१. बोद्धवा (आ) ।

२. पुणो (अ) ।

सामायारी (सामाचारी)

३५३

अध्ययन २६ : श्लोक २१-२५

२१—पुव्विल्लंमि चउवभाए
पडिलेहिताण भण्डयं ।
गुरुं वन्दितु सज्जायं
कुज्जा दुक्खविमोक्षणं ॥

पूर्वस्मिन् चतुर्भागे
प्रतिलिख्य भाण्डकम् ।
गुरुं वन्दित्वा स्वाध्यायं
कुर्याद् दुःख-विमोक्षणम् ॥

२१—दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ
भाग में भाण्ड-उपकरणों का प्रतिलिखन कर,
गुरु को वन्दना कर, दुःख से मुक्त करने वाला
स्वाध्याय करे ।

२२—पारिसीए चउवभाए
वन्दिताण तओ गुरुं ।
अपडिक्कमिता कालस्स
भायणं पडिलेहए ॥

पौलष्याऽवसुभागे
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
अप्रतिक्लम्य कालस्य
भाजनं प्रतिलिखेत् ॥

२२—पीत पौलवी नीत जाने पर गुरु को
वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण—कायोत्सर्ग
किए बिना ही भाजन की प्रतिलिखना करे ।

२३—मुहपोत्तियं^१ पडिलेहिता
पडिलेहिज्ज गोच्छयं ।
गोच्छल्लइयंगुलिओ
वत्थाडं पडिलेहए ॥

मुख-पोतिका प्रतिलिख्य
प्रतिलिखेत् गोच्छयम् ।
अंगुलिलात-गोच्छकः
वस्त्राणि प्रतिलिखेत् ॥

२३ मुख-वभिन्ना की प्रतिलिखना कर
गोच्छया की प्रतिलिखना करे । गोच्छय की
अंगुलियों से पकड़ कर भाजन को ढाँकने के
पटलों की प्रतिलिखना करे ।

२४—उड्डं यिरं अनुरियं
पुव्वं ता वत्थमेव पडिलेहे ।
तो बिइयं पप्फोडे
तइयं च पुणो पमज्जेज्जा ॥

ऊर्ध्वं स्थिरमस्त्वरिजं
पूर्वं तावद् वस्त्रमेव प्रतिलिखेत् ।
ततो द्वितीयं प्रस्फोटयेत्
तृतीयं च पुनः प्रमुञ्चयेत् ॥

२४—सबसे पहले ऊँड़ू-आसन बैठ,
वस्त्र को ऊँचा रखे, स्थिर रखे और धीमेता
किए बिना उसकी प्रतिलिखना करे—चक्षु से
देखे । दूसरे में वस्त्र को मटकए और तीसरे
में वस्त्र की प्रमाजना करे ।

२५—अण्णावायियं अवलियं
अण्णानुबन्धि अमोसलि^२ चेव ।
छप्पुरिमा नव खोडा
पाणीपाणविओहनं^३ ॥

अर्नातमवलिजं
अननुबन्धोऽमोशली चैव ।
षट्-पूर्वा नव-खोडा
पाणि-प्राणि-विशोधनम् ॥

२५—प्रतिलिखना करते समय (१) वस्त्र
या शरीर को न नचाए, (२) न मोड़े, (३)
वस्त्र के दृष्टि से अलक्षित विभाग न करे,
(४) वस्त्र का भीत आदि से स्पर्श न करे,
(५) वस्त्र को छह पूर्व और नौ खोटक करे
और (६) जो कोई प्राणी हो उसका हाथ पर
नौ बार विशोधन (प्रमाजन) करे ।

१. मुहपोत्ति (आ, इ, उ, ऋ) ।

२. अमोसलं (अ) ; अमोसलि (ब) ।

३. पाणीपाणि (बृ) ।

४. पमज्जनं (आ, इ, उ, ऋ) ; पमज्जणा (ओअभिर्गुणिक, ४२५) ।

२६—आरभटा सम्मदा सम्मदा
वज्जेयव्वा य मोसली तद्द्या ।
पण्णोडणा चउत्थी
विक्खित्ता वेद्द्या छट्ठा ॥

आरभटा सम्मदा
वज्जेयितव्वा य मोसली तृतीया ।
प्रस्फोटना चतुर्थी
विशिक्षा वेदिका षष्ठी ॥

२७—पसिद्धिलपलम्बलोला
एगामोत्ता अणेरूवधुणा^१ ।
कुण्ड पमाणि पमायं
संकिण्णणोवगं कुज्जा ॥

प्रशिषिल-प्रलम्ब-लोलाः
एकामशानिकरूपधूतना ।
करोति प्रमाणे प्रमादं
शङ्किते गणनोपगं कुर्यात् ॥

२६—मृनि प्रतिलेखना के छह दोषों का वर्जन करे—(१) आरभटा—विधि से विपरीत प्रतिलेखन करना अथवा एक वस्त्र का पूरा प्रतिलेखन किए बिना आकुलता से दूसरे वस्त्र को ग्रहण करना ।

(२) सम्मदा—प्रतिलेखन करते समय वस्त्र को इस प्रकार पकड़ना कि उसके बीच में सलबटे पड़ जाय अथवा प्रतिलेखनीय उपधि पर बैठ कर प्रतिलेखना करना ।

(३) मोसली—प्रतिलेखन करते समय वस्त्र को ऊपर, नीचे, तिरछे किसी वस्त्र या पदार्थ से संघटित करना ।

(४) प्रस्फोटना—प्रतिलेखन करते समय रज-लिप्त वस्त्र को गृह्य की तरह वेग से भटकाना ।

(५) विशिक्षा—प्रतिलेखन वस्त्रों का अप्रतिलेखित वस्त्रों पर रखना अथवा वस्त्र के अक्षर को हटाना ऊँचा उठाना कि उसकी प्रतिलेखना न हो सके ।

(६) वेदिका—प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर, नीचे या पार्श्व में हाथ रखना अथवा घुटनों को भुजाओं के बीच रखना ।

२७—(१) प्रशिषिल—वस्त्र को ढीला पकड़ना ।

(२) प्रलम्ब—वस्त्र को विपश्मता से पकड़ने के कारण कोनों का लटकना ।

(३) लोला—प्रतिलेख्यमान वस्त्र का हाथ या भूमि से संघर्षण करना ।

(४) एकामशी—वस्त्र को बीच में से पकड़ कर उसके दोनों पार्श्वों का एक बार से ही स्पर्श करना—एक दृष्टि में ही समूचे वस्त्र को देव लेना ।

(५) अनेक रूप धूतना—प्रतिलेखना करते समय वस्त्र को अनेक बार (तीन बार से अधिक) भटकाना अथवा अनेक वस्त्रों को एक साथ भटकाना ।

(६) प्रमाण-प्रमाद—प्रस्फोटन और प्रमार्जन का जो प्रमाण (नी-नो बार करना) बतलाया है, उसमें प्रमाद करना ।

(७) गणनोपगणना—प्रस्फोटन और प्रमार्जन के निर्दिष्ट प्रमाण में शङ्का होने पर उसकी गिनती करना ।

२८—अणूणाइरित्तपडिलेहा
अविचक्षासा तहेव य ।
पढमं पयं पसत्थं
सेसाणि उ अप्यसत्थाइं ॥

२९—पडिलेहणं कुणन्तो
मिहो कहं कुणइ जणवय कहं वा ।
देइ व पच्चक्खाणं
बाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥

३०—पुढवीआउक्काए
तेऊवाऊवणस्सइत्तसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो
छहं पि विराहओ होइ ॥

[पुढवीआउक्काए
तेऊवाऊवणस्सइत्तसाणं ।
पडिलेहणाउत्तो
छहं आराहओ होइ ॥]^१

३१—तइयाए पोरिसीए
भत्तं पाणं गवेसए ।
छहं अन्नयरागम्मि
कारणंमि समुट्टिए ॥

३२—वेयणवेयावच्चे
इरियद्दाए य संजमद्दाए ।
तह पाणवत्तियाए
छहं पुण धम्मचिन्ताए ॥

अनूनाऽतिरिक्ता प्रतिलेखा
अविचक्ष्यत्यासा तथैव च ।
प्रथमं पदं प्रशस्तं
शेषाणि त्वप्रशस्तानि ॥

प्रतिलेखनां कुर्वन्
मित्रः-कथां करोति जनपद-कथां
वा ।
ब्रूवति वा प्रत्याख्यानं
वाचयति स्वयं प्रतीच्छति वा ॥

पृथिव्यपकाययोः
तेजो-वायु-वनस्पति-त्रसाणाम् ।
प्रतिलेखना-प्रमत्तः
वण्णामपि विराधको भवति ॥

[पृथिव्यपकाययोः
तेजो-वायु-वनस्पति-त्रसाणाम् ।
प्रतिलेखना-आयुक्तः
वण्णामाराधको भवति ॥]

तृतीयायां पौरुष्यां
भक्तं पानं गवेययेत् ।
वण्णामन्यतरस्मिन्
कारणे समुत्पिबते ॥

वेदान-वैद्याभिरयाय
ईर्यार्थाय च संयमार्थाय ।
तथा प्राण-प्रत्ययाय
कण्ठं पुनः धर्म-चिन्तायै ॥

२८—वस्त्र के प्रस्फोटन और प्रमार्जन के
प्रमाण से अन्यून अनतिरिक्त (न कम और न
अधिक) और अविपरीत प्रतिलेखना करनी
चाहिए । इन तीन विधियों के आधार पर
प्रतिलेखना के आठ विकल्प बनते हैं । इनमें
प्रथम विकल्प (अन्यून अनतिरिक्त और
अविपरीत) प्रशस्त है और शेष अप्रशस्त ।

२९—जो प्रतिलेखना करते समय काम-
कथा करता है अथवा जन-पद की कथा करता
है अथवा प्रत्याख्यान कराता है, दूसरों को
पढ़ाता है अथवा स्वयं पढ़ता है—

३०—वह प्रतिलेखना में प्रमत्त मूनि
पृथ्वीकाय, अकाय, तेजस्काय, वायुकाय,
वनस्पतिकाय और वसकाय—इन छहों कायों
का विराधक होता है ।

[प्रतिलेखना में अप्रमत्त मूनि पृथ्वीकाय,
अकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय
और वसकाय—इन छहों कायों का आराधक
होता है ।]

३१—छह कारणों में से किसी एक के
उपस्थित होने पर तीसरे प्रहर में भक्त और
पान की गवेयणा करे ।

३२—वेदान (धृष्टा) शान्ति के लिए,
वैद्यावृत्त्य के लिए, ईर्या सभिति के शोधन के
लिए, संयम के लिए तथा प्राण-प्रत्यय (जीवित
रहने) के लिए और धर्म-चिन्तन के लिए भक्त-
पान की गवेयणा करे ।

उत्तराभ्ययन (उत्तराध्ययन)

३५६

अध्ययन २६ : श्लोक ३३-३८

३३—निगम्यो विडमन्तो
निगम्यो वि न करेज्छ हि चैव ।
ठाणेहि उ इमेहि
अण्डकमणा य से होइ ॥

निगम्योऽनुत्तिमान्
निगम्यपि न कुर्याद्बहिर्भिरक्षेव ।
स्थाने स्त्वेभिः
अनतिक्रमणं च तस्य भवति ॥

३३—धृतिमान् साधु और साध्वी इन
छह कारणों से भक्त-पान की गवेषणा न करे,
जिससे उनके संयम का अतिक्रमण न हो ।

३४—आयंके उवसगो^१
तितिक्खया बम्भचेरगुत्तोमु ।
पाणिदया तवहेउं
सरोरवोच्छेयणाए ॥

आतङ्क उपसग
तितिभया ब्रह्मचर्यं-गुप्तिषु ।
प्राणि-दया तपोहेतोः
शरीर-व्यवच्छेदाध्याय ॥

३४—रोग होने पर, उपसर्ग आने पर,
ब्रह्मचर्यं गुप्ति की तितिक्षा (सुरक्षा) के लिए,
प्राणियों की दया के लिए, तप के लिए और
शरीर-विच्छेद के लिए मुनि भक्त-पान की
गवेषणा न करे ।

३५—अवसेसं भण्डगं गिञ्जका
चक्खुसा पडिलेहए ।
परमद्वजोयणाओ
विहारं विहरए मुणी ॥

अवशेषं भाण्डकं गृहीत्वा
चक्षुषा प्रतिलिखेत् ।
परमार्थयोजनान्
विहारं बिहरेन्मुनिः ॥

३५—मन (मिश्रोपयोगी) भाण्डोपकरणों
को ग्रहण कर चक्षु से उनकी प्रतिलिखना करे
और दूसरे गौव में मिश्रा के लिए जाना
आवश्यक हो तो अधिक से अधिक अर्थ-योजन
प्रदेश तक जाए ।

३६—चउत्थीए पोरिसीए
निक्खित्ताण भायणं ।
सञ्जायं तओ कुञ्जा
सव्वभावविभावणं^२ ॥

चतुर्थ्यां पौरुष्यां
निक्षिप्य भाजनम् ।
स्वाध्यायं ततः कुर्यात्
सर्वं-भाव-विभावनम् ॥

३६—चौथे प्रहर में भाजनों को प्रति-
लिखन पूर्वक बांध कर रख दे, फिर सर्व भावों
को प्रकाशित करने वाला स्वाध्याय करे ।

३७—पोरिसीए चउवभाए
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स
सेउजं तु पडिलेहए ॥

पौरुष्याश्चतुर्भुजि
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
प्रतिक्रम्य कालस्य
शय्यां तु प्रतिलिखेत् ॥

३७—चौथे प्रहर के चतुर्थ भाग में पौन-
पौरुषी बीत जाने पर स्वाध्याय के पश्चात्
गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर
(स्वाध्याय-काल से निवृत्त होकर) शय्या की
प्रतिलिखना करे ।

३८—पासवणञ्चारभूमिं च
पडिलेहिज्ज जयं जई ।
काउस्समं तओ कुञ्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

प्रलवणोञ्चार-भूमिं च
प्रतिलिखेत् यत् यतिः ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्वं-दुःख-विमोक्षणम् ॥

३८—यतनाशील यति फिर प्रलवण और
लवण-भूमि की प्रतिलिखना करे । तदनन्तर
सर्व-दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग
करे ।

१. वसगो (उ) ।

२. सव्वदुक्खविमोक्खणं (वृ० पा०) ।

३९—देसियं च अईयारं
चिन्तिज्ज अणुपुब्बसो ।
नाणे^१ दंसणे चैव
चरित्तम्मि तहेव य ॥

दैवसिकं चातिचारं
चिन्त्येवमुपपूर्वतः ।
ज्ञाने वर्तने चैव
चरित्रे तथैव च ॥

३९—ज्ञान, वर्तन और चारित्र सम्बन्धी
दैवसिक अतिचार का अनुक्रम से चिन्तन करे ।

४०—पारियकाउस्सग्गो
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
देसियं तु अईयारं
आलोएज्ज जहक्कमं ॥

पारित-कायोत्सर्गः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
दैवसिकं त्वातिचारं
आलोचयेत् यथाक्रमम् ॥

४०—कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु
को वन्दना करे । फिर अनुक्रम से दैवसिक
अतिचार की आलोचना करे ।

४१—पडिक्कमित्तु निस्सल्लो
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

प्रतिक्रम्य निःशल्यः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

४१—प्रतिक्रमण से निःशल्य होकर
गुरु को वन्दना करे । फिर सर्व दुःखों से मुक्त
करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

४२—पारियकाउस्सग्गो
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
'धुइमंगलं च काउण'^२
कालं संपडिलेहए ॥

पारित-कायोत्सर्गः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
स्तुति-मंगलं च कृत्वा
कालं संप्रतिलिखेत् ॥

४२—कायोत्सर्ग को समाप्त कर गुरु को
वन्दना करे । फिर स्तुति-मंगल करके काल
की प्रतिलेखना करे ।

४३—'पढमं पोरिसि सज्जायं
बीय भाणं क्रियायई ।
तइयाए निहमोक्खं तु
सज्जायं तु चउत्थिए ॥'^३

प्रथमां पौर्णमीं स्वाध्यायं
द्वितीयां ध्यानं प्रयापयति ।
तृतीयायां निद्रा-मोक्षं तु
स्वाध्यायं तु चतुर्थ्याम् ॥

४३—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे
में ध्यान, तीसरे में नींद और चौथे में पुनः
स्वाध्याय करे ।

४४—'पोरिसीए चउत्थीए
कालं तु पडिलेहिया ।
सज्जायं तओ कुज्जा
अबोहेत्तो असंजए ॥'^४

पौर्णम्यां चतुर्थ्यां
कालं तु प्रतिलिख्य ।
स्वाध्यायं ततः कुर्यात्
अबोधयन्प्रसंयतान् ॥

४४—चौथे प्रहर में काल की प्रतिलेखना
कर असंयत व्यक्तियों को न जगाता हुआ
स्वाध्याय करे ।

१. नाणे व (आ) ; मार्गसि (ङ) ।

२. सिद्धार्ण संभव किंवा (हु० पा०) ।

३. पढमा पोरिसि सज्जायं बीय भाणं क्रियायति ।

तत्तिपाए निहमोक्खं च चउत्थाए चउत्थिए ॥ (हु० पा०) ।

४. कालं तु पडिलेहिया अबोहिंत्तो असंजए ।

कुज्जा भुयी व सज्जायं सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥ (हु० पा०) ।

४५—पोरिसीए चउव्भाए
'वन्दिळण तओ गुरु' ।
पडिक्कमित्तु कालस्स
कालं तु पडिल्लहए ॥

पोरुष्याडक्तुभगि
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
प्रतिक्रम्य कालस्य
कालं तु प्रतिलिखन् ॥

४५—चोये प्रहर के चतुर्थ भाग में गुरु को बन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर (स्वाध्याय काल से निवृत्त होकर) काल की प्रतिलिखना करे ।

४६—आगए कायवोस्सग्गे
सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउस्सगं तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

आगते काय-व्युत्सर्गं
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

४६—सर्वं दुःखों से मुक्त करने वाला काय-व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग) का समय आने पर सर्व-दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

४७—राइयं च अईयारं
चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणमि दंसणंमी
चरित्तमि तवमि य ॥

रात्रिकं चातिचारं
चिन्त्येदनुपूर्वशः ।
ज्ञाने वर्तने
चरित्रे तपसि च ॥

४७—ज्ञान, दशंग, चारित्र और नप सम्बन्धी रात्रिक अतिचार का अनुक्रम में चिन्तन करे ।

४८—पारियकाउस्सग्गे
वन्दिताण तओ गुरुं ।
राइयं तु अईयारं
आलोणज्ज जहक्कमं ॥

पारित-कायोत्सर्गः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
रात्रिकं त्वतिचारं
आलोचयेत् यथाक्रमम् ॥

४८—कायोत्सर्ग को समाप्त कर, भक्त को वंदना कर । फिर अनुक्रम में रात्रिक अतिचार की आलोचना करे ।

४९—पडिक्कमित्तु निस्सल्लो
वन्दिताण तओ गुरुं ।
काउस्सगं तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

प्रतिक्रम्य निःशल्पः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

४९—प्रतिक्रमण से निःशल्प होकर गुरु को वंदना करे, फिर सर्वं दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

५०—किं तवं पडिक्कज्जामि
एवं तत्थ विचिन्तए ।
काउस्सगं तु पारित्ता
वन्दई य तओ गुरुं ॥

किं तपः प्रतिपद्ये
एवं तत्र विचिन्तयेत् ।
कायोत्सर्गं तु पारित्यक्त्वा
बन्धते च ततो गुरुम् ॥

५०—मैं कौन-सा तप ग्रहण करूँ— कायोत्सर्ग में ऐसा चिन्तन करे । कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु को बन्दना करे ।

सामायारी (सामाचारी)

३५६

अध्ययन २६ : श्लोक ५१-५२

५१—पारियकाउस्सग्गो

वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
तवं संपडिवज्जेत्ता'
करेज्ज सिद्धाण संघवं ॥

पारित-कायोत्सगं:

बन्दिस्त्वा ततो युद्धम् ।
तपः संप्रतिपद्य
कुर्यात् सिद्धानां संस्तवम् ॥

५१—कायोत्सगं पारित होने पर मुनि
गुरु को बन्दना करे । फिर तप को स्वीकार
कर सिद्धों का संस्तव (स्तुति) करे ।

५२—एसा

सामायारी
उमासेण वियाहिया ।
जं चरित्ता बहु जीवा
तिण्णा संसारसागरं ॥
—ति वेमि ।

एषा सामाचारी

समासेन व्याख्याता ।
यां चरित्वा बहवो जीवाः
लोणाः संसार-सागरम् ॥
—इति ब्रवीमि ।

५२—यह सामाचारी मैंने संक्षेप में कही
है । इसका आचरण कर बहुत से जीव संसार-
सागर को तर गए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सन्तावीसद्वमं अद्वययणं :
खलुंकिज्जं

समर्पिका अद्वययन :
खलुंकीय

आस्तुत्य

इस अध्ययन में खलुंक (दुष्ट बेल) को उद्घुष्टता के माध्यम से अविनीत की उद्घुष्टता का चित्रण किया गया है; इसलिए इसका नाम 'खलुंकिज'—'खलुंकीय' है।

इस ग्रन्थ के प्रथम अध्ययन में विनीत और अविनीत के स्वरूप की व्याख्या की गई है। विनीत को पग-पग पर सम्पत्ति मिलती है और अविनीत को विपत्ति। अनुशासन विनय का एक अंग है। भगवान् महावीर के शासन में अनुशासन की शिक्षा-दीक्षा का बहुत महत्त्व रहा है। आत्मानुशासन अध्यात्म का पहला सोपान है। जो आत्म-शासित है वही मोक्ष-मार्ग के योग्य है। जो शिष्य अनुशासन की अवहेलना करता है, उसका न इहलोक सधता है और न परलोक।

आन्तरिक अनुशासन में प्रवीण व्यक्ति ही बाह्य अनुशासन को क्रियान्वित कर सकता है। जिसकी आन्तरिक वृत्तियाँ अनुशासित हैं उसके लिए बाह्य अनुशासन, चाहे फिर वह कितना ही कठोर क्यों न हो, सरल हो जाता है।

यह अध्ययन प्रथम अध्ययन का ही पूरक अंश है। इसमें अविनीत शिष्य के अविनय का यथार्थ चित्रण किया गया है और उसकी 'खलुंक' (दुष्ट बेल) से तुलना की गई है—

“दुष्ट बेल शक और स्वामी का नाश कर देता है, यत्किञ्चित् देख कर संक्रस्त हो जाता है, जुड़ और चाबुक को तोड़ डालता है और विपथगामी हो जाता है।”^१

“अविनीत शिष्य खलुंक जैसा होता है। वह दंश-मशक की तरह कट देने वाला, जलोक की तरह गुरु के दोष ग्रहण करने वाला, वृश्चिक की तरह वचन-कण्टकों से बौधने वाला, असहिष्णु, आलसी और गुरु के कथन को न मानने वाला होता है।”^२

“वह गुरु का प्रत्यनीक, चारित्र में दोष लगाने वाला, असमाधि उत्पन्न करने वाला और कलह करने वाला होता है।”^३

“वह पिशुन, दूसरों को तपाने वाला, रक्ष्य का उद्धाटन करने वाला, दूसरों का तिरस्कार करने वाला, भ्रमण-धर्म से सिन्न होने वाला और मायावी होता है।”^४

१—उत्तराध्ययन निर्वृत्ति, पाद्या ४८६ :

अवशाही उत्तसओ जीसबुगसं तुत्तसओ अ ।
उप्पहविप्पहगामी एष खलुंका भवे गोणा ॥

२—वही, पाद्या ४९२ :

देसमसगस्समाणा जलुपकविष्णुपसमा ष जे हुंति ।
ते किं होति खलुंका तिक्खम्मिदं चमहविजा ॥

३—वही, पाद्या ४९३ :

जे किं गुदरिगीआ सवका अवमाहिकारणा पावा ।
अहियारणकाराअप्पा जिणवयणे ते किं खलुंका ॥

४—वही, पाद्या ४९४ :

पिड्डणा परोवतावी भिन्नरहस्सा परं परिभयंति ।
मिच्चिअजिज्जा ष सदा जिणवयणे ते किं खलुंका ॥

सत्तावीसद्वयं अञ्जयणं : सप्तविंश अभ्ययन

खलुंकिज्जं : खलुंकीय

१- थरे गणहरे गग्गे मुणो आसि विसारण । आइण्णे गणिभावम्मि समाहि पडिसंघण ॥	मूल संस्कृत छाया स्थविरो गणधरो गार्ग्यः मुनिरासीह विशारदः । आकीर्णो गणि-भावे समाधि प्रतिसंघत्से ॥	हिन्दी अनुवाद १- एक गर्ग नामक मुनि हुआ । वह स्थविर, गणधर और शास्त्र विशारद था । वह गुणों से आकीर्ण, गणी पद पर स्थित होकर समाधि का प्रतिसंधान करता था ।
२- वहणे वहमाणस्स कन्तारं अइवत्तई । जाण वहमाणस्स संसारा अइवत्तई ॥	वहने वहमानस्य कान्तारमतिवन्ते । योगे वहमानस्य संसाराऽतिवन्ते ॥	२- वाहन को वहन करते हुए बेल के अरण्य स्वयं उल्लंघित हो जाता है । वैसे ही योग को वहन करते हुए, मुनि के संसार स्वयं उल्लंघित हो जाता है ।
३- खलुंके जा उ जाणइ विहम्माणो किलिस्सई । असमाहि च वेणइ तांतआ य से भज्जई ॥	खलुंकां यस्तु योजयति विघ्नन क्लिश्यति । असमाधि च वेदयति तोत्रकं च तस्य भज्यते ॥	३- जो अयोग्य बेलों का जोतता है, वह उनको आहत करता हुआ क्लेश पाता है । उसे असमाधि का संवेदन होता है और उसका बाधुक टूट जाता है ।
४- एगं डसइ पुच्छंमि एगं विन्धइऽभिक्षणं । एगो भंजइ समिलं एगो उप्पहपट्ठिओ ॥	एकं दशति पुच्छे एकं विपत्यभोक्षणम् । एको भनक्ति समिलं एक उत्पद्य-प्रस्थितः ॥	४- वह कुछ हुआ बाहक किसी एक की पूछ को काट देता है और किसी एक को बार-बार बोधता है । तब कोई अयोग्य बेल जुए की कील को तोड़ देता है और कोई उत्पद्य में प्रस्थान कर जाता है ।
५- एगो पडइ पासेणं निवेसइ निवज्जई । उक्कुदइ उप्पिडई सट्ठे बालगवी वए ॥	एकः पतति पाशेन निविशति निपद्यते । उत्क्रुर्वते उत्प्लवते शठः बालगवी व्रजेत् ॥	५- कोई एक पाश से गिर पड़ता है, कोई बैठ जाता है तो कोई लेट जाता है । कोई क्रूरता है, कोई उछलता है तो कोई शठ तुरण गाय की ओर भाग जाता है ।

१. बाह्यमाणस्स (अ, छ०) ; वहमाणस्स (ञ०) ।

२. किकामई (इ०) ; किकिस्सई (इ० पा०) ।

स्वविर गणधर गार्ग्य मुदु, समाधि-सम्पन्न और आधारवान् गणी थे। जब उन्होंने देखा कि उनके सारे शिष्य अविनीत, उद्वण्ट और उच्छ्वल हो गए, तब आत्म-भाव से प्रेरित हो, शिष्य-समुदाय को छोड़, वे अकेले हो गए। आत्म-निष्ठ मुनि के लिए यही कर्तव्य है। जो शिष्य-सम्पदा समाधि में सहायक होनी है वही गुरु के लिए आवेय है, अनुशासनीय है और जो समाधि में बाधक बनती है वह त्याज्य है, अवाञ्छनीय है।

सामुदायिकता साधना की समृद्धि के लिए है। वह लक्ष्य की पूर्ति के लिए सहायक हो तो उसे अंगीकार किया जाता है और यदि वह बाधक बनने लगे तो साधक स्वयं अपने को उससे मुक्त कर लेता है। यह लक्ष्य सदा से मान्य रहा है। यह अध्ययन उसी परम्परा की ओर संकेत करता है।

उत्तरउभयपणं (उत्तराध्ययन)

३६६

अध्ययन २७ : श्लोक ६-१०

६—माई मुदण पडइ
कुढे गच्छइ पडिप्पहं ।
'मयलक्खेण चिट्ठी'^१
वेगेण य पहावई ॥

मायी मूर्णा पतति
कुढो गच्छति प्रतिपथम् ।
मृत-लक्षणे तिष्ठति
वेगेन च प्रधावति ॥

६—कोई धूल बेल गिर को निडाल बना
कर लुट जाता है तो कोई क्रुद्ध होकर पीछे
को और खलता है । कोई मृतक-सा बन कर
गिर जाता है तो कोई वेग से दौड़ता है ।

७—छिन्नाले छिन्दइ सेल्लि
दुदन्तो भंजए जुगं ।
से वि य सुस्सुयाइत्ता'^२
उज्जाहिता'^३ पलायए ॥

'छिन्नाले' छिनति 'सेल्लि'
दुर्बान्तो भनक्ति युगम् ।
सोपि च सूक्ष्म
उत्थाय पलायते ॥

७—छिन्नाल वृषभ रास को छिन्न-भिन्न
कर देता है, दुर्बान्त होकर जाए को तोड़ देता
है और सौ-सौ कर बाहन को छोड़ कर भाग
जाता है ।

८—खलुंका जारिसा जोज्जा
दुसीसा वि हु तारिसा ।
जोइया धम्मजाणम्मि
भजन्ति धिइदुब्बला ॥

खलुंका याटना योज्याः
कुशिक्ष्याः अपि खलुताट्ठनाः ।
योजिता धर्म-याने
भज्यन्ते धृति-दुर्बलाः ॥

८—जुते हुए अयोध बेल जैसे बाहन
को भग्न कर देते हैं, वैसे ही दुर्बल धृति वाले
शिष्यों को धर्म-यान में जोत दिया जाता है
तो वे उसे भग्न कर डालते हैं ।

९—इड्ढीमारविए एगे
एगेऽत्थ रसमारवे ।
सायमारविए एगे
एगे मुच्चिरकोहणे ॥

ऋद्धि-गौरविक एकः
एकोत्र रस-गौरवः ।
सात-गौरविक एकः
एकः सुच्चिर-क्रोधनः ॥

९—कोई शिष्य ऋद्धि का गौरव करता
है तो कोई रस का गौरव करता है, कोई
सातों का गौरव करता है तो कोई चिरकाल
तक क्रोध रखने वाला होता है ।

१०—भिक्षालसिए एगे
एगे ओमाणभोरए थद्धे ।
एगं च^४ अणुसासम्मी
हेऊहि कारणेहि य ॥

भिक्षालस्यिक एकः
एकोऽवमान-भोरकः स्तब्धः ।
एकं च अनुशास्ति
हेतुभिः कारणेऽपि ॥

१०—कोई भिक्षाधरो में आलस्य करता
है तो कोई अपमान-भोर और अहंकारी होता
है । किसी को गुरु हेतुओं व कारणों द्वारा
अनुशासित करते हैं—

१. पल्लवं (पल) ते न चिट्ठिवा (६० पा०) ।

२. सुस्सुयत्ता (अ) ।

३. उल्लुहिता (आ, ६०, ६०) ।

४. × (अ) ।

११—सो वि अन्तरासिल्लो
दोसमेव पकुव्वई^१ ।
आयरियाणं तं वयणं
पडिकूलेइ अभिक्खणं ॥

सोप्यन्तर-आवावाण्
दोषमेव प्रकरोति ।
आचार्याणां तह वचनं
प्रतिकूल्यत्पभीषजम् ॥

११—तब बह बीच में ही बोल उठता है, मन् में दोष ही प्रकट करता है तथा बार-बार आचार्य के वचनों के प्रतिकूल आचरण करता है ।

१२—न सा ममं वियाणाइ
न वि^२ सा मज्झ दाहिई ।
निगया होहिई मन्ने
साहू अन्नोत्थ वञ्चउ ॥

न सा मां विजानाति
नापि सा मह्यं दास्यति ।
निर्गता भविष्यति मन्ये
साधुरन्योऽत्र व्रजतु ॥

१२—(गुरु प्रयोजनवश किसी आश्रिका से कोई वस्तु लाने को कहे, तब वह कहता है,) वह मुझे नहीं जानती, वह मुझे नहीं देगी, मैं जानता हूँ, वह घर से बाहर गई होगी । इस कार्य के लिए मैं ही क्यों, कोई दूसरा साधु बला जाए ।

१३—पेसिया^३ पलिउंचन्ति
ते परियन्ति समन्ताओ ।
रायवेदि^४ व मन्नन्ता
करेन्ति मिउडि मुहे ॥

प्रेषिताः परिकुञ्चन्ति
ते परियन्ति समस्ततः ।
राज-वेष्टिभिर्वा मन्यमानाः
कुर्वन्ति भृकुटि कुले ॥

१३—किसी कार्य के लिए उन्हें भेजा जाता है और वह कार्य किए बिना ही लौट आते हैं । पृष्ठने पर कहते हैं—उस कार्य के लिए आपने हमसे कब कहा था ? वे चारों ओर घूमते हैं, किन्तु गुरु के पास कभी नहीं बैठते । कभी गुरु का कहा कोई काम करते हैं तो उसे राजा की बेगार की भाँति मानते हुए मुँह पर भृकुटी तान लेते हैं—मुँह को संभोट लेते हैं ।

१४—वाइया संगहिया चेव
'भत्ताणे य'^५ पोसिया ।
जायपक्खा जहा हंसा
पक्कमन्ति विसोदिसि ॥

वाचिताः संगृहीताश्चैव
भक्त-पानेन च पोषिताः ।
जात-पक्षा यथा हंसा
प्रक्रमन्ति विशो विशम् ॥

१४—(आचार्य सोचते हैं) मैंने उन्हें पढ़ाया, संगृहीत (दीक्षित) किया, भक्त-पान से पोषित किया, किन्तु कुछ योग्य बनने पर ये बेसे ही बन गए हैं, जैसे पंख आने पर हंस विभिन्न दिशाओं में प्रक्रमण कर जाते हैं—दूर-दूर उड़ जाते हैं ।

१५—अह सारही विचिन्तेइ^६
खलुकेहि समागओ ।
कि मज्झ दुइसीसेहि
अप्पा मे अवसीयई ॥

अथ सारथिर्वाचिन्त्ययति
खलुकेः श्वागतः ।
कि मय कुष्ट-शिष्यः
आत्मा मेऽवसीयति ॥

१५—कृशिय्यों द्वारा खिन्न होकर सारथि (आचार्य) सोचते हैं—इन दुष्ट शिष्यों से मुझे क्या ? इनके संसर्ग से मेरी आत्मा अवसन्न—व्याकुल होती है ।

१. पभासए (वृ० पा०) ।

२. व (व) ।

३. पोसिया (वृ० पा०) ।

४. रायविद्ध (व) ।

५. अत्तपाणेण (अ, आ, इ) ।

६. हि चिन्तेइ (अ) ।

उत्तरञ्जयणं (उत्तराध्ययन)

३६८

अध्ययन २७ : श्लोक १६-१७

१६—जारिसा^१ मम सीसाउ
तारिसा^२ गलिगद्दहा ।
गलिगद्दहे चइत्ताण^३
दढं परिगिण्हइ^४ तवं ॥

यादृशा मम शिष्यास्तु
तादृशा गलि-गर्दभाः ।
गलि-गर्दभान् त्यक्त्वा
दृढं परिगृह्णामि तपः ॥

१६—जैसे मेरे शिष्य हैं वैसे ही गली-
गदर्भ होते हैं। इन गली-गर्दभों को छोड़ कर
गर्दभायें न दृढ़ता के साथ तपः मार्ग को
अंगीकार किया ।

१७—मिउ मद्दवसंपन्ने
गम्भीरे सुसमाहिण् ।
विहरइ महि महप्पा
सोलभूएण अप्पणा ॥
—त्ति वेमि ।

मृदुमार्दव-सम्पन्नो
गम्भीरः सुप्तमाहितः ।
विहरति महौ महत्त्वा
शीलभूतेनात्मना ॥

१७—बहु मृदु और मार्दव से सम्पन्न
गम्भीर और सुप्तमाहित महात्मा शील-सम्पन्न
होकर पृथ्वी पर बिचरने लगा ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

—इति ब्रवीमि ।

१. तारिसा (अ) ।

२. जारिसा (अ) ।

३. जइत्ताण (आ) ।

४. परिगिण्हामि (कृ०) ; परिगिण्हइ (क० पा०) ।

**अट्ठावीसह्रमं अङ्गवर्णः
मोक्षस्वमगगई**

**अष्टाविंश अङ्गवर्णः
मोक्ष-मार्ग-गति**

आस्तुख

इस अध्ययन का नाम 'मोक्षमार्गगर्ह'—'मोक्षमार्ग-गति' है। मोक्ष प्राप्य है और मार्ग है उसकी प्राप्ति का उपाय। गति व्यक्ति का अपना पुरुषार्थ है। प्राप्य हो और प्राप्ति का उपाय न मिले तो वह प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार प्राप्य भी हो और प्राप्ति का उपाय भी हो किन्तु उसकी ओर गति नहीं होती तो वह प्राप्त नहीं होता। मार्ग और गति—ये दोनों प्राप्त होने लभे प्राप्य प्राप्त हो सकता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप—इन चारों द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है; इसलिए इनके समवाय को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। ज्ञान-दर्शन ज्ञान-योग, भाक्त-योग (भक्ता) और कर्म-योग (चारित्र्य और तप) इन तीनों को संयुक्त रूप में मोक्ष का मार्ग मानता है, किसी एक को नहीं। (इति १० २) इस चतुरंग मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

चौथे से चौदहवें श्लोक तक ज्ञान-योग का निरूपण है—ज्ञान और श्रय का प्रतिपादन है।

पन्द्रहवें से इकतीसवें श्लोक तक भक्ता-योग का निरूपण है।

बचोसवें से चौतीसवें श्लोक तक कर्म-योग का निरूपण है।

पचासवें श्लोक में इन योगों के परिणाम बतलाए गए हैं।

मोक्ष-प्राप्ति का पहला साधन ज्ञान है। ज्ञान पाँच है—मति, श्रुति, अर्वाच, मनःपर्यव और केवल। ज्ञान के विषय हैं—द्रव्य, गुण और पर्याय। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव—ये छह द्रव्य हैं। गुण और पर्याय अनन्त हैं।

मोक्ष-प्राप्ति का दूसरा साधन दर्शन है। उसका विषय है तथ्य की उपलब्धि। वे नौ हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। दर्शन की दस रुधियों में विभक्त किया गया है। यह विभाग स्वामी (१०।५५१) और प्रज्ञापना (प्रथम पद) में भी मिलता है। यह विभाग यह है—

- | | |
|-------------|-----------------|
| १—निसंगलचि, | ६—अभिगमलचि, |
| २—उपदेशलचि, | ७—विस्तारलचि, |
| ३—आज्ञालचि, | ८—क्रियालचि, |
| ४—सूत्रलचि, | ९—संक्षेपलचि और |
| ५—बीजलचि, | १०—धर्मलचि। |

मोक्ष-प्राप्ति का तीसरा साधन चारित्र्य—आचार है। वे पाँच हैं :

- १—सामायिक चारित्र्य,
- २—क्षेदोपस्थापनीय चारित्र्य,
- ३—परिहार-विशुद्धि चारित्र्य,
- ४—सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र्य और
- ५—यथारूप चारित्र्य।

मोक्ष-प्राप्ति का चौथा साधन तप है। वह दो प्रकार का है—बाह्य और आभ्यन्तर। प्रत्येक के छह-छह विभाग हैं।

अट्ठावीसहमं अङ्गप्रवर्णः : अष्टविंश अध्यायः मोक्षमार्गगई : मोक्ष-मार्ग-गति

मूल
१—मोक्षमार्गगई तच्चं
मुण्ह जिणभासियं ।
चउकारणसंजुत्तं
नाणदंसणलक्खणं ॥

संस्कृत छाया
मोक्ष-मार्ग-गति तच्छ्रुत्वा
श्रुत जिन-भाषिताम् ।
चतुष्कारण-संयुक्तां
ज्ञान-दर्शन-लक्षणाम् ॥

हिन्दी अनुबाव
१—चार कारणों से संयुक्त, ज्ञान-दर्शन,
लक्षण वाली जिन-भाषित मोक्ष-मार्ग की गति
को मुता ।

२—नाण च दंसणं चैव
चरित्तं च तवो तहा ।
एस्स मग्गो त्ति पन्नत्तां
जिण्हि वरदंसिहि* ॥

ज्ञानं च दर्शनं चैव
चरित्रं च तपस्तथा ।
एष मार्ग इति प्रज्ञप्तः
जिनेवर-दर्शयिषि ॥

२—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—यह
मोक्ष-मार्ग है, ऐसा वरदर्शी अर्हन्तों ने प्रकल्पित
किया ।

३—नाण च दंसणं चैव
चरित्तं च तवो तहा ।
एयमग्गमणुप्पत्तां
जोवा गच्छन्ति सोग्गइ ॥

ज्ञानं च दर्शनं चैव
चरित्रं च तपस्तथा ।
एनं मार्गं मनुप्राप्ता
जोवा गच्छन्ति मुगतिम् ॥

३—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—इस
मार्ग का पालन करने वाले जीव मुक्ति में
जाते हैं ।

४—तत्थ पंचविहं नाणं
मुय आभिनिबोहिणं ।
ओहीनाणं तइयं
मणनाणं च केवलं ॥

तत्र पंचविधं ज्ञानं
श्रुतमाभिनिबोधिष्यम् ।
अवधिज्ञानं तुतीयं
मनोज्ञानं च केवलम् ॥

४—उनमें ज्ञान पाँच प्रकार का है—
श्रुत ज्ञान, आभिनिबोधिष्य ज्ञान, अवधि ज्ञान,
मनः ज्ञान और केवल ज्ञान ।

५—एयं पंचविहं नाणं
दब्बाण य गुणाण य ।
पज्जवाणं च सज्जेसि
नाणं नाणीहि देसियं ॥

एतन् पंचविधं ज्ञानं
द्रव्यानां च गुणानां च ।
पर्यवधानं च सवधानं
ज्ञानं ज्ञानभिर्देशितम् ॥

५—यह पाँच प्रकार का ज्ञान सर्व द्रव्य,
गुण और पर्यायों का अवबोधक है—ऐसा
ज्ञानियों ने बताया है ।

१. एय (अ) ।

२. सज्जेसिहि (अ) ।

३. एव (अ) ।

दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना चारित्र नहीं आता । चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता । (श्लो० ३०)

ज्ञान से तत्त्व जाने जाते हैं ।

दर्शन से उन पर श्रद्धा होती है ।

चारित्र से आस्रव का निरोध होता है ।

तप से शोधन होता है । (श्लोक ३५)

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में इन चार मार्गों का निरूपण है । जब आत्म-शोधन पूर्ण होता है तब जीव सिद्ध-गति को प्राप्त हो जाता है ।

सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के ग्यारहवें अध्ययन का नाम 'मार्गाध्ययन' है । उसमें भी मोक्ष के मार्गों का निरूपण है ।

उत्तरञ्जयणं (उत्तराध्ययन)

३७४

अध्ययन २८ : श्लोक ६-११

६—गुणाणमासओ दव्वं
एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु
उभओ^१ अस्सिया भवे ॥

गुणानामाधयो द्रव्यं
एक द्रव्याभिता गुणाः ।
लक्षणं पर्यवाणं तु
उभयोरभिता भवेयुः ॥

६—जो गुणों का आधय होगा है, वह द्रव्य है । जो किसी एक द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण होते हैं । द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहना पर्याय का लक्षण है—जो द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहते हैं, वे पर्याय होते हैं ।

७—धम्मो अहम्मो आगासं
कालो पुगलजन्तवो ।
एस लो गो ति पन्तो
जिणहि वरदंसिहि ॥

धर्मोऽधर्म आकाशं
कालः पुगल-जन्तवः ।
एष लोक इति प्रज्ञः
जिनैर्वर-वशिभिः ॥

७—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव—ये छह द्रव्य हैं । यह षट्-द्रव्यात्मक जो है वही लोक है—ऐसा वरदर्शी बर्हत्तो ने प्रकृत किया है ।

८—धम्मो अहम्मो आगासं
दव्वं इक्खिमाहिं ।
अणत्ताणि य दव्वाणि
कालो पुगलजन्तवो ॥

धर्मोऽधर्म आकाशं
द्रव्यमेकैकमाख्यातम् ।
अनन्तानि च द्रव्याणि
कालः पुगल-जन्तवः ॥

८—धर्म, अधर्म, आकाश—ये तीन द्रव्य एक-एक हैं । काल, पुद्गल और जीव ये तीन द्रव्य अनन्त-अनन्त हैं ।

९—गइलक्खणो उ^२ धम्मो
अहम्मो ठाणलक्खणो ।
भायणं सव्वदव्वाणं
नहं ओगाहलक्खणं ॥

गति-लक्षणस्तु धर्मः
अधर्मः स्थान-लक्षणः ।
भाजनं सर्व-द्रव्याणां
नभोऽवगाह-लक्षणम् ॥

९—धर्म का लक्षण है गति, अधर्म का लक्षण है स्थिति और आकाश सर्व द्रव्यों का भाजन है । उनका लक्षण है अवकाश ।

१०—वत्तणालक्खणो कालो
जीवो उवओगलक्खणो ।
नाणेणं दंसणेणं च
सुहेण य दुहेण य ॥

वर्तना-लक्षणः कालः
जीव उपयोग-लक्षणः ।
ज्ञानेन दर्शनेन च
सुखेन च दुःखेन च ॥

१०—वर्तना काल का लक्षण है । जीव का लक्षण है उपयोग । वह ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से जाना जाता है ।

११—नाणं च दंसणं चेव
चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य
एयं जीवस्स लक्खणं ॥

ज्ञानं च दर्शनं चैव
चरित्तं च तपस्तथा ।
वीर्यमुपयोगक
एतज्जीवस्य लक्षणम् ॥

११—ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग—ये जीव के लक्षण हैं ।

१. दुइओ (अ) ।

२. च (अ) ।

१२—सहस्रधारउज्जोओ

पहा 'छायातवे इ वा'¹ ।

वण्णरसगन्धपासा

पुग्गलानं तु लक्खणं ॥

शब्दान्धकार उज्जोतः

प्रभाच्छायाऽऽतप इति वा ।

वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शः

पुद्गलानां तु लक्षणम् ॥

१२—शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पुद्गल के लक्षण हैं ।

१३—एगत्तं च पुहत्तं² च

संखा संठाणमेव य ।

संजोगा य विभागा य

पज्जवाणं तु लक्खणं ॥

एकत्वं च पुनः पुनः च

संख्या संस्थानमेव च ।

संयोगाद्वि विभागाद्वि

पर्यंवाणां तु लक्षणम् ॥

१३—एकत्व, पुनः पुनः, संख्या, संस्थान, संयोग और विभाग—ये पर्यायों के लक्षण हैं ।

१४—जीवाजीवा य बन्धो य

पुण्णं पावासवो तहा ।

संवरो निज्जरा मोक्खो

सन्तेए तहिया नव ॥

जीवाऽजीवाश्च बन्धवश्च

पुण्यं पापाश्चवी तथा ।

सम्बरो निर्जरा मोक्षः

सन्त्येते तस्य नव ॥

१४—जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आश्रय, संबरो, निर्जरा और मोक्ष—ये नौ तथ्य (तत्त्व) हैं ।

१५—तहियाणं तु भावाणं

'संभावे उवएसणं ।

भावेणं सहहन्तस्स

सम्मत्तं तं वियाहियं'³ ॥

तथ्याणां तु भावानां

संभावे उपवेशनम् ।

भावेन श्रुतवचनः

सम्यक्त्वं तद्व्याख्यातम् ॥

१५—तन तथ्य भावों के सद्भाव (वास्तविक अस्तित्व) के निरूपण में जो अन्तःकरण से श्रद्धा करता है, उसे सम्यक्त्व होता है । उस अन्तःकरण की श्रद्धा की ही भगवान् ने सम्यक्त्व कहा है ।

१६—निसग्गुवएसरुई

आणारुई सुत्तवीयरुईमेव ।

अभिगमवित्थारुई

किरियासंखेवधम्मरुई ॥

निसर्गोपदेश-रुचिः

आज्ञा-रुचिः सूत्र-बीज-रुचिरेव ।

अभिगम-विस्तार-रुचिः

क्रिया-संश्लेष-धर्म-रुचिः ॥

१६—बहु दस प्रकार का है—निसर्ग-रुचि, उपदेश-रुचि, आज्ञा-रुचि, सूत्र-रुचि, बीज-रुचि, अभिगम-रुचि, विस्तार-रुचि, क्रिया-रुचि, संश्लेष-रुचि और धर्म-रुचि ।

१७—भूयत्वेणाहिगया

जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।

सहसमुद्भयासवसंवरो य⁴

रोएइ उ निसग्गो ॥

भूतार्थनाधिपताः

जीवाऽजीवाश्च पुण्यं पापं च ।

स्व-सम्प्रत्ययाऽऽश्रय-संवरो च

रोक्षते तु निसर्गः ॥

१७—जो परोपदेश के बिना केवल अपनी आत्मा से उपजे हुए भूतार्थ (यथावत् ज्ञान) से जीव, अजीव, पुण्य, पाप को जानता है और जो आश्रय और संबरो पर श्रद्धा करता है, वह निसर्ग-रुचि है ।

१. 'तवे ह वा (अ, ऋ०)' ; 'तडुत्ति वा (इ०) ।

२. पुण्णं (उ) ।

३. सम्माको (वेणी) वण्णं ।

भावेण उ सहहणा सम्मत्तं होति आहियं ॥ (व० पा०) ।

४. य (अ) ।

उत्तरउभयर्ण (उत्तराव्ययन)

३७६

अध्ययन २८ : श्लोक १८-२२

१८—जो जिणदिट्ठे भावे
चउव्विहे सदहाइ सयमेव ।
एमेव^१ नऽनह ति य
निसगरुइ ति नायव्वो ॥

यो जिन-ट्टष्टान् भावान्
चतुर्विधान् श्रद्धावाति स्वयमेव ।
एवमेव तान्यथेति च
निसर्ग-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

१८—जो जिनेन्द्र द्वारा दृष्ट तथा द्रव्य,
क्षेत्र, काल और भाव से विशेषित पदार्थों पर
स्वयं ही—“यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है”—
ऐसी श्रद्धा रखना है, उसे निसर्ग-रुचि वाला
जानना चाहिए ।

१९—एए चेव उ^२ भावे
उव्वट्ठे जो परेण सदहई ।
छउमत्थेण जिणेण व^३
उवएसइ ति नायव्वो ॥

एतान् चैव तु भावान्
उपविष्टान् यः परेण श्रद्धावाति ।
छद्मस्थेन जिनेन वा
उपदेश-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

१९—जो दूसरों—छद्मस्थ या जिन- के
द्वारा उपदेश प्राप्त कर, इन भावों पर श्रद्धा
करता है, उसे उपदेश-रुचि वाला जानना
चाहिए ।

२०—रागो दोसो मोहो
अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाग रायंतो
सो खलु आणारुइ नाम ॥

रागो दोषो मोहः
अज्ञानं यस्यापगतं भवति ।
आजयां रोचमानः
स खल्वज्ञा-रुचिर्नाम ॥

२०—जो व्यक्ति राग, द्वेष, मोह और
अज्ञान के दूर हो जाने पर वीतराग की आज्ञा
में रुचि रखता है, वह आज्ञा-रुचि है ।

२१—जो सुत्तमहिज्जन्तो
सुएण ओगाहई उ सम्मतं ।
अंगेण बाहियेण व^४
सो सुत्तरुइ ति नायव्वो ॥

यः सूत्रमधीयानः
श्रुतेनावगाहते तु सम्यक्त्वम् ।
अङ्गेन बाह्येन वा
स सूत्र-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२१ जो अंग-प्रतिबद्ध या अंग-बाह्य
सूत्रों को पढ़ता हुआ सम्यक्त्व पाता है, वह
सूत्र-रुचि है ।

२२—एगेण अणेगाई
पयाइं जो पसरई उ सम्मतं ।
उदए व्व तेलविन्दु
सो बीयरुइ ति नायव्वो ॥

एकेनानेकानि
पदानि यन् प्रसरति तु सम्यक्त्वम् ।
उत्तरे इव तेल-विन्दुः
स बीज-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२२—पानी में डाले हुए तेल की बूंद
की तरह जो सम्यक्त्व (रुचि) एक पद
(तत्त्व) में अनेक पदों में फैलता है, उसे
बीज-रुचि जानना चाहिए ।

१. एमेव (अ, ड, ह०) ।

२. डु (ख०) ।

३. व (ख०) ।

४. व (ख०) ।

मोक्षमार्ग-गति)

३७७

अध्ययन २८ : श्लोक २३-२८

२३—सो होइ अभिगमरुई
सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं ।
'एक्कारस अंगाड'^१
पइण्णमं^२ दिट्ठिवाओ य ॥

स भवति अभिगम-रुचिः
श्रुतज्ञानं येन अचंतो दृष्टम् ।
एकादशाङ्ग्यानि
प्रकीर्णकानि दृष्टि-वादनम् ॥

२३—जिसे प्यारह अंग, प्रकीर्णक और
दृष्टिवाद आदि श्रुत-ज्ञान अंगे सहित प्राप्त है,
वह अभिगम-रुचि है ।

२४—दब्बाण सव्वभावा
सव्वपमाणेहि जस्स उवल्लभा ।
सव्वाहि नयविहीहि य
वित्थाररुइ ति नायव्वो ॥

द्रव्याणां सर्वभावाः
सर्वप्रमाणैर्यस्योपलब्धाः ।
सर्वेनय-विधिभिश्च
विस्तार-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२४—जिसे द्रव्यों के सब भाव, सभी
प्रमाणों और सभी नय-विधियों से उपलब्ध हैं,
वह विस्तार-रुचि है ।

२५—दंसणनाणचरित्ते
तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु^३ ।
जो किरियाभावरुई
सो खलु किरियारुई नाम ॥

दर्शन-ज्ञान-चरित्रो
तपो-विनये सत्य-समिति गुणेषु ।
यः क्रिया-भाव-रुचिः
स खलु क्रिया-रुचिर्नाम ॥

२५—दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य, तप, विनय,
सत्य, समिति, गुण आदि क्रियाओं में जिसकी
वास्तविक रुचि है, वह क्रिया-रुचि है ।

२६—अणभिग्गहियकुट्ठि
सखेवरुइ ति होइ नायव्वो ।
अविसारओ पवयणं
अणभिग्गहिआं य सेसेसु ॥

अनभिगृहीत-कुट्टिः
संक्षेप-रुचिरिति भवति ज्ञातव्यः ।
अविशारदः प्रवचने
अनभिगृहीतस्य शेषेषु ॥

२६—जो जिन-प्रवचन में विचारद नहीं
है और अन्याय प्रवचनों का अभिज्ञ भी नहीं
है, किन्तु जिसे कुट्टि का आग्रह न होने के
कारण स्वल्प ज्ञान मात्र से जो तरव-श्रद्धा
प्राप्त होती है, उसे संक्षेप-रुचि जानना
चाहिए ।

२७—जो अत्थिकायधम्मं
सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च ।
सद्धह जिणाभिहितं
सो धम्मरुइ ति नायव्वो ॥

योऽस्तिकाय-धर्मं
श्रुत-धर्मं खलु चरित्र-धर्मं च ।
अदृष्टाति जिनाभिहितं
स धर्म-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२७—जो जिन-प्रकृति अस्तिकाय-धर्मं,
श्रुत-धर्म और चारित्र्य-धर्म में श्रद्धा रखता है,
उसे धर्म-रुचि जानना चाहिए ।

२८—परमत्थसंघवो वा
सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि ।
वावन्नकुदंसणवज्जणा
य सम्मत्तसद्धणा ॥

परमार्थ-संस्तवो वा
सुदृष्ट-परमार्थ-सेवनं वापि ।
व्यापन्न-कुदर्शन-वर्जनं
च सम्यक्त्व-श्रद्धानाम् ॥

२८—परमार्थ का परिचय, जिन्होंने
परमार्थ को देखा है उसकी सेवा, व्यापन्न-
दर्शनी (सम्यक्त्व से श्रद्धा) और कुदर्शनी
व्यक्तियों का वर्जन, यह सम्यक्त्व का
श्रद्धानाम है ।

१. इक्कारसंगाह (व, ख०) ।

२. पइण्णधं (अ) ।

३. खल्वं (अ) ।

२९—नत्थि चरितं सम्मतविहूणं
दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मतवरित्ताइं
जुगवं पुव्वं व' सम्मतं ॥

नास्ति चरित्रं सम्यक्त्व-विहीनं
वशने तु भक्तव्यम् ।
सम्यक्त्व-चरित्रे
युगपत् पुवं वा सम्यक्त्वम् ॥

२९—सम्यक्त्व-विहीन चारित्र नहीं होता । वशने (सम्यक्त्व) में चारित्र की भजना (विकल्प) है । सम्यक्त्व और चारित्र युगपत् (एक साथ) उत्पन्न होते हैं और जहाँ वे युगपत् उत्पन्न नहीं होते, वहाँ पहले सम्यक्त्व होता है ।

३०—नादंसणिस्स नाणं
नाणेण विष्णा न हुत्ति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मांस्खो
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥

नाऽदर्शनिनो ज्ञानं
ज्ञानेन विना न भवन्ति चरणगुणाः ।
अगुणिनो नास्ति मोक्षः
नास्ति अमोक्षस्य निर्वाणम् ॥

३०—अदर्शनी (अमम्यक्त्वी) के ज्ञान (सम्यग् ज्ञान) नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नहीं होते । अगुणी व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती । अमृत् का निर्वाण नहीं होता ।

३१—निस्संखिय निक्कंखिय
निव्वित्तिगिच्छा अमूढदिट्ठो य ।
उव्वूह थिरीकरणे
वच्छल्ल पभावणे अट्ट ॥

निःशङ्कितं-निष्काङ्क्षितं
निर्विचिकित्सं अमूढ-दृष्टिश्च ।
उपबृंह-स्थिरीकरणं
वास्तव्य-प्रभावनमष्ट ॥

३१—निःशंका, निष्कांक्षा, निर्विचिन्विता, अमूढ-दृष्टि, उपबृंहण (सम्यक् वशने की पुष्टि), स्थिरीकरण, वास्तव्य और प्रभावना—ये आठ सम्यक्त्व के अंग हैं ।

३२—सामाहयत्थ^१ पढमं
छेओवट्ठावणं भवे बोयं ।
परिहारविसुद्धीयं
सुहुमं तह संपरायं च ॥

सामायिकमत्र प्रथमं
छेदोपस्थापनं भवे द्वितीयम् ।
परिहार-विशुद्धिकं
सूक्ष्मं तथा सम्परायं च ॥

३२—चारित्र पाँच प्रकार के होते हैं—
पहला—सामायिक, दूसरा—छेदोपस्थापनीय, तीसरा—परिहार-विशुद्धि, चौथा—सूक्ष्म-सम्पराय और ।

३३—अकसायं अहक्कायं
छुमत्थस्स जिणस्स वा ।
एयं चरित्तकरं
चारित्तं होइ आहियं ॥

अकथायं यथाख्यातं
छुमत्स्थस्य जिनस्य वा ।
एतत् चय-रिक्तकरं
चारित्रं भवत्याख्यातम् ॥

३३—पाँचवाँ-यथाख्यात-चारित्र कथाय रहित होता है । यह छुमत्स्थ और केवली दोनों के होता है । ये सभी चारित्र कर्म-संबन्धको रित्त करते हैं, इसीलिए इन्हें चारित्र कहा जाता है ।

३४—तवो य दुविहो वृत्तो
बाहिरब्भन्तरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वृत्तो
एवमब्भन्तरो तवो ॥

तपसव द्विविधमुक्तं
बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
बाह्यं परविधमुक्तं
एवमाभ्यन्तरं तपः ॥

३४—तप दो प्रकार का कहा है—बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य-तप छह प्रकार का कहा है । इसी प्रकार आभ्यन्तर-तप भी छह प्रकार का है ।

१. च (अ. उ. श्रु.) ।

२. सामाहयं च (उ. श्रु.) ।

मोक्षमार्ग-गति (मोक्ष-मार्ग-गति)

३७६

अव्ययन २८ : श्लोक ३५-३६

३५—नाणेण जाणई भावे
दंसणेण य सदहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ^१
तवेण परिसज्झई ॥

ज्ञानेन जानाति भावान्
दंसनेन च श्रद्धते ।
चरित्रेण निगृह्णाति
तपसा परिशुध्यति ॥

३५—जीव ज्ञान से पदार्थों को जानता
है, दंसने से श्रद्धा करता है, चरित्र से निग्रह
करता है और तप से शुद्ध होता है ।

३६—खवेत्ता पुव्वकम्माहं
संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा
पक्कमन्ति महिसिणो ॥
—ति वेमि ।

अपयित्वा पूर्व-कर्माणि
संयमेन तपसा च ।
सर्व-दुःख-प्रहाणार्थाः
प्रकामन्ति महर्षयः ॥
—इति अबोधि ।

३६—सर्व दुःखों से मुक्ति पाने का लक्ष्य
रखने वाले महर्षि संयम और तप के द्वारा
पूर्व-कर्मों का अन्त कर सिद्धि को प्राप्त होते हैं ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सगुणतीसहस्रं अज्ज्ञवर्णः :
सम्मतपरक्रमे

एकोनत्रिंश अध्ययनः :
सम्यक्त्व-पराक्रम

आस्तुष्ट

इस अध्ययन का नाम 'सम्मतपराक्रमे'—'सम्यक्त्व-पराक्रम' है। इससे सम्यक्त्व में पराक्रम करने की दिशा मिलती है, इसलिए यह 'सम्यक्त्व-पराक्रम' गुण-निष्पन्न नाम है। निर्युक्तिकार के अनुसार 'सम्यक्त्व-पराक्रम' आदि पद में है, इसलिए इसका नाम 'सम्यक्त्व-पराक्रम' हुआ है।^१ उनके अभिमत में इसका गुण-निष्पन्न नाम 'अप्रमाद-भृत' है।^२ कुछ आचार्य इसे 'वीतराग-भृत' भी कहते हैं।^३

प्रस्तुत अध्ययन में ७१ प्रश्न और उत्तर हैं। उनमें साधना-पद्धति का बहुत सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। साधना के सूत्रों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१—संवेग (१)^४

२—निर्वेद (२)

३—धर्म-श्रद्धा (३)

४—शुश्रूषा—सेवा (४), वैद्यावृत्त्य (४३)

५—आलोचना (५)

६—निन्दा (६)

७—गर्ह (७)

८—आवश्यक-कर्म—

सामायिक (८), चतुर्विंशतिस्तव (९), वन्दना (१०), प्रतिक्रमण (११), कायोत्सर्ग (१२), प्रत्याख्यान (१३), स्तव-स्तुति (१४)

९—प्रायश्चित्त (१६)

१०—क्षमा-याचना (१७)

११—स्वाध्याय (१८)—

वाचना (१९), प्रतिप्रश्न (२०), परिवर्तना (२१), अनुप्रेक्षा (२२), धर्म-कथा (२४), श्रुताराधना (२५), काल-प्रतिलेखन (१५)

१२—मानसिक अनुशासन—

रुकाग्र-मन-सन्निवेश (२५), मनो-गुति (५३), मन-समाधारणता (५६), भाव-सत्यता (५०)

१—उत्तराख्यपन निष्ठुलि, भाषा ५०३ :

आयाणपण्येयं, सम्मतपराक्रमंति अशक्यं ।

२—बही, भाषा ५०६ :

सम्मतसप्यमाओ, इहमशक्यमंति बणिजो जेणं ।

तम्हेयं अशक्यं, भायणं भायमाय सुअं ॥

३—बही, भाषा ५०३ :

..... एणे पुण्ण बीयरामसुयं ।

४—कोष्ठकों के अक्षर के अङ्क सूत्र संध्या के सूत्रक हैं ।

१३—वाथिक अनुशासन—

वचो-गुप्ति (५४), वचन-समाधारणता (५७)

१४—काथिक अनुशासन—

करण-सत्यता (५१), काय-गुप्ति (५५), काय-समाधारणता (५८)

१५—योग-सत्य (५३)

१६—कषाय-विजय—

क्रोध-विजय (६७), मान-विजय (६८), माया-विजय (६९), लोभ-विजय (७०), क्षान्ति (७६), मुक्ति (४७), आर्जव (४८), मार्दव (४९), वीतरागता (४५), राग, द्वेष और मिथ्यादर्शन-विजय (७१)

१७—सम्पन्नता—

सर्वगुण-सम्पन्नता (४४), ज्ञान-सम्पन्नता (५९), दर्शन-सम्पन्नता (६०), चारित्र्य-सम्पन्नता (६१)

१८—इन्द्रिय-निग्रह—

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह (६३), चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह (६३), घ्राणेन्द्रिय-निग्रह (६४), रसनेन्द्रिय-निग्रह (६५), स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह (६६)

१९—प्रत्याख्यान—

सम्भोग-प्रत्याख्यान (३३), उपधि-प्रत्याख्यान (३४), आह्वार-प्रत्याख्यान (३५), कषाय-प्रत्याख्यान (३६), योग-प्रत्याख्यान (३७), शरीर-प्रत्याख्यान (३८), सहाय-प्रत्याख्यान (३९), भक्त-प्रत्याख्यान (४०), सद्भाव-प्रत्याख्यान (४१)

३०—संयम (३६)

३१—तप (३०)

३२—विशुद्धि (३८)

३३—सुखासक्ति का त्याग (३९)

३४—अप्रतिबद्धता (३०)

३५—विवेकशयनाशन (३१)

३६—विनिवर्तना (३२)

३७—प्रतिरूपता (४३)

जिस प्रकार पातञ्जल योग-दर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, ईश्वर-प्रणिधान, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम के परिणाम बतलाए गए हैं^१, उसी प्रकार यहाँ संवेग आदि के परिणाम बतलाए गए हैं ।

संवेग के परिणाम—

(१) अनुत्तर धर्म-श्रद्धा की प्राप्ति ।

(२) अनुत्तर धर्म-श्रद्धा से तीव्र संवेग की प्राप्ति ।

(३) तीव्रतम (अनन्तानुबन्धी) क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय ।

(४) मिथ्यात्व-कर्म का अपुनर्बन्ध ।

(५) मिथ्यात्व-विशुद्धि ।

(६) उसी जन्म में या तीसरे जन्म में मुक्ति । (सू० १)

निर्वेद के परिणाम—

- (१) काम-भोगों के प्राप्ति अनासक्त-भाव ।
- (२) इन्द्रियों के विषयों में विरक्ति ।
- (३) आरम्भ-परित्याग ।
- (४) संसार-मार्ग का विच्छेद और मोक्ष-मार्ग का स्वीकरण । (सू० २)

धर्म-ब्रह्मा के परिणाम

- (१) सुख-सुविधा के प्राप्ति विरक्ति ।
- (२) अनगार-धर्म का स्वीकरण ।
- (३) क्षेदन-क्षेदन आदि शारीरिक और संयोग-विषय आदि मानसिक दुःखों का उच्छेद ।
- (४) निर्बोध-सुख की प्राप्ति । (सू० ३)

गुरु और साधमिकों की सेवा के परिणाम—

- (१) विनय-प्रतिपत्ति—आवश्यक कर्तव्यों का पालन ।
- (२) अनाशान्तनशूलता—गुरुजनों की अवज्ञा आदि से दूर रहने की मनोवृत्ति ।
- (३) दुर्गा का निरोध ।
- (४) गुण-आहिता, गुण-प्रकाशन, भक्ति और बहुमान की मनोवृत्ति का विकास ।
- (५) सुगति की ओर प्रयाण ।
- (६) विनय-हेतुक ज्ञान आदि की प्राप्ति ।
- (७) दूसरों की सेवा-धर्म में प्रवृत्त करना । (सू० ४)

आलोचना के परिणाम—

- (१) आन्तरिक शक्तियों की धिकित्ता ।
- (२) सरल मनोभाव की विशेष उपलब्धि ।
- (३) सौवर्तर विकारों से दूर रहने की क्षमता और पूर्व-संचित विकार के संस्कारों का विलय । (सू० ५)

आत्म-निन्दा के परिणाम—

- (१) पश्चात्ताप-पूर्ण मनोभाव ।
- (२) अमूल-पूर्व विशुद्धि की परिणाम-धारा का प्रादुर्भाव ।
- (३) मोह का विलय । (सू० ६)

आत्म-गर्हा के परिणाम—

- (१) अपने लिए अवज्ञा-पूर्ण वातावरण का निर्माण ।
- (२) अप्रशस्त आचरण से निवृत्ति ।
- (३) ज्ञान आदि के आवरण का विलय । (सू० ७)

सामायिक का परिणाम—

- (१) विषमता-पूर्ण मनोभाव (सावद्य प्रवृत्ति) की विरति । (सू० ८)

बभुविश्लि-स्तव का परिणाम—

- (१) दर्शन की विशुद्धि । (सू० ९)

वन्दना के परिणाम—

- (१) नोच गोत्र-कर्म का क्षय और उच्य गोत्र-कर्म का अर्जन ।
- (२) सौभाग्य—लोक-प्रियता ।
- (३) अनुल्लेखनीय आज्ञा को प्राप्ति ।
- (४) अनुकूल परिस्थिति । (सू० १०)

प्रतिक्रमण के परिणाम—

- (१) त्रत ने होने वाले वेदों का निरोध ।
- (२) चारित्र्य के धर्मों का परिमार्जन ।
- (३) आठ प्रवचन-माताओं के प्रति जागरूकता ।
- (४) अप्रयत्न—संयमलौक्यता ।
- (५) मानसिक निमलता । (सू० ११)

कायोत्सर्ग के परिणाम—

- (१) अलिखार का विशेषण ।
- (२) हृदय को स्वस्थता और भार-हीनता ।
- (३) प्रशस्त-ध्यान की उपलब्धि । (सू० १२)

प्रत्याख्यान का परिणाम—

- (१) आश्रय-निरोध । (सू० १३)

स्तव-स्तुति-मंगल के परिणाम—

- (१) बोधि-लाम ।
- (२) अन्त क्रिया—मुक्ति ।
- (३) स्वर्ग-गमन । (सू० १४)

काल-प्रतिलेखना का परिणाम—

- (१) ज्ञानावरण कर्म का विलय । (सू० १५)

प्रायश्चित्तकरण के परिणाम—

- (१) पाप-कर्म का विशेषण ।
- (२) दोष-विशुद्धि ।
- (३) मार्ग और मार्ग-फल—ज्ञान को प्राप्ति ।
- (४) आधार और आधार-फल—आत्म-स्वतंत्रता की आराधना । (सू० १६)

क्षमा-याचना के परिणाम—

- (१) आह्लाद-पूर्ण मनोभाव ।
- (२) सब के प्रति मैत्रीभाव ।
- (३) मन को निमलता ।
- (४) अमय । (सू० १७)

स्वाध्याय का परिणाम—

- (१) ज्ञानावरण कर्म का विलय । (सू० १८)

वाचना—अध्यापन के परिणाम—

- (१) निर्जरा—संस्कार-क्षय ।
- (२) श्रुत की अनाशातना—ज्ञान का विनय ।
- (३) तौर्ध-धर्म का अवलम्बन—धर्म-परम्परा की अविच्छिन्नता ।
- (४) चरम साध्य की तपलब्धि । (सू० १६)

प्रतिप्रश्न के परिणाम—

- (१) सूत्र, अर्थ और तदुभय की विशुद्धि—संशय, विपर्यय आदि का निराकरण ।
- (२) काङ्क्षा—मोहनोय कर्म का विच्छेद । (सू० २०)

परावर्तना के परिणाम—

- (१) स्मृत की पुष्टि और विस्मृत की याद ।
- (२) व्यंजन-लब्धि—पदानुसारिणी बुद्धि का विकास । (सू० २१)

अनुप्रेक्षा के परिणाम—

- (१) दृढ़ कर्मे का शिथिलीकरण, दीर्घकालीन कर्म-स्थिति का संक्षेपोकरण और तीव्र अनुभाव का मन्दीकरण ।
- (२) असातवेदनीय कर्म का अनुपपन्न ।
- (३) संसार से शीघ्र मुक्ति । (सू० २३)

धर्म-कथा के परिणाम—

- (१) निर्जरा ।
- (२) प्रवचन—धर्म-शासन की प्रभावना ।
- (३) कुशल-कर्मे का अर्जन । (सू० २३)

श्रुताराधना के परिणाम—

- (१) अज्ञान का क्षय ।
- (२) वलेश-ज्ञानि । (सू० २४)

मन को एकाग्र करने का परिणाम—

- (१) शिव-निरोध । (सू० २५)

संयम का परिणाम—

- (१) अनाश्रव—आश्रव-निरोध । (सूत्र २६)

तप का परिणाम—

- (१) व्यवदान—कर्म-निर्जरा । (सू० २७)

व्यवदान के परिणाम—

- (१) अक्रिया—प्रवृत्ति-निरोध ।
- (२) सर्व दुःख-मुक्ति । (सू० २८)

सुख-स्पृहा त्यागने के परिणाम—

- (१) अनुत्सुक मनोभाव ।
- (२) अनुकम्पा-पूर्ण मनोभाव ।
- (३) प्रशान्तता ।

(४) शोक-रहित मनोभाव ।

(५) चारित्र्य को विकृत करने वाले मोह का विलय । (सू० २६)

अप्रतिबद्धता—मानसिक अनासक्ति के परिणाम—

(१) निःसंगता—निर्लेपता ।

(२) चिन्तन की एकान्तता ।

(३) प्रतिपाल अनासक्ति । (सू० ३०)

विविक्त शयनासन के परिणाम—

(१) चारित्र्य की सुरक्षा ।

(२) विविक्त-आहार—विकृति-रहित भोजन ।

(३) निस्पृहता ।

(४) एकान्त उमण ।

(५) कर्म-ग्रन्थि का मोक्ष । (सू० ३१)

विनिवर्त्तना- विषयों से मन को संतुष्ट करने के परिणाम—

(१) पापाचरण के प्रति अनुत्साह ।

(२) अशुभ संस्कारों के विलय का प्रयत्न ।

(३) संसार की पार-प्राप्ति । (सू० ३२)

संभोग (संभोगी-भोजन) प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) परावलम्बन से मुक्ति ।

(२) प्रवृत्तियों का मोक्ष की ओर केन्द्रीकरण ।

(३) अपने काम में सन्तुष्टि और परलोक की ओर निस्पृहता ।

(४) दूसरी सुख-शाय्या की प्राप्ति । (सू० ३३)

उपधि-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) प्रतिलेखना आदि के द्वारा होने वाली स्वाध्याय की क्षति से बचाव ।

(२) वस्त्र की अभिलाषा से मुक्ति ।

(३) उपधि के बिना होने वाले संकलेश का अभाव । (सू० ३४)

आहार-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) जीने के मोह से मुक्ति ।

(२) आहार के बिना होने वाले संकलेश का अभाव । (सू० ३५)

कषाय-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) कीलरागाता ।

(२) सुख-दुःख में सम रहने की स्थिति की उपलब्धि । (सू० ३६)

योग-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) स्थिरता ।

(२) नवीन कर्म का अग्रहण और पूर्वाजित कर्म का विलय । (सू० ३७)

शरीर-प्रत्याख्यान के परिणाम—

- (१) आत्मा का पूर्णोदय ।
- (२) लोकाग्र-स्थिति ।
- (३) परम सुख की प्राप्ति । (सू० ३८)

सहाय-प्रत्याख्यान के परिणाम—

- (१) अकेलेपन को प्राप्ति ।
- (२) कलह आदि से मुक्ति ।
- (३) संयम, संवर और समाधि की विशिष्ट उपलब्धि । (सू० ३९)

भक्त-प्रत्याख्यान—अनशन का परिणाम—

- (१) जन्म-परम्परा का अन्तीकरण । (सू० ४०)

सद्भावना-प्रत्याख्यान—पूर्ण संवर के परिणाम—

- (१) अनिवृत्ति—मन-वचन और काया की प्रवृत्ति का सर्वथा और सर्वदा अभाव ।
- (२) अघाति-कर्म का विलय ।
- (३) सर्व दुःख-मुक्ति । (सू० ४१)

प्रतिरूपता अचेलकता के परिणाम—

- (१) लाघव ।
- (२) अप्रमाद ।
- (३) प्रकट लिंग होना ।
- (४) प्रशस्त लिंग होना ।
- (५) विद्युद्ग सम्यक्त्व ।
- (६) सत्त्व और सामंति को प्राप्त करना ।
- (७) सर्वत्र विश्वसनीय होना ।
- (८) अप्रतिलेखना ।
- (९) जितेन्द्रियता ।
- (१०) विपुल तप सहित होना—परीषद्-सहिष्णु होना । (सू० ४२)

वैद्यावृत्त्य का परिणाम—

- (१) धर्म-शासन के सर्वोच्च पद तीर्थकरत्व की प्राप्ति । (सू० ४३)

सर्व-गुण सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) अपुनरावृत्ति—मोक्ष की प्राप्ति ।
- (२) शारीरिक और मानसिक दुःखों से पूर्ण मुक्ति । (सू० ४४)

कीतरागता के परिणाम—

- (१) स्नेह और पुष्पा के बन्धन का विच्छेद ।
- (२) प्रिय शब्द आदि इन्द्रिय-विषयों में विरक्ति । (सू० ४५)

क्षान्ति—सहिष्णुता का परिणाम—

- (१) परीषद्-विजय । (सू० ४६)

मुक्ति के परिणाम—

- (१) आकषिण्य ।
- (२) अर्ध-तुल्य व्यक्तियों के द्वारा अस्पृष्टणीयता । (सू० ४७)

ऋजुता के परिणाम—

- (१) काया की सरलता ।
- (२) भावों की सरलता ।
- (३) भाषा की सरलता ।
- (४) अविसंवादन—अव्यंचना-वृत्ति । (सू० ४८)

मृदुता के परिणाम—

- (१) अनुसृत मनोभाव ।
- (२) आठ मद-स्थानों पर विजय । (सू० ४९)

भाव-सत्य के परिणाम—

- (१) भाव-विशुद्धि ।
- (२) अहं-धर्म की आराधना ।
- (३) परलोक धर्म की आराधना । (सू० ५०)

करण-सत्य के परिणाम—

- (१) कार्यजा शक्ति की प्राप्ति ।
- (२) कथनी और करनी का सामंजस्य । (सू० ५१)

योग-सत्य का परिणाम—

- (१) मानसिक, वायिक और कायिक प्रवृत्ति की विशुद्धि । (सू० ५२)

मनो-गुणि के परिणाम—

- (१) रकाग्रता ।
- (२) संयम की आराधना (सू० ५३)

वचन-गुणि के परिणाम—

- (१) विकार-शून्यता या विचार-शून्यता ।
- (२) अध्यात्म-योग और ध्यान की प्राप्ति । (सू० ५४)

काय-गुणि के परिणाम—

- (१) संवर ।
- (२) पापाश्रव का निरोध । (सू० ५५)

मन-समाधारणा के परिणाम—

- (१) रकाग्रता ।
- (२) ज्ञान की विशिष्ट क्षमता ।
- (३) सम्यक्त्व की विशुद्धि और मिथ्यात्व का क्षय । (सू० ५६)

वचन-समाधारणा के परिणाम—

- (१) वायिक सम्यग्-दर्शन की विशुद्धि ।
- (२) सुलभ-बोधिता की प्राप्ति और दुर्लभ-बोधिता का क्षय । (सू० ५७)

काय-समाधारणा के परिणाम—

- (१) चारित्र-विशुद्धि ।
- (२) वीतराग-चारित्र की प्राप्ति ।
- (३) भवोपग्राही कर्मों का क्षय ।
- (४) सर्व-दुःखों से मुक्ति । (सू० ५८)

ज्ञान-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) पदार्थ-बोध ।
- (२) पारगमिता ।
- (३) विशिष्ट विनय आदि की प्राप्ति ।
- (४) प्रामाणिकता । (सू० ५९)

दर्शन-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) भव-मिथ्यात्व का ज्ञेय ।
- (२) सत्तत्त्व प्रकाश ।
- (३) ज्ञान और दर्शन की उत्तरोत्तर विशुद्धि । (सू० ६०)

चारित्र-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) अप्रकम्प-दशा की प्राप्ति ।
- (२) भवोपग्राही कर्मों का विलय ।
- (३) मुक्ति । (सू० ६१)

भोक्तेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय शब्दों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) शब्द-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६२)

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय रूपों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) रूप-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६३)

श्रोणोन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय गन्धों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) गन्ध-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६४)

रसनेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय रसों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) रस-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६५)

स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय स्पर्शों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) स्पर्श-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६६) ।

क्रोध-विवक्षय के परिणाम—

- (१) क्षमा ।
- (२) क्रोध-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित क्रोध-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ६७)

मान-विजय के परिणाम—

(१) मार्दव ।

(२) मान-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित मान-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ६८)

माया-विजय के परिणाम—

(१) आर्जव ।

(२) माया-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित माया-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ६९)

लोभ-विजय के परिणाम—

(१) सन्तोष ।

(२) लोभ-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित लोभ-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ७०)

प्रेम, द्वेष, और मिथ्या-दर्शन विजय के परिणाम—

(१) ज्ञान, दर्शन और चादिन्न-आराधना की तत्परता ।

(२) मुक्ति । (सू० ७१)

सगुणतीसहस्रं अज्ज्ञयणं : एकोनत्रिंश अध्ययन

सम्मतपरक्रमः : सम्यक्त्व-पराक्रम

मूल

सू०१—सुयं मे आउसं ! तेणं
भगवया एवमक्खायं—इह खलु
सम्मत-परक्रमे 'नाम अज्झयणे'^१
समणेणं भगवया महावीरेण कासवेणं
पवेइए जं सम्मं सद्दिता पत्तियाइत्ता
रोयइत्ता फासइत्ता पालइत्ता तीरइत्ता
किट्टइत्ता सोहइत्ता आराहइत्ता
आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवाः
सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति
परिनिव्वायन्ति सब्बदुक्खाणमन्तं
करेन्ति । तस्स णं अयमट्ठे
एवमाहिज्जइ तं जहा—

संवेगे १

निव्वेए २

धम्मसद्धा ३

गुरुसाहम्मियसुस्सुसणया ४

आलोयणया ५

निन्दणया ६

गरहणया ७

सामाइए ८

चउखीसत्थए ९

वन्दणए १०

संस्कृत छाया

सू०१—श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन
भगवतेवमाख्यातम् । इह खलु सम्यक्त्व-
पराक्रमं नामाध्ययनं भगवतः भगवता
महावीरेण काश्यपेन प्रवेक्षितम् ।
यत्सम्यक् श्रद्धाय, प्रतीत्य, रोचयित्वा,
स्पृष्ट्वा, पालयित्वा, तीरयित्वा,
कीर्तयित्वा, शोधयित्वा, आराध्य,
आत्मया अनुपाल्य, बहवो जीवाः
सिध्यन्ति, बुध्यन्ते, मुच्यन्ते, परि-
निर्वाणन्ति, सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति ।
तस्य अयमर्थः एवमाख्यायते, तद्
यथा—

संवेगः १

निर्वेदः २

धर्म-श्रद्धा ३

गुरु-साधर्मिक-मुक्त्युपेक्षणम् ४

आलोक्यम् ५

निन्दनम् ६

गर्हणम् ७

सामायिकम् ८

चतुर्विंशति-स्तवः ९

वन्दनम् १०

हिन्दी अनुवाद

सू०१—आयुष्मन् ! मैंने सुना है भगवान्
ने इस प्रकार कहा है—इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में
काश्यप-गौरी धर्मण भगवान् महावीर ने
सम्यक्त्व-पराक्रम नाम का अध्ययन कहा है,
जिस पर भलीभाँति श्रद्धा कर, प्रतीति कर,
कंचि रल कर, जिसके विषय का स्पर्श कर,
स्मृति में रल कर, समग्र-रूप से हृत्पगत कर,
गुरु को पठित पाठ का निवेदन कर, गुरु के
समीप उपाशरण का शुद्धि कर, सहा अर्थ का
बोध प्राप्त कर और अहंत् की आज्ञा के अनुसार
अनुपालन कर बहुत बौध सिद्ध होते हैं, बुद्ध
होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण (शान्त)
होते हैं और सब दुःखों का अन्त करते हैं ।
सम्यक्त्व-पराक्रम का अर्थ इस प्रकार कहा
गया है । जैसे—

संवेग १

निर्वेद २

धर्म-श्रद्धा ३

गुरु और साधर्मिक की पूजना ४

आलोचना ५

निन्दा ६

गर्ही ७

सामायिक ८

चतुर्विंशति-स्तव ९

वन्दन १०

१. नाम अज्झयणे (अ, ५०) ; नामज्झयणे (स, ३) ।

२. पालइत्ता, पूइत्ता (अ) ।

३. वंदणे (अ) ।

पडिकमणे ११
 काउस्सग्गे १२
 पच्चक्खाणे १३
 थवथुइमंगले' १४
 कालपडिलेहणया १५
 पायच्छित्तकरणे १६
 खमावणया १७
 सज्जाए १८
 वायणया* १९
 पडिपुच्छणया २०
 परियट्ठणया २१
 अणुप्पेहा २२
 धम्मकहा २३
 सुयस्स आराधणया २४
 एगममणसंनिवेसणया २५
 संजमे २६
 तवे २७
 बोदाणे २८
 मुहसाए २९
 अप्पडिबद्धया ३०
 विवित्तसयणासणसेवणया ३१
 विणियट्ठणया ३२
 सम्भोगपच्चक्खाणे ३३
 उवहिपच्चक्खाणे ३४
 आहारपच्चक्खाणे ३५
 कसायपच्चक्खाणे ३६
 जोगपच्चक्खाणे ३७
 सरीरपच्चक्खाणे ३८
 सहायपच्चक्खाणे ३९

प्रतिक्रमणम् ११
 कायोत्सर्गः १२
 प्रत्याख्यानम् १३
 स्तव-स्तुति-मङ्गलम् १४
 काल-प्रतिलेखनम् १५
 प्रायश्चित्तकरणम् १६
 क्षमापनम् १७
 स्वाध्यायः १८
 वाचनम् १९
 प्रतिप्रच्छन्नम् २०
 परिबर्तनम् २१
 अनुप्रेक्षा २२
 धर्म-कथा २३
 श्रुतस्य आराधना २४
 एकाग्रमनः-सन्निवेशनम् २५
 संयमः २६
 तपः २७
 व्यवदानम् २८
 सुख-शातम् २९
 अप्रतिबद्धता ३०
 विविक्त-शयनासन-सेवनम् ३१
 विनिबर्तनम् ३२
 सम्भोग-प्रत्याख्यानम् ३३
 उपवि-प्रत्याख्यानम् ३४
 आहार-प्रत्याख्यानम् ३५
 कषाय-प्रत्याख्यानम् ३६
 योग-प्रत्याख्यानम् ३७
 शरीर-प्रत्याख्यानम् ३८
 सहाय-प्रत्याख्यानम् ३९

प्रतिक्रमण ११
 कायोत्सर्ग १२
 प्रत्याख्यान १३
 स्तव-स्तुति-मङ्गल १४
 काल-प्रतिलेखन १५
 प्रायश्चित्तकरण १६
 क्षामणा १७
 स्वाध्याय १८
 वाचना १९
 प्रतिप्रच्छन्ना २०
 परावर्तना २१
 अनुप्रेक्षा २२
 धर्म-कथा २३
 श्रुताराधना २४
 एकाग्र-मन की स्थापना २५
 संयम २६
 तप २७
 व्यवदान २८
 सुख की स्पृहा का त्याग २९
 अप्रतिबद्धता ३०
 विविक्त-शयनासन-सेवन ३१
 विनिबर्तना ३२
 सम्भोग-प्रत्याख्यान ३३
 उपवि-प्रत्याख्यान ३४
 आहार-प्रत्याख्यान ३५
 कषाय-प्रत्याख्यान ३६
 योग-प्रत्याख्यान ३७
 शरीर-प्रत्याख्यान ३८
 सहाय-प्रत्याख्यान ३९

१. थव थुइ मंगले (अ, क०) ; थण थुई मंगले (ड) ।

२. वायणाए (क०) ; वायणा (ड) ।

भक्तपञ्चक्खाणे ४०

सन्भावपञ्चक्खाणे ४१

पडिरूवया^१ ४२

वेयावुच्चे ४३

सर्वगुणसंपण्णया^२ ४४

वीयरागया ४५

खन्ती ४६

मुत्ती ४७

अज्जवे^३ ४८

मद्वे^४ ४९

भावसच्चे ५०

करणसच्चे ५१

जोगसच्चे ५२

मणगुत्तया ५३

वयगुत्तया ५४

कायगुत्तया ५५

मणसमाधारणया ५६

वयसमाधारणया ५७

कायसमाधारणया ५८

नाणसंपन्नया ५९

दंसणसंपन्नया ६०

चरित्संपन्नया ६१

सोइन्दियनिगहे ६२

चक्खिन्दियनिगहे ६३

घाणिन्दियनिगहे ६४

जिह्मिन्दियनिगहे ६५

फासिन्दियनिगहे ६६

कोह्विजए ६७

भक्त-प्रत्याख्यानम् ४०

सद्भाव-प्रत्याख्यानम् ४१

प्रतिरूपता ४२

वेयावृत्त्यम् ४३

सर्वगुण-सम्पन्नता ४४

वीतरागता ४५

क्षान्तिः ४६

मुक्तिः ४७

आर्जवम् ४८

मार्दवम् ४९

भाव-सत्यम् ५०

करण-सत्यम् ५१

योग-सत्यम् ५२

मनो-गुह्यता ५३

वाक्-गुह्यता ५४

काय-गुह्यता ५५

मनः-समाधारणम् ५६

वाक्-समाधारणम् ५७

काय-समाधारणम् ५८

ज्ञान-सम्पन्नता ५९

दर्शन-सम्पन्नता ६०

चरित्र-सम्पन्नता ६१

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रहः ६२

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहः ६३

घ्राणेन्द्रिय-निग्रहः ६४

जिह्वेन्द्रिय-निग्रहः ६५

स्पर्शेन्द्रिय-निग्रहः ६६

क्रोध-विजयः ६७

भक्त-प्रत्याख्यान ४०

सद्भाव-प्रत्याख्यान ४१

प्रतिरूपता ४२

वेयावृत्त्य ४३

सर्वगुण-सम्पन्नता ४४

वीतरागता ४५

क्षान्ति ४६

मुक्ति ४७

आर्जव ४८

मार्दव ४९

भाव-सत्य ५०

करण-सत्य ५१

योग-सत्य ५२

मनो-गुह्यता ५३

वाक्-गुह्यता ५४

काय-गुह्यता ५५

मनःसमाधारणा ५६

वाक्-समाधारणा ५७

काय-समाधारणा ५८

ज्ञान-सम्पन्नता ५९

दर्शन-सम्पन्नता ६०

चारित्र-सम्पन्नता ६१

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह ६२

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह ६३

घ्राणेन्द्रिय-निग्रह ६४

जिह्वेन्द्रिय-निग्रह ६५

स्पर्शेन्द्रिय-निग्रह ६६

क्रोध-विजय ६७

१. पडिरूवणया (५०) ।

२. 'संपुण्णया' (अ, आ, इ, उ०) ।

३. मद्वे (अ, छ०, उ०) ।

४. अज्जवे (अ, छ०, उ०) ।

माणविजए ६८
मायाविजए ६९
लोहविजए ७०
पेज्जदोसमिच्छादंसणविजए ७१
सेलेसी ७२
अकम्मया ७३

मान-विजयः ६८
माया-विजयः ६९
लोभ-विजयः ७०
प्रेयो-होव-मिथ्यादर्शन-विजयः ७१
शैलेसी ७२
अकर्मता ७३

मान-विजय ६८
माया-विजय ६९
लोभ-विजय ७०
प्रेयो-होव-मिथ्या-दर्शन विजय ७१
शैलेसी ७२
अकर्मता ७३

संवेगेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसदं जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्वेए संवेगं हव्वमागच्छइ । अणुत्तानुबन्धि-कोहमाणमायालोभे खवेइ । कम्मं न बन्धइ । तण्णइयं च णं मिच्छत्त-विसोहि काऊण दंसणाराहए भवइ । दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्जइ । सोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणे भवग्गहणं नाइकमइ ॥

सू०२—निव्वेएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

निव्वेएणं दिव्वमाणुसतेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमाणुच्छइ । सव्वविसएसु विरज्जइ सव्वविसएसु विरज्जमाण आरम्भपरिच्चायं करेइ । आरम्भपरिच्चायं करेमाणे संसारमगं वोच्छिज्जइ सिद्धिमगे पडिवन्ते य भवइ ॥

संवेगेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

संवेगेनानुत्तरां धर्म-श्रद्धां जनयति अनुत्तरया धर्म-श्रद्धया संवेगं शीघ्रमागच्छति । अनन्तानुबन्धि-क्रोध-मान-माया-लोभान् अपयति । न च कर्म न बध्नाति । तत् प्रत्ययिकां च मिथ्यात्व-विशोधिं कृत्वा दर्शना-राशको भवति । दर्शन-विशोध्य च विमुद्धया स्त्येककः तेनैव भव-ग्रहणेन सिध्यति । विशोध्य च विमुद्धः तुमीयं पुनर्भव-ग्रहणम् नातिक्रामति ॥

सू०२—निर्व्वेदेन जहन्त ! जीवः किं जनयति ?

निर्व्वेदेन विध्य-मानुष-तेरहककेषु काम-भोगेषु निर्व्वेदं शीघ्रमागच्छति । सर्व्वविषयेषु चिरञ्जयति । सर्व्वविषयेषु चिरञ्जयमानः परित्यागं करोति । आरम्भ-परित्यागं कृत्वा वह आरम्भ और क्युञ्जिज्जत्ति सिद्धि-मगं प्रतिपन्नदव भवति ॥

भन्ते ! संवेग (मोह की अमिलाया) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

संवेग से वह अनुर धर्म-श्रद्धा को प्राप्त होता है । अनुर धर्म-श्रद्धा से शीघ्र ही और अधिक संवेग को प्राप्त करता है । अनन्तानु-बन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का शय करता है । नयं कर्मों का संग्रह नहीं करता । कपाय के सीधे होने में प्रकट होने वाली मिथ्यात्व-विशुद्धि का दर्शन (सम्यक् भ्रद्धान) की आराधना करता है । दर्शन-विशोधि के विशुद्ध होने पर कई एक जीव उसी जन्म से सिद्ध हो जाते हैं और कई उसके विशुद्ध होने पर तीसरे जन्म का अतिक्रमण नहीं करते—उसमें अवश्य ही सिद्ध हो जाते हैं ।

सू०२—भन्ते ! निर्व्वेद (भव-वैराग्य) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

निर्व्वेद से वह देव, मनुष्य और तिर्य्यक सम्बन्धी काम-भोगों में लाली को प्राप्त होता है । सब विषयों से चिरक हो जाता है । सब विषयों से चिरक होता हुआ वह आरम्भ और परिग्रह का परित्याग करता है । आरम्भ और परिग्रह का परित्याग करता हुआ संसार-मार्ग का विच्छेद करता है और सिद्धि-मार्ग को प्राप्त होता है ।

१. नयं च कम्म (अ, आ, इ) ।

२. आरम्भपरिग्गहा (अ) ।

सू० ३—धम्मसद्धाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

धम्मसद्धाए णं सायासोक्खेसु
रज्जमाणे विरज्जइ। अगरधम्मं च
णं चयइ अणगारे णं जीवे सारीर-
माणसाणं दुक्खाणं छेयणभेयण-
संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ अवावाहं
च सुहं निव्वेत्तेइ^१ ॥

सू० ४—गुरुसाहम्मियसुस्सुसणयाए
णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

गुरुसाहम्मियमुस्सुसणयाए णं
विणयपडिवत्ति जणयइ। 'विणय-
पडिवन्ते य ण'^२ जीवे अणच्चासायण-
सोले नेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्स-
देवदोगईओ निरुम्भइ। वणसंजलण-
भत्तिबहुमाणयाए मणुस्सदेवसोगईओ
निबन्धइ सिद्धि सोमगइ च विसोहेइ।
पसत्थाइ च णं विणयमूलाइ सव्व-
कजाइ साहेइ। अन्ते य बह्वे जीवे
विणइत्ता भवइ ॥

सू० ३—धर्म-धट्ठया भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

धर्म-धट्ठया सात-सोरूपेषु रज्ज्यमानः
विरज्यति। अगर-धर्मं च त्यजति।
अनगारो जीवः शारीर-मानसानां
दुःखानां छेदन-भेदन-संयोगादीनां
व्युत्पत्त्येवं करोति अव्याबाधं च सुखं
निर्वर्तयति ॥

सू० ४—गुरु-साधमिक-शुश्रूषणया
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

गुरु-साधमिक शुश्रूषणया विनय-
प्रतिपत्तिं जनयति। विनय-प्रतिपन्नइव
जीवः अन्त्याशातनशांलो नैरविक-
तियेधोनिक-मनुष्य-देव दुर्गती
निरुगट्ठि। वणं-संजलन-भत्ति-
बहुमानेन मनुष्य-देव-सुगती
निबध्नाति। सिद्धिं सुगतिं च
विशोषयति। प्रशस्तानि च विनयमूलानि
सर्वकार्याणि साधयति। अन्याइव
बहून् जीवान् विनेता भवति ॥

सू० ३—भन्ते ! धर्म-धट्ठा से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

धर्म-धट्ठा से वह वैषयिक सुखों की
वासक्ति को छोड़ विरक्त हो जाता है, अगर-
धर्म—गृहस्थ की त्याग देता है। वह अनगार
होकर छेदन-भेदन, संयोग-वियोग आदि
शारीरिक और मानसिक दुःखों का विच्छेद
करता है और निर्बाध (बाधा-रहित) सुख
को प्राप्त करता है।

सू० ४—भन्ते ! गुरु और साधमिक की
शुश्रूषा (पर्युपासना) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

गुरु और साधमिक की शुश्रूषा से वह
विनय को प्राप्त होता है। विनय को प्राप्त
करने वाला व्यक्ति गुरु का श्विनय या
परिवाद करने वाला नहीं होता, इसलिए वह
नैरविक, निर्वैग-यानिक, मनुष्य और देव
सम्बन्धी दुर्गति का निरोध करता है। श्लाघा,
गुण-प्रकाशन, भक्ति और बहुमान के द्वारा
मनुष्य और देव-सम्बन्धी सुगति से सम्बन्ध
जोड़ता है। सिद्धि और सुगति का मार्ग
प्रशस्त करता है। विनय-मूलक सब प्रशस्त
कार्यों को सिद्ध करता है और दूसरे बहुत
व्यक्तियों को विनय के पथ पर ले आता है।

१. निष्कृति (ऋ०)।

२. पडिवन्त्यणं (ऋ०)।

सू०५—आलोयणाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

आलोयणाए णं मायानियाण-
मिच्छादंसणसङ्गाणं मोक्खमग्ग-
विग्घाणं अणत्तसंसारवद्धणाणं^१
उद्धरणं करेइ । उज्जुभावं च^२
जणयइ । 'उज्जुभावपडिवन्ने य णं'^३
जीवे अमाई इत्थीवेयनपुंसगवेयं च
न बन्धइ । पुव्ववद्धं च णं निज्जरेइ ॥

सू०५—आलोचनया भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

आलोचनया माया-निदान-मिथ्या-
दर्शन-शल्यानां मोक्ष-मार्ग-विघ्नाना-
मनन्त-सत्सार-बद्धं तानामुद्धरणं करोति ।
ऋजुभावं च जनयति । प्रतिपन्नजु-
भावाच्च जीवोऽमायो जी-वेदं तपुंसक-
वेदं च न बध्नाति । पूर्वबद्धं च
निर्जरयति ॥

सू०५—भन्ते ! आलोचना (गुरु के सम्मुख
अपनी भूलों का निवेदन करने) से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

आलोचना से वह अनन्त संसार को बढ़ाने
वाले, मोक्ष-मार्ग में विघ्न उत्पन्न करने वाले,
माया, निदान तथा मिथ्या-दर्शन-शल्य को
निकाल फेरना है और ऋजु-भाव को प्राप्त
होना है । ऋजु-भाव को प्राप्त हुआ व्यक्ति
अमायी होता है, इसलिए वह स्त्री-वेद और
नपुंसक-वेद कर्म का बन्ध नहीं करता और यदि वे
पहले बन्ध हुए हों तो उनका क्षय कर देता है ।

सू०६—निन्दणयाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

निन्दणयाए णं पच्छाणुतावं
जणयइ । पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे
कर्णमुणसेट्ठि^४ पडिवज्जइ ।
कर्णमुणसेट्ठि 'पडिवन्ने य'^५ णं
अणगारे मोहणिज्जं कम्म उग्घाएइ ॥

सू०६—निन्दनेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

निन्दनेन पश्चादनुतापं जनयति ।
पश्चादनुतापेन विरज्यमानः कर्ण-
गुण-श्रेणं प्रतिपद्यते । कर्ण-गुण-
श्रेणं प्रतिपन्नश्चानगारो मोहनीयं
कर्मोद्घातयति ॥

सू०६—भन्ते ! निन्दा (अपना भूलों के
प्रति अन्याय का भाव प्रकट करने) से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

निन्दा से वह पश्चात्ताप का प्राप्त होता
है । उसके द्वारा विरज्य होता हुआ मोक्ष का
क्षेत्र करने में समर्थ परिणाम प्राप्त को प्राप्त
करता है । इसी परिणाम-प्राप्त को प्राप्त
हुआ अनगार मोहनीय-कर्म का क्षीय कर
देता है ।

सू०७—गरहणयाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

गरहणयाए णं अपुरक्कारं
जणयइ । अपुरक्कारमाए णं जीवे
अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ^६
पसत्थजोगपडिवन्ने य णं अणगारे
अणत्तघाटपज्जवे खवेइ ॥

सू०७—गर्हणेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

गर्हणेनापुरस्कारं जनयति ।
अपुरस्कारगतो जीवोऽप्रवास्तेभ्यो
योगेभ्यो निवर्तते, प्रतिपन्न-प्रशस्त-
योगश्च अनगारोऽनन्त-धाति-पर्यवसानं
क्षययति ॥

सू०७—भन्ते ! गरी (दूसरों के समक्ष
अपनी भूलों को प्रकट करने) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

गरी से वह अन्याय का प्राप्त होता है ।
अन्याय को प्राप्त हुआ वह अप्रशस्त प्रवृत्तियों
में निवृत्त होता है और प्रशस्त प्रवृत्तियों को
अंगीकार करता है । वैसा अनगार आत्मा के
अनन्त-विकास का प्राप्त करने वाले ज्ञानावरण
आदि कर्मों की परिणतियों का क्षय करता है ।

१. 'बद्धमाणाण (अ) ।

२. च णं (उ, ऋ०, स) ।

३. 'पडिवन्नणं (ऋ०) ।

४. 'सेट्ठी (अ) ; 'सेट्ठी (हृ०) ।

५. पडिवन्ने य (ऋ०) ; पडिवन्ने (उ, अ) ।

६. नियत्तेइ पसत्थे य पवत्तइ (उ, ऋ०) ।

सू०८—सामादिएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
सामादिएणं सावज्जजोगविरइं
जणयइ ॥

सू०८—सामायिकेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?
सामायिकेन सावद्य-योग-विरति
जनयति ॥

सू०८—भन्ते ! सामायिक (समभाव
की साधना) से जीव क्या प्राप्त करता है ?
सामायिक से वह अस्तु प्रवृत्ति की विरति
को प्राप्त होता है ।

सू०९—चउव्वीसत्यएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
चउव्वीसत्यएणं दंसणविसोहिं
जणयइ ॥

सू०९—चतुर्विंशति-स्तवेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
चतुर्विंशति-स्तवेन दर्शन-विशोधिं
जनयति ॥

सू०९—भन्ते ! चतुर्विंशति-स्तव (चौबीस
नीयंकरों की स्तुति करने) से जीव क्या
प्राप्त करता है ?
चतुर्विंशति-स्तव से वह सम्यक्त्व की
विशुद्धि को प्राप्त होता है ।

सू०१०—वन्दणएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
वन्दणएणं तीयागायं कम्मं
खवेइ । उच्चागायं निबन्धइ । सोहमं
च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ
दाहिणभावं च णं जणयइ ॥

सू०१० वन्दनकेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?
वन्दनकेन नीचेर्गोत्रं कम्मं
क्षपयति । उच्चैर्गोत्रं निबध्नाति ।
सौभाग्यं चाऽऽप्नोति । आशा-फल-
निर्बन्धयति । दक्षिण-भावं च जनयति ॥

सू०१०—भन्ते ! वन्दना से जीव क्या
प्राप्त करता है ?
वन्दना से वह नीच-कुल में उत्पन्न करने
वाले कर्मों का क्षीण करता है । ऊँचे-कुल
में उत्पन्न करने वाले कर्म का वर्जन करता
है । जिसकी आशा को लोग शिरोधार्य करें
वैसा अबाधित सौभाग्य और जनता की
अनूकूल भावना को प्राप्त होता है ।

सू०११—पडिक्कमणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
पडिक्कमणेणं वयच्छिदाहं पिहेइ ।
पिहियवयच्छिदे पुण जीवे निरुद्धासवे
असबलचरित्ते अट्टसु पवयणमायासु
उवउत्ते अपुहत्ते^१ सुप्पणिहिए^२
विहरइ ॥

सू०११—प्रतिक्रमणेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
प्रतिक्रमणेन व्रत-च्छिदाणि पिब-
घाति । पिहित-व्रत-च्छिन्नः पुनर्जीवो
निरुद्धाश्वोऽसबल-चरित्रः अष्टसु
प्रवचन-मातृषु उपयुक्तोऽपृथक्त्वः
सुप्रणिहितो विहरति ॥

सू०११—भन्ते ! प्रतिक्रमण से जीव
क्या प्राप्त करता है ?
प्रतिक्रमण से वह व्रत के छेदों को दब
देता है । जिसने व्रत के छेदों को भर दिया
वैसा जीव आश्वों को रोक देता है, चारित्र्य के
घब्रों को मिटा देता है, आठ-प्रवचन माताओं
में सावधान हो जाता है, संयम में एक-रस
हो जाता है और भली-भाँति समाधिस्थ होकर
विहार करता है ।

१. अपुहत्ते (४० पा०) ।

२. सुप्पणिहिहिए (४० पा०) ; अप्पणिहिहिए (अ, व, ४०) ।

सू०१२—काउस्सग्गेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

काउस्सग्गेणं तीयपटुप्पन्नं
पायच्छित्तं विसोहेइ । विमुद्धपाय-
च्छित्ते य जीवे निब्बुयहियए
'ओहरियभारो व्व' भारवहे
पसत्थज्जाणोवगए^१ सुहंसुहेणं
विहरइ ॥

सू०१३—पच्चक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं
निरुम्भइ^२ ॥

सू०१४—थवथुइमंगलेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
थवथुइमंगलेणं नाणदंसणचरित्त-
बोहिलाभं जणयइ । नाणदंसण-
चरित्तबोहिलाभसंपन्ने य णं जीवे
अन्तकिरियं कप्पविमाणोवपत्तिगं
आराहणं आराहेइ ॥

सू०१५—कालपडिलेहणयाए
णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
कालपडिलेहणयाए णं नाणा-
वरणज्जं कम्मं खवेइ ॥

सू०१२—कायोस्सग्गेणं भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
कायोस्सग्गेणं अतीत-प्रत्युत्पन्नं
प्रायश्चित्तं विशोधयति । विशुद्ध-
प्रायश्चित्तश्च जीवो निर्वृत्त-हृदयोऽपहृत
भार इव भारवहः प्रशस्तध्यानोपगतः
सुखं सुखेन विहरति ॥

सू०१३—प्रत्याख्यानो न भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
प्रत्याख्यानो नाश्रय-द्वाराणि
निरुणधि ॥

सू०१४—स्तव-स्तुति-मङ्गलेन
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?
स्तव-स्तुति-मङ्गलेन ज्ञान-दर्शन-
चारित्र-बोधि-लाभं जनयति । ज्ञान-
दर्शन-चारित्र-बोधि-लाभ - सम्पन्नश्च
जीवोऽन्त-क्रियां कल्पविमानोपपत्तिका-
माराधनामाराधयति ॥

सू०१५—काल-प्रतिलेखनेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
काल-प्रतिलेखनेन ज्ञानावरणीयं
कर्म क्षययति ॥

सू०१२—भन्ते ! कायोस्सर्गं (ध्यान की
मुद्रा) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

कायोस्सर्ग से वह अतीत और वर्तमान
के प्रायश्चित्तोचित कार्यों का विशोधन करता
है । ऐसा करने वाला व्यक्ति भार को नीचे
रख देने वाले भार-वाहक की भाँति स्वस्थ
हृदय वाला—हल्का हो जाता है और प्रशस्त-
ध्यान में लीन होकर उत्तरोत्तर बढ़ने वाले
सुखपूर्वक विहार करता है ।

सू०१३—भन्ते ! प्रत्याख्यान से जीव क्या
प्राप्त करता है ?
प्रत्याख्यान से वह आश्रय-द्वारों (कर्म-
बन्धन के हेतुओं) का निरोध करता है ।

सू०१४—भन्ते ! स्तव और स्तुति रूप
मंगल से जीव क्या प्राप्त करता है ?
स्तव और स्तुति रूप मंगल ने वह ज्ञान,
दर्शन और चारित्र की बोधि का लाभ करता
है । ज्ञान, दर्शन और चारित्र के बोधि-लाभ
से सम्पन्न व्यक्ति मोक्ष-प्राप्ति या वैमानिक देवों
में उत्थन होने योग्य आराधना करता है ।

सू०१५—भन्ते ! काल-प्रतिलेखना (स्वा-
ध्याय आदि के उपयुक्त समय का ज्ञान करने)
से जीव क्या प्राप्त करता है ?
काल-प्रतिलेखना से वह ज्ञानावरणीय कर्म
को क्षीय करता है ।

१. ^० भरुव (उ, मू०) ।

२. ^० उक्काणम्भाइ (मू० पा०) ।

३. निरुम्भइ । पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ । इच्छानिरोहं गए व णं जीवे सम्पक्खेइ विभीकस्यहे सीइयए विहरइ । (इ, उ) ।

सू० १६—पायच्छित्तकरणेण
भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

पायच्छित्तकरणेण पावकम्म-
विसोहि जणयइ निरुदयारे यावि
भवइ। सम्मं च णं पायच्छित्तं
पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च
विसोहेइ आयारं च आयारफलं च
आराहेइ ॥

सू० १७—खमावणयाए णं
भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

खमावणयाए णं पट्हायणभावं^१
जणयइ। पट्हायणभावमुवगए य
सव्वपाणभूयजोवसत्तेसु मित्तीभाव-
मुपाएइ। मित्तीभावमुवगए यावि
जीवे भावविताहि काऊण निवभए
भवइ ॥

सू० १८—सज्जाएण भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

सज्जाएण नाणावरणज्जं कम्मं
खवेइ ॥

सू० १९—वायणाए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

वायणाए णं निज्जरं जणयइ।
सुयस्स य 'अणासायणाए वट्टए'^२।
सुयस्स अणासायणाए वट्टमाणे
तित्थधम्मं अवलम्बइ। तित्थधम्मं
अवलम्बमाणे महाजिज्जरे
महापज्जवसाणे भवइ ॥

सू० १६—प्रायश्चित्त-करणेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

प्रायश्चित्त-करणेन पाप-कर्म-
विशोधि जनयति। निरतिचारदवापि
भवति। सम्यक् च प्रायश्चित्तं
प्रतिपद्यमानो मार्गं च मार्ग-फलं च
विशोधयति। आचारउवाचार-
फलद्वाराधयति ॥

सू० १७—क्षमणया भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

भन्ते ! क्षमणया प्रह्लादन-भावं
जनयति। प्रह्लादन-भावमुपगतद्वय
सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वेषु मित्री-
भावमुत्पादयति मित्री-भाव-
मुपगतद्वयापि जीवः भाव-विशोधि
कृत्वा निर्भयो भवति ॥

सू० १८—स्वाध्यायेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

स्वाध्यायेन ज्ञानावरणाय कर्म
क्षययति ॥

सू० १९—वाचनया भवन्त ! जीवः
किं जनयति ?

वाचनया निर्जरां जनयति।
श्रुतस्य अनाशातनायां वर्तते। श्रुतस्य
अनाशातनायां वर्तमानः तीर्थ-
धर्ममवलम्बते। तीर्थ-धर्ममवलम्बमानो
महानिर्जरो महापयःवसानश्च भवति ॥

सू० १६—भन्ते ! प्रायश्चित्त करने से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

प्रायश्चित्त करने से वह पाप-कर्म को
विशुद्धि करता है और निरतिचार हो जाता
है। सम्यक्-प्रकार से प्रायश्चित्त करने वाला
मार्ग (सम्यक्त्व) और मार्ग-फल (ज्ञान)
को निर्मल करता है तथा आचार (चारित्र्य)
और आचार-फल (मुक्ति) की वाराधना
करता है।

सू० १७—भन्ते ! क्षमा करने से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

क्षमा करने से वह मानसिक प्रसन्नता
को प्राप्त होता है। मानसिक प्रसन्नता को
प्राप्त हुआ व्यक्ति सब प्राण, भूत, जीव और
सत्त्वों के साथ मैत्री-भाव उत्पन्न करता है।
मैत्री-भाव को प्राप्त हुआ जीव भावना को
विशुद्ध बनाकर निर्भय हो जाता है।

सू० १८—भन्ते ! स्वाध्याय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

स्वाध्याय से वह ज्ञानावरणाय कर्म को
क्षीण करता है।

सू० १९—भन्ते ! वाचना (अध्यापन)
से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वाचना से वह कर्मों को क्षीण करता है।
श्रुत की उपेक्षा के दोष से बच जाता है। इस
उपेक्षा के दोष से बचने वाला तीर्थ-धर्म का
अवलम्बन करता है—वह गणधर की भक्ति
शिष्यों को श्रुत देने में प्रवृत्त होता है। तीर्थ-
धर्म का अवलम्बन करने वाला कर्मों और
संसार का अन्त करने वाला होता है।

१. पट्हाएणंत भावं (वृ०) ; पट्हायणभाव (वृ० पा०)।

२. अनुसज्जाए वट्टइ (वृ० पा०)।

सू० २०—पडिपुच्छणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पडिपुच्छणयाए णं सुत्तत्थतदुभयाइं विसोहेइ । कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिन्दइ ॥

सू० २१—परियट्ठणाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

परियट्ठणाए णं वंजणाइं जणयइ वंजणलद्धिं च उप्पाएइ ॥

सू० २२—अणुप्पेहाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अणुप्पेहाए णं आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडोओ षणियबन्धनबद्धाओ सिद्धिलबन्धनबद्धाओ पकरेइ । दोहकालद्विइयाओ हस्सकालद्विइयाओ पकरेइ । तिव्वाणुभावाओ मन्दाणुभावाओ पकरेइ । 'बहुपए-सग्गाओ अपपएसग्गाओ पकरेइ' । आउयं च णं कम्मं सिय बन्धइ सिय नो बन्धइ । 'असायावेप्रणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ' । अणाइयं च णं अणवदग्गं दोहमद्धं चाउरत्तं संसार-कन्तारं खिप्पामेव वीइवयइ ॥

सू० २०—प्रतिप्रच्छनेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

प्रतिप्रच्छनेन सूत्रार्थतदुभयानि विज्ञोषयति । काङ्क्षा-मोहनीयं कर्म व्युच्छिनति ॥

सू० २१—परिवर्तनया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

परिवर्तनया व्यञ्जनानि जनयति । व्यञ्जन-लब्धि-वोत्पादयति ॥

सू० २२—अनुप्रेक्षया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

अनुप्रेक्षया आयुष्क-वर्जाः मग्न-कर्म-प्रकृतीः दृढ़-बन्धन-बद्धाः शिथिल-बन्धन-बद्धाः प्रकरोति । दीर्घ-काल-स्थितिकाः ह्रस्व-काल-स्थितिकाः प्रकरोति । तीवानुभावा मन्दानुभावाः प्रकरोति । बहु-प्रदेशका अल्प-प्रदेशकाः प्रकरोति । आयुष्कञ्च कर्म स्याद्बध्नाति स्यान्नो बध्नाति । असात-वेदनीयञ्च कर्म नो भूयोभूय उपचिनोति । अनाविकं च अनवदग्गं दीर्घाश्रितं चतुरन्तं संसार-कान्तारं क्षिप्रमेव व्यतिव्रजति ॥

सू० २०—भन्ते ! प्रतिप्रश्न करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रतिप्रश्न करने से वह सूत्र, अर्थ और उन दोनों से सम्बन्धित सन्देहों का निवर्तन करता है और कांक्षा-मोहनीय कर्म का विनाश करता है ।

सू० २१—भन्ते ! परावर्तना (पठित-पाठ के पुरावर्तन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

परावर्तना में वह अक्षरों को उत्पन्न करता है -- मूल को परिपक्व और विस्मृत को याद करता है तथा व्यञ्जन-लब्धि (वर्ण-विद्या) को प्राप्त होता है ।

सू० २२—भन्ते ! अनुप्रेक्षा (अर्थ-चिन्तन) में जीव क्या प्राप्त करता है ?

अनुप्रेक्षा में वह आयुष्-कर्म को छोड़ कर गेप सात वर्गों को ग्राह-बन्धन में बन्धी हुई प्रकृतियों को शिथिल-बन्धन वाली कर देता है, उनको दीर्घ-कालीन स्थिति को अल्प-कालीन कर देता है, उनके तीव्र अनुभव को मन्द कर देता है । उनके बहु-प्रदेशों को अल्प-प्रदेशों में बदल देता है । आयुष्-कर्म का बन्धन कदाचित् करता है, कदाचित् नहीं भी करता । असात-वेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता और अनावि-अनन्त लब्धे-मार्ग वाली तथा चतुरन्ति-व्य वार अस्तों वाली संसार अटवी को तुरन्त ही पार कर जाता है ।

१. बहुपएसग्गाओ अपपएसग्गाओ पकरेइ (वृ० पा०) ।

२. साया वेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ (वृ० पा०) ।

सू० २३—धम्मकहाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

धम्मकहाए णं 'निज्जरं
जणयइ'^१ । 'धम्मकहाए णं पवयणं
पभावेइ'^२ । पवयणपभावे णं जीवे
आगमिस्स भद्ताए कम्मं
निबन्धइ ॥

सू० २४—सुयस्स आराहणयाए
णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सुयस्स आराहणयाएणं अन्ताणं
खवेइ न य संकल्लिस्सइ ॥

सू० २५—एगममणसंनिवेशेण-
याए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
एगममणसंनिवेशेणयाए णं
चित्तिनिराहं करेइ ॥

सू० २६—संजमेणं भन्ते ! जीवे
किं जणयइ ?
संजमेणं अणप्हृतं जणयइ ॥

सू० २७—तवेणं भन्ते ! जीवे
किं जणयइ ?

तवेणं वोदाणं जणयइ ॥

सू० २३—धर्म-कथया भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

धर्म-कथया निज्जरां जनयति !
धर्म-कथया प्रवचनं प्रभावयति ।
प्रवचन-प्रभावको जीवः आगमिष्यतः
भवतया कर्म निबध्नाति ॥

सू० २४—श्रुतस्य आराधनया
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

श्रुतस्य आराधनया अज्ञानं
क्षययति, न च संक्लिश्यते ॥

सू० २५—एकाग्र-मनः-संनिवेशेन
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?
एकाग्र-मनः-संनिवेशेन चित्त-
निरोधं करोति ॥

सू० २६—संयमेन भवन्त ! जीवः
किं जनयति ?
संयमेन अनास्तबत्वं जनयति ॥

सू० २७—तपसा भवन्त ! जीवः
किं जनयति ?

तपसा व्यवधानं जनयति ॥

२३—भन्ते ! धर्म-कथा से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

धर्म-कथा से वह प्रवचन की प्रभावना
करता है । प्रवचन की प्रभावना करने वाला
जीव भविष्य में कल्याणकारी फल देने वाले
कर्मों का वर्जन करता है ।

सू० २४—भन्ते ! श्रुत की आराधना से
जीव क्या प्राप्त करता है ?

श्रुत की आराधना से अज्ञान का क्षय
करता है और राग-द्वेष आदि से उत्पन्न
होने वाले मानसिक संक्लेशों से बच जाता है ।

सू० २५—भन्ते ! एक अग्र (आलम्बन)
पर मन को स्थापित करने से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

एकाग्र-मन की स्थापना से वह चित्त का
निरोध करता है ।

सू० २६—भन्ते ! संयम से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

संयम से वह आश्रय का निरोध
करता है ।

सू० २७—भन्ते ! तप से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

तप से वह व्यवधान—पूर्व-संचित कर्मों
को क्षीण कर विशुद्धि को प्राप्त होता है ।

१. पवयणं पभावेइ (वृ० पा०) ।

२. × (वृ०) ।

सू० २८—बोदाणेण भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

बोदाणेण अकिरियं जणयइ ।
अकिरियाए भविता तओ पच्छा
सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ
सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सू० २९—सुहसाएण^१ भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ ।
अणुस्सुयाए णं जीवे अणुकम्पए
अणुवभडे विगयसंगे चरित्तमोहणिज्जं
कम्मं खवेइ ॥

सू० ३०—अप्पडिबद्धयाए णं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अप्पडिबद्धयाए णं निस्संगत्तं
जणयइ । निस्संगत्तेणं^२ जीवे एगे
एगग्गचित्ते दिया य राओ य
असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावि
विहरइ ॥

सू० ३१—वित्तसयणासण-
याए^३ णं भन्ते ! जीवे किं
जणयइ ?

वित्तसयणासणयाए णं
चरित्तमुत्ते जणयइ । चरित्तमुत्ते य
णं जीवे वित्ताहारे दडचरित्ते
एगन्तरा मोक्खभावपडिवन्ते
अट्ठविहकम्मगण्ठि निज्जेइ ॥

सू० २८—व्यवदानेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

व्यवदानेन अक्रियां जनयति ।
अक्रियाको भूत्वा ततः पदवान्
सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति,
सर्व-दुःखानामन्तं करोति ॥

सू० २९—सुख-शान्तेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

सुख-शान्तेन अनुत्सुकत्वं जनयति ।
अनुत्सुको जीवोऽनुकम्पकोऽनुवभटो
विगत-शोकद्वारित्र-मोहनीयं कर्म
अपयति ॥

सू० ३०—अप्रतिबद्धतया भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

अप्रतिबद्धतया निस्सङ्गत्वं
जनयति । निस्सङ्गत्वेन जीवः एकः
एकाग्र-चित्तो विवा च रात्रौ
वासज्जनसप्रतिबद्धश्चापि विहरति ॥

सू० ३१—विविक्त-शयनासनेन
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

विविक्त-शयनासनेन चरित्र-गुणं
जनयति चरित्र-गुणद्वय जीवः
विविक्ताहारः दृढ-चारित्रः एकान्त-रतः
मोक्ष-भाव-प्रतिपन्नः अष्टविध-
कर्मसंनिधिं निजयति ॥

सू० २८—भन्ते ! व्यवदान से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

व्यवदान से वह अक्रिया (मन, वचन और
शरीर की प्रवृत्ति के पूर्ण निरोध) को प्राप्त
होता है, वह अक्रियावान होकर सिद्ध होता
है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण
होता है और दुःखों का अन्त करता है ।

सू० २९—भन्ते ! सुख की स्पृहा का
निवारण करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सुख की स्पृहा का निवारण करने से
वह विषयों के प्रति अनुत्सुक-भाव को प्राप्त
करता है । विषयों के प्रति अनुत्सुक जीव
अनुकम्पा करने वाला, प्रशान्त और शोक मुक्त
होकर चरित्र को विकृत करने वाले मोह-कर्म
का क्षय करता है ।

सू० ३०—भन्ते ! अप्रतिबद्धता (मन
की अनावृत्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

अप्रतिबद्धता से वह असंग हो जाता
है—बाह्य संसर्गों से मुक्त हो जाना है ।
असंगता से जीव अकेला (राग-द्वेष रहित),
एकाग्र-चित्त वाला, दिन और रात बाह्य-
संसर्गों को छोड़ता हुआ प्रतिबन्ध रहित होकर
विहार करता है ।

सू० ३१—भन्ते ! विविक्त-शयनासन के
सेवन से जीव क्या प्राप्त करता है ?

विविक्त-शयनासन के सेवन से वह चारित्र
की रक्षा को प्राप्त होता है । चारित्र की
सुरक्षा करने वाला जीव पौष्टिक आहार का
वर्जन करने वाला, दृढ़ चरित्र वाला, एकान्त
में रत, अन्तःकरण से मोक्ष साधना में लगा
हुआ खाद्य प्रकार के कर्मों की गाँठ को तोड़
देता है ।

१. सहसाइयाएणं (ह०) ; सहसायाएणं, सहसाएणं (ह० पा०) ; सहसायाएणं (अ, का, इ, उ, ऋ०) ।

२. निस्संगत्तं वाणं (उ, ऋ०) ।

३. 'सयणासनेवयायाए (का, इ) ।

सू० ३२—विणियट्ठयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

विणियट्ठयाए णं पावकम्माणं अकरणयाए अम्भुदेइ । पुव्ववद्धानं य निज्जरणयाए तं नियत्तेइ तवो पच्छा चाउरन्तं संसारकन्तारं वीइवयइ ॥

सू० ३३—संभोगपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संभोगपच्चक्खाणेणं आलम्बणां खवेइ । निरालम्बणस्स य आययद्विया जोगा भवन्ति । सएणं लाभेणं संतुसइ^१ परलाभं 'नो आसाएइ'^२ नो तक्केइ नो पोहेइ नो पत्थेइ नो अभिलसइ । परलाभं अणासायमाणं अतक्केमाणे अपोहेमाणे अपत्थेमाणे अणभिलसमाणे दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥

सू० ३४—उवहिपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उवहिपच्चक्खाणेणं अपलिमन्थं जणयइ । निरुवहिए णं जीवे निक्कले^३ उवहिमन्तरेण य न संक्किल्लिस्सइ ॥

सू० ३२—विनिवर्तनेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

विनिवर्तनेन पाप-कर्मणां अकरणेन अम्भुतिप्लवे । पूर्व-वद्धानां च निज्जरणेन तत् निवर्तयति । ततः पश्चात् चतुरन्तं संसार-कान्तारं व्यतिश्रजति ॥

सू० ३३—संभोग-प्रत्याख्यानं भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

संभोग-प्रत्याख्यानेन आलम्बनानि क्षपयति । निरालम्बनस्य च आयता-धिकारयोगाः भवन्ति । स्वकेन लाभेन सन्तुष्यति । परलाभं 'नो' आस्वादयति नो तर्कयति, नो स्पृहयति, नो प्राप्ययति, नो अभिलषति । परलाभमनास्वादयन्, अतर्कयन्, अस्पृहयन्, अप्राप्ययन्, अनभिलषन्, द्वितीयां सुख-शय्यामुपसम्पद्य विहरति ॥

सू० ३४—उपधि-प्रत्याख्यानं भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

उपधि-प्रत्याख्यानेन अपरिमन्थं जनयति । निरुपधिकी जीवो निष्काङ्क्षः उपधिमन्तरेण च न संक्लियति ॥

सू० ३२—भन्ते ! विनिवर्तना (इन्द्रिय और मन को विषयों से दूर रखने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

विनिवर्तना से वह नए सिरे से पाप-कर्मों को नहीं करने के लिए तत्पर रहता है और पूर्व-अज्ञित पाप-कर्मों का क्षय कर देता है—इस प्रकार वह पाप-कर्म का विनाश कर देता है । उसको पश्चात् चार-गति रूप चार अन्तों वाली संसार अटकों को पार कर जाता है ।

सू० ३३—भन्ते ! संभोग-प्रत्याख्यान (मण्दली-भोजन) का त्याग करने वाला जीव क्या प्राप्त करता है ?

संभोग-प्रत्याख्यान से वह पराबलम्बन को छोड़ता है । उस पराबलम्बन को छोड़ने वाले मुनि के सारे प्रयत्न मोक्ष की सिद्धि के लिए होते हैं । वह भिक्षा में स्वयं को जो कुछ मिलता है उसी में सन्तुष्ट हो जाता है । दूसरे मुनियों को मिली हुई भिक्षा में आस्वाद नहीं लेता, उतकी स्पृहा नहीं करता, प्राथना नहीं करता और अभिलाषा नहीं करता । दूसरे को मिली हुई भिक्षा में आस्वाद न लेता हुआ उसका ताक न रखता हुआ, स्पृहा न करता हुआ, प्राथना न करता हुआ और अभिलाषा न करता हुआ दूसरी सुख-शय्या को प्राप्त कर विहार करता है ।

सू० ३४—भन्ते ! उपधि (वस्त्र आदि उपकरणों) के प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उपधि के प्रत्याख्यान से वह स्वाध्याय-ध्यान में होने वाली क्षति से बच जाता है । उपधि रहित मुनि अभिलाषा से मुक्त होकर उपधि के अभाव में मानसिक संकल्पा को प्राप्त नहीं होता ।

१. तुस्सइ (उ, ऋ०) ।

२. × (उ, ऋ०, ए०) ।

३. 'निक्कले' एतच्च पदं क्वचिदेव दृश्यते (वृ०) ।

सू० ३५—आहारपचक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

आहारपचक्खाणेणं 'जीविया-
संसपओगं' वोच्छिन्दइ । जीविया-
संसपओगं वोच्छिन्दिता जीवे
आहारमन्तरेणं न संकिलिस्सइ ॥

सू० ३५—आहार-प्रत्याख्यानेन
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

आहार-प्रत्याख्यानेन जीवितांसा-
प्रयोगं व्युच्छिन्नति । जीवितांसा-
प्रयोगं व्यवच्छिद्य जीवः आहार-
मन्तरेण न संकिलयति ॥

सू० ३५—भन्ते ! आहार-प्रत्याख्यान
(सद्यो भक्त-पान का त्याग करने) से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

आहार-प्रत्याख्यान से वह जीवित रहने
की अभिलाषा के प्रयोग का विच्छेद कर देता
है । जीवित रहने को अभिलाषा का विच्छेद
कर देने वाला व्यक्ति आहार के बिना (तपस्या
आदि में) संकलेश को प्राप्त नहीं होता ।

सू० ३६—कसायपचक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

कसायपचक्खाणेणं वीयरगभावं
जणयइ । वीयरगभावपडिवन्ते वि-
यणं जीवे सममुहदुक्खे भवइ ॥

सू० ३६—कषाय-प्रत्याख्यानेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

कषाय-प्रत्याख्यानेन बीतराग-
भावं जनयति बीतरागभाव-प्रतिपन्नोपि-
च जीवः सम-मुल्ल-दुःखो भवति ॥

सू० ३६—भन्ते ! कषाय (क्रोध, मान,
माया और लोभ) के प्रत्याख्यान से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

कषाय-प्रत्याख्यान से वह बीतराग-भाव
को प्राप्त होता है । बीतराग-भाव को प्राप्त
हुआ जीव मुल्ल-दुःख में सम हो जाता है ।

सू० ३७—जोगपचक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

जोगपचक्खाणेणं अजोगत्तं
जणयइ । अजोगी^१ णं जीवे नवं
कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं निज्जरेइ ॥

सू० ३७—योग-प्रत्याख्यानेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

योग-प्रत्याख्यानेन अयोगत्वं
जनयति । अयोगी जीवो नवं कर्म न
बध्नाति, पूर्व-बद्धं निर्जरेयति ॥

सू० ३७—भन्ते ! योग (शरीर, बन्धन
और मन की प्रवृत्ति) के प्रत्याख्यान से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

योग-प्रत्याख्यान से वह अयोगत्व (सर्वथा
अप्रकम्प भाव) को प्राप्त होता है । अयोगी
जीव नए कर्मों का अर्जन नहीं करता और
पूर्वाजित कर्मों को क्षोभ कर देता है ।

सू० ३८—सरीरपचक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

सरीरपचक्खाणेणं सिद्धासिक्ख-
गुणत्तणं^२ निव्वत्तेइ । सिद्धासिक्ख-
गुणसंपन्ने यणं जीवे लोमस्समुवगए
परमसुही भवइ ॥

सू० ३८—शरीर-प्रत्याख्यानेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

शरीर-प्रत्याख्यानेन सिद्धासिक्ख-
गुणत्वं निर्वातयति । सिद्धासिक्ख-
गुण-सम्पन्नत्व-बोधो लोकाग्रमुक्तः
परम-मुक्ती भवति ॥

सू० ३८—भन्ते ! शरीर के प्रत्याख्यान
(देह-मुक्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

शरीर के प्रत्याख्यान से वह मुक्त-
आत्माओं के वतिष्ठाय गुणों को प्राप्त करता
है, मुक्त-आत्माओं के वतिष्ठाय गुणों को प्राप्त
करने वाला जीव लोक के तिसर में पूर्णकर
परम मुक्ती हो जाता है ।

१. जीवितास विप्यओगं (वू० वा०) ।

२. वोच्छिन्नति (वू० वा०) ।

३. अजोगीय (वू०) ।

४. " लणमुत्तणं (वू० वा०) ।

सम्भक्तपरकम् (सम्यक्त्व-पराक्रम)

४०७

अध्ययन २६ : सूत्र ३६-४१

सू० ३९—सहायपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सहायपच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ । एगीभावभूए वि' य णं' जीवे एगमं भावेमाणे अप्पसट्ठे' अप्पभंभे अप्पकलहे अप्पकसाए अप्पतुमंतुमे संजमबहुले संवरबहुले समाहिए यावि भवइ ॥

सू० ३९—सहाय-प्रत्याख्यानेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

सहाय-प्रत्याख्यानेन एकीभावं जनयति । एकीभाव-भूतोऽपि च जीवः ऐकाग्र्यं भावयन् अल्प-शब्दः अल्प-कलहः अल्प-कलहः अल्प-कषायः अल्प-स्वभावः संयम-बहुलः संवर-बहुलः समाहितत्वापि भवति ॥

सू० ३९—भन्ते ! सहाय-प्रत्याख्यान (दूसरों का सहयोग न देने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सहाय-प्रत्याख्यान से वह अकेलेपन को प्राप्त होता है । अकेलेपन को प्राप्त हुआ जीव एकत्व के आलम्बन का अभ्यास करता हुआ कोलाहल पूर्ण शब्दों से मुक्त, वाचिक-कलह से मुक्त, शराह से मुक्त, कषाय से मुक्त, दुःख से मुक्त, संयम बहुल, संवर बहुल और समाहित हो जाता है ।

सू० ४०—भक्तपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ॥

भक्तपच्चक्खाणेणं अणेगाइं भवसयाइं निरुम्भइ ॥

सू० ४०—भक्त-प्रत्याख्यानेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

भक्त-प्रत्याख्यानेन अनेकानि भव-शतानि निरुपदि ॥

सू० ४०—भन्ते ! भक्त-प्रत्याख्यान (अनशन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

भक्त-प्रत्याख्यान से वह अनेक संकटों जन्म-मरणों का निरोध करता है ।

सू० ४१—सम्भावपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सम्भावपच्चक्खाणेणं अनियट्ठि' जणयइ । अनियट्ठिपडिवन्ते' य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खवेइ तं जहा वेयणिज्जं आउयं नामं गोयं । तओ' पच्छा सिज्फइ, जुज्फइ, मुच्चइ, परिनिब्बाएइ सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सू० ४१—सम्भाव-प्रत्याख्यानेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

सम्भाव-प्रत्याख्यानेन अनिर्बुत्ति जनयति । अनिर्बुत्तिप्रतिपन्नमानगारः चतुरः केवलिकम्मं शान्ं क्षययति, तत्र यथा—वेयणीयं, आयुः नाम गोत्रम् । ततः पश्चात् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति, तत्र-दुःखाणाकल्पं करोति ॥

सू० ४१—भन्ते ! सम्भाव-प्रत्याख्यान (पूर्ण संवर रूप शीलेषी) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सम्भाव-प्रत्याख्यान से वह अनिर्बुत्ति को प्राप्त होता है—किर मन, भाणी और शरीर की प्रवृत्ति नहीं करता । अनिर्बुत्ति को प्राप्त हुआ अनगार केवलिकम्म (केवली के विद्यमान) बार कर्मों, जैसे—वेयणीय, आयुष नाम और गोत्र को शीघ्र कर देता है । उसके पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब दुःखों का अन्त करता है ।

१. × (४, ५०) ।

२. × (४, ५०) ।

३. × (५०) ।

४. निरुद्धि (५० वा०) ।

५. निरुद्धि (५० वा०) ।

६. × (४, ५०) ।

सू० ४२—पडिरूवयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ । लहुभूए णं^१ जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विमुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्वपाणभूय-जीवसत्तेसु वीससणिज्जखूवे अप्पडिलेहे^२ जिइन्दिए विउलतव-समिइसमन्ताए यावि भवइ ॥

सू० ४३—वेयावच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? वेयावच्चेणं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं निबन्धइ ॥

सू० ४४—सव्वगुणसंपन्नायाए^३ णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? सव्वगुणसंपन्नायाए णं अपुणरावत्तिं जणयइ । अपुणरावत्तिं पत्तए य^४ णं जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खणं नो भागो भवइ ॥

सू० ४५—वीयरागयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? वीयरागयाएणं नेहाणुबन्धणाणि तण्हाणुबन्धणाणि^५ य वोच्छिन्दइ मणुत्तेसु^६ सट्ठफरिसरखूबन्धनेसु चेव विरज्जइ ॥

सू० ४२—प्रतिरूपतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

प्रतिरूपतया साधयित्वा जनयति । लघुभूतो जीवः अप्रमत्तः प्रकट-लिंगः प्रवस्त-लिंग विमुद्ध-सम्यक्त्वः समाप्त-सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वेषु बिम्बवसनीय-रूपोऽल्प-प्रतिलेखो जितेन्द्रियो विपुल-तपः-समिति-समन्वागतदद्यापि भवति ॥

सू० ४३—वैयावृत्त्येन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

वैयावृत्त्येन तीर्थङ्कर-नाम-गोत्रं कर्म निबध्नाति ॥

सू० ४४—सर्व-गुण-सम्पन्नतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

सर्व-गुण-सम्पन्नतया अपुनरावृत्तिं जनयति । अपुनरावृत्तिं प्राप्तश्च जीवः शारीर-मानसानां दुःखानां नो भागो भवति ॥

सू० ४५—वीतरागतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

वीतरागतया स्नेहाणुबन्धनानि तण्हाणुबन्धनानि च व्युच्छिन्ति । मनोमेषु शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धेषु चेव विरज्यते ॥

सू० ४२—भन्ते ! प्रतिरूपता (जिनकल्पिक जैसे आचार का पालन करने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रतिरूपता से वह हृत्केपन को प्राप्त होता है । उपकरणों के अल्पीकरण से हल्का बना हुआ जीव अप्रमत्त, प्रकटलिंग वाला, प्रवस्त-लिंग वाला, विमुद्ध सम्यक्त्व वाला, पराक्रम और समिति से परिपूर्ण, सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए विद्वसनीय रूप वाला, अल्प-प्रतिलेखन वाला, जितेन्द्रिय तथा विपुल तप और समितियों का सर्वत्र प्रयोग करने वाला होता है ।

सू० ४३—भन्ते ! वैयावृत्त्य (साधु-संघ की सेवा करने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वैयावृत्त्य से वह तीर्थङ्कर नाम-गोत्र का अर्जन करता है ।

सू० ४४—भन्ते ! सर्व-गुण-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सर्व-गुण-सम्पन्नता से वह अपुनरावृत्ति (सृजित) को प्राप्त होता है । अपुनरावृत्ति को प्राप्त करने वाला जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता ।

सू० ४५—भन्ते ! वीतरागता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वीतरागता से वह स्नेह के अनुबन्धनों और तण्हा के अनुबन्धनों का विच्छेद करता है तथा मनोस और अमनोज शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से विरक्त हो जाता है ।

१ स णं (उ, ऋ०) ।

२ अप्पपडिलेहे (वृ० पा०) ।

३ संपुणयाए (अ, आ) ।

४ × (उ, ऋ०) ।

५ बंधणाणि तण्हाबंधणाणि (वृ०) ; नेहाणुबन्धणाणि, तण्हाणुबन्धणाणि (वृ० पा०) ;

६ मणुत्तामणुत्तेसु (अ) ।

सू० ४६—खन्तीए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

खन्तीए णं परीसहे जिणइ ॥

सू० ४७—मुत्तीए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

मुत्तीए णं अकिचणं जणयइ ।
अकिचणे य जीवे अत्यल्लोणं^१
अपत्यजिणो भवइ ॥

सू० ४८—अज्वयाए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

अज्वयाए णं काउज्जुयं
भावुज्जुयं भासुज्जुयं अविस्वायणं
जणयइ । अविस्वायणसंपन्नाए णं
जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥

सू० ४९—मह्वयाए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

मह्वयाए णं 'अणुस्सियत्तं
जणयइ । अणुस्सियत्ते णं जीवे
मिउमद्वसंपन्ने अट्ठ मयट्ठाणाइं
निट्ठवेइ'^२ ॥

सू० ५०—भावसच्चेणं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

भावसच्चेणं भावविसोहिं
जणयइ । भावविसोहोए वट्ठमाणे
जीवे अरहत्तपन्नत्तस्स धम्मस्स
आराहणयाए अभुट्ठेइ । अरहत्त-
पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए^३
अबुद्धिता 'परलोकधम्मस्स आराहए'^४
हवइ ॥

सू० ४६—आन्त्या भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

आन्त्या परीवहान् जयति ॥

सू० ४७—मुक्स्या भवन्त ! जीवः
किं जनयति ?

मुक्स्या आकिचन्यं जनयति ।
अकिचनश्च जीवो अर्थ-लोलानां
अप्रायणीयो भवति ॥

सू० ४८—आज्जेव भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

आज्जेव कायजुक्तां, भावजुक्तां
भावजुक्तां, अविस्वादनं जनयति ।
अविस्वादन-सम्पन्नतया जाबोधम-
स्थाराधको भवति ॥

सू० ४९—मार्दवेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

मार्दवेन अनुत्सिक्तत्वं जनयति ।
अनुत्सिक्तत्वेन जीवो मृदु-मार्दव-
सम्पन्नः अष्ट मव-स्थानानि
निष्ठापयति ॥

सू० ५०—भाव-सत्येन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

भाव-सत्येन भाव-विशोधिं
जनयति । भाव-विशोधो वर्तमानो
जीवोऽर्हत्-प्रज्ञस्य धर्मस्थाराधनायै
अभ्युत्तिष्ठते । अर्हत्-प्रज्ञस्य धर्म-
स्थाराधनायै अभ्युत्थाय परलोक-
धर्मस्थाराधको भवति ॥

सू० ४६—भन्ते ! अमा से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

अमा से वह परीवहो पर विजय प्राप्त कर
लेता है ।

सू० ४७—भन्ते ! मुक्ति (निर्लोभता)
से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मुक्ति से वह अकिचनता को प्राप्त होता
है । अकिचन जीव अर्थ-लोलुप पुरुषों के द्वारा
अप्रायणीय होता है—उसके पास कोई याचना
नहीं रहती ।

सू० ४८—भन्ते ! मृदुता से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

मृदुता से वह काया की सरलता,
मन की सरलता, भाषा की सरलता
और अवबक वृत्ति को प्राप्त होता है । अवबक
वृत्ति से सम्पन्न जीव धर्म का आराधक
होता है ।

सू० ४९—भन्ते ! मृदुता से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

मृदुता से वह अनुदत्त मनोभाव को प्राप्त
करता है । अनुदत्त मनोभाव वाला जीव मृदु-
मार्दव से सम्पन्न होकर मद के आठ स्थानों
का विनाश कर देता है ।

सू० ५०—भन्ते ! भाव-सत्य (अन्तर-
आत्मा की सच्चाई) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

भाव-सत्य से वह भाव की विगुद्धि को
प्राप्त होता है । भाव-विगुद्धि में वर्तमान जीव
अर्हत्-प्रज्ञ धर्म की आराधना के लिए मंद्यार
होता है । अर्हत्-प्रज्ञ धर्म की आराधना में
त्पन्न होकर वह परलोक-धर्म का आराधक
होता है ।

१. अत्यल्लोळानं पुरिसाणं (आ, इ, उ, ख०, स) ।

२. अणुत्थअसं जणइ । अणुत्थअपरणं जीवे महवयाएणं मिउ० (अ) ; महवयाए णं मिउ० (उ, ख०, ख०) ; मह० अणुत्थियसं जणोति,
अणुत्थियसे णं जीवे मिउ० (ख० पा०) ।

३. आराहणयाए णं (ख०) ।

४. परलोगाराहए (ख० पा०) ।

सू० ५१—करणसच्चेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

करणसच्चेणं करणसत्ति
जणयइ । करणसच्चे वट्टमाणे जीवे
जहावाई तहाकारी यावि भवइ ॥

सू० ५२—जोगसच्चेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
जोगसच्चेणं जोगं विसाहेइ ॥

सू० ५३—मणगुत्तयाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
मणगुत्तयाए णं जीवे एग्गमं
जणयइ । एग्गमचित्ते णं जीवे मणगुत्ते
संजमाराहए भवइ ॥

सू० ५४—वयगुत्तयाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
वयगुत्तयाए णं निव्वियारं^१
जणयइ । 'निव्वियारेणं जीवे धइगुत्ते
अज्झणजोगज्झाणगुत्ते'^२ यावि
भवइ ॥

सू० ५५—कायगुत्तयाए णं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
कायगुत्तयाए णं संवरं जणयइ ।
संवरेणं कायगुत्ते पुणे पावासवनिरोहं
करेइ ॥

सू० ५१—करण-सत्येन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
करण-सत्येन करण-शक्तिं जन-
यति । करण-सत्येन वर्तमानो जीवो
यथावादी तथाकारी चापि भवति ॥

सू० ५२—योग-सत्येन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
योग-सत्येन योगान् विशोधयति ॥

सू० ५३—मनो-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
मनो-गुप्ततया ऐकाग्र्यं जनयति ।
एकाग्र-चित्तो जीवो मनो-गुप्तः
संयमाराधको भवति ॥

सू० ५४—वाग्-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
वाग्-गुप्ततया निर्विकारं जनयति ।
निर्विकारो जीवो वाग्-गुप्तोऽध्यात्म-
योग-ध्यान-गुप्तश्चापि भवति ॥

सू० ५५—काय-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
काय-गुप्ततया संवरं जनयति ।
संवरेण काय-गुहः पुनः पापाश्व-
निरोधं करोति ॥

सू० ५१—भन्ते ! करण-सत्य (कार्य
की सचाई) से जीव क्या प्राप्त करता है ?
करण-सत्य से वह करण-शक्ति (अपूर्व
कार्य करने को सामर्थ्य) को प्राप्त होता है ।
करण-सत्य में वर्तमान जीव जैसा कहता है
वैसा करता है ।

सू० ५२—भन्ते ! योग-सत्य (मन,
वार्ता और काया की सचाई) से जीव क्या
प्राप्त करता है ?
योग-सत्य से वह भूत, वाणी और काया
का पट्टन को विधुन करता है ।

सू० ५३—भन्ते ! मनो-गुप्ततया (कुशल
मन के प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त करता है ?
मनो-गुप्तता से वह एकाग्रता को प्राप्त
होता है । एकाग्रचित्त वाला जीव अद्वय
वस्तुओं में मन की शक्ति करने वाला और
समय की आराधना करने वाला होता है ।

सू० ५४—भन्ते ! वाग्-गुप्ततया (कुशल
वचन के प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?
वाग्-गुप्तता से वह निर्विकार भाव को
प्राप्त होता है । निर्विकार जीव सर्वथा वाग्-
गुप्त और अध्यात्म-योग के साधन—चित्त की
एकाग्रता आदि से युक्त हो जाता है ।

सू० ५५—भन्ते ! काय-गुप्ततया (कुशल
काय के प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?
काय-गुप्तता से वह संवर (अशुभ प्रवृत्ति
के निरोध) को प्राप्त होता है । संवर के
द्वारा कायिक स्थिरता को प्राप्त करने वाला
जीव फिर पाप-कर्म के उपादान-हेतुओं
(आश्रयों) का निरोध कर देता है ।

१. निव्वियारत्तं (ज, स) ।

२. साहजुत्ते (उ, ऋ०, वृ०) ।

३. निव्वियारे णं जीवे वयगुत्तयं जणयइ (वृ० पा०) ।

सू० ५६—मणसमाहारणयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

मणसमाहारणयाए णं एगमं जणयइ । एगमं जणइत्ता नाणपज्जवे जणयइ । नाणपज्जवे जणइत्ता सम्मतं विसोहेइ मिच्छत्तं च निज्जेइ ॥

सू० ५६—मनः-समाधारणेन भवन्त! जीवः किं जनयति ?

मनः-समाधारणेन ऐकाग्र्यं जनयति । ऐकाग्र्यं जनयित्वा ज्ञान-पर्यवान् जनयति । ज्ञान-पर्यवान् जनयित्वा सम्यक्त्वं विशोधयति, मिथ्यात्वञ्च निजंरयति ॥

सू० ५६—मनः ! मन-समाधारणा (मन को आग्रम-कथित भावों में भली-भाँति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मन-समाधारणा से वह एकाग्रता को प्राप्त होता है । एकाग्रता को प्राप्त होकर ज्ञान-पर्यवो (ज्ञान के विविध प्रकारों) को प्राप्त होता है । ज्ञान-पर्यवों को प्राप्त कर सम्यक्-दर्शन को विशुद्ध और मिथ्या-दर्शन को क्षीण करता है ।

सू० ५७—वयसमाहारणयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

वयसमाहारणयाए णं वय-साहारणदंसणपज्जवे विसोहेइ । वयसाहारणदंसणपज्जवे विसोहेत्ता सुलहबांहियत्तं निव्वत्तेइ दुलह-बोहियत्तं निज्जेइ ॥

सू० ५७—वाक्-समाधारणेन भवन्त! जीवः किं जनयति ?

वाक्-समाधारणेन वाक्-साधारण-दर्शन-पर्यवान् विशोधयति । वाक्-साधारण-दर्शन-पर्यवान् विशोध्य सुलभ-बोधिकत्वं निबंनयति, दुलभ-बोधिकत्वं निजंरयति ॥

सू० ५७—मनः ! वाक्-समाधारणा (वाणी की व्याख्या में भली-भाँति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वाक्-समाधारणा से वह वाणी के विषय-भूत दर्शन-पर्यवो (सम्यक्-दर्शन के प्रकारों) को विशुद्ध करता है । वाणी के विषयभूत दर्शन-पर्यवों को विशुद्ध कर बोधि की मूलभूतता को प्राप्त होता है और बोधि की दुर्लभता को क्षीण करता है ।

सू० ५८—कायसमाहारणयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

कायसमाहारणयाए णं चरित्त-पज्जवे विसोहेइ । चरित्तपज्जवे विसोहेत्ता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ । अहक्खायचरित्तं विसोहेत्ता चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सब्बदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सू० ५८—काय-समाधारणेन भवन्त! जीवः किं जनयति ?

काय-समाधारणेन चरित्र-पर्यवान् विशोधयति । चरित्र-पर्यवान् विशोध्य यथाख्यात-चरित्रं विशोधयति । यथा-ख्यात-चरित्रं विशोध्य चतुरः केवलिकर्माज्ञान् क्षपयति । ततः पञ्चान् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति, सर्वबुःखानामन्तं करोति ॥

सू० ५८—मनः ! काय-समाधारणा (संयम-योगों में काय को भली-भाँति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

काय-समाधारणा से वह चरित्र-पर्यवो (चरित्र के प्रकारों) को विशुद्ध करता है । चरित्र-पर्यवों को विशुद्ध कर यथाक्यात चरित्र (वीतरागभाव) को प्राप्त करने योग्य विशुद्ध करता है । यथाक्यात चरित्र को विशुद्ध कर केवलिक-सत्त (केवली के विद्यमान) चार कर्मों — आयुष्, वेदनीय, नाम और मोक्ष को क्षीण करता है । उसके पश्चात् सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब दुःखों का अन्त करता है ।

सू० ५९—नाणसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

नाणसंपन्नयाए णं जीवे सब्ब-भावाद्दिगमं जणयइ । नाणसंपन्ने णं जीवे चाउरन्ते संसारकन्तारे न विणस्सइ ।

जहा सुई समुत्ता पडिया वि न विणस्सइ ।

तहा जीवे समुत्ते संसारे न विणस्सइ ॥

नाणविणयतवचरित्तजोगे सं-पाउणइ ससमयपरसमय' संघाय-णिज्जे भवइ ॥

सू० ६०—दंसणसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

दंसणसंपन्नयाए णं भवमिच्छत्त-छेयणं करेइ, परं न विज्झायइ' । 'अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोगमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ' ॥

सू० ६१—चरित्तसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

चरित्तसंपन्नयाए णं सेलसीभावं जणयइ । 'सेलसी पडिन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाणइ सब्बदुक्खाण-मन्तं करेइ' ॥

सू० ५९—ज्ञान-सम्पन्नतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

ज्ञान-सम्पन्नतया जीवः सर्व-भावाभिगमं जनयति । ज्ञान-सम्पन्नो जीवश्चक्षुरन्ते संसार-कान्तारे न विनश्यति ।

यथा सूची समुद्रा, पतितानि न विनश्यति ।

तथा जीवः समुद्रः संसारे न विनश्यति ॥

ज्ञान-विनय-तपश्चरित्त-योगान् सम्प्राप्नोति, स्वस्वमय-परसमय-संघातनीयो भवति ॥

सू० ६०—दर्शन-सम्पन्नतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

दर्शन-सम्पन्नतया भव-मिध्यात्व-छेदनं करोति । परं न मिध्यायति अनुत्तरेण ज्ञान-दर्शनेनात्मानं संयोजयन् सम्यग् भावयन् विहरति ॥

सू० ६१—चरित्र-सम्पन्नतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

चरित्र-सम्पन्नतया शैलेशी-भावं जनयति । शैलेशीं प्रतिपन्नश्च अनगारः चतुरः केवलिकर्माज्ञान् अपयति । ततः पश्चान् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति संबुद्धि-नामन्तं करोति ॥

सू० ५९—भन्ते! ज्ञान-सम्पन्नता (शुद्ध ज्ञान की सम्पन्नता) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

ज्ञान-सम्पन्नता से वह सब पदार्थों को जान लेता है । ज्ञान-सम्पन्न जीव चार गति-रूप चार अन्तों वाली संसार-अटवी में विनष्ट नहीं होता ।

जिस प्रकार समुद्र (बागे में पिरोई हुई) सुई गिरने पर भी गूम नहीं होता, उसी प्रकार समुद्र (शुद्ध सहित) जीव संसार में रहने पर भी विनष्ट नहीं होता ।

(ज्ञान-सम्पन्न) अवधि आदि विशिष्ट ज्ञान, विनय, तप और चरित्र के योगों को प्राप्त करता है तथा स्वसमय और परसमय की व्याख्या या तुलना के लिए प्रामाणिक पुरुष माना जाता है ।

सू० ६०—भन्ते! दर्शन-सम्पन्नता (सम्यक्-दर्शन की सम्प्राप्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

दर्शन-सम्पन्नता से वह संसार-पर्यटन के हेतु-भूत मिध्यात्व का उच्छेद करता है—आयिक सम्यक्-दर्शन को प्राप्त होता है । उसमें आगे उसकी प्रकाश-शिक्षा बुझती नहीं । वह अनुत्तर ज्ञान और दर्शन को आरम्य से संयोजित करता हुआ, उन्हे सम्यक् प्रकार से आत्मनात् करता हुआ विहरण करता है ।

सू० ६१—भन्ते ! चरित्र-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

चरित्र-सम्पन्नता से वह शैलेशी-भाव को प्राप्त होता है । शैलेशी-वस्था को प्राप्त करने वाला अनगार चार केवलिकर्म कर्मों को क्षीण करता है । उसके पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है अरु सब दुःखा का ओन्त करता है ।

१. 'समय विसारए य (अ) ।

२. विज्झाइ (ज्ञा) ; वज्झाइ । परं आणाज्झायमाणे (अ) ।

३. अचराणं संयोजमाणे सम्मं भावेमाणे अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं विहरइ (अ) ; अनुत्तरेणं नाणदंसणेणं विहरइ (हू० पा०) ।

४. सेलसी पडिन्नमे विहरइ (हू०) ; सेलसी पडिन्नमे अणगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खवेति, ततो पच्छा सिज्झति..... (हू० पा०) ।

सू० ६२—सोइन्द्रियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सोइन्द्रियनिगहेणं मणुन्ना-
मणुन्नेसु सहंसु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू० ६३—चक्खिन्द्रियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

चक्खिन्द्रियनिगहेणं मणुन्ना-
मणुन्नेसु रुवेसु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू० ६४—घाणिन्द्रियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

घाणिन्द्रियनिगहेणं मणुन्ना-
मणुन्नेसु गन्धेषु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू० ६५—जिह्मिन्द्रियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

जिह्मिन्द्रियनिगहेणं मणुन्ना-
मणुन्नेसु रसेसु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू० ६२—ओत्रेन्द्रिय-निग्रहेण
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

ओत्रेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनो-
ज्ञेषु राग-दोष-निग्रहं जनयति ।
तत्-प्रत्ययिकं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निज्जरयति ॥

सू० ६३—चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहेण
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनो-
ज्ञेषु रूपेषु राग-दोष-निग्रहं जनयति ।
तत्-प्रत्ययिकं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निज्जरयति ॥

सू० ६४—घ्राणेन्द्रिय-निग्रहेण
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

घ्राणेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनो-
ज्ञेषु गन्धेषु राग-दोष-निग्रहं जनयति ।
तत्-प्रत्ययिकं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निज्जरयति ॥

सू० ६५—जिह्वेन्द्रिय-निग्रहेण
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

जिह्वेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञा-
मनोज्ञेषु रसेषु राग-दोष-निग्रहं
जनयति । तत्-प्रत्ययिकं कर्म न
बध्नाति । पूर्वं-बद्धं च निज्जरयति ॥

सू० ६२—भन्ते ! ओत्रेन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

ओत्रेन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ शब्दों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह शब्द सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्वं-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६३—भन्ते ! चक्षु-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

चक्षु-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ रूपों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह रूप सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्वं-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६४—भन्ते ! घ्राण-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

घ्राण-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ गन्धों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह गन्ध सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्वं-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६५—भन्ते ! जिह्वा-इन्द्रिय का
निग्रह करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

जिह्वा-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ
और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष
का निग्रह करता है । वह रस सम्बन्धी राग-
द्वेष के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्वं-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६६—फासिन्दियनिगहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

फासिन्दियनिगहेणं मणुन्ता-
मणुन्तेसु फासेसु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६७—कोहविजएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

कोहविजएणं खन्ति जणयइ
कोहवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६८—माणविजएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

माणविजएणं सहं जणयइ
माणवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ पुव्व-
बद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६९—मायाविजएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

मायाविजएणं उज्जुभावं जणयइ
मायावेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०७०—लोभविजएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

लोभविजएणं संतोसीभावं
जणयइ लोभवेयणिज्जं कम्मं न
बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६६—स्पशोन्निव-निग्रहेण
भन्त ! जीवः किं जनयति ?

स्पशोन्निव-निग्रहेण मनोज्ञा-
मनोरोषु स्पशेषु राग-दोष-निग्रहं
जनयति । तत्-प्रत्ययिकं कर्म न
बध्नाति । पूर्वं-बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६७—क्रोध-विजयेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

क्रोध-विजयेन क्षान्तिं जनयति ।
क्रोध-वेदनीयं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६८—मान-विजयेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

मान-विजयेन मादवं जनयति ।
मान-वेदनीयं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६९—माया-विजयेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

माया-विजयेन ऋजुभावं जनयति ।
माया-वेदनीयं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०७०—लोभ-विजयेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

लोभ-विजयेन सन्तोषीभावं
जनयति । लोभ-वेदनीयं कर्म न
बध्नाति । पूर्वं-बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६६—भन्ते ! स्पर्श-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्पर्श-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ स्पर्शों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह स्पर्श सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६७—भन्ते ! क्रोध-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

क्रोध-विजय से वह क्षमा को उत्पन्न
करता है । वह क्रोध-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६८—भन्ते ! मान-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

मान-विजय से वह मृदुता को उत्पन्न
करता है । वह मान-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६९—भन्ते ! माया-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

माया-विजय से वह ऋजुता को उत्पन्न
करता है । वह माया-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०७०—भन्ते ! लोभ-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

लोभ-विजय से वह सन्तोष को उत्पन्न
करता है । वह लोभ-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०७१—पेज्जदोसमिच्छा-
एणं भन्ते! जीवे किं
जणयइ ?

सू०७१—प्रेयो-दोष-मिथ्यादर्शन-
विजयेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

सू०७१—भन्ते ! प्रेम, द्वेष और मिथ्या-
दर्शन के विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

पेज्जदोसमिच्छादंसणविजएणं
नाणदंसणचरित्तराहणयाए अब्भुट्ठेइ ।
'अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगण्ठि-
विमोयणयाए'^१ तप्पढमयाए जहाणु-
पुव्वि अट्ठवीसइविहं मोहणज्जं
कम्मं उग्घाएइ पंचविहं नाणा-
वरणज्जं नवविहं दंसणावरणज्जं^२
पंचविहं अन्तराय एए तन्नि वि
कम्मसे जुगवं खवेइ । तओ पच्छा
अणुत्तरं अणंतं कसिणं पडिपुणं
निरावरणं वित्तिमिरं विसुद्धं लोगा-
लोगप्पभावमं^३ केवल-वरनाणदंसणं
समुप्पाडेइ । जाव सजोगी भवइ ताव
य इरियावहियं कम्मं बन्धइ सुहं-
फरिसं दुसमयठिइयं । तं पढमसमए
बद्धं बिइयसमए वेइयं तट्ठयसमए
नज्जिणं^४ तं बद्धं पुट्ठं उदोरियं
वेइयं तिज्जिणं सेयाले य अकम्मं
चावि भवइ ॥

प्रेयो-दोष-मिथ्यादर्शन-विजयेन
ज्ञान-दर्शन-चारित्र्याराधनायां अभ्यु-
त्तिष्ठते । अष्टविधस्य कर्मणः कर्म-
गन्धि-विमोचनाय तत्प्रथमतया
यथानुपूर्वि अष्टाविंशतिविधं मोहनीयं
कर्मोद्घातयति । पंचविधं ज्ञाना-
वरणोपमं नवविधं दर्शनावरणायं
पंचविधमन्तरायं एतान् श्रौतृषि
कर्मोद्धान् युगपन् क्षपयति । ततः
पश्चादनुत्तरं अनन्तं कृत्स्नं प्रतिपू-
निरावरणं वित्तिमिरं विशुद्धं लोका-
लोक-प्रभावकं केवलवरज्ञान-दर्शनं
समुत्पादयति । यावत्-सयोगी भवति
तावत्त्रयोपधिकं कर्म बध्नाति सुख-
स्पर्शं द्विसमय-स्थितिकम् । तत् प्रथम-
समये बद्धं द्वितीय-समये वेदितं तृतीय-
समये निर्जोषं तत्र बद्धं स्पृष्टमुदोरितं
वेदितं निर्जोषं एष्यत्काले चाकर्मचापि
भवति ॥

प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन के विजय से
बहु ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की आराधना के
लिए उद्यत होता है । आठ कर्मों में जो कर्म-
गन्धि (बाध्य-कर्म) है, उसे खोलने के लिए
बहु उद्यत होता है । वह जिसे पहले कभी भी
पूर्णतः क्षीण नहीं कर पाया उस अट्ठाईस
प्रकार वाले मोहनीय कर्म को क्रमशः सर्वथा
क्षीण करता है; फिर वह पाँच प्रकार वाले
ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार वाले दर्शनावरणोप
और पाँच प्रकार वाले अन्तराय—इन तीनों
विद्यमान कर्मों को एक साथ क्षीण करता है ।
उसके पश्चात् वह अनुत्तर, अनन्त, कृत्स्न,
प्रतिपूर्ण, निरावरण, तिमिर रहित, विशुद्ध,
लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाले
केवल ज्ञान और केवल दर्शन को सत्पन्न करता
है । जब तक वह सयोगी होता है तब तक
उसके ईयो-पधिक-कर्म का बन्ध होता है । वह
बन्ध सुख-स्पर्श (पुण्य-मय) होता है । उसकी
स्थिति दो समय की होती है और तीसरे समय
में वह निर्जोष हो जाता है । वह कर्म बद्ध
होता है, स्पृष्ट होता है, उदय में आता है,
भोगा जाता है, नष्ट हो जाता है और अन्त में
अकर्म भी हो जाता है ।

१. अट्ठविहकम्म विमोचणाए (६० पा०) ।

२. दंसणावरणं (३, ५०) ।

३. लोगालोगसभावमं (६० पा०) ।

४. निज्जिणं (अ) ।

सू० ७२—अहाउयं पालइत्ता
अन्तोमुहुत्तद्वावसेसाउए^१ जोगनिरोहं
करेमाणे सुहुमकिरियं अप्पडिवाइ
सुक्कम्भाणं भ्मायमाणे तप्पडमयाए
'मणजोगं निरुम्भइ २ त्ता वइजोगं
निरुम्भइ २ त्ता आणापाणुनिरोहं'^२
करेइ २ त्ता ईसि पंचरहस्सकव-
रुच्चारद्वाए यणं अणगारे समुच्छिन्न-
किरियं अनियट्टिसुक्कम्भाणं भ्माय-
माणे वेयणज्जं आउयं नामं गोत्तं
च एए चत्तारि वि^३ कम्मसे जुगव^४
खवेइ ॥

सू० ७३—तओ ओरालिय-
कम्माइ च सव्वाहि विप्पजह्णाहि
विप्पजहिता उज्जुसेडिपत्ते अफुसमाण-
गई उड्डं एगसमएणं अविग्गहेणं
तत्थ गन्ता सागारोवउत्ते सिज्जइ
बुज्जइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्व-
दुक्खाणमन्तं करेइ^५ ॥

एस् खलु सम्मतपरकमस्स
अरुक्मयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया
महावीरेणं आधविए पन्नविए
परुविए दंसिए^१ उवदंसिए ॥

—ति बेमि ।

सू० ७२—अथ आयुष्कं पालयित्वा-
न्तमुहुत्तद्वावसेसाउए^१ योग-निरोधं
कुर्याणः सूक्ष्मक्रियप्रतिपाति शुक्ल-
ध्यानं ध्यायन् तत्प्रथमतया मनो-योगं
निरुणद्धि निरुध्य बाण-योगं निरुणद्धि
निरुध्य आनापान-निरोधं करोति
कृत्वा ईषत् पंच ह्रस्वाक्षरोच्चारणाध्वनि
च अनगारः समुच्छिन्नक्रियं अनिवृत्ति
शुक्लध्यानं ध्यायन् वेदनीयमायुष्कं
नाम गोत्रज्ञातान् चतुरः कर्माशान
युगपत् अपयति ॥

सू० ७३—तत औदारिक-कामेणे च
सर्वाभिः विप्रहानिभिः विप्रहाय ऋजु-
श्रेणिप्राप्तो स्पृश-गतिरुद्धो^१ एक सम-
येन अविग्रहेण तत्र गत्वा साकारोपयुक्तः
सिध्यति बुध्यते मुख्यते परिनिर्वाति
सर्वदुःखानामन्तं करोति ॥

एष खलु सम्पक्त्वपराक्रमस्था-
ध्ययनस्थाः श्रमणेन भगवता
महावीरेणालयातः प्रज्ञापितः प्ररूपितः
वर्णितः उपदर्शितः ॥

—इति ब्रवीमि ।

सू० ७२—केवली होने के पश्चात् वह
शेष आयुष्य का निर्वाह करता है । जब
अन्तर-मूर्तों परिमाण आयु शेष रहती है, तब
वह योग-निरोध करने में प्रवृत्त होता है । उस
समय सूक्ष्म-क्रिय अवधिपाति नामक शुक्ल
ध्यान में लीन बना हुआ वह सबसे पहले मनो-
योग का निरोध करता है । फिर बचन-ध्याम
का निरोध करता है, उसके पश्चात् आनापान
(उच्छ्वाससन्निवास) का निरोध करता है ।
उसके पश्चात् स्वल्पकाल तक पाँच ह्रस्वाक्षरों
अ इ उ ऋ ऌ का उच्चारण किया जाए उतने
काल तक समुच्छिन्न-क्रिय अनिवृत्ति नामक
शुक्ल ध्यान में लीन बना हुआ अनगार वेदनीय,
आयुष्य, ताम और धात्र—इन चारों सत्कर्मों
को एक साथ क्षीण करता है ।

सू० ७३—उसके अनन्तर ही औदारिक और
कामेण शरीर को पूर्ण अनस्तित्व के रूप में छोड़
कर वह मोक्ष स्थान में पहुँच साकारोपयुक्त
(ज्ञानप्रवृत्ति काल) में सिद्ध होता है, बुद्ध होता
है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब
दुःखों का अन्त करता है । सिद्ध होने में पूर्व
वह ऋजुश्रेणी (आकाश-प्रदेशों की सीधी
पंक्ति) से गति करता है । उसकी गति ऊपर
को होती है, आत्म-प्रदेश जितने हो आकाश-
प्रदेशों का स्पर्श करने वाली होती है और एक
मयय को होती है—ऋजु होती है ।

सम्पक्त्व-पराक्रम अध्ययन का यह
पूर्वोक्त अर्थ श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा
आख्यात, प्रज्ञापित, प्ररूपित, दर्शित और
उपदर्शित है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. अन्तोमुहुत्तद्वावसेसाउए (बु० पा०) ; अन्तोमुहुत्तद्वावसेसाउए (उ, ऋ०, इ० पा०) ।

२. मणजोगं निरुम्भइ वइजोगं निरुम्भइ आणापाणुनिरोहं करेइ (बु०) ; मणजोगं निरुम्भइ, वइजोगं निरुम्भइ, आणापाणु (अ, ह) ।

३. × (उ, ऋ०) ।

४. × (उ, ऋ०) ।

५. (क) इह च वर्णिहता—“तेलेमीएणं अन्ते ! जीवे किं जणयइ ? अरुक्मयं जणति, अरुक्मयाए जीवा सिज्जन्ति” इति पठः, पूर्वत्र च
कथञ्चित्काश्चित्पाठमेवेनाख्या एव प्रस्ता आश्रिताः, अस्माभिस्तु भूयसीषु प्रतिषु वयाव्याख्यावशादयमनादित्यमुन्नीतमिति (बु० पा०) ।
(ब) तेलेसीएणं अन्ते ! जीवे किं जणयइ ? अरुक्मयं जणति अरुक्मयाए जीवा सिज्जन्ति बुज्जन्ति मुच्चन्ति परिनिवर्षन्ति सव्वदुक्खानां अंतं
करोति (बु०) ।

६. दंसिए निर्दंसिए (बु०) ।

तीसहमं अज्झयणं :
तवमग्गई

त्रिसम अध्ययन :
तपो-मार्ग-गति

आस्तुत्य

तपस्या मोक्ष का मार्ग है। उससे तपस्वी की मोक्ष की ओर गति होती है—यह इस अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है। इसलिए इस अध्ययन का नाम 'तपमग्गगई'—'तपो-मार्ग-गति' है।^१

प्रत्येक संसारी ओष प्रातःकाल कुछ-न-कुछ प्रवृत्ति अवश्य करता है। जब वह सक्रिय होता है तब वह सुख हो जाता है। जहाँ प्रवृत्ति है वहाँ कर्म-पुद्गलों का आकर्षण और निर्जरण होता है। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है—शुभ और अशुभ। शुभ प्रवृत्ति से अशुभ कर्मों का निर्जरण और शुभ-कर्म (पुण्य) का बन्ध होता है। अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ-कर्म (पाप) का बन्ध होता है।

तपस्या कर्म-निर्जरण का मुख्य साधन है। इससे आत्मा पवित्र होती है।

भारतीय साधना-पद्धति में तपस्या का प्रमुख स्थान रहा है। जैन और बौद्ध मनीषियों ने उसे साधना का अपरिहार्य अंग माना है। बौद्ध तत्त्व-द्रष्टा उससे उदासीन हो रहे हैं।

महात्मा बुद्ध अपनी साधना के प्रथम चरण में उग्र तपस्वी थे। उन्होंने कई वर्षों तक कठोर तपस्या की थी, परन्तु जब उन्हें सफलता नहीं मिली तब उन्होंने उसे अपनी साधना में स्थान नहीं दिया।

जैन-साधना के अनुसार तपस्या का अर्थ काय-वलेज या उपवास हो नहीं है। स्वाध्याय, ध्यान, विनय आदि सब तपस्या के विभाग हैं।

काय-वलेज और उपवास अकरणीय नहीं हैं और उनकी सबके लिए कोई समान मर्यादा भी नहीं है। अपनी ऊर्ष और शक्ति के अनुसार जो जितना कर सके उसके लिए उतना ही विहित है।

जैन-दृष्टि से तपस्या दो प्रकार की है—बाह्य और आभ्यन्तर।

बाह्य तप के छह प्रकार हैं—

- १—अनशन,
- २—अवमोदरिका,
- ३—मिक्षा-चर्या,
- ४—रस-परित्याग,
- ५—काय-वलेज और
- ६—प्रतिसंलीनता।

इनके आचरण से देहाध्यास छूट जाता है। देहासक्ति साधना का विघ्न है। इसीलिए मनीषियों ने देह के ममत्व-त्याग का उपदेश दिया है। शरीर धर्म-साधना का साधन है इसलिए उसकी नितान्त उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। देहासक्ति विलासिता और प्रमाद को जन्म देती है। परन्तु धर्म-साधना के लिए देह की सुरक्षा करना भी नितान्त अपेक्षित है। जैन-मुनि का 'वोसहुचत्तदेहे'^२—यह विज्ञापन देहासक्ति के त्याग का परिचायक है।

१—अनशयन निर्धकि, शाखा ५:३:

दुविहत्तवोसगगई, धम्मिज्ज समुत्थ इत्य अन्तकथने।

उम्हा एअन्तकथनं, तप्पसराशक्ति वाचर्थ ॥

१-२—अनशन और अवमोदरिका से मूल और प्यास पर विजय पाने की ओर गति होती है।

३-४—भिक्षा-चर्या और रस-परित्याग से आहार को लालसा सीमित होती है। जिह्वा की लोलुपता मिटती है और निद्रा, प्रमाद, उन्माद आदि को प्रोत्साहन नहीं मिलता।

५—काय-वर्णन से सङ्घिष्णुता का विकास होता है। देह में उत्पन्न दुःखों को समभाव से सहने की वृत्ति बनती है।

६—प्रतिसंश्लोभता से आत्मा की सन्निधि में रहने का अभ्यास बढ़ता है।

आभ्यन्तर तप के छह भेद हैं—

१—प्रायश्चित्,

२—विनय,

३—वैथावृत्त्य,

४—स्वाध्याय,

५—ध्यान और

६—व्युत्सर्ग।

१—प्रायश्चित् से आतिथार-मोहता और साधना के प्राप्ति जागरूकता विकसित होती है।

२—विनय से अभिमान-मुक्ति और परस्परोपग्रह का विकास होता है।

३—वैथावृत्त्य से सेवाभाव पनपता है।

४—स्वाध्याय से विवृथा त्यक्त हो जाती है।

५—ध्यान से एकाग्रता, एकाग्रता से मानसिक विकास एवं मन तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण पाने की क्षमता बढ़ती है और अन्त में उनका पूर्ण निरोध हो जाता है।

६—व्युत्सर्ग से शरीर, उपकरण आदि पर हाने वाले ममत्व का विसर्जन होता है।

अथवा तप दो प्रकार का है—सक्काम और अक्काम। एकमात्र मोक्ष-साधना को दृष्टि से किया जाने वाला तप सक्काम होता है। और इसके अतिरिक्त अन्योन्य उपलक्षियों के लिए किया जाने वाला अक्काम। जैन साधना-पद्धति में सक्काम तप की उपादयता है और उसे ही पूर्ण पवित्र माना गया है।

तप के तीन प्रकार भी किए गए हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक। शौच, आर्जव, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करना कायिक तप है। प्रिय, हितकर, सत्य और अनुत्तुर्विषय वचन बोलना, स्वाध्याय में रत रहना वाचिक तप है। आत्म-निग्रह, मोन-भाव, सोम्यता आदि मानसिक तप है।

शिष्य ने पूछा—“अन्ते। तप से जीव का प्राप्त करता है ?”

मगवान् ने कहा—“तप से वह पूर्व-संचित कर्मों का क्षय कर विशुद्धि को प्राप्त होता है। इस विशुद्धि से वह मन, वचन और शरीर को प्रवृत्ति के पूर्ण निरोध को प्राप्त होता है। अक्रियावान् होकर वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और दुःखों का अन्त करता है।”^१

मगवान् ने कहा—“ब्रह्मलोक के निमित्त तप मत करो। परलोक के लिए तप मत करो। श्लाघा-प्रशंसा के लिए तप मत करो। केवल निर्जरा के लिए—आत्म-विशुद्धि के लिए तप करो।”^२

तपस्या के अवान्तर भेदों का निरूपण आगमों तथा व्याख्या-ग्रन्थों में प्रचुरता से हुआ है।

१—उत्तरज्जयण, २६।सु०२७, २८।

२—वृथवेकाहिक, ६।सु० ६।

तीसहमं अज्ज्ञयणं : त्रिंशु अध्वयन तवमग्गई : तपो-मार्ग-गति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—जहा उ पावगं कम्मं रागदोससमज्झियं । खवेइ तवसा भिक्खू तमेग्गमणो सुण ॥	यथा तु पापकं कर्म राग-दोष-समजितम् । क्षपयति तपसा भिक्षुः तमेकाग्र-मनाः शृणु ॥	१—राग-द्वेष से अजित पाप-कर्म को भिक्षु तपसा से जित प्रकार क्षीण करता है, उसे एकाग्र-मन होकर सुन ।
२—पाणवहमुसावाया' अदत्तमेहुणपरिग्गहा विरओ । राईभोयणविरओ जीवो भवइ अणासवो ॥	प्राणवध-मृषावादा- ऽवस्त-सैषुन-परिग्रहेभ्यो विरतः । रात्रिभोजन-विरतो जीवो भवति अनाश्रवः ॥	२—प्राण-वध, मृषावाद, अवस्त-ग्रहण, सैषुन, परिग्रह और रात्रि-भोजन से विरत जीव अनाश्रव होता है ।
३—पंचसमिओ तिगुत्तो अकसाओ जिइन्दिओ । अगारवो य निस्सल्लो जीवो होइ अणासवो ॥	पंच-समितस्त्रि-गुप्तः अकषायो जितेन्द्रियः । अपौरुषेय निःशल्पः जीवो भवत्यनाश्रवः ॥	३—पाँच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, अकषाय, जितेन्द्रिय, अगौरव (गर्व रहित) और निःशल्प-जीव अनाश्रव होता है ।
४—एएसि तु विवच्चासे' रागदोससमज्झियं । 'जहा खवयइ भिक्खू' 'तं मे एग्गमणो' सुण ॥	एतेषां तु विव्यत्यासे राग-दोष-समजितम् । यथा क्षपयति भिक्षुः तन्मे एक-मनाः शृणु ॥	४—इनसे विपरीत आचरण में राग-द्वेष से जो कर्म उपाजित होता है, उसे भिक्षु जिस प्रकार क्षीण करता है, उसे एकाग्र-मन होकर सुन ।
५—जहा महातलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे । उस्सिचणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे ॥	यथा महातलागस्य सन्निरुद्धे जलागमे । उत्सेवनेन तपनेन क्रमेण शोषणं भवेत् ॥	५—जिस प्रकार कोई बड़ा तालाब जल आने के मार्ग का निरोध करने से, जल को उलीचने से, सूर्य के ताप से क्रमशः सूख जाता है—

१. पाणिबइ मुसावाए (उ, ५०) ।

२. विवच्चासे (५०) ।

३. कमेइ अ जहा कम्मं (उ, ५०) ; खवेइ तं जहा भिक्खू (५०) ।

४. तं मे एग्गमणा (स) ; तमेक्कमणो (५०) ।

६—'एवं तु' संजयस्सावि
पावकम्मनिरासवे ।
भवकोटीसंचियं कम्मं
तवसा निज्जरिज्जइ ॥

एवं तु संयतस्यापि
पापकर्म-निरासवे ।
भव-कोटी-संख्यितं कर्म
तपसा निर्जय्यते ॥

६—उसी प्रकार संयमी पुरुष के पाप-
कर्म बाने के मार्ग का निरोध होने से करोड़ों
भवों के संचित कर्म तपस्या के द्वारा निर्जोर्ण
हो जाते हैं ।

७—सो तवो दुविहो वुत्तो
बाहिरवन्तरो तथा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो
एवमवन्तरो तवो ॥

तत्तपो द्विविधमुक्तं
बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
बाह्यं षड्विधमुक्तं
एवमाभ्यन्तरं तपः ॥

७—वह तप दो प्रकार का कहा है—
(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर ।
बाह्य तप छह प्रकार का है, उसी प्रकार
आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का है ।

८—अणसणमूणोरियया
भिक्खायरिया यरसपरिखाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य
वज्झो तवो होइ ॥

अनशनमूनोदरिका
भिक्षा-वर्षा च रस-परित्यागः ।
काय-क्लेशः संलीनता
च बाह्यं तपो भवति ॥

८—(१) अनशन, (२) ऊनोदरिका,
(३) भिक्षा-वर्षा, (४) रस-परित्याग, (५)
काय-क्लेश और (६) संलीनता—यह बाह्य
तप है ।

९—इत्तिरिया मरणकाले
'दुविहा अणसणा' भवे ।
इत्तिरिया सावकंखा
निरवकंखा बिइज्जिया ॥

इत्वरकं मरण-कालं
अनशनं द्विविधं भवेत् ।
इत्वरकं सावकाङ्क्षं
निरवकाङ्क्षं द्वितीयम् ॥

९—अनशन दो प्रकार का होता है—
(१) इत्वरिक, (२) मरण-काल । इत्वरिक
सावकांक्ष (अनशन के पश्चात् भोजन की
इच्छा से युक्त) और दूसरा निरवकांक्ष (भोजन
की इच्छा से मुक्त) होता है ।

१०—जो सो इत्तरियतवो
सो समासेण छव्विहो ।
सेडितवो पयरतवो
घणो य 'तह होइ वगो य' ॥

यत्त इत्वरिकं तपः
तत्समासेन षड्विधम् ।
अग्नि-तपः प्रतर-तपः
घनदत्त तथा भवति वगंश्च ॥

१०—जो इत्वरिक तप है, वह संक्षेप में
छह प्रकार का है—(१) अग्नि-तप, (२) प्रतर-
तप, (३) घन तप, (४) वगं-तप,

११—तत्तो य वगवग्गो उ
पंचमो छट्ठो पइण्णतवो ।
मणइच्छियचित्तत्थो
नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥

ततश्च वगंवर्गस्तु
पंचमं षष्ठकं प्रकीर्णतपः ।
मनस्मिन्तविश्रायं
ज्ञातव्यं भवति इत्वरकम् ॥

११—(५) वगं-वर्ग-तप, (६) प्रकीर्ण-
तप ।
इत्वरिक तप नाना प्रकार के मनो-
बांछित फल देने वाला होता है ।

१. एमेय (अ) ।

२. " काला य (उ, ख०) ।

३. अणसणा दुविहा (उ, ख०, घ०) ।

४. निरकंखा उ (घ०) ; निरवकंखा उ (छ०) ; निरवकंखा (घ० पा०) ।

५. वगो चठत्थो उ (अ) ।

तबमग्गई (तपो-मार्ग-गति)

४२३

अध्ययन ३० : श्लोक १२-१६

१२—जा सा अणसणा मरणे
दुविहा सा वियाहिया ।
सवियारअवियारा^१
कायचिट्ठं पई भवे ॥

यत्सवनशनं मरणे
द्विविधं तद्व्याख्यातम् ।
सविचारमविचारं
काय-चेष्टां प्रति भवेत् ॥

१२—मरण-काल अनशन के काय-चेष्टा
के आधार पर सविचार और अविचार—ये
दो भेद होते हैं ।

१३—अहवा 'सपरिकम्मा
अपरिकम्मा'^२ य आहिया ।
नीहारिमणीहारी
आहारच्छेओ य दोसु वि ॥

अथवा सपरिकर्म
अपरिकर्म व्याख्यातम् ।
निर्हारि अनिर्हारि
आहारच्छेदश्च द्वयोरपि ॥

१३—अथवा इसके दो भेद ये होते हैं—
(१) सपरिकर्म और (२) अपरिकर्म ।

१४—ओमोयरियं^३ पंचहा
समासेण वियाहियं ।
दब्बओ खेत्तालेण^४
भावेण^५ पज्जवेहि य ॥

अवमौदर्यं पंचधा
समासेन व्याख्यातम् ।
द्रव्यतः क्षेत्र-कालेन
भावेन पर्यवैश्व ॥

१४—अविचार अनशन के (१) निर्हारी
और (२) अनिर्हारी—ये दो भेद होते हैं ।
आहार का त्याग दोनों (सविचार और
अविचार तथा सपरिकर्म और अपरिकर्म) में
होता है ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्यायों की
दृष्टि से अवमौदर्य (अनौदरिका) संक्षेप में पाँच
प्रकार का है ।

१५—जो जस्स उ आहारो
ततो ओमं^६ तु जो करे ।
जह्म्लेणगसित्याई
एवं दब्बेण ऊ भवे ॥

यो यस्य त्वाहारः
ततोऽवमं तु यः कुर्यात् ।
जघन्येनैकसिक्खावि
एवं द्रव्येण तु भवेत् ॥

१५—जिसका जितना आहार है उससे
कम खाता है, कम से कम एक सिक्ख (धाम्य
कण) खाता है और उल्लूक्यतः एक कबल कम
खाता है, वह द्रव्य से अवमौदर्य तप होता है ।

१६—गामे नगरे तह रायहाणि-
निगमे य आगरे पल्ली ।
खेडे कब्बडदोणमुहु-
पट्टणमडम्बसंवाहे ॥

ग्रामे नगरे तथा राजधानीं
निगमे याज्जकरे पल्ल्याम् ।
खेटे कवंट-द्रोणमुख-
पत्तन-मडम्ब-सम्वाहे ॥

१६—ग्राम, नगर, राजधानी, निगम,
आकर, पल्ली, खेडा, कवंट, द्रोणमुख, पत्तन,
मण्डप, संवाह,

१. सविचारमविचारा (अ, ऋ०, वृ०, छ०) ।

२. सपरिकम्मा अपरिकम्मा (अ) ।

३. ओमोयरियं (अ, वृ०पा०, ऋ०) ।

४. कित्तओ काके (ऋ०) ; क्षेत्र काके य (अ) ।

५. भावेण (अ) ।

६. ऊमं (अ) ।

१७—आसमपए विहारे
सन्निवेशे समायधोसे य ।
धलिसेणाखन्वारे
सत्ये संवट्टकोट्टे य ॥

आश्रम-पदे विहारे
सन्निवेशे समाज-धोषे च ।
स्थली-सेना-रक्षन्वाचारे
साधेसंवर्त-कोट्टे च ॥

१७—आश्रम-पद, विहार, सन्निवेश,
समाज, धोष, स्थली, सेना का शिविर, सार्ध,
संवर्त, कोट,

१८—वाडेसु व रच्छासु व
धरेसु वा एवमित्थं खेतं ।
कप्पइ उ एवमाई
एवं खेत्तेण ऊ भवे ॥

वाटेषु वा रक्ष्यासु वा
गृहेषु बंधमेतावत् क्षेत्रम् ।
कल्पते त्वेवमादि
एवं क्षेत्रेण तु भवेत् ॥

१८—वाड़ा, गलियॉ, घर—इनमें अथवा
इस प्रकार के अन्य क्षेत्रों में से पूर्व निश्चय के
अनुसार निर्धारित क्षेत्र में भिक्षा के लिए जा
सकता है । इस प्रकार यह क्षेत्र से अवमोदय
तप होता है ।

१९—पेटा य अद्धपेटा
गोमुत्तिपयंगवीहिया चैव ।
सम्बुक्कावट्टाऽययगन्तुं
पच्चागया छट्ठा ॥

पेटा सार्ध-पेटा
गोमूत्रिका पतंग-वीथिका चैव ।
शम्बूकावर्ता
आयतं-गल्वा-प्रत्यागता षष्ठी ॥

१९—(प्रकारान्तर से) पेटा, अर्द्ध-पेटा,
गोमूत्रिका, पतंग-वीथिका, शम्बूकावर्ता और
आयतं-गल्वा-प्रत्यागता - यह छह प्रकार का
क्षेत्र से अवमोदय तप होता है ।

२०—दिवसस्स पोस्सीणं
चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो ।
एवं चरमाणो खलु
कालोमाणं मुणेयव्वो' ॥

दिवसस्य पौर्णमीणं
क्षतसृणामपि तु यावान् भवेत् कालः ।
एवं चरतः खलु
कालावसानं ज्ञातव्यम् ॥

२०—दिवस के चार प्रहरों में जितना
अभिग्रह-काल हो उसमें भिक्षा के लिए
जाऊंगा, अन्यथा नहीं—इस प्रकार क्या करने
वाले मूनि के काल से अवमोदय तप होता है ।

२१—अहवा तइयाए पोखीए
ऊणाइ घासमेसन्तो ।
चउभागूणए वा
एवं कालेण ऊ भवे ॥

अथवा तुतीयायां पौर्णमां
ऊनायां घासमेवयन् ।
क्षतभागोनायां वा
एवं कालेन तु भवेत् ॥

२१—अथवा कुछ न्यून तीसरे प्रहर
(चतुर्थ भाग आदि न्यून प्रहर) में जो भिक्षा
की एषणा करता है, उसे (इस प्रकार) काल से
अवमोदय तप होता है ।

२२—इत्थो वा पुरिसो वा
अलंकिओ वाऽणलंकिओ वा वि ।
अन्नयरवयत्थो वा
अन्नयरें व वत्थेणं ॥

एवो वा पुक्खो वा
अलङ्कृतो वाऽणलङ्कृतो वापि ।
अन्धतर-वयस्स्थो वा
अन्धतरेण वा वत्थेण ॥

२२—एवो अथवा पुक्ख, अलङ्कृत अथवा
अणलङ्कृत, वयस्य वय वाले, अयस्य वयस्य वाले—

२३—अन्नेण विसेसेण
वण्णेण भावमणुमुयन्ते उ ।
एवं चरमाणो खलु
भावोमाणं मुण्येव्वो^१ ॥

अन्नेन विशेषेण
वर्णेन भावमनुमुंचन् तु ।
एवं चरतः खलु
भावभावमानं ज्ञातव्यम् ॥

२३—अमुक विशेष प्रकार की दशा वर्ण
या भाव से युक्त दाता से भिक्षा ग्रहण करके या,
अन्यथा नहीं—इस प्रकार चर्या करने वाले
मुनि के भाव से अवमोदय तप होता है ।

२४—दव्वे खेत्ते काले
भावम्मि य आहिया उ जे भावा ।
एएहि ओमचरओ
पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥

द्रव्ये क्षेत्रे काले
भावे चाख्यातास्तु ये भावाः ।
एतैरवमचरकः
पर्यवचरको भवेद्भिक्षुः ॥

२४—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो
पर्याय (भाव) कहे गए हैं, उन सबके द्वारा
अवमोदय करने वाला भिक्षु पर्यवचरक
होता है ।

२५—अट्टविहागोयरग्गं तु
तहा सत्तेव एसणा ।
अभिग्गहा य जे अन्ने
भिक्खायरियमाहिया ॥

अष्टविधागोचरस्तु
तथा सप्तवैषणा ।
अभिग्रहादय अन्ये
भिक्षा-चर्या आख्याता ॥

२५—आठ प्रकार के गोचराग्र तथा सात
प्रकार की एषणाएँ और जो अन्य अभिग्रह हैं,
उन्हें भिक्षा-चर्या कहा जाता है ।

२६—खीरदहिसप्पिमाई
पणोयं पाणभोयणं ।
परिवज्जणं रसाणं तु
भणियं रसविवज्जणं ॥

और-दधि-सपिरादि
प्रणीतं पान-भोजनं ।
परिवर्जनं रसानां तु
भणितं रस-विवर्जनम् ॥

२६—दूध, दही, घृत आदि तथा प्रणीत
पान-भोजन और रसों के वर्जन को रस-
विवर्जन तप कहा जाता है ।

२७—ठाणा वीरासणाईया
जोवस्स उ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जन्ति
कायकिलेसं तमाहियं ॥

स्थानानि वीरासनादिकानि
जोवस्य तु सुखावहानि ।
उप्राणि यथा धारयन्ते
काय-क्लेशः स आख्यातः ॥

२७—आत्मा के लिए सुखकर वीरासन
आदि उक्त आसनों का जो अभ्यास किया
जाता है, उसे कायक्लेश कहा जाता है ।

२८—एगन्तमणावाए
इत्थोपसुविवज्जिए ।
सयणासनसेवणया
विवित्तसयणासनं ॥

एकान्तेऽनापाते
स्त्री-पशु-विवर्जिते ।
शयनासन-सेवनं
विविक्त-शयनासनम् ॥

२८—एकान्त, अनापात (जहाँ कोई
आता-जाता न हो) और स्त्री-पशु आदि से
रहित शयन और आसन का सेवन करना
विविक्त-शयनासन (संलीनता) तप है ।

२९—एसो बाहिरगतवो
समासेण वियाहिओ ।
अब्भित्तरं 'तवं एतो'^१
वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥

३०—पायच्छित्तं विणओ
वेयावच्चं तहेव सज्जाओ ।
'क्काणं च विउत्सग्गो'^२
'एसो अब्भित्तरो तवो'^३ ॥

३१—आलोयणारिहाईयं
पायच्छित्तं तु दसविहं ।
जे भिक्खू वहई सम्मं
पायच्छित्तं तमाहियं ॥

३२—अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं
तहेवासणदायणं ।
गुरुभत्तिभावसुस्सूसा
विणओ एस वियाहिओ ॥

३३—आयरियमाइयम्मि^४ य
वेयावच्चम्मि दसविहं ।
आसेवणं जहाधामं
वेयावच्चं तमाहियं ॥

३४—वायणा पुच्छणा चेव
तहेव परियट्ठणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा
सज्जाओ पंचहा भवे ॥

एतद्वाहकं तपः
समासेन व्याख्यातम् ।
आभ्यन्तरं तप इतो
ब्रह्माभ्यन्तुपूर्वतः ॥

प्रायश्चित्तं विनयः
वेयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यानं च व्युत्सर्गः
एतदाभ्यन्तरं तपः ॥

आलोचनाहर्षिकं
प्रायश्चित्तं तु दशविधम् ।
यत्र भिक्षुर्वहति सम्यक्
प्रायश्चित्तं तदाख्यातम् ॥

अभ्युत्थानमञ्जलि-करणं
तथैव आसन-दानम् ।
गुरु-भक्तिः भाव-शुश्रूषा
विनय एव व्याख्यातः ॥

आचार्यादिके च
वेयावृत्त्ये दशविधे ।
आसेवनं यथास्थानम्
वेयावृत्त्यं तदाख्यातम् ॥

वाचना प्रच्छना चैव
तथैव परिवर्तना ।
अनुप्रेक्षा धर्म-कथा
स्वाध्यायः पञ्चधा भवेत् ॥

२९—यह बाह्य तप संक्षेप में कहा गया
है । अब मैं अनुक्रम से आभ्यन्तर तप को
कहूँगा ।

३०—प्रायश्चित्त, विनय, वेयावृत्त्य,
स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग—यह आभ्यन्तर
तप है ।

३१—आलोचनाहर्ष आदि जो दस प्रकार
का प्रायश्चित्त है, जिसका भिक्षु सम्यक्
प्रकार से पालन करता है, उसे प्रायश्चित्त
कहा जाता है ।

३२—अभ्युत्थान (खड़े होना), हाथ
जोड़ना, आसन देना, गुरुजनों की भक्ति करना,
और भावपूर्वक शुश्रूषा करना विनय
कहलाता है ।

३३—आचार्य आदि सम्बन्धी दस प्रकार
के वेयावृत्त्य का यथाशक्ति आसेवन करने को
वेयावृत्त्य कहा जाता है ।

३४—स्वाध्याय पाँच प्रकार का
होता है—

- (१) वाचना (अध्यापन)
- (२) पुच्छना
- (३) परिवर्तना (पुनरावृत्ति)
- (४) अनुप्रेक्षा (अर्थ-चिन्तन) और (५) धर्म-
कथा ।

१. तवो इतो (उ, ऋ०) ।

२. क्काणं उत्सग्गो वि व (उ, ऋ०, स) ।

३. अब्भित्तरओ तवो होइ (उ, ऋ०, स) ।

४. आयरिमाइए (उ, ऋ०) ।

तवमग्गई (तपो-मार्ग-गति)

४२७

अध्ययन ३० : श्लोक ३५-३७

३५—अट्टरुहाणि वज्जित्ता
भाएज्जा सुसमाहिण ।
धम्मसुक्काइ भाणाइ
भाणं तं तु बुहा वए ॥

आस-रीत्रे वर्जयित्वा
ध्यायेत् सुसमाहितः ।
धर्मे-शुक्ले ध्याने
ध्यानं तत्तु बुधा वदन्ति ॥

— ३५—सुसमाहित मुनि आसं और रीत्र
ध्यान को छोड़ कर धर्म और शुक्ल ध्यान का
अभ्यास करे । बुध-जन उसे ध्यान कहते हैं ।

३६—सयणासणठाणे वा
जे उ भिक्खू न वावरे ।
कायस्स विउत्सग्गो
छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥

शयनासन-स्थाने वा
यस्तु भिक्षुर्न व्याघ्रियते ।
कायस्य व्युत्सर्गः
षष्ठः स परिकीर्तितः ॥

३६—सोने, बैठने या लड़े रहने के समय
जो भिक्षु व्याघ्र नहीं होता (काया को नहीं
हिलाता-डुलाता) उसके काया की चेष्टा का
को परित्याग होता है, उसे व्युत्सर्ग कहा जाता
है । वह काम्यन्तराप का छठा प्रकार है ।

३७—एयं तवं तु दुविहं
जे सम्मं आयरे मुणो ।
'से खिप्पं सव्वसंसार
विप्पमुच्चइ पण्डि' १ ॥
—त्ति वेमि ।

एवं तपस्तु द्विविधं
यत्सम्यगाचरेन्मुनिः १) :
स क्षिप्रं सर्वं-संसारान्
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३७—इस प्रकार जो पण्डित मुनि दोनों
प्रकार के तपों का सम्यक् रूप से आचरण
करता है, वह क्षीघ्र ही समस्त संसार से मुक्त
हो जाता है ।

—ऐसा-मैं कहता हूँ ।

१. सो कल्पेत्तरयं अरको

नीरयं तु राहं राहं ॥ (४० वा०) ।

इस अध्ययन के आदि के दो श्लोकों तथा अन्त के एक श्लोक को छोड़ कर शेष १८ श्लोकों में “जे भिक्खु अयइ भिक्खं, से न अच्छइ मण्डले” —ये दो चरण समान हैं। इनके अध्ययन से भिक्षु के स्वरूप का सहज ज्ञान हो जाता है। साथ-साथ संसार-मुक्ति के साधनों का भी ज्ञान होता है।

इस अध्ययन में एक से तेरह तक की संख्या में अनेक विषयों का ग्रहण हुआ है। उनमें से कुछ शब्दों का विस्तार अन्य अध्ययनों में प्राप्त होता है। जैसे—कपाय का २१।६७-७० में, ध्यान का ३०।३५ में, व्रत का २१।१२ में, इन्द्रिय-अर्थ का ३२।२३, ३६, ४६, ६२, ७५ में, समिति का २४।२ में, लेश्या का २४।३ में, छद्म जीवनिष्काय का ३६।६६, १०७ में, आहार के छद्म कारण का २६।३२-३४ में और ब्रह्मचर्य गुणि का १६ में।

इसे पन्द्रहवें अध्ययन ‘संभिक्षु’ का परिशेष भी माना जा सकता है। समवायों (३३) तथा आवश्यक (४) में भी इस अध्ययन में वर्णित विषयों का उल्लेख हुआ है।

सातवें श्लोक से २१ वें श्लोक तक “यत्तते” का प्रयोग हुआ है। इसका सामान्य अर्थ “चरन करता है” होता है। प्रसंगानुसार यत्न का अर्थ है—पालनीय का पालन, परिहरणीय का परिहार, ज्ञेय का ज्ञान और उपदेष्टव्य का उपदेश।

सगतीसठमं अज्झवणं :
चरणविही

एकत्रिंश अज्झवणं :
चरण-विधि

सगतीसङ्गमं अजङ्गमयं : सर्कात्रिषु अध्वयन

चरणविही : चरण-विधि:

मूल

१—चरणविहि पवक्खामि
जोवस्स उ सुहायहं ।
जं चरित्ता बहू जीवा
तिण्णा संसारसागरं ॥

संस्कृत छाया

चरण-विधि प्रवक्ष्यामि
जीवस्य तु सुखावहम् ।
यं चरित्वा बहवो जीवाः
तीर्णाः संसार-सागरम् ॥

हिन्दी अनुवाद

१—अब मैं जीव को सुख देने वाली उस
चरण-विधि का कथन कहूँगा जिसका आचरण
कर बहुत से जीव संसार-सागर को तर गए ।

२—एगओ विरइं कुज्जा
एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियतिं च
संजमे य पवत्तणं ॥

एकतो विरतिं कुर्यात्
एकतश्च प्रवर्तनम् ।
असंयमान्निवृत्तिं च
संयमे च प्रवर्तनम् ॥

२—भिष्टु एक स्थान से निवृत्ति करे
और एक स्थान में प्रवृत्ति करे । असंयम से
निवृत्ति करे और संयम में प्रवृत्ति करे ।

३—रागदोसे य दो पावे
पावकम्मपवत्तणे ।
जे भिक्खू हम्भई निच्चं
से न अच्छइ^१ मण्डले ॥

राग-दोषो य द्वौ पापौ
पाप-कर्म-प्रवर्तकौ ।
यो भिक्षुः रुणद्धि नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

३—राग और द्वेष—ये दो पाप पाप-कर्म
के प्रवर्तक हैं । जो भिक्षु इनका सदा निरोध
करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

४—दण्डाणं गारवाणं च
सल्लाणं च तियं तियं ।
जे भिक्खू चयई निच्चं
से न अच्छइ^२ मण्डले ॥

दण्डानां गौरवाणां च
शल्यानां च त्रिकं त्रिकम् ।
यो भिक्षुस्त्यजति नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

४—जो भिक्षु तीन-तीन दण्डों, गौरवों
और शल्यों का सदा त्याग करता है, वह
संसार में नहीं रहता ।

५—दिब्बे य जे^३ उवसगे
तहा तेरिच्छमाणुसे ।
जे भिक्खू सहई निच्चं
से न अच्छइ^४ मण्डले ॥

दिव्याश्च दानुपसर्गान्
तथा तैरदर्शाश्च मानवान् ।
यो भिक्षुः सहते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

५—जो भिक्षु देव, तिर्यञ्च और मनुष्य
सम्बन्धी उपसर्गों को सदा सहता है, वह संसार
में नहीं रहता ।

१, २. अच्छइ (अ, गुंवा०) ।

३. × (उ, ऋ०) ।

४. अच्छइ (अ, गुंवा०) ।

आनुसूच

इस अध्ययन में मुनि की चरण-विधि का निरूपण हुआ है, इसलिए इसका नाम 'चरणविधि' — 'चरण-विधि' है। चरण का प्रारम्भ यत्ना से होता है और उसका अन्त पूर्ण निवृत्ति (अक्रिया) में होता है। निवृत्ति के इस उत्कर्ष को प्राप्त करने के लिए जो मध्यवर्ती साधना की जाती है, वह चरण है। मोक्ष प्राप्ति को चार साधनाओं में यह तीसरी साधना है।^१

प्रवृत्ति और निवृत्ति—ये दोनों साधना के अंग हैं। मन, वचन और काया को युक्ति का अर्थ है निवृत्ति। मन, वचन और काया के सम्यक् प्रयोग का अर्थ है प्रवृत्ति। चौबीसवें अध्ययन (श्लोक २६) में बतलाया गया है कि समितियों से चरण का प्रवर्तन होता है और गुणियों से अशुभ-अर्थों का निवर्तन होता है—

रथाओ पंच समिद्धो, चरणस्स य पवचणे।

युत्तो निचणणे वृत्ता, असुमत्थेसु सव्वसो ॥

प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों सापेक्ष शब्द हैं। निवृत्ति का अर्थ पूर्ण निषेध नहीं है और प्रवृत्ति का अर्थ पूर्ण विधि नहीं है। प्रत्येक निवृत्ति में प्रवृत्ति और प्रत्येक प्रवृत्ति में निवृत्ति रहती है। इसके अनुसार निवृत्ति का अर्थ होता है—एक कार्य का निषेध और दूसरे कार्य की विधि तथा प्रवृत्ति का अर्थ होता है—एक कार्य की विधि और दूसरे कार्य का निषेध। इसी तथ्य को प्रस्तुत अध्ययन के दूसरे श्लोक में प्रतिपादित किया गया है—

रगओ विरड् कुज्जा, रगओ य पवचणे।

असंजमे नियसि थ, संजमे य पवचणे ॥

इससे एक यह तथ्य निष्पन्न होता है कि प्रत्येक प्रवृत्ति सम्यक् नहीं होती। किन्तु निवृत्ति में से जो प्रवृत्ति फलित होती है, वह भी सम्यक् होती है। उसी का नाम चरण-विधि है। इसे साधना-पद्धति भी कहा जा सकता है।

भगवान् महावीर की चरण-विधि का प्रारम्भ संयम से होता है। उसका आचरण करते हुए जिन विषयों को स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिए, उन्हीं का इस अध्ययन में सांकेतिक उल्लेख है। किन्तु कुछ विषय ऐसे भी हैं, जिनका संयम-पालन से सम्बन्ध नहीं किन्तु वे ज्ञेयमात्र हैं। जैसे—परमाधामिकों के पन्द्रह प्रकार (श्लोक १२) तथा देवताओं के चौबीस प्रकार (श्लोक १६)।

ग्यारह उपासक-प्रतिमाओं का भी मुनि के चरण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। सम्भव है संख्या-पूर्ति की दृष्टि से इन्हें सम्मिलित किया गया हो।

क्षेद-सूत्रों की रचना श्रुत-केवली भद्रबाहु ने की। उनका सत्रहवें और अठारहवें श्लोक में नामोल्लेख हुआ है। इससे दो सम्भावनाओं की ओर ध्यान जाता है—

१—उत्तराध्ययन की रचना क्षेद-सूत्रों की रचना के पश्चात् हुई है।

२—उत्तराध्ययन की रचना एक साथ नहीं हुई है।

दूसरा विकल्प ही अधिक सम्भव है।

६—विगहाकसायसन्नाणं
भाषाणं च दुयं तथा ।
जे भिक्खू वज्जई निच्चं
से न अच्छइ^१ मण्डले ॥

विकथा-कथाय-सन्नानां
ध्यानयोश्च द्विकं तथा ।
यो भिक्षुर्वज्यति नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

६—जो भिक्षु विकथाओं, कथाओं, संज्ञाओं तथा आसं और रोद्र—इन दो ध्यानो का सदा वर्जन करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

७—वएसु इन्द्रियत्थेसु
‘समिइसु किरियासु य’^२ ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

व्रतेष्विन्द्रियायेषु
समितेषु क्रियासु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

७—जो भिक्षु व्रतों और समितियों के पालन में, इन्द्रिय-विषयों और क्रियाओं के परिहार में सदा यत्न करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

८—लेसासु छसु काएसु
छत्ते आहारकारणे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

लेइयासु वट्सु कायेषु
वट्के आहार-कारणे ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

८—जो भिक्षु छह लेइयाओं, छह कायों और आहार के (विधि-निषेध के) छह कारणों में सदा यत्न करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

९—पिण्डोग्गहपडिमासु
भयट्ठाणसु सत्तसु ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

पिण्डावग्रह-प्रतिमासु
भय-स्थानेषु सत्तसु ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

९—जो भिक्षु, आहार-ग्रहण की मात्रा प्रतिमाओं में और मान भय-स्थानों में सदा यत्न करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१०—मयेसु वम्भगुत्तीसु
भिकवुधम्ममि दसविहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

मयेसु ब्रह्म-गुप्तिषु
भिक्षु-धर्म दशचिहे ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१०—जो भिक्षु आठ मद-स्थानों में, दशधर्म की ती गृप्तियों में और दस प्रकार के भिक्षु-धर्म में सदा यत्न करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

११—उवासगणं पडिमासु
भिकवूणं पडिमासु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

उपासकानां प्रतिमासु
भिक्षूणां प्रतिमासु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

११—जो भिक्षु उपासकों की ग्यारह प्रतिमाओं तथा भिक्षुओं की बारह प्रतिमाओं में सदा यत्न करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१. अच्छइ (अ, वृ० पा०) ।

२. समीनासु य भवेय य (वृ० पा०) ।

चरणविही (चरण-विधि)

४३५

अच्ययन ३१ : श्लोक १२-१७

१२—किरियासु भूयामेसु
परमाहम्मिएसु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

किरियासु भूत-प्राप्तेषु
परमाधार्मिकेषु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१२—जो भिक्षु तेरह क्रियाओं, चौदह
जीव-समुदायों और पन्द्रह परमाधार्मिक देवों
में सदा यत्न करता है, वह संसार में नहीं
रहता ।

१३—गाहासोलसएहि
तहा अस्संजमम्मि य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

गाथा-बोडशकेषु
तथाऽसंयमे च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१३—जो भिक्षु गाथा-बोडशक (सूत्र-
कृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्यायनों)
और सत्रह प्रकार के असंयम में सदा यत्न
करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१४—बम्भम्मि नायज्जयणेसु
ठाणेसु यऽ समाहिण ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

ब्रह्मणि ज्ञाताध्ययनेषु
स्थानेषु चाऽलमाधेः ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१४—जो भिक्षु अठारह प्रकार के
ब्रह्मचर्य, उन्नीस ज्ञात-अध्ययनों और बीस
असमाधि-स्थानों में सदा यत्न करता है, वह
संसार में नहीं रहता ।

१५—एगवीसाण सबलेसु
बावीसाण परीसहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

एकविंशतोऽशबलेषु
द्वाविंशतोऽपगीषहेषु ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१५—जो भिक्षु इक्कीस प्रकार के सबल-
दोषों और बाईस परीषहों में सदा यत्न करता
है, वह संसार में नहीं रहता ।

१६—तेवीसइ सूर्यगडे
रूवाहिणसु सुरेसु अ ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

त्रयोविंशतोऽसूत्रकृतेषु
रूपार्थकेषु सुरेषु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१६—जो भिक्षु सूत्रकृतांग के तेईस
अध्ययनों और चौबीस प्रकार के देवों में सदा
यत्न करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१७—पणवीसभावणाहिं
उद्देसेसु दसाइणं ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

पंचविंशति-भावनासु
उद्देशेषु दशादीनाम् ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१७—जो भिक्षु पचीस भावनाओं और
दशाधुतस्केय, व्यवहार और बृहत्कल्प के
छत्तीस उद्देशों में सदा यत्न करता है, वह
संसार में नहीं रहता ।

१८—अणगारगुणेहि च
पक्कप्पमि तहेव य' ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

अणगार-गुणेषु च
प्रकल्पे तथैव च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१८—जो भिक्षु साधु के सत्ताईस गुणों
और अठाईस आचार-प्रकल्पों में सदा यत्न
करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१९—पावसुयपसंगेसु
मोहङ्गणेषु चेव य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

पाप-श्रुत-प्रसंगेषु
मोह-स्थानेषु चैव च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१९—जो भिक्षु उनतीस पाप-श्रुत
प्रसंगों और तीस मोह-के स्थानों में सदा यत्न
करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

२०—सिद्धाङ्गुणजोगेसु
तेत्तीसासायणासु^१ य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

सिद्धाङ्गुण-योगेषु
अपत्तिशशासनासु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

२०—जो भिक्षु सिद्धों के इकतीस आदि
गुणों, बत्तीस योग-संग्रहों तथा तृतीस आशात-
नाशों में सदा यत्न करता है, वह संसार में
नहीं रहता ।

२१—इह एएसु ठाणेषु
जे भिक्खू जयई सया ।
खिप्पं से सव्वसंसारा
विप्पमुच्चइ पण्डितो^२ ॥
—त्ति बेमि ।

इत्येतेषु स्थानेषु
यो भिक्षुर्यतते सदा ।
किमिं स सर्व-संसाराह
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२१—जो पण्डित भिक्षु इस प्रकार इन
स्थानों में सदा यत्न करता है, वह क्षीप्र ही
समस्त संसार से मुक्त हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. उ (उ, ख, घ, ङ) ।

२. ० णामि (अ) ।

बहीसहम अज्जयणं :
पमायट्टाणं

ह्वात्रिक अज्जयण :
प्रमाद-स्थान

आसुष

इस अध्ययन में प्रमाद के कारण तथा उनके निवारण के उपायों का प्रतिपादन किया गया है। इसलिये इसका नाम 'पमायद्वाणी'—'प्रमाद-स्थान' है। प्रमाद साधना का विघ्न है। उसका निवारण कर साधक जितेन्द्रिय बनता है। प्रमाद के प्रकारों का विभिन्न क्रमों में संकलन हुआ है :

१—प्रमाद के पाँच प्रकार^१—

मद्य, विषय, कषाय, मिद्रा और विकथा ।

२—प्रमाद के छह प्रकार^२—

मद्य, मिद्रा, विषय, कषाय, घृत और प्रतिलेखना ।

३—प्रमाद के आठ प्रकार^३—

अज्ञान, संशय, मिथ्या-ज्ञान, राग, द्वेष, स्मृति-अंश, धर्म में अनादर, मन, वचन और काया का दुष्प्रणिधान ।

मानसिक, वार्षिक और कार्षिक—इन सभी दुःखों का मूल है विषयों की सतत आकांक्षा ।

विषय आपात-भद्र (सेवन काल में सुखद) होते हैं किन्तु उनका परिणाम विरस होता है। शास्त्रकारों ने उन्हें 'किपाक फल' की उपमा से उपमित किया है। (श्लो० १६, २०)

आकांक्षा के मूल हैं—राग और द्वेष। वे संसार-अमण के हेतु हैं। उनको विद्यमानता में चोतरागता नहीं आती। चोतराग-भाव के बिना जितेन्द्रियता सम्पन्न नहीं होती।

जितेन्द्रियता का पहला साधन है—आहार-विवेक। साधक को प्रणीत आहार नहीं करना चाहिए। अर्ति-मात्रा में भोजन नहीं करना चाहिए। गर-भार नहीं खाना चाहिए। प्रणीत या अर्ति-मात्रा में किया हुआ आहार उद्दीपन करता है, उससे वासनाएँ उभरती हैं और मन चंचल हो जाता है।

इसी प्रकार रक्तावसा, अल्पभोजन, विषयों में अननुरक्ति, दृष्टि-संयम, मन, वाणी और काया का संयम, चिन्तन की पवित्रता—ये भी जितेन्द्रिय बनने के साधन हैं।

प्रथम ३१ श्लोकों में इन उपायों का विशद निरूपण हुआ है। पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होने से क्या-क्या दोष उत्पन्न होते हैं? उनके उत्पादन, संरक्षण और व्यापरण से क्या-क्या दुःख उत्पन्न होते हैं?—इन प्रश्नों का स्पष्ट समाधान मिला है।

१—उत्तराध्ययन नियुक्ति, भाषा ५२० :

२—स्थानांग ६, सूत्र ५०२ :

छन्विहै पमाए पणते—सं जहा—सज्जपमाए, णिहापमाए, विसवपमाए, कसायपमाए, खयपमाए, पक्खिहणापमाए ।

३—प्रवचन सारोद्धार, द्वार २०७, भाषा ११२२, ११२३ :

पमाओ य मणिदेहि, भणिओ अट्टपेयथो ।

अन्नाणं संसओ वेव, मिच्छानाणं तहव य ॥

रागो दोषो मरुअंसो, धम्मस्मि य अणापरो ।

ओगाणं दुप्पणीहाणं, अट्टहा वज्जियव्वथो ॥

जब तक व्यक्ति इन सब उपायों को जान कर अपने आचरण में नहीं उतार लेता तब तक वह दुःखों के दारुण परिणामों से नहीं छूट सकता ।

विषय अपने आप में अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं है । वह व्यक्ति के राग-द्वेष से सम्मिश्रित होकर अच्छा या बुरा बनता है । इन्द्रिय तथा मन के विषय वीतराग के लिए दुःख के हेतु नहीं हैं; राग-यस्त व्यक्ति के लिए वे परम दारुण परिणाम वाले हैं । इसलिए ब्रम्हचर्य और मुक्ति अपनों को प्रवृत्ति पर अवलम्बित है ।

जो साधक इन्द्रियों के विषयों के प्रति विरक्त है, उसे उनकी मनोज्ञता या अमनोज्ञता नहीं सताती । उसने समता का विराजित होता है । साम्य के विराज से काम-गुणों को पुण्या का नाश हो जाता है और साधक उत्तरोत्तर गुणस्वानों में आरोह करता हुआ लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । (स्क० १०६, १०७, १०८)

साधना को हठिष्ठ से इस अध्ययन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । अप्रमाद ही साधना है । साधक को प्रति १५ अन्नमय या जागड़कर रहना चाहिए । नियुक्तिकार ने बताया है कि भगवान् श्रवण साधना में प्रायः अप्रमत्त रहे । उनका साधना-काल हजार वर्ष का था । उसमें प्रमाद-काल एक दिन-रात का था । भगवान् महावीर ने बारह वर्ष और तेरह पञ्चतम साधना की । उसमें प्रमाद-काल एक अन्तर्मुहूर्त का था । दोनों तोयोंद्वारा के प्रमाद-काल को नियुक्तिकार ने 'संकलित-काल' कहा है । इसका तात्पर्य यह है कि एक दिन-रात और एक अन्तर्मुहूर्त का प्रमाद एक साथ नहीं हुआ था । किन्तु उनके साधना-काल में जो प्रमाद हुआ, उसे संकलित किया जाए तो वह एक दिन-रात और एक अन्तर्मुहूर्त का होता है ।^१

शान्त्याचार्य ने बताया है कि कुछ आचार्य अनुपपत्ति के भय से भगवान् श्रवण और महावीर के प्रमाद को केवल निद्रा-प्रमाद मानते हैं ।^२ किन्तु नियुक्तिकार और शान्त्याचार्य का यह अभिमत नहीं है और वह संगत भी है । नियुक्तिकार के निरूपण का उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार भगवान् श्रवण और महावीर अधिक से अधिक अप्रमत्त रहे हैं, उसी प्रकार सब अन्नम भी अधिक से अधिक अप्रमत्त रहे ।

१—क) उत्तराध्ययन नियुक्ति, भाषा ५२३, ५२४ :

वाससहस्रं उग्रं, तथमाहारस्स आयरंतस्स ।
ओ किर पमायकाळो, अहोरत्तं तु संकलितं ॥
वासवासे अहिए, तव चरंतस्स वदमानस्स ।
ओ किर पमायकाळो, अंतमुहुरंतं तु संकलितं ॥

(क) बृहद्बुद्धि, पत्र ६२० :

किमप्येकावस्थामाविनः प्रमादस्य काळ उपायपेत्थायइयाह—अहलितः, किमुकं भवति ?—अप्रमादगुणस्यानन्तमौहृतिकत्वेनानेकयोऽपि प्रमादप्रती तद्विषयविषयभूतस्वान्तर्मुहुरंतस्सहस्रेष्वेवैवास्तेवास्मात्सुखमथा सर्वकालसहस्रकालावस्थोरात्रमेवामृतं तथा द्वादश वर्षावधिकानि सप्तशतौ वर्षमानस्य यः किल प्रमादकालः प्रावत्सोऽन्तर्मुहुरंतमेव सङ्कलितः, इहाप्यन्तर्मुहुरंतानामसहस्रेष्वेवैवास्तेवास्मादस्थितिविषयान्तर्मुहुरंतानां सुखमत्वं, सङ्कलनान्तर्मुहुरंतस्य च बृहत्तरत्वमिति भावनीयम् ।

२—बृहद्बुद्धि, पत्र ६२० :

अन्यं त्वेतदनुपपत्तिभीत्या निद्राप्रमाद एवापि विवक्षित इति व्याचक्षत इति ।

वनीसङ्गमं अज्ज्ञयणं : द्वात्रिंश अध्यायन

प्रमायट्टाणं : प्रमाद-स्थानम्

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

- १—अचन्तकालस्स समूलगस्स
सव्वस्स दुक्खस्स उ जां पमाक्खो ।
तं भासओ मे पडिपुणञ्जित्ता
मुण्ह एग्गहियं^१ हिपत्थं ॥
- २—नाणस्स सव्वस्स^२ पगासणाए
अन्ताणमोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दासस्स थ संखएणं
एगन्तसोक्खं समुवेइ मांक्खं ॥
- ३—तस्सेस मग्गा गुरुविद्धसेवा
विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।
'सज्जायएगन्तनिसेवणा य'^३
मुत्तत्थसंचिन्तणया धिई य ॥
- ४—आहारमिच्छे^४ मियमेसणिज्जं
सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धिं ।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजांगं
समाधिकामं समणे तवस्सो ॥
- ५—न वा लभेज्जा निउणं सहायं
गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
एको वि पावाइ विवज्जयत्तो^५
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

- अत्यन्त-कालस्य समूलकस्य
सर्वस्य दुःखस्य तु यः प्रमोक्षः ।
तं भाषमाणस्य मे प्रतिपूर्ण-चित्ताः
शृणुनकाग्र्य-हितं हितायम् ॥
- ज्ञानस्य सर्वस्य प्रकाशनया
अज्ञान-मोहस्य विवर्जनया ।
रागस्य दोषस्य च संश्रयेण
एकान्त-सौख्यं समुपैति मोक्षम् ॥
- तस्यैव मार्गो गुरु-बुद्ध-सेवा
विवर्जना बाल-जनस्य दूरात् ।
स्वाध्यायैकान्त-निषेवणा च
सूत्रार्थ-संविन्तना धृतिश्च ॥
- आहारमिच्छेन्मित्रमेवणीयं
सहायमिच्छेन्नपुणार्थ-बुद्धिम् ।
निकेतमिच्छेद् विवेक-यारयं
समाधिकामः श्रमणस्तपस्वी ॥
- न वा लभेत निपुणं सहायं
गुणाधिकं वा गुणतः समं वा ।
एकोऽपि पापानि विवर्जयन्
विहरेत् कामेष्वसज्जन् ॥

- १—अनादि-कालीन सब दुःखों और उनके कारणों (कषाय आदि) के मोक्ष का जो उपाय है वह मैं कह रहा हूँ। वह ऐकाग्र्य-हित (ध्यान के लिए हितकर) है, अतः तुम प्रतिपूर्ण चित होकर हित (मोक्ष) के लिए मुनो ।
- २—सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश, अज्ञान और मोह का नाश तथा राग और द्वेष का क्षय होने में मे आत्मा एकान्त मूलमय मोक्ष की प्राप्त होता है ।
- ३—गुरु और बुद्धों (स्वविर मुनियों) की सेवा करना, अज्ञानी-जनों का दूर से ही वर्जन करना, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना तथा धैर्य रखना, यह मोक्ष का मार्ग है ।
- ४—समाधि चाहने वाला तपस्वी श्रमण परिमित और एषणीय आहार को दृष्टि करे । जीव आदि पदार्थ के प्रति निपुण बुद्धि वाले मीसार्य को सहायक बनाए और विविक्त (स्त्री, पशु, नृपुंसक से रहित) घर में रहे ।
- ५—यदि अपने में अधिक गुणवान् या अपने गमान निपुण सहायक न मिले तो वह पापों का वर्जन करता हुआ, विषयों में अनासक्त रह कर अकेला ही विहार करे ।

१. एगन्त' (६० पा०, छ०) ।

२. सव्वस्स (६० पा०, छ०, आ) ।

३. ' निसेवणाए (६० पा०) ; ' निसेवणा य (६०) ।

४. निउणह' (६० पा०) ।

५. अणासक्लो (६० पा०) ।

६—जहा य अण्डप्पभवा बलागा
अण्ड बलागप्पभवं जहा य ।
एमेव मोहाययणं सु तण्हं^१
मोहं च तण्हाययणं वयन्ति ॥

यथा व्याण्ड-प्रभवा बलाका
अण्ड बलाका-प्रभवं यथा च ।
एवमेव मोहायतनं खलु तृष्णां
मोहं च तृष्णायातनं वदन्ति ॥

६—जैसे बलाका अण्ड से उत्पन्न होती है और अण्ड बलाका से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तृष्णा मोह से उत्पन्न होती है और मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है ।

७—रागो य दोसो वि य कम्मवीयं
कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति ।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं
दुक्खं च जाईमरणं वयन्ति ॥

रागइव दोषोऽपि च कर्म-बीजं
कर्म च मोह-प्रभवं वदन्ति ।
कर्म च जाति-मरणस्य मूलं
दुःखं च जाति-मरणं वदन्ति ॥

७—राग और द्वेष कर्म के बीज हैं । कर्म मोह से उत्पन्न होता है और वह जन्म-मरण का मूल है । जन्म-मरण को दुःख को मूल कहा गया है ।

८—दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो
मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो
लोहो हओ जस्स न किंचणाइ^२ ॥

दुःखं हनं यस्य न भवति मोहो
मोहो हतो यस्य न भवति तृष्णा ।
तृष्णा हता यस्य न भवति लोभः
लोभो हतो यस्य न किंचनानि ॥

८—जिसके मोह नहीं है, उसने दुःख का नाश कर दिया । जिसके तृष्णा नहीं है, उसने मोह का नाश कर दिया । जिसके लोभ नहीं है, उसने तृष्णा का नाश कर दिया । जिसके पाप कुछ नहीं हैं, उसने लोभ का नाश कर दिया ।

९—रागं च दोसं च तद्देव मोहं
उद्धत्तकामेण समूलजालं ।
जे जे 'उवाया पडिवण्णिजय्वा'^३
ते कित्तइस्सामि अहणुपुण्वि ॥

रागं च दोषं च तथैव मोहं
उद्धर्तुकामेन समूलजालम् ।
ये ये उपायाः प्रतिपत्तव्याः
तान् कीर्तयिष्यामि यथानुपूर्वि ॥

९—राग, द्वेष और मोह का समूल उन्मूलन चाहते वाले मूर्ति को जिन-जिन उपायों का आलम्बन लेना चाहिए उन्हें मैं क्रमशः बतूँगा ।

१०—रसा पगामं न निसेवियव्वा
पायं रसा दित्तकरा^४ नराणां ।
दित्तं च कामा समभिद्ववन्ति
दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥

रसाः प्रकामं न निषेधितव्याः
प्राप्यो रसा दत्तिकरा नराणाम् ।
दत्तं च कामाः समभिद्ववन्ति
दुमं यथा स्वादु कलमिव पक्षिणः ॥

१०—रसों का प्रकाम (अधिक मात्रा में) सेवन नहीं करना चाहिए । वे प्रायः मनुष्य की धातुओं को उड़ोस करते हैं । जिसकी धातुएं उड़ोस होती हैं उसे काम-भोग खराते हैं, जैसे स्वादिष्ट कल वाले बृथ को पक्षा ।

११—जहा दवगो पउरिन्धणे वणे
समाहओ नोवसमं उवेइ ।
एविन्दियमो वि पगामभोइणो
न बम्भयारिस्स हियाय कस्सई ॥

यथा दवाग्निः प्रचुरेन्धने बने
स-भारतो नोपशममुपैति ।
एवमिन्द्रियाग्निरपि प्रकामभोजिनो
न ब्रह्मचारिणो हिताय कस्यचित् ॥

११—जैसे पवन के भोको के साथ प्रचुर इन्धन वाले वन में लगा हुआ दावानल उपशान्त नहीं होता, उसी प्रकार प्रकाम-भोजी (दूस-दूस कर खाने वाले) की इन्द्रियाग्नि (कामाग्नि) शान्त नहीं होती । इसलिए प्रकाम-भोजन किसी भी ब्रह्मचारी के लिए हितकर नहीं होता ।

१. तण्हा (अ) ।

२. किंचनानि (वृ० पा०) ।

३. उवाया परि^० (वृ० पा०) ।

४. दित्तकरा (वृ० पा०) ।

१२—विविक्तमेजासणजन्तियाणं
ओमासणाणं^१ दमिइन्दियाणं ।
न रागसत्तु धरिसेइ चित्तं
पराइओ वाहिरिवासहेहि ॥

१३—जहा विगालावसहस्स मूले
न मुससाणं वसहा पसन्था ।
एमेव इत्थो निलयस्स मज्जे
न बम्भयारिस्स समो निवासो ॥

१४—न रूपलावण्यविलासहासं
न जल्पितमिगितं वीक्षितं वा ।
इत्थो जणं चित्तं निवेसइत्ता
दट्ठं ववस्से समणे तवस्सी ॥

१५—अदंसणं चेव अपत्थणं च
अविन्तणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थो जणस्सारियक्काणजोगं
हिय सया वम्भवए^२ रयाणं ॥

१६—कामं तु देवीहि विभूसियाहि
न चाइया खोभइउं तिगुत्ता ।
तहा वि एगन्तहियं ति नचा
विवित्तवासो^३ मुणिणं^४ पसत्थो ॥

विविक्त शब्दायन-यन्त्रितानां
अवमानानां दमितेन्द्रियाणाम् ।
न राग-शत्रुं धर्षयति चित्तं
पराजितो व्याघ्रिबोवधेः ॥

यथा विडालावसयस्य मूले
न मूषकाणां वसतिः प्रशस्ता ।
एवमेव स्त्री-निलयस्य मध्ये
न ब्रह्मचारिणः क्षमो निवासः ॥

न रूप-लावण्य-विलास-हासं
न जल्पितमिगितं वीक्षितं वा ।
स्त्रीणां चित्ते निवेश्य
दृष्टुं व्यवस्थेयम् श्रमणस्तपस्वी ॥

अवशेनं चेवाप्रायेणं न
अविन्तनं चेवाकीर्तनं च ।
स्त्रीजनस्याप्रायध्यान-योग्यं
हितं सदा ब्रह्मचरित्तानाम् ॥

कामं तु देवीभिर्विभूषिताभिः
न दाकिताः शोभयितुं श्रिगुताः ।
तथाप्येकान्तहितमिति ज्ञात्वा
विविक्त-वासो मुनीनां प्रशस्तः ॥

१२—जो विविक्त-शय्या और बासन से
नियंत्रित होते हैं, जो कम खाते हैं और
जितेन्द्रिय होते हैं, उनके चित्त को राग-शत्रु
वैसे ही आक्रान्त नहीं कर सकता—जैसे
योग्य से पराजित रोग देह को ।

१३—जैसे बिल्ली की बस्ती के पास बूढ़ों
का रहना अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार
स्त्रियों की बस्ती के पास ब्रह्मचारी का रहना
अच्छा नहीं होता ।

१४—तपस्वी श्रमण स्त्रियों के रूप,
लावण्य, विलास, हास्य, मधुर आलाप,
इत्थित और चित्रवन को चित्त में रमा कर उन्हें
देखने का संकल्प न करे ।

१५—जो मदा श्रावण में रत हैं, उनके
लिए स्त्रियों को न देखना, न चाहना, न
चिन्तन करना और न वर्णन करना हितकर है
तथा धर्म-ध्यान के लिए उपयुक्त है ।

१६—यह ठीक है कि तीन गुणों से
गुप्त मुनियों को विभूषित देवियों भी विचलित
नहीं कर सकतीं, फिर भी भगवान् ने एकान्त
हित की दृष्टि से उनके विविक्त-वास को
प्रशस्त कहा है ।

१. ओमासणाए, ओमासणाई (इ०, पा०) ।

२. 'वीहिणं' (इ०, ड०) ।

३. वंभवेरे (ड, बु०पा०, ऋ०) ।

४. 'भाको' (ड, ऋ०) ।

५. शणिणो (अ) ।

१७—मोक्षाभिकंखिस्स वि माणवस्स
संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे ।
नेयारिस्स^१ दुत्तरमत्थि लोए
जहित्थिओ बालमणोहराओ ॥

मोक्षाभिकंखिणोपि मानवस्य
संसार-भीरोः स्थितस्यधर्मे ।
नेतादृशं दुस्तरमस्ति लोके
यथा स्त्रियो बाल-मनोहराः ॥

१७—मोक्ष चाहने वाले संसार-भीरु एवं धर्म में स्थित मनुष्य के लिए लोक में और कोई वस्तु ऐसी दुस्तर नहीं है, जैसी दुस्तर भक्तानियों के मन को हरने वाली स्त्रियाँ हैं ।

१८—एण य संगे समइक्कमिता
सुहुत्तरा चेव भवन्ति सेसा ।
जहा महासागरमुत्तरित्ता
नई भवे अवि गंगासमाणा ॥

एतांश्च सङ्गान् समतिक्रम्य
सुखोत्तराश्चैव भवन्ति शेषाः ।
यथा महासागरमुत्तोयं
नदी भवेदपि गंगा-समाना ॥

१८—जो मनुष्य इन स्त्री-विषयक आसक्तियों का पार पा जाता है, उसके लिए शेष सारी आसक्तियाँ बैसे ही गुजर (गुजर से पार पाने योग्य) हो जाती हैं जैसे महासागर का पार पाने वाले के लिए गंगा जैसी बड़ी नदी ।

१९—कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं
सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ।
जं काइयं माणसियं च किंचि
तत्सन्तगं गच्छइ वीयरगो ॥

कामानुगुद्धि-प्रभवं खलु दुःखं
सर्वस्य लोकस्य सदेवकस्य ।
यत्कायिकं मानसिकं च किंचित्
तस्यान्तर्गतं गच्छति वीतरागः ॥

१९—सब जीवों के, और क्या देवताओं के भी जो कुछ कायिक और मानसिक दुःख हैं, वह काम-भोगों का सतत अभिलाषा से उत्पन्न होता है; वीतराग उस दुःख का अन्त पा जाता है ।

२०—जहा य किपागफला मणोरमा
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा ।
‘ते खुहुए जीविय’^२ पणमाणा
एआंवमा कामगुणा विवागे ॥

यथा च किम्पाक-फलानि
मनोरमाणि
रसेन वर्णेन च भुज्यमानानि ।
तानि शुद्धके जीविते पच्यमानानि
एतद्वृत्तमाः काम-गुणाविपाके ॥

२०—जैसे किपाक फल खाने के समय रस और वर्ण सं मनोरम होते हैं और परिपाक के समय शुद्ध-जीवन का अन्त कर देते हैं, काम-गुण भी विपाक काल में ऐसे ही होते हैं ।

२१—जे इन्दियाणं विसया मणुन्ना
न तेसु^३ भावं निसिरे कयाइ ।
न याऽमणुन्नेसु मणं पि^४ कुज्जा
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥

ये इन्द्रियाणां विषया मनोज्ञाः
न तेषु भावं निवृज्जे^३ कदापि ।
न चात्मनोऽपि मनोऽपि कुर्वन्^४
समाधि-कामः धमनस्तपस्वी ॥

२१—समाधि चाहने वाला तपस्वी धमन इन्द्रियों के जो मनोज्ञ विषय हैं उनको और भी मन न करे—राग न करे और जो अमनोज्ञ विषय हैं उनकी ओर भी मन न करे—द्वेष न करे ।

१. न यारिस्सं (आ, इ, उ, ऋ०) ।

२. ते जीवियं खुपर (अ) ; ते जीवियं खंदि (ब० पा०) ; ते खुपर जीवियं (ख०) ।

३. तेसि (अ) ।

४. इ (अ) ।

२२—चक्रवृत्तस्त्वं गृहणं वयन्ति
तं रागहेतुं तु मणून्ममाहुः ।
तं दोसहेतुं अमणून्ममाहुः
समो य जा तेसु स दोसरागो ॥

चक्षुषो रूपं ग्रहणं वदन्ति
तद् राग-हेतु तु मनोजमाहुः ।
तद् दोष हेतु अमनोजमाहुः
समस्त यस्तयोः स वीतरागः ॥

२२—चक्षु का विषय कर है । जो रूप
राग का हेतु होता है उसे मनोज कहा जाता
है, जो दोष का हेतु होता है, उसे अमनोज कहा
जाता है । जो मनोज और अमनोज रूपों में
समान रहता है, वह वीतराग होता है ।

२३—रूपस्स चक्रवृत्तं गृहणं वयन्ति
चक्रवृत्तस्त्वं गृहणं वयन्ति ।
रागस्स हेतुं समणून्ममाहुः
दोसस्स हेतुं अमणून्ममाहुः ॥

रूपस्य चक्षुर्ग्रहणं वदन्ति
चक्षुषो रूपं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतु समनोजमाहुः
दोषस्य हेतु अमनोजमाहुः ॥

२३—चक्षु रूप का ग्रहण करता है । रूप
चक्षु का प्राप्ति है । जो रूप राग का हेतु होता
है उसे मनोज कहा जाता है, जो दोष का
हेतु होता है, उसे अमनोज कहा जाता है ।

२४—रूपेसु जा गिद्धिमुवेइ तिव्वं^१
अकालियं पावइ से विणासं^२ ।
रागाउरे से जह वा पयंगे
आलायलोले समुवेइ मच्चुं ॥

रूपेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरः स यथा वा पतद्भ्रूः
आलोक-लोलः समुपैति मृत्युम् ॥

२४—जो मनोज रूपों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है, जैसे प्रकाश-मौल्य पतंगा रूप में
आसक्ति होकर मृत्यु को प्राप्त होता है ।

२५—जे यावि दांसं समुवेइ तिव्वं^३
तंसि क्खणे से उ 'उवेइ दुक्खं'^४ ।
दुहन्तदासेण सएण जन्तु
न किंचि रूधं अवरज्झई से ॥

यश्चापि दोष समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तृपेति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चिदपमवराध्यति तस्य ॥

२५—जो मानाज रूपों में तीव्र द्वेष करता
है, वह अपने दुर्दम दोष से उन्नीक्षण दुःख को
प्राप्त होता है । रूप उसका कोई अपराध नहीं
करता ।

२६—एगन्तरत्तं^५ रहइरंसि रूपे
अताल्लिसे से कुणई पजांसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिण्णई तेण मुणी विरागो ॥

एकान्तरक्तो रश्चिरे रूपे
अतादृशे स करोति प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्प्रोद्धामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

२६—जो मनोहर रूप में एकान्त अनुरक्त
होता है और अमनोहर रूप में द्वेष करता है,
वह अमाना दुःखामक पोड़ा को प्राप्त होता
है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं
होता ।

१. समणूणमाहु (वृ० पा०) ।

२. तसमणूणमाहु (वृ० पा०) ।

३. निच्वं (अ) ।

४. किलेसं (वृ० पा०) ।

५. निच्वं (वृ०, अ) ।

६. समुवेति सव्वं (वृ० पा०) ।

७. रूपो (अ) ।

२७—रूपाणुगासाणुगए^१ य जीवे
चराचरे हिंसइ ऽणेगख्वे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले
पोलेइ अत्तट्ठगुरू किल्लिहे ॥

२८—रूपाणुवाएण^२ परिगहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे^३ ।
वए विओगे य कहि सुहं से ?
संभोगकाले य अत्तिल्लामे^४ ॥

२९—ख्वे अत्ति ते य परिगहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुहो परस्स
लोभाबिले आययई अदत्तं ॥

३०—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
ख्वे अत्तिस्स परिगहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा
तत्थाऽवि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

३१—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुहो दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
ख्वे अत्ति तो दुहो ओ अणिस्सो ॥

रूपाणुगासानुगतइ च जीवान्
चराचरान् हिनस्यनेक-रूपान् ।
चित्रंस्तान्परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्थं-गुरुः किल्लिष्टः ॥

रूपाणुगतेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्निधौ ।
व्यये विधौ च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

रूपेऽनुग्रहं परिग्रहे च
सत्त्वोपसत्त्वो मोषेति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखी परस्य
लोभाबिल आवस्येऽस्तम् ॥

तृष्णाभिभूयस्याऽवलहारिणः
रूपेऽनुसृत्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा बद्धं ते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

मृषा पदवाञ्छ पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखी दुरन्तः ।
एवमवस्तानि समादधानः
रूपेऽनुसृष्टो दुःखितोऽनिधः ॥

२७—मनोज रूप की अभिलाषा के पाछे
बलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के व्रत-स्वावर
जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन की
प्राधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी
पुरुष नाना प्रकार से उन चराचर जीवों को
परितप्त और पीड़ित करता है ।

२८—रूप में अनुराग और नमस्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन सब में उसे सुख
कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

२९—जो रूप में अतृप्त होता है और
उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती । वह असन्तुष्टि के
दोष से दुःखी और लोभग्रस्त होकर दूसरों की
रूपवान् वस्तुएँ चुरा लेता है ।

३०—वह तृष्णा से पराजित होकर चोरी
करता है और रूप-परिग्रहण में अतृप्त होता
है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा
की वृद्धि होती है । माया-मृषा का प्रयोग
करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

३१—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पयवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह रूप में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ,
दुःखी और आश्रय-हीन हो जाता है ।

१. 'वायाणुगए' (वृ० पा०) ।

२. 'वाए य (अ) ; 'रागेण (वृ० पा०) ; 'वाए ण (छ०) ।

३. 'तन्निओगे (उ) ।

४. 'अत्ति' (वृ०) ; 'अत्ति' (वृ० पा०) ।

३२—रूपाणुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज कयाइ किचि? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

३३—एमेव रूवन्मि गआं पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुइचित्तो य* चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

३४—रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पए भवमज्जे वि सत्तो
जलेण वा पोक्खारिणीपलासं ॥

३५—सोयस्स सइं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्ममाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्ममाहु
समो य जो तेसु स वीयरारो ॥

३६—सहस्स सोयं गहणं वयन्ति
सोयस्स सइं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्ममाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्ममाहु ॥

३७—सहेसु जो गिद्धिसुवेइ तिव्वं*
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे हरिणमिगे व* सुद्धे*
सदे अत्तिसे समुवेइ मच्चुं ॥

रूपानुरक्तस्य नरस्येवं
कृतः सुखं भवेत्कदापि किञ्चित् ? ।
तत्रोपभोगोऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

एवमेव रूपे गतः प्रदोषं
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रवृष्ट-चित्तस्य चिन्तोति कम्
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

रूपे विरक्तो मनुजो विदोषकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमज्जेऽपि सन्न
जलेनैव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

श्रोत्रस्य शब्दं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समस्रव यस्तेषु स बीतरागः ॥

शब्दस्य श्रोत्रं ग्रहणं वदन्ति
श्रोत्रस्य शब्दं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

शब्देषु यो गृद्धिमुपैति तीर्षा
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रामातुरः हरिण-मुग्ध इव मुग्धः
शब्दे अतुष्टः समुपैति मृत्युम् ॥

३२—रूप में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

३३—वही प्रकार जो रूप में डूब रहता
है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता
है । प्रदोष-युक्त चित्त वाला व्यभिच कर्म का
बंध करता है, वही परिणाम-काल में उसके
लिए दुःख का हेतु बनता है ।

३४—रूप से विरक्त मनुष्य शोक-युक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनो का पत्र जल से
लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह कर
अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं
होता ।

३५—श्रोत्र का विषय शब्द है । जो
शब्द राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा
जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे
अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ और
अमनोज्ञ शब्दों में समान रहता है, वह बीतराग
होता है ।

३६—श्रोत्र शब्द का ग्रहण करता है ।
शब्द श्रोत्र का प्राप्ता है । जो शब्द राग का
हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा
जाता है ।

३७—जो मनोज्ञ शब्दों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है । जैसे—शब्द में अतृप्त बना हुआ
रामातुर मुग्ध हरिण नामक पशु मृत्यु को प्राप्त
होता है ।

१. व (अ) ।

२. गिण्णं (अ) ।

३. व्य (व, अ) ।

४. कुद्धे (अ) ।

३८—जे यावि दोसं समुवेइ तिक्कं^१
तंसि कलणे से उ उवेइ दुक्कं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किंचि सद्धं अवरज्जई से ॥

३९—एगन्तरले रुइरंसि सद्धे
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणे विरागो ॥

४०—सद्धानुगासाणुणं य जीवे
चराचरे हिंसइ उणैगरूवे ।
चित्तेहि ते परिखावेइ बाले
पोलेइ अत्तङ्गुरु किलिद्धे ॥

४१—सद्धानुवाएण^२ परिग्रहेण
उपायणे रक्खणस्सिओगे ।
वए विओगे य कहि सुहं से ?
संभांगकाले य अतित्तिभाभे^३ ॥

४२—सद्धं अतित्ति य परिग्रहे य
सत्तोवसतो न उवेइ तुट्ठि ।
अनुद्धिदोसेण दुहो परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

४३—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणे
सद्धं अतित्त्स परिग्रहे य ।
मायामुस वड्डइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तोत्रं
तस्मिन् क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चित्कुर्यदपराधं प्रति तस्य ॥

एकान्तरकतो रुचिरे शब्दे
अतादृशे स कुरुते प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

शब्दानुगासानुगतश्च जीवः
चराचरान् हिंसत्यनेक-रूपान् ।
चित्रैस्तान् परित्यापयति बालः
पीडयत्यतमार्थ-गुरुः क्लिष्टः ॥

शब्दानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्निधौगे ।
ध्यये विधौगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

शब्देऽनुप्रासश्च परिग्रहे च
सत्तोवसतो नोपैति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखो परस्य
लोभाविल आदत्त-उत्तम् ॥

तुण्याभिभूतस्याऽदत्त-हारिणः
शब्देऽनुप्रासश्च परिग्रहे च ।
माया-मृथा बध्नेते लोभ-दोषान्
तत्रापि दुःखान् विमुच्यते सः ॥

३८—जो मनोश शब्द में तीव्र द्वेष करता है, वह अपने दुर्गम योग में उगो क्षण दुःख का प्राप्ति होता है, यद्यपि उसका कोई अपराध नहीं करता ।

३९—जो मनोहर शब्द में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर शब्द में द्वेष करता है, वह अज्ञान, भ्रूरात्मक पीड़ा को प्राप्त होता है । एकविध विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता ।

४०—मनोहर शब्द की अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनंत प्रकार के वस-स्वावर अर्थों का हिंसा करना है । अपने प्रयोग को प्रधान मानने वाला य क्लेश-गुरु अज्ञानी पुरुष नाश प्रकार में उन चराचर जीवों को परित्याग और पीडित करना है ।

४१—शब्द में अनुराग और मत्स्य का भाव होने के कारण मनुष्य उसका उपादन, रक्षण और ध्यापार करता है । उसका ध्यय और विधौग होता है, इन सबमें उस मनुष्य कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

४२—जो शब्द में अवृत्त होता है, उसके परिग्रहण में आसक्त-उपनयन होता है, उसे संतुष्टि नहीं मिलती । वह असंतुष्टि के दोष से दुःखी और लाभप्रस्त होकर दूसरे की शब्दान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

४३—वह तुण्या से पराजित होकर चोरी करता है और शब्द परिग्रहण में अवृत्त होता है । अवृत्ति-दोष के कारण उसके माया-मृथा की वृद्धि होती है । माया-मृथा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

१. तिक्कं (अ, ५०) ।

२. 'वाए य (अ) ; रागेण (५० पा०) ; वाए य (५०) ।

३. अतित्ति (५०) ; अतित्ति (५० पा०) ।

४४—मोसस्स पच्छा य पुरत्यओ य
पओगकाले य दुहो दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
सहे अतितो दुहियो अणित्तो ॥

मृदा पशुवाञ्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखो दुरन्तः ।
एवमदत्तानि समावदानः
शब्दे अतृप्तो दुःखितोऽनिधः ॥

४४—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और
बोल्ते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह शब्द में अतृप्त होकर बोरी करता हुआ,
दुःखी और आश्रय हीन हो जाता है ।

४५—सद्धानुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो मुहं होज्ज कयाइ किञ्चि ?
तत्थोवभोगं वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

शब्दानुरक्तस्य नरस्त्वेवं
कृतः सुखं भवेत् कदापि किञ्चित् ?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निवर्त्यति यस्य कृते दुःखम् ॥

४५—शब्द में अनुक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अनृति का दुःख) बना रहता है ।

४६—एमेव सद्धम्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठित्तो य' चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

एवमेव शब्दे गनः प्रबोधं
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तदव चिन्तोति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

४६—इसी प्रकार जो शब्द में द्वेष
रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त
होता है । प्रदुष्ट-चित्त बलवाला व्यक्ति कर्म
का बन्ध करता है, वही परिणाम-काल में
उत्पत्ते लिए दुःख का हेतु बनता है ।

४७—सहे विरत्तो मणुआ विसोगो'
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पए भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणोपलासं ॥

शब्दो विरक्तो मनुजो विषोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते अबमध्येऽपि सन्
जलेनैव पुट्कारिणोपलासम् ॥

४७—शब्द से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में
लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह कर
अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता ।

४८—घाणस्स गन्धं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्न्माहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्न्माहु
समो य जो तेसु स वोयरागो ॥

घ्राणस्य गन्धं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समस्त यस्तैषु स वीतरागः ॥

४८—घ्राण का विषय गन्ध है । जो
गन्ध राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा
जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे
अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ और
अमनोज्ञ गन्धों में समान रहता है, वह वीतराग
होता है ।

४९—गन्धस्स घाणं गहणं वयन्ति
घाणस्स गन्धं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्न्माहु
दोसस्स हेउं अमणुन्न्माहु ॥

गन्धस्य घ्राणं ग्रहणं वदन्ति
घ्राणस्य गन्धं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

४९—घ्राण गन्ध का ग्रहण करता है ।
गन्ध घ्राण का प्राप्ता है । जो गन्ध राग का
हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा
जाता है ।

५०—गन्धेषु^१ जो गन्धिमुवेइ तिख्वं^२
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे ओसहिगन्धगिद्धे
सपे बिलाओ विव निक्खमन्ते ॥

५१—जे यावि दोसं समुवेइ तिख्वं^३
तंसि कखणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किंचि गन्धं अवरज्झई से ॥

५२—एगन्तरत्ते रुद्धरंसि गन्धे
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण सुणी विरागो ॥

५३—गन्धानुगासाणुगए य जोवे
चराचरे हिसइ ऽणेगरुवे ।
चित्तेहि ते परितवेइ बाले
पीलेइ अलट्ठगुरु किलिट्ठे ॥

५४—गन्धानुवाएण^४ परिगहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं ते ?
संभोगकाले य अतित्तिताभे^५ ॥

गन्धेषु ओ गन्धिमुपति तोत्रं
अकालिकं प्राप्नोति स बिनाशम् ।
रागातुर ओषधि-गन्ध-गृहः
सर्पां बिलाविष निष्कामम् ॥

यद्यपि दोषं समुपति तोत्रं
तस्मिन् क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्वन्ति-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चिद् गन्धोऽपराध्यति तस्य ॥

एकान्तरक्त्वो रुचिरे गन्धे
अतादृशे स करोति प्रवोपम् ।
दुःखस्य सम्प्रीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागः ॥

गन्धानुगाशानुगतश्च जीवः
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रंस्तान् परितोपयति बालः
पीडयत्यात्मापथं-गुरुः क्लिष्टः ॥

गन्धानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्निधौगे ।
उभये विद्योगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽनुत्ति-लाभः ॥

५०—जो मनोज्ञ गन्ध में तीव्र आसक्ति करता है, वह अकाल में ही बिनाश को प्राप्त होता है । जैसे नाग-दमनी आदि ओषधियों के गन्ध में गृह बिल से निकलता हुआ रागातुर सर्प ।

५१—जो अमनोज्ञ गन्ध में तीव्र देख करता है, वह अपने दुर्धर्म दोष से उसी क्षण दुःख को प्राप्त होता है । गन्ध उसका कोई अपराध नहीं करता ।

५२—जो मनोहर गन्ध में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर गन्ध में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दृग्वात्मक पीडा को प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें क्लिप्त नहीं होता ।

५३—मनोज्ञ गन्ध की अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के प्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चरा-चर जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है ।

५४—गन्ध में अनुराग और समत्व का भाव होने के कारण मनुष्य, उसका उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय और वियोग होता है । इन सबमें उसे सुख कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग-काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

१. गन्धस्स (अ, झ०) ।

२. निक्खं (अ) ।

३. तिक्खं (झ०, अ) ।

४. 'वाए य (अ) ; 'रागेण (ब० पा०) ; 'वाए ण (छ०) ।

५. अतित्तं (द०) ; अतित्तिं (द० पा०) ।

५५—गन्धे अतित्तं य परिग्गहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोषेण दुही परस्स
लोभाविळे आययई अदत्तं ॥

गन्धेऽनुग्रहं परिग्रहे च
सत्तोपसत्तो नोपेति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखी परस्य
लोभाजित्वादात् अवतम् ॥

५५—जो गन्ध में अतुष्ट होता है, उसके परिग्रहण में वास्तव-उपसक्त होता है, उसे संतुष्टि नहीं मिलती । वह असंतुष्टि के दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की गन्ध-वान् वस्तुएँ चुरा लेता है ।

५६—तप्पहाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
गन्धे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

तृष्णाभिभूयस्याऽदत्त-हारिणः
गन्धेऽनुग्रहं परिग्रहे च ।
माया-मृषा वधेते लोभ-दोषाश्च
तत्रापि दुःखान् विमुच्यते स्म ॥

५६—वह तृष्णा से पराजित होकर चोरी करता है और गन्ध-परिग्रहण में अतुष्ट होता है । अतुष्टि-दोष के कारण उसके माया-मृषा की वृद्धि होती है । माया-मृषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

५७—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
गन्धे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

मृषा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखी दुरन्तः ।
एवमेवतानि समावधानः
गन्धेऽनुग्रहो दुःखितोऽनिष्टः ॥

५७—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार वह गन्ध से अतुष्ट होकर चोरी करता हुआ दुःखी और आश्रमहीन हो जाता है ।

५८—गन्धानुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किच्चि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

गन्धानुरक्तस्य नरस्यैवं
कृतः सुखं भवेत्कदापि किञ्चित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्ययति यस्य कृते दुःखम् ॥

५८—गन्ध में अनुरक्त पुरुष को उक्त कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहाँ से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-दुःख (अतुष्टि का दुःख) बना रहता है ।

५९—एमेव गन्धम्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य' चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

एवमेव गन्धे गतः प्रयोगं
उपेति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रतुष्ट-चित्तस्य चिन्तोति कर्म
यतस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

५९—इसी प्रकार जो गन्ध में द्वेष रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है । प्रतुष्टचित्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का बन्ध करता है, वही परिणाम काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

६०—गन्धे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

गन्धे विरक्तो मनुजो विसोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनैव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

६०—गन्ध से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है । जैसे कमलिन की पत्र जल में लिप्य नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रहकर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्य नहीं होता ।

६१—जिहाए रसं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्तमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्तमाहु
समो य जो तेसु स वीतरागो ॥

६२—रसस्स जिह्वं^१ गहणं वयन्ति
जिह्वाए रसं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्तमाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्तमाहु ॥

६३—रसेसु^२ जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं^३
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे बडिसविभिन्नकाए
मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे^४ ॥

६४—जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं^५
तंसि कखणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुदन्तदोसेण सएण जन्तू
'रसं न किञ्चि'^६ अवरज्झई से ॥

६५—एगन्तरत्ते रुद्धे रसम्मि
अतालसे से कुणई पजोसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणो विरागो ॥

जिह्वायाः रसं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समस्य यस्तेषु स वीतरागः ॥

रसस्य जिह्वां ग्रहणं वदन्ति
जिह्वाया रसं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

रसेषु चो गृद्धिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरो बडिश-विभिन्न-कायः
मत्स्यो यथाऽमिश्र-भोग-गृद्धः ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
रसो न किञ्चिदपराध्यति तस्य ॥

एकान्तरवतो रुद्धिरे रसे
अतादृशो स करोति प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडमुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

६१—रसना का विषय रस है । जो रस
राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता
है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ
कहा जाता है । जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों
में समान रहता है, वह वीतराग होता है ।

६२—रसना रस का ग्रहण करती है ।
रस रसना का शास्त्र है । जो रस राग का
हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा
जाता है ।

६३—जो मनोज्ञ रसों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है, जैसे मांस खाने में यद्ध बना हुआ
रागातुर मत्स्य कौटि में बीधा जाता है ।

६४—जो मनोज्ञ रस में तीव्र द्वेष करता
है, वह अपने दुर्दम दोष से उसी क्षण दुःख को
प्राप्त होता है । रस उसका कोई अपराध नहीं
करता ।

६५—जो मनोहर रस में एकान्त अनुरक्त
रहता है और अमनोहर रस में द्वेष करता है,
वह अज्ञानी दुःखात्मक पीड़ा को प्राप्त होता
है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें श्रित नहीं
होता ।

१. जीहा (उ, मृ०) ।

२. रसस्स (अ, मृ०) ।

३. तिव्वं (अ) ।

४. 'लोभगिद्धे' (अ) ।

५. तिव्वं (मृ०, अ) ।

६. न किञ्चि रस्सं (अ) ।

६६—रसाणुगासाणुगं य जीवे
चराचरे हिसइ ऽणेरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले
पिलेइ अत्तहगुरू किलिट्ठे ॥

६७—रसाणुवाएण^१ परिग्गहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं से ?
संभोगकाले य अत्तित्तिलाभे^२ ॥

६८—रसे अत्तित्ते य परिग्गहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोषेण दुहो परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

६९—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
रसे अत्तित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुचई से ॥

७०—मोसस्स पच्छा य पुरत्तओ य
पआंगकाले य दुहो दुरत्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
रसे अत्तित्तो दुहिओ अणित्तो ॥

७१—रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किञ्चि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कए न दुक्खं ? ॥

रसानुगासानुगतइव जीवः
चराचराद्य हितस्वयनेक-रूपान् ।
चित्रस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्मायं-गुरुः किलष्टः ॥

रसानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्नियोगे ।
व्यये वियोगे च यत्तु सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाप्नुप्ति-लाभः ॥

रसेऽनुग्रहे च परिग्रहे च
सक्तोपसक्तो नोपति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखो परस्य
लोभाविल आवत्तेऽदत्तम् ॥

तृष्णाभिभूतस्यादत्तहारिणः
रसेऽनुग्रहस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा बध्नेते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्नि विमुच्यते सः ॥

मृषा पदवाञ्छ पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखो दुरस्तः ।
एवमवतानि समाददानः
रसेऽनुग्रहो दुःखितोऽनिश्चः ॥

रसानुरक्तस्य नरस्येवं
कृतः सुखं भवेत् कदापि किञ्चित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वन्त्यति यस्य कृते दुःखम् ॥

६६—मनोहर रस की अभिलाषा के
पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-
स्वावर जीवों की हिंसा करता है । अपने
प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-
युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चराचर
जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है ।

६७—रस में अनुराग और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन सबमें उसे सुख
कहाँ है ? और क्या उसके उपभोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

६८—जो रस में अतृप्त होता है और
उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे संतुष्टि नहीं मिलती । वह अंतर्तुष्टि के
दोष से दुःखी और लोभ-प्रसक्त होकर दूसरे की
रसवान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

६९—वह तृष्णा से पराजित होकर
चोरी करता है और रस-परिग्रह में अतृप्त
होता है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके
माया-मृषा की वृद्धि होती है । माया-मृषा
का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त
नहीं होता ।

७०—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पक्षपात भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह रस में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ
दुःखी और आश्रय-हीन हो जाता है ।

७१—रस में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहें
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

१. ० वाए य (अ) ; १ गेण (वृ० पा०) ; २ वाए य (छ०) ।

२. अत्तित्त^० (वृ०) ; अत्तित्त^० (वृ० पा०) ।
F. 114

७२—एमेव रसस्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुइचित्तो य' चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

७३—रसे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सत्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

७४—कायस्स फासं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु
समो य जो तेसु स वोयरागो ॥

७५—फासस्स कायं गहणं वयन्ति
कायस्स फासं गहणं वयन्ति ।
'रागस्स हेउं समणुन्नमाहु'
'दोसस्स हेउं' अमणुन्नमाहु ॥

७६—फासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं'
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे सीयजलावसन्ने
गाहमहीए महिसे व ऽरन्ने ॥

एयमेव रसे गतः प्रदोषम्
उपैति दुःखौघ-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तश्च विनोति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

रसे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखौघ-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनैव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

कायस्य स्पर्शं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समञ्च यस्तेषु सबीतरागः ॥

स्पर्शस्य कायं ग्रहणं वदन्ति
कायस्य स्पर्शं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

स्पर्शेषु यो गृह्णिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरः शीतजलावसन्नः
ग्राह-गृहीतो महिष इवारण्ये ॥

७२—इसी प्रकार जो रस में डूब रहता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है । प्रदोष-युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का बन्ध करता है । वही परिणाम-काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

७३—रस से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है, जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह कर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता ।

७४—काय का विषय स्पर्श है । जो स्पर्श राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में समान रहता है, वह बीतराग होता है ।

७५—काय स्पर्श का ग्रहण करता है । स्पर्श काय का ग्राह्य है । जो स्पर्श राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है ।

७६—जो मनोज्ञ स्पर्शों में तीव्र आसक्ति करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है । जैसे घड़ियाल के द्वारा पकड़ा हुआ, अरण्य-जलाशय के शीतल जल के स्पर्श में मग्न बना रामातुर भेता ।

१. ड (अ) ।

२. तं राग हेउं तु मणुन्नमाहु (अ) ।

३. तं दोस हेउस्स (अ) ।

४. निष्चं (अ) ।

७७—जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं^१
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुइत्तदोसेण सएण जन्तू
न किंचि फासं अवरज्जई से ॥

७८—एगन्तरत्ते रुहरंसि फासे
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

७९—फासाणुगासाणुगए य जीवे
चराचरे हिंसइ ज्जेगखूवे ।
चित्तेहि ते परित्तावेइ बाले
पीलेइ अत्तगुरु किलिट्ठे ॥

८०—फासाणुवाएण^२ परिग्गहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहि सुहं से ?
संभोगकाले य अतित्तिलाभे^३ ॥

८१—फासे अतित्ते य परिग्गहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

८२—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
फासे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्डइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

यइवापि दोषं समर्पति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स त्वरेति दुःखम् ।
तुरन्ति-बोधेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चित्स्पर्शाऽपराधयति तस्य ॥

एकान्तररक्तो रुचिरे स्पर्शं
अतादृशे स करोति प्रबोधम् ।
दुःखस्य सम्प्रोक्षाभूषति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

स्पर्शानुगासानुगतइव जीवः
चराचरान् हिनस्यनेक-रूपान् ।
चित्रंस्तान् परितोपयति बालः
पीडयत्यास्माधं-गुहः किलष्टः ॥

स्पर्शानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्निधौगे ।
व्यये वियोगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चातृप्ति-लाभः ॥

स्पर्शानुस्रवच परिग्रहे च
सक्तोपसक्तो नोवेति तुट्ठिम् ।
अतुट्ठि-बोधेण दुःखो परस्य
लोभाविले आवस्येज्जत्तम् ॥

तुण्हाभिभूयस्याऽदत्तहारिणः
स्पर्शानुस्रवस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा बध्नेते लोभ-बोधात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

७७—जो अमनोज्ञ स्पर्श में तीव्र बोध
करता है, वह अपने बुद्धि-बोध से उसी क्षण
दुःख को प्राप्त होता है । स्पर्श उसका कोई
अपराध नहीं करता ।

७८—जो मनोहर स्पर्श में एकान्त
अनुरक्त होता है और अमनोहर स्पर्श से बोध
करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीड़ा को
प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त
नहीं होता ।

७९—मनोहर स्पर्श को अभिलाषा के
पीछे चलने वाला पुत्र्य अनेक प्रकार के वस-
स्वावर जीवों की हिंसा करता है । अपने
प्रयोजन को प्रधान मानते वाला वह क्लेश-
गुक्त अज्ञानी पुत्र्य ताता प्रकार के उन चरा-
चर जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है ।

८०—स्पर्श में अनुराग और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन सबमें उसे सुख
कहाँ है ? और क्या उसके उपभोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

८१—जो स्पर्श में अतृप्त होता है और
उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे संतुष्टि नहीं मिलती । वह असंतुष्टि के
दोष से दुःखी और लोभ-मग्न होकर दूसरे की
स्पर्शवान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

८२—वह तुण्हा से पराजित होकर
चोरी करता है और स्पर्श-परिग्रहण में अतृप्त
होता है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-
मृषा की दृष्टि होती है । माया-मृषा का
प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं
होता ।

१. तिव्वं (७०, अ) ।

२. 'वाए थ (अ) ; 'रागेण (७० पा०) ; 'वाए थ (७०) ।

३. अत्तित्त (७०) ; अत्तित्ति (७० पा०) ।

८३—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुहो दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
फासे अतित्तो दुहो अणिस्सो॥

८४—फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

८५—एमेव फासम्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य' चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

८६—फासे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

८७—मणस्स भावं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुल्लमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुल्लमाहु
समो य जो तेसु स वीयरगो ॥

८८—भावस्स मणं गहणं वयन्ति
मणस्स भावं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुल्लमाहु
दोसस्स हेउं अमणुल्लमाहु ॥

मृषा पक्षबाज्ज पुरस्ताज्ज
प्रयोग-काले च दुःखो दुरन्तः ।
एवमेव तानि समादधानः
स्पर्शोऽप्युक्तो दुःखितोऽनिश्चः ॥

स्पर्शानुरक्तस्य नरस्यैवं
कृतः सुख भवेत् कदापि किंचित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वन्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

एवमेव स्पर्शं गतः प्रबोध्य
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रबुध्य-चित्तद्वयं चिन्तति कर्म
यतस्त्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

स्पर्शं विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

मनसो भावं ग्रहणं बवन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोजमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोजमाहुः
समस्य यस्तेषु स वीतरागः ॥

भावस्य मनो ग्रहणं बवन्ति
जनसः भावं ग्रहणं बवन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोजमाहुः
दोषस्य हेतुममनोजमाहुः ॥

८३—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह स्पर्श में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ
दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

८४—स्पर्श में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किंचित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

८५—इसी प्रकार जो स्पर्श में डूब
रहता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त
होता है । प्रबुध युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म
का बन्ध करता है । वही परिणाम-काल में
उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

८६—स्पर्श से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में
लित नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह
कर अनेक दुःखों की परम्परा से लित नहीं
होता ।

८७—मन का विषय भाव (अभिप्राय)
है । जो भाव राग का हेतु होता है, उसे
मनोज कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता
है, उसे अमनोज कहा जाता है । जो मनोज
और अमनोज भावों में समान रहता है, वह
वीतराग होता है ।

८८—मन भाव का ग्रहण करता है ।
भाव मन का प्राण है । जो भाव राग का
हेतु होता है उसे मनोज कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज कहा
जाता है ।

८९—भावेसु^१ जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं^२
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे कामगुणेषु गिद्धे
करेणुमग्गावहिण 'व नागे'^३ ॥

९०—जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं^४
तंसि कवणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुहन्तदोमेण सएण जन्तू
न किंचि भावं अवज्जई से ॥

९१—एगन्तरसे रुद्धरंसि भावे
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमवेइ बाले
न लिप्पई तेण मृणो विरागो ॥

९२—भावाणमासाणुमाय य जोवे
चराचरे हिमइ उणंगरूवे ।
चिन्हेहि ते परितावेइ बाले
पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिद्धे ॥

९३—भावाणुवाएण^५ परिग्गहेण
उत्पायणं रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहि मुहं स^६ ?
संभोगकाले य अतित्थिभाभे^७ ॥

भावेसु यो गृद्धिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति विनाशम् ।
रागातुरः काम-गुणेषु गृद्धः
करेणुभार्यापहत इव नागः ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तूषैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चिद्भावोऽपराधप्रति तस्य ॥

एकान्तरकतो रुद्धिरे भावे
अतादृशे स कुस्ते प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

भावानुगाशानुगतश्च जीवः
चराचरात् हिनस्त्यनेक-रूपात् ।
चिन्तयन्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्ममार्य-गुरुः क्लिष्टः ॥

भावानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्खण-सन्निधौगे ।
व्यये विधौगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाजुप्ति-लाभः ॥

८९—जो मनोज्ञ भावों में तीव्र भावस्थित
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है, जैसे हथिनो के पंथ में आक्रुष्ट काम-
गुणों में गृद्ध बना हुआ हाथी ।

९०—जो मनोज्ञ भाव में तीव्र द्वेष
करता है, वह अपने दुर्द्वेष दोष से उसी क्षण
दुःख को प्राप्त होता है । भाव उसका कोई
अपराध नहीं करता ।

९१—जो मनोहर भाव में एकान्त अनु-
रक्त होता है और अमनोहर भाव में द्वेष
करता है, वह अशानी दुःखारम्भक पीड़ा को
प्राप्त होता है । इसलिये विरक्त मुनि उनमें
लिप्त नहीं होता ।

९२—मनोहर भाव की अभिलाषा के
पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-
स्थावर जाया को हिंसा करता है । अपने
प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-
युक्त अशानी पुरुष माना प्रकार के उन चराचर
जीवों को परित्यज्य और पीड़ित करता है ।

९३—भाव में अतृप्त और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और विधोग होता है । इन सबमें उसे सुख
कहाँ है ? और क्या, उसके उपयोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

१. मणेण (अ) ; भावस्स (झ०) ।

२. निच्वं (अ) ।

३. गए व्व (अ) ।

४. निच्वं (झ०, अ) ।

५. 'वाए य (अ) ; 'रागेण (झ० पा०) ; 'वाए ण (घ०) ।

६. अतित्त (झ०) ; अतित्ति (झ० पा०) ।

१४—भावे अतित्ते य परिग्रहे य
सतोवसतो न उवेइ दुद्धि ।
अतुद्धिदोषेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

भावेऽनुग्रहं परिग्रहे च
सक्तोपसक्तो नोपैति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखो परस्व
लोभाविल आवतेऽवत्तम् ॥

६४—जो भाव में अवृत्त होता है और
उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती । वह धनसन्तुष्टि के
दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की
वस्तुएं चुरा लेता है ।

१५—तप्पाम्भूयस्स अदत्तहारिणो
भावे अतित्त्स परिग्रहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुचई से ॥

भिभूतस्याऽवत्तहारिणः
भावेऽनुग्रहं परिग्रहे च ।
माया-मूया बध्धते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

६५—वह तृष्णा से पराजित होकर
चोरी करता है और भाव-परिग्रहण में अवृत्त
होता है । अतुष्टि-दोष के कारण उसके माया-
मूया की वृद्धि होती है । माया-मूया का
प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं
होता ।

१६—भोत्तस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुही दुरत्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

मूया पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखा दुरस्तः ।
एवमवत्तानि समावदानः
भावेऽनुग्रहो दुःखितोऽनिशः ॥

६६—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
बहु भाव में अवृत्त होकर चोरी करता हुआ
दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

१७—भावाणुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किचि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

भावानुरक्तस्य नरस्यैवं
कृतः सुखं भवेन कदापि किञ्चित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

६७—भाव में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहीं
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतुष्टि का दुःख) बना रहता है ।

१८—एमेव भावम्म गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य' विणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

एवमेव भावे गतः प्रदोषम्
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तस्य विभोक्ति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

६८—इसी प्रकार जो भाव में द्वेष
रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त
होता है । प्रद्वेष-युक्त चित्त वाशा व्यक्ति कर्म
का बन्ध करता है, वही परिणाम-काल में
उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

१९—भावे विरक्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सत्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

भावे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते अवमध्योऽपि सन्
जलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ।

६९—भाव में विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलनी का पत्र जल में
लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह
कर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं
होता ।

१००—एविन्दियत्था य मणस्स अत्था
दुक्खस्स हेउं मणुयस्स राणिणो।
ते चेव थोवं पि क्याइ दुक्खं
न वोयरागस्स करेन्ति किच्च॥

१०१—न कामभोगा समयं उवेन्ति
न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य
सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥

१०२—कोहं च माणं च तहेव मायं
लोहं दुग्गं अरइं रइं च।
हासं भयं सोमपुमिलियेवयं
नपुंसवेयं विविहे य भावे ॥

१०३—आवज्जई ग्वमणेगरुवे
एवंविहे कामगुणेषु सतो।
अन्ने य एयप्पभावे विसेसे
कारुणदीणे हिरिमे वडस्से ॥

१०४—कप्पं न इच्छिज्ज सहायलिच्छू
पच्छाणुतावेयं तवप्पभावं।
एवं वियारे अमियप्पयारे
आवज्जई इन्दियचोरवस्से ॥

१०५—तओ से जायन्ति पओयणाई
निमज्जिउं मोहमहणवग्गिम्।
सुहेसिणो दुक्खविणोयणट्ठा^१
तप्पच्चयं^२ उज्जमए य रागो ॥

एवमिन्द्रियाणांश्च मनसोऽर्थाः
दुःखस्य हेतवो भवन्त्यस्य राणिणः।
ते चैव स्तोकात्मनः कदापि दुःखं
न बीतरागस्य कुर्वन्ति किञ्चित् ॥

न काम-भोगाः समतामुपयन्ति
न चापि भोगा विकृतिमुपयन्ति।
यस्तत्प्रबोधो च परिग्रही च
स तेषु मोहाद् विकृतिमुपैति ॥

क्रोधं च भयं च तथैव मायां
लोभं जुगुप्साभरति रति च।
हासं भयं शोक-पुंस्त्री-वेदं
नपुंसक-वेदं विविधांश्च भावान् ॥

आपद्यते एवमनेक-रूपान्
एवं विधान् काम-गुणेषु सक्तः।
अन्याश्चैतत्प्रभवान् विदधान्
कारुण्य-वीरो हीमान् द्वेष्ट्यः ॥

कल्पं नैच्छेत्सहाय-लिप्सुः
पक्ष्वावनुतापेन तपः प्रभावम्।
एषं विकारान्वित-प्रकारान्
आपद्यते इन्द्रिय चोर-वदयः ॥

ततस्तस्य जायन्ते प्रयोजनानि
निमज्जन्तुं मोह-महार्णवे।
सुखैषिणो दुःख-विनोदनायं
तत्प्रत्ययमुच्छतिं च रागो ॥

१००—इस प्रकार इन्द्रिय और मन के
विषय रागी मनुष्य के लिए दुःख के हेतु होते
हैं। वे बीतराग के लिए कभी किञ्चित् भी
दुःखायी नहीं होते।

१०१—काम-भोग समता के हेतु भी
नहीं होते और विकार के हेतु भी नहीं होते।
जो पुरुष उनके प्रति द्वेष या राग करता है,
वह तद्विषयक मोह के कारण विकार को
प्राप्त होता है।

१०२—जो काम-गुणों में आसक्त होता
है, वह क्रोध, भय, माया, लोभ, जुगुप्सा,
अरति, रति, हास्य, भय, शोक, पुण्य-वेद,
स्त्री-वेद, नपुंसक-वेद तथा हर्ष, विषाद आदि
विविध भाव—

१०३—इस प्रकार अनेक प्रकार के
विकारों को और उनसे उत्पन्न अन्य परिणामों
को प्राप्त होता है और वह कण्ठासद, दीन,
लज्जित और अप्रिय बन जाता है।

१०४—'यह मेरो शारीरिक मेवा
करेगा'—इस लिप्सा से कल्प (योज्य शिष्य)
की भी इच्छा न करे। साथ बनकर मैंने
कितना कष्ट स्वीकार किया—इस प्रकार
अनुतप्त ब भोग-सुखपाशु होकर तप के फल की
इच्छा न करे। जो ऐसी इच्छा करता है वह
इन्द्रियरूपी चोरों का वसवर्ती बना हुआ
अपरिमित प्रकार के विकारों को प्राप्त
होता है।

१०५—विकारों की प्राप्ति के पश्चात्
उसके समक्ष उसे मोह-महार्णव में डूबने वाले
विषय-सेवन के प्रयोजन उपस्थित होते हैं।
फिर वह सुख की प्राप्ति और दुःख के विनाश
के लिए अनुरक्त बनकर उन प्रयोजनों की पूर्ति
के लिए उद्यम करता है।

१. पच्छाणुतावेय (छ०)।

२. दुक्ख विणोयणाय (छ० पा०)।

३. तप्पच्चया (छ० पा०)।

१०६—विरजमाणस्स य इन्दियत्था
सद्दाइया^१ तावइयप्पमारा ।
न तस्स सव्वे वि मणुन्नयं वा
निव्वत्तयन्ती अमणुन्नयं वा ॥

१०७—एवं संसंकप्पविकल्पाणासु^२
संजायई समयमुवट्ठियस्स ।
'अत्थे य संकणयओ'^३ तओ से
पहीयए कामगुणेषु तण्हा ॥

१०८—स वोयरागो कयसव्वकिच्चो
खवेइ नाणावरणं खण्णेण ।
तहेव जं दंसणमावरेइ
जं चउत्तरायं पकरेइ कम्मं ॥

१०९—सव्वं तओ जाणइ पासए य
अमाहणे होइ निरन्तराए ।
अणासवे ऋणसमाहिजुत्ते
आउक्खए मोक्खमुवेइ सुद्धे ॥

११०—सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को
जं वाहई सयय जन्तुमेयं ।
दोहामयविप्पमुक्को पसत्थो
तो हाइ अच्चन्तसुहो कयत्थो ॥

१११ अणाइकालप्पभवस्स एसो
'सव्वस्स दुक्खस्स
पमोक्खमणो'^४ ।
वियाहिओ जं समुविच्च सत्ता
कमेण अच्चन्तसुहो भवन्ति ॥
—त्ति बेमि ।

विरज्यमानस्य चन्द्रियार्थाः

शब्दाद्यास्तावत्प्रकाशः ।

न तस्य सर्वेऽपि मनोज्ञतां वा
निर्वर्त्तयन्ति अमनोज्ञतां वा ॥

एवं स्व-संकल्प-विकल्पनासु

संजायन्ते समतोलस्थितस्य ।

अर्थाश्च संकल्पयतस्ततस्तस्य
प्रहीयते काम-गुणेषु तुष्णा ॥

स वीतरागः कृत-सर्व-कृत्यः

क्षययति ज्ञानावरणं अणेन ।

तथैव यन् दर्शनमावृणोति
यदन्तरायं प्रकरोति कर्म ॥

सर्वं ततो जानाति पश्यति च

अमोहो भवति निरन्तरायः ।

अनाभवं ध्यान-समाधि-युक्तः

आयुः क्षये माक्षमुपैत शुद्धः ॥

स तस्मान् सर्वस्मान् दुःखाहं मुक्तः

यद् बाधते सततं जन्तुमेनम् ।

दोषामय-विप्रमुक्तः प्रशस्तः

ततो भवत्यत्यन्त-सुखो कृतार्थः ॥

अनाद-काल-प्रभवस्यैवः

सर्वस्य दुःखस्य प्रशोध-मार्गः ।

व्याख्यातः यं तमुपेत्य सत्तयाः

क्रमेणात्यन्त-सुखितो भवन्ति ॥

—इति ब्रवीमि ।

१०६—चित्तने प्रकार के शब्द आदि

इन्द्रिय-विषय हैं, के सब विरलत मनुष्य के मन
में मनोज्ञता या अमनोज्ञता उत्पन्न नहीं करते ।

१०७—'अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही
सब दोषों के मूल हैं'—जो इस प्रकार के
चिन्तन में उद्यत होता है तथा 'इन्द्रिय-विषय
दोषों के मूल नहीं हैं'—इस प्रकार का संकल्प
करता है, उसके मन में समता उत्पन्न होती
है । उससे उसकी काम-गुणों में होने वाली
तुष्णा प्रशान्त हो जाती है ।

१०८— फिर वह वोतराग सब विद्याओं
में कृतकृत्य होकर क्षण भर में ज्ञानावरण,
दर्शनावरण और अन्तराय तम का क्षय कर
देता है ।

१०९—तत्पश्चात् वह सब कुछ जानता
और देखता है तथा मोह और अन्तराय रहित
हो जाता है । अन्त में वह आयु-रहित और
ध्यान के द्वारा समाधि में लीन और शुद्ध
होकर आयुष्य का क्षय होने ही मोक्ष का प्राप्त
कर लेता है ।

११०—जो इस जाब को निरन्तर
पीड़ित करता है, उस अणेषु दुःख और दीर्घ-
कालीन कर्म-रोग में वह मुक्त हो जाता है ।
इसलिए वह प्रशंसनीय, अत्यन्त सुखी और
कृतार्थ हो जाता है ।

१११—मैंने अनादि कालीन सब दुःखों
से मुक्त होने का मार्ग बताया है, उन्हीं स्वीकार
कर जीव क्रमशः सुखी हो जाये हैं ।

—एसा मैं कहता हूँ ।

१. वणाइया (वृ० पा०) ।

२. 'विकल्पाणासो' (वृ० पा०)

३. अत्थे असकणयतो (वृ० पा०) ।

४. सत्ताय चक्खस्स विमोक्खमणो (वृ० पा०) ।

तीतीसहमं अन्वयणं :
कम्मपयडी

अयस्त्रिंश आध्ययन :
कर्म-प्रकृति

आस्त्युपन

इस अध्ययन में कर्म की प्रकृतियों का निरूपण है, इसलिए इसका नाम 'कर्ममयत्री'—'कर्म-प्रकृति' है।

'कर्म' शब्द भारतीय दर्शन का बहुत पारंपरिक शब्द है। जैन, बौद्ध और वैदिक—सभी दर्शनों ने इसे मान्यता दी है। यह क्रिया का प्रतिक्रिया है—अतः इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। वैदिक आदि दर्शन कर्म को संस्कार रूप में स्वीकार करते हैं। जैन-दर्शन को व्याख्या करने से विलक्षण है। उसके अनुसार कर्म पौष्टिक है। जब-जब जीव शुभ या अशुभ प्रवृत्ति में प्रवृत्त होता है तब-तब वह अपनी प्रवृत्ति से पुद्गलों का आकर्षण करता है। वे आकृष्ट पुद्गल जन्मा का परिणाम में अपने विशिष्ट रूप और शक्ति का निर्माण करते हैं। उन्हें कर्म कहा जाता है।

कर्म की मूल प्रवृत्तियाँ आठ हैं—

१. ज्ञानावरण— जो पुद्गल ज्ञान को जड़ित करते हैं।
२. दर्शनावरण— जो पुद्गल दर्शन को आवृत्त करते हैं।
३. वेदनीय— जो पुद्गल सुख-दुःख के हेतु बनते हैं।
४. मोहनीय— जो पुद्गल दृष्टिकोण और चारित्र्य में विकार उत्पन्न करते हैं।
५. आसृष्य— जो पुद्गल ज्ञान-काल को निधन करते हैं।
६. नाश— जो पुद्गल शरीर आदि विविध रूपों को प्राप्ति में हेतु होते हैं।
७. गोत्र— जो पुद्गल उच्चता या नीचता को अनुभूति में हेतु होते हैं।
८. अन्तराय— जो पुद्गल शक्ति-विकास में बाधक होते हैं।

१—ज्ञानावरण पाँच प्रकार का है—

- (१) आभिनवोदिक (माने) ज्ञानावरण,
- (२) श्रुत ज्ञानावरण,
- (३) अत्राधि ज्ञानावरण,
- (४) मनःपथिक ज्ञानावरण और
- (५) केवल ज्ञानावरण।

२—दर्शनावरण नौ प्रकार का है—

- (१) निद्रा,
- (२) प्रथला,
- (३) निद्रा-निद्रा,
- (४) प्रथला-प्रथला,
- (५) स्थायिक,
- (६) अक्षुदर्शनावरण,
- (७) अक्षुदर्शनावरण,
- (८) अवधिदर्शनावरण और
- (९) केवलदर्शनावरण।

३—वेदनीय दो प्रकार का है—

- (१) सात वेदनीय और
- (२) असात वेदनीय ।

४—मोहनीय दो प्रकार का है—

- (१) दर्शन मोहनीय । इसके तीन भेद हैं—सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्-मिथ्यात्व मोहनीय ।

(२) चारित्र्य मोहनीय । यह दो प्रकार का है—कषाय मोहनीय और नो-कषाय मोहनीय ।

कषाय मोहनीय १६ प्रकार का है—

अनन्तानुबन्धी चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
अप्रत्यारूपान चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
प्रत्यारूपान चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
संज्वलन चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।

नो-कषाय मोहनीय नौ प्रकार का है—

हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, पुंवेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद ।

५—आयुष्य चार प्रकार का है—

- (१) नैरयिक आयु,
- (२) तिर्यग् आयु,
- (३) मनुष्य आयु और
- (४) देव आयु ।

६—नाम दो प्रकार का है—

- (१) शुभ और
- (२) अशुभ ।

इन दोनों के अनेक अवान्तर भेद हैं ।

७—गोत्र दो प्रकार का है—

- (१) उच्च गोत्र और
- (२) नीच गोत्र ।

उच्च गोत्र-कर्म के आठ भेद हैं—

- (१) प्रशस्त जाति,
- (२) प्रशस्त कुल,
- (३) प्रशस्त बल,
- (४) प्रशस्त रूप,
- (५) प्रशस्त तपस्या,
- (६) प्रशस्त भूत (ज्ञान),
- (७) प्रशस्त लाभ और
- (८) प्रशस्त ऐश्वर्य ।

नीच गोत्र-कर्म के आठ भेद हैं—

- (१) अप्रशस्त जाति,
- (२) अप्रशस्त कुल,
- (३) अप्रशस्त बल,
- (४) अप्रशस्त रूप
- (५) अप्रशस्त तपस्या,
- (६) अप्रशस्त (ज्ञान)
- (७) अप्रशस्त काम
- (८) अप्रशस्त ऐश्वर्य

८—अन्तराय-कर्म पाँच प्रकार का है—

- (१) दानान्तराय,
- (२) लाभान्तराय,
- (३) भोगान्तराय,
- (४) उपभोगान्तराय और
- (५) वीर्यान्तराय

१—कर्मों की प्रकृति—

कर्म की मूल प्रकृतियों उपर्युक्त आठ ही हैं। शेष सब उनकी उत्तर प्रकृतियाँ हैं। इनका विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना (पद २३) में है।

२—कर्मों की स्थिति—

प्रत्येक कर्म की स्थिति होती है। स्थिति-काल के पूर्ण होने पर वह कर्म नष्ट हो जाता है। कई निमित्तों से स्थिति न्यून या अधिक हो जाती है।

(१) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस करोड़करोड़ सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(२) मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० करोड़करोड़ सागर तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(३) आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(४) नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति २० करोड़करोड़ सागर तथा जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है।

३—कर्मों का अनुभाव—

कर्म के विपाक को अनुभाग, अनुभाव, फल या रस कहा जाता है। विपाक दो प्रकार का है—तोत्र और मन्द। तोत्र परिणामों से बन्धे हुए कर्म का विपाक तोत्र और मन्द परिणामों से बन्धे हुए कर्म का मन्द होता है। विशेष प्रयत्न के द्वारा तोत्र मन्द और मन्द तोत्र हो जाता है।

४—कर्मों का प्रदेशाय—

कर्म प्रायोग्य पुद्गल जीव की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट होकर आत्मा के प्रदेशों के साथ बिपक जाते हैं। कर्म अनन्त-प्रदेशी पुद्गल-स्कन्ध होते हैं और आत्मा के असंख्य प्रदेशों के साथ एकीभाव हो जाते हैं।

तेतीसहमं अज्ज्ञयणं : त्रयस्त्रिंशत् अध्वयन

कर्मपयडो : कर्म-प्रकृतिः

मूल	संस्कृत ध्याया	हिन्दी अनुबाव
१—अद्व कम्माइं वोच्छामि आणुपुब्बि जहक्कमं ^१ । जेहि बद्धो अयं जीवो संसारे परिवत्तए ^२ ॥	अष्ट कर्माणि वक्ष्यामि आनुपूर्व्या यथाक्रमम् । यंबद्धोऽयं जीवः संसारे परिवर्तते ॥	१—मैं अनुपूर्वी से क्रमानुसार (पूर्वानु- पूर्वा से) आठ कर्मों का निरूपण करूँगा, जिनसे बन्धा हुआ यह जीव संसार में परिवर्तन करता है ।
२—नाणस्सावरणिज्जं दंसणावरणं तथा । वेयणिज्जं तथा मोहं आउकम्मं तहेव य ॥	ज्ञानस्यावरणोयं दशनावरणं तथा । वेदनीयं तथा मोहः आयुः-कर्म तथैव च ॥	२—ज्ञानावरण, दशनावरण, वेदनीय, मोह, आयु,
३—नामकम्मं च गोयं च अन्तरायं तहेव य । एवमेयाइ कम्माइं अट्टेव उ समासओ ॥	नाम कर्म च गोत्रं च अन्तरायस्तथैव च । एवमेतानि कर्माणि अष्टौ च तु समासतः ॥	३—नाम, गोत्र और अन्तराय— इस प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म हैं ।
४—नाणावरणं पंचविहं सुयं आभिणिबोधिं । ओहिनाणं तइयं मणनाणं च केवलं ॥	ज्ञानावरणं पंचविधं श्रुत-आभिनिबोधिकम् । अवधि-ज्ञानं तृतीयं मनो-ज्ञानं च केवलम् ॥	४—ज्ञानावरण पाँच प्रकार का है— (१) श्रुत-ज्ञानावरण, (२) आभिनिबोधिक- ज्ञानावरण, (३) अवधि-ज्ञानावरण, (४) मनो- ज्ञानावरण और (५) केवल-ज्ञानावरण ।
५—निद्रा तहेव पयला निद्रानिद्रा य पयलपयला य । तत्तो य धीणगिद्धी उ पंचमा होइ नायव्वा ॥	निद्रा तथैव प्रचला निद्रा-निद्रा प्रचला-प्रचला च । ततश्च स्थान-गुच्छिस्तु पंचमी अवति जातव्या ॥	५—(१) निद्रा, (२) प्रचला, (३) निद्रा- निद्रा, (४) प्रचला-प्रचला, (५) स्थान- गच्छि,

१. छणेह मे (६० पा०) ।

२. परिभम्मए (६० पा०) ।

६—चक्षुमचक्षुओहिस्स

दंसणे केवले य आवरणे ।

एवं^१ तु नवविगप्पं
नायवं दंसणावरणं ॥

चक्षुरचक्षुरवधेः

दर्शने केवले आवरणे ।

एवं तु नव-विकल्पं
ज्ञातव्यं दर्शनावरणम् ॥

६—(६) चक्षु-दर्शनावरण, (७) अचक्षु-
दर्शनावरण, (८) अवधि-दर्शनावरण और
(९) केवल-दर्शनावरण—इस प्रकार दर्शनावरण
नौ प्रकार का है ।

७—वेयणीयं पि य^२ दुविहं

सायमसायं च आहियं ।

सायस्स उ बहू भेया
एमेव असायस्स वि ॥

वेदनीयमपि च द्विविधं

सातमसातं व्याख्यातम् ।

सातस्य तु बहवो भेदाः
एवमेवासतास्यापि ॥

७—वेदनीय दो प्रकार का है—(१) सात-
वेदनीय और (२) असात-वेदनीय । इन दोनों
वेदनीयों के अनेक प्रकार हैं ।

८—मोहणिज्जं पि दुविहं

दंसणे चरणे तहा ।

दंसणे तिविहं वुत्तं
चरणे दुविहं भवे ॥

मोहनीयमपि द्विविधं

दर्शने चरणे तथा ।

दर्शने त्रिविधमुक्तं
चरणे द्विविधं भवेत् ॥

८—मोहनीय भी दो प्रकार का है—(१)
दर्शन-मोहनीय और (२) चारित्र-मोहनीय ।
दर्शन-मोहनीय तीन प्रकार का और चारित्र-
मोहनीय दो प्रकार का होता है ।

९—सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं

सम्मामिच्छत्तमेव य ।

एयाओ तिन्नि पयडोओ
मोहणिज्जस्स दंसणे ॥

सम्यक्त्वं चैव मिष्यात्वं

सम्यङ्मिष्यात्वंमेव च ।

एतास्तिस्मिन् प्रकृतयः
मोहनीयस्य दर्शने ॥

९—(१) सम्यक्त्व, (२) मिष्यात्व और
(३) सम्यग्-मिष्यात्व—दर्शन-मोहनीय की ये
तीन प्रकृतियाँ हैं ।

१०—‘चरित्तमोहणं कम्मं

दुविहं तु वियाहियं’^३ ।

‘कसायमोहणिज्जं तु’^४
नोकसायं तहेव य ॥

चरित्र-मोहणं कर्म

द्विविधं तु व्याख्यातम् ।

कथाय-मोहनीयं च
नोकथायं तथैव च ॥

१०—चारित्र-मोहनीय दो प्रकार का
है—(१) कथाय-मोहनीय और (२) नोकथाय-
मोहनीय ।

११—सोलसविहभेएणं

कम्मं तु कसायजं ।

सत्तविहं नवविहं वा
कम्मं नोकसायजं ॥

षोडशविधं भेदेन

कर्म तु कथायजम् ।

सप्तविधं नवविधं वा
कर्म च नोकथायजम् ॥

११—कथाय-मोहनीय कर्म के सोलह
भेद होते हैं और नोकथाय-मोहनीय कर्म के सात
या नौ भेद होते हैं ।

१. एवं (अ) ।

२. दु (दु०) ।

३. चरित्तमोहणिज्जं दुविहं दोच्छामि ऋणुण्वसो (६० पा०) ।

४. वेयणिज्जं च (६०) ।

१२—नेरइयतिरिक्खाउ

मणुस्साउ उहेव य ।
देवाउयं चउत्थं तु^१
आउकम्मं चउत्विहं ॥

१३—नामं कम्मं तु^२ दुविहं
सुहमसुहं 'च आहियं'^३ ।
सुहस्स उ^४ बहू भेया
एमेव असुहस्स वि ॥

१४—गोयं कम्मं दुविहं
उच्चं नीयं च आहियं ।
उच्चं अट्ठविहं होइ
एवं नीयं पि आहियं ॥

१५—टाणे लाभे य भोगे य
उत्रभोगे वीरिए तहा ।
पंचविहमन्तरायं
समासेण वियाहियं ॥

१६—एयाओ मूलपयडोओ
उत्तराओ य आहिया ।
पएसगं खेत्तकाले य
भावं चादुत्तरं सुण ॥

१७—सव्वेसिं चेव कम्माणं
पएसगमणन्तगं ।
गण्ठियसत्ताईयं^५
अन्तो सिद्धाण आहियं ॥

नैरयिक-तिर्यगायुः

मनुष्यायुस्तथैव च ।
देवायुदकृत्यं तु
आयुः-कर्म चतुर्विधम् ॥

नाम कर्म द्विविधं
शुभमशुभं चाख्यातम् ।
शुभस्य बहवो भेदाः
एवमेवाऽशुभस्यापि ॥

गोत्रं कर्म द्विविधं
उच्चं नीचं चाख्यातम् ।
उच्चमष्टविधं भवति
एवं नीचमप्याख्यातम् ॥

दाने लाभे च भोगे च
उपभोगे वीर्यं तथा ।
पंचविधोन्तरायः
समासेन उपाख्यातः ॥

एता मूल-प्रकृतयः
उत्तराश्चाख्याताः ।
प्रदेशाग्रं क्षेत्र-कालौ च
भावं चोत्तरं शृणु ॥

सर्वेषां चैव कर्मणां
प्रदेशाग्रमन्तकम् ।
ग्रन्थिक-सत्त्वातीतम्
अन्तः सिद्धागमाख्यातम् ॥

१२—आयु-कर्म चार प्रकार का है—

(१) नैरयिक-आयु, (२) तिर्यग-आयु, (३)
मनुष्य-आयु और (४) देव-आयु ।

१३—नाम-कर्म दो प्रकार का है—(१)

शुभ-नाम, और (२) अशुभनाम ।
इन दोनों के अनेक प्रकार हैं ।

१४—गोत्र-कर्म दो प्रकार है—(१) उच्च
गोत्र और (२) नीच गोत्र । इन दोनों के आठ-
घाट प्रकार हैं ।

१५—अन्तराय-कर्म संक्षेप में पाँच प्रकार
का है—(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय,
(३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय और
(५) वीर्यान्तराय ।

१६—कर्मों की ये ज्ञानावरण आदि
आठ मूल प्रकृतियाँ और श्रुत-ज्ञानावरण आदि
मनावन उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं । इसके
आगे तू उनके प्रदेशाग्र (परमाणुओं के परि-
माण) क्षेत्र, काल और भाव (अनुभाग-पर्याय)
को सुन ।

१७—एक समय में प्राप्य सब कर्मों का
प्रदेशाग्र अनन्त है । वह अभव्य जीवों से अनन्त
शुण अधिक और सिद्ध आत्माओं के अनन्तव
भाग जितना होता है ।

१. ५.—× (उ, ऋ०) ।

२. चियाहियं (उ, ऋ०) ।

४. य (उ, ऋ०) ।

५. गण्ठि सत्ताणाइ (उ० पा०) ।

उत्तरउभयणं (उत्तराध्ययन)

४७०

अध्ययन ३३ : श्लोक १८-२३

१८—सर्वजीवाणं कर्मं तु
संगहे छद्दिसागयं ।
सर्वेषु वि पश्येसु
सर्वं सर्वेण बद्धकम् ॥

सर्व-जीवानां कर्मं तु
संगहे छद्दिसागतम् ।
सर्वेष्वपि प्रवेष्टेयु
सर्व-सर्वेण बद्धकम् ॥

१८—सब जीवों के संग्रह-योग्य पुद्गल
छद्दों दिशाओं—आत्मा में संलग्न सभी
आकाश प्रदेशों में स्थित हैं । वे सब कर्म-
परमाणु वन्ध-काल में एक आत्मा के सभी
प्रदेशों के साथ सम्बद्ध होते हैं ।

१९—उदहीसरित्नामाणं
तोसई कोडिकोडिओ ।
उकोसिया ठिई होइ
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उदधि-सदृग्-नाम्नां
त्रिशत्कोटि-कोटयः ।
उत्कृष्टा स्थितिर्भवति
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यिका ॥

१९-२०—जानावरणीय, दर्शनावरणीय,
वेदनीय और अनन्तराय-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
तीस कोटि-कोटि सागर और जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

२०—आवरणज्जाणं दुण्हं पि
वेयणिज्जे तहेव य ।
अन्तराए य कम्मम्मि
ठिई एसा वियाहिया ॥

आवरणयोद्धं घोरपि
वेदनीये तथैव च ।
अन्तराये च कर्मणि
स्थितरेषा व्याख्याता ॥

२०—

२१—उदहीसरित्नामाणं
सत्तरि कोडिकोडिओ ।
मोहणिज्जस्स उकोसा
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उदधि-सदृग्-नाम्नां
सप्ततिः कोटि-कोटयः ।
मोहनीयस्योत्कृष्टा
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यिका ॥

२१—मोहनीय-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
सत्तर कोटि-कोटि सागर और जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

२२—तेत्तीस सागरोवमा
उकोसेण वियाहिया ।
ठिई उ आउकम्मस्स
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

त्रयाष्टशतसागरोपमा
उत्कृषेण व्याख्याता ।
स्थितिस्त्वायुः-कर्मणः
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यिका ॥

२२—आयु-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
तेत्तीस सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की
होती है ।

२३—उदहीसरित्नामाणं
वीसई कोडिकोडिओ ।
नामगोत्ताणं उकोसा
अट्ट मुहुत्ता जहन्निया ॥

उदधि-सदृग्-नाम्नां
विंशति कोटि-कोटयः ।
नाम-गोत्रयोत्कृष्टा
अष्ट मुहूर्ता जघन्यिका ॥

२३—नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट
स्थिति बीस कोटि-कोटि सागर और जघन्य
स्थिति आठ मुहूर्त की होती है ।

कम्मपयडी (कर्म-प्रकृति)

४७१

अभ्ययन ३३ : श्लोक २४-२५

२४—सिद्धाणऽणन्तभागो य'
अणुभागा हवन्ति उ ।
सव्वेसु वि पएसग्गं
सव्व जीवेसुऽइच्छिमां* ॥

सिद्धालायनन्त-भागश्च
अनुभागा भवन्ति तु ।
सर्वेष्वपि प्रवेशार्थं
सर्वजीवेभ्योऽतिक्रान्तम् ॥

२४—कर्मों के अनुभाग सिद्ध आत्माओं
के अनन्त भाग जितने होते हैं । सब अनुभागों
का प्रवेश-परिमाण सब जीवों से अधिक
होता है ।

२५—तस्मा एएसि कम्माणं
अणुभागे वियाणिया ।
एएसि संवरे वेव
खवणे य जए बुहे ॥
—त्ति वेमि ।

तस्मावितेषां कर्णणाम्
अनुभागान् विज्ञाय ।
एतेषां सम्भरे वेव
अपणे च यतेत बुधः ॥

२५—इन कर्मों के अनुभागों को जान-
कर बुद्धिमान इनका निरोध और लय करने
का यत्न करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

— इति ब्रवीमि ।

१. × (उ, ख०) ।

२. जीवे स इच्छिमं (अ, ख०) ; जीवे अहिच्छिमं (स) ।

३—कर्म-निष्पन्नम् ।^१

४—कर्मण शरीर की भौति कर्म-वर्गणा निष्पन्न कर्म-द्रव्यम् ।^२

इन शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार लेश्या से जोव और कर्म पुद्गलों का सम्बन्ध होता है, कर्म की स्थिति निष्पन्न होती है और कर्म का उदय होता है। इन सारे अभिमतां से इतनी निष्पत्ति तो निश्चित है कि आत्मा को शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेश्या जुड़ी हुई है।

प्रभाववाद की दृष्टि से दोनों परम्पराएँ प्राप्त होती हैं—

१—पौद्गलिक लेश्या का मानसिक विचारों पर प्रभाव।

२—मानसिक विचारों का लेश्या पर प्रभाव।

कृष्णादिद्रव्यसाधित्यात्, परिणामो य आत्मनः ।

स्फटिकस्येव तन्मायं, लेश्या-शब्दः प्रवर्तते ॥

इस प्रसिद्ध श्लोक की ध्वनि यही है—कृष्ण आदि लेश्या-पुद्गल जैसे होते हैं, वैसे ही मानसिक परिणति होती है। दूसरी धारा यह है—कषाय को मंदता से अध्यवसाय की शुद्धि होता है और अध्यवसाय की शुद्धि से लेश्या को शुद्धि होती है।^३ प्रस्तुत अध्ययन से भी यही ध्वनित होता है।

पौष आश्वों में प्रवृत्त मनुष्य कृष्ण-लेश्या में परिणत होता है अर्थात् उसको आणविक-आभा (पर्यावरण) कृष्ण होती है। लेश्या के लक्षण गोम्मटसार (जोषकाण्ड ५०८-५१६) तथा तत्त्वार्थ-त्राटि (४।२३) में मिलते हैं।

मधुरमुति (१३।२६-३८) में सत्त्व, रजस् और तमस् के जो लक्षण और कार्य बतलाए गए हैं, वे लेश्या के लक्षणों से तुलनीय हैं।

१—बृहद्बृषि, पत्र ६५०।

२—बही, पत्र ६५१।

३—(क) मूलाराधना, ७।१६११ :

लेखासोधी अम्भवाणविसोधीए होइ जनस्स ।

अम्भवाणविसोधी, मंढलेखायस्स णादब्बा ॥

(ख) मूलाराधना (अभितर्गत), ७।१६६० :

अन्तमिशुद्धितो जन्तोः, शुद्धिः सम्पद्यते बहिः ।

बाहयो हि शुष्यते दोषः सर्वमन्तरदोषतः ॥

चतुर्त्तिसहस्रं अन्वयणं :
लेसज्जयणं

चतुस्त्रिंश अन्वयणं :
लेस्याज्जयणं

चउतीसह्रमं अङ्गवर्णः चतुस्त्रिंश अध्वयन लेसज्जकयणं : लेख्याध्ययनम्

सूत्र	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुबाध
१—लेसज्जकयणं पवक्खामि आणुपुण्ड्रि जहक्कमं । छण्हं पि कम्मलेसाणं अणुभावे सुणेह मे ॥	लेख्याध्ययनं प्रवक्ष्यामि आणुपुण्ड्रा यथाक्रमम् । वर्णमपि कर्म-लेख्यानां अनुभावान् शृणुत मे ॥	हिन्दी अनुबाध १—मैं अनुपूर्वों से क्रमानुसार (पूर्वोक्त- पूर्वी से) लेख्या-अध्वयन का निरूपण करूँगा । छहों कर्म-लेख्याओं के अनुभावों को तुम मुझ से सुनो ।
२—नामाइं वण्णरसगन्ध- फासपरिणामलक्षणं । ठाणं ठिइं गइं चाउं लेसाणं तु सुणेह मे ॥	नामानि वर्ण-रस-गन्ध- स्पर्श-परिणाम-लक्षणानि । स्थानं स्थितिं गतिं चायुः लेख्यानां तु शृणुत मे ॥	२—लेख्याओं के नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य को तुम मुझ से सुनो ।
३—किण्हा नीला य काऊ य तेऊ पम्हा तहेव य । सुक्कलेसा य छट्ठा उ' नामाइं तु जहक्कमं ॥	कृष्णा नीला च कापोती च तैजसी पद्मा तथैव च । शुक्ल-लेख्या च षष्ठी तु नामानि तु यथाक्रमम् ॥	३—यथाक्रम से लेख्याओं के ये नाम हैं—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) कापोत, (४) तेजस, (५) पद्म और (६) शुक्ल ।
४—जीमूयनिद्वसंकासा गवलरिद्वसन्निभा । खंजणंजननयननिभा किण्हलेसा उ वर्णओ ॥	स्निग्ध-जीमूत-संकाशा गवलादिद्वसन्निभा । खंजनाञ्जननयन-निभा कृष्ण-लेख्या तु वर्णतः ॥	४—कृष्ण लेख्या का वर्ण स्निग्ध मेघ, महिष-शृंग, श्रोण-काक, सज्जन, अञ्जन व नयन-तारका के समान होता है ।
५—नीलाऽसौगसंकासा चासपिच्छसम्पभा । वेरुलियनिद्वसंकासा नीललेसा उ वर्णओ ॥	नीलाऽशोक-संकाशा चासपिच्छ-सम्पभा । स्निग्धवैडूर्य-संकाशा नील-लेख्या तु वर्णतः ॥	५—नील-लेख्या का वर्ण नील, अशोक चास पक्षी के पंखों व स्निग्ध वैडूर्य मणि के समान होता है ।

आस्तुत्र

इस अध्ययन का नाम 'लेसवर्णन'—'लेदयाध्ययन' है। इसका अधिकृत विषय कर्म-लेदया है।^१ इसमें कर्म-लेदया के नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य का मनःकरण किया गया है। इसका त्रिशद वर्णन प्रज्ञापना (पद १७) में मिलता है।

लेदया एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। इसकी खोज जीव और पुद्गल के स्कन्धों का अध्ययन करते समय हुई है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलों के अनेक वर्ग हैं। उनमें एक वर्ग का नाम लेदया है। लेदया शब्द का अर्थ आणविक-आभा, कान्ति, प्रभा या छाया है।^२ छाया पुद्गलों से प्रभावित होने वाले जीव-परिणामों को भी लेदया कहा गया है।^३ प्राचीन साहित्य में शरीर के वर्ण, आणविक-आभा और उससे प्रभावित होने वाले विचार—इन तीनों अर्थों में लेदया की मार्गणा को गई है।

शरीर के वर्ण और आणविक-आभा को द्रव्य-लेदया^४ (पौद्गलिक-लेदया) और विचार को भाव-लेदया^५ (मानसिक-लेदया) कहा गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में कृष्ण, नील और कापोत—इस प्रथम त्रिक को 'अधर्म-लेदया' कहा गया है। (श्लो० ५६, ५७)

अध्ययन के आरम्भ में छहों लेदयाओं को 'कर्म-लेदया' कहा गया है। (श्लो० १)

आणविक-आभा कर्म-लेदया का ही नामान्तर है। आठ कर्मों में छठा कर्म नाम है। उसका सम्बन्ध शरीर-रचना सम्बन्धी पुद्गलों से है। उसको एक प्रकृति शरीर-नाम-कर्म है। शरीर-नाम-कर्म के पुद्गलों का ही एक वर्ग 'कर्म-लेदया' कहलाता है।^६

लेदया को अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं। जैसे—

१—योग-परिणाम।^७

२—कषारोदय रज्जित योग-प्रवृत्ति।^८

१—उत्तराध्ययन निर्मुक्ति, गाथा ४४१ :

अहिगारो कम्मलेसाण् ।

२—बृहद्बृत्ति, पत्र ६४० :

लेदयाति—लेपयतीवात्मनि अनन्यनानीति लेदया—अतीव चक्षुराक्षेपिका स्निग्धदीप्तस्या छाया ।

३—मूलाराधना, ७।१६०७ :

जह वाहिरलेस्साओ, किन्हादीओ बबति पुरिसस्स ।

अब्भन्तरलेस्साओ, तह किन्हादीओ पुरिसस्स ॥

४—(क) गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४६४ :

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो तु दृष्वदो लेस्सा ।

सा सोढा कियहावी अणेयमेया सनेयेण ॥

(ख) उत्तराध्ययन निर्मुक्ति, गाथा ४३९ ।

क—उत्तराध्ययन निर्मुक्ति, गाथा ४४० ।

६—बृहद्बृत्ति, पत्र ६४० ।

७—बही, पत्र ६४० ।

८—गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४६० :

आपपवची लेस्सा कसापवद्धापुरणिभा होइ ।

६—अयसीपुष्पसंकासा

कोइलच्छदसन्निभा^१ ।

पारिवयगोवनिभा

काउलेसा उ वर्णतो ॥

अतसी पुष्प-संकाशा

कोकिलच्छद-सन्निभा ।

पारापतप्रोवा-निभा

कापोत-लेश्या तु वर्णतः ॥

६—कापोत लेश्या का वर्ण अतसी के

पुष्प, तेल-कण्टक व कवूर की प्रोवा के समान होता है ।

७—हिगुलुयधाउसंकासा

तरुणाइच्चसन्निभा ।

सुयतुण्डपईवनिभा^२

तेउलेसा उ वर्णतो ॥

हिगुलुक-धातु-संकाशा

तरुणादित्य-सन्निभा ।

शुकतुण्ड-प्रदाप-निभा

तेजो-लेश्या तु वर्णतः ॥

७—तेजो लेश्या का वर्ण हिगुलु, रोह,

नवोदित सूर्य, तोते की चोंच, प्रदाप की ली के समान होता है ।

८—हरियालभेयसंकासा

हलिहाभेयसन्निभा^३ ।

सणासणकुसुमनिभा

पम्हलेसा उ^४ वर्णतो ॥

हरितालभेद-संकाशा

हरिद्राभेय-सन्निभा ।

सणासनकुसुम-निभा

पद्म-लेश्या तु वर्णतः ॥

८—पद्म लेश्या का वर्ण भिन्न हरिताल,

भिन्न-हल्दी, सण और धमन के पुष्प के समान होता है ।

९—संखंककुन्दसंकासा

खोरपूरसमप्रभा^५ ।

रययहारसंकासा

सुक्कलेसा उ वर्णतो ॥

शङ्खाकुन्द-संकाशा

क्षोरपूर-समप्रभा ।

रजतहार-संकाशा

शुक्ल-लेश्या तु वर्णतः ॥

९—शुक्ल लेश्या का वर्ण शख, अंकमणि,

कुन्द-गुण, वृष-प्रवाह, चांदी व मुक्ताहार के समान होता है ।

१०—जह कडुयतुम्बरसो

निम्बरसो कडुयरोहिणिसो वा ।

एत्तो वि अणन्तगुणो

रसो उ^६ किण्हाए नायव्वो ॥

यथा कटुकतुम्बर-रसः

निम्बर-रसः कटुकरोहिणी-रसो वा ।

इतोऽप्यनन्त-गुणः

रसस्तु कृष्णायाम्नातव्यः ॥

१०—कडुवे तुम्ब, नीम व कटुक रोहिणी

का रस जेमा कडुवा होता है, उससे भी अनन्त गुना कडुवा रस कृष्ण लेश्या का होता है ।

१. छवि (वृ० पा०) ।

२. छपतुम्बरसंकासा, छपतुम्बरसंकासा (वृ० पा०) ;

३. सप्यसा (अ, आ, इ) ।

४. व (ऋ०) ।

५. क्षीरतुल्य (क०) ; क्षीरधारः ; क्षीरसूत (वृ० पा०) ।

६. व (ऋ०) ।

११—जह तिगडुयस्स य रसो
तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ नीलाए नायव्वो ॥

१२—जह तरुणअम्बगरसो
तुवरकविट्ठस्स^१ वावि जारिस्सओ ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ काऊए नायव्वो ॥

१३—जहपरिणयम्बगरसो
पक्कविट्ठस्स वावि जारिस्सओ ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ^२ तेऊए नायव्वो ॥

१४—वरवारुणोए व रसो
विविहाणव आसवाणजारिस्सओ ।
'महुभेरगस्स व रसो
एत्तो पम्हाए^३ परएण'^४ ॥

१५—खज्जूरमुट्ठियरसो
खोररसो खण्डसक्कररसो वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ^५ सुक्काए नायव्वो ॥

१६—जह गोमडस्स गन्धो
सुणगमडगस्स^६ व जहा अहिमडस्स ।
'एत्तो वि^७ अणन्तगुणो
लेशाणं अप्पसत्थारणं ॥

यथा त्रिकटुकस्य च रसः
तीक्ष्णः यथा हस्तिपिप्पल्या वा ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु नीलाया ज्ञातव्यः ॥

यथा तरुणाश्रक-रसः
तुवर-कपित्थस्य वापि यादृशः ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु कापोताया ज्ञातव्यः ॥

यथा परिणताश्रक-रसः
पक्क-कपित्थस्य वापि यादृशः ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु तेजो-लेश्याया ज्ञातव्यः ॥

वरवारुणा इव रसः
विविधानामिवाऽसवानां यादृशः ।
मधु-भरेयकस्येवरसः
इतः षडुभायाः परिकेण ॥

खज्जूर-मृद्वीका-रसः
क्षीर-रसः खण्ड-शर्करा-रसो वा ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु शुक्लाया ज्ञातव्यः ॥

यथा गो-मृतकस्य गन्धः
शुनक-मृतकस्य वा यथाऽहि-मृतकस्य ।
इतोऽप्यनन्तगुणो
लेश्यानामप्रशस्तानाम् ॥

११—त्रिकटु और गजपीपल का रस
जैसा तीखा होता है, उससे भी अनन्त गुण
तीखा रस नील लेश्या का होता है ।

१२—कच्चे आम और कच्चे कपित्थ का
रस जैसा कसैला होता है, उससे भी अनन्त
गुण कसैला रस कापोत लेश्या का होता है ।

१३—पके हुए आम और पके हुए कपित्थ
का रस जैसा खट-मीठा होता है, उससे भी
अनन्त गुण खट-मीठा रस तेजो लेश्या का
होता है ।

१४—प्रधान मुरा, विविध आसवों, मधु
और भरेयक मदिरा का रस जैसा अम्ल—कसैला
होता है, उससे भी अनन्त गुण अम्ल—कसैला
रस षड्म लेश्या का होता है ।

१५—खजूर, दाख, क्षीर, खांड और
गद्वर का रस जैसा मीठा होता है, उससे भी
अनन्त गुण मीठा रस शुक्ल लेश्या का
होता है ।

१६—गाय, श्वान और सर्प के मृत
कलेबर की जैसी गन्ध होती है, उससे भी
अनन्त गुण गन्ध तीनों अप्रशस्त लेश्याओं की
होती है ।

१. तुम्भर (अ); तुम्बर (उ); जह (बू पा०) ।

२. व (अ०) ।

३. पम्हाव (अ) ।

४. एत्तो वि अणन्त गुणो रसो व पम्हाए नायव्वो (बू० पा०) ।

५. व (अ०) ।

६. अमडस्स (उ, ब०) ।

७. एत्तो व (अ); इत्तो वि (उ, ब०) ।

१७—जह सुरहिकुसुमगन्धो
गन्धवासण^१ पिस्समाणाणं^२ ।
'एतो वि'^३ अणन्तगुणो
पसत्थलेसाण तिहं पि ॥

१८—जह करगयस्स फासो
गोविम्भाए व सागपत्ताणं ।
एतो वि अणन्तगुणो
लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥

१९—जह बूरस्स व फासो
नवणीयस्स व सिरिसकुसुमाणं ।
एतो वि अणन्तगुणो
पसत्थलेसाण तिहं पि ॥

२०—तिविहो व नवविहो वा
सत्तावीसइविहेकसीओ वा ।
हुसआं तेयालो वा
लेसाणं होइ परिणामो ॥

२१—पंचासवप्पवत्तो^४
तीहि अगुत्तो छसुं अविरओ य ।
'तिव्वारम्भं परिणओ
बुद्धो साहसिओ नरो' ॥

२२—'निद्वन्धसपरिणामो
निस्संसो अजिइन्दिओ'^५ ।
एयजोगसमाउत्तो
किण्हल्लेसं तु परिणमे ॥

यथा सुरभिःकुसुम-गन्धः
गन्ध-वासानां पिव्यमाणानाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
प्रशस्त-लेख्यानां तिसृणामपि ॥

यथा करकचस्य स्पर्शः
गो-जिह्वायाश्च शाक-पत्राणाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणो
लेख्यानामप्रशस्तानाम् ॥

यथा बूरस्य वा स्पर्शः
नवनीतस्य वा शिरीष-कुसुमानाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
प्रशस्त-लेख्यानां तिसृणामपि ॥

त्रिविधो वा नवविधो वा
सप्तविंशतिविध एकाशीतिविधो वा ।
त्रिचत्वारिंशदधिकद्विंशतिविधो वा
लेख्यानां भवति परिणामः ॥

पंचाश्व-प्रवृत्तः
तिसृभिरगुणः षट्स्वविरतश्च ।
तीव्वारम्भ-परिणतः
शुद्धः साहसिको नरः ॥

निद्वन्ध-परिणामः
नृशंसोऽजितेन्द्रियः ।
एयजोगसमामुक्तः
कृष्ण-लेख्यां तु परिणमेत् ॥

१७—सुगन्धित पुष्पों और पीसे जा रहे
सुगन्धित पदार्थों की जैसी गन्ध होती है,
उससे भी अनन्त गुण गन्ध तीनों प्रशस्त
लेख्याओं की होती है ।

१८—करवत, गाय की जीभ और शाक
वृक्ष के पत्रों का स्पर्श जैसा कर्कश होता है,
उससे भी अनन्त गुण कर्कश स्पर्श तीनों अप्रशस्त
लेख्याओं का होता है ।

१९—बूर, नवनीत और शिरीष के पुष्पों
का स्पर्श जैसा मृदु होता है, उससे भी अनन्त
गुण मृदु स्पर्श तीनों प्रशस्त लेख्याओं का
होता है ।

२०—लेख्याओं के तीन, नौ, सत्ताईस,
इक्यासी या दो सौ तैत्तालीस प्रकार के
परिणाम होते हैं ।

२१—जो मनुष्य पाँचों बाश्वों में प्रवृत्त
है, तीन गुणियों में अगुप्त है, षट्काय में
अविरत है, तीव्र आरम्भ (सावध-व्यापार)
में संलग्न है, बुद्ध है, बिना विचारे कार्य करने
वाला है,

२२—लौकिक और पारलौकिक दोनों
की शंका से रहित मन वाला है, दृढांस है,
व्यजितेन्द्रिय है—जो इन सभी से युक्त है, वह
कृष्ण लेख्या में परिणत होता है ।

१. गंधाण थ (४० पा०) ।

२. पिस्समाणेण (थ) ।

३. एतोउ (थ) ; इतो वि (ड, ४०) ।

४. 'प्यसो (४०) ; 'प्यसो (४० पा०) ।

५. निद्वन्धसपरिणामो निस्संसो अजिइन्दिओ (४० पा०) ।

६. तिव्वारभ परिणओ बुद्धो साहसिको नरो (४० पा०) ।

२३—इत्साअमरिसअतवो
अविज्जमाया 'अहोरिया य' ।
गेद्धी पओसे य सढे
पमत्ते^१ रसलोलुए साय
गवेसए य ॥

२४—आरम्भाओ^२ अविरओ
खुद्दो साहस्सिओ नरो ।
एयजोगसमाउत्तो
नीललेसं तु परिणमे ॥

२५—वंके वंसमायारे
नियडिल्ले अणुज्जुए ।
पल्लिउंचग ओवहिए
मिच्छदिट्ठा अणारिए ॥

२६—'उप्फालमदुडवाई य'^३
तेणे यावि य मच्छरी ।
एयजोगसमाउत्तो
काउल्लेसं तु परिणमे ॥

२७—नीयावित्ती अचवले
अमाई अकुउहले ।
विणोयविणए दन्ते
जोगवं उवहाणवं ॥

२८—पियधम्मे दढधम्मे
वज्जभोरू हिएसए^४ ।
एयजोगसमाउत्तो
तेउल्लेसं तु परिणमे ॥

ईष्वाग्मिर्मातपः
अविद्या मायाज्ञीकता च ।
गृद्धिः प्रबोवश्च शठः
प्रमत्तो रत-लोलुपः सात-गवेषकश्च ॥

आरम्भावविरतः
क्षुद्रः साहसिको नरः ।
एतद्योग-समायुक्तो
नील-लेइयां तु परिणमेत् ॥

बन्धो बन्ध-समावारः
निष्कृतिमान् अनुयुक्तः ।
परिकुंचक ओपाधिकः
मिच्छा-ट्टिर्नराय ॥

उत्प्रासक-दुष्टवादी च
स्तेनइवापि च मत्सरो ।
एतद्योग-समायुक्तः
कापोत-लेइयां तु परिणमेत् ॥

नीचैर्बुद्धिरचपलः
अमाय्यकुतूहलः ।
विनोत-विनयः दान्तः
योगवानुपधानवान् ॥

प्रियधर्मा दृढ़धर्मा
अबध-भीरुहितेषकः ।
एतद्योग-समायुक्तः
तेजो-लेइयां तु परिणमेत् ॥

२३—जो मनुष्य ईष्वागु है, कदाप्रही है, अतपस्वी है, अज्ञानी है, मायावी है, निर्लेख है, गृद्ध है, प्रदंष करने वाला है, शठ है, प्रमत्त है, रत-लोलुप है, सुख का गवेषक है,

२४—आरम्भ से अविरत है, क्षुद्र है, बिना बिचारे कार्य करने वाला है—जो इन सभी से युक्त है, वह नील लेइया में परिणत होता है ।

२५—जो मनुष्य बन्धन से बन्ध है, जिसका आचरण बन्ध है, कपट करता है, सरलता से रहित है, अपने दोषों को छुपाता है, छद्म का आचरण करता है, मिथ्या-ट्टि है, अनार्य है,

२६—हंसोड़ है, दुष्ट वचन बोलने वाला है, चोर है, मत्सरी है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह कापोत लेइया में परिणत होता है ।

२७ - जो मनुष्य नम्रता से वतीव करता है, अचपल है, माया से रहित है, अकुतूहली है, विनय करने में निपुण है, दान्त है, समाधि-युक्त है, उपधान (श्रुत अध्ययन करते समय तप) करने वाला है,

२८—धर्म में प्रेम रखता है, धर्म में दृढ़ है, पाप-भीरु है, सुनि का गवेषक है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह तेजो लेइया में परिणत होता है ।

१. अहोरियगयाय (अ) ।

२. य मत्ते (वृ० पा०) ।

३. आरम्भओ (अ) ; आरम्भा (उ, वृ०) ।

४. उप्फालमुडवाई (अ) ; उप्फालम (उ) ; उप्फालम (वृ०) ।

५. हिएसए, अणारिए (वृ० पा०) ।

२९—पयणुकोहमाणे य
मायालोभे य पयणुए ।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा
जोगवं उवहाणवं ॥

३०—तहा पयणुवाई^१ य
उवसन्ते जिइन्दिए ।
एयजोगसमाउत्तो
पम्हलेसं तु परिणमे ॥

३१—अट्टरुदाणि वज्जिता
धम्ममुक्काणि भायए^२ ।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा
समिए गुत्ते य गुत्तिहि ॥

३२—सरागे वीयरगे वा^३
उवसन्ते^४ जिइन्दिए ।
एयजोगसमाउत्तो
मुक्कलेसं तु परिणमे ॥

३३—असंखिज्जाणोसप्पिणीण^५
उत्सप्पिणीण जे समय।
संखाईया^६ लोगा
लेसाण हुन्ति ठाणाई ॥

३४—'मुहुत्तडं तु'^७ जहन्ना
तेत्तीसं सागरा मुहुत्तडहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा किप्पुलेसाए ॥

प्रतनु-क्रोध-मानश्च
माया-लोभश्च प्रतनुकः ।
प्रशान्त-चित्तो दान्तात्मा
योगवानुपधानवान् ॥

तथा प्रतनुबावो च
उपशान्तो जितेन्द्रियः ।
एतद्योग-समामुक्तः
पद्म-लेइयां तु परिणमेत् ॥

आत्तं-रोद्रे बर्जयित्वा
धम्मं-शुक्ले ध्यायेत् ।
प्रशान्त-चित्तो दान्तात्मा
समितो गुप्पश्च गुप्पिमिः ॥

सरागो वातरागो वा
उपशान्तो जितेन्द्रियः ।
एतद्योग-समामुक्तः
शुक्ल-लेइयां तु परिणमेत् ॥

असंख्येयानामवसप्पिणीनां
उत्सप्पिणीनां ये समयाः ।
संख्यातीता लोका
लेइयानां भवन्ति स्थानानि ॥

मुहुत्तार्थं तु जघन्या
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा मुहुत्तार्थिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या कृष्ण-लेइयायाः ॥

२९—जिस मनुष्य के क्रोध, मान, माया
और लोभ अत्यन्त अल्प है, जो प्रशान्त-चित्त
है, अपनी आत्मा का दमन करता है, समाधि
युक्त है, उपधान करने वाला है,

३०—अत्यल्प भावी है, उपशान्त है,
जितेन्द्रिय है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त
है, वह पद्म-लेइया में परिणत होता है ।

३१—जो मनुष्य आत्तं और रोद्रे—इन
दोनों ध्यानों को छोड़ कर धर्म और शुक्ल—
इन दो ध्यानों में लीन रहता है, प्रशान्त-चित्त
है, अपनी आत्मा का दमन करता है, समितियों
में समित है, समियों में युक्त है,

३२—उपशान्त है, जितेन्द्रिय है—जो इन
सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह सराग हो
या वातराग, शुक्ल-लेइया में परिणत होता है ।

३३—असंख्येय अवसप्पिणी और उत्सप्पिणी
के जितने समय होते हैं, असंख्यात लोकों के
जितने आकाश-वेदों होते हैं, उतने ही
लेइयाओं के स्थान (अध्यवसाय-परिमाण)
होते हैं ।

३४—कृष्ण लेइया की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहुत्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहुत्त
अधिक तेतीस सागर की होती है ।

१. 'वाई (अ) ।

२. साइए (इ०, छ०) ; भायए (इ० पा०) ।

३. व (अ) ।

४. छडंजोगे (इ० पा०) ।

५. असंखेज्जाणो उत्सप्पिणीण (अ) ।

६. असंखेया (इ० पा०) ।

७. मुहुत्तडा ड (इ० पा०) ।

३५—‘मुहुत्तद्धं तु’^१ जहन्ना
दस उदही पलियमसंखभाग-
मव्वहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा नीललेसाए ॥

३६—‘मुहुत्तद्धं तु’^२ जहन्ना
तिण्णुदही पलियमसंखभाग-
मव्वहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा काउलेसाए ॥

३७—‘मुहुत्तद्धं तु’^३ जहन्ना
दाउदही पलियमसंखभाग-
मव्वहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा तेउलेसाए ॥

३८—‘मुहुत्तद्धं तु’^४ जहन्ना
दस ‘हान्ति सागरा
मुहुत्तहिया’^५ ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा पम्हलेसाए ॥

३९—‘मुहुत्तद्धं तु’^६ जहन्ना
तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा सुक्कलेसाए ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
दशोदधिपल्यासंख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या नील-लेखायाः ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
त्र्युदधिपल्यासंख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या कापोत-लेखायाः ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
द्व्युदधिपल्यासंख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या तेजो-लेखायाः ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
दश भवन्ति सागरा मुहुत्तर्धिकाः ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या पद्म-लेखायाः ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
त्रयोदशसागरा मुहुत्तर्धिकाः ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या शुक्ल-लेखायाः ॥

३५—नील लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पत्योपम के
असंख्यातव भाग अधिक दश सागर की
होती है ।

३६—कापोत लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पत्योपम के
असंख्यातव भाग अधिक तीन सागर की
होती है ।

३७—तेजो लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पत्योपम के
असंख्यातव भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

३८—पद्म लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति मुहूर्त अधिक
दश सागर की होती है ।

३९—शुक्ल लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति मुहूर्त अधिक
तेतीस सागर की होती है ।

१. मुहुत्तद्धं उ (५० पा०) ।

२. मुहुत्तद्धं उ (५० पा०) ।

३. मुहुत्तद्धं उ (५० पा०) ।

४. मुहुत्तद्धं उ (५० पा०) ।

५. उदही हुंति मुहुत्तमव्वहिया (उ, ५०) ।

६. मुहुत्तद्धं उ (५० पा०) ।

४०—एसा खलु लेसाणं
ओहेण ठिई उ वण्णिया होइ ।
चउमु वि गइसु एत्तो
लेसाण ठिई तु वोच्छामि ॥

४१—दस वाससहस्साइं
काऊए ठिई जहन्निया होइ ।
'तिण्णुदही' 'पलिओवम
असंखभागं'^१ च उक्कोसा'^२ ॥

४२—तिण्णुदही पलिय-
मसंखभागा जहन्नेण नीलठिई ।
दस उदही 'पलिओवम
असंखभागं'^३ च उक्कोसा ॥

४३—'दस उदही' 'पलिय-
मसंखभागं'^४ जहन्निया होइ ।
तेत्तीससागराइं उक्कोसा
होइ किण्णए ॥'^५

४४—एसा नेरइयाणं
लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि
तिरियमणुसाण देवाणं ॥

एसा खलु लेस्याणां
ओघेन स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
वत्तसुण्डपि गतिश्चित्तः
लेस्याणां स्थिति तु वक्ष्यामि ॥

दशवर्षसहस्राणि
कापोतायाः स्थितिर्जघन्यका भवति ।
त्र्युदधिपल्योपमा
ऽऽङ्कुष्यभागं चोत्कृष्टा ॥

त्र्युदधिपल्या
असङ्ख्ययभागा जघन्येन नीलस्थितिः ।
दशोदधिपल्योपमा
ऽऽङ्कुष्यभागं चोत्कृष्टा ॥

दशोदधिपल्या
ऽऽङ्कुष्यभागं जघन्यका भवति ।
त्रयस्त्रिंशत्सागराः
उत्कृष्टा भवति कृष्णायाः ॥

एसा नेरयिकाणां
लेस्याणां स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
ततः परं वक्ष्यामि
तिर्यङ्-मनुष्याणां देवानाम् ॥

४०—लेस्याओं की यह स्थिति ओघ रूप
(अपुष्प-भाव) से कही गई है । अब आगे
पुष्प-भाव से चारों गतियों में लेस्याओं की
स्थिति का वर्णन करूंगा ।

४१—नारकीय जीवों के कापोत लेस्या
की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट
स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक
तीन सागर की होती है ।

४२—नील लेस्या की जघन्य स्थिति
पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर
और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें
भाग अधिक दश सागर की होती है ।

४३—कृष्ण लेस्या की जघन्य स्थिति
पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दश सागर
और उत्कृष्ट स्थिति तेजीस सागर की होती है ।

४४—यह नेरयिक जीवों के लेस्याओं की
स्थिति का वर्णन किया गया है । इससे आगे
तिर्यङ्, मनुष्य और देवों की लेस्या स्थिति का
वर्णन करूंगा ।

१. पलियमसंख भागं (६०) ; पलियमसंखेज्ज भागं (६०) ।

२. उक्कोसा तन्नुदही पलियमसंखेज्जभागऽद्विच (६० वा ०) ।

३. पलिय असंखभागं (३, ६०) ।

४. पलियमसंख भागं च (३) ।

५. दस उदही पलियमसंख भागं च जहन्नेण कण्ह केसाए । तेत्तीस सागराईं सुत्तुचअद्विच च उक्कोसा ॥ (५) ।

४५—अन्तोमुहुतमदं

लेसाण ठिई जहि जहि जा उ ।
तिरियाण नराणं वा'
वज्जिता केवलं लेसं ॥

अन्तर्मुहूर्ताध्वानं

लेस्यानां स्थितिः यस्मिन् यस्मिन्
यास्तु ।

तिरिचवां नराणां वा
वर्जयित्वा केवलं लेस्याम् ॥

४५—तिर्यङ्ग और मनुष्य में जितनी

लेस्याएँ होती हैं, उनमें से शुक्ल लेस्या को
छोड़ कर शेष सब लेस्याओं की जगमग और
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

४६—मुहुतदं तु जहन्ना
उकासा होइ पुव्वकोडो उ ।
नवहि वरिसेहि ऊणा
नायव्वा मुक्कलेसाए ॥

मुहूर्ताद्यं तु जघन्या
उत्कृष्टा भवति पूर्वकोटो तु ।
नवभिर्वरुणा
शतव्या शुक्ल-लेस्यायाः ॥

४६—शुक्ल लेस्या की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष मृत एक
कोटि पूर्व की होती है ।

४७—एसा तिरियनराणं
लेसाण ठिई उ वणिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि
लेसाण ठिई उ देवाणं ॥

एषा तिर्यङ्-नराणां
लेस्यानां स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
ततः परं वक्ष्यामि
लेस्यानां स्थितिस्तु देवानाम् ॥

४७—यह तिर्यङ्ग और मनुष्य के लेस्याओं
की स्थिति का वर्णन किया गया है । इससे
प्रागे देवों की लेस्याओं की स्थिति का वर्णन
करूंगा ।

४८—दस वाससहस्साइं
किण्हाए ठिई जहन्निया होइ ।
पलियमसंखिज्जइमो
उकासा हाइ किण्हाए ॥

वशावयसहस्राणि
कृष्णायाः स्थितिर्जघन्यका भवति ।
पल्यासंख्येयतमः
उत्कृष्टा भवति कृष्णायाः ॥

४८—भवनपति और वाणव्यन्तर देवों के
कृष्ण लेस्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष
और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें
भाग की होती है ।

४९—जा किण्हाए ठिई खलु
उकासा सा उ समयमव्वहिया ॥
जहन्नेण नीलाए
'पलियमसंखं तु'^१ उकासा ॥

या कृष्णायाः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाम्यधिकी ।
जघन्येन नीलायाः
पल्यासङ्ख्यं उत्कृष्टा ॥

४९—कृष्ण लेस्या की जो उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह नील
लेस्या की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग
जितनी है ।

५०—जा नीलाए ठिई खलु
उकासा सा उ समयमव्वहिया ॥
जहन्नेण काऊए
पलियमसंखं च उकासा ॥

या नीलायाः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाम्यधिकी ।
जघन्येन कायोतायाः
पल्यासङ्ख्यं चोत्कृष्टा ॥

५०—नील लेस्या की जो उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह कापोत
लेस्या की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग
जितनी है ।

१. तु (बु०) ; च (ड, झ०) ।

२. पलियमसंखं च (ड, झ०) ; पलियमसंखिज्ज (बु०) ।

५१—तेण परं वोच्छामि
तेउलेसा जहा सुरगणाणं ।
भवणवइवाणमन्तर-
जोइसवेमाणियाणं च ॥

५२—पलिओवमं^१ जहन्ता
उक्कोसा सागरा उ दुण्ह^२हिया^३ ।
पलियमसंखेज्जेणं
होई भागेण^४ तेऊए ॥

५३—दस वाससहस्साइं
तेऊए ठिई जहन्निया होइ ।
दुण्हदही पलिओवम
असंखभागं च उक्कोसा ॥

५४—जा तेऊए ठिई खलु
उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं पम्हाए दसउ
मुहुत्त^५हियाइं च उक्कोसा ॥

५५—जा पम्हाए ठिई खलु
उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं सुक्काए
तेत्तोसमुहुत्तमब्भहिया ॥

५६—किण्हा नीला काऊ
तिन्नि वि एयाओ
अहम्मलेसाओ^६ ।
एयाहि तिहि वि जीवो
दुग्गइं उववज्जई बहुसो^७ ॥

ततः परं वक्ष्यामि
तेजो-लेखां यथा सुर-गणानाम् ।
भवनपति-वाणव्यन्तर-
ज्योतिर्वैभानिकानां च ॥

पल्योपमं जघन्या
उत्कृष्टा सागरी तु द्व्यधिकौ ।
पल्यासङ्ख्येय
अवति भागेन तंजस्याः ॥

दशवर्षसहस्राणि
तंजस्याः स्थितिः जघन्यका भवति ।
द्व.पुत्रविपल्योपमा-
ऽसङ्ख्येयभागं चोत्कृष्टा ॥

या तंजस्याः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका ।
जघन्येन पद्मायाः दश तु
मूहूर्ताधिकानि चोत्कृष्टा ॥

या पद्मायाः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका ।
जघन्येन शुक्लायाः
त्रयस्त्रिंशत् मूहूर्ताभ्यधिका ॥

कृष्णा नीला कापोताः
तिश्रोऽप्येता अधर्म-लेखाः ।
एताभिस्तिसृभिरपि जीवो
गं तमुपपद्यते ॥

५१—इससे आगे भवनपति, वाणव्यन्तर,
ज्योतिक और वैभानिक देवों के तेजो लेख्या
की स्थिति का निरूपण करूँगा ।

५२—तेजो लेख्या की जघन्य स्थिति एक
फलोपम और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के
असंख्यातबे भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

५३—तेजो लेख्या की जघन्य स्थिति दश
हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के
असंख्यातबे भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

५४—जो तेजो लेख्या की उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह पद्म
लेखा की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मूहूर्त अधिक दश सागर की
होती है ।

५५—जो पद्म लेख्या की उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह शुक्ल
लेखा की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मूहूर्त अधिक तैंतीस सागर
की होती है ।

५६—कृष्ण, नील और कापोत—ये
तीनों अधर्म-लेखाएँ हैं । इन तीनों से जीव
दुर्गति को प्राप्त होता है ।

१. पलिओवमं च (अ) ।

२. दुण्हिवा (उ, ऋ०) ।

३. त्रिभागेण (अ) ।

४. अहमं (अ, ऋ० पा०) ।

५. × (अ, ऋ०) ।

५७—तेऊ पम्हा सुक्का
तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो
सुग्गइ उववज्जई बहुसो' ॥

५८—लेसाहि सव्वाहि
पढमे समयम्मि परिणयाहि तु ।
'न वि कस्सवि उववाओ'
परे भवे अत्थि' जीवस्स ॥

५९—लेसाहि सव्वाहि
चरमे समयम्मि परिणयाहि तु ।
'न वि कस्सवि उववाओ'
परे भवे अत्थि' जीवस्स ॥

६०—अन्तमुहुत्तम्मि गए
अन्तमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेसाहि परिणयाहि
जीवा गच्छन्ति परलोयं ॥

६१—तम्हा एयाण' लेसाणं
अणुभागे वियाणिया ।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता
पसत्थाओ अहिट्टेज्जासि' ॥
—ति वेमि ।

तंजसी पइमा शुक्का
तिन्नोऽप्येता धर्म-लेखाः ।
एताभिस्तिरुगिरपि जीवः
सुगतिमुपपद्यते ॥

लेखाभिः सर्वाभिः
प्रथमे समये परिणताभिस्तु ।
नापि कस्याप्युपपादः
परे भवेऽस्ति जीवस्य ॥

लेखाभिः सर्वाभिः
चरमे समये परिणताभिस्तु ।
नापि कस्याप्युपपादः
परे भवेऽस्ति जीवस्य ॥

अन्तर्मुहूर्ते गते
अन्तर्मुहूर्ते शेषके चैव ।
लेखाभिः परिणताभिः
जीवा गच्छन्ति परलोकम् ॥

तत्समावेतासां लेखानां
अनुभागान् विज्ञाय ।
अप्रशस्ता वर्जयित्वा
प्रशस्ता अचित्तिष्ठेत् ॥
—इति ब्रवीमि ।

५७—तेजस्, पद्म और शुक्ल—ये तीनों
धर्म-लेखाएँ हैं । इन तीनों से जीव सुगति का
प्राप्त होता है ।

५८—पहले समय में परिणत सभी
लेखाओं में कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न
नहीं होता ।

५९—अन्तिम समय में परिणत सभी
लेखाओं में कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न
नहीं होता ।

६०—लेखाओं की परिणति होने पर
अन्तर्मुहूर्त भीत जाता है अन्तर्मुहूर्त शेष रहता
है, उस समय जीव परलोक में जाता है ।

६१—इसलिए इन लेखाओं के अनुभागों
को जान कर मुनि अप्रशस्त लेखाओं का वर्जन
करे और प्रशस्त लेखाओं को स्वीकार करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. × (ड, ण०) ।

२. न हु कस्सवि अचवासि (ड०) ; न वि (व० पा०) ; न हु (ड, ण०, उ०) ।

३. अणु (ड०, उ०) ।

४. न हु कस्सवि अचवासि (ड०) ; न वि (व० पा०) ; न हु (ड, ण०, उ०) ।

५. अणु (ड०, उ०)

६. प्यासि (ड, ण०) ।

७. अहिट्ठिए (ड, ण०) ।

इस अध्ययन (३६० १६) में केवल सुखलभ्यमान के अभ्यास की विधि बतलाई गई है—“सुखकभाणं म्रियारुज्जा” ।

इसमें मृत्यु-धर्म को ओर मोड़ गित किया गया है । मुनि जब तक जोर तब तक असंग जीवन जोर और जब काल-धर्म उपस्थित हो, तब वह आहार का परित्याग कर दे । (३६० २०) आगमकार को अनशनपूर्वक मृत्यु अधिक अमोक्षित है ।

जीवन-काल में देह-व्युत्सर्ग के अभ्यास का निर्देश दिया गया है । (३६० १६) देह-व्युत्सर्ग का अर्थ देह-मुक्ति नहीं, किन्तु देह के प्रतिबन्ध से मुक्ति है । मनुष्य के लिए देह तब तक बन्धन रहता है, जब तक वह देह से प्रतिबद्ध रहता है । देह के प्रतिबन्ध से मुक्त होने पर वह मात्र साधन रहता है, बन्धन नहीं ।

देह-व्युत्सर्ग असंग का मुख्य हेतु है । यहाँ अनगारुका मार्ग है । इससे दुःखों का अंत होता है । (३६० १) अनगार का मार्ग दुःख-प्राप्ति के लिए नहीं, किन्तु दुःख-मुक्ति के लिए है । अनगार दुःख को स्वीकार नहीं करता, किन्तु उसके मूल को विनष्ट करने का मार्ग चुनता है और उसमें चलता है । उस पर चलने में जो दुःख प्राप्त होते हैं, उन्हें वह भेलता है ।

मनोहर युद्ध का त्याग और ज्ञानान, शून्यागार व वृक्ष-मूल में निवास कष्ट है पर यह कष्ट भेलने के लक्ष्य से निष्पन्न कष्ट नहीं है, किन्तु इन्द्रिय-विजय (३६० ४, ५) के मार्ग में प्राप्त कष्ट है । इसी प्रकार अन्न-पाक न करना और भिक्षा लेना कष्ट है पर यह भी अहिंसा-धर्म के अनुपालन में प्राप्त कष्ट है । (३६० १०, ११, १२, १६)

इस प्रकार इस लघु-काय अध्ययन में अनेक महत्वपूर्ण चर्या-अंगों की प्ररूपणा हुई है ।

पष्ठातीसहमं अज्जवणं :
अणगारमग्गइ

पंचत्रिंश अघ्खवन :
अनगार-मार्ग-गति

पणतीसद्वयं अज्ज्ञयणं : पंचत्रिंश अध्वयन अणगारमगगई : अनगार-मार्ग-गति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—मुणेह मगः बुद्धेहि जमायरन्तो दुक्वाणन्तकरो	मेगगमणा ^१ देसियं । भिक्षू भवे ॥	१—तुम एकाग्र मन होकर बुद्धी (तीर्थंकरों) के द्वारा उपदिष्ट उस मार्ग को मुझ से सुनो, जिसका आचरण करता हुआ भिक्षु दुःखों का अन्त कर देता ।
२—गिहवासं पवज्जंअस्सिओ ^२ इमे संगे वियाणिज्जा ^३ जेहि सज्जन्ति माणवा ॥	गृह-वासं परित्यज्य प्रज्ज्यामाश्रितो मुनिः । इमान् संगान् विजानीयात् येषु सज्जन्ते मानवाः ॥	२—जो मुनि गृह-वास को छोड़ कर प्रज्ज्या को अंगीकार कर चुका, वह उन संगों (लेपों) को जाने, जिनसे मनुष्य सक्त (निस्त) होता है ।
३—तहेव हिंसं अलियं चोज्जं अब्भसेवणं । इच्छाकामं च लोभं च संजआ परिवज्जए ॥	तथैव हिंसामलोकं चौर्यमब्रह्म-सेवनम् । इच्छा-कामं च लोभं च संयतः परिवर्जयेत् ॥	३—संयमी मुनि हिंसा, झूठ, चोरी, अग्रहचर्य-सेवन, इच्छा-काम (अप्राप्त वस्तु की आकांक्षा) और लोभ इन—सबका परिवर्जन करे ।
४—मणोहरं चित्तहरं मल्लधूवेण वासिय । सकपाडं पण्डुरेल्लोचं मणसा वि न पत्यए ॥	मनोहरं चित्रगुहं माल्य-धूपेन वासितम् । सकपाटं पाण्डुरोर्ल्लोचं मनसाऽपि न प्रापयेत् ॥	४—जो म्यान मनोहर चित्रों से आकीर्ण, माल्य और धूप से मुवासित, किबाड़ सहित, श्वेत चन्दवा से युक्त हो वैसे स्थान को मन से भी प्राप्यना (अभिलाषा) न करे ।
५—इन्द्रियाणि उ भिक्खुस्स तारिसम्मि उवस्सए । दुक्कराई निवारोउं ^४ कामरागविवड्डणे ॥	इन्द्रियाणि तु भिक्षोः ताटते उपाश्रये । दुष्कराणि निवारयितुं कामराग-विवर्धने ॥	५—काम-राग को बढ़ाने वाले वैसे उपाश्रय में इन्द्रियों का निवारण करना (उन पर नियन्त्रण पाना) भिक्षु के लिए दुष्कर होता है ।

१. मे एगगमणा (उ, ऋ०) ।

२. पवज्जंअस्सिओ (उ, ऋ०) ।

३. वियाणेजा (अ) ।

४. उ धारोउं (वृ०) ; निवारोउं (वृ० पा०) ।

आच्युत

अज्ञातसर्वे अध्ययन में मोक्ष-मार्ग की गति (अवबोध) दी गई है और इस अध्ययन में अनगार-मार्ग की । इसीलिये उसका नाम—‘मोक्षमार्गगई’ और इसका नाम—‘अनगारमार्गगई’—‘अनगार-मार्ग-गति’ है ।

अनगार सुसुक्ष्म होता है, अतः उसका मार्ग मोक्ष-मार्ग से भिन्न कैसे होगा ? यदि नहीं होगा तो इसके प्रतिपादन का फिर क्या अर्थ है ?

इस प्रश्न को हम इस भाषा में सोचें—मोक्ष-मार्ग व्यापक शब्द है । उसके चार अंग हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप :

नाणं च दंसणं चेव, चरिचं च तपो तह्मा ।

एस मग्गो पि पन्नसो, जिणेहि वरदंसिहि ॥ (२८।२)

अनगार-मार्ग मोक्ष-मार्ग को तुलना में सीमित है । ज्ञान, दर्शन और तप की आराधना गृहवास में भी हो सकती है । उसके जीवन में केवल अनगार—चारित्र्य की आराधना नहीं होती । प्रस्तुत अध्ययन में उसी का प्रतिपादन है । इस तथ्य को इस भाषा में भी रखा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन में मोक्ष-मार्ग के तीसरे अंग (चारित्र्य) के द्वितीय अंश—अनगार-चारित्र्य—का कर्त्तव्य-निर्देश है ।

इस अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य संग-विज्ञान है । संग का अर्थ लेप या आसक्ति है । उसके १३ अंग बतलार गए हैं—

१—हिंसा,

८—गृह-निर्माण,

२—असत्य,

९—अन्न-पाक,

३—चौर्य,

१०—धनार्जन की वृत्ति,

४—अन्न-सेवन,

११—प्रतिबद्ध भिक्षा,

५—इच्छा-काम,

१२—स्वाद-वृत्ति और

६—लोभ,

१३—पूजा को अभिलाषा ।

७—संसक्त-स्थान,

इक्कीसवें अध्ययन में पाँचवाँ महाव्रत अप्रतिग्रह है । इस अध्ययन में उसके स्थान पर इच्छा-काम व लोभ-वर्जन है :

अहिंस सचयं च अतेणं च, ततो य बभ्मं अपरिग्रहं च ।

पटिवज्जिया पंच महुठवयाणि, चरिज्ज चम्मं जिणदेसियं विठ्ठ ॥ (२१।१२)

तहेव हिंसं अठियं, चोज्जं अबम्मसेवणं ।

इच्छाकामं च लोभं च, संजओ पटिवज्जर ॥ (२५।३)

चौत्तीसवें अध्ययन (२८० ३९) में बतलाया गया है—‘धम्मसुक्काणि मायए’—‘मुनि धर्म्य और शुक्ल ध्यान का अभ्यास करे ।

६—सुसाणे सुलगारे वा
रुक्खमूले व एक्कओ^१ ।
पइरिक्के^२ परकडे वा
वासं तत्थऽभिरोगेण ॥

इमंशाने सुन्यागारे वा
वृक्ष-मूले वा एककः ।
प्रतिरिक्ते परकृते वा
वासं तत्राभिरोग्येत् ॥

६—इसलिए एकाकी भिक्षु इमंशान में,
वृक्ष गृह में, वृक्ष के मूल में अथवा परकृत
एकान्त स्थान में रहने की इच्छा करे ।

७—फासुयम्मि अणाबाहे
इत्थीहि अणभिदुट्टे ।
तत्थ संकप्पे वासं
भिक्षू परमसंजए ॥

प्रासुके अनाबाधे
स्त्रीभिरनभिद्वृते ।
तत्र संकल्पयेद्वासं
भिक्षुः परम-संयतः ॥

७—परम संयत भिक्षु प्रासुक, अनाबाध
और स्त्रियों के उपद्रव से रहित स्थान में रहने
का संकल्प करे ।

८—न सयं गिहाइं कुज्जा
णेव अन्नेहि कारणे ।
गिहकम्मसमारम्भे
भूयाणं दीसई व्हो ॥

न स्वयं गृहाणि कुर्वीत
नैव अन्यः कारयेत् ।
गृहकर्म-समारम्भे
भूतानां ददयते वधः ॥

८—भिक्षु न स्वयं घर बनाए और न
दूसरों से बनवाए । गृह-निर्माण के समारम्भ
(प्रश्रुति) में जीवों—पशु और स्थावर, सुधम
और बादर—का वध देना जाता है । इसलिए
संयत भिक्षु गृह-समारम्भ का परित्याग करे ।

९—तत्साणं थावराणं च
सुहुमाणं वायराणं य ।
तम्हा गिहसमारम्भं
संजओ परिवज्जेण ॥

त्रमानां स्थावराणां च
सूक्ष्माणां वादराणां च ।
तस्माद् गृह-समारम्भं
संयतः परिवर्जयेत् ॥

१०—तद्देव भत्तपाणेसु
पयणं पयावणं सु य ।
पाणभूयदयट्ठाए
न पये न पयावए ॥

तथैव भक्त-पानेषु
पचन-पाचनेषु च ।
प्राण-भूत-इयायं
न पचेत् न पाचयेत् ॥

१०—भक्त-पान के पकाने और पकवाने
में हिता होना है, अतः प्राणी और भूतों की
दया के लिए भिक्षु न पकाए और न पकवाए ।

११—जलधन्निस्सिया जीवा^३
पुट्ठवोक्कट्ठिस्सिया^४ ।
हम्मन्ति भत्तपाणेसु
तम्हा भिक्षू न पायए ॥

जल-धान्य-निश्चिता जीवाः
पृथिवी-काष्ठ-निश्चिताः ।
हन्त्यन्ते भक्त-पानेषु
तस्माद् भिक्षुनं पाचयेत् ॥

११—भक्त और पान के पकाने में जल
और धान्य के आश्रित तथा पृथ्वी और काष्ठ
के आश्रित जीवों का हनन होता है, इसलिए
भिक्षु न पकाए ।

१. पयाओ (उ. ऋ०) ; पयाया (वृ०) ; एकतो (वृ० पा०) ।

२. परक्के (वृ०) ; पइरिक्के (वृ० पा०) ।

३. पयणे (ऋ०) ; पयणे य (अ०) ।

४. पाणा (अ०) ।

५. "काय" (उ०) ।

१२—विसप्पे सव्वओधारे
बहुपाणविणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे
तम्हा जोइं न दोवए ॥

विसपन् सवंतोधारं
बहुप्राणि-विनाशनम् ।
नास्ति उद्योतिः-समं शस्त्रं
तस्माज्ज्योतिनं दोषयेत् ॥

१२—अग्नि फैलने वाली, सब ओर से
बार वाली और बहुत जीवों का विनाश करने
वाली होती है, उसके समान दूसरा कोई शस्त्र
नहीं होता, इसलिए भिक्षु उसे न जलाए ।

१३—हिरण्णं जायरूवं च
मणसा वि न पत्थए ।
समलेट्टु-कांचनो भिक्खू
विरए कयविक्रए ॥

हिरण्यं जातरूपं च
मनसापि न प्रार्थयेत् ।
समलेष्टु-कांचनो भिक्षुः
विरतः क्रय-विक्रयान् ॥

१३—क्रय और विक्रय से विरत, मिट्टी
के टुकड़े और सोने का समान समझने वाला
भिक्षु सोने और चाँदी की मत से भी इच्छा
न करे ।

१४—किणन्तो कइओ होइ
वि-किणन्तो य वाणिजो ।
कयविकयम्मि वट्टन्तो
भिक्खू न भवइ तारिसो ॥

कीर्णन् कयिको भवति
विकीर्णन् च वाणिजः ।
क्रय-विक्रये वर्तमानः
भिक्षुर्न भवति तादृशः ॥

१४—वस्तु को खरीदने वाला क्रयिक
होता है और बेचने वाला वणिक् । क्रय और
विक्रय में वर्तन करने वाला भिक्षु वैसा नहीं
होता—उत्तम भिक्षु नहीं होता ।

१५—भिक्खयव्वं न केयव्वं
भिकखुणा भिक्खवत्तिणा ।
कयविकओ महादोसो
भिक्खावत्तो' मुहावहा ॥

भिक्षितव्यं न केतव्यं
भिक्षुणा शैश-वृत्तिना ।
क्रय-विक्रयो महान् दोषो
भिक्षा-वृत्तिः सुखावहा ॥

१५—भिक्षा-वृत्ति वाले भिक्षु को भिक्षा
ही करने की चाहिए, क्रय-विक्रय नहीं । क्रय-
विक्रय महान् दोष है । भिक्षा-वृत्ति सुख को
देने वाली है ।

१६—समुयाणं उंछमेसिज्जा
जहासुत्तमणिन्दियं ।
लाभालाभम्मि सन्तुट्ठे
पिण्डवायं 'चरे मुणी' ॥

सुखानमुच्छमेययेत्
यथा-सूत्रमनिन्दितम् ।
लाभालाभे सन्तुष्टः
पिण्ड-पातं चरेत् मुनिः ॥

१६—मुनि सूत्र के अनुसार, अनिन्दित
और सामुदायिक उच्छ्र की एषणा करे । वह
लाभ और अलाभ से सन्तुष्ट रहकर पिण्ड-पात
(भिक्षा) की चर्चा करे ।

१७—अलोले न रसे गिडे
जिब्भादन्ते अमुच्छिण्ण ॥
न रसट्ठाए भुंजिज्जा
जवणट्ठाए महामुणी ॥

अलोलो न रसे गुडो
वान्त-जिह्वोऽमुच्छिन्नः ।
न रसायं भुंजीत
यापनायं महामुनिः ॥

१७—अलोलुप, रस में अव्यग्र, जीभ का
दमन करने वाला और अमूच्छित महामुनि
रस (स्वाद) के लिए न खाए, किन्तु जीवन-
निर्वाह के लिए खाए ।

१८—अर्चनं रयणं चैव
वन्दनं पूयणं तथा ।
इहोसकृत्सम्मानं
मणसा वि न पत्येत् ॥

अर्चनां रचनां चैव
बन्धनं पूजनं तथा ।
श्रद्धि-सत्कार-सम्मानं
मनसाऽपि न प्रापयेत् ॥

१८—मुनि अर्चना, रचना (असत, मोती आदि का रस्तिन बनाता), वन्दना, पूजा, श्रद्धि, सत्कार और सम्मान को मन से भी प्राप्त करना (अभिलाषा) न करे ।

१९—सुक्कभाणं भियाएज्जा
अणियाणे अकिंचणे ।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा
जाव कालस्स पज्जओ ॥

शुक्ल-ध्यानं ध्यायत्
अनिदानोऽकिंचनः ।
व्युत्सुष्ट-कायो विहरेत्
यावत्कालस्य पर्ययः ॥

१९—मुनि शुक्ल ध्यान ध्याए । अनिदान और अकिंचन रहे । वह जीवन भर व्युत्सुष्ट-काय (देहाध्यास से मुक्त) होकर विहार करे ।

२०—निज्जुहिऊण आहारं
कालधम्मे उवट्ठिए ।
जहिऊण* माणुसं बोन्दि
पहं दुक्खे विमुच्चई ॥

निर्युह्य अहारं
काल-धर्म उपन्यते ।
त्यक्त्वा मानुषं शरीरं
प्रभु दुःखं विमुच्यते ॥

२०—समय मुनि काल-धर्म के उपन्यत होने पर आहार का पश्रियाय करके, मनुष्य शरीर को छोड़ कर दुःखों से विमुक्त हो जाता है ।

२१—निम्ममो निरहंकारो
वीयरगो अणासवो* ।
संपतो केवलं नाणं
सासयं परिणिव्वुए ॥
—त्ति वेमि ।

निर्ममो निरहंकार
वीतरागोऽनाश्रवः ।
सम्प्राप्तः केवलं ज्ञानं
शाश्वतं परिनिर्बुलः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२१—निर्मम, निरहंकार, वीतराग और आश्रवों से रहित मुनि शाश्वत केवलज्ञान का प्राप्त कर परिनिर्बुल हो जाता है—सर्वथा आत्मस्थ हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

छत्तीसगढ़ अन्वयण :
जीवाजीवविभक्ती

षट्त्रिंश अध्ययन :
जीवाजीव-विभक्ति

आप्तुख

इस अध्ययन में जीव और अजीव के विभागों का निरूपण किया गया है। इसलिए इसका नाम—'जीवा-जीवविभर्षी'—'जीवाजीव-विभर्षि' है।

जैन तत्त्व-विद्या के अनुसार मूल तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। षोडश तत्त्व इनके अवान्तर विभाग हैं। प्रस्तुत अध्ययन में लोक की परिभाषा इसी आधार पर की गई है: “जीवा चैव अजीवा य, एस लोस विद्याहिण”। (३लो० २)

प्रज्ञापना के प्रथम पद में जीव और अजीव की प्रज्ञापना की गई है। उसकी जीव-प्रज्ञापना का क्रम प्रस्तुत अध्ययन की जीव-विभर्षि से कुछ भिन्न है। यहाँ संसारी जीवों के दो प्रकार किये गए हैं—जस और स्थावर। स्थावर के तीन प्रकार हैं—पृथ्वी, जल और वनस्पति। (३लो० ६८, ६९) जस के भी तीन प्रकार हैं—अग्नि, वायु और उदार। (३लो० १०७) उदार के चार प्रकार हैं—द्रोन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। (३लो० १२६)

प्रज्ञापना में संसारी जीवों के पाँच प्रकार किये गए हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।^१

प्रस्तुत अध्ययन के जीव-विभाग में एकेन्द्रिय का उल्लेख नहीं है और प्रज्ञापना में जस-स्थावर का विभाग नहीं है। आचारांग (प्रथम श्रुत-स्कन्ध) सत्रसे प्राचीन आगम माना जाता है। उसमें जीव-विभाग छह जीव-निकाय के रूप में प्राप्त है। छह जीव-निकाय का क्रम इस प्रकार है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वनस्पति, जस और वायु।^२ आचारांग के नौवें अध्ययन में छह जीव-निकाय का क्रम भिन्न प्रकार से मिलता है—पृथ्वी, जल, तेजस्, वायु, वनस्पति और जस।^३ वहाँ जस और स्थावर ये दो विभाग भी मिलते हैं।^४

आचारांग के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि जीवों का प्राचीनतम विभाग छह जीव-निकाय के रूप में रहा है। जस और स्थावर का विभाग भी प्राचीन है, किन्तु स्थावर के तीन प्रकार और जस के तीन प्रकार—यह विभाग आचारांग में नहीं मिलता। स्थानांग में यह प्राप्त है।^५ सम्भव है स्थानांग से ही उत्तराध्ययन में यह गृहीत हुआ है।

प्रज्ञापना का विभाग और भी उत्तरवर्ती जान पड़ता है।

जीव और अजीव का विषद वर्णन जीवाजीवाभिमग सूत्र में मिलता है।^६ वह उत्तरवर्ती आगम है,

१—प्रज्ञापना, (प्रथम पद), सूत्र ६।

२—आचारांग, १।१।२-७।

३—वही, १।६।१।१२।

४—वही, १।६।१।१४।

५—स्थानांग, ३।२। सू० १६४ :

विनिहा तसा पं० सं०—तेजकाहवा वादकाहवा उराका तसा पाणा,

विनिहा थावा, पं० सं०—पुहकाहवा आदकाहवा वणत्सहकाहवा।

६—जीवाजीवाभिमग, प्रतिपत्ति १-६।

इसलिए उसमें जीव-विभाग सम्बन्धी अनेक मतों का संग्रहण किया गया है :

- (१) दो प्रकार के जीव— जस और स्थावर ।
 (२) तीन प्रकार के जीव— स्त्री, पुरुष और नपुंसक ।
 (३) चार प्रकार के जीव— नैरयिक, तिर्य्य-योनिक, मनुष्य और देव ।
 (४) पाँच प्रकार के जीव— एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।
 (५) छह प्रकार के जीव— पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और असकायिक ।
 (६) सात प्रकार के जीव— नैरयिक, तिर्य्य, तिर्य्यो, मनुष्य, स्त्री, देव और देवी ।
 (७) आठ प्रकार के जीव— प्रथम समय के नैरयिक, अप्रथम समय के नैरयिक ।
 " " तिर्य्य, " " तिर्य्य ।
 " " मनुष्य, " " मनुष्य ।
 " " देव, " " देव ।
 (८) नौ प्रकार के जीव — पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।
 (९) दस प्रकार के जीव— प्रथम समय के एकेन्द्रिय, अप्रथम समय के एकेन्द्रिय ।
 " " द्वीन्द्रिय, " " द्वीन्द्रिय ।
 " " त्रीन्द्रिय, " " त्रीन्द्रिय ।
 " " चतुरिन्द्रिय, " " चतुरिन्द्रिय ।
 " " पंचेन्द्रिय, " " पंचेन्द्रिय ।

इस प्रकार आगम-ग्रन्थों में अनेक विवक्षाओं से जीवों के अनेक विभाग प्राप्त होते हैं । प्रस्तुत अध्ययन में अजीव के दो भेद किए हैं—रूपी और अरूपी । (श्लो० ४)

अरूपी अजीव के दस भेद हैं (श्लो० ४, ५, ६) :

- (१) धर्मास्तिकाय, (६) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश,
 (२) धर्मास्तिकाय का देश, (७) आकाशास्तिकाय,
 (३) धर्मास्तिकाय का प्रदेश, (८) आकाशास्तिकाय का देश,
 (४) अधर्मास्तिकाय, (९) आकाशास्तिकाय का प्रदेश और
 (५) अधर्मास्तिकाय का देश, (१०) अद्धा-समय ।

रूपी अजीव के चार भेद हैं (श्लो० १०) :

- (१) स्कन्ध, (३) स्कन्ध-प्रदेश और
 (२) स्कन्ध-देश, (४) परमाणु ।

प्रज्ञापना और जीवाजीवाभिगम सूत्र में भी अजीव का यही विभाग मान्य है ।

छत्तीसश्रमं अज्जप्रथमं : पट्ठित्रिंश आध्यायन जीवाजीवविभत्ती : जीवाजीव-विभक्ति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुबाध
१—जीवाजीवविभत्ति 'सुणेहे मे' एगमणा इओ । जं जाणिऊण समणे ^१ सम्मं जयइ संजमे ॥	जीवाजीवविभक्ति शृणुत मम एक-मनसः इतः । यां ज्ञात्वा भ्रमणः सम्यग् यतते संयमे ॥	१—तुम एकाग्र-मन होकर मेरे पास जीव और अजीव का वह विभाग सुनो, जिसे जान कर भ्रमण संयम में सम्यक् प्रयत्न करता है ।
२—जीवा चैव अजीवा य एस लोए वियाहिए । अजीवदेसमागासे अलोए से वियाहिए ॥	जीवाश्चैवाजीवाश्च एष लोको व्याख्यातः । अजीव-देश आकाशः अलोकः स व्याख्यातः ॥	२—यह लोक जीव और अजीवमय है । जहाँ अजीव का देश आकाश ही है, उसे अलोक कहा गया है ।
३—द्व्वओ खेत्तओ चैव कालओ भावओ तहा । परूवणा तेसि भवे जीवाणमजीवानां य ॥	द्वयतः क्षेत्रतश्चैव कालतोभावतस्तथा । प्ररूपणा तेषां भवेत् जीबनामजीवानां च ॥	३—जीव और अजीव की प्ररूपणा द्वय, क्षेत्र, काल और भाव—इन चार दृष्टियों से होती है ।
४—रुविणो चैत्तरूवी य अजोवा दुविहा भवे । अरूवी दसहा वुत्ता रुविणो वि चउत्थिहा ॥	रूपिणश्चैवाऽरूपिणश्च अजोवा द्विविधा भवेयुः । अरूपिणो दशघोरूपाः रूपिणोऽपि चतुर्विधाः ॥	४—अजीव दो प्रकार का है—रूपी और अरूपी । अरूपी के दश और रूपी के चार प्रकार हैं ।
५—धम्मत्थिकाए तद्देसे तप्पएसे य आहिए । अहम्मं तस्स देसे य तप्पएसे य आहिए ॥	धर्मास्तिकायस्तद्देशः तत्प्रदेशश्चाख्यातः । अधर्मस्तस्य देशश्च तत्प्रदेशश्चाख्यातः ॥	५—धर्मास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश, अधर्मास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश,

१. मे छणेह (ह०) ।

२. निक्खं (उ, ऋ०, ए०) ; समणे (ह० पा०) ।

६—आगासे तस्स देसे य
तप्पएसे य आहिण्ण ।
अद्वासमए चेव
अरूढी दसहा भवे ॥

आकाशस्तस्य देशश्च
तत्प्रदेशश्चाख्यातः ।
अध्वासमयश्चैव
अरूपिणो दशधा भवेयुः ॥

६—आकाशास्तिकाय और उसका देश
तथा प्रदेश तथा एक अध्वासमय (काल)—ये
दस भेद अरूपी अजीव के होते हैं ।

७—धम्माधम्मो य दोज्जेए^१
लोगमित्ता वियाहिया ।
लोगालोगे य आगासे
समए समयखेत्तिए ॥

धर्माधर्मो च द्वावप्येते
लोकमात्रौ व्याख्यातो ।
लोकालोके जाकाशः
समयः समय-क्षेत्रिकः ॥

७—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय
लोक-प्रमाण हैं । आकाश लोक और अलोक
दोनों में व्याप्त है । समय समय-क्षेत्र (मनुष्य-
लोक) में हो होता है ।

८—धम्माधम्मागासा
तिन्नि वि एए अणाइया ।
अपज्जवसिया चेव
सव्वद्धं तु वियाहिया ॥

धर्मऽधर्माऽकाशाणि
त्रीण्यप्येतान्यनादीनि ।
अपर्यवसितानि चैव
सर्वाध्वं तु व्याख्यातानि ॥

८—धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन
द्रव्य अनादि-अनन्त और सार्वकालिक होते हैं ।

९—'समए वि सन्तइं पप्प
एवमेव'^२ वियाहिण्ण ।
आएसं पप्प साईए
सपज्जवसिए वि य ।

समयोऽपि संतति प्राप्य
एवमेव व्याख्यातः ।
आवेशं प्राप्य सादिकः
सपर्यवसितोऽपि च ॥

९—प्रवाह की अपेक्षा समय अनादि-
अनन्त है । एक-एक क्षण की अपेक्षा से बह
सादि-सान्त है ।

१०—खन्धा य खन्धदेसा य
तप्पएसा तहेव य ।
परमाणुणो य बोद्धव्वा
रूविणो य चउच्चिहा ॥

स्कन्धाश्च स्कन्ध-देशाश्च
तत्प्रदेशास्तथैव च ।
परमाणुवद्व बोद्धव्या
रूपिणश्च चतुर्विधाः ॥

१०—रूपी पुरुषाल के चार भेद होते
हैं—१-स्कन्ध, २-स्कन्ध-देश, ३-स्कन्ध-प्रदेश
और ४-परमाणु ।

११—एगत्तेण पुहत्तेण
खन्धा य परमाणुणो ।
लोएग्गदेसे लोए य
भइयव्वा ते उ खेतओ ॥
इत्तो कालविभागं तु
तेसि कुच्छं चउच्चिहं ॥

एकत्वेन पृथक्त्वेन
स्कन्धाश्च परमाणवः ।
लोकैकदेशे लोके च
भक्तव्यास्ते तु क्षेत्रतः ॥
इतः काल-विभागं तु
तेषां बध्ये चतुर्विधम् ॥

११—अनेक परमाणुओं के एकत्व से
स्कन्ध बनता है और उसका पृथक्त्व होने से
परमाणु बनते हैं । क्षेत्र की अपेक्षा से वे
(स्कन्ध) लोक के एक देश और समूचे लोक
में भाज्य हैं—अतस्त्व विक्त्य युक्त हैं । अब
उनका चतुर्विध काल-विभाग कहूँगा ।

१. दोए (ड) ; दोसे थ (ङ०) ।

२. एवमेव संतइं पप्प समए वि (६० पा०) ।

१२—संतइं पप्प तेऽणार्इं
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च सार्इया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्य तेऽनादयः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१२—वे (स्त्वन्व और परमाणु) प्रवाह
की अपेक्षा से अनादि-अनन्त हैं तथा स्थिति
(एक क्षेत्र में रहने) की अपेक्षा से सावि-
सान्त हैं ।

१३—असंखकालमुक्कोसं
'एगं समयं जहन्निया'^१ ।
अजीवाण^२ य रूवीणं
ठिई एसा वियाहिया ॥

असङ्ख्यकालमुत्कर्षं
एकं समयं जघन्यका ।
अजीवानां च रूपिणां
स्थितिरेवा व्याख्याता ॥

१३—रूपी अजीवों (पदार्थों) की स्थिति
जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः असंख्यात
काल की होती है ।

१४—अणन्तकालमुक्कोसं
एगं समयं जहन्नयं ।
अजीवाण^२ य रूवीणं
अन्तरेयं वियाहियं ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
एकं समयं जघन्यकम् ।
अजीवानां च रूपिणां
अन्तरमिदं व्याख्यातम् ॥

१४—उनका अन्तर (स्वस्थान से स्थिति
होकर वापिस नहीं आने तक का काल)
जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः अनन्त काल
का होता है ।

१५—वण्णओ गन्धओ चेव
रसओ फासओ तहा ।
संठाणओ य विन्नेओ
परिणामो तेसि पंचहा ॥

वर्णतो गन्धतश्चैव
रसतः स्पर्शतस्तथा ।
संस्थानतश्च विज्ञेयः
परिणामस्तेषां पंचहा ॥

१५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान
की अपेक्षा से उनका परिणामन पाँच प्रकार का
होता है ।

१६—वण्णओ परिणया जे उ
पंचहा ते पक्कितिया ।
किण्हा नीला य लोहिया
हालिदा सुकिला तहा ॥

वर्णतः परिणता ये तु
पंचहा ते प्रकृतितः ।
कृष्णा नीलाश्च लोहिताः
हारिद्राः शुक्लास्तथा ॥

१६—वर्ण की अपेक्षा से उनकी परिणति
पाँच प्रकार की होती है—१-कृष्ण, २-नील,
३-रक्त, ४-पीत और ५-शुक्ल ।

१७—गन्धओ परिणया जे उ
दुविहा ते वियाहिया ।
सुभिगगन्धपरिणामा
दुभिगगन्धा तहेव य ॥

गन्धतः परिणता ये तु
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
सुरभिगन्ध-परिणामाः
दुर्गन्धास्तथैव च ॥

१७—गन्ध की अपेक्षा से उनकी परि-
णति दो प्रकार की होती है—१-सुगन्ध
और २-दुर्गन्ध ।

१. एगो समयो जहन्नयं (५०) ; इको समयो जहन्निया (५) ।

२. अजीवाणं (५) ।

१८—रसओ परिणया जे उ
पंचहा ते पकितिया ।
तित्तकडुयकसाया
अम्बिला मधुरा तहा ॥

रसतः परिणता ये तु
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
तित्त-कटुक-कषायाः
अम्बला मधुरास्तथा ॥

१८—रस की अपेक्षा से उनकी परिणति
पाँच प्रकार की होती है—१-तित्त, २-कटु,
३-कसंला, ४-खट्टा और ५-मधुर ।

१९—फासओ परिणया जे उ
अट्टहा ते पकितिया ।
ककखडा मउया चव
गछया लहुया तहा ॥

स्पर्शतः परिणता ये तु
अष्टधा ते प्रकीर्तिताः ।
ककखडा मुतुकाश्चैव
गुरुका लघुकास्तथा ॥

१९-२०—स्पर्श की अपेक्षा से उनकी
परिणति आठ प्रकार की होती है—१-ककषा,
२-मुट्टु, ३-गुड, ४-लघु, ५-शीत, ६-उष्ण,
७-स्निग्ध और ८-रस ।

२०—सीया उण्हा य तिद्धा य
तहा लुक्खा य आहिया ।
इइ फासपरिणया एए
पुग्गला समुदाहिया ॥

शीता उष्णाश्च स्निग्धाश्च
तथा लुक्खाश्चाह्वयाः ।
इति स्पर्श-परिणता एते
पुग्गलाः समुदाहिताः ॥

२१—संठाणपरिणया जे उ
पंचहा ते पकितिया ।
परिमण्डला 'य वट्टा'^१
तंसा चउरंसमायया ॥

संस्थान-परिणता ये तु
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
परिमण्डलाश्च वृत्ताः
प्रयोज्याश्चतुरा आयताः ॥

२१—संस्थान की अपेक्षा से उनकी
परिणति पाँच प्रकार की होती है—१-परि-
मण्डल, २-वृत्त, ३-त्रिकोण, ४-चतुष्क और
५-आयत ।

२२—वण्णओ जे भवे किण्हे
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतो यो भवेत् कृष्णः
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२२—जो पुद्गल वर्ण से कृष्ण है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक
विकल्प युक्त) होता है ।

२३—वण्णओ जे भवे नीले
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतो यो भवेत् नीलः
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२३—जो पुद्गल वर्ण से नील है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२४—वण्णओ लोहिए जे उ ,
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतो लोहितो यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२४—जो पुद्गल वर्ण से रक्त है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२५—वण्णओ पीयए जे उ
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतः पीतको यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२५—जो पुद्गल वर्ण से पीत है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२६—वण्णओ मुक्किले जे उ
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतः शुक्लो यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२६—जो पुद्गल वर्ण से श्वेत है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२७—गन्धओ जे भवे सुब्धी
भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

गन्धतो यो भवेन् चुरभिः
भाज्यः स तु वर्णतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२७—जो पुद्गल गन्ध से सुगन्ध वाला
है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२८—गन्धओ जे भवे दुब्धी
भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

गन्धतो यो भवेद्दुर्गन्धः
भाज्यः स तु वर्णतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२८—जो पुद्गल गन्ध से दुर्गन्ध वाला
है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२९—रसओ तित्ते जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतस्तिक्तो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२९—जो पुद्गल रस से तिक्त है, वह
वर्ण, गंध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३०—रसओ कडुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः कटुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३०—जो पुद्गल रस से कडुवा है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३१—रसओ कसाए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः कषायो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३१—जो पुद्गल रस से कसैला है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३२—रसओ अम्बिले जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः अम्लो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३२—जो पुद्गल रस से खट्टा है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३३—रसओ मधुरए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतो मधुरको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३३—जो पुद्गल रस से मधुर है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३४—फासओ ककखडे जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतः ककखटो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३४—जो पुद्गल स्पर्श से ककख है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३५—फासओ मउए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो मृदुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३५—जो पुद्गल स्पर्श से मृदु है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३६—फासओ गुरुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ च्वेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो गुरुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३६—जो पुद्गल स्पर्श से गुरु है, वह
बर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३७—फासओ लहुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ च्वेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो लघुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३७—जो पुद्गल स्पर्श से लघु है, वह
बर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३८—फासओ सीयए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ च्वेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो शीतको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३८—जो पुद्गल स्पर्श से शीत है, वह
बर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३९—फासओ उण्हए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ च्वेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो उष्णको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३९—जो पुद्गल स्पर्श से उष्ण है, वह
बर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

४०—फासओ निद्धए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ च्वेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो स्निग्धको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

४०—जो पुद्गल स्पर्श से स्निग्ध है, वह
बर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

४१—फासओ लुक्खए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ च्वेव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो क्लृप्तको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

४१—जो पुद्गल स्पर्श से क्लृप्त है, वह
बर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

४२—परिमण्डलसंठाणे

भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

परिमण्डल-संस्थानः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४२—जो पुद्गल संस्थान से परिमण्डल है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४३—संठाणओ

भवे वट्टे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

संस्थानतो भवेत् वृत्तः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४३—जो पुद्गल संस्थान से वृत्त है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४४—संठाणओ

भवे तंसे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

संस्थानतो भवेत् त्रयसः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४४—जो पुद्गल संस्थान से त्रिकोण है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४५—संठाणओ

व चउरंसे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

संस्थानतो यश्चतुरसः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४५—जो पुद्गल संस्थान से चतुष्कोण है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४६—जे

आययसंठाणे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

य आयत-संस्थानः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४६—जो पुद्गल संस्थान से आयत है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४७—एसा

अजीवविभती
समासेण वियाहिया ।
इतो जीवविभत्ति
बुच्छामि अणुपुब्बसो ॥

एषाऽजीव-विभक्तिः

समासेन व्याख्याता ।
इतो जीव-विभक्ति
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

४७—यह अजीव-विभाग संक्षेप में कहा गया है । अब अनुक्रम से जीव-विभाग का निरूपण करूंगा ।

४८—संसारत्या य सिद्धा य
दुविहा जीवा वियाहिया' ।
'सिद्धा णेगविहा वुत्ता'
तं मे कित्तयओ सुण ॥

संसारस्वभाव सिद्धाश्च
द्विविधाः जीवा व्याख्याताः ।
सिद्धा अनेकविधा उक्ताः
तान् मे कीर्तयतः शृणु ॥

४८—जीव दो प्रकार के होते हैं—
(१) संसारी और (२) सिद्ध । सिद्ध अनेक प्रकार
के होते हैं । मैं उनका निरूपण करता हूँ, तुम
सुन से सुनो ।

४९—इत्थो पुरिससिद्धा य
तहेव य नपुंसगा ।
सल्लिगे अन्नल्लिगे य
गिहिल्लिगे तहेव य ॥

स्त्री-पुरुष-सिद्धाश्च
तथैव च नपुंसकाः ।
स्व-लिंगा अन्य-लिंगाश्च
गृह-लिंगास्तथैव च ॥

४९—स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंग सिद्ध,
नपुंसकलिंग सिद्ध, स्वलिंग सिद्ध, अन्यलिंग
सिद्ध, गृहलिंग सिद्ध आदि उनके अनेक
प्रकार हैं ।

५०—उक्कोसोगाहणाए य
जहन्मज्झमाइ य ।
उडुहं अहे य तिरियं च
समुट्ठमि जलमि य ॥

उत्कर्षावगाहनायां च
अध्वन्यमध्यमयोश्च ।
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् च
समुद्रे जले च ॥

५०—उत्कण्ठ, जघन्य और मध्यम
अवगाहना (कद) में, ऊँच, नीचे और तिरछे
लाक में तथा समुद्र व अन्य जलाशयों में भी
जीव सिद्ध होते हैं ।

५१—दस 'चंव नपुंसेसु'^१
वोसं इत्थियासु य ।
पुरिसेसु य अट्टसयं
समण्णेगेण सिज्झई ॥

दस चैव नपुंसकेषु
विशतिः स्त्रीषु च ।
पुरुषेषु चाष्टशतं
समयेनेकेन सिध्यति ॥

५१—दस नपुंसक, बीस स्त्रियाँ और
एक सौ आठ पुरुष एक ही क्षण में सिद्ध हो
सकते हैं ।

५२—चत्तारि य गिहिल्लिगे
अन्नल्लिगे दसेव य ।
सल्लिगेण य अट्टसयं
समण्णेगेण सिज्झई ॥

चत्वारदश गृह-लिंगे
अन्य-लिंगे दशैव च ।
स्व-लिंगेन चाष्टशतं
समयेनेकेन सिध्यति ॥

५२—गृहस्थ वेश में चार, अन्य तीर्थिक
वेश में दश और निर्जन्य वेश में एक सौ आठ
जीव एक साथ सिद्ध हो सकते हैं ।

५३—उक्कोसोगाहणाए य
सिज्झन्ते जुगवं दुवे ।
चत्तारि जहन्ताए
जवमज्झमट्ठत्तरं सयं ॥

उत्कर्षावगाहनायां च
सिध्यतो युगपद् द्वौ ।
चत्वारो जघन्यायाम्
यवमध्यायामष्टोत्तरं शतम् ॥

५३—उत्कण्ठ अवगाहना में दो, जघन्य
अवगाहना में चार और मध्यम अवगाहना में
एक सौ आठ जीव एक ही क्षण में सिद्ध हो
सकते हैं ।

१. भवति ते (५० पा०) ।

२. लब्धाणगविहा सिद्धा (५० पा०) ।

३. च नपुंसकेषु (५०) ।

४. मज्जे अट्ठत्तरं (अ) ।

५४—'चउरुड्डलो ए य दुवे समुहे
तओ जले बीसमहे तहेव' ।
सयं च अट्टुत्तर तिरियलोए
समएणेण उ 'सिज्झई उ' ॥^१

कत्वार ऊर्ध्व-लोके च द्वौ समुद्रे
त्रयो जले बिशतिरधस्तथैव ।
शतं चाष्टोत्तरं तिर्यग्-लोके
समयेनैकेन तु सिध्यति ॥

५४—ऊँचे लोक में बार, समुद्र में दो,
अन्य जलाशयों में तीन, नीचे लोक में बीस,
तिरछे लोक में एक सो आठ जीव एक ही ण
में सिद्ध हो सकते हैं ।

५५—कहिं पडिहया सिद्धा ?
कहिं सिद्धा पडिहया ? ।
कहिं बोन्दि चइत्ताणं ?
कत्थ गन्तूण सिज्झई ? ॥

कथः प्रतिहताः सिद्धाः ?
कथः सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ? ।
कथः शरीरं त्यक्त्वा ?
कुत्र गत्वा सिध्यन्ति तु ? ॥

५५—सिद्ध कहाँ सकते हैं ? कहाँ स्थित
होते हैं ? कहाँ शरीर को छोड़ते हैं ? और
कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ?

५६—अलोए पडिहया सिद्धा
लोयगे य पडिहया ।
इहं बोन्दि चइत्ताणं
तत्थ गन्तूण सिज्झई ॥

अलोके प्रतिहताः सिद्धाः
लोकाद्ये च प्रतिष्ठिताः ।
इह शरीरं त्यक्त्वा
तत्र गत्वा सिध्यन्ति ॥

५६—सिद्ध अलोक में सकते हैं । लोक
के अग्रभाग में स्थित होते हैं । मनुष्य लोक में
शरीर को छोड़ते हैं और लोक के अग्रभाग में
जाकर सिद्ध होते हैं ।

५७—बारसहिं जोयणेहिं
सव्वट्ठमुवरि भवे ।
ईसीपम्भारनामा उ^२
पुढवी छत्तसंठिय ॥

ठावशमिर्योजनं:
सर्वायंस्योपरि भवेत् ।
ईषत्प्राग्भारनाम्नी तु
पृथ्वी छत्र-संस्थिता ॥

५७—सर्वायंसिद्ध विमान से बारह
योजन ऊपर ईषत्-प्राग्भारा नामक पृथ्वी
है । वह छत्राकार में अवस्थित है ।

५८—पणयालसयसहस्सा
जोयणार्ण तु आयया ।
तावज्जं चव वित्थिणा
'तिगुणो तस्सेव परिरओ' ॥^३

पञ्चवत्वारिंशत शतसहस्राणि
योजनानां त्वायता ।
तावन्ति चैव बिस्तीर्णा
त्रिगुणस्तस्मादेव परिरयः ॥

५८—उसकी लम्बाई और चौड़ाई
पैंतालीस लाख योजन की है । उसकी परिधि
उस (लम्बाई-चौड़ाई) से तिगुनी है ।

१. तहेव य (अ) ।

२. सिज्झई धुव (उ, ऋ०) ।

३. चउरो उड्डल्लोगमि बीसपहुत्तं अहे भवे ।
सयं अट्टोत्तरं तिरिप् एग समएण सिज्झई ॥
दुवे समुद्रे सिज्झन्ति तेस जलेइ ततो जणा ।
एसा तु सिज्झणा भणिग्वा पुब्बभावं ववुच्च व ॥ (वृ० पा०) ।

४. × (उ, ऋ०) ।

५. सिडण साहिय पच्चिरं (वृ० पा०) ।

५९—अद्वजोयनबाह्ला

सा मज्जमि वियाहिया ।
परिहायन्ती चरिमन्ते
मच्छियपत्ता तण्युरी ॥

अद्वजोयन-बाह्ला

सा मज्जे व्याहयाना ।
परिहोयमाना चरमान्ते
मक्षिका-पत्रात् तनुरा ॥

५९—मध्य भाग में उसकी मोटाई आठ
योजन की है । वह क्रमशः पतली होती-होती
अन्तिम भाग में मक्खी के पर से भी अधिक
पतली हो जाती है ।

६०—अज्जुणसुवण्णगमई

सा पुढवी निम्मला सहावेणं ।
उत्ताणगद्धतगसठिया य
भणिया जिनवरंहे ॥

अज्जुन-सुवर्णकमयी

सा पृथिवी निर्मला स्वभावेन ।
उत्तानकच्छत्रक-संस्थिता च
भणिता जिनवरः ॥

६०—वह श्वेत-स्वर्णमयी, स्वभाव से
निर्मल और उत्तम (सीधे) छत्राकार वाली
है—ऐसा जिनवर ने कहा है ।

६१—संखकुन्दसंकासा

पण्डुरा निम्मला सुहा ।
सीयाए जौयणे तत्तो
लोयन्तो उ वियाहियो ॥

शङ्खकुन्द-संकाशा

पाण्डुरा निर्मला शुभा ।
सीताया योजने ततः
लोकास्तस्तु व्याख्यातः ॥

६१—वह शंख, अंक-रत्न और कुम्भ पुष्प
के समान श्वेत, निर्मल और शुद्ध है । उस
सीता नाम की ईश्वर-प्राग्भारा पृथ्वी से एक
योजन ऊपर लोक का अन्त (अग्रभाग) है ।

६२—जोयणस्स उ जो तस्स'

कोसो उवरिमो भवे ।
'तस्स कोसस्स छ्णभाए
सिद्धाणोगाहणा भवे'^१ ॥

योजनस्य तु यस्तस्य
क्रोश उपरिधर्तो भवेत् ।
तस्य क्रोशस्य षड्भागे
सिद्धानामवगाहना भवेत् ॥

६२—उस योजन के उपरले कोस के
छठे भाग में सिद्धों की अवगाहना (अवस्थिति)
होती है ।

६३—तत्थ सिद्धा महाभागा

लोयग्गमि पड्डिया^२ ।
भवप्पवंच उम्मुक्का
सिद्धि वरगइ गया ॥

तत्र सिद्धा महाभागाः

लोकाग्र प्रतिष्ठिताः ।
अव-प्रपञ्चोन्मुक्ताः
सिद्धि वरगति गताः ॥

६३—अनन्त शक्तिशाली अव-प्रपञ्च से
उन्मुक्त और सर्वश्रेष्ठ गति (सिद्धि) को प्राप्त
होने वाले सिद्ध वहाँ लोक के अग्रभाग में स्थित
होते हैं ।

६४—उस्सेहो जस्स जो होइ

भवम्मि चरिमम्मि उ^३ ।
तिभागहीणा तत्तो य
सिद्धाणोगाहणा भवे ॥

उत्सेधो यस्य यो अवति
अवे चरमे तु ।
त्रिभागहीना ततस्थ
सिद्धानामवगाहना भवेत् ॥

६४—अन्तिम भव में जिसकी जितनी
कैफ़ाई होती है, उससे त्रिभागहीन (एक तिहाई
—क्रम) उसकी अवगाहना होती है ।

१. तस्य (६०) ; तस्स (६० पा०) ।

२. कोसस्सचि य ओ तस्य छ्णभागे उवरिमो भवे (६० पा०) ।

३. व सठ्ठिवा (व) ।

४. व (६०) ।

६५—एगत्तेण साईया
अपज्जवसिया वि य ।
पृहुत्तेण अणाईया
अपज्जवसिया वि य ॥

६६ - अरुविणो जीवघणा
नाणदंसणसन्निया ।
अउठं मुहं संपत्ता
उवमा जस्स नत्थि उ ॥

६७—लोएगदेसे^१ ते सव्वे
नाणदंसणसन्निया ।
संसारपागनिच्छिन्ना
सिद्धि वरगई गया ॥

६८—संसारत्था उ जे जीवा
दुविहा ते वियाहिया ।
तसा य थावरा चेव
थावरा तिविहा तहि ॥

६९—पुढवो आउजीवा य
तहेव य वणस्सई ।
इच्चेए थावरा तिविहा
तेसि भेए सुणह मे ॥

७०—दुविहा पुढवीजीवा उ
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए^२ दुहा पुणो ॥

एकत्वेन साधिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
पृथुत्वेनानाधिकाः
अपर्यवसिता अपि च ॥

अरूपिणो जीव-घनाः
ज्ञान-दर्शन-संज्ञिताः ।
अतुलं सुखं सम्प्राप्ता
उपमा यस्य नास्ति तु ॥

लोकैकदेशे ते सर्वे
ज्ञान-दर्शन-संज्ञिताः ।
संसार-पार-निस्तोर्णाः
सिद्धिं वरयन्ति यतः ॥

संसारस्यास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
असादृच स्यावरादचैव
स्यावरास्त्रिविधास्तत्र ॥

पृथिव्यण्जीवाश्च
तथैव च वनस्पतिः ।
इत्येते स्यावरास्त्रिविधाः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

द्विविधा पृथिवी-जीवास्तु
सूक्ष्मा बादरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
एकमेव द्विधा पुनः ॥

६५—एक-एक की अपेक्षा से सिद्ध
सादि-अनन्त और पृथुता (बहुत्व) की अपेक्षा से
अनादि-अनन्त हैं ।

६६—वे निष्ठ-जीव अरूप, सघन (एक
दूसर से मटे हुए) और ज्ञान-दर्शन में सतत
उपयुक्त होते हैं । उन्हें वैसा सुख प्राप्त होता
है, जिसके लिए संसार में कोई उपमा
नहीं है ।

६७—ज्ञान और दर्शन से सतत उपयुक्त,
संसार समुद्र से निम्नार्ण और सर्वभेद गति
(सिद्धि) का प्राप्त होने वाले सब सिद्धलोक के
एक देश में अवस्थित हैं ।

६८—संसारों जीव दो प्रकार के हैं—
(१) त्रय और (२) स्यावर । स्यावर तीन प्रकार
के हैं—

६९—(१) पृथ्वी, (२) जल और (३)
वनस्पति । ये तीन स्यावर के मूल भेद हैं ।
इनके उत्तर भेद मुझ से सुनो ।

७०—पृथ्वी-काय के जीव दो प्रकार के
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बाधर । इन दोनों के
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त—ये दो-दो भेद
होते हैं ।

१. लोगराग^१ (६० पा०) ।

२. एगमेए (६० पा०) ।

७१—बायरा जे उ पज्जता
डुविहा ते वियाहिया ।
सण्हा खरा य बोद्धवा
सण्हा सत्तविहा तहि ॥

७२—किण्हा नीला य रुहिरा य^१
हालिहा सुक्खिला तथा ।
पण्डुपणमट्टिया
खरा छत्तीसईविहा ॥

७३—पुढवी य सक्करा बालुया य
उवले सिला य लोणूसे ।
'अयत्तम्बतउय'^२ सीसग-
रुप्पसुवण्णे य वड्ढे य ॥

७४—हरियाले हिगुलए
मणोसिला सासगंजणपवाले ।
अन्नपडलअन्नबालुय
बायरकाए मणिविहाणा ॥

७५—गोमेजए य रुयगे
अंके फलिहे य लोहियक्खे य ।
मरगयमसारगल्ले
भुयमोयगइन्दनीले य ॥

७६—चन्दणगेरुयहंसगन्न
पुलए सोगन्धिक य बोद्धवे ।
चन्दप्पह्वेरुलिए
जलकन्ते सूरकन्ते य ॥

बादरा ये तु पर्याप्तः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
श्लक्ष्णाः खरादश्च बोद्धव्याः
श्लक्ष्णाः सप्तविधास्तत्र ॥

कृष्णा नीलादश्च श्वशरादश्च
हरित्राः शुक्लास्तथा ।
पाण्डु-पनक-मुस्तिका
खराः वर्द्धाश्च श्वश्रवाः ॥

पृथिवी च शर्करा बालुका च
उपलः शिला च लवणोष्ठी ।
अयस्ताम्र-त्रयुक-सीसक-
कम्ब्य-सुवर्णं च वज्रं च ॥

हरितालं हिगुलकः
मनःशिला सस्यकाऽन्नप्रवालाणि ।
अन्नपटलमन्नबालुका
बायरकाये मणिविधानानि ॥

गोमेदकदश्च वज्रकः
अंक-स्फटिकदश्च लोहिताक्षदश्च ।
मरकत-मसारगल्लः
भुजमोचक इन्द्रनीलदश्च ॥

चन्दन-गौरिक-हंसगर्भः
पुलकः सोगन्धिकदश्च बोद्धव्यः
चन्द्रप्रभो वैदूर्यः
जलकान्तः सूर्यकान्तदश्च ॥

७१—बादर पर्याप्त पृथ्वीकाविक जीनों
के दो भेद हैं—(१) मृदु, और (२) कठोर ।
मृदु के सात भेद हैं :

७२—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) रक्त,
(४) पीत, (५) श्वेत, (६) पाण्डु (ग्रीष्मिन्दी)
और (७) पनक (अति सूक्ष्म रत्न) । कठोर
पृथ्वी के छत्तीस प्रकार हैं :

७३—(१) शुद्ध पृथ्वी, (२) शर्करा, (३)
बालु, (४) उपल, (५) शिला, (६) लवण, (७)
मौनी मिट्टी, (८) लोहा, (९) रांघा, (१०)
ताम्रा, (११) शीशा, (१२) चाँदी, (१३)
सोना, (१४) वज्र,

७४—(१५) हरिताल, (१६) हिगुल,
(१७) मैनसिल, (१८) सस्यक, (१९) अन्न,
(२०) प्रवाल, (२१) अन्नक पटल, (२२) अन्न
बालुक । मणिगो के भेद, जैसे—

७५—(२३) गोमेदक, (२४) वज्रक,
(२५) अंक, (२६) स्फटिक और लोहिताक्ष,
(२७) मरकत एवं मसार गल्ल, (२८) भुज-
मोचक, (२९) इन्द्रनील,

७६—(३०) चन्दन, मेरुक एवं हंस गर्भ,
(३१) पुलक, (३२) सोगन्धिक, (३३) चन्द्रप्रभ,
(३४) वैदूर्य, (३५) जलकान्त और (३६) सूर्य
कान्त ।

१. x (अ) ।

२. अर्थव तन्नो व (अ) ; अथ तदथ तन्न (व, ऋ =) ।

७७—एए खरपुठवीए
भेया छतीसमाहिया ।
एगविहमणाणता
सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥

७८—सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे य बायरा ।
इतो कालविभागं तु
तेसि वुच्छं चउव्विहं ॥

७९—संतइं पप्पणाईया^१
अपज्जबसिया वि य ।
ठिइं पडुब साईया
सपज्जबसिया वि य ॥

८०—बावीसहस्साइं
वासाणुकोसिया भवे ।
आउठिईं पुठवीणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया^२ ॥

८१—असंखकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायठिईं पुठवीणं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

८२—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजठमिं सए काए
पुठवीजीवाण अन्तरं ॥

एते खरपुठिव्याः
भेदाः षट्त्रिंशदाख्याताः ।
एकविधा अमानात्वाः
सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याताः ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
लोक-वेशे च भावराः ।
इतः काल-विभागं तु
तेषां बह्व्ये चतुर्विधम् ॥

संतति प्राप्यानाविकाः
अपयंबसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपयंबसिता अपि च ॥

द्वाविंशति-सहस्राणि
वर्षाणामुत्कथिता भवेन् ।
आयुः-स्थितिः पृथिवीनां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

असंख्यकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
काय-स्थितिः पृथिवीनां
तं कायं त्वंचताम् ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यष्टे स्वके काये
पृथिवी-जीवानामन्तरम् ॥

७७—कठोर पृथ्वी के ये छतीस प्रकार होते हैं । सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं । उनमें नानात्व (बहु विधता) नहीं होता ।

७८—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समूचे लोक में और बाहर पृथ्वीकायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । इनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण रक्के गा ।

७९—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनावि-
अन्न और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

८०—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः बाईस हजार वर्ष
की है ।

८१—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर उसी
काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः असंख्यात-
काल की है ।

८२—उनका अन्तर (पृथ्वीकाय को छोड़
कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का
काल) जघन्यतः अन्यर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
अनन्त काल का है ।

१. 'तेणाईं (थ) ।

२. जहन्नमं (अ) ।

८३—एएसि वणओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाई सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानावेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

८३—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

८४—दुविहा आउजीवा उ
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

द्विविधा अज्जीवास्तु
सूक्ष्मा बावरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
एवमेव द्विधा पुनः ॥

८४—अकार्यिक जीव दो प्रकार के हैं—
(१) सूक्ष्म और (२) बावर । इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो भेद होते हैं ।

८५—बायरा जे उ पज्जत्ता
पंचहा ते पकित्तिया ।
सुद्धोदए य उस्से
हरतण् महिया हिमे ॥

बावरा ये तु पर्याप्ताः
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
शुद्धोदकं चाश्मदयायः
हरतनुमंहिकाहिमम् ॥

८५—बावर पर्याप्त अकार्यिक जीवों के पाँच भेद होते हैं—(१) शुद्धोदक, (२) ओस, (३) हरतनु, (४) कुहासा और (५) हिम ।

८६—एगविहमणात्ता
सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे य बायरा ॥

एकविधा अनात्तात्वाः
सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याताः ।
सूक्ष्माः सर्वलोके
लोक-देशे च बावराः ॥

८६—सूक्ष्म अकार्यिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं, उनमें नानात्व नहीं होता । वे समूचे लोक में तथा बावर अकार्यिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

८७—सन्तई पप्पणाईया^१
अपज्जवसिया वि य ।
ठिई पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्ततिं प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

८७—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-जनल और स्थिति की अपेक्षा से सादि-जानत हैं ।

८८—सत्तेव सहस्साईं
वासाणक्कोसिया भवे ।
आउट्ठिई आऊणं
अन्तोमुहुतं जहन्निया^२ ॥

सत्तैव सहस्राणि
वर्षाणमुत्क्रान्ता भवेत् ।
आयुः-स्थितिरपि
अन्तर्मुहूर्तं जथेन्यथा ॥

८८—उनकी आयु स्थिति जथेन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः सात हजार वर्ष की है ।

१. 'तेणाई' (अ) ।

२. 'जहन्निया' (अ) ।

८९—असंखकालमुक्कोसं

अन्तोमुहुतं जहन्निया ।
कायद्विई आऊणं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

असंख्यकालमुक्कवं
अन्तमुं हुतं जघन्यकम् ।
काय-स्थितिरपां
तं कायं त्वमुंचताम् ॥

८९—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर उसकी काय में जन्म लेते रहते की काल-मर्यादा) बघन्यतः अन्तर्मुहुतं और उत्कृष्टतः असंख्यात काल की है ।

९०—अणन्तकालमुक्कोसं

अन्तोमुहुतं जहननयं ।
विजडंमि सए काए
आऊजीवाण अन्तरं ॥

अणन्तकालमुक्कवं
अन्तमुं हुतं जघन्यकम् ।
विष्यकते स्वके काये
अब्जीवानामन्तरम् ॥

९०—उनका अन्तर (अर्थात् को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहुतं और उत्कृष्टतः अणन्त-काल का है ।

९१—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ बावि
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतद्वैष्व
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो बापि
विधानानि सहस्रशः ॥

९१—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सत्यान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

९२—डुविहा वणस्सईजीवा
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए' दुहा पुणो ॥

द्विविधा वनस्पति-जीवाः
सूक्ष्मा बावरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
एवमेते द्विविधा पुनः ॥

९२—वनस्पतिकामिक जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बावर । इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो भेद होते हैं ।

९३—बायरा जे उ पज्जत्ता
डुविहा ते वियाहिया ।
साधारणसरीरा य
पत्तेगा य तहेव य ॥

बावरा ये तु पर्याप्ताः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
साधारण-शरीरादय
प्रत्येकादय तथैव च ॥

९३—बावर पर्याप्त वनस्पतिकामिक जीवों के दो भेद होते हैं—(१) साधारण-शरीर और (२) प्रत्येक-शरीर ।

९४—पत्तेगसरीरा उ
णेगहा ते पकित्तिया* ।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य
लया वल्ली तथा तहा ॥

प्रत्येक शरीरास्तु
अनेकधा ते प्रकृतिताः ।
कसा गुच्छाज्ज गुम्मारज्ज
कसा-वल्ली तुणानि तथा ॥

९४—प्रत्येक-शरीर वनस्पतिकामिक जीवों के अनेक प्रकार हैं—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, कसा, वल्ली और तुण ।

१. पक्षयेव (अ) ।

२. बारसविइ मेएणं पत्तेगा उ विवाहिय (५० पा०) ।

९५—लयावलया^१ पव्वगा^२ कुहुणा
जलरुहा ओसहोतिणा^३ ।
हरियकाया य बोद्धव्वा
पत्तेया इति आहिया ॥

लता-बलपानि पव्वगाः
कुहुणा जलरुहा ओषधि-तृणानि ।
हरित-कायाश्च बोद्धव्याः
प्रत्येका इति आख्याताः ॥

६५—लता-बलय (नारियल आदि), पर्वज
(ईम आदि), कुहुण (भूकोइ आदि), जलरुह
(कमल आदि), ओषधि-तृण (अनाज) और
हरित-काय - ये सब प्रत्येक-शरीर हैं ।

९६—साधारणशरीरा उ
गेगहा ते पकित्तिया ।
आलुए मूलए चैव
सिगबेरे तहेव य ॥

साधारण-शरीरास्तु
अनेकविधा ते प्रकीर्तिताः ।
आलुको मूलकश्चैव
शुद्धबैरं तथैव च ॥

९६—साधारण-शरीर वनस्पतिकायिक
जीवों के अनेक प्रकार हैं—आलु, मूली,
अदरक,

९७—हिरिली सिरिली सिस्सिरिली
जावई केदकन्दली^४ ।
पल्लदूलसणकन्दे य
कन्दली य कुडुंबए^५ ॥

हिरिली सिरिली सिस्सिरिली
जावई केदकन्दली ।
पलाण्डु-लङ्गुन-कन्दश्च
कन्दली च कुस्तुम्बकः ॥

९७—हिरलोकन्द, सिरिलीकन्द, सिस्सि-
रिलीकन्द, जावईकन्द, केव-कंदलीकन्द, प्याज,
लहसुन, कन्दली, कुस्तुम्बक,

९८—लोहि णीह य थिह य
कुहगा य तहेव य ।
कण्हे य वज्जकन्दे य
कन्दे मूरणए^६ तहा ॥

लोही स्निह इव स्तिभु इव
कुहकाश्च तथैव च ।
कुण्डलश्च वज्रकन्दश्च
कन्दः मूरणकस्तथा ॥

९८—लोही, स्निह, कुहक, कुण्ड, वज्र-
कन्द, मूरणकन्द,

९९—अस्सकण्णी य बोद्धव्वा
सोहकण्णी तहेव य ।
मुमुण्डी य हलिद्दा य
ऽणेगहा एवमावओ ॥

अश्वकर्णी च बोद्धव्या
सहकर्णी तथैव च ।
मुमुण्डी च हरिद्रा च
अनेकधा एवमावयः ॥

९९—अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुंडी और
हरिद्रा आदि । ये सब साधारण-शरीर हैं ।

१००—एगविहमणानत्ता
सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगवेसे य बायरा ॥

एकविधा अनात्माः
सूत्रमास्तत्र व्याख्याताः ।
सूत्रमाः सर्वलोके
लोक-देशो च बावराः ॥

१००—सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव एक
ही प्रकार के होते हैं, उनमें नामाल नहीं
होता । वे समूचे लोक में तथा बादर वनस्पति-
कायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

१. बलया च (अ) ।

२. पव्वगा (वृ०) ; पव्वगा (वृ० पा०) ।

३. ०सहा (अ, आ, इ, उ, ए०) ।

४. केलि (ड) ।

५. कुडुम्बए (ड, क०) ; कुडुम्बए (स) ।

६. मूरणे (ड) ।

१०१—संतई पप्पणाईया*
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तर्गतं प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१०१—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त धोर स्थिति की अपेक्षा में सादि-
सान्त हैं ।

१०२—दस चैव सहस्साइं
वासाणुकोसिया भवे ।
वणप्फईण* आउं तु
अन्तोमुहुत्तं जहन्नगं ॥

दश चैव सहस्राणि
वर्षाणामुक्तेषिता भवेत् ।
वनस्पतीनामायुस्तु
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१०२—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्तं और उत्कृष्टतः दस हजार वर्ष
की है ।

१०३—अणन्तकालमुकोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायठिई पणगाणं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
काय-स्थितिः पनकानां
तं कायन्त्वमुंचताम् ॥

१०३—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मुहूर्तं और उत्कृष्टतः अनन्त काल
की है ।

१०४—असंखकालमुकोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजडंमि सए काए
पणगजोवाण अन्तरं ॥

असङ्ख्यकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्पक्ते स्वके काये
पनक-जीवानामन्तरम् ॥

१०४—उनका अन्तर 'वनस्पतिकाय को
छाड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक
का काल' जघन्यतः अन्तर्मुहूर्तं और उत्कृष्टतः
असंख्यान काल का है ।

१०५—एएसि वण्णओ चैव
गन्धआं रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतद्वैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१०५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान
की दृष्टि से उनमें हजारों भेद होते हैं ।

१०६—इच्चेण थावरा तिविहा
समासेण वियाहिया ।
इत्तो उ तसे तिविहे
वुच्छामि अण्णुव्वसो ॥

इत्येतां स्वावरास्त्रिविधाः
समासेन व्याख्याताः ।
इतस्तु त्रयान् त्रिविधान्
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

१०६—यह तीन प्रकार के स्वावर जोधों
का संक्षिप्त वर्णन है । अब तीन प्रकार के त्रय
जोधों का क्रमशः निरूपण करेंगे ।

१. *तेणाइ (अ) ।

२. वणस्सईण (उ. ऋ०, वृ०) ; वणप्फाण (वृ० पा०) ।

१०७—तेऊ वाऊ य बोद्धव्वा
उराला य तसा तहा ।
इच्चंए तसा तिबिहा
तेसि भेए सुणेह मे ॥

तेजो वायुश्च बोद्धव्यो
उदाराश्च त्रसास्तथा ।
इत्येते त्रसास्त्रिविधाः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१०७—तेजस्काय, वायुकाय और
उदार त्रसकाय—ये तीन भेद त्रसकाय के हैं ।
अब इनके भेदों को मुझ से सुनो ।

१०८—दुविहा तेउजीवा उ
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

द्विविधास्तेजोजीवास्तु
सूक्ष्मा बादरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता
एवमेते द्विधा पुनः ॥

१०८—तेजस्कायिक जीवों के दो प्रकार
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बादर । उन दोनों के
पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होते हैं ।

१०९—बायरा जे उ पज्जत्ता
णंगहा ते वियाहिया ।
इंगाले मुम्मुरे अणो
अब्बि जाला तहेव य ॥

बादरा ये तु पर्याप्ताः
अनेकधा ते व्याख्याताः ।
अंगारो मुमूरोऽग्निः
अचिच्छाला तथैव च ॥

१०९—बादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों
के अनेक भेद हैं—अंगार, मुमूर, अग्नि, अर्बु, ज्वाला,

११०—उक्का विज्जू य बोद्धव्वा
णंगहा एवमायओ ।
एगविहमणणत्ता
सुहुमा ते वियाहिया ॥

उक्का विषूञ्च बोद्धव्याः
अनेकधा एवमावयः ।
एकविधा अनानात्वाः
सूक्ष्मास्ते व्याख्याताः ॥

११०—उक्का, विषूत् आदि । सूक्ष्म
तेजस्कायिक जीव एक ही प्रकार के होते
हैं, उनमें नानात्व नहीं होता ।

१११—सुहुमा सब्वलोगम्मि
लोग्गदेसे' य बायरा ।
इतो कालविभागं तु
तेसि वुच्छं चउव्विहं ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
लोके-देशे च बादराः ।
इतः काल-विभागं तु
तेषां वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥

१११—वे (सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव)
समूचे लोक में और बादर तेजस्कायिक जीव
लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । अब मैं उनके
चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

११२—संतइं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यनाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थिति प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

११२—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सात हैं ।

११३—तिष्णोव अहोराता
उक्कोसेण विद्याहिया ।
आउट्टिं तेऊणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

प्रीष्येवाहोरात्राणि
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थिति स्तेजसाम्
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

११३—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः तान विन-रात
की है ।

११४—असंखकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायट्टिं तेऊणं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

असंख्यकालमुत्कषे
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
काय-स्थितिस्तेजसाम्
तं कायत्त्वचमुंचताम् ॥

११४—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः असंख्यात
काल की है ।

११५—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजडंमि सए काए
तेउजीवाण अन्तरं ॥

अनन्तकालमुत्कषे
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
तेजोजीवानामन्तरम् ॥

११५—उनका अन्तर (वैजस्यकाय को
छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक
का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
अनन्त काल का है ।

११६—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रतः ॥

११६—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद हैं ।

११७—दुविहा वाउजीवा उ
सुद्धमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

द्विविधा वायु-जीवास्तु
सूक्ष्मा बाधरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता
एवमेते द्विधा पुनः ॥

११७—वायुकायिक जीवों के दो प्रकार
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बाधर । उन दोनों के
पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होते हैं ।

११८—बायरा जे उ पज्जत्ता
पंचहा ते पकित्थिमा ।
उक्कलियामण्डलिया-
घणगुंजा सुद्धवाया य ॥

बाधरा ये तु पर्याप्ता
पंचषा ते प्रकीर्तिताः ।
उत्कलिका मण्डलिका
घन-गुंजाः शुद्ध-वाताश्च ॥

११८—बाधर पर्याप्त वायुकायिक जीवों
के पाँच भेद होते हैं—(१) उत्कलिका, (२)
मण्डलिका, (३) घनवात, (४) गुंजावात और
(५) शुद्धवात ।

११९—संवट्टगवाते य
 ऽणंगविहा^१ एवमायओ ।
 एगविहमणाणत्ता
 सुहुमा ते वियाहिया ॥

संवत्तक-वातायच
 अनेकधा एवमादयः ।
 एकविधा अनानात्वाः
 सूक्ष्मास्ते व्याख्याताः ॥

११६—उनमें संवत्तक-वात बादि और
 भी अनेक प्रकार हैं । सूक्ष्म वायुकायिक जीव
 एक ही प्रकार के होते हैं, उनमें नामात्व नहीं
 होता ।

१२०—सुहुमा सव्वलोगम्मि
 लोगदेसे^२ य बायरा ।
 इतो कालविभागं तु
 तेसि वुच्छं चउव्विहं ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
 लोक-वेशे च बादराः ।
 इतः काल-विभागं तु
 तेषां वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥

१२०—वे 'सूक्ष्म-वायुकायिक जीव'
 समुच्चं लोक में और बादर वायुकायिक जीव
 लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । अब मैं उनके
 चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१२१—संतं पप्पण्णायिया
 अपज्जवसिया वि य ।
 ठिइं पडुच्च साईया
 सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानाविकाः
 अपयंबसिता अपि च ।
 स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
 सपयंबसिता अपि च ॥

१२१—प्रवाह की अपेक्षा में वे अनादि-
 अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सावि-
 द-सान्त हैं ।

१२२—निण्णेव सहस्सांडं
 वासाण्णुकोसिया भवे ।
 आउट्ठिईं वाऊणं
 अन्तोमुहुतं जहन्निया ॥

श्रीण्येव सहस्राणि
 वर्षाणामुत्कर्षिता भवेन् ।
 आयुः-स्थितिर्वायूनाम्
 अन्तमुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१२२—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
 अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टतः तीन हजार वर्षों
 की है ।

१२३—असंखकालमुक्कोसं
 अन्तोमुहुतं जहन्नयं ।
 कायट्ठिईं वाऊणं
 तं कायं तु अमुंचओ ॥

असंख्यकालमुत्कर्षं
 अन्तमुहूर्तं जघन्यकम् ।
 काय-स्थितिर्वायूनां
 तं कायन्त्वयमंबताम् ॥

१२३—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
 उसी काय में जन्म लेने रहने की काल-
 मर्यादा) जघन्यतः अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टतः
 असंख्यात काल की है ।

१२४—अणन्तकालमुक्कोसं
 अन्तोमुहुतं जहन्नयं ।
 विजडंमि सए काए
 वाउजोवाण अन्तरं ॥

अणन्तकालमुत्कर्षं
 अन्तमुहूर्तं जघन्यकम् ।
 वित्यक्ते स्वके काये
 वायु-जीवानामन्तरम् ॥

१२४—उनका अन्तर (वायुकाय को
 छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक
 का काल) जघन्यतः अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टतः
 अनन्त काल का है ।

१. ऽणंगविहा (उ, ऋ०) ।

२. एगदेसे (अ) ।

१२५—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतत्त्वेष्वं
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वाऽपि
विधानानि सहस्रशः ॥

१२५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१२६—ओराला तसा जे उ
चउहा^१ ते पकितिया ।
वेइन्दियतेइन्दिय-
चउरोपंचिन्दिया चेव ॥

उदाराः त्रसा ये तु
चतुर्था ते प्रकीर्तिताः ।
द्वीन्द्रियाश्चोन्द्रियाः
चतुर्पंचेन्द्रियाश्चैव ॥

१२६—उदार त्रय-कारिक जीव चार
प्रकार के हैं—(१) द्वीन्द्रिय, (२) चोन्द्रिय,
(३) चतुरिन्द्रिय और (४) पंचेन्द्रिय ।

१२७—वेइन्दिया उ^२ जे जीवा
दुविहा ते पकितिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
तेसि भेए सुणेह मे ॥

द्वान्द्रियास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते प्रकीर्तिताः ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१२७—द्वीन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद तुम
सुनते सुनो ।

१२८—किमिणो सोमंगला
चेव अलसा माइवाहया ।
वासोमुहा य सिप्पीया^३
संखा संखणगा^४ तथा ॥

कृमयः सोमङ्गलाश्चैव
अलसा मातृवाहकाः ।
वासीमुखाश्च शुक्लयः
शङ्खु शङ्खनकास्तथा ॥

१२८—कृमि, सोमंगल, अलस, मातृ-
वाहक, वासीमुख, सीप, शंख, शंखनक,

१२९—पल्लोयाणुल्लया^५ चेव
तहेव य वराडगा ।
जलूगा जालगा चेव
चन्दणा य तहेव य ।

‘पल्लोया’ ‘अणुल्लया’ चैव
तथैव च वराटकाः ।
जलीका जालकाश्चैव
चन्दनाश्च तथैव च ॥

१२९—पल्लोय, अणुल्लक, कोडी, जौक,
जालक, चन्दनिवा,

१३०—इइ वेइन्दिया एए
णेगहा एवमायओ ।
लोमेगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ॥^६

इति द्वीन्द्रिया एते
अनेकया एवमादयः ।
लोककदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ॥

१३०—जादि अनेक प्रकार के द्वीन्द्रिय
जीव हैं । वे लोक के एक भाग में ही प्राप्त
होते हैं, समूचे लोक में नहीं ।

१. चउविहा (ऋ०) ।

२. य (अ, ऋ०) ।

३. सिप्पीया (आ, इ, ऋ०) ।

४. संखलगा (अ) ; संखाणगा (उ) ।

५. पल्लोया^१ (आ) ; अल्लोया^२ (ऋ०) ।

६. इस श्लोक के बाद इसमा और हैं ।

एतौ काल विभागं नु तेषि वुच्छ वडविहं ॥ (उ) ।

१३१—संतदं पपुण्णाय्या
अपज्जवसिया वि य ।
ठिदं पडुच्च साइया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थिति प्रतप्त्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१३१—प्रवाह को अपेक्षा से वे अनावि-
भक्त और स्थिति की अपेक्षा से सावि-
कान्त हैं ।

१३२—वासादं बारसे व उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
वेइन्दियआउठिई
अन्तोमुहुत्तं जहन्तिया ॥

वर्षाणि द्वावशेष तु
उत्कर्षणं व्याख्याता ।
द्वीन्द्रियायुः स्थितिः
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यता ॥

१३२—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः बारह वर्ष की है ।

१३३—संखिज्जकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं^१ ।
वेइन्दियकायठिई
तं कायं तु अमुंचओ ॥

संख्येयकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
द्वीन्द्रियकाय-स्थितिः
तं कायन्त्वमुंचताम् ॥

१३३—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-
मर्यादा) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
संख्यात काल की है ।

१३४—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
वेइन्दियजीवाणं
अन्तरेयं^२ वियाहियं ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
द्वीन्द्रिय-जीवानां
अन्तरं च व्याख्यातम् ॥

१३४—उनका अन्तर (द्वीन्द्रिय के काय
को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

१३५—एएसि वण्णओ जेव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाई सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतत्त्वेष्व-
गन्धता रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१३५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१३६—तेइन्दिया उ जे जीवा
दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जतमपज्जता
तेसि भेए सुणेह मे ॥

द्वीन्द्रियास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते प्रकीर्तिताः ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१३६—त्रीन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद
शुभ मुन्ने सुनो ।

१. जहन्तिया (अ) ।

२. °णं (अ) ।

१३७—कुन्पु-पिपीलिकोद्देशाः
उक्कलुद्देहिया तहा ।
तणहारकट्टहारा
मालुगा पत्तहारगा ॥

कुन्पु-पिपीलिकोद्देशाः
उक्कलोपदेहिकास्तथा ।
तुणहार-काष्ठहाराः
मालूकाः पत्रहारकाः ॥

१३७—कुंद, चोटी, खटमल, मकड़ी,
दोमरू, तुगाहारक, काष्ठाहारक (चुन), मालुक,
पत्राहारक,

१३८—कप्पासऽट्टिमिजा य
तिदुगा तउसमिजगा ।
सदावरी य गुम्मी य
बोद्धव्वा इन्दकाइया ॥

कर्पासास्थिमिजादय
सिन्दुकाः त्रपुषमिजकाः ।
शतावरी च गुल्मी च
बोद्धव्या इन्द्रकायिकाः ॥

१३८—कर्पासास्थि मिजक, तिन्दुक,
त्रपुष मिजक, शतावरी, कानखजूरी, इन्द्र-
कायिक.

१३९—इन्द्रगोवगमाईया
गेगहा एवमायओ ।
लोएगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ॥

इन्द्रगोवकायिकाः
अनेकधा एवमावयः ।
लोककदेशे ते सब
न सवन्न व्याख्याताः ॥

१३९—इन्द्रगोपक आदि अनेक प्रकार
के श्रीन्द्रिय जीव है । वे लोक के एक भाग में
ही प्राप्त होते हैं, समूच लोक में नहीं ।

१४०—संतं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राण्यनादिकाः
अपयंबसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतप्त्य सादिकाः
सपयंबसिता अपि च ॥

१४०—प्रवाह की घपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त है ।

१४१—एगुणपण्णहोस्ता*
उक्कोसेण वियाहिया ।
तेइन्दियआउठिई
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

एकोनपंचाशदहोरात्राणि
उत्कर्षण व्याख्याता ।
श्रीन्द्रियायुः स्थितिः
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१४१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कण्ठतः उनचास दिनों
की है ।

१४२—संविज्जकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नय* ।
तेइन्दियकायठिई
तं कायं तु अमुंचओ ॥

संख्येयकालमुक्कोसं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
श्रीन्द्रियकाय-स्थितिः
तं कायन्त्वमुंचताम् ॥

१४२—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उची काय में जन्म लेते रहने को काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कण्ठतः संख्यात-काल
की है ।

१. एगुणवयणं (उ, ख०) ।

२. अहन्निया (अ) ।

१४३—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुतं जहन्नयं ।
तेइन्द्रियजीवाणं
अन्तरेयं वियाहियं ॥

अनन्तकालमुक्कवँ
अन्तर्मुहुतं जघन्यकम् ।
बीन्द्रिय-जीवानां
अन्तरमेतद् व्याख्यातम् ॥

१४३—उनका अन्तर (बीन्द्रिय के काय को छोड़कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहुतं और उत्कृष्टतः अनन्तकाल का है ।

१४४—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाई सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतद्वैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेगतो वापि
विधानानि सहस्रतः ॥

१४४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

१४५—चउरिन्दिया उ जे जीवा
दुविहा ते पाकित्तिा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
तेसि भेए सुणेह मे ॥

चतुरिन्द्रियास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते प्रकीर्तिताः ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१४५—चतुरिन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद तुम मुझ से सुनो ।

१४६—अन्धिया पोत्तिया चैव
मच्छिया मसगा तथा ।
भमरे कोडपयंगे य
ठिकुणे कुंकुणे तथा ॥

अन्धिकाः पोत्तिकाश्चैव
मक्षिका मशकास्तथा ।
भ्रमराः कीट-पतंगाश्च
ठिकुणा कुंकणास्तथा ॥

१४६—अन्धिका, पोत्तिका, मक्षिका, मच्छर, भ्रमर, कीट, पतंग, ठिकुण, कुंकुण,

१४७—कुक्कुडे सिगिरोडी य
नन्दावत्ते य विच्छिण् ।
डोले भिगारी^१ य
विरलो अच्छिवेहए ॥

कुक्कुटाः शृङ्गरीटश्चैव
नन्द्यावत्तश्च वृश्चिकाः ।
डोला भृङ्गारिणश्च
विरल्योऽपि वेषकाः ॥

१४७—शृंगरीटा, कुक्कुड़, नन्दावर्ण, विष्णु, डोल, शृंगरीटक, बिरली, अक्षिवेषक,

१४८—अच्छिले माहए^२ अच्छि-
रोडएविचित्ते चित्तपत्तए ।
ओहिजलिया जलकारी य
नोया तत्तवगाविय^३ ॥

अशिला मागवा अक्षिरोडका
विचित्राश्चित्रपत्रकाः ।
ओहिजलिया जलकायंश्च
नीचास्तन्तवका अपि च ॥

१४८—अशिल, मागध, अक्षिरोडक विचित्र-पत्रक, चित्र-पत्रक, ओहिजलिया, जलकारी, नीच, तन्तवक,

१. भिगिरीडी (उ, ऋ०, स) ।

२. साहिए (अ) ।

३. तंबगाविया (उ, ऋ०) ।

१४९—इह चउरिन्दिया एए
ऽणगहा एवमायओ ।
लोगस्स एग देसस्मि
ते सव्वे परिकित्तिआ ॥*

१५०—संतइं पप्पऽण्णिया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साइया
सपज्जवसिया वि य ॥

१५१—‘छृच्वेव य’ मासा उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
चउरिन्दियआउठिई*
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

१५२—संखिज्जकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं* ।
चउरिन्दियकायठिई
तं कायं तु अमुंचओ ॥

१५३—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं* ।
‘विजडमि सए काए’^१
अन्तरेयं वियाहियं ॥

१५४—एएसि वण्णओ च्वेव
गन्धओ रसफासओ ।
‘संठाणादेसओ वावि’*
विहाणाइं सहस्सओ ॥

इति चतुरिन्द्रिया एते
अनेकवा एवमावय* ।
लोकस्यैकदेशे
ते सर्वं परिकीर्त्तिताः ॥

सन्त्यति प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

षट् चंब च मासास्तु
उत्कषणं व्याख्याता ।
चतुरिन्द्रियायुः-स्थितिः
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

संख्येयकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
चतुरिन्द्रियकाय-स्थितिः
तं कायं त्वमुञ्जताम् ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
अन्तरभेदज्ञं व्याख्याताम् ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानावेशतो वापि
विधानानि सहस्राः ॥

१४९—आदि अनेक प्रकार के चतुरिन्द्रिय
जीव हैं । वे लोक के एक भाग में ही प्राण
होते हैं, समूचे लोक में नहीं ।

१५०—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त
होते हैं ।

१५१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः छह मास की है ।

१५२—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-
मर्यादा) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
संख्यात काल की है ।

१५३—उनका अन्तर (चतुरिन्द्रिय के
काय को छोड़कर पुनः उसी काय में उत्पन्न
होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उत्कृष्टतः अनन्त काल का है ।

१५४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
ऽपि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१. इस श्लोक के परकाए इतना और है :—
एषो काल विमारां तु तेसि कुच्छं चउरिचिइं ॥ (४) ।

२. छृच्वेविठ (अ) ।

३. चउरिन्दिया व आउठिई (अ) ।

४. जहन्निया (अ) ।

५. जहन्निया (अ) ।

६. चउरिन्द्रियजीवानं (४) ।

७. संठाण भेषओ वा वि (अ) ।

१५५—पञ्चिन्दिया उ जे जीवा
चउव्विहा ते वियाहिया ।
नेरइयतिरिक्खा य
मणुया देवा य आहिया ॥

पञ्चेन्द्रियास्तु ये जीवाः
चतुर्विधास्ते व्याख्याताः ।
नैरयिकास्तियञ्चक्ष
मनुया देवादवाख्याताः ॥

१५५—पञ्चेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—(१) नैरयिक, (२) तिर्यक्ष, (३) मनुष्य और (४) देव ।

१५६—नेरइया सत्तविहा
पुढवीसु सत्तमू भवे ।
रयणाभ सक्कराभा
वालुयाभा य आहिया ॥

नैरयिकाः सप्तविधाः
पृथिवीषु सप्तसु भवेयुः ।
रत्नाभा शर्कराभा
बालुकाभा चाख्याता ॥

१५६—नैरयिक जीव सात प्रकार के हैं । वे सात पृथिव्यों में उत्पन्न होते हैं । वे सात पृथिव्यों वे हैं—(१) रत्नाभा, (२) शर्कराभा (३) बालुकाभा,

१५७—पंकाभा धूमाभा
तमा तमतमा तहा ।
इइ नेरइया एए
सत्तहा परिकित्थिया ॥

पंकामा धूमाभा
तमः तमतमः तथा ।
इति नैरयिका एते
सप्तधा परिकीर्त्तिताः ॥

१५७—(४) पंकामा, (५) धूमाभा, (६) तमः और (७) तमतमः । इन सात पृथिव्यों में उत्पन्न होने के कारण ही नैरयिक सात प्रकार के हैं ।

१५८—लोगस्स एगदेसम्मि
ते सव्वे उ वियाहिया ।
एत्तो कालविभागं तु
बुच्छं तेसि चउव्विहं ॥

लोकस्यैक-देशो
ते सर्वे तु व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१५८—वे लोक के एक भाग में हैं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१५९—संतइ पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानाविकाः
अपयंबसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यंबसिता अपि च ॥

१५९—अवाह की अपेक्षा से वे अनाहि-अगत और स्थिति की अपेक्षा से सावि-सन्तति हैं ।

१६०—सागरोपममेकं तु
उक्कोसेण वियाहिया ।
पठमाए जहन्नेणं
दसवाससहसिसया ॥

सागरोपममेकं तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
प्रथमाद्यां जघन्येन
दशचपंतहसिका ॥

१६०—पहली पृष्ठी में नैरयिकों की आयु-स्थिति वक्ष्यते: दस हजार वर्ष और ऊर्ध्वतः एक सागरोपम की है ।

१६१—तिष्णेव सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
दोच्चाए जहन्नेणं
एगं तु सागरोवमं ॥

१६२—सत्तेव सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
तइयाए जहन्नेणं
तिष्णेव उ सागरोवमा ॥

१६३—दस सागरोवमा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
चउत्थोए जहन्नेणं
सत्तेव उ सागरोवमा ॥

१६४—सत्तरस सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
पंचमाए जहन्नेणं
दस चैव उ सागरोवमा ॥

१६५—बावीस सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
छट्ठोए जहन्नेणं
सत्तरस सागरोवमा ॥

१६६—तेत्तीस सागरा* ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
सत्तमाए जहन्नेणं
बावोसं सागरोवमा ॥

त्रय एव सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
द्वितीयायां जघन्येन
एकं तु सागरोपमम् ॥

सप्तैव सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
तृतीयायां जघन्येन
त्रिणि एव तु सागरोपमाणि ॥

दशसागरोपमाणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
चतुर्थ्यां जघन्येन
सप्तैव तु सागरोपमाणि ॥

सप्तदश सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
पंचभ्यां जघन्येन
दश वैव तु सागरोपमाः ॥

द्वाविंशतिः सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
षष्ठ्यां जघन्येन
सप्तदश सागरोपमाणि ॥

त्रयस्त्रिंशन् सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
सप्तभ्यां जघन्येन
द्वाविंशतिः सागरोपमाणि ॥

१६१—दूसरी पृष्ठी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः एक सागरोपम और
उत्कृष्टतः तीन सागरोपम की है ।

१६२—तीसरी पृष्ठी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः तीन सागरोपम और
उत्कृष्टतः सात सागरोपम की है ।

१६३—चौथी पृष्ठी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः सात सागरोपम और
उत्कृष्टतः दस सागरोपम की है ।

१६४—पाँचवीं पृष्ठी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः दस सागरोपम और
उत्कृष्टतः सतरह सागरोपम की है ।

१६५—छठीं पृष्ठी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः सतरह सागरोपम और
उत्कृष्टतः बाईस सागरोपम की है ।

१६६—सातवीं पृष्ठी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः बाईस सागरोपम और
उत्कृष्टतः तेत्तीस सागरोपम की है ।

१६७—जा चेव उ आउठई
नेरइयाणं वियाहिया ।
सा तेसिं कायठई
जहन्नुकसिया भवे ॥

या खं व तु आयुः-स्थितिः
नेरयिकाणां व्याख्याता ।
सा तेषां काय-स्थितिः
जघन्योत्कृष्टता भवेत् ॥

१६७—नेरयिक जीवों को जो आयु-
स्थिति है, वही उनकी जघन्यतः या उत्कृष्टतः
काय-स्थिति है ।

१६८—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजडमि सए काए
नेरइयाणं तु अन्तरं ॥

अनन्तकालमुक्कयं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
विजयन्ते स्थले काये
नेरयिकाणान्तु अन्तरम् ॥

१६८—उनका अन्तर (नेरयिक के काय
को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

१६९—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणादेसओ वावि'^१
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णरसवैव
गन्धबो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रतः ॥

१६९—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१७०—पंचिन्द्रियतिरिक्खाओ
दुविहा ते वियाहिया ।
सम्मच्छिमतिरिक्खाओ^२
गढभवक्कन्तिया तहा ॥

पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
सम्मच्छिम-तिर्यञ्चः
गर्भविक्रान्तिकास्तथा ॥

१७०—पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च जीव दो प्रकार
के हैं—(१) सम्मच्छिम-तिर्यञ्च और (२) गर्भ-
उत्पन्न-तिर्यञ्च ।

१७१—दुविहावि ते भवे तिविहा
जलयरा थलयरा तहा ।
खहयरा य बोद्धव्वा
तेसिं भए सुणेह मे ॥

द्विविधा अपि ते भवेयुस्त्रिविधाः
जलचराः स्थलचरास्तथा ।
लवचराश्च बोद्धव्याः
तेषां भेदाः शृणुतु मे ॥

१७१—ये दोनों ही जलचर, स्थलचर
और लवचर के भेद से तीन-तीन प्रकार के हैं ।
उनके भेद तुम मुझ से सुनो ।

१७२—मच्छा य कच्छभा य
गाहा य मगरा तहा ।
सुसुमारा य बोद्धव्वा
पंचहा^३ जलयराहिया ॥

मत्स्याश्च कच्छपाश्च
ग्राहाश्च मकरास्तथा ।
सुसुमाराश्च बोद्धव्याः
पञ्चधा जलचरा आख्याताः ॥

१७२—जलचर जीव पाँच प्रकार के
हैं—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (३) ग्राह,
(४) मकर और (५) सुसुमार ।

१. सहाण भेषओ वा वि (अ) ।

२. ० तिरिक्खा य (उ) ।

३. पंचविहा (अ) ।

१७३—लोएगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
एतो कालविभागं तु
वुच्छं तेसि चउव्विहं ॥

लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१७३—वे लोक के एक भाग में ही होते हैं, समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१७४—संतइं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुअ सईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तांति प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१७४—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनावि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सावि-
मान्त हैं ।

१७५—एगा य पुव्वकोडोओ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिइं जलयराणं
अन्तोमुहत्तं जहन्निया ॥

एका च पूर्वकोटी
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिजलचराणां
अन्तर्मूहत्तं जघन्यका ॥

१७५—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मूहत्तं और उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व
की है ।

१७६—पुव्वकोडोपुहत्तं तु
उक्कोसेण वियाहिया ।
कायट्ठिइं जलयराणं
अन्तोमुहत्तं जहन्निया ॥

पूर्वकोटिपृथक्त्वन्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
काय-स्थितिजलचराणां
अन्तर्मूहत्तं जघन्यका ॥

१७६—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मूहत्तं और उत्कृष्टतः (दो से नौ)
पूर्व की है ।

१७७—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहत्तं जहन्नियं ।
विजडंमि सए काए
जलयराणं तु अन्तरं ॥

अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तर्मूहत्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
जलचराणां तु अन्तरम् ॥

१७७—उनका अन्तर (जलचर के काय
को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मूहत्तं और
उत्कृष्टतः अनन्त काल का है ।

१७८—'एएसि वण्णओ चव
गंअओ रसपासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्ससो ॥'

एतेषां वर्णतत्त्वैश्च
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो बापि
विधानानि सहस्राः ॥

१७८—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१७९—चउप्पया य परिसप्पा
दुविहा थलयरा भवे ।
चउप्पया चउविहा
ते मे कित्तयओ सुण ॥

चतुष्पदाश्च परिसर्पाः
द्विविधाः स्थलचरा भवेयुः ।
चतुष्पदाश्चतुर्विधाः
तान् मे कीर्तयतः शृणु ॥

१७९—स्थलचर जीव दो प्रकार के हैं—
(१) चतुष्पद और (२) परिसर्प । चतुष्पद चार
प्रकार के हैं । वे तुम मुझ से सुनो ।

१८०—एगखुरा दुखुरा चैव
गण्डीपयसणप्पया ।
हयमाइगोणमाइ-
गयमाइसीहमाइणो ॥

एकखुरा द्विखुराश्चैव
गण्डीपवाः सनत्सपदाः ।
हयादयो गवादयः
गजादयः सिंहादयः ॥

१८०—(१) एक खुर—घोड़े आदि,
(२) दो खुर—बैल आदि, (३) गण्डीप—
हाथी आदि । (४) सनत्सपद—सिंह आदि ।

१८१—भुओरगपरिसप्पा य
परिसप्पा दुविहा भवे ।
गोहाई अहिमाई य
एकैक्का णेगहा भवे ॥

भुज-उरग-परिसर्पाश्च
परिसर्पा द्विविधा भवेयुः ।
गोधादयो ह्यादयश्च
एकैके अनेकधा भवेयुः ॥

१८१—परिसर्प के दो प्रकार हैं—(१)
भुजपरिसर्प—हाथों के बल चलने
वाले गौह
आदि, (२) उरःपरिसर्प—पेट के बल चलने
वाले साँप आदि । ये दोनों अनेक
प्रकार के
होते हैं ।

१८२—लोएणदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
एत्तो कालविभागं तु
वुच्छं तेसि चउज्विहं ॥

लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१८२—ये लोक के एक भाग में होते हैं,
समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध
काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१८३—संतं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिहं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राण्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१८३—प्रवाह की अपेक्षा से वे जनावि-
जन्त और स्थिति की अपेक्षा से सावि-
सान्त हैं ।

१८४—पलिओवमाउ' तिणि उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिं थलयराणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

पल्योपमानि तु त्रीणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिः स्थलचराणां
अन्तर्मुहूर्तं जघम्यका ॥

१८४—उनकी आयु-स्थिति जघम्यतः
जन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षतः तीन पल्योपम
की हैं ।

१८५—पलिओवमाउ तिणि उ'
उक्कोसेण तु साधिया ।
पुव्वकोडीपुहत्तेणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

पल्पोयमानि तु त्रीणि तु
उत्कर्षेण तु साधिका ।
पूर्वकोटि-पुष्पकत्वेन
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१८५—अध्वन्यतः अन्तर्मुहूर्तं और उल्लुप्यतः
पृथक्स्व कः कोड़ पूर्व अधिक तीन पल्पोपम की है ।

१८६—कायट्ठिं थलयराणं
अन्तरं तेसिमं भवे ।
कालमणन्तमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥

काय-स्थितिः स्थलचराणां
अन्तरं तेषामिव भवेत् ।
कालमनन्तमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१८६—यह स्थलचर जीवों की काय-
स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते
रहने की काल-मयीदा) है । उनका अन्तर
(स्थलचर के काय की छोड़ कर पुनः उसी काय
में उत्पन्न होने तक का काल) अध्वन्यतः अन्त-
र्मुहूर्त और उल्लुप्यतः अनन्त-काल का है ।

१८७—एएसि वण्णओ चव
गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१८७—वर्णं, गन्धं, रसं, स्पर्शं और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१८८—चम्मं उ लोमपक्खी य
तइया समुग्गपक्खिया ।
विययपक्खी य बोद्धव्वा
पक्खिणो य चउज्जिह्वा ॥

चर्म (पक्षिणः) तु रोमपक्षिणश्च
तृतीयः समुद्रपक्षिणः ।
विततपक्षिणश्च बोद्धव्याः
पक्षिणश्च चतुर्विधाः ॥

१८८—लेवर जीव चार प्रकार के हैं—
(१) चर्म पक्षी, (२) रोम पक्षी, (३) समुद्र
पक्षी और (४) वितत पक्षी ।

१८९—लोगेगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु
वुच्छं तेसि चउज्जिह्वा ॥^१

लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वदामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१८९—वे लोक के एक भाग में होते हैं,
समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध
काल-विभाग का निरूपण करूंगा ।

१. य (अ) ।

२. श्लोक क्रमांक १८७ से १८९ के स्थान पर निम्न श्लोक हैं :

विजडमि सए काए थलयराणं तु अंतरं ।
चम्मिय लोम पक्खीय तइया समुग्ग पक्खिया ॥
विततपक्खी उ (य) बोद्धव्वा पक्खिणो उ चउज्जिह्वा ।
लोएग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ (अ, ५०) ।
विजडमि सए काए थलयराणं तु अंतरं ।
एएसि वण्णओ चव गंधओ रसफासओ ॥
संठाण देसओ वावि विहाणाइं सहस्सओ ।
चम्म उ लोम पक्खीय तइया समुग्ग पक्खिया ॥
विययपक्खी य बोद्धव्वा पक्खिणो य चउज्जिह्वा ।
लोएग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ (उ) ।

जीवाजीवविभत्ती (जीवाजीव-विभक्ति)

५३३

अध्ययन ३६ : श्लोक १६०-१६५

१९०—संतद्धं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तर्गत प्राप्पानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिः प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१६०—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

१९१—पलिओवमस्स भागो
असंखेज्झमो भवे ।
आउट्ठिं सहयराणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

पल्योपमस्य भागः
असंख्येयतमो भवेत् ।
आयुः-स्थितिः खेचराणां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१६१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातव
भाग की है ।

१९२—असंखभागो पलियस्स
उक्कोसेण उ साहिओ ।
पुव्वकोडोपुहुत्तेणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

असंख्यभागः पलस्य
उत्कर्षेण तु साधिकः ।
पूर्वकोटो-पुष्यत्वेन
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१६२—जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
पुष्यत्वं करोड़ पूर्व अधिक पल्योपम का
असंख्यातव भाग—

१९३—कायठिं सहयराणं
अन्तरं तेसिमं भवे ।
कालं अणन्तमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥

काय-स्थितिः खेचराणां
अन्तरं तेषामिव भवेत् ।
कालमनन्तमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१६३—यह खेचर जीवों की काय-
स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते रहने
की काल-मर्यादा) है । उनका अन्तर (खेचर
के काय को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न
होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

१९४—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणोदेसओ वावि'
विहाणां सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतद्वज्रं
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानावेवतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१६४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१९५—मणुया कुविहभेया उ
ते मे कित्तयो सुण ।
समुच्छिमा य मणुया
गम्भवक्कन्तिया तहा ॥

मनुजा द्विविधभेदास्तु
तान् मे कीर्तयतः शृणु ।
सम्मुख्यमावय मनुजाः
गर्वावकास्तिकास्तथा ॥

१६५—मनुष्य दो प्रकार के हैं—(१)
सम्मुख्य और (२) गर्व-उत्पन्न ।

१९६—गन्भवकन्तिया जे उ
तिविहा ते वियाहिया ।
अकम्मकम्मभूमा य
अन्तरद्दीवया तहा ॥

१९७—‘पन्नरस तीसइ विहा’
भेया अट्टवीसइ ।
संखा उ कमसो तेसि
इइ एस वियाहिया ॥

१९८—समुच्छिमाण एसेव
भेओ होइ आहिओ ।
लोगस्स एगदेसम्मि
ते सव्वे वि^१ वियाहिया ॥

१९९—संतइ पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

२००—पलिओवमाइ तिणि उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्टिई मणुयाणं
अन्तोमुहुत्तं जह्मनिया ॥

२०१—पलिओवमाइ तिणि उ
उक्कोसेण वियाहिया^२ ।
पुव्वकोडोपुहत्तेणं
अन्तोमुहुत्तं जह्मनिया^३ ॥

गर्भाविकान्तिका ये तु
त्रिविधास्ते व्याख्याताः ।
अकर्मकर्म-भूमाञ्च
अन्तर-द्वापकास्तथा ॥

पञ्चशत्रिंशद्विधाः
भेदा अष्टाविंशतिः ।
सङ्ख्या तु कमशस्तेषां
इत्येषा उदाख्याता ॥

सम्मुखिमाणामेव एव
भेदो भवति आख्यातः ।
लोकस्यैकदेशे
ते सर्वेऽपि व्याख्याताः ॥

सन्ततिं प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि न्व ।
स्थितिं प्रतीत्य साङ्गिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

पल्योपमानि त्रीणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिर्भनूजानां
अन्तर्मुहूर्ता जघन्यका ॥

पल्योपमानि त्रीणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
पूवंकोटि-पृथक्स्वेन
अन्तर्मुहूर्ता जघन्यका ॥

१६६—गर्भ-उत्पन्न मनुष्य तीन प्रकार
के हैं—(१) अकर्म-भूमिक, (२) कर्म-भूमिक
और (३) अन्तर्दीपक ।

१६७—कर्म-भूमिक मनुष्यों के पन्द्रह,
अकर्म-भूमिक मनुष्यों के तीस तथा अन्तर्दीपक
मनुष्यों के अट्ठाईस भेद होते हैं ।

१६८—सम्मुखिण मनुष्यों के भी उनसे
ही भेद हैं, जिनसे गर्भ-उत्पन्न मनुष्यों के हैं ।
वे लोक के एक भाग में ही होते हैं ।

१६९—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

२००—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः तीन पल्योपम
की हैं ।

२०१—जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
पृथक् करीब पूर्व अधिक तीन पल्योपम—

१. तीसं पन्नरस विहा (५० पा०) ।

२. य (अ) ; × (ड) ।

३. तु साहिया (क०) ।

४. जह्मनग (अ) ।

२०२—कायद्विर्द्धं मणुष्याणं
अन्तरं तेसिं भवे ।
अणन्तकालमुक्तासं
अन्तोमुहुतं जहन्नयं ॥

काय-स्थितिमनुजानां
अन्तरं तेषामिदं भवेत् ।
अनन्तकालमुक्तासं
अन्तर्मुहुतं जघन्यकम् ॥

२०२—यह मनुष्यों की काय-स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा) है। उनका अन्तर (मनुष्य के काय को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहुत और उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

२०३—एएसि वण्णओ चंव
गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणादंसओ वावि'
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतदचंच
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानावेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

२०३—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

२०४—देवा चउर्त्विहा वुत्ता
ते मे कित्तयओ सुण ।
भोमिज्जवाणमन्तर-
जोइसवेमाणिया तहा ॥

देवाश्चतुर्विधा उक्ताः
तान् मे कीर्तयतः शृणु ।
भोमेया व्यन्तराः
ज्योतिष्काः वैमानिकास्तथा ॥

२०४—देव चार प्रकार के हैं—
(१) भवन-वासी, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ।

२०५—दसहा उ भवणवासी
अट्ठहा वणचारिणो ।
पंचविहा जोइसिया
दुविहा वेमाणिया तहा ॥

दशधा तु भवनवासिनः
अष्टधा वनचारिणः ।
पंचविधा ज्योतिष्का
द्विविधा वैमानिकास्तथा ॥

२०५—भवनवासी देव दस प्रकार के हैं। व्यन्तर आठ प्रकार के हैं। ज्योतिष्क पाँच प्रकार के हैं। वैमानिक दो प्रकार के हैं ।

२०६—असुरा नागसुवण्णा
विज्जू अमो य आहिया ।
दीवोदहिदिसा वाया
थणिया भवणवासिणो ॥

असुरा नाग-सुपर्णाः
विज्जू वृन्निद्व आह्वयताम् ।
द्रापोदधिदिशो वाताः
स्तनिता भवनवासिनः ॥

२०६—(१) असुर कुमार, (२) नाग कुमार, (३) सुपर्ण कुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधि कुमार, (८) दिक्कुमार, (९) वायु कुमार और (१०) स्तनित कुमार—ये भवनवासी देवों के दस प्रकार हैं ।

२०७—पिसायाभूय जक्खा य
रक्खसा किन्नरा य किपुुरिसा ।
महोरगा य गन्धव्वा
अट्ठविहा वाणमन्तरा ॥

पिशाच-भूत-यक्षाश्च
राक्षसाः किन्नराश्च किपुुरिषाः ।
महोरागश्च गन्धर्वाः
अष्टविधा वाणमन्तराः ॥

२०७—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किपुुरिष (७) महोराग और (८) गन्धर्व—ये व्यन्तर देवों के आठ प्रकार हैं ।

२०८—चन्दा सूर य नक्खात्
गहा तारगणा तहा ।
दिसाविचारिणो^१ चेव
पंचहा^२ जोइसालया ॥

२०९—वेमाणिया उ जे देवा
दुविहा ते बियाहिया ।
कप्पोवगा य बोद्धवा
कप्पाईया तहेव य ॥

२१०—कप्पोवगा बारसहा
सोहम्मीसाणगा तहा ।
सणकुमारमाहिन्दा
बम्भलोगा य लन्तगा ॥

२११—महासुक्का सहसारा
आणया पाणया तहा ।
आरणा अचुया चेव
इइ कप्पोवगा सुरा ॥

२१२—कप्पाईया उ^३ जे देवा
दुविहा ते बियाहिया ।
गेविज्जाऽणुत्तरा चेव
गेविज्जा नवविहा तहि^४ ॥

२१३—हेडिमाहेडिमा चेव
हेडिमाभज्जिमा तहा ।
हेडिमा उवरिमा चेव
मज्जिमाहेडिमा तहा ॥

खन्नाः सूर्यकिच नक्षत्राणि
ग्रहस्तारगणास्तथा ।
विशा-विचारिणश्चैव
पंचधा ज्योतिषालयाः ॥

वैमानिकास्तु ये देवाः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
कल्पोपगाश्च बोद्धव्याः
कल्पातीतास्तथैव च ॥

कल्पोपगा द्वादशधा
सौधर्मशानगास्तथा ।
सन्त्कुमार-माहेन्द्राः
ब्रह्मलोकाश्च लान्तकाः ॥

महासुक्काः सहसाराः
आनताः प्राणतास्तथा ।
आरणा अच्युताश्चैव
इति कल्पोपगाः सुराः ॥

कल्पातीतास्तु ये देवाः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
प्रवेयानुत्तराश्चैव
प्रवेया नवविधास्तत्र ॥

अधस्तनाऽधस्तनाश्चैव
अधस्तनमध्यमास्तथा ।
अधस्तनोपरितनाश्चैव
अध्यमाऽधस्तनास्तथा ॥

२०८—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) नक्षत्र,
(४) ग्रह और (५) तारा—ये पाँच भेद
ज्योतिषक देवों के हैं । ये दिसा-विचारी-भेद
की प्रवक्षिणा करते हुए विचरण करने
वाले हैं ।

२०९—वैमानिक देवों के दो प्रकार हैं—
(१) कल्पोपग और (२) कल्पातीत ।

२१०—कल्पोपग बारह प्रकार के हैं—
(१) सौधर्म, (२) ईशानक, (३) सन्त्कुमार,
(४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक,

२११—(७) महासुक्क, (८) सहसार,
(९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण और
(१२) अच्युत ।

२१२—कल्पातीत देवों के दो प्रकार हैं—
(१) प्रवेयक और (२) अनुत्तर । प्रवेयकों के
निम्नोक्त नौ प्रकार हैं :

२१३—(१) अध-अधस्तन, (२) अध-
मध्यम, (३) अध-उपरितन, (४) अध-
अधस्तन,

१. दिसा^० (आ, व, ऋ०) ।

२. पंचविहा (अ) ।

३. व (वृ०) ।

४. तहा (वृ०) ।

जीवाजीवविभक्ती (जीवाजीव-विभक्ति)

५३७

अध्ययन ३६ : श्लोक २१४-२३६

२१४—मज्झिममज्झिमा चैव
मज्झिमाउवरिमा तथा ।
उवरिमाहेहिमा चैव
उवरिमामज्झिमा तथा ॥

मध्यममध्यमाश्चैव
मध्यमोपरितनास्तथा ।
उपरितनाऽवस्तनाश्चैव
उपरितनमध्यमास्तथा ॥

२१४—(५) मध्य-मध्यम, (६) मध्य-
उपरितन, (७) उपरि-अवस्तन, (८) उपरि-
मध्यम,

२१५—उवरिमाउवरिमा चैव
इय गेविज्जया सुरा ।
विजया वेजयन्ता अ'
जयन्ता अपराजिया ॥

उपरितनोपरितनाश्चैव
इति प्रियेयकाः सुराः ।
विजया वेजयन्ताश्च
जयन्ता अपराजिताः ॥

२१५—और (६) उपरि-उपरितन—ये
प्रियेयक देव हैं । (१) विजय, (२) वेजयन्त,
(३) जयन्त, (४) अपराजित

२१६—सन्वहसिद्धगा' चैव
पंचहाऽणुत्तरा सुरा ।
इइ वेमाणिया देवा'
णेगहा एवमायओ ॥

सर्वायंसिद्धकाश्चैव
पंचया अनुत्तराः सुराः ।
इति वैमानिका देवाः
अनेकया एवमावयः ॥

२१६—और (५) सर्वायंसिद्धक—ये अनुत्तर
देवों के पाँच प्रकार हैं । इस प्रकार वैमानिक
देवों के अनेक प्रकार हैं ।

२१७—लोगस्स एगदेसम्मि
ते सव्वे परिकित्तिया ।
इतो कालविभागं तु
वुच्छं तेसि चउव्विहं ॥

लोकस्यैकदेशे
ते सर्वे परिकीर्तिताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां वस्तुविषयम् ॥

२१७—ये सब लोक के एक भाग में
रहते हैं । अब मैं उनके वस्तुविषय काल-विभाग
का निरूपण करूँगा ।

२१८—संतइं पप्पाऽणाईया
अपज्जवसिमा वि य ।
छिहं पकुञ्च सार्द्धा
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साधिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

२१८—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनावि-
कल और स्थिति की अपेक्षा से साधि-
कान्त हैं ।

२१९—साहियं सागरं एकं
उकोसेण ठिई भवे ।
ओकोज्जाणं जहन्नेणं
दसंघोससहस्रिया ॥

साधिकाः सागर एकः
उत्कर्षेण स्थितिं भवेत् ।
औनेयणां अज्जन्नेण
वसवसहस्रिका ॥

२१९—मनवासी देवों की आयु-स्थिति
अवन्तः दस हजार वर्ष और उल्लुप्यतः किञ्चित्
अधिक एक सागरोपय की है ।

१. × (अ) ।

२. °सिद्धिया (अ) ।

३. एर (अ, अ०) ।

२२०—पलिओवममेगं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
वन्तराणं जहन्नेणं
दसवाससहस्सिया ॥

पल्योपममेकन्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अन्यतराणां जघन्येन
दशवर्षसहस्रिका ॥

२२०—अन्तर देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः दस हजार वर्ष और उत्कृष्टतः एक
पल्योपम की है ।

२२१—पलिओवमं एगं तु
वासल्लेखेण साहियं ।
पलिओवमज्झभागां
जोइसेसु जहन्निया ॥

पल्योपममेकन्तु
वर्षलक्षेण साधिकम् ।
पल्योपमाष्टमभागः
ज्योतिष्केषु जघन्यका ॥

२२१—ज्योतिष्क देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः पल्योपम के आठवें भाग और
उत्कृष्टतः एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम
की है ।

२२२—दो चंव सागराईं
उक्कोसेण वियाहिया* ।
सोहम्ममि जहन्नेणं
एगं च पलिओवमं ॥

द्वौ चंव सागरो
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
सौधमं जघन्येन
एकं च पल्योपमम् ॥

२२२—सौधमं देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः एक पल्योपम और उत्कृष्टतः दो
सागरोपम की है ।

२२३—सागरा साहिया दुन्नि
उक्कोसेण वियाहिया* ।
ईसाणम्मि जहन्नेणं
साहियं पलिओवमं ॥

सागरो साधिको द्वौ
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
ईशाने जघन्येन
साधिकं पल्योपमम् ॥

२२३—ईशान देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः किञ्चित् अधिक एक पल्योपम और
उत्कृष्टतः किञ्चित् अधिक दो सागरोपम
की है ।

२२४—सागराणि य सत्तेव
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सणकुमारे जहन्नेणं
दुन्नि ऊ सागरोवमा ॥

सागराश्च सत्तेव
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सन्त्कुमारं जघन्येन
छे तु सागरोपमे ॥

२२४—मन्त्कुमार देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः दो सागरोपम और उत्कृष्टतः सात
सागरोपम की है ।

२२५—साहिया सागरा सत्त
उक्कोसेण ठिई भवे ।
माहिन्दम्मि जहन्नेणं
साहिया दुन्नि सागरा ॥

साधिकाः सागराः सप्त
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
माहिन्द्रे जघन्येन
साधिको द्वौ सागरो ॥

२२५—माहेन्द्रकुमार देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः किञ्चित् अधिक दो सागरोपम
और उत्कृष्टतः किञ्चित् अधिक सात सागरोपम
की है ।

१. ठिई भवे (आ, स) ।

२. ठिई भवे (आ, स) ।

२२६—दस चैव सागराङ्गं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
बम्भलोए जहन्नेणं
सत्त ऊ सागरोवमा ॥

दश चैव सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
ब्रह्मलोके जघन्येन
सप्त तु सागरोपमाणि ॥

२२६—ब्रह्मलोक देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः सात सागरोपम और उत्कृष्टतः दस
सागरोपम की है ।

२२७—चउइसं सागराङ्गं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
लत्तगम्मि जहन्नेणं
दस ऊ सागरोवमा ॥

चतुर्विंश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
लान्तके जघन्येन
वश तु सागरोपमाणि ॥

२२७—लान्तक देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः दस सागरोपम और उत्कृष्टतः चौदह
सागरोपम की है ।

२२८—सत्तरस सागराङ्गं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
महाशुके जहन्नेणं
चउइस सागरोवमा ॥

सप्तदश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
महाशुके जघन्येन
चतुर्विंश सागरोपमाणि ॥

२२८—महाशुक्र देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः चौदह सागरोपम और उत्कृष्टतः
सत्तरह सागरोपम की है ।

२२९—अट्टारस सागराङ्गं
उक्कासेण ठिई भवे ।
सहस्सारे जहन्नेणं
सत्तरस सागरोवमा ॥

अष्टादश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सहस्रारे जघन्येन
सप्तदश सागरोपमाणि ॥

२२९—सहस्रार देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः सत्तरह सागरोपम और उत्कृष्टतः
अठारह सागरोपम की है ।

२३०—सागरा अउणवीसं तु
उक्कासेण ठिई भवे ।
आणयम्मि जहन्नेणं
अट्टारस सागरोवमा ॥

सागरा एकोनविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
आनते जघन्येन
अष्टादश सागरोपमाणि ॥

२३०—आनत देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः अठारह सागरोपम और उत्कृष्टतः
उन्नीस सागरोपम की है ।

२३१—वीसं तु सागराङ्गं
उक्कासेण ठिई भवे ।
पाणयम्मि जहन्नेणं
सागरा अउणवीसई ॥

विंशतिस्तु सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
प्राणते जघन्येन
सागरा एकोनविंशतिः ॥

२३१—प्राणत देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः उन्नीस सागरोपम और उत्कृष्टतः
वीस सागरोपम की है ।

२३२—सागरा इक्कवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
आरणम्मि जहन्नेणं
वीसई सागरोवमा ॥

सागरा एकविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
आरणे जघन्येन
विशतिः सागरोपमाणि ॥

२३२—आरण देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः बीस सागरोपम और उत्कृष्टतः इक्कीस
सागरोपम की है ।

२३३—बावोसं सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
अच्चुयम्मि जहन्नेणं
सागरा इक्कवीसई ॥

द्वाविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अच्चुते जघन्येन
सागरा एकविंशतिः ॥

२३३—अच्चुत देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः इक्कीस सागरोपम और उत्कृष्टतः
द्वाविंश सागरोपम की है ।

२३४—तेवीस सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पढम्मि जहन्नेणं
बावीसं सागरोवमा ॥

त्रयोविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
प्रथमे जघन्येन
द्वाविंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३४—अथ प्रथमक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः बाईस सागरोपम और
उत्कृष्टतः तेईस सागरोपम की है ।

२३५—चउवीस सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
बिइयम्मि जहन्नेणं
तेवीसं सागरोवमा ॥

चतुर्विंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
द्वितीये जघन्येन
त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३५—द्वितीय प्रथमक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः तेईस सागरोपम और उत्कृष्टतः
चौबीस सागरोपम की है ।

२३६—पणवीस सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
तइयम्मि जहन्नेणं
चउवीसं सागरोवमा ॥

पंचविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
तृतीये जघन्येन
चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३६—तृतीय प्रथमक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः चौबीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः पणवीस सागरोपम की है ।

२३७—छव्वीस सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउत्थम्मि जहन्नेणं
सागरा पणुवीसई ॥

षड्विंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
चतुर्थ जघन्येन
सागराः पंचविंशतिः ॥

२३७—चतुर्थ प्रथमक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः पणवीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः छवीस सागरोपम की है ।

२३८—सागरा सत्तवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पंचमम्मि जहन्नेणं
सागरा उ छवीसई ॥

सागराः सप्तविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
पंचमे जघन्येन
सागराः तु षड्विंशतिः ॥

२३८—पंचम ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः छवीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः सत्ताईस सागरोपम की है ।

२३९—सागरा अट्टवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
छट्ठम्मि जहन्नेणं
सागरा सत्तवीसई ॥

सागराः अष्टाविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
षष्ठे जघन्येन
सागराः सप्तविंशतिः ॥

२३९—षष्ठ ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः सत्ताईस सागरोपम और
उत्कृष्टतः अट्टाईस सागरोपम की है ।

२४०—सागरा अउणतीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सत्तमम्मि जहन्नेणं
सागरा अट्टवीसई ॥

सागरा एकोनविंशत्
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सप्तमे जघन्येन
सागरा अष्टाविंशतिः ॥

२४०—सप्तम ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः अट्टाईस सागरोपम और
उत्कृष्टतः उनतीस सागरोपम की है ।

२४१—तीसं तु सागराडं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
अट्ठमम्मि जहन्नेणं
सागरा अउणतीसई ॥

त्रिंशत् सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अष्टमे जघन्येन
सागराः एकोनविंशत् ॥

२४१—अष्टम ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः उनतीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः तीस सागरोपम की है ।

२४२—सागरा इक्कतीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
नवमम्मि जहन्नेणं
तीसई सागरोवमा ॥

सागरा एकात्रिंशत्
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
नवमे जघन्येन
त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥

२४२—नवम ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः तीस सागरोपम और उत्कृष्टतः
इक्कीस सागरोपम की है ।

२४३—तेत्तीस सागराउ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउसुं पि विजयाईसुं
जहन्नेणेक्कतीसई ॥

त्रयस्त्रिंशत् सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
चतुर्ष्वपि विजयाविसुं
जघन्येनेकात्रिंशत् ॥

२४३—विजय, वैजयन्त, जयन्त और
अपराजित देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः
इक्कीस सागरोपम और उत्कृष्टतः तैतीस
सागरोपम की है ।

२४४—अजहन्नमणुक्कोसा^१

तेत्तीसं सागरोवमा ।
महाविमानं सञ्चट्टे
ठिई एसा वियाहिया ॥

अजघन्यानुत्कर्षा

अयस्मिन्सागरोपमाणि ।
महा-विमानं सर्वाथै
स्थितिरेषा व्याख्याता ॥

२४४—सर्वाथैसिद्धं देवों की जघन्यतः

और उत्कृष्टतः आयु-स्थिति तैनीस सागरोपम
की है ।

२४५—जा चेव उ^२ आउठिई

देवाणं तु वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई
जहन्नुक्कोसिया^३ भवे ॥

या कैत्र तु आयु-स्थिति

देवानान्नु व्याख्याता ।
सा तेषां काय-स्थितिः
जघन्योत्कर्षिता भवेत् ॥

२४५—सारे ही देवों को जितनी आयु-

स्थिति है उतनी ही उनकी जघन्य या उत्कृष्ट
काय-स्थिति है ।

२४६—अणन्तकालमुक्कोसं

अन्तोमुहुतं जहन्नयं ।
विजडंमि सए काए
देवाणं हुज्ज अन्तरं ॥^४

अनन्तकालमुत्कर्षं

अन्तर्मुहुतं जघन्यकम् ।
वित्पक्वते स्वके काये
देवानां भवेदन्तरम् ॥

२४६—उनका अनन्तर (अपने-अपने काय

को छोड़कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहुतं और
उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

२४७—एएसि वण्णओ चेव

गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणादेसओ वावि'^५
विहाणाई सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतन्त्रेव

गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रतः ॥

२४७—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और

संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

२४८—संसारत्था य सिद्धा य

इइ जीवा वियाहिया ।
रुविणो चेव ऽरुवो य
अजीवा दुविहा वि य ॥^६

संसारस्थ्याश्च सिद्धाश्च

इति जीवा व्याख्याताः ।
रूपिणश्चैवैव रूपिणश्च
अजीवा द्विविधा अपि च ॥

२४८—संसारो और सिद्ध—इन दोनों

प्रकार के जीवों की व्याख्या की गई है । इसी
प्रकार रूपी और अरूपी—इन दोनों प्रकार के
अजीवों की व्याख्या की गई है ।

१. 'मणुक्कोसं' (अ, क०) ।

२. च (अ) ।

३. 'अहन्नयं' (ख०, व०) ।

४. इस श्लोक के बाद दो श्लोक और हैं—

अणंतकालमुक्कोसं वासपुहणं जहन्नयं ।

आणयादीय-कप्पाणं मेविजाणं तु अंतरं ॥

संविज्जासागस्सोसं वासपुहणं जहन्नयं ।

अणुत्तराण देवाणं अंतरं तु वियाहिया ॥ (उ) ।

५. संठाण भेषओ वा वि (अ) ।

६. श्लोक क्रमांक २४८ से २६८ के स्थान पर चर्च में निम्न दो श्लोक हैं :—

जीवमजीवे एते गन्धा सङ्खिडणं य ।

सव्वण्णसंसतमी जण्णा संजमे विदू ।

पसत्पसत्काणोवगाए, काळं किष्वा गं संजए ।

सिद्धे वा सासए सवति देवे वावि मइविडए ॥

२४९—इह जीवमजीवे य
सोषा सद्दिशय य ।
सर्वनयाण अणुमए
रमेजा संजमे मुणी ॥

इति जीवानजीवांश्च
श्रुत्वा श्रद्धाय च ।
सर्वनयानामनुमते
रमेत संयमे मुनिः ॥

२४९—इस प्रकार जीव और अजीव के
स्वरूप को सुनकर, उसमें श्रद्धा उत्पन्न कर मुनि
आन-क्रिया आदि सभी नवों के द्वारा अनुमत
संयम में रमण करे ।

२५०—ततो बहूणि वासाणि
सामण्यमणुपाल्या ।
इमेण कमजोगेण
अप्याणं संलिहे मुणी ॥

ततो बहूनि वर्षाणि
श्रामण्यमनुपाल्य ।
अनेन क्रम-योगेन
आत्मानं संलिहेन्मुनिः ॥

२५०—मुनि अनेक वर्षों तक श्रामण्य का
पालन कर इस क्रमिक प्रयत्न से आत्मा को
कले—संलिखना करे ।

२५१—बारसेव उ वासाइं
संलेह्णोसिया^१ भवे ।
संवच्छरं मज्झिमिया^२
छम्मासा^३ य जहल्लिया^४ ॥

इत्यसौ तु वर्षाणि
संलेखोत्पिता भवेत् ।
संवत्सरं मध्यमिका
वर्णमासा च जघन्यका ॥

२५१—संलिखना उत्कृष्टतः बारह वर्षों,
मध्यमतः एक वर्ष तथा जघन्यतः छह मास की
होती है ।

२५२—पढमे वासचउक्कम्मि
विगईनिज्जहूणं^५ करे ।
बिइए वासचउक्कम्मि
विचित्तं तु तवं चरे ॥

प्रथमे वर्ष-चतुष्के
विकृति-निर्युहणं कुर्यात् ।
द्वितीये वर्ष-चतुष्के
विक्षिप्रं तु तपश्चरेत् ॥

२५२—संलिखना करने वाला मुनि पहले
चार वर्षों में विकृतिपूर्ण (रवों) का परित्याग
करे । दूसरे चार वर्षों में विक्षिप्र तप (उपवास,
बेदा, तैला आदि) का आचरण करे ।

२५३—एगन्तरमायामं
कट्ठु संवच्छरे दुवे ।
तवो संवच्छरद्धं तु
नाइविगिद्धं तवं चरे ॥

एकान्तरमायामं
कृत्वा संवत्सरो द्वौ ।
ततः संवत्सराद्धं तु
नातिविकृष्टं तपश्चरेत् ॥

२५३—फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप
(एक दिन उपवास तथा एक दिन भोजन)
करे । भोजन के दिन आशाम्ल करे । यद्यपि
वर्ष के पहले छः महीनों तक कोई भी विकृष्ट
तप (तेला, चोला आदि) न करे ।

१. संलेह्णोसियो (वृ० पा०) ।

२. मज्झिमियो (वृ० पा०) ; मज्झिमिया (वृ०) ।

३. छम्मासे (अ) ।

४. जहल्लियो (वृ० पा०) ।

५. विगई (वृ०) ; विगई (वृ० पा०) ।

उत्तरजभयणं (उत्तराध्ययन)

५४४

अध्ययन ३६ : श्लोक २५४-२५६

२५४—'तओ संवच्छरद्धं तु
विगिद्धं तु तवं चरे ।
परिमिच्चं चव आयामं
तमि संवच्छरे करे ॥'^१

ततः संवत्सराद्धं तु
विकृष्टं तु तपद्वरेत् ।
परिमितद्वंवायामं
तस्मिन् संवत्सरे कुर्यात् ॥

२५४—यारहवें वर्ष के पिछले छः
महीनों में विकृष्ट तप करें। इस पूरे वर्ष में
परिमित (पारणा के दिन) आचामल करें।

२५५—कोडीसहियमायामं
कटु संवच्छरे मुणी ।
मासद्धमासिएणं तु
आहारेण तवं चरे ॥

कोटी-सहितमायामं
कृत्वा संवत्सरे मुनिः ।
मासिकेनाद्धं मासिकेन तु
आहारेण तपस्वरेत् ॥

२५५—बारहवें वर्ष में मुनि कोटी-सहित
(निरन्तर) आचामल करें। फिर पक्ष या मास
का आहार-त्याग (अनशन) करें।

२५६—कन्दप्पमाभिओगं^२
किम्बिसिं मोहमासुरत्तं च ।
एयाओ दुग्गईओ
मरणम्मि विराहिया होन्ति ॥

कान्तर्पा अभियोगी
किल्बिषिकी मोहा आयुस्त्वं च ।
एता दुग्गयः
मरणे विराधिका भवन्ति ॥

२५६—कांदर्पा भावना, अभियोगी
भावना, किल्बिषिकी भावना, माही भावना
तथा आसुरी भावना—ये पाँच भावनाएँ
दुर्गाँ की हेतुभूत हैं। भूत्यु के समय ये
सम्यग्-दर्शन आदि की विराधना करती हैं।

२५७—मिच्छादंसणरत्ता
सनियाणा हु हिसगा ।
इय जे मरन्ति जीवा
तेसि पुण दुल्ला बोही ॥

मिथ्यादर्शन-रक्ताः
सनिदानाः सखु हिसकाः ।
इति ये म्रियन्ते जीवाः
तेषां पुनर्दुर्लभा बोधिः ॥

२५७—मिथ्या-दर्शन ने रक्त, सनिदान
और हिंगक दया में जो मरते हैं, उनके लिए
फिर बोधि बहुत दुर्लभ होती है।

२५८—सम्महंसणरत्ता
अनियाणा मुक्कलेसमोगाढा ।
इय जे मरन्ति जीवा
मुल्ला तेसि भवे बोही ॥

सम्यग्दर्शन-रक्ताः
अनिदानाः शुक्ल-लेण्यामवगाढाः ।
इति ये म्रियन्ते जीवाः
मुलभा तेषां भवेद् बोधिः ॥

२५८—सम्यग्-दर्शन में रक्त, अनिदान
और शुक्ल-लेण्या में प्रवर्तमान जो जीव मरते
हैं, उनके लिए फिर बोधि बहुत दुर्लभ
होती है।

२५९—मिच्छादंसणरत्ता
सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।
इय जे मरन्ति जीवा
तेसि पुण दुल्ला बोही ॥

मिथ्या-दर्शन-रक्ताः
सनिदानाः कृष्ण-लेण्यामवगाढाः ।
इति ये म्रियन्ते जीवाः
तेषां पुनर्दुर्लभा बोधिः ॥

२५९—जो मिथ्या-दर्शन में रक्त,
सनिदान और कृष्ण-लेण्या में प्रवर्तमान होते
हैं, उनके लिए फिर बोधि बहुत दुर्लभ
होती है।

१. परिमिच्चं चव आयामं गुणुक्कसं मुणी चरे ।
तओ संवच्छरद्धं विगिद्धं तु तवं चरे ॥ (५० पा०) ।

२. सम्मणेण (५० पा०) ।

३. कन्दप्पमाभिओगं च (अ) ।

२६०—जिणवयणे अनुरत्ता
जिणवयणं जे करेन्ति भावेण ।
अमला असंकिल्हटा
ते होन्ति परित्तसंसारी ॥

जिनवचनेऽनुरक्ताः
जिनवचनं ये कुर्वन्ति भावेन ।
अमला असंकिल्हटाः
ते भवन्ति परीत-संसारिणः ॥

२६०—जो जिन-वचन में अनुरक्त हैं
तथा जिन वचनों का भाव-पूर्वक आचरण करते
हैं, वे निर्मल और असंकिल्ह होकर परीत-
संसारी (अल्प जन्म मरण वाले) हो जाते हैं ।

२६१—बालमरणाणि बहुसो
अकाममरणाणि चेव 'य
बहूणि'^१ ।
मरिहन्ति^२ ते वराया
जिणवयणं जे न जाणन्ति ॥

बाल-मरणाणि बहुसः
अकाम-मरणाणि चैव च बहूनि ।
मरिष्यन्ति ते वराकाः
जिनवचनं ये न जानन्ति ॥

२६१—जो प्राणी जिन-वचनों के परि-
चित नहीं हैं, वे बेचारे अनेक बार बाल-मरण
तथा अकाम-मरण करते रहेंगे ।

२६२—बहुआगमविन्नाणा
समाहिउपायगा^३ य गुणगाही।
एएण कारणेणं
अरिहा आलोयणं सोउं ॥

बहुआगम-विज्ञानाः
समाध्युपायकाश्च गुणप्राहिणः ।
एतेन कारणेन
अहां आलोचनां श्रोतुम् ॥

२६२—जो अनेक शास्त्रों के विज्ञाता,
आलोचना करने वाले के मन में समाधि उत्पन्न
करने वाले और गुणप्राही होते हैं, वे अपने
इन्हीं गुणों के कारण आलोचना सुनने के
अधिकारी होते हैं ।

२६३—कन्दप्पकोकुइवाइ^४ तह
सीलसहावहासविगहाहि^५ ।
विम्हावेन्तो य परं
कन्दप्पं भावणं कुणइ ॥

कन्दर्प-कोत्कुब्धो
तथा शील-स्वभाव-हास्य-विकषामिः ।
विस्मापयन् च परं
कान्दपा भावनां कुरुते ॥

२६३—जो काम-कषा करता रहता है,
दूसरों को हँसाने की चेष्टा करता रहता है,
शील, स्वभाव, हास्य और विकषाओं के द्वारा
दूसरों की विस्मित करता रहता है, वह कांक्षणी
भावना का आचरण करता है ।

२६४—मन्ताजोगं^६ काउं
भूईकम्मं च जे पउंजन्ति ।
सायरसइडिहउं
अभिओगं भावणं कुणइ ॥

मंत्र-योगं कृत्वा
भूति-कर्म च यः प्रयुङ्कते ।
सातरसद्धिहेतो
आभियोगी भावनां कुरुते ॥

२६४—जो मंत्र, रस और समृद्धि के
लिए मंत्र, योग और भूति-कर्म का प्रयोग
करता है, वह अभियोगी भावना का आचरण
करता है ।

१. बहुषाणि (इ, उ, ऋ०, ल) ।

२. मरहन्ति (उ) ; मरिहन्ति (ऋ०) ।

३. 'उपायगा' (अ) ।

४. 'कोकुब्ध' (इ०, उ०) ।

५. 'इसण' (इ०, उ०) ।

६. 'मंत' (अ) ।

२६५—ताणस्स केवलीणं
धम्मयारियस्स संघसाहूणं ।
माई अवण्णवाई
किब्बिसियं भावणं कुणइ ॥

२६६—अणुबद्धरोसपसरो
तह य निमित्तंमि होइ
पडिसेवि ।
एएहि कारणेहि
आसुरियं भावणं कुणइ ॥

२६७—सत्थमाहणं विसभक्खणं च
जलणं च जलप्पवेसो य ।
अणायारभण्डसेवा
जम्ममरणणि बन्धन्ति ॥

२६८—इइ पाउकरे बुद्धे
नायए परिनिब्बुए ।
छत्तीसं उत्तरज्जाए
भवसिद्धीयंसमए' ॥
—ति वेमि ।

ज्ञानस्य केवलियां
धर्माचार्यस्य सहस्रसाधूनाम् ।
मायी अवर्णबाहो
किञ्चिद्विहीं भावनां कुरुते ॥

अनुबद्धरोषप्रसरः
तथा च निमित्तो भवति प्रतिसेवी ।
एताभ्यां कारणाभ्यां
आसुरीं भावनां कुरुते ॥

शस्त्र-ग्रहणं विष-भक्षणं च
ज्वलनं च जल-प्रवेक्षणम् ।
अनाहार-भाण्ड-सेवा
जन्म-मरणानि बध्नान्ति ॥

इति प्रादुरकरोऽबुद्धः
ज्ञातः परिनिर्बृत्तः ।
वर्त्तिशतदुत्तराध्ययान्
भगवत्सिद्धिक-सम्पदान् ॥

—इति ब्रवीमि ।

२६५—जो ज्ञान, केवल-ज्ञानी, धर्माचार्य,
संघ तथा साधुओं की निन्दा करता है, वह
मायावी पुण्य किञ्चिद्विही भावना का
आचरण करता है ।

२६६—जो क्रोध को सतत् बढ़ावा देता
रहता है और निमित्त कहता है, वह अपनी इन
प्रवृत्तियों के कारण आसुरी भावना का
आचरण करता है ।

२६७—जो शस्त्र के द्वारा, विष-भक्षण
के द्वारा अग्नि में प्रविष्ट होकर वा पानी में
कूब कर आत्म-हत्या करता है और जो मर्षादा
से अधिक उपकरण रखता है, वह जन्म-मरण
की परम्परा को पुष्ट करता है—मोहो
भावना का आचरण करता है ।

२६८—इस प्रकार भगवत् जीवों द्वारा
सम्पन्न छत्तीस उत्तराध्ययनों का, तत्त्ववेत्ता,
परिनिर्बृत्ति (उपशान्तात्मा) ज्ञात-वंशीय
भगवान् महावीर ने प्रादुर्करण किया ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

पदानुक्रम

अ	स्थळ	अक्षिपणा उज्जुळता निराभिसा	१४-४१	अच्यतकालस्त समूलगस्त	३२-१
पद		अक्षिपिं परिब्रजए	१८-३३	अच्यततन्याणसमा	१८-५२
अदगया बारमापुरि	२२-२७	अकुसुको तत्प्राज्ञिवासएज्जा	२१-१८	अच्यतपरमो आसो	२०-५
अदितिककट्याइण्णे	१६-५२	अकुसुको निसीएज्जा	२-२०	अचिं बाला तहेव य	३६-१०६
अदमाय दाणमोयणं	१६-१२	अकोहुणो सत्तरए	११-५५	अच्युयमि. अहुणेणं	३६-२३३
अदयाओ नराहिओ	२०-५६	अककोसवहं बिइत्तु बीरे	१५-३	अच्येइ कालो तूरत्ति राइओ	१३-३१
अउलं सुहंसपत्ता	३६-६६	अककोसा दुक्खसेज्जा य	१६-३१	अच्येमु ते महाभाग !	१२-३४
अउला मे अण्णिवेयणा	२०-१६	अककोसा य बहा य मे	१-३८	अच्येओ उवसम्पदा	२६-७
अउला हवइ वेयणा	२-३५	अककोसेज्ज परो भिक्खुं	२-२४	अच्यत्तं वक्खमूलमि	१६-७८
अउलो क्वचिम्हओ	२०-५	अकसाया मारणत्तिया	५-२	अचिह्ले माहए अचिह्ल	३६-१४८
अएव आगया एते	७-६	अकसाहि ओ संजय ! अक्खपूदया !	१२-४०	अच्येओगममुदए	६-५१
अकुसण जहा नागो	२२-४६	अक्खे भग्गिं सोयई	५-१४	अजहन्मयणकोसा	३६-२४४
अंके फलिहे य लोहिअक्खे य	३६-७५	अक्खे अगे व सोयई	५-१५	अजाणया जन्मबाई	२५-१८
अगल्लणसंठाणं	१६-४	अगणि व पक्खन्त पयंगसेणा	१२-२७	अजीबदेसमागासे	३६-२
अगविज्जं च जे पउजजित्त	८-१३	अगारवो य निस्तलो	३०-३	अजीवाण य क्वणिं	३६-१३
अगविआरं सरस्स विजयं	१५-७	अगारिं च विद्याणिया	७-२२	अजीवाण य क्वओण	३६-१४
अंगुलं सत्तरणेणं	२६-१४	अगारिसामाइयंगहं	५-२३	अजीवा दुविहा भवे	३६-४
अणेण बाहिणं व	२८-२१	अमुणिसं नत्थि भोक्खो	२८-३०	अजीवा दुविहा वि य	३६-२४८
अंसुपुणोहिं नयणेहिं	२०-२८	अग्निवण्णाइं गेगसो	१६-६६	अज्जवयाएणं अन्ते ! जीवे किं...२६ सू० ४६	
अकट तो क्के ति य	१-११	अग्निहोत्तमुहा वैया	२५-१६	अज्जाइं कम्माइं करेहिं राय !	१३-३२
अकम्मकम्ममुभा य	३६-१६६	अग्गीं चिट्ठइ गोयमा	२३-५०	अज्जुणमुक्खणमई	३६-६०
अकलेवसेणिमुत्तिया	१०-३५	अग्गी य इइ के बुला	२३-५२	अज्जेव वम्मं पडिबज्जयाओ	१४-२८
अकसाओ भिइण्णो	३०-३	अग्गीं वा माहिओ जहा	२५-१६	अज्जेवाहं न लब्भामि	२-३१
अकसायं अहक्खायं	२८-३३	अग्गीं बिवा सज्जभक्खीं मविता	२०-४७	अज्जत्तं सज्जो सज्जं	६-६
अकाममरणं वेव	५-२	अचक्खिया केणइ दुणहंसया	११-३१	अज्जत्तं हेउं निमयज्जसं बन्धो	१४-१६
अकाममरणं मरई	५-१६	अच्यतो तहिं विओ	२५-१३	अज्जमपज्जणजोमेहिं	१६-६३
अकाममरणणिं वेव य बहुणिं	३६-२६१	अच्यत्तं वेव अकित्ताणं च	३२-१५	अज्जमत्तसाग्गिं सहेणे	१६-७
अकामा जजित् दोगाई	६-५३	अचिरकालकयंमिय	२४-१७	अज्जावयाणं पडिक्कलमासी	१२-१६
अकारिणोऽथ बज्जमत्ति	६-३०	अचिरिणे कालेण	१४-५२	अज्जावयाणं वयणं गुणेता	१२-१६
अकालं च विवत्तिअत्ता	१-३१	अक्खेलमसं लुहसं	२-३४	अज्जावयां वा सह खण्णिएहिं	१२-१८
अकामिं पावइ से विणासं	३२-२४	अक्खेलो य ओ वम्मो	२३-१३, २६	अट्टट्ठाणि वज्जिअता	३०-३५, ७४-३१
	३७-५०, ६३, ७६, ८६	अच्यणं रयणं वेव	३५-१८	अट्ठं न जाणाहं अहिज्ज वेए	१२-१५

अट्ट कम्पाई बोष्णामि	३३-१	अणत्तामि य इष्णामि	२८-८	अणुत्तरे सो नरए पण्डितो	१३-३४
अट्टजुत्तामि सिक्खेज्जा	१-८	अणमिमाहिजो य सेतेसु	२८-२६	अणुत्तए नावणाए महेत्ती	२१-२०
अट्टजोयवाहल्ला	३६-५६	अणमिमाहिज कुण्डित्ठी	२८-२६	अणुत्तेहाएणं मत्ते ! बीजे किं	
अट्टो पवयणसायाओ	२४-१	अणवज्जेसतिअस्स	१६-२७	अणयइ ?	२६ सु० २३
अट्टमम्मि अहणेणं	३६-२४१	अणसणमणोयरिवा	३०-८	अणुपेहा चम्मकहा	३०-३४
अट्टमुहुत्ता अहन्मिया	३३-२३	अणात्ताकालपचमस्स एसो	३२-१११	अणुबढोत्तसपसो	३६-२६६
अट्टविहोरोयमं तु	३०-२५	अणायाणं नेव य क्षियि किञ्चि	१४-२८	अणुबन्धुहायहा	१६-११
अट्टविहा बाणमत्तरा	३६-२०७	अणाद्विस्स देवस्स	११-२७	अणुसामा ह्वन्ति उ	३३-२४
अट्टसहस्सलक्खणपरो	२२-५	अणागुत्तिं अमोत्तल्लि वेव	३६-२५	अणुभागे विपाणिया	३३-२५; ३४-६१
अट्टहा ते पकित्तिया	३६-१६	अणायावमण्डेसा	२६-२६७	अणुभावे सुणेह मे	३४-१
अट्टहा अणचारिणो	३६-२०५	अणावाए वेव होइ संलोए	२४-१६	अणुपाणिताय बह्विहं	१६-२६६
अट्टहिं बीयत्तियंभी	२६-१६	अणावायमसंलोए	२४-१६, १७	अणुरत्ता अणुवया	२०-२८
अट्टाए य अणट्ठाए	५-८	अणाविले अलपसन्नेसे	१२-४६	अणुसट्ठि सुणेह मे	२०-१
अट्टारत्त सागराहं	३६-२२६	अणासवा बूलवया कुलीका	१-१३	अणुसत्तणं नाणुमोचवयं	२०-५१
अट्टारत्त सागरोबमा	३६-२३०	अणासवे भाणसमाहिजुरो	३२-१०६	अणुसासणोभायं	१-२८
अट्टिअत्ता अविस्ससि	२२-४४	अणाहं जहाभूयं	२०-५६	अणुसात्तिओ न कुपेज्जा	१-६
अट्टेज्ज समासओ	३३-३	अणाहो मि सहाराय !	२०-६	अणुसाहरितपडिलेहा	२६-२८
अणवक्कमया य ते होइ	२६-३३	अणिओ पेरिवए	२-१६	अणुसाण्डव्वा इह साणवेहिं	२१-१६
अणगारं अकिचणं	२-१४; २५-२७	अणिज्जे जीव लोगम्मि	१८-११, १२	अणेहा क्वा समयं वरन्तं	४-११
अणगारं तत्प पासई	१-६	अणिवाणे अकिचणे	३५-१६	अणेवासासमवया	७-१३
अणगारगुणिं च	३१-१८	अणिस्सिओ इहं लोए	१६-६२	अणेवासे धुवागेयरे य	१६-८३
अणपाटसीह परमाइ भतिए	२०-५८	अणुक्कम्यओ तस्स महामुत्तस्स	१२-८	ओगविहा एवमायओ	३६-११६
अणभारस्स भतिए	१८-८, १६	अणुक्कम्यं सुहि वावी	२०-६	ओगहा एवमायओ	३३-६६, ११०,
अणभारस्स निक्खत्तो	२४-४२	अणुत्तसाई अण्यज्जे	२-३६		१३०, १३६, १४६, २१६
अणभारस्स निक्खत्तो	१-१; २-२८;	अणुत्तसाई लहुक्कम्यमन्तो	१५-१६	अणगहा ते पकित्तिया	३६-६४, ६६
	६-१६; ११-१	अणुत्तस्स अकुए विरे	१-३०	अणगहा ते विपाट्टिया	३६-१०६
		अणुत्ताणइ पण्डस्सामि अमो !	१६-१०	अणेवाण सहस्सायं	२३-३४
अणभारस्स सो निवो	१८-८	अणुत्तरं वरिउ अम्मसंभयं	२१-२३	अण्ढं नलायपमव्वं जहा य	२३-६
अणभारे भाणमस्तिए	१८-६	अणुत्तरं संजम पालइत्ता	१३-३५	अण्ढं बलिं सहोदसि	५-१; २३-७०
अणभारे तबोणो	१८-७	अणुत्तरं संजम पालियाणं	२०-५२	अण्ढं बलिं सहोदसि	१८-५२
अणभारो मणाऽज्जो	२६-२५	अणुत्तरं सिद्धिइ गयो	१३-३५	अण्ढं बलिं सहोदसि	३२-२६; ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१
अणवक्कमियं अणत्तियं	२६-४६	अणुत्तरं सिद्धिइ गयो	१३-३५	अण्ढं बलिं सहोदसि	३२-२६; ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१
अणट्ठाकिति पण्णए	१८-३०	अणुत्तरं सिद्धिइ गयो	१३-३५	अण्ढं बलिं सहोदसि	३२-२६; ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१
अणट्ठा जे य सव्वत्था	३६-१४, ८२, ६०,	अणुत्तरं सिद्धिइ गयो	१३-३५	अण्ढं बलिं सहोदसि	३२-२६; ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१
अणत्ताकालमुक्कोसं	३६-१४, ८२, ६०,	अणुत्तरं सिद्धिइ गयो	१३-३५	अण्ढं बलिं सहोदसि	३२-२६; ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१
	१०३, ११४, १२४, १३४, १४३, १५३,	अणुत्तरं सिद्धिइ गयो	१३-३५	अण्ढं बलिं सहोदसि	३२-२६; ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१
	१५३, १६८, १७७, २०२, २४६	अणुत्तरं सिद्धिइ गयो	१३-३५	अण्ढं बलिं सहोदसि	३२-२६; ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१

अतट्टे अमरपम्भई	७-२५	अनिगहण्या य रसेवु गिडे	२०-३६	अन्वारेणं च बल्येण	३०-२२
अतट्टे नाबपम्भई	७-२६	अनिवाणा सुक्कलेसमोगाढा	३६-२५८	अन्तर्लिगे दसेव य	३६-५२
असाणं परिणामसे ?	१८-५३	अनिवाणो अन्नपणो	१६-६१	अन्तस्स अट्ठा इहमागो मि	१२-६
अस्यं च धम्मं च विद्यापमाणा	१२-३३	अन्तमुहुत्तस्मि गए	३४-६०	अन्तायस्सि अलोक्खु	२-३६
अत्यन्तस्मि य सूरस्मि	१७-१६	अन्तमुहुत्तस्मि सेसाए जेव	३४-६०	अन्ताणं च महामुणी !	१८-२३
अस्यं पोत्यं च पत्तिबा !	२०-१६	अन्तरं तेस्मिं भवे	३६-१८६, १६३, २०२	अन्ताणं जस्स अन्नयं होह	२८-२०
अत्यथम्मगहं तच्चं	२०-१	अन्तरहीवाया तद्दा	३६-१६६	अन्ताणमोहस्स विज्जजाणए	३२-२
अत्यथम्मोवसोहिंयं	१८-३४	अन्तरायं च कम्मस्मि	३३-२०	अन्तायस्सि परिज्जए जे स भिक्खु	१५-१
अस्मि एगं धुमं ट्ठाणं	२३-८६	अन्तरायं तद्देव य	३३-३	अन्निओ रायसहस्सेहि	१८-४३
अस्मि एगो महादोसो	२३-८६	अन्तरेयं विद्यासि ३६-१४, १३४, १४३, १५३	३३-३	अन्नेण विसेसेणं	३०-२३
अस्मि वा मस्मि वा पुणो ?	५-६	अन्तेउरबवगो बरे ओए	६-३	अन्ने य एयणमवे विसेसे	३२-१०३
अस्ये य संकपपक्को तथो से	३२-१०७	अन्तोमुहुत्तं जहन्मं	३६-१०२	अन्ने सत्ता पमोयस्मि	१४-४२
अस्येहि कामेहि य उत्तमेहि	१३-१०	अन्तोमुहुत्तं जहन्मं ३६-८१, ८२, ६०, १०३,		अन्तो वि संसजा मज्जं	२३-२६, ३४, ३६
अस्मिज्जा तन्नियमेहि अट्टे	२०-४१	१०४, ११४, ११५, १२३, १२४, १३३, १३४,		४४, ४६, ४४, ४६, ४४, ४६, ४४, ४६	
अस्मिज्जासणे कुक्कुट्ठाए	१७-१३	१४२, १४३, १४२, १४३, १६६, १७७, १८६,		अपजवसिया जेव	३६-८
अदए पञ्चिसेहि, नियठे	१५-११	१६३, २०२, २४६		अपजवसिया वि य ३६-१२, ६५, ७६, ८७	
अदसणं जेव अपत्थणं च	३२-२५	अन्तोमुहुत्तं जहन्मिया ३३-१६, २१, २२,		१०१, ११२, १२१, १३१, १४०, १४५,	
अदत्तमेहुत्तपरिगहाह्वा विरओ	३०-२	३६-८०, ८८, ८९, १११, १२२, १३२, १४१,		१४६, १७४, १८३, १८८, १८९, २१८	
अदत्तस्स विवज्जणं	१६-२७	१४१, १७४, १७६, १८४, १८५, १८६, १८७,	२००, २०१	अपडिक्कमिराा कालस्स	२६-२२
अदित्तस्स वि किञ्चण	६-४०	अन्तोमुहुत्तमदं	३४-४५	अपर्यं अन्मं ओच्छा	७-११
अदित्तस्सणं च भूयाणं	२३-३०	अन्तो ल्यणस्स ता दिमा	२२-३३	अपरिक्कमा य आहिवा	३०-१३
अदीगमसाणो बरे	२-३	अन्तो सिद्धाण आहिंयं	३३-१७	अपारिओ पवज्जई	१६-१८
अदीपो धावाए पल्लं	२-३२	अन्तोहिंयमसंभूया	२३-४४	अयं चाडहिंस्सवई	११-११
अदुवा वंछिओ मि ति	२-४४	अन्वयाये तमे वीरे	२३-७५	अयं वा जइ वा वहुं	२५-२४
अदुवाव भविसस्सई	२-४५	अन्धिया पात्तिया जेव	३६-१४६	अयकम्मे अवेयणे	१६-२१
अदुवा सवेलए होक्खं	२-१२	अनं पत्थेसि आसमं	६-४२	अयच्चक्खयाय पावयं	६-८
अदु बुक्कसं युलागं वा	८-१२	अनं पणूयं मवयाणमेयं	१२-१०	अपरिदुयुयए थडे	१७-५
अद्दयं सिरसा सिरं	१८-५०	अनं पाणं च प्ठाणं च	२०-२६	अपरिद्वयायणं भन्ते ! जीवे	२६ सू० ३१
अदीणा अन्ति देवयं	७-२१	अनं वावि तद्दाविहं	२४-१५	अपरिद्विक्के अहाउयं	३-१६
अद्दाए सुद्धादवि	७-१८	अनदहारे वेगे	७-३	अपरिद्विक्कले ओहे	११-२१
अद्दाणं ओ अहत्तं तु	१६-१८, २०	अनपयसत्तं वणमेसमाणे	१४-१४	अपणट्ठा परट्ठा वा	१-२५
अद्दाणंमि विलोवए	७-५	अनममलपणुत्ता	१३-३	अपणा अणाहो सन्तो	२०-१२
अद्दाणे कह् वट्ठो	२३-६०	अनममलपणुत्ता	१३-३	अपणा वि अणाहो सि	२०-१२
अद्दासणए जेव	१६-६	अनममलपणुत्ता	१३-३	अपणा सन्धेसेज्जा	६-२
अद्दे असासयमि	८-१	अनममलपणुत्ता वा	३०-२२	अपणो य परस्स य	२०-३२

अप्यो य परेसि च	१८-२६	अबले बहू भारबाहू	१०-३३	अमोहा रघुनी मुत्ता	१४-२३
अप्यो बसहि बए	१४-४८	अवाकं चेब पणिए	७-३०	अमोहाहि पबलीहि	१४-२१
अप्यपानोप्योमि	१-३५	अवाकं सेवए मुणी	७-३०	अमिक्का महरा तहा	३६-१८
अप्यमजियमासह	१७-७	अवीया लणकुलका	२०-२२	अम्मताय ! मए भोगा	१६-११
अप्यमत्तो पमत्तेहि	६-१६	अबोहेन्तो असंजए	२६-४४	अम्मापिऊग दहए	१६-२
अप्यमत्तो परिबए	६-१२	अवमपडकजमवायुय	३६-७४	अम्मापिऊहि अणुत्ताओ	१६-८४
अप्यव्वहएण च संमुदा हविजा	१५-१०	अवमाहयंमि कोणंमि	३४-२१	अम्मापियरं उवागम्म	१६-६
अप्यसत्ताओ बजिता	३४-६१	अबिमतं तवं एत्तो	३०-२६	अयं दन्नेहि लायह	१२-२६
अप्यसत्तेहि वारेहि	१६-६३	अबमुट्ठाणं अंथलिकरणं	३०-३२	अयं साहसिओ भीमो	२३-५५
अप्या कत्ता विकता य	२०-३७	अबमुट्ठाणं गुरुया	२६-७	अयंसि कोए अययं व पूरए	१७-२१
अप्या काममुहा चेण	२०-३६	अबमुट्ठाणं नवयं	२६-४	अयंसि कोए विसमेव गरहिए	१७-२०
अप्या येव दमेयव्वो	१-१५	अबमुट्ठियं रायरिसि	६-६	अयकक्कराभोई य	७-७
(अप्याणं उवसंहरे)	२२-४५	अबओ परिपवा ! तुमं	१८-११	अयतम्वतउय-सीसग	३६-७३
अप्याणं तारहस्तामि	१६-२३	अबमदाया भवाहि य	१८-११	अयत्तिए कूड कहाणे वा	२०-४२
अप्याणं पि न कोवए	१-४०	अजिओणं यावणं कुणई	३६-२६४	अय व्व आगयाएत्ते	७-६
अप्याणं संलिहे मुणो	३६-२५०	अजिमल्लणं उल्लहई	११-२	अयसीवुप्फसंकासा	३४-६
अप्याणं संबरे तहि	२२-३६	अजिमल्लणं कोही हवह	११-७	अरदं पिट्ठओ किक्का	२-१५
अप्यामेव अप्याणं	६-३५	अजिगममिक्कारहई	२८-१६	अरदरदवहे पहीगसंयवे	२१-२१
अप्यामेव जुप्फाहि	६-३५	अजिगमाहा य जे अन्ने	३०-२५	अरई अणुप्पवित्ते	२-१४
अप्याणरक्खो चरमप्यमत्तो	४-१०	अजिजाए जसोबले	१-१८	अरदं गण्डं विसूदया	१०-२७
अप्या दन्तो सुद्धो होइ	१-१५	अजिणिक्कवई तमी राया	६-२	अरए य तवो कम्मे	१७-१५
अप्या नई वेयरणो	२०-३६	अजिमुए पार गमितए	१०-३६	अरएणो मियपक्खणं ?	१६-७६
अप्या मित्तममितं च	२०-३७	अजिमुय वरीसहे	२-१८	अरहा नायपुत्ते	६-१७
अप्या मे अवसीयई	२७-१५	अजिमिदडणं सिरसा	२०-५६	अरहा कोमपूइओ	२३-१
अप्या मे कूडसाम्भो	२०-३६	अजिमिदत्तासिरसा	२३-८६	अरिट्ठमोहि वन्दिता	२२-२७
अप्या मे मत्तणं वणं	२०-३६	अजिमिदत्तासिरसा	२-३८	अरिहा आलोयणं सोउं	३६-२६२
अप्यामेव महाप्पन्ने	३-१८	अजिमिदत्तासिरसा	२-४५	अरुक्खिणो ओवघणा	३६-६६
अप्या हु लुलु दुदमो	१-१५	अजिमिदत्तासिरसा	२५-३६	अरुक्खी वसहा भवे	३६-६
अप्याहेवो पवजए	१६-१८	अजिमिदत्तासिरसा	२५-३६	अरुक्खी वसहा मुत्ता	३६-४
अपियं पि न मिजए	६-१५	अजिमिदत्तासिरसा	३६-२६०	अरो य अययं पत्तो	१८-४०
अपियस्सावि मित्तस्स	११-१२	अजिमिदत्तासिरसा	२०-४२	अरुक्खिणो वाअल्लकिणो वा वि	३०-२२
अपिया देवकामाणं	३-१५	अजिमिदत्तासिरसा	११-१०; ३४-२७	अरुक्खी मादवाहया	३६-१२८
अप्युट्ठाई निरुट्ठाई	१-३०	अजिमिदत्तासिरसा	३-६	अरुक्खी तं न तजए	२-३१
अप्योवमण्डवमि	१८-५	अजिमिदत्तासिरसा	१४-१६	अरुक्खी पविहया सिद्धा	३६-५६
अप्योवमण्डवमि	१४-२४	अजिमिदत्तासिरसा	३२-१०६	अरुक्खी से विहाहिए	३६-२
अप्योवमण्डवमि	१२-५	अजिमिदत्तासिरसा			

पदानुक्रम

५

अलोलुप्तं मुहूर्त्तवी	२५-२७	असंविभागी अक्षिपते	११-६; १७-११	अह कालमि संपत्ते	५-३२
अलोलो न रसे मिदो	३५-१७	असंसत्तं गिहत्थेषु	२५-२७	अह केसरमि उज्जाणे	१८-५
अल्लोणा सुसमाहिद्या	२३-६	असंसत्तो गिहत्थेहि	२-१६	अह चउसहिं ट्ठाणेहिं	११-६
अमउज्जमह पायकम्बलं	१७-६	असणे अणसणे तहा	१६-६२	अह जाणासि तो भण	२५-१२
अमउज्जिमण माहणरुक्कं	६-५५	असत्ते कामे पसेसि	६-५३	अह जे संवुडे भिक्खू	२-२५
अमउज्जिमय मितवन्धनं	१०-३०	असमाणे चरे भिक्खू	२-१६	अह तत्थ भइच्छन्तं	१६-५
अमचियमंससोमियं	२५-२१	असमाहि च वेणुइ	२७-३	अह तायगो तत्थ भुगीण तेसिं	१५-८
अमसेसं भण्डं गिज्जका	२६-३५	असावज्जं मियं काले	२५-१०	अह तेगेव कालेणं	२३-५; २५-५
अमसो लोहरहे जूलो	१६-५६	असारं अमउज्जमह	१६-२२	अह ते तत्थ सीसाणं	२३-१५
अमसोहिण कण्टगापहं	१०-३२	असासए सरीरम्मि	१६-१३	अह दारए तहि जाए	२१-५
अमहेडिय पिट्ठसउत्तमरे	१२-२६	असासयं दट्ठु इमं विहारं	१५-७	अह निक्खमइ उ चित्ताहिं	२२-२३
अवि एयं विणमसउ अन्नपाणं	१२-१६	असासवावासमियं	१६-२२	अह पंचहिं ट्ठाणेहिं	११-३
अविज्जवाया अहीरिया य	३५-२३	असिणह तिणेहकुरेहिं	८-२	अह पच्छा उइज्जजित्ति	२-५१
अविणीए अवहुसुए	११-२	असिधारागमणं येव	१६-३७	अह पत्तामि आपसे	७-३
अविणीए त्ति तुण्हइ	१-३; ११-६	असिपत्तं महावणं	१६-६०	अह पनरसहिं ट्ठाणेहिं	४१-१०
अविणीए वल्लभं सो उ	११-६	असिपत्तेहि पण्णेहिं	१६-६०	अह पासिस्स अरणी	२३-१५
अवि पावपरिक्खेवी	११-८	असिपत्तेहि अगिहे अमिते	१५-१६	अह भवे पल्ला उ	२३-३३
अवि मित्तमु कुण्णइ	११-८	असीलाणं च जा यई	५-१२	अहमासी महापाणे	१८-२८
अवि लामो मुए सिया	२-३१	असीहि अयसिबण्णाहिं	१६-५५	अह भोगेण सो भगवं	१८-६
अविबण्णासा तहेव य	२६-२८	असुइ असुइसम्भवं	१६-१२	अहम्मं कुणमाणस्स	१५-२५
अवितारओ पवयणे	२८-२६	असुभत्तेषु सम्भसो	२५-२६	अहम्मं पडिबज्जिया	५-१५; ७-२८
अव्वमिल्लेण येयसा	१८-५०; २०-१७	असुरा तहिं तं अणं ताणमन्ति	१२-२५	अहम्मो अत्तपन्हा	१७-१२
अव्वमामणे असंपहिंटे	१५-३	असुरा नागमुण्णा	३६-२६	अहम्मो ट्ठाणलक्खणी	३६-५
असइं तु मणुस्सेहिं	६-३०	अस्सकण्णी य बोद्धव्या	३६-६६	अह राया तत्थ सम्भलो	१८-७
असइं तुमलमयाणि य	१६-५५	अस्साया वैड्या मए	१६-५७	अहवा तदयाए पोरिस्सीए	३०-२१
असंलकासमुक्कसं	३६-१३,	अस्सा हत्थी मणुस्सा ये	२०-१३	अहवा सपरिक्कमा	३०-१३
	८१, ८६, १०५, ११५, १२३	अस्सि ओए परत्थ य	१-१५	अह सन्ति मुज्झया साहू	८-६
असंलभाणं च उक्कसो	३४-५१, ५२, ५३	अस्से य इह के वुत्ते ?	२३-५७	अह सा भमर-सन्निभे	२२-३०
असंलभाणो पल्लिस्स	३६-१६२	अह भट्ठहिं ठाणेहिं	११-५	अह सारही तलो मणइ	२२-१७
असंल्ल जीविय मा पमायए	५-१	अह अन्नया कयाई	१८-६	अह सारही विचित्तेह	२७-१५
असंल्लिज्जाणोसपिणीण	३५-३३	अह आसणओ राया	२२-११	अह सा रायवरकन्ना	२२-७, ५०
असंल्लेज्जमो भवे	३६-१६१	अह उस्सिए छत्तेण	२२-५३	अह से तत्थ अणगाणे	२५-५
असंजए संवयमन्नमाणे	१७-६	अहं च भोयरायस्स	२-७	अह से सुगन्धगन्धि	२७-२५
असंजए संवयल्लप्पमाणे	२०-५३	अहं तु अग्निं सेवामि	१३-२७	अह सो तत्थ निज्जतो	२२-१५
असंजने मित्ति च	३१-२	अहं पि जाणामि अहेह साहू !			

अह सो वि रायपुत्तो	२२-३६	आउं आणे अहा तथा	१८-२६	आणानिदेसकरे	१-२
अहिसरे सया रत्ते	११-४	आउं सुहमपुत्तरं	७-२७	आणारुई सुतपीयरुम्मेव	२८-१६
अहाउयं पालइत्ता अत्तो०	२६ सु० ७३	आऊकम्मं अउम्बिहं	३३-१२	आणुपुम्बि अहक्कमं	३१-१; ३४-१
अहाह अणाओ तीसे	२२-८	आऊकम्मं तहेव य	३३-२२	आणुपुम्बि सुणेह मे	१-१; २-१; ११-१
अहिंस सच्चं च अत्तेणं च	२१-१२	आउक्कयामइगओ	१०-६	आणुपुम्बो कयाइ उ	३-७
अहिउय वेए परिस्सिन् विणे	१४-६	आउक्कए मोक्कमुवेह सुट्ठे	३२-१०६	आणुछणा य तइया	२६-२
अहिरेणन्तिट्ठीए	१६-३८	आऊम्बीवाण अन्तरं	३६-६०	आणुछणा सयंकरणे	२६-४
अहीणंपिन्दिमत्तं पि से लहे	१०-१८	आउटिई बाऊणं	३६-८८	आणुच्छम्मारियरो	२१-१०
अहीणपंचिन्दिमया हु बुल्लहा	१०-१७	आउटिई सहयराणं	३६-१६१	आणुच्छित्ताण बन्धवे	२०-३४
अहुणोवन्नसंकासा	४-२७	आउटिई जलयराणं	३६-१७४	आवरणाणि य सव्वाणि	२२-२०
अहे बयइ कोट्ठेणं	६-४४	आउटिई तेऊणं	३६-११३	आवरणेहि विमूंसिओ	२२-६
अहो ! अजस्स सोमया	२०-६	आउटिई थलयरारणं	३६-१८४	आमतयाओ अरिस्तामु भोणं	१४-७
अहो अट्ठिए अहोरायं	१८-३१	आउठिई पुडबीणं	३६-८०	आमिसं सव्वमुज्झता	१४-४६
अहो ! अत्ती अहो ! मुत्ती	२०-६	आउटिई बाऊणं	३६-१२२	आमोयमाणा गच्छन्ति	१४-४८
अहो ते अज्जवं साहु	६-४७	आउटिई मणुयाणं	३६-२००	आमोसे लोमहारे य	६-२८
अहो ते उतथा अत्ती	६-४७	आउत्तया जस्स न अत्थि काइ	२०-४०	आयंका विविहा फुसन्ति ते	१०-२७
अहो ते निज्जओ कोहो	६-४६	आउयं नएए कंखे	७-७	आयंका विविहा फुसन्ति देहं	२१-१८
अहो ते निरक्किया माया	६-४६	आउरे सरणं तिगिच्छियं च	१४-८	आयंके उवत्तमे	२६-३४
अहो ते माओ पराविओ	६-४६	आउरे सुगिवासिए	२-४	आययन्ति मणुस्सयं	३-७
अहो ते मुत्ति उतथा	६-४७	आएसं ण्ण साईए	३६-६	आयरिएहिं वाहिनो	१-२०
अहो ते लोभो बसीकओ	६-४६	आएसं परिकंसए	७-२	आयरियं कुवियं तच्चा	१-४१
अहो ते साहु मइवं	६-४७	आएसए सपीहिए	७-४	आयरियं विदिराणं	६-८
अहोत्था विउलो दाहो	२०-१६	आणए कायवोस्समे	२६-४६	आयरियउवज्जमाएहिं	१७-४
अहो हुल्लो हु ससारो	१६-१४	आणओ तत्थ वाणिओ	७-१४	आयरियउवज्जमायाणं	१७-४
अहो ! भोणे असंयया	२०-६	आणम्मुक्कुडओ अत्तो	१-२२	आयरियपरिच्छाई	१७-१७
अहो य राओ परित्थमाणे	१४-१४	आणासे अहो दाणं च वुट्ठं	१२-३६	आयरियमाइयम्मि य	३०-३३
अहो ! वण्णो अहो ! लब्धं	२०-६	आणसे गंगसोउ व्व	१६-३६	आयरियाणं तं वययं	२७-११
अहोऽनुभाण कम्माणं	२१-६	आणासेणुयइओ	६-६०	आयरियाण वन्दिता	
आ		आणासे तस्स देसे य	३६-६	आयवत्थं निवाएणं	२-३४
आइए निक्खिजेजा वा	२४-१४	आषायय समुत्सयं	४-३२	आयाणं नयं दिस्स	६-७
आइक्ख मे संजय ! जक्खनुइया !	१२-४४	आणयम्मि अहन्नेणं	३६-२३०	आयाणनिकखेवडुण्णयाए	२०-४०
आइयम्मि समुट्ठिए	२६-८	आणया पाणया तथा	३६-२११	आयाणहेउं अभिणिकलमाहि	१३-२०
आइय्णे कन्णए सिया	१७-१६	आणाइस्सरियं च मे	२०-१४	आयामणं येव जवीदाणं च	१४-१३
आइय्णे गणिभाक्खि	२७-१	आणाए रोयंतो	२८-२०	आया मयं पुणफलोव्वेए	१४-१०
आउं कामा य दिब्बिया	७-१२	आणाजिह्उत्तकरे	१-३	आयारं पाउकरिस्तामि	११-१

आयारम्भपणिही	२३-११	आसणं सयणं जाणं	७-८	इ	
आरणम्भि बहन्नेणं	३६-२३२	आसणमणो न पुच्छेज्जा	१-२२	इह इत्तरियम्भि आउए	१०-३
आरणा अण्वया वेव	३६-२११	आसणम्भि अणाउत्ते	१७-१३	इह एएसु ठाणेतु	३१-२१
आरण्णा होह मुणो पसत्ता	१४-६	आसणे उव्विउत्तेज्जा	१-३०	इह एस वम्मे अक्खाए	८-२०
आरम्भा सम्मदा	२६-२६	आसमपए विहारे	३०-१७	इह एसा वियाहिमा	३६-१६७
आरम्भम्भि तहेव य	२४-२५	आराह बहल्लपक्खे	२६-१५	इह कपोमगा सुरा	३६-२११
आरम्भाओ अविरओ	३४-२४	आसाह माते दुपया	२६-१३	इह चउरिन्दिया एए	३६-१४६
आरभेय तहेव य	२४-२१, २३	आसि अम्मे महिन्दिया	१३-७	इह जीवमजीवे य	३६-२४६
आरसतो सुमेरवं	१६-५३, ६८	आसि भिक्खु जिहन्वियो	१२-१	इह जीवा वियाहिमा	३६-२४८
आराहए दुहओ लोगमिणं	१७-२१	आसिमो भायरा दो वि	१३-५	इह दुप्परए इमे जाया	८-१६
आराहए पुणमिण खु खेत्त	१२-१२	आसि राया महिन्दिय	२२-१, ३	इह नेरइया एए	३६-१५७
आरियं भम्मजुत्तरं	२-३७	आसि बिणो महायसो	२५-१	इह पाउकरे कुट्ठे	१८-२४; ३६-२६८
आरियत्तं पुनरावि दुल्लहं	१०-१६	आसि तीसे महायसे	२३-२, ६	इह कासपरिणया एए	३६-२०
आखो सोहए अहियं	२२-१०	आसी तत्थ समागमो	२३-२०	इह बाले पगम्भई	५-७
आलओ योजणाण्णो	१६-११	आसी मिहिलाए पक्खयत्तंमि	६-५	इह वेदन्विया एए	३६-१३०
आलम्भणेण कालेण	२४-४	आसीविओ उगगतओ महेसी	१२-२७	इह भिक्खु न चिन्तए	२-७, १२, २६, ४४, ४५
आलयं तु निसेवाए	१६-१	आसुणियं दिसं बाला	७-७	इह विज्जा तवं चरे	६-४६; १८-११
आलम्बन्ते लब्धन्ते वा	१-२१	आसुणियं भावणं कुणइ	३६-२९६	इह विज्जामणुत्तं चरे	१८-३०
आलुए मूलए वेव	३६-६६	आसे जवेण पवरे	४-८	इह वेमाणिया देवा	३६-२१६
आलोएह नगरस्स	१६-४	आसे जहा सिक्खिय वम्भपारी	३०-३३	इहो वुओ गच्छइ कट्टं पावं	२०-४७
आलोएज अहक्कमं	२६-४०, ४८	आसेवणं जहापामं	३०-३३	इंगाले मुम्मुरे अण्णी	३६-१०६
आलोयणयाए णं नत्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६ सू० ६	आहण्व वण्णाणियं कट्टु	१-११	इंगियाणारसंणो	१-२
आलोयणारिहाइमं	३०-३१	आहण्व सवणं लळुं	३-६	इविकक्कभवागहो	१०-१४
आलोयलोले समुवेइ मण्णुं	३२-२६	आहरितु पणामए ?	१६-७६	इक्खागारायवसभो	१८-३६
आइई बहुमूल्या	७-१७	आहाकम्मेहि गच्छई	३-३	इक्खो तसा तिबिहा	३६-१०७
आवजई इन्दियचोरस्सत्ते	३२-१०४	आहाकम्मेहि गच्छन्तो	५-१३	इक्खो यावरा तिबिहा	३६-६६, १०६
आवजई एकमगेक्खे	३२-१०३	आहारं उवहि देहं	२४-१५	इच्छं निओइउं नत्ते !	२६-६
आवन्ना दीहमिद्वानं	६-१२	आहारोक्खेओ य दोसु वि	३०-१२	इच्छन्तो हियमपणो	१-६
आवरणिज्जाण दुण्हं पि	३३-२०	आहारोक्खत्ताणेणं नत्ते ! जीवे किं.....	२६ सू० ३६	इच्छा उ आगाससमा अणत्तिया	६-४८
आवाए वेय संलोए	२४-१६	आहारविण्णे मियमसणिज्जं	३२-४	इच्छाकामं च लोभं च	३५-३
आवायमसंलोए	२४-१६	आहारिद्वं अमिक्खणं	१७-१५, १६	इच्छाकारो य छट्ठओ	२६-३
आवासाइं असतिणो	५-२६	आहारिद्वं तवं चरे	३६-२५५	इच्छाकारो य सारणे	२६-६
आवी वा जइ वा रहस्से	१-१७	आहारोवहिसेजाए	२४-११	इच्छामि अणुसातिउं	२०-५६
आवं विसज्जत्ताणं	१८-८			इच्छामो नाउं भवओ सगासे	१२-४५
				इच्छियमणोवहे सुरियं	२२-२५

अक्कोसे विद्याद्विधा	३३-२२; ३६-११३,	उत्तमं च वीजई	२०-२१	उरयो सुवर्णपासे व	१४-४७
१३२, १४१, १४१, १४१ से १६६, १७५,		उत्तमं मणहारिणो	२५-१७	उराला य तस्ता नहा	३६-१०७
१७६, १८४, २००, २०१, २२२, २२३		उत्तमदुर्गवैसए	११-३२	उत्तरलणपत्तलवणे	२४-२४
उक्कोसेण सट् भवे	५-३	उत्तमदुर्गवैसओ	२५-६	उत्तरलणे य ऋण्ड य	१७-८
उक्कोसोमाहणाए य	३६-५०, ५३	उत्तमधम्मसुई णु कुल्लाहा	१०-१८	उत्तिओ फालओ गहिओ	१६-६४
उगगो लीणसंसारो	२३-७८	उत्तराई विमोहाई	५-२६	उत्तो मुक्को य दो छुडा	२४-४०
उगगो विमलो माणू	२३-७६	उत्तराओ य आहिया	३३-१६	उत्तड्डो जो परेण षट्हुई	२०-१६
उगं तव चरित्ताए	२२-४८	उत्ताणमक्षत्तपसठिया य	३६-६०	उत्तउत्ते इरियं रिए	२४-८
उग मणवणं बम्मं	१६-२८	उत्तित्ततो दिवाये	११-२४	उत्तउत्ते य भावओ	२४-७
उगमुत्पायणं पठ्ठे	२४-१२	उट्ण सोहि वहिया चिमगहा ?	१२-३८	उत्तएसउत्त नित नायओ	२८-१६
उगा जहा धरिज्जन्ति	३०-२७	उट्ण अब तेस्सविन्दु	२८-२२	उत्तक्खंडमोयण माहणाणं	१२-११
उच्चं अट्ठविहं होइ	३३-१४	उट्णचारित्तवो महेमो	१३-३४	उत्तविट्ठो मुहं मया	१-२०
उच्चं नोय च आहिंसं	३३-१४	उट्ठो दुपहसए	११-२०	उत्तविट्ठो सि सामणे	२०-८
उच्चागो य वण्णवं	३-१८	उट्ठो अक्खआट्ठए	११-३०	उत्तविट्ठो मे आधिया	२०-२२
उच्चागं वामवर्णं	२४-१५	उट्ठो सग्गिनामाणं	३३-१६, २१, २३	उत्तविज्जई जीवियमयमायं	१३-२६
उच्चागरमिहं य	१२-२	उट्ठिणवल्लभाहे	१८-१	उत्तभोयो वीरिए तहा	३३-१५
उच्चारार्द्धि वीरि	२४-१८	उट्ठायो पव्वइआ	१८-४७	उत्तमा अस्स मत्थि उ	३६-६६
उच्चागं समिहं ह्य	२४-२	उट्ठेयिं कियगट्ठ निपाग	२०-४७	उत्तमिआउत्तरिमा चैव	३६-२१४
उच्चावगाहं मुणियो चरन्ति	१०-१५	उट्ठेसु दत्ताडण ।	३१-१७	उत्तरिमाग्गिआ तहा	३६-२१४
उच्चावगाहि मेउआहि	२-२२	उट्ठुकाणेण समुल्लाल	३२-६	उत्तरिमाहेट्ठिमा चैव	३६-२१४
उच्चोयए महु कक्के य बम्मे	१३-१३	उट्ठरित्ता समुल्लय	२३-४६	उत्तरेओ होइ भोमेम्	२४-३६
उज्जहिता पलायए	२७-७	उट्ठाइया तव वहु कुमारा	१२-१६	उत्तरे सिला य लोण्णे	३६-७३
उज्जाणं तत्तणोवमं	२०-३	उत्तज्जई भोत्तं तहेव पाउ	१७-२	उत्तवज्जन्ति आमुने काग	८-१४
उज्जाणमि मणोरमे	२४-३	उत्तज्जो रक्खणसन्निओगे	३२-२८, ४१, ४४,	उत्तवलो पउमग्गमाओ	१३-१
उज्जाणं संपत्तो	२२-२३		६७, ८०, ६३	उत्तवलो माणुत्तमि लोणमि	६-१
उट्ठिता अन्नमासणं	२-२१	‘उत्तालमुट्ठुआई’ य	३४-२६	उत्तवहु पिरोकरणे	२८-३१
उट्ठं अहे य तिरियं च	३६-५०	उत्तओ अस्सिया भवे	२८-६	उत्तवग्गामिआए	२-२२
उट्ठं कप्पेसु चिट्ठन्ति	३-१५	उत्तओ केसिगोयमा	२३-१४	उत्तवग्गामोहिणो	६-१
उट्ठं पिरं अमुरियं	२६-२४	उत्तओ मन्तिपोसेणं	११-१७	उत्तवग्गो विरोहए म भिवक्	१५-१५
उट्ठं पक्कमई दिस्	३-१३; १६-८२	उत्तओ नित्तणा सोहन्ति	२३-१८	उत्तवग्गो जिह्मिआ	३४-३०-२२
उट्ठपाओ अहोसिरो	१६-४६	उत्तओ वि तत्थ विहरिसु	२३-१६	उत्तवग्गो मुणो वरे	१२-५
उट्ठं बट्ठो अक्खओ	१६-५१	उत्तओ सीससणाणं	२३-१०	उत्तवहसन्ति आगारिया	१२-४
उट्ठमुहे निगयजीह्वने	१२-२६	उत्तयस्सन्तरेण वा	१-२५	उत्तविपक्कवाणेण भन्ते । जीवे कि जणयद ?	२६५० ३५
उट्ठार्हत्ततो संपत्तो	१६-६०	उत्तयत्तो अब मत्ति चरे ?	१८-५१	उत्तवग्गो पडिमासु	३१-११
उट्ठार्हत्ततो मेहावी	२-६	उत्तं मे परिचिचई	२०-२८	उत्तवक्क भोवा पुत्तिस्स वग्गिण	१३-३१

उवेह ठाणं बिजलुत्तं बुभं	२०-५२	एसि संबरे वेब	३३-२५	एगन्तरत्ते रुहरसि फासे	३२-७८
उवेह कुम्भोहपरंपराओ	३२-३३, ५६, ५६, ७२, ८५, ८८	एएहिं चउहिं ठाणेहिं	१८-२३	एगन्तरत्ते रुहरसि भावे	३२-६१
उवेहिं माणुसं जोणि	३-१६, ७-२०	एएहिं ओमबरओ	३०-२४	एगन्तरत्ते रुहरसि रुवे	३२-२६
उवेहमाणो उ परिमएजा	२१-१५	एएहिं कारणेहिं	३६-२६६	एगन्तरत्ते रुहरसि सदे	३२-३६
उवेहे न हणे पाणे	२-११	एओवमा कामगुणा विभागे	३२-२०	एगन्तरत्ते रुहरे रसमि	३२-६५
उसिणपरियावेणं	२-८	एककारस अंगाई	२८-२३	एगन्तरमायां	३६-२५३
उस्सिचणाए तवणाए	३०-५	एककेवका गेगहा अवे	३६-१८१	एगन्तसोक्खं समुवेह सोक्खं	३२-२
उमुयारि ति मे सुयं	१४-४८	एकको वि पाबाड विवज्जयन्तो	३२-५	एगन्ते संजयं तयं	२२-३५
उस्सपिणीग जे समय	३४-३३	एकको सयं पञ्चगुहोइ दुक्खं	१३-२३	एगप्पा अजिए सत्तू	२३-३८
उस्सुल्लसयणीओ	६-१८	एकको तु धम्मो नरवेव ! ताणं	१४-४०	एगमुओ अरणो वा	१६-७७
उत्तेहो जस्स ओ होइ	३६-६४	एग एव चरे काठे	२-१८	एगयाज्वेलए होइ	२-१३
ऊ		एगओ य एवत्तणं	३१-२	एगया आमुं कायं	३-४
ऊणाइ धासनेसन्तो	३०-२१	एगओ विरड कुञ्जा	३१-२	एगया ल्खिओ होइ	३-४
ऊगे बासमाउए	७-१३	एगओ संवत्तित्ताणं	१४-२६	एगया देबलोएमु	३-३
ऊस सिवरोमकुओ	२०-५६	एयं च अणुताममी	२७-१०	एगरायं न हावए	५-२३
ए		एयं च पल्लिओवम	३६-२२२	एगबिहमाणात्ता	३६-७७, ८६, १००, ११०, ११६
एए अहम्मे ति दुग्गुमाणो	४-१३	एयं जिणेज्ज अपाणं	६-३४	एगबीसाए सवलेमु	३१-१५
एए कन्दन्ति ओ! लया	६-१०	एयं डसइ पुच्छमि	२७-४	एगामोसा अणेगल्लवुणा	२६-२७
एए लरपुडबीए	३६-७७	एयं तु सागरोवमं	३६-१६१	एगा य पुव्वकोडीओ	३६-१७५
एए वेब उ पावे	२८-१६	एयं विव्वद्वमिसल्लणं	२७-४	एगणपणज्जोरत्ता	३६-१४१
एएण कारणेणं	३६-२६२	एयं समयं जहन्मियं	३६-१४	एगेत्थ रसगारवे	२७-६
एएण दुक्खोहरंपरेणे	३२-३४, ४७, ६०, ७३, ८६, ८६	एयं समयं जहन्मिया	३६-१३	एगे ओमाणबीषए थडे	२७-१०
एए तिन्नि विसोहा	२४-११	एगकज्जपन्नानं	२३-१३, २४, ३०	एगे कूहाय गच्छई	५-५
एए नरिस्सवभा	१८-४६	एगलुआ दुखरा चव	३६-१८०	एगे जिए जिया पंच	२३-३६
एए परीसहा सव्वे	२-४६	एगममणमनिक्खेसयाए णं ग्रन्ते !	२६५०२६	एगेण अवेगाई	२८-२२
एए पाउकरे बुढे	२५-३२	एगच्छत्तं पसा हित्ता	१८-४२	एगे तिणो दुल्लरं	५-१
एए भट्ट उ पाणिओ	२२-१७	एगत्तं च पुहत्तं च	२८-१३	एगे मुचिरकोहणे	२७-६
एए य सगे समडक्कमिता	३२-१८	एगतेण पुहत्तेण	३६-११	एगेत्थ ल्हई लाहं	७-१४
एए विसेसमादाय	१८-५१	एगतेण साईया	३६-६५	एगो उपपहपट्ठिओ	२७-४
एए सव्वे सुहेसिणो	२२-१६	एगदम्बस्सिया गणा	२८-६	एगो एगिरिया सद्धिं	१-२६
एएसि तु विवचभासे	३०-४	एगन्तमाणाए	३०-२८	एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा	१-३३
एएसि वण्णओ वेब	३६-८३, ६१, १०५, ११६, १२५, १३५, १४५, १५४, १६६, १७८, १८७, १८८, २०३, २४७	एगन्तमणपम्पओ	६-१६	एगो पडइ पासेणं	२७-५
		एगन्तसहिट्ठिओ भयवं	६-४	एगो अजइ सल्लिं	२७-४
		एगन्तरत्ते रुहरसि गन्वे	३२-५२	एगो मूलं पि हास्तिता	७-१५

एतो मूलैः आगबो	७-१४	एयमगमगुण्यता	२८-३	एय गुणसमावृत्ता	२५-३३
एतोऽन्तगुणं तर्हि	१६-४८	एय मे संसर्गं सञ्चं	२५-१५	एयं चिन्तित्ताणं	२०-३३
एतो अन्तगुणिया	१६-७३	एयं शिषाणं कुसलेहि धिटं	१२-४७	एयं चरमाणो लङ्	३०-२०, २३
एतोऽन्तगुणे तर्हि	१६-४७	एयचोगममावृत्तो	३४-२२, २४, २६, २८,	एयं त्रियं सपेहाए	७-१६
एतो कालविभागं तु	३६-१५८, १७३, १८२		३०, ३२	एयं तत्प्राहियासए	२-२३
एतो पन्हाए पररणं	३४-१४	एयमटं निःसामिता	६-८, ११, १३, १७, १८,	एयं तत्प्रा विन्तिताए	२६-५०
एतो य तबो गुत्तीबो	२४-१६	२३, २५, २७, २८, ३१, ३३, ३७, ३८, ४१, ४३,		एयं तब तु दुविहं	३०-३७
एतो वि अणन्तगुणो	३४-१०, ११, १२, १३,	४५, ४७, ५०, ५२ ।		एयं ताय ! विद्याह	१४-२३
	१५, १६, १७, १८, १९	एयमटं सपेहाए	६-४	एयं तु नवविगयं	३३-६
एतो सकाममरणं	५-१७	एयमटं सुगोमि ता	२०-८	एयं तु संय्यस्तावि	३०-६
एमेब असायस्त वि	३३-७	एयादं अट्टं ठाणादं	२४-१०	एयं तु संसए छिन्ने	२३-८६; २५-३४
एमेब असुहस वि	३३-१३	एयादं तीसे बयणाह सोच्चा	१२-२४	एयं ते इन्द्रिमन्तस्	२०-१०
एमेबज्झाण्डकुसिल्लके	२०-५०	एयाए मद्धाए दलाह मज्जं	१२-१२	एयं ते कमसो बुद्धा	४४-५१
एमेब इत्थो निलयस्स मज्जे	३२-१३	एयाबो अट्टं समिहो	२४-३	एयं ते रामकेसा	२२-२७
एमेब गम्भमि गबो पबोसं	३२-५६	एयाबो निम्पि पयडोबो	३३-६	एयं गुणित्ताण स रायसीहो	२०-५८
एमेए बाया पवहन्ति भोए	१४-३४	एयाबो दुग्गहो	३६-२५६	एयं दम्भेण क म्भे	३०-१५
एमेब बाया ! सरीरसि सत्ता	१४-१८	एयाबो पंच समिहो	२४-१६, २६	एयं दुपंचसजुत्ता	२६-७
एमेब मज्झन्ति य	२८-१८	एयाबो मूलपयडोबो	३३-१६	एयं दुस्सीलपडिणीए	१-४
एमेब कासमि गबो पबोसं	३२-८५	एयाणि वि न तायन्ति	५-२१	एयं धम्मं अकाऊणं	१६-१६
एमेब भावमि गबो पबोसं	३२-६८	एया पववणमाया	२४-२७	एयं धम्मं चरित्तामि	१६-७७
एमेब मोहाययणं तु तहं	३२-६	एया रिसीए इट्टोए	२२-१३	एयं धम्मं पि काऊणं	१६-२१
एमेब रसमि गबो पबोसं	३२-७२	एयारिसि पंचकुसोलसंबुद्धे	३४-२०	एयं धम्मं विडक्कम्म	५-१५
एमेब रुद्धमि गबो पबोसं	३२-३३	एयाहि तिहि वि औबो	३४-५६	एयं धम्मं विद्याह	७-१५
एमेब सट्ठमि गबो पबोसं	३२-४६	एरिसि सम्पयगम्मि	२०-१५	एयं नच्चा न सेवन्ति	२-३५
एयं अकाममरणं	५-१७	एयं अणित्सरो तं पि	२२-५५	एयं नाणेण चरणेण	१६-६४
एयं चयरितकरं	२८-३३	एयं अवत्ताणि समाययन्तो	३२-३१, ४४, ५७,	एयं नीयं पि आहियं	३३-१४
एयं औबस्त लक्खणं	२८-११		७०, ८३, ८६	एयं पया पेक्क इहं च लोए	४-३
एयं इज्झद मन्दिरं	६-१२	एयं अभिखुणन्तो	६-५६	एयं पि बिहुरो मे	२-४३
एयं तव तु दुविहं	३०-३७	एयं अलितो कामेहि	२५-२६	एयं पुत्ता ! अहामुहं	१६-८४
एयं दम्भेण फलेण हन्ता	१२-१८	एयं आयरिएहि अक्खायं	८-१३	एयं पेहेज्जं सजए	२-२७
एयं चम्माहियं नच्चा	२-१३	एयं करन्ति संबुद्धा	१६-६६	एयं बाले अहम्मिट्ठे	७-४
एयं पंचविहं नाणं	२८-५	एयं करन्ति संबुद्धा	६-६२, २२-४६	एयं भवसंसारं	१०-१५
एयं पत्तं महाराय !	१४-४८	एयं कालेण क म्भे	३०-२१	एयं भुत्ताण भोगाणं	१६-१७
एयं परिन्नाय चरन्ति दन्ता	१२-४१	एयं तु तस्स सामण्यं	२-३३	एयं मणुषाण जीवियं	१०-१, २
एयं पुण्यपयं सोच्चा	१८-३४	एयं सेतेण क म्भे	३०-१८	एयं आणुस्सगा कामा	७-१२, २३

एवं मृगो गोययि पविट्टे	१६-८३	एसणासमिबो लज्ज	६-१६	ओहिमाणं सद्यं	३३-४
एवं मे अण्डिवेयणा	७०-२०	एस बम्मे वुवे निब्वए	१६-१७	ओहिमाणमुए बुद्धे	२३-३
एवं लगानि दुम्मेहा	२५-४१	एस मग्गो ति पन्नतो	२८-२	ओहीमाणं तदयं	२८-४
एवं लोए पलितम्मि	१६-२३	एस मग्गे हि उत्तमे	२३-६३	ओहेण तिई उ वणिया होह	३४-४०
एवं वयं कामगुणसु विद्धा	१३-३०	एस लोए विद्याहिए	३६-२	ओहोवहवग्गहियं	२४-१३
एवं विग्गयजुत्तम्म	१-२३	एस लोमो ति पन्नतो	२८-७	क	
एवं विद्याणाहि जणे एमने	४-१	एस से परमो जओ	६-३४	कओ विज्जाणुसासणं ?	६-१०
एवं बिचारे अमियय्यारे	३७-१०४	एसा अजीवविमत्ती	३६-४७	कळे गुणे जाव सरोरमेओ	४-१३
एवं बिहे कामगुणसु सत्तो	३२-१०३	एसा लल्लु लेवाणं	३४-४०	कवि नाभिसमेमज्ज	२०-६
एवं वृत्तो नरिन्दो सो	२०-१३	एसा तिरियतराणं	३४-४७	कसं बूस च बाहणं	६-४६
एवं समुट्ठिओ भिक्खू	१६-८२	एसा दसमा सङ्गणं	२६-४	कन्मल्लो मउया चंव	३६-१६
एवं ससकण्विकण्वणासु	३२-१०७	एसा नेरदयाणं	३४-४४	कट्टु संवच्छरे वुवे	३६-२५३
एवं सिमल्लसामान्ने	५-७४	एसा मज्ज अण्णाया	२०-२३, २४, २५, २६,	कट्टु संवच्छरे मणो	३६-२५५
एवं सीलं चहत्ताणं	१-५		२७, ३०	कडं कडं ति भासेज्जा	१-११
एवं से विजयपोसे	२५-४२	एसा सामायारी	२६-५२	कड लद्धण भव्वए	६-१४
एव से उदाहु अणुत्तराणी	६-१७	एवे व वम्मे विसओववन्तो	७०-४४	कडाण कम्माण न भोक्कव अतिय ४-३, १३-१०	
एवं सो अम्मापियरो	१६-८६	एसा अविमत्तो तवो	३०-३०	कह्ठो कड्ठाहि दुवकरं	१६-५२
एवं हवइ वहुम्मसुए	११-१६ से ३०	एसो बाहिरगतवो	३०-२६	कणकुण्डां चट्ठाणं	१-५
एवमहीणवं भिक्खु	७-२७	एसोवमा सासयवाइयाणं	४-६	कण्डम्मि वेत्तण ललेउज्ज जो ण ?	१२-१८
एवमवगतरो तवो	२८-३४, ३०-७	एसो हु सो उगतवो महप्पा	१२-२२	कण्ण बिहिंसा अजया गहिंनि	४-१
एवमस्तासि अप्पाणं	२-४१	एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खू !	१२-४३	कण्णे य वज्जकन्दे य	३६-६८
एवमावाय मेहाओ	२-१७	एहि ता भुजिमो भोए	२२-३८	कत्तारमवं अणुजाव कम्मं	१३-२३
एवमावडुजोणीसु	३-५	ओ		कत्तो सुहं होज्ज कयाड किंवि ?	३२-३२,
एवमेए दुहा पुणो	३६-७०, ८४, ६२,	ओइणो उत्तमाओ सोपाओ	२२-२३	४५, ५८, ७१, ८४, ६७	
	१०८, ११७	ओइणो पावकम्मणा	१६-५५	कत्थ गत्तुण सिज्जमई ?	३६-५५
एवमेयं अहाकुड	१६-४४, ७६	ओइणो सि वह् महाक्क	१०-३२	कत्तारं अडवमई	२७-२
एवमेयाड कम्माह	३३-३	ओभासई सूरिअ वल्लिकले	२१-२३	कन्दन्तो कण्डुकुम्भोसु	१६-४६
एवमेव अणेणओ	१६-८	ओमवेलए पमुगिसायभूए	१२-७	कन्दणं भावव कुण्ड	३६-२६३
एवमेव वयं मूढा	१४-४३	ओमवेलणा पमुगिसायभूया	१२-७	कन्दपकोकुकुट्टयाड तह	३६-२५६
एवमेव विद्याहिए	३६-६	ओमासणाणं दमिइन्दियाणं	३२-१२	कन्दप्पमाभिओमं	३६-२५६
एवाविहिइ अवज्जायं	८-८	ओमावयियं एवहा	३०-१४	कन्दलो य कुट्टवए	३६-६७
एविन्दियमो वि पवामभोइणो	३२-११	ओयणं जवसं देज्जा	७-१	कन्दे सूरणए तहा	३६-६८
एविन्दियत्तया व मणस्त अत्तया	३२-१००	ओराला तत्ता जे उ	३६-१२६	कण्ड उ एवमाई	३०-१८
एवुगान्दो वि महातवोषेण	२०-५३	ओउज्जमणा परिरिक्कयस्ता	१४-२०	कणं न दण्डिज्ज सहायसिक्खू	३२-१०४
एव अग्गो य वाऊ य	६-१२	ओहिजलिया जलकारी य	३६-१४८	कण्णिया उ जे देवा	३६-११२

कपाईया तहेव य	३६-२०६	कयरेण होमेण णुणासि जोहं ?	१२-४३	कहं पडियरसी नुडे ?	१८-२१
कपासङ्गिठिमा य	३६-१३८	कयरे ते खलु बावीसं परीसहा...	२६-०२	कहं पारं गमिस्सि ?	२३-७०
कप्पिमो कालिओ छिन्नो	१६-६२	कयरे तुमं इय अदसणिज्जे	१२-७	कहं विज्जाविद्या तुमे ?	२३-५०
कप्पो मज्झिमपाणं तु	२३-२७	कयविककओ महादोसो	३५-१५	कहं विणोए ति वुच्चसि ?	१८-२१
कप्पोवया बारसहा	३६-११०	कयविककयम्मि वट्टत्तो	३५-१४	कहं विप्पयओ न ते ?	२३-२४, ३०
कप्पोवया य बोद्धव्या	३६-२०६	करकण्डू कल्लिमु	१८-४५	कहं सुवट्ठं कुसला वयन्ति ?	१२-४०
कमेण अचचन्तसुही भवन्ति	३२-१११	करणसच्चेणं भन्ते ! जीवे किं .	२६-०५२	कहणु चिच्चमेलिकत्वं	७-२२
कमेण सोसणा भवे	३०-५	करवत्तकरकयाईहि	१६-५१	कहिं पडिहया सिद्धा ?	३६-५५
कप्पित्तल्लमि य नयरे	१३-३	करेज सिद्धाणं संयवं	२६-५१	कहिं बोदिं वड्ढत्ताणं ?	३६-५५
कप्पित्तल्लुज्जाणकसरे	१८-३	करेणुसमावहिए व नागे	३२-८६	कहिं मन्नेरिजं कळं	१६-६
कप्पित्तले नयरे राया	१८-१	करेत्ति भिडडि मुहे	२७-१३	कहिंति ष्हाओ व रयं जहासि ?	१२-४५
कप्पित्तले संभूओ	१३-२	कल अम्मइ सोलमि	६-४४	कहिं सिद्धा पडिठिया ?	३६-५५
कम्मं व जाईमरणस्स मूलं	३२-७	कलम्बवापुथाए य	१६-१०	कहेत्ति ते एक्कमेवकस्स	१३-३
कम्मं व मोहप्पभवं वयन्ति	३२-७	कलहडमरवज्जए	११-१३	का	
कम्म तु कसायजं	३३-११	कल्लाणं अटुव पावगं	२-२३	काउलेसं तु पारिणमे	३४-२६
कम्मं सोकसायजं	३३-११	कल्लाणमणसात्तो	१-३८	काउलेसा उ वण्णओ	३४-६
कम्म एहा सज्जमजोगसन्ती	१२-४४	कल्लिणें व विमुट्ठपन्नेणं	८-२०	काउत्तमगं तओ कुजा	२६-३८, ४१, ४६, ४६
कम्मपवीओ अवसो पयाइ	१३-२४	कम्म व टट्ठमाहुणो	११-२	काउत्तमगं तु पारित्ता	२६-१०
कम्मसंगिहि सम्मूहा	३-६	कसायपक्कवक्काणें भन्ते ! जीवे...	२६-०३७	काउत्तमेणं भन्ते ! जीवे	
कम्मप्पा हु पाणिणो	७-२०	‘कसायमोहणिज्जं’ तु	३३-१०	कि जणयइ ?	२६-०१३
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले	४-४	कसाया अविणो वुत्ता	२३-५३	काऊए ठिई जहन्निया होइ	३४-४१
कम्माणं तु पहाणाए	३५	कसाया इन्दियारिणं य	२३-३८	काऊण य पयाहिणं	२०-७, ५६
कम्माणि दलवन्ति हु	२५-२८	कसिणं पि जो इमं लोयं	८-१६	काएण कामेज परीसहाइ	२१-२२
कम्माणुपेहि अण्यो	५-११	कस्स अट्ठा “इमे पाणा”	२२-१६	काए व आसा इहमागओ सि	१२-७
कम्माणायकला कडा	२-४०	कस्सट्ठाए व माहणे ?	१८-२१	काणणुजायसोहिए	१६-१
कम्मा नाणाविहा कट्टु	३-२	कस्स हेवं पुराकाउं	७-२४	का ते मुया ? कि व ते कारिसंगं	१२-४३
कम्मा निपाणयगहा	१३-८	कहं अणाहो भवइ ?	२०-१५	कामं तु देवीहि विमुत्तिवाहिं	३२-१६
कम्मा मए पुरा कडा	१३-६	कहं चरे ? भिक्खु ! वयं जयामो ?	१२-४०	कायमिडे जहा बाले	५-४
कम्मुणा उववायए	१-४३	कहं तं विहरसी ! मुणी !	२३-४०	कायमोगरखल्लुणा	१६-२८
कम्मुणा तेण संजुत्तो	१८-१७	कहं तेण न हीरसि ?	२३-५५	कायमोगापुराएणं	५-७
कम्मुणा बम्भओ होइ	२५-३१	कहं ते जिज्जाया तुमे ?	२३-३५	कायमोगा य दुजया	१६-१३
कम्मुणा होइ कत्तिओ	२५-३१	कहं वीरे अहेऊहि	१८-५३	कायमोगे परिचज्ज	१८-४८
कयकोयसंगलो	२२-६	कहं वीरो अहेऊहि	१८-५१	कायमोगे य मुच्चए	१४-४६
कयरे आगण्डइ दित्तक्ये	१२-६	कहं नाहो न भिज्जइ ?	२०-१०	कायमोगेसु मिच्छेणं	१३-२८
कयरे खलु ते वेरेहि भगवन्तेहि	१६-०२	कहं नाहो गमिस्ससि ?	२०-१२	कायमोगेसु मुच्छिओ	१३-२६

कामभोगेयु मुच्छिया	१४-४३	कालं तु पडिलेहए	२६-४४	किं नु बितो भि से तहा ?	१३-६
कामसमविषदडणि	१६-२	कालं तु पडिलेहिमा	२६-४४	किं पुण बिटलसि सीरमागबो	१०-३४
कामरागविषदडणे	३४-५	कालं संसाईयं	१०-४,६,७,८	किं अजम दुट्ठसीसेहिं	२७-१५
कामरुक्मि वल्लभो	३-१५	कालं संकिज्जसन्नियं	१०-१०,११,१२	किं माहणा ! जोइसमारभन्ता	१२-३८
कामरुक्मि अस्ससि	६-५	कालं संपडिलेहए	२६-४२	किं रज्जिम पसज्जसि ?	१८-१२
कामा आसीविसोवमा	६-५३	कालकंखी परिब्बए	६-१४	किं हिसाए पसज्जसि ?	१८-११
कामाणुगिद्विम्भसवं लु दुल्लं	३२-१६	कालधम्मो सम्पट्ठिए	३५-२०	किच्चाई कुब्बई सया	१-४४
कामे पत्थमाणा	६-५३	कालपडिलेहणयाए णं		किण्तो कइवो होइ	३५-१४
कामे संसारवड्डणे	१४-४७	अन्ते ! जीवे कि...	२६४०१६	किण्णु भो ! अज मिहिलाए	६-७
कायं पवतमाणं तु	२४-२५	कारुण्यमत्तुदुर्गत्तं	१०-६	किण्णुलं तु परिणमे	३४-२२
कायकिल्लं तमाहियं	३०-२७	कारुण्यमत्तमुक्कोसं	३६-१६	किण्णुलं अ बण्णो	३४-४
कायकिल्लो संलीणया य	३०-८	कालम्मि तम्मिं सहरा भवंति	१३-२२	किण्णुए ठिई जहन्निया होई	३४-४८
कायगतयाए णं अन्ते ! जीवे कि...	२६४०५६	कालिया जे अणागया	५-६	किण्णुए नीला काज	३४-५६
कायगुत्ती य अट्ठमा	२४-२	कालीपव्वंगसंकासे	२-३	किण्णुए नीला य काज य	३४-३
कायगुत्तो जिहन्निबो	१२-३	काले कालं समायरे	१-३१	किण्णुए नीला य सहिरा य	३६-७२
कायबिट्ठं पई अवे	३०-१२	कालेण कालं बिहरेज रट्ठे	२१-१४	किण्णुए नीला य लोहिया	३६-२६
कायट्ठिई आऊणं	३६-८६	कालेण निपत्थमं भिस्सुं	१-३१	किञ्चित्तिं भावणं कुणई	३६-२६५
कायट्ठिई अलयरानं	३६-१७६	कालेण य अहिजित्ता	१-१०	किञ्चित्तिं मोहमापुरत्तं च	३६-२६६
कायट्ठिई तेऊणं	३६-११४	कालेण य पडिक्कमे	१-३१	किमज्ज जन्नाण लहिय लहं ?	१२-१७
कायट्ठिई थलयरानं	३६-१८६	काले य दिवसे वृत्ते	२४-५	किमिणो सोमगला वेव	३६-१२८
कायट्ठिई मणुयाणं	३६-२०२	काले बिगराले फोक्कनासे	१२-६	किमेयरायं करिस्सह	२-२३
कायट्ठिई बाऊणं	३६-१२३	कालो पुणलजत्तवो	२८-७,८	किरियं अकिरियं विणयं	१८-३३
कायट्ठिई लहयरानं	३६-१६३	कालोमाणं मुणेरवो	३०-२०	किरियं च रोयए धीरे	१८-२३
कायट्ठिई पणमाणं	३६-१०३	कालोवणीए सरीस्स मेए	४-६	किरियासंखेवधम्मरुई	२८-६६
कायट्ठिई पुडवीणं	३६-८१	का बा अमोहा वृत्ता ?	१४-२२	किरियासु भूयगामेसु	३१-१२
कायव्वं अगिलायवो	२६-१०	का बोया जा इमा बित्तो	१६-३३	किल्लिन्नाए मेहावी	२-३६
कायसमाहारणयाए णं अन्ते! जीवे...	२६४०५६	कासवेणं पवेइया	२-१	किसे धमणिस्तए	२-३
कायहा वयसा मत्ते	५-१०	कासवेणं पवेइया	२-५६		
कायस फासं गहणं वयसि	३२-७४,७५	कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि	१३-१		
कायस विउत्तसग्गो	३०-३६	कि कायव्वं मए इहं ?	२६-६	की	
कारणंमि समुट्ठिए	२६-३१	कि तव पडिक्कजामि	२६-५०	कीए सड् इत्थिहिं	१६-३
कासण्णीदो हिमिसे वड्डसे	३२-१०३	कि ते जुज्जंण वज्जमो	६-३५	कील्लत्तं नरा रायं !	१८-१६
काळो जाव दीएज्जा	२४-७	कि नाम काहामि सुएण अन्ते!	१७-२	कीवणं समणत्तणं	१६-४०
काळो जाववो तहा	२४-८,३६-३	कि नाम होज त कम्मयं	८-१	कीसं नावपेक्कसि ?	६-२२
काळ अणत्तमुक्कोसं	३६-८६३	किनामे ? किणोसे ?	१८-२१	कुडयं रुद्धं गीयं	१६-५,१२
				कुंजर सट्ठिहायणे	११-१८

कुम्हरे सिंगिरीबी य	३६-१४७	के ते जोई ? के ब ते जोइठाणे ?	१२-४३	कोहूँ ब माणं च तहेन मायं	३२-१०२
कुबकणगपसाहिए	२२-३०	के ते हरए ? के य ते सप्तसित्ते ?	१२-४५	कोहूँविजएणं भन्ते ! जीवे	
कुजा दुक्खविमोक्कणं	२६-२१	केरिसो बा इमो घम्मो ?	२३-११	कि जणयइ ?	२६४०६८
कुट्टिओ फाल्लो छिल्लो	१६-६६	केवलं बाहि बुज्झिम्मा	३-१६	कोहो बा जइ बा हासा	२५-२३
कुट्टम्भसारं विटलुत्तमं तं	१४-३७	केलं सपडिबज्जइ	५-७	कोहो माणे य मायाए	२४-६
कुणइ पमाण पमायं	२६-२७	केसलोओ य दाळ्ळो	१६-३३	कोहो य माणो य बहो य जेसि	१२-१४
कुत्तिपिनिमिषण जणे	१०-१८	केसा पण्डुरया हवन्ति ते	१०-२१से२६	ख	
कुट्ठे कुमारे परिनिम्बेध	१२-२०	केसिमेवं बुबुवं तु	२३-४२, ४७, ५२, ६२, ६७, ७२, ७७, ८२	खजणंजणनयणनिभा	३४-४
कुट्ठे गच्छइ पडिपहं	२७-६	केसिमेवं बुबाणं तु	२३-३१	खत्ति सेविज्ज पडिअए	१-६
कुट्ठे तेएण अणगारे	१८-१०	केसीकुमारसमणे	२३-२, ६, १६, १८	खज्जुरमुट्टियसो	३४-१५
कुण्डुपिबीलिउड्डंसा	३६-१३७	केसांगोयमखो निज्जं	२३-८८	खड्डया भं खवेडा मे	१-३८
कुण्डु-नाम नराहिबो	१८-३६	केसी गायममब्बवी	२३-२१, २२, ३७, ४२, ४७, ५२, ५७, ६२, ९७, ७२, ७७, ८२	खणं पि म रमासज्जं	१६-१४
कुणययणपासण्ठो	२३-६३	केसी धोरपरक्कमे	२३-८६	खणमेत्तसोक्खा बहुकालुक्कला	१४-१३
कुण्णहा बहो लोए	२३-६०	को		खण्डां सोल्लाणि य	१६-६६
कुमारया ते वसमिक्ख बक्कं	१४-११	कोइ पोसेज एल्लं	७-१	खत्तिए परिभासइ	१८-२०
कुमारेहिं छयं पिब	१६-६७	कोइल्लच्छइसन्निभा	३४-६	खत्तिनयणउण्णायपुत्ता	१५-६
कुमुयं सारइयं च पाणिंयं	१०-२८	को करिस्सइ उज्जोयं	२३-७५	खत्तिउणपागारं	६-२०
कुररी विबा भोगरसागुणिडा	२०-५०	को वाणइ परे लोए	५-६	खत्तिस्सोहिक्करं पयं	२१-१३
कुत्तेसु दग्गेसु य ते पसुया	१४-२	कोट्ठुयं नाम उज्जाणं	२३-८	खत्तिस्सोहिक्करं पयं	१-२६
कुसं च जूषं सणकट्ठमणि	१२-३६	कोट्ठागारे सुरक्खिए	११-२६	खत्तीए णं भन्ते ! जीवे कि	
कुसमभेत्ता इमे काभा	७-२४	कोटीए वि न निट्ठियं	८-१७	जणयइ ?	२६-४७
कुसणे जहू ओसिन्नुए	१०-२	कोटीसहियमायामं	३६-२५४	खत्तीए मुत्तीए	२२-२६
कुसणेण मुं भुंजए	६-४४	कों ताहे तिगिच्छई ?	१६-७८	खत्तो दग्गो निरारम्भो	२०-३२, ३४
केसमीरेण न तावसो	२५-२६	को वास ते अणुमन्तेज्ज एयं	१४-१२	खत्त्वा य खन्देसा य	३६-१०
कुसील्लिणं इह धारइत्ता	१०-४३	लोलाहल्लमायुयं	६-५	खत्त्वा य परमाणुणो	३६-११
कुहाधरकुमारहिं	१६-६६	लोलाहल्लसंकुला	६-७	खमावणयाए णं भन्ते जीवे कि...	२६४०१८
कुहमा य तहेन य	३६-५५	को बा से ओसहं देई ?	१६-७६	खरा छत्तोसईविहा	३६-७२
कुहेहमिजासबदारजीबी	२०-४५	को बा से पुच्छई सुहं ?	१६-७६	खलुंका जारिसा ओजा	२७-८
कू		कोसं बड्ढावइत्ताणं	६-४६	खलुंके ओ उ जोएइ	२७-३
कूवत्तो कोलमुणएहिं	१६-५४	कोट्ठवी नाम नयरी	२०-१८	खलुंकेहिं समागमो	२७-१५
के		को से भत्तं च "पाणं च"	१६-७६	खणे य जए बुहे	३३-२५
के एत्थ खत्ता उवजोइया बा	१२-१८	कोलो खवरिओ भवे	३६-६२	खविता पुब्बकम्माइं	२५-४३
केईं बुया एगमिमाणवासी	१४-१	कोहं जल्लम्भं कुम्भेज्जा	६-१४	खविता पुब्बकम्माइं	२५-४३
केण जम्भाह्वो लोणो ?	१४-२२			खविता पुब्बकम्माइं	२५-४३
केण वा परिचारिओ ?	१४-२२			खविता पुब्बकम्माइं	२५-४३

खवेइ नाणावरणं खणेणं	३२-१०८	खेमं सिक्खमाणाहं	२३-८०	गन्धओ रसओ चेव	३६-३४ से ४६
खवेता पुष्पकम्माइ	२८-३६	खेमेण आगए जम्पं	२१-५	गन्धओ रसकासओ	३६-८३, ६१, १०५, ११६
खहरया य बोद्धव्या	३६-१७१	खेलं सिंघाणजल्लयं	२४-१५	१२५, १३५, १४४, १५४, १६६, १७८, १८७,	
खा		खेल्लान्ति जहा व दासिहिं	१-१८		१६४, २०३, २४७
खाइता पाणियं पाउं	१६-८१	खेवियं पासबद्धेणं	१६-५२	गन्धमल्लविलेखणं	२०-२६
खाइमसाइमं परेसि लद्धं	१५-१२			गन्धवासाण पिस्समाणाणं	३४-१७
खाए समिद्धे मुरलोगरम्मे	१४-१			गन्धस्स घाणं गहणं भयन्ति	३२-५६
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा	१४-१३	ग		गन्धाणुणासाणुणए य जीवे	३२-५३
खामेमि ते महाभाग !	२०-५६	गइलक्खणो उ धम्मो	२८-६	गन्धाणुरसस्स तरस्स एव	३२-५८
खावाओ भि समसाइ	१६-६६	गई तथ्य न विज्जई	२३-६६	गन्धाणावाएण परिगमाहेण	३२-५४
		गइय्यहणं च तिलोयविस्सुयं	१६-६७	गन्धारेणु य नगई	१८-४५
खि		गई सरणमुत्तमं	२३-६८	गन्धे अणितस्स परिगहे य	३२-५६
खियं न सक्केइ विवेगमेउ	४-१०	गंठिमेण य तक्करे	६-२८	गन्धे अतिते य परिगहे य	३२-५५
खियं निक्खमसू दिया	२५-३८	गंठवच्छानुज्जेगणित्तानु	८-१८	गन्धे अतितो दुहिओ अणित्तो	३२-५७
खियं मयविबट्ठणं	१६-७	गच्छई उ परं भवं	१८-१७	गन्धे विरत्तो मणुओ विसोगो	३२-६०
खियं संपणामए	२३-१७	गच्छई मिगचारियं	१६-८१	गन्धेणु ओ गिद्धिमुवेइ तिब्बं	३२-५८
खियं मे सव्वसंसारा	३१-२१	गच्छ कलहाहिं किमिहं ठिओसि ?	१२-७	गन्धवक्कन्तिया जे उ	३६-१८६
खियं इवढ मुचोइए	१-४४	गच्छन्ति अवसा तमं	७-१०	गन्धवक्कन्तिया तहा	३६-१७०, १६५
खियमागम्म सो तहिं	१-६	गच्छन्तो सो दुहो होई	१६-१८, १६६	गन्धो आवोस्सयं कुज्जा	२६-५
खीरइहिंसपिमाई	३०-२६	गच्छन्तो सो मुहो होइ	१६-२०, २१	गन्धोरे सुसमाहिए	२७-१७
खीरपूरसमपभा	३४-६	गच्छ पुत्त ! जहामुहं	१६-८५	गन्ध च उभागसावसेसंमि	२६-२०
खीररसो खण्डसक्कररसो वा	३४-१५	गच्छसि मगं विसोहिया	१०-३२	गन्धमाइ सोहमाइणो	३६-१८०
खोरे प्रयं तेत्तन महातिलेमु	१४-१८	गच्छामि रायं ! आमान्तिओ सि	१३-३३	गन्धसंभग्य गत्ताहं	१६-६१
		गच्छे जक्खसलोगयं	५-२४	गन्धं नाभिच्छई	१-४२
खु		गण्ठियसत्ताइयं	३३-१७	गन्धयाए णं मन्ते ! जीवे कि...	२६सू०८
खुडुहिं सह संसगिं	१-६	गण्ठोमयसणणया	३६-१८०	गन्धया लुहुया तहा	३६-१६
खुटो साहसिओ नरो	३४-२१, २४	गतभूसाणमिट्ठं च	१६-१३	गन्धमाइहे बहत्ताणं	२७-१६
खुरमारहिं विवाइओ	१६-५६	गन्धमाणस्स भगवओ	१८-१६	गन्धियस्सं च बाहए	१-३७
खुरेहिं तिलघारेहिं	१६-६२	गन्धालो ममायरिया	१८-२२	गन्धेहिं मगरजालेहिं	१६-६४
खे		गन्धव्वमवसस्स ते	१८-१२	गन्धलरिट्ठण सन्निभा	३४-४
खेडे कब्बडडोगमुहं	३०-१६	गन्धव्वमवसस्स मे	१६-१६	गन्धसंभग्य गत्ताहं	१६-६१
खेत्तं गिहं वणघनं च सव्वं	१३-२४	गन्धओ जे भवे दुक्कमी	३६-२८	गन्धेणु गहणे य	२४-११
खेत्तं वत्थं हिरण्यं च	३-१७, १६-१६	गन्धओ जे भवे सुक्कमी	३६-२७	गन्धा तारागता तहा	३६-२०८
खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए	१२-१३	गन्धओ परिणया जे उ	३६-१७	गन्धो लमो बढो य	१६-६५
खेमं च सिमं अणुत्तरं	१०-३५	गन्धओ कासओ चेव	३६-२६ से ३३		
खेमं सिमं अणाबाहं	२३-८३				

गा

गाढा य विभाग कम्पुओ	१०-४	गुणां तु महाभरो	१६-३५	गोयमो इगमब्बवी	२३-२१, २५,
गांरांगणिए दुम्पूए	१७-१७	गुणां तु सहस्साइ	१६-२४	३१, ३७, ४२, ४७, ५२, ५७, ६२, ६७,	
गामगए नगरे ब सणए	१०-३६	गुणाणमासओ दब्बं	२८-६	७२, ७७, ८२	
गामाणुगामं रीयत्तं	२-१४	गुणाहियं वा गुणओ समं वा	३२-५	गोयमो कालगच्छवी	२२-५
गामाणुगामं रीयत्ते	२३-३, ७, २४-२	गुणत्तरघरो मुणी	१२-१	गोयरागपविट्ठस्स	२२-६
गामे अणियओ चरे	६-१६	गुत्तो नितयत्ते गुत्ता	२४-२६	गोलवा मट्टियामया	२५-४०
गामे नगरे तह रायहाणि	३०-१६	गुत्तीहि गुत्तस्स जिइन्दियस्स	१२-१७	गोआलो मण्डवालो वा	२२-४५
गामे वा नगरे वावि	२-१८	गुत्तो ओहभारी ज्व	१६-३५	गोहाई अहिमाई य	३६-१८१
गामं नो परिसिञ्ज्या	२-६	गुहं बन्दित्तु सज्जायं	१६-२१	घ	
गारथा संजमुत्तरा	५-२०	गुहरिआवए निच्चं	१७-१०	घणमुंजा सुद्धवाया य	३६-११८
गारत्थेहि य सत्थेहि	५-२०	गुरुमत्तिआकमुत्तुत्ता	३०-३२	घणो य तह होइ वगो य	३०-१०
गारत्थेसु कसाएसु	१६-६१	गुत्ताहास्सियसुत्तुसणयाए णं भत्ते !	२६ सु०३	घयसित ज्व पावए	३-१२
गाहगाहीए महिसे ब जल्ले	३२-७६	गुत्तमणववायकारए	१-३	घरेसु वा एवमित्तिं सेत्तं	३०-१८
गाहाणुमीया नरसधमज्जे	१३-१२	गुत्तमुक्कवायकारए	१-२	घा	
गाहा य मगरा तहा	३६-१७२	गुहा सज्जायतब्बसा	२५-८	घाणस्स गम्भं गहणं वयत्ति	३२-४८, ४९
गाहासोलसएहिं	३१-१३	गो		घाणित्थियनिगाहेणं यत्ते ! जीवे०	२६सु०६५

गि

गिज्ज वारि जल्लतमं	२३-५१	गिच्छणा अवि दुक्करं	१६-२७	घित्तु वा परिपावेणं	२-८, ३६
गिच्छन्तो निक्खिन्तो य	२४-१३	गिद्धो पओसे य सडे	३४-२३	घो	
गिद्धोवमे उ नज्जाणं	१४-४७	गिक्खिज्जाणुत्तरा वेव	३६-२१२	घोरं घोरपरक्कमा	१४-५०
गिद्धो सि आरम्भपरिगाहेसु	१३-३३	गिक्खिज्जा णवविहा तहिं	३६-२१२	घोरवओ घोरपरक्कमो य	१२-२३, २७
गिरि रेवयं जत्ती	२२-३३	गो		घोराओ अइदुस्सहा	१६-७२
गिरि नहेहिं खणह	१२-२६	गोच्छगल्लयंगुलिओ	२६-२३	घोरा मुत्ता अवलं सरीरं	४-६
गिलाणो वरित्तपई	५-११	गोच्चिभआए ब सागपत्ताणं	३४-५८	घोरासमं वइत्ताणं	६-४२
गिहंसि न रइं लभे	१४-२१	गोपुट्टालमाणि ब	६-१८	घोरे संतारासगरे	२५-३८
गिहक्कमसारम्भे	३५-८	गोमुत्तिपयंगवीहिया वेव	३०-१६	च	
गिहत्थणां अणोगाओ	२३-१६	गोभेज्जाए य ययो	३६-७५	चइज्ज गेहं वइदेही	६-६१
गिहत्थासं पत्तिञ्जज	३५-२४	गोयं कम्मं दुविहं	३३-१४	[चइज्ज गेहं वइदेही]	१८-४४
गिहत्थासे वि सुवए	५-२४	गोयमं इगमब्बवी	२३-२२	चइज्ज देवलोगाओ	६-१
गिह्तिणो जे पवइएण विट्ठा	१५-१०	गोयमं तु महायसं	२३-८६	चइज्ज बालमावं	७-३०
गिह्तिज्जं च बाहेइ	१७-१६	गोयमं विसमागयं	२३-१६	चइज्जमाखणं धीरो	१-२१
गिह्तिज्जिं तहेव य	३६-४६	गोयमस्स नित्तिज्जाए	२३-१७	चइत्ता उत्तमे ओए	१८-४१
गु		गोयमे पडिक्कन्	२३-१५	चइत्ताणं इमं देहं	१६-१६
गुणक्कसाण ताइयं	२३-१०	गोयमे य महायमे	२३-६, १८	चइत्ताणं मुणी चरे	१८-४४
				चइत्ता आरहं वासं	१८-३६, ३८, ४१

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

१८

चट्ठा विजलं रज्जं	१४-४६	चट्ठा ते पकितिया	३६-१२६	चरितं वेव निष्छए	२३-३३
चट्ठु देहं मत्तकपुब्बयं	१-४८	चक्ककुस लक्खणे मुणिवरस्स	६-६०	चरितंति तवमि व	२६-४७
चट्ठु भोगाह असासयाई	१३-२०	चक्कट्टी नराहिओ	१८-४१	चरित्तमावारगुणनिए तथो	२०-५२
चउक्कतिवचचचरे	२४-४	चक्कट्टी महिड्डिए	११-२२	चरित्तमोहणं कम्मं	३३-१०
चउक्कतिवचचचरे	१६-४	चक्कट्टी महिड्डिओ	१८-३६, ३७, ३८	चरित्तमि तहेव य	२६-३६
चउक्कणत्तं गुत्तं	२८-१	चक्कट्टी महिड्डिओ	१३-४	चरित्तसम्पन्नाए णं भन्ते जीवे किं	२६ सु० ६२
चउक्कं पि उ जतिओ भवे कालो	३०-२०	चक्खिन्दियनिमाहेणं भन्ते जीवे०	२६ सु० ६४	चरित्ता धम्ममार्गियं	१८-२५
चउत्थम्मि जहन्मणं	३६-२३७	चक्खुमिज्जं विवज्जए	१६-४	चरित्तेण तहेव य	२२-२६
चउत्थो असक्खमोसा	२४-२०, २२	चक्खुमिज्जो इमा रई	५-५	चरित्तेण निगिण्हाइ	२८-३५
चउत्थो अहन्मणं	३६-१६३	चक्खुमचक्खुओहिम्स	३३-६	चरित्ते पुत्तं दुक्करे	१६-३८
चउत्थोए परिमिओ	२६-३६	चक्खुसा पाप्पेहिए	२३-३५	चरिमाणं दग्गुपालओ	२३-२७
चउत्थो परिउत्थण	२६-२	चक्खुसा पक्खिल्लिता	२४-४४	चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु	३४ ५६
चउत्थो मुओओ वि सज्झामं	२६-१८	चक्खुसत्तकं गहणं वयन्ति	३२-२२, २३	चउज्जलवत्तए	७ १७
चउत्तमरमण-हिबई	११-२२	चत्तुत्तकत्तत्तस्स	६-१५	चरे पयाटं परिगंकाणो	४-७
चउत्तम सागराई	३६-२२७	चत्तारि कामखन्वाणि	३-१७	चवेइमट्टिमाईहिं	१८-६७
चउत्तम सागरावमा	३६-२२८	चत्तारि जहन्नाए	३६-५३		
चउत्तया चउत्तिहा	३६-१७६	चत्तारि परमार्गाणि	३-१		
चउत्तया य परिउत्तया	३६-१७६	चत्तारि यिहिंलिगे	३६-५२		
चउत्तयाए वा	३०-२१	चन्दणेयवहंसगम्भ	३६-७६		
चउत्तं दुल्लहं मत्ता	३-२०	चन्दणा य तहेव य	३६-१२६		
चउत्तगिणीए सेनाए	२२-१२	चन्दप्पहवेलिए	३६-७६		
चउत्तिन्दियआउठिई	३६-१५१	चन्दमूममपमा	२२-१८		
चउत्तिन्दियकायमइगओ	३६-१५२	चन्दा मूरा य तक्कत्ता	३६-२०		
चउत्तिन्दियकायमइगओ	१०-१२	चग्गाए पालिए नाम	२१-१		
चउत्तिन्दिया उ जे जोवा	३६-१४५	चम्मे उ लोमपक्खी य	३६-१८		
चउत्तहउलोए य दुवे सभुदे	३६-५४	चरणविहिं पक्कत्तामि	३१-१		
चउत्तरोपचिन्दिया वेव	३६-१२६	चरणस्स य वत्तणे	२४-२६		
चउत्तिहा ते विपाहिया	३६-१५५	चरणे दुविहं भवे	३३-८		
चउत्तीसं मागरोवमा	३६-२३६	चरत्तं विरयं ल्हं	२-६		
चउत्तीस सागराई	३६-२३५	चरमे समयम्मि परिणयाहिं तु	३४-५६		
चउत्तीसत्तएणं भन्ते जीवे किं०	२६ सु० १०	चराचरे हिंसइ ओणक्खे	३२-२७,		
चउत्तिहं वि आहारो	१६-३०	४०, ५३, ६६, ७६, ८२			
चउत्तिहं सट्ठाइ समयेव	२१-१८	चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विज्ज	२१-१२		
चउत्तुं पि विवय्याईसुं	३६-२४३	चरिज्ज मिक्खुं मुसमाहिइदिणिए	२१-१३		
चउत्तुं वि गईसु एत्तो	३४-४०	चरित्तं व तथो तद्वा	२८-२, ३, ११		

चा

चाउज्जामो य जो धम्मो	२३-१२, २३
चाउत्तयां जहाहिं	२०-२३
चाउत्तं भयागरे	१६-४६
चामराहिं य सोहिए	२०-११
चारित्तं होइ आहियं	२८-३३
चारुद्धविषपेहिंयं	१६-४
चावेवव्या मुदुकरं	१६-३८
चावणिक्कत्तमपमा	३४-५

चि

चिईयं इहियं उ पाक्खेणं	१३-२५
चिक्खा अयम्मं घमिट्ठे	७-२६
चिक्खा अभिनिक्खन्तो	६-४
चिक्खाणं षणं व मारियं	१०-२६
चिक्खा धम्मं अहम्मिदु	७-२८
चिक्खा रट्ठं पक्खइए	१६-२०
चिदुत्तं विजकीउडा	२५-१७
चिदुत्तं पाणिणो बहू	२४-७४
चित्तं पि आणाहिं तहेव रायं !	१३-११

चित्तसन्तमचित्तं वा	२५-२४	छत्रमत्थेण विणेण व	२८-१६	छु	
चित्ताण्युया महु दम्भोववेया	१-१३	छक्के आहारकारणे	३१-८	छुरियाहि कप्पणीति य	१६-६२
चित्तासोपमु मासेमु	२६-१३	छक्केव य मासा उ	३६-१५१	छुत्तात्तणाए पीडिओ	१६-१८
चित्तेहि ते परित्तावेइ बाले	३२-२७, ४०, ५३, ६६, ७६, ८२	छउजीवकाए असमारमत्ता	१२-४१	छुत्तात्तणा व सीउह्णं	१६-३१
चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था	१३-१५	छट्ठं पुण धम्मचित्ताए	२६-३२	छुत्तात्तणाविबज्जिओ	१६-२०
चित्तो पुण जाओ पुरिमत्तालम्भि	१३-२	छट्ठिं जहन्नेणं	३६-२३६	छे	
चित्तो वि कामेहि विरलकामो	१३-३५	छट्ठीण जहन्नेणं	३६-१६५	छेओवठावणं भवे वीयं	२८-३२
चित्तिज अणपुअसो	२६-३६, ४७	छट्ठो सा परिक्कित्तिओ	३०-३६	ज	
चित्तिज से महापत्ते	२२-१८	छह्ण अनवरागमि	२६-३१	जए इच्छह जोविंयं वा षणं वा	१२-२८
चित्तापु महिसो विव	१६-५७	छह्णं पि कम्मलेसाणं	३४-१	जट तं काहिसि भाव	२२-४४
चित्तरं पि अपाण किलेसइत्ता	२०-४१	छह्णं पि चिराह्णो होइ	२६-३०	‘जट ता सि’ भोगे चइउं असत्तो	१३-३२
चित्तरं पि से सुणइहं मवित्ता	२०-४१	छत्तायं उत्तरकाए	३६-२६८	जटता विउले वन्ते	६-३८
चिरकालेण पि सव्वपाणिणं	१०-४	छन्दं निरोधेण उवेइ मोक्खं	४-८	जटता सुहमेए	६-३५
चो		छन्दणा दव्वजाएणं	२६-६	जट मज्ज काण्णा एए	२२-१६
चोराज्जिणं नमिणिणं	५-२१	छन्देणं पुत्त ! पअव्या	१६-७५	जइ मे न दाहिण्य अहेसणिज्जं	१२-१७
चोवरहं विमारत्तो	२२-३४	छणुरिमा नव खोडा	२६-२५	जइ सि क्वेण वेसम्मो	२२-४२
चु		छम्मासा य जहन्निवा	३६-२५१	जइ सि सक्खं पुरन्दरो	२२-४१
चुण्णिणी य अणत्तसो	१६-६७	छवित्ताणं न विजई	२-७	जओ आवाण निक्खेवे	१२-२
चुया देहा विहिमगा	७-१०	छव्वीस सागराइ	३६-२३७	जओ जत्तं पडिस्सुणे	१-२१
चुल्लणीय वम्मदत्तो	१३-१	छाई अंगुलि पडिह्लहा	२६-१६	जं काइयं माणिसियं व किचि	३२-१६
चे		छि		जं किचि आहारपाणं विविहं	१५-१२
चेद्वंमि मणोरमे	६-१०	छिन्द मेहि सिणेहं व	६-४	जं किचि पास इह मणमाणो	४-७
चेव्वा कामगणे परं	१४-५०	छिन्दिनु जालं अबलं व रोहिया	१४-३५	जं चउत्तरायं पकरेइ कम्मं	३२-१०८
चेव्वा कामाद पअए	१८-३४	छिन्नं सरं भोमं अत्तल्लिक्खं	१५-७	जं च धम्मणा वा मुहं	२५-११
चेव्वागिहं एगवरे स भिक्खू	१५-१६	छिन्नपुअो अणत्तसो	१६-५१	जं च मे पुच्छसी काले	१८-३२
चेव्वा दुपयं च चउपयं व	१३-२४	छिन्नपुअो अणगसो	१६-६०	जं चरन्ति महेसिणो	२३-८३
चेव्वा रउजं मुणी वरे	१८-४७	छिन्नसोए अयमे अक्किण्णे	२१-२१	जं चरित्ताण निगन्था	२६-१
चो		छिन्नाले छिन्दइ सेत्तिं	२७-७	जं चरित्ता वही जीवा	२६-५२: ३१-१
चोइओ तोत्तनुत्तेहि	१६-५६	छिन्नावाएसु पन्नेसु	२-५	जं जाणिऊण समणे	३६-१
चोइओ पडिचोएइ	१७-१६	छिन्नावासाहाहि तमेव वानुं	१४-२६	जं जिए लोमयासडे	७-१७
चोउजं अयमसेवणं	३५-३	छिन्नो भिन्नो विमिन्नो य	१६-५५	जं तरन्ति महेसिणो	२३-७३
छ		छिन्नो मे संसखो एमो	२१-२८, ३४, ३६, ४४, ४६, ५४, ५६, ७४, ७६, ८६, ९४, ९६, ७४, ८५	जं न कुजा न कारवे	२-३३
छंउरं न नियट्ठई	२-४३	छिन्नो मे संसखो एमो	२१-२८, ३४, ३६, ४४, ४६, ५४, ५६, ७४, ७६, ८६, ९४, ९६, ७४, ८५	जं नेइ जया रत्ति	२६-१६
छंउरंअत्थस्स जिणस्स वा	२८-३३			जं बाहई सययं जनुमेयं	३२-११०
				जं भिक्खुणं सीलपुणे रयाणं	१३-१७

जं भिक्षुणो सीलुणोबधेया	१३-१२	जलट्टी बेयसां मुहं	२५-१६	जल्ला जालमा वेब	३६-१२६
जं मुजो परिमस्सई	७-२५	जल्लबाइ उबट्टिओ	१२-३	जलेण वा पोक्सरिणी पलासं	३२-३५,
जं मे ठिया मग्गे जित्तमागं	२०-५५	जमायारतो भिक्षू	३५-१	५७, ६०, ७३, ८६, ८८	
जं भग्गहा बाहिरियं विसोहि	१२-३८	जम्हं नाम सुत्तसा	११-२७	जल्लं काएण बारस्	२-३७
जं मे तुमं ताहसि वक्कमेयं	१३-२७	जम्हं तुक्कं जरा तुक्कं	१६-१५	जलगट्ठाए निसेव मं	८-१२
जं मे बुद्धाणुसासन्ति	१-२७	जम्मणमरणाणि बन्धन्ति	३६-२६७	जलगट्ठाए महायुणी	३५-१७
जं विवित्त मणाइणं	१६-१	जम्ममज्जुअउज्जिमा	१४-५१	जबमज्जुअउत्तरं सयं	३६-५३
जं संपत्ता न सोयन्ति	२३-८४	जम्माणि मरणाणि य	१६-४६	जबा कोहमया वेब	१६-३८
जं ताया नरिष बेयणा	१६-७४	जयं अपरिताडियं	१-३५	जसं सविणु लन्ति	३-१३
जंसि गोयम ! आरुडो	२३-५५	जयपोसं महायुणि	२५-३४	जस्स एया परिन्नाया	२-१६
जंसि गोयममारुडो	२३-७०	जयपोसविजयपोसा	२५-४३	जस्सत्थि मच्चुणा सक्कं	१४-२७
जं से करे अयणिया दुरत्ता	२०-४८	जयपोसस्स जन्ति	२५-४२	जस्स बडित्थि पलायणं	१४-२७
जं से पुणो होइ दुहं विवागे	३२-३३,	जयपोसस्स त्ति नामजो	२५-१	जस्सेरिसा इडिठु महायुमाया	१२-३७
	४६, ५६, ७२, ८५, ८८	जयपा वउज्जिहा बुत्ता	२५-६	जह कइयमुम्भारतो	३५-१०
जं सोचा पडिबज्जित	३-८	जयनामो जिज्जन्नायं	१८-४३	जह करगयस्स कासो	३५-१८
जं होमिया तस्स समाह भन्ते !	१२-३१	जयन्ता अपराजिया	३६-२१५	जहकमं कामगुणेहि वेब	१४-११
जस्सरत्तसल्लिन्तरा	१६-१६; २३-२०	जया भिगस्स आयांको	१६-७८	जह गोमहस्स गम्बो	३५-१६
जस्सा आउक्खए बुया	३-१६	जया य से सुही होइ	१६-८०	जह तणजम्भारतो	३५-१२
जस्सा उत्तरउत्तरा	३-१४	जया सत्तं परिच्छज्ज	१६-८२	जह तिगडुयस्स य रतो	३५-११
जस्सा कुमारेविणिवाडयन्ति	१२-२४	जराए परिवारिओ	१४-२३	जहन्मज्जिमहाय य	३६-५०
जस्सा हु वेयाबडियं करेन्ति	२२-३२	जराए मरणेण य	१६-२६	जहन्मकोसिया मग्गे	३६-१६७, २५५
जस्सो तहि तिन्युयस्सवासी	२२-८	जराकरणकत्तारे	१६-४६	जहन्मेणं काऊए	३५-५०
जयमिस्सएहि भूएहि	८-१०	जराकरणवत्थम्मि	१६-१४	जहन्मेणं नीलाए	३५-४६
जहुं व पावकम्मणा	२५-२८	जराकरणवेगेण	२३-६५	जहन्मेणं पम्हाए दसठ	३५-५४
जडीसंधाडिमणिणं	५-२१	जरोबणीयस्स कु नत्थि ताणं	४-१	जहन्मेणं सुक्काए	३५-५५
जणेण सडि होक्खामि	५-७	जलं 'वाहिं ति' चिन्ततो	१६-५६	जहन्मेणं कतीसई	३६-२४३
जत्तत्वं गहणत्वं व	२३-३२	जलकन्ते सूरकन्ते य	३६-७६	जहन्मेणं गत्तियाई	३०-१५
जत्तत्वं पणहाणम्	१६-८	जलणं व जलप्येसो य	३६-२६७	जहपरिययम्भारतो	३५-१३
जत्थं कीसन्ति जन्तवो	१६-१५	जलन्तमिस्साया बीया	३५-११	जह बूरस्स व कासो	३५-१६
जत्थं तं मुज्झसी रायं	१८-१३	जलन्ते इव तेएण	११-२४	जह सुरहिंमुसगंभो	३५-१७
जत्थं तत्थं निसीयई	१७-१३	जलन्ते ठमिलानुए	१६-५६	जहा जमिसिद्धा दित्ता	१६-३६
जत्थं नत्थि जरा मच्चू	२३-८१	जल्यराणं तु अन्तरं	३६-१७७	जहा जणाहो भवई	२०-१६, १७
जत्थेव गन्तुमिच्छेजा	६-२६	जल्यराणं कलपरा तहा	३६-१७७	जहा इण्णसमाकडे	११-१७
जत्थेव जयइ वेयवी	२५-४	जल्यराणं बोसहीतिणा	३६-६५	जहा 'इयं इह' सीयं	१६-४८
जम्मादा य 'जे दिया'	२५-७			जहाइ उबहि लो	१६-८४

जहा इहं उ अगणी उज्जो	१६-४७	जहा संकम्मि पयं	११-१५	जाईपराबिओ ललु	१३-१
जहा उ बरई सिओ	१६-७७	जहा सागबिओ बाणं	५-१४	जाईमयपडिबडा	१२-५
जहा उ पावयं कम्मं	३०-१	जहा सा दुमाण पवरा	११-२७	जाईसरणं समुपन्नं	१६-७
जहाएसं व एलए	७-७	जहा सा नईण पवरा	११-२८	जाईसरणे समुपन्ने	१६-८
जहाएसं समुहिस्स	७-१	जहा सुक्को उ मोलओ	२५-४१	जा उ अस्साबिणी नावा	२३-७१
जहा करेणुपरिकिओ	११-१८	जहा पुणी पुक्कणी	१-४	जाओ पुरिसं पवोमिता	८-१८
जहा कागिणिए ठेउं	७-११	जहासुत्तमणिन्दियं	३५-१६	जाओ लोमंमि इत्थिओ	२-१६
जहाकिम्प्यागफलाणं	१६-१७	जहा ते उडुवई चन्ने	११-२५	जा किण्हाए ठिई ललु	३४-४६
जहा कुसोमे उवयं	७-२३	जहा से कम्भोयागं	११-१६	जा वेव उ वाउठिई	३६-१६७, २४५
जहा ललु ते उरउमे	७-४	जहा ललु से उरउमे	७-४	जा जा विप्पसि नाबिओ	२२-४४
जहा लवयइ भिक्खू	३०-४	जहा से वाउरन्ते	११-२२	जा जा वल्लवइ रवणी	१४-२४, २५
जहा मेठे पलितम्मि	१६-२२	जहा से तिक्खदाढे	११-२०	जाणमाणी बि जं चम्मं	१३-२६
जहा चन्दं गहाईया	२४-१७	जहा से तिक्खसिमे	११-२६	जाणाभि जं वड्डइ आउसु ! ति	१७-२
जहा आय ति पासिया	२२-३४	जहा से तिमिरबिउंसे	११-२४	जाणासि संभूय ! महाणुमायं	१३-११
जहा तद्धवणिससरो	२२-४५	जहा से नगाण पवरे	११-२६	जाणाहि मे जायणवीविणु ति	१२-१०
जहा तुलाए तोलेउं	१६-४१	जहा से नमी रायरिति	६-६२	जाणि जीयन्ति दुम्मेहा	७-१३
जहा ते दीसई क्वं	१८-२०	जहा से बामुदेवे	११-२१	जाणित्तापरियस्स उ	१-४३
जहा दवणी पडरिक्खणे बणे	३२-११	जहा से सयंभूरमणे	११-३०	जा तेऊए ठिई ललु	३४-५४
जहा दुक्कं जरेउं जे	१६-४०	जहा से सट्ठसक्खे	११-२३	जा निरस्साबिणी नावा	२३-७१
जहा न होई असुयाण लोमो	१४-८	जहा से सामाइयाणं	११-२६	जा नीलाए ठिई ललु	३४-५०
जहा पोमं जले जायं	२५-२६	जहा सो पुरिसोत्तमो	२२-४६	जा पट्हाए ठिई ललु	३४-५५
जहा बिउलावसहस्स मूले	३२-१३	जहिउण माणुसं बोन्दि	३५-२०	जायल्लये विरायई	११-१६
जहा मुयाहि तरिउं	१६-४२	जहि पकिणा बिहन्ति पुज्जा	१२-१३	जायगो पडिसेहए	२५-६
जहा महात्तायास्स	३०-५	जहि पवना न पुणअवामो	१४-२८	जायगेण महापुणी	२५-६
जहा महासागरमुत्तरित्ता	३२-१८	जहिं कयं सम्भजणस्स वेस्सा	१३-१८	जायणा व अलाभया	१६-३२
जहा भिगे एग अणेणचारी	१६-८३	जहिसि प्हाओ विमलो विसुद्धो	१२-४६	जायतेयं पाएहि हणह	१२-२६
जहा मे य पवत्तियं	२०-१७	‘जहिसि प्हाया’ विमला विसुद्धा	१२-४७	जायपक्खा जहा हंसा	२७-१४
जहा भेयमणुस्सुयं	५-१३, १८	जहियु संगं व महाकिल्लेसं	२१-११	जायमेए महोदरे	७-२
जहा य अग्गी अरणीउज्जन्तो	१४-१८	जहियिओ बालमणोहराओ	३२-१७	जायरुवं जहामट्ठं	२५-२१
जहा य अण्डपमवा बलागा	३२-६	जहेह सीहो व भियं गहाय	१३-२२	जायाई जमजन्तंमि	२५-१
जहा य किपायफला मणोरमा	३२-२०	जहोवट्ठं उरुयं	१-४४	जायाए चासमेसेज्जा	८-११
जहा य त्तिनि वणिवा	७-१४	जा		जाया ! चित्तवरो ठुमि	१४-२२
जहा य मोई ! तणुयं मुयंमो	१४-३४	जाईं तरिउं भयवं	६-२	जाया दोणि मि केवली	२२-४८
जहा लाहो तहा कोहो	८-१७	जाईं कुलं प सीलं व	२२-४०	जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं	१४-१२
जहा वयं चम्मजजाणमाणा	१४-२०	जाईजरामण्णुमायामिभूमा	१४-४	जायिता मय सीसाउ	२७-१६

आरिसा माणुसे लोए	१६-७३	जीबा गच्छन्ति परलोयं	३४-६०	जे कैह सरीरे सत्ता	६-११
जावई केहकन्दली	३६-६७	जीबा गच्छन्ति सोमाई	२८-३	जे गिद्धे कामभोगेसु	५-५
जाव कालस्त पजबो	३५-१६	जीबा वैव अजीबा य	३६-२	जे जे उवाया पडिवजियव्या	३२-६
जावजोबं दवजो	२२-४७	जीबाजीबविमर्ति	३६-१	जेठु कुलमवेकस्तो	२३-१५
जावजीबाए हुक्करा	१६-२५	जीबाजीबा य पुण्णपाबं च	२८-१७	जेठामूले आसाडसावणे	२६-१६
जावजीवमसिस्सामो	१६-३५	जीबाजीबा य बन्धो य	२८-१४	जे डहन्ति सरीरत्त्वा	२३-५०
जाब न एह आएसे	७-३	जीबाजोवीवाण य	३६-३	जेणउप्पाणं परं चेव	११-३२
जाबन्ताविज्जापुरिसा	६-१	जीबा सोहिमणुप्पत्ता	३-७	जेण पुण जहाह जीविणं	१४-६
जाब सरीरेउ त्त	२२-३७	जीविए मरणे त्हा	१६-६०	जेणमिह बन्ता इत्थिणा स एसो	१२-२१
जा सा अणसणा मरणे	३०-१२	जीविणए बहुपण्णवायए	१०-३	जेणाहं दोमाई न गच्छेज्जा	८-१
जा सा पण्णजो डिई	७-१३	जीविणं वैव क्कं च	१८-१३	जेणाहं नामिजाणामि	२-४०
जा सा पाली महापाली	१८-२८	जीवियत्तं तु संपत्ते	२२-१५	जे तत्थ पउत्सई स भिक्खू	१५-११
जा से कन्तं इलाम हं	२२-८	जीबो उबजोगलक्खणो	२८-१०	जे तत्थजोसी य परिग्गही य	३२-१०१
जा हं तेण परिचत्ता	२२-२६	जीबो रणायबहुलो	१०-१५	जे तस्सि अतरं वणिग्गा य	८-६
जि		जीबो पयड अणासबो	३०-२	जे पाउं पडिसेवन्ति	२-३८
जिइन्मिए सख्खो विण्णमुक्के	१५-१६	जीबो पुण्णइ नाविजो	२३-७३	जे दुज्जया बज्जो अम्हारिसेहिं	१३-२७
जिइन्जिबो संज्जो बन्धमयारी	१२-२२	जीबो होइ अणासबो	३०-३	जे नरा काय लालसा	२५-४१
जिण्वमाणे न संविदे ?	७-२२	जु		जे नरा गिहिसुख्या	७-२०
जिणवयणं वरिसिसो	२२-३८	जुडमं वरिससखोबमे	१८-२८	जे नरा पावकारिणो	१८-२५
जिणवयणं जे करेत्ति भाविण	३६-२६०	जुडमन्ताणुण्णसो	५-२६	जे पावकम्मोहि घणं वणुसा	४-२
जिणवयणं जे न जाणत्ति	३६-२६१	जुईए उत्तिमाए य	२२-१३	जे अवन्ति दिउत्तमा	२५-३३
जिणवयणं जे अनुत्ता	३६-२६०	जुणमित्तं य सेतलो	२४-७	जे भावजो संपगरेह भिक्खू	१२-१६
जिण्णद्वन्द्वमं सरणं पबन्ता	१४-२	जुणवं पुण्णं व सम्मतं	२८-२६	जे भिक्खू अवमन्तह	२२-२६
जिण्णे पात्ते त्ति मामेण	२३-१	जुणो व हंसो पडिओत्तगामी	१४-३३	जे भिक्खूवं भलकाले बहेह	१२-२७
जिण्णेहि बरदासिंह	२८-२७	जुवराया दमीसरे	१६-२	जे भिक्खू चयई निण्वं	३१-४
जिण्णार रसं गहणं वयत्ति	३२-६२	जे		जे भिक्खू जयई निण्वं	३१-७ से २० तक
जिण्णामादन्ते अमुच्छिए	३२-१७	जे आयायासंठाणे	३६-४६	जे भिक्खू जयई सया	३१-२१
जिस्सिभन्दिमनिग्गारेणं भन्ते ! जीवे किं	२६-६६	जे इन्दियाणं सिस्सा अणुन्ना	३२-२१	जे भिक्खू न बिह्नेज्जा	२-४६
जिहाए रत्तं गहणं वयत्ति	३२-६१	जे उत्तमं विवजासमेई	२०-४६	जे भिक्खू वज्जई निण्वं	३१-६
जी		जे उ भिक्खू न वाबरे	३०-३६	जे भिक्खू रुम्भई निण्वं	३१-३
जोमपनिदसंकासा	३४-४	जे कन्हिचि न मुच्छिए स भिक्खू	१५-२	जे भिक्खू बहई सम्मं	३०-३१
जीवं च इरियं सया	६-२१	जे कत्थिणं अहियासए स भिक्खू	१५-३,४	जे भिक्खू सहई निण्वं	३२-५
जीवन्तमणुजीवन्ति	१८-१४	जे केइ परिपया लुणं	६-३२	जे माहणा जाइविज्जोववेया	१२-११
जीवस्स उ सुहाबहं	३१-१	जे के इमे पण्णइए	१७-३	‘जे उ दम्मणपट्टिया’	२३-६१
जीवस्स उ सुहाबहा	३०-२७	जे के इमे पण्णइए नियच्छे	१७-१	जे य चम्माणा पाप्पा	२५-४

[illegible]

तद्वाए अह्मेयं	३६-१६२	ततो से दण्ड समारम्भे	५-८	तं कथं सम्बधो क्षिता	२३-४६
तद्वाए निदुमोक्त्वं तु	२६-१८, ४३	ततो से पाथयं कम्भं	८-६	तं कथं वृष माहर्ण	२५-१६ से २७, ३२
तद्वाए पोरिसीए	२६-३१	ततो से पुट्टे परिबूहे	७-२	तं सम्भं निगिष्ठासि	२३-५८
तद्वाए भिक्षावाययं	२६-१२	ततो से अरण्यतमि	५-१६	तं सध्वं मरिसेहि मे	२०-१७
तद्वा रायरिसिभि	६-५	ततो सो पृहसिबो राया	२०-१०	तं छसतं पदगिज्ज	२१-३
तद्वा समुगपनिस्सया	३६-१८	ततो हं एवमाहंयु	२०-३१	तंसा चवरंसमायया	३६-२१
तदयाहं सोसयाणि य	१६-६८	तं ब्रह्मं तुच्छसरिणं से	१३-२५	तंति कल्लो से च उवैह दुक्खं	३२-२५, ३८, ५१, ६४, ७७, ८०
ततो आउपरिक्खीणे	७-१०	तं एवमेवं लालयमागं	१४-१५	तं ति ताहो अनाहागं	२०-५६
ततो उत्तरगुणे कुञ्जा	२६-११, १७	तं कायं तु अयुंक्खो	३६-८१, ८६, १०३, ११४, १२३, १३३, १४२, १५२	तं पिच्छो य अणत्तसो	१६-६६
ततो ओराणिय-कम्माहं	२६ सू ७४	तं चोसि अन्धगदङ्गिहो	२२-५३	तणकासा अल्लमेव य	१६-३१
ततो कम्मगुक्क जन्तु	७-६	तं ठाणं सासयं बाधं	२३-८४	तण्हाकट्ठहारा	३६-१३७
ततो कल्ले पमायासि	२०-३४	तं तिसिक्खे पटीसहं	२-५, १४	तणेसु खमागत्तस	२-३४
ततो काले अयिणेए	५-३१	तं देहं निगामुत्ते	१६-६	तण्हाकिल्लतो बाबन्तो	१६-५६
ततो कीडपयंगो य	३-४	तं बोसहेउं अमणुलमाहु	३२, २२, ३५, ४८, ६१, ७४, ८७	तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो-	३२-३०, ४३, ५६, ६६, ८२, ८५
ततो कुम्भुपिबीलिया	३-४	तं न नस्ससि ? गोयया !	२३-६०	तण्हा हुया जस्स न होइ कोहो	३२-८
ततो केसि कुसंतं तु	२३-२१, २५, ३७	तं नागं विणसासणे	१८-३२	ततो हं नाहो आलो	२०-३५
ततो केसो अणुनाए	२३-२२	तं नेव मुजो वि समायरासो	१४-२०	ततं ततविणिच्छयं	२३-२५
ततो गच्छति सत्तिया !	६-१८, २४, २८, ३२, ३८, ४६	तं परिगिज्ज वायाए	१-४३	तत्ताइं तन्वलोहाहिं	१६-६८
ततो गुत्तीओ आहिया	२४-१	तं परिन्नाय पण्डिण ए स भिक्षू	१५-८, ६	ततो ओमं तु ओ करे	३०-१५
ततो चण्डालोक्कसो	३-४	तं पासिऊणनेज्जत्तं	२१-४	ततो य धीणमिडो उ	३३-५
ततो जले बीसमहे तथेव	३६-५४	तं पासिऊण सविणो	११-२०	ततो य अन्धं अपरिगहं च	२१-२२
ततो बिए सधं होइ	७-१८	तं पासिया संकय हम्ममाणं	१२-२०	ततो य बगवणो उ	३०-११
ततो आएउअ एगो	१-१०	तं पुब्बनेहेण कयागुराणं	१३-१५	ततो वि य उवट्ठिता	८-१५
ततो सेणउजिए धव्वे	१८-१६	तं ब्रित अम्मापियरो	१६-२४, ४४, ७५	तत्थ आल्लवणं नाणं	२४-५
ततो नमिं रायरिसि	६-११, १७, २३, २७, ३१, ३७, ४१, ४५, ५०	तं मासको मे पठियुष्सावित्ता	३२-१	तत्थ आसि पिया मज्ज	२०-८८
ततो ममी रायरिसी	६-८, १३, १६, २५, २६, ३३, ३६, ४३, ४७, ५२	तं मुक्खं अन्धं अणुगहट्ठा	१२-३५	तत्थ एगे म्हापाने	५-१
ततो पुट्टो आयसिक्केणं	५-११	तं मे उदाहरिस्सामि	२-१	तत्थ कुब्बेअ सासयं	६-२६
ततो पुट्टो पिबासाए	२-४	तंति संवच्छरेकरे	३६-२५४	तत्थ गन्तुण सिरिम्हं	३६-५६
ततो बहूणि बासाणि	३६-२५०	तं मे एगमणो सुण	३०-४	तत्थ चित्ता समुपन्ना	२३-१०
ततो राया मयदुजो	१८-६	तं मे कहसु गोयमा !	२३-२८, ३४, ३६, ४४, ४६, ४८, ५६, ७४, ७६	तत्थ ठेजेज्ज भिक्षू अय्याणं	८-११, १६
ततो संवच्छददं तु	३६-२५३, २५४	तं मे किलयणो सुण	२४-६१, ६६-४८	तत्थ ठिप्पा अहाठाणं	३-१६
ततो संवच्छददं	३२-१०५	तं रागहेउं तु मणुलमाहु	३२-२२, ३५, ४८, ६१, ७४, ८७	तत्थ पंचमिहं नाणं	२८-४
ततो से आयत्ति पयोयणाइं	३२-१०५			तत्थ बासमुवागए	२३-४, ८, २५-३

तत्प संकल्प बासं	३५-७	तम्हा विणयमेतेज्जा	१-७	तबोवहाणमादाव	२-४३
तत्प सिद्धा महाभागा	३६-६३	तम्हा समुत्ताय पहाय कामे	४-१०	तबोसमायारिसमाहिंसकुडे	१-४७
तत्प से उववजई	३-१०, ७-२७	तम्हा मववई पस्स	६-२२	तसमागेहिं बावरेहिं व	८-१०
तत्प से चिट्ठमाणस्स	२-२१	तम्हा पुयमहिट्टेज्जा	११-३२	तसपाणबीयरहिण	२४-२८
तत्प सा पासई साहुं	२०-४	तम्हा हु एण निहवा कुमारा	१२-३२	तसपाणे विमाणेता	२५-२२
तत्पासिब दुक्ख न विमुक्कई से	३२-३०, ४३, ५६, ६६, ८२, ६५	तथा गच्छइ गोयरं	१६-८०	तसाणं थावरणं व	३५-६
तत्पिमं पडमं ठाण	५-४	तयाणि काकाणि दलित्तु हंसा	१४-३६	तसाण थावरण य	२०-३५
तत्पोबमोणे कि किलेसदुक्खं	३२-३२, ४५, ५८, ७१, ८४, ६७	तर कम्मे ! लद्धं लुट्ठ	२२-३१	तसा य थावरा वेव	३६-६८
तत्पोववाइयं ठाणं	५-१३	तरिता समुहं व महाप्रबोधं	२१-२४	तसेतु धावरंयु य	५-८१, १६-८६
तत्तुजं तणत्तज्जिया	२-३५	तरियव्भो गुणोयही	१६-३६	तस्सज्जलेनपमोक्ख व	२५-१३
तत्तएसा तत्तेव य	३६-१०	तरिस्सन्ति अणागया	१८-५२	तस्सज्जतं गच्छइ बीयरामो	३२-१६
तत्तएसे य आहिण	३६-५, ६	तरिहिंति जे उ काहिन्ति	८-२०	तस्स कोसस्स छब्बाए	३६-६२
तत्तण्णयं उज्जमए य रागी	३२-१०५	तत्ताएवमस्सन्निभा	३४-७	तस्स गेहस्स ओ वहु	१६-२२
तत्तंतेमोणेव उ से असीले	२०-४६	तत्तो मि अज्जो ! पव्वइओ	२०-८	तस्स पाए उ वन्निता	२०-७
तत्तमुगाहं करेहण्हं	२५-३७	तत्तं कए तत्पइ जस्स लोयो	१४-१६	तस्स भज्जा बुवे आसी	२२-२
तत्ता तत्तमा तद्दा	३६-१५७	तत्तं खनिमाहिमयं	३-८	तस्स भज्जा सिवा नाम	२२-४
तत्तायरत्ता ववहारं	१-४२	तत्तं पणिज्जइक्खायं	१४-५०	तस्स मे अवडिक्कत्तस्स	१३-२६
तत्तुद्धरित्तु बहानायं	२३-४८	तत्तं संपडिक्कजेता	२६-५१	तस्स राईमई कम्म	२२-६
तत्तेगममणो सुण	३०-१	तत्तनारायजुत्तेण	६-२२	तस्स क्वं तु पासित्ता	२०-५
तत्तेगचित्तो निट्ठो सुणेहि	२०-३८	तत्तमियमज्जमचरं	१६-५	तस्स क्ववडं भज्जं	२१-७
तत्ति आसि समागमे	२३-८८	तत्तवहाणं चरियं व उत्तमं	१६-६७	तस्स लोगपईक्कस्स	२३-२, ६
तत्ती नगरमण्डले	२३-४	तत्तविणए सक्कसमिहगुत्तीमु	२८-२५	तस्सागए मिए पासं	१-५
तत्ती नयरमण्डले	२३-८	तत्तसंवरममालं	६-२०	तस्सावि संजमो सेओ	६-४०
तत्तुली तत्तुक्कारे	२४-८	तत्तसा वुयकम्मसे	३-२०	तस्सेस मणो गुरुविट्ठसेवा	३२-३
तत्तमेव व सक्खत्ते	२६-२०	तत्तसा निजिरजइ	३०-६	तहक्कारो य अट्ठमो	२६-३
तम्हा एएसि कम्माणं	३३-२५	तत्तस्स थापायकरं बयासी	१४-८	तहक्कारो य पडिस्सुए	२६-६
तम्हा एयाण लेहाणं	३४-६१	तत्तस्सी भिक्खु यामवं	२-२, २२	तह दुक्कर करेडं जे	१६-३६
तम्हा गिहसमारम्मं	३५-६	तत्तस्सी वीरियं लद्धं	३-११	तह पाणवत्तियाए	२६-३२
तम्हा जोइं न वीवए	३५-१२	तत्तेणं भत्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६-५०, २८	तहपाणारु मणं न कुज्जा	४-१२
तम्हा भिक्खू न पायए	३५-११	तत्तेणं होइ तावसो	२५-३७	तह य निमित्तमि होइ पडिसेवि	३६-२६६
तम्हा भिक्खू न संजले	२-२४	तत्तेणं परिउज्जई	२८-३५	तहा अणुवसत्तेणं	१६-४३
तम्हा मुणी निप्पमुदेइ मोक्खं	४-८	तत्तेणं परितोसियं	१२-४	तहा अस्संजमम्मि य	३१-१२
		तत्तोक्कम्मसि उज्जुओ	१६-८८	तहा मोल्लेण गोयमे	१८-२२
		तत्तो जोइं जीवो जोइटाणं	१२-४४	तहा तेरिच्छमाणुसे	३१-५
		तत्तो य दुविहो वुत्तो	२८-३४	तहा दुक्कं करेडं जे	१६-४०

तद्वा निद्रयनीसकं	१६-४१	ताकणा तज्जगणा चैव	१६-३२	तिबिहो व नवविहो वा	३४-२०
तद्वा पयण्वाइ य	३४-३०	ताबइयं चैव विविज्जणा	३६-५८	तिमवचण्णपाठाओ	१६-७२
तद्वा मूएण अपणा	५-३०	ताब जीइइ से तुही	७-३	तिम्भाग्गपरिणओ	३४-२१
तद्वा माणाबमाणओ	१६-६०	तासि इण्ण्यदरिसणं	१६-११	ती	
तद्वा लुब्धा य आहिया	३६-२०	तासि दोहं पि ओ पुत्ता	२२-२	तीसई 'कोडिकोडिओ	३३-१६
तद्वा वि एगत्तहियं ति नब्बा	३२-१६	ति		तीसई सागरोबमा	३६-२४२
तद्वा बि ते न इच्छामि	२२-४१	तिट्ठुवा तउत्तमिज्जणा	३६-१३८	तीसं तु सागराई	३६-२४१
तद्वा सत्तेव एवणा	३०-३५	तिम्बो जह् हुत्तिपिप्पलीए वा	३४-११	तीसे पुत्तो महायसो	२२-४
तद्वा मुचिणं तवसंजमं च	१४-५	'सिम्भो तस्सेव परिणो'	३६-५८	तीसे य जाईइ उ पावियाए	१३-१६
तद्दियं गम्भोदयपुक्कमानं	१२-३६	तिगुत्तं पुण्यं वयं	६-२०	तीसे सो वयनं सोज्झा	२२-४६
तद्दियारां तु भाषाणं	२०-५५	तिगुत्तिगुत्तो तित्थविरओ य	२०-६	तीहि अगुत्तो छुं अविरो य	३४-२१
तद्देव कासीराया	१८-४८	तिज्जा संसारसागरं	२६-१,५२।३१-१	तु	
तद्देव जं दंसणमावरेइ	३२-१०८	तिज्जुद्धो पालिओवम	३४-४१	तुगे सिम्भलि पायवे	१६-५२
तद्देव निन्नेसु य आससाए	१२-१२	तिज्जुद्धो पालिय	३४-४२	तुं शिल्ले चियलोहिए	७-७
तद्देव परिसट्ठणा	३०-३४	तिज्जुद्धो पालियमसंज्ञभागमग्गहिया	३४-३६	तुज्जं विवाहकज्जमि	२२-१७
तद्देव भत्ताणेसु	३५-१०	तिज्जोब अहोत्ता	३६-११३	तुज्जं तुल्लं तु मणुत्तज्जम्	२०-५५
तद्देव य तुयट्ठणे	२४-२४	तिज्जेव उ सागरोबमा	३६-१२२	तुट्ठं य बिजयओसे	२५-३५
तद्देव य नपुंसगा	३६-४६	तिज्जेव सहस्साई	३६-१२२	तुट्ठो य सेणियो राया	२०-५४
तद्देव य वणत्सई	३६-६६	तिज्जेव सागरा ऊ	३६-१६१	तुत्थं तु पाए सरणं उवेओ	१२-३३
तद्देव य वराजगा	३६-१२६	तिज्जो तु ति अण्णं महं	१०-३४	तुत्थे जइया जन्नाणं	२५-३६
तद्देव बिजओ राया	१८-४६	तिज्जुहम्ममयरं मुणो	५-३२	तुत्थेत्थ ओ ! भारघरा गिराणं	१२-१५
तद्देव हितं अलियं	३५-१	तिज्जिक्कं परयं नज्जा	२-३६	तुत्थे वम्माण पारग	२५-३६
तद्देवासणवायणं	३०-३२	तिज्जिक्कया वम्मवैरगुत्तीसु	२६-३४	तुत्थे न वि कुय्ह भूइयन्मा	१२-३३
तद्देवुयं तवं किच्चा	१८-५०	तित्तकइयकसाया	३६-१८	तुत्थे येयवित्त बिउ	२५-३६
ता		तिट्ठुयं नाम उज्जाणं	२३-४	तुत्थे सणाहा य सवन्ववा य	२०-५५
ताई तु खेत्ताई सुयावयाई	१२-१४	तिट्ठुयं वणमावओ	२३-१५	तुत्थे समत्ता उद्धतुं	२५-३७
ताई तु खेत्ताई सुोसळाई	१२-१३,१५	तिट्ठि वि एय अणाइया	३६-८	तुत्थेहि अणुमनिओ	१६-२३
ताई पाठकरे बुद्धे	१८-३२	तिट्ठि वि एयाओ अहम्मलेसाओ	३४-५६	तुत्थेहि अम्म ! णुन्नाओ	१६-८५
ताडिओ कुट्ठिओ जिन्ने	१६-६७	तिट्ठि वि एयाओ वम्मलेसाओ	३४-५७	तुमे राय विचित्तिया	१३-८
ताणि उणाणि गच्छन्ति	५-२८	तिपया हवइ पोरिसी	२६-१३	तुरियं वउयकुचिए	२२-२४
तायं उवाग्गम इमं उवाट्ठ	१४-६	तिभागहीणा ततो य	३६-६४	तुरिष्ठाण सन्निमाण	२२-१२
ताया ! दोसन्ति वेयणा	१६-७३	तिपं मे अत्तरिच्छं च	२०-२१	तुकिणा बालमाव	७-३०
तास्सिम उवत्सए	३५-५	तिरिक्कणुत्साण देवाणं	३४-४४	तुकिणा बालं च वडियं	७-१६
तास्सा गलिमाइहा	२७-१६	तिरिक्काण नराण बा	३४-५५	तुलिक्का चित्तमादाय	५-३०
तास्सो समणत्तणं	१६-३६	तिरिहा ते विगाहिया	३६-१६६	तुक्कविट्ठस्स बावि आरिक्को	३४-१२

पुसिणीओ ववेहेजा	२-२५	तेगे जहा सन्धिमुहे गहीए	४-३	तेसि चुप्लं चउम्बिहं	३६-११,७८,१११,१२०
पुसिणीओ न कयाइ वि	१-२०	तेगे बावि य मच्छरी	३४-२६	तेसि चोचभा सपुज्जाणं	५-२६
पुहं पिमाइ मंसाइ	१६-६६	तेलीसं सागरा मुहुसज्जिहा	३४-३४,३६	ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का ?	१४-३६
पुहं पिमा मुरा सीहू	१६-७०	तेलीसं सागरोबमा	३६-२३४	ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का ?	१४-३४
ते		तेलीसमुहुसज्जिहा	३४-५५	तेहिं आराहिया डुबे जीगे	८-२०
ते अऊक परिपुंजानो	१३-६	तेलीससागराइ उक्कोसा	३४-४३	ते होति परितसंसारो	३६-२६०
तेइन्दियआउठिई	३६-१४१	तेलीस सागराउ	३६-२४३	तो	
तेइन्दियकायठिई	३६-१४२	तेलीस सागरा ऊ	३६-१६६	तोतओ य ते अऊई	२७-३
तेइन्दियकायमइओ	१०-११	तेलीस सागरोबमा	३६-२२	तो न नस्सासहं मुणी	२३-६१
तेइन्दिय जीबाणं	३६-१४३	तेलीसासायणासु य	३१-२०	तो नाणदंसणसम्मो	८-३
तेइन्दिया उ जे जीबा	३६-१३६	ते परियन्ति समन्तओ	२७-१३	तो बिइयं पफोडे	२६-२४
तेउक्कायमइओ	१०-७	ते पासिया लण्डियकट्टुमुए	१२-३०	तो बविक्का पाए	६-६०
तेउजीबाण अन्तरं	३६-११५	ते पासि सज्जसो छिला	२३-४१	तोसिया परिसा सम्भा	२३-८६
तेउलसं तु परिणमे	३४-२८	ते पिज्जबोहाणुबया परज्जका	४-१३	तो होइ अचन्तमुही कयस्यो	३२-११०
तेउलेला उ वणओ	३४-७	ते भिन्नेहेते बहिरं बयन्ते	१२-२५	तो होहिसि देवा इओ विउब्बी	१३-३२
तेउलेला जहा मुरगणाणं	३४-५१	ते बाहणा जाइविजाविहणा	१२-१४	थ	
तेऊ पम्हा सहेब य	३४-३	ते मे कितयओ मुण	३६-१७६,१६५,२०४	बणिया अबणवासिणो	३६-२०६
तेऊ पम्हा मुक्का	३४-५७	ते मे तिण्णं कुब्बंति	२०-२३	बडे लुडे अणियहे	११-२,१७-११
तेऊए ठिई जहन्मिया होइ	३४-५३	ते य ते अहिगच्छन्ति	२३-३५	यम्भा कोहा पमाएणं	११-३
तेऊ बाऊ य बोडम्भा	३६-१०७	तेबीसइ मुयगडे	३१-१६	यल्लेसाखम्भारे	३०-१७
तेऊजाऊणस्सइतसाणं	२६-३०	तेबीसं सागरोबमा	३६-२३५	यलेसु बीयाइ बबन्ति कासगा	१२-१२
ते कामभोगरसगिद्धा	८-१४	तेबीस सागराहं	३६-२३४	यकम्भइमणेलं भन्ते ! जीवे कि...२६ सु०१५	
ते कामभोगेसु असज्जमाणा	१४-६	ते समत्था उ उडत्तुं	२५-३३	या	
ते कितइस्सामि अहाणुपुम्भिं	३२-६	ते सज्जे उ वियाहिया	३६-१५८	यावरा तिबिहा तहिं	३६-६८
ते लहुए जीविय पम्माणा	३२-२०	ते सज्जे परिकितिया	३६-१४६,२१७	यो	
तेमिण्णं मानिनयेजा	२-३३	ते सज्जे बिइया मज्जं	२३-६१	यीकहं तु विज्जए	१६-२
ते मोरुका ठिय अन्तलिक्खे	१२-२५	ते सज्जे बि वियाहिया	३६-१६८	यीकहा य मणोरमा	१६-११
ते येव खिसई बाले	१७-४	ते अन्निमणं देयं	२५-८	थु	
ते येव घोवं पि कयाइ कुल्लं	३२-१००	तेसि इहलोइयफल्लट्ठा	१५-१०	थु मंगलं च का ऊयं	२६-४२
ते खिन्तिव अहानायं	२३-४३	तेसि पुणे तुल्लहा बीही	३६-२५७,२५८	थे	
ते जिणिपु अहानायं	२३-४८	तेसि पुत्ते बलसिरी	१६-२२	थो	
तेण कम्मे पुहा कए	१३-२६	तेसि कल्लविबारोण	१३-८	थो	
तेण कए बोण्णामि	३४-४४,४७,४८	तेसि जेए तुणेह मे	३६-६६,१७७,१७८	थो	
तेणाकि णं कयं कम्मं	१८-१७	तेसि जेए तुणेह मे	१२७,१३६,१४३,१७७	थो	
तेणाकि ते न संतुस्से	८-२६	तेसि विमोक्खणट्ठाए	३६-२३,२३४	थो	

द	दम्बाण सवभावा	२८-२४	दिट्ठीए दिट्ठिसंत्तने	१८-३३
दंसणं चरणं तहा	दग्गे खेतं काले	३०-२४	दिणभागेसु ञउसु बि	२६-११
दंसणताणचरिते	दत्त उदही पत्तिओवम	३४-४२	दितं च कामा समभिहवन्ति	३२-१०
दंसणसम्पन्नाए ण भन्ते ! जीवे किं...	दत्त उदही पत्ति	३४-४३	दिन्नं भुंजेज्ज भोगणं	६-७
	२६सू०६१		दिन्ना मु रत्ता मणसा न माया	१२-२१
दंसणावरणं तहा	दत्त उ सागरोवमा	३६-२२७	दिवा कामकमा इव	१४-४४
दंसणे उ भ्रम्यन्	दत्त च्वे उ सागरोवमा	३६-१६४	दिवसस्स ञउरो भागे	२६-११
दंसणे केवले य धावरणे	दत्त च्वे नपुत्तेसुं	३६-४१	दिवसस्स पोस्सीणं	३०-२०
दंसणे चरणे तहा	दत्त च्वे सहस्साइं	३६-१०२	दिक्कं न गइं गच्छन्ति	१८-२५
दंसणेन तवेण य	दत्त च्वे सागराइं	३६-२२६	दिक्कजुलएरिहिओ	२२-६
दंसणेन य सट्ठे	दत्तणभट्ठो निवसन्तो	१८-४४	दिक्कमाणुसत्तेरिच्छं	२५-२५
दंसणे तिबिहं वुत्तं	दत्तणरणं मुह्यं	१८-४४	दिक्खा तहि वसुहारा य वुट्ठा	१२-३६
दंसमगवैयाणा	दत्तमा उवसम्पदा	२६-४	दिक्खा 'मणस्सगा तहा तिरिच्छा'	१४-१४
दच्चा भोच्चा य जट्ठा य	दत्त वास सहस्साइं	३४-४१, ४५, ५३	दिक्खा मणुप्ता अट्ठा तिरिच्छा	२१-१६
दट्ठं यत्त नाभिस्सइ तीरं	दत्तवाससहस्सिया	३६-१६०, २१६, २२०	दिक्खा वरिससओवमा	१८-२८
दट्ठु ववस्ते समणे तवस्सी	दत्त सागरोवमा ऊ	३६-१६३	दिक्खे मगणं कुत्ते	२२-२०
दट्ठुं नरवइं भहिहिउयं	दत्ता उ जिणित्ताणं	२३-३६	दिक्खे य जे उवसमो	३१-५
दट्ठुं ते कामगुणे विरत्ता	दत्ता उ भवणवासी	३६-२०५	दिसाविचारो जेव	३६-२०८
दट्ठुण रहुंमि तं	दत्त 'होति सागरा मुह्त्ताहिया'	३४-३८	दिस्स पाणे पियायाए	६-६
दड्ढुपुव्वो अणत्तसा	दत्तारचक्केण य सो	२२-११	दिस्स पाणे भयदनुए	२२-१४
दड्ढो पक्को य अवसो	दत्तारा य बह जणा	२२-२७	दी	
दढं परिणिहई तवं	दा		दीवं च मन्तो ? मुणा !	२३-६५
दण्डसल्लभएसु य	दाणे लाभे य भोगे य	३३-१५	दीवणणट्ठो व अणत्तमोहे	४-५
दण्णाणं गारवाणं च	दायस्समं अणुसंकमत्ति	१३-२५	दीवे य इद के वुत्तं ?	२३-६७
दण्हेहि वित्तिह कसिहि च्वेव	दारए से सुहोयए	२१-५	दीवोदहिदिसा बाया	३६-२०६
दत्तसोहणमाइस्स	दाराणि य मुया च्वेव	१८-१४	दीसन्ति बहवे लोए	२३-४०
दयाए परिनिब्बं	दाहणा वायकण्टमा	२-२५	दीहाख्या इहिदुमन्ता	५-२७
दयाचम्मस्स खन्तिए	दारे य परिरक्खाए	१८-१६	दीहामवविण्णुमुक्को पत्तयो	३२-११०
दयामिणा अहा रणे	दासा दसणे आसी	१३-६	दु	
दवदवस्स चारई	बाहामु पुज्जं किमिहं ठिओ सि ?	१२-११	दुक्कडस्स य चोयणं	१-२८
दव्वओ खेतकालेणं	दि		दुक्कटं खल्लु मो निव्वं	२-२८
दव्वओ खेतओ च्वेव	दिगिच्छापरिणए देहे	२-२	दुक्कटं चरितं तवो	१६-३७
दव्वओ चवसुता पेहे	दिज्जाहि मम कारणा	२०-२४	दुक्कटं जे करन्ति तं	१६-१६
दव्वं इक्किक्कमाहिय	दिट्ठुपुब्ब मए पुरा	१६-६	दुक्कटं दमसागरो	१६-४२
दम्बाण य गुणाण य	दिट्ठीए अणिमिसाए उ	१६-६	दुक्कटं मंवरो गिरी	१६-४१

दुष्करं रयणागरो	१६-४२	दुष्कहया काएण कासया	१०-२०	दे	
दुष्करं समगत्तां	१६-४१	दुष्कहाणीह जन्तुभो	३-१	देहं च पञ्चकस्याणं	२६-२६
दुष्कराहं निबारेउं	३४-५	दुष्कहा तस्स उम्मज्जा	७-१८	देवकामाणं धत्तिए	७-१२, २३
दुक्कलं तु भिक्षावरियाविहारो	१४-३३	दुक्कालसंगं जिणक्कालयं	२४-३	देवतं माणुसतं च	७-१७
दुक्कलं च जाईमरणं वयस्ति	३२-७	दुक्किहं खवेज्जा य पुण्णपायं	२१-२४	देवदणं वगन्धवा	१६-१६, २३-२०
दुक्कलं निपत्तिक्कमया	१६-७५	दुक्किहं तु विद्याहिंयं	३३-१०	देवमणुस्सपरिवुडो	२२-२२
दुक्कलं बम्भवयं योर	१६-३३	दुक्किहं दोमाहं गए	७-१८	देवाउयं चउत्थं तु	३३-१२
दुक्कलं भिक्षावरिया	१६-३२	‘दुक्किहा अणसणा’ भवे	३०-६	देवा चउत्थिआ वुत्ता	३६-२०४
दुक्कलं हयं जस्स न होइ मोहो	३२-८	दुक्किहा आउजीवा उ	३६-८४	देवाणं तु विद्याहिंया	३६-२४५
दुक्कलकेसाणं भायणं	१६-१२	दुक्किहा जीवा विद्याहिंया	३६-४८	देवाणं तुज्ज अत्तरं	३६-२४६
दुक्कलमां हु पुणो पुणो	२०-३१	दुक्किहा तेउजीवा उ	३६-१०८	देवा भवित्ताणं पुरे भवन्मी	१४-१
दुक्कलस्सतगवस्सिणो	१४-५१	दुक्किहा ते पत्तिं सिया	३६-१२७, १३६, १४५	देवाभिजाणेण मिघोइएणं	१२-२१
दुक्कलस्सतमुत्तागया	१४-५२	दुक्किहा ते विद्याहिंया	३६-१७, ६८, ७१, ६३,	देवा य जहोइयं सवोइण्णा	२२-२१
दुक्कलस्स सपीलमुवेइ बाले	३२-२६, ३६, ५२,		१७०, २०६, २१२	देवा य देवलोगमि	१३-७
	६५, ७८, ६१	दुक्किहा थलवरा भवे	३६-१७६	देविन्दं इणमब्बवी	६-८, १३, १६, २५, २६, ३३,
दुक्कलस्स हेउं मणुयस्स रागिणो	३२-१००	दुक्किहा पुडवीजीवा उ	३६-७०		३६, ४३, ५७, ५८
दुक्कलाणत्तकरो भवे	३५-१	दुक्किहा वणस्स ईजीवा	३६-६२	देविन्दो इणमब्बवी	६-११, १७, २३, २७, ३१,
दुक्कलया बहुवेयणा	३-६	दुक्किहा वाउजीवा उ	३६-११७		३७, ४१, ५५, ५०
दुग्गहं उववज्जई बहुलो	३४-५६	दुक्किहाहं ते भवे तिक्किहा	३६-१७१	देवो दोग्गुन्दो वेव	१६-३
दुज्जए कामभोगे य	१६-१४	दुक्किहा वेमाणिया तथा	३६-२०५	देवे नेरइए य अइगळो	१०-१४
दुज्जयं वेव अण्णाणं	६-३६	दुक्किहा सा विद्याहिंया	३०-१२	देवे वा अण्णए महिउइए	१-४८
दुइत्तो परिवावई	२३-५५, ५८	दुत्तको तेमाको वा	३४-२०	देवे वावि महिउइए	५-२५
दुण्णदही पत्तिजोवम	३४-५३	दुत्ताहउं वणं हिन्वा	७-८	देवेसु उववज्जई	७-२६
दुइन्दोसेण सएण जन्तु	३२-२५, ३८, ५१, ६५,	दुत्तोळं परियागयं	५-२१	देवो दोग्गुन्दो जहा	२६-७
	७७, ६०	दुत्तोली रमई मिए	१-५	देसिणो वड्ढमाणेण	२३-१२, २३, २६
दुइत्तो अंजए जुगं	२७-७	दुत्तोसी सा बि वारिसा	२७-८	देसियं च अईयारं	२६-३६
दुइयहीविगईओ	१७-१५	दुइओ गई बालस्स	७-१७	देसियं तु अईयारं	२६-४०
दुल्लि ऊ सागरोवमा	३६-२२४	दुइओ मळं वंणिणइ	५-१०		
दुपट्टिसमुपट्टिओ	२०-३७	दुइओ वि सभिए सया	२४-१४	दोउवही पल्लिमसंभगमअममहिंया	३४-३७
दुपट्टिणया इमे कामा	८-६	दुइओ वि से ऋज्जइ तत्थ लोए	२०-४६	‘दोग्गुंही अण्णो पाए’	६-७
दुविगमव्वा तहेव य	३६-१७	दुइओ सम्मतसंजुया	१४-२६	दोग्गुंही लज्जसंजए	२-४
दुयं जहा कीणफलं व पक्खी	१३-३१	दुहाण य सुहाण य	२०-३७	दो वेव सागराहं	३६-२२२
दुयं जहा साउफलं व पक्खी	३२-१०	दुहिणं वहिणं य	१६-७१	दोण्णाए अहन्नेणं	३६-१६१
दुमपराए पण्डुए जहा	१०-१	दुहिणं वहिणं य	१६-७१	दोक्कं अन्नयरे सिया	५-२५
दुलहे कलु माणुसे भवे	१०-४	दुहिंया असराया अत्ता	६-१०	दोमासकयं कज्जं	८-१७
				दो वि आउडिया कुइडे	२५-४०

दो

दोसपओतेहि मुचए भिक्खू	८-२	धम्माम्भमे य दोजेए	३६-७	न इमं 'सत्तेसु भिक्खूसु'	५-१६
दोसमेव पकुब्बं	२७-११	धम्मामरियास संघसाहूणं	३६-२६५	नई अबे अबि गंगासमाणा	३२-१८
दोसम्म हेउं अमणुनमाहु	३२-२३, ३६, ४६, ६२, ७५, ८८	धम्मारायरए दत्ते	१६-१५	न ऊ वयं एरिसमन्नपार्णं	१२-११
ध		धम्माराये बरे भिक्खू	१६-१५	न ओकारेण धम्मणो	२५-२६
घणं आदाउमिच्छसि	१४-३८	धम्माराये निरारम्भे	२-१५	न कले पुज्यसंयवं	६-४
घणं पभूयं सह हत्थियाहिं	१४-१६	धम्मे ठिओ सव्वपयाणकम्भी	१३-३२	न कज्जं मज्ज भिक्खेण	२५-३८
घणधनपेसवभेसु	१६-२६	धम्मे पुकिहे मेहाविं !	२३-२४	न काममोगा समयं उवैत्ति	३२-१०१
घणियं तु पुण्णाई अकुम्भमाणो	१३-२१	धम्मे संपडिवाइओ	२२-४६	न किञ्चि गन्थं अबरज्जई से	३२-५१
घणं परवकमं किच्चा	६-२१	धम्मे हरए धम्मे सत्तित्तये	१२-४६	न किञ्चि फासं अबरज्जई से	३२-७७
घणेण किं धम्मपूराहिणारे	१४-१७	धम्मो अहम्मो आगासं	२८-७, ८	न किञ्चि भावं अबरज्जई से	३२-६०
धम्मं अकाऊण पटंसि लोए	१३-२१	धम्मो किन्ति तहा सुयं	११-१५	न किञ्चि क्खं अबरज्जई से	३२-२५
धम्मं कालाण पावणं	२-४२	धम्मो दीवो 'पहट्ठा य'	२३-६८	न किञ्चि सद् अबरज्जई से	३०-३८
धम्मं च कुणमाणास्स	१४-२५	धम्मो मुदस्स चिट्ठई	३-१२	न कावए आयरियं	१-४०
धम्मं चर मुमुच्चरं	१८-३३	घारेउं अ महप्पणो	१६-३३	नक्खलपरिबारिए	११-२५
धम्मं पि हृदहत्तया	१०-२०	घारेउजा पियमणियं	१-१४	नक्खलाण मुहं चन्दो	२५-१६
धम्मं मुणित्ता विणओववन्ने	१७-१	घारेयव्वं सुमुक्करं	१६-२८	नक्खलाण मुहं जं च	२५-११
धम्मं सोऊण पव्वइओ	१३-२	घारेयव्वई भिक्खुणो	१६-२४	नक्खलाण मुहं न्हि	२५-१४
धम्मं 'सोच्चा अणुत्तरं'	२५-४२	घारेह निग्वाणगुणावहं महं	१६-६८	न गच्छई सरणं तम्मि काले	२०-४५
धम्मकहाए णं भन्ते ! जीवे किं	२६सू०२४	घि		नगरस्स खेमं काऊणं	६-२८
धम्मजियं च बबहारं	१-४२	घिई त्थ केयणं किच्चा	६-२१	न गेण्हइ अवत्तं जी	२५-२४
धम्मज्जाणं क्रियायई	१८-४	घिइमं धम्मसारही	१६-१५	न चाइया खोमइउं तिगुत्ता	३२-१६
धम्मत्तियखरे जिणे	२३-१, ५	घिइमत्ता ववस्सिया	२२-३०	न चिट्ठे गुणन्तिए	१-१६
धम्मत्तिकाए तद्देसे	३६-५	घिरत्थु ते जसोकासी !	२२-४२	न चित्ता तापए भासा	६-१०
धम्मलळं मियं काले	१६-८	घिरत्थु मम जीवियं	२२-२६	नच्चा उप्पइयं दुक्खं	२-३२
धम्मसट्ठाए णं भन्ते ! जीवे किं	२६सू०४	धी		नच्चा कम्मविवाययं	२-४१
धम्मसाहणमिच्छियं	२३-३१	धीरस्स पस्स धीरत्तं	७-२६	नच्चा नमइ मेहावी	१-४५
धम्मसिक्खाए कन्धयं	२३-५८	धीरा हू भिक्खायरियं चरन्ति	१५-३५	न छिन्दे न छिन्दावए	२-२
धम्मसुक्काइं भाणाइं	३०-३५	धु		न अपियं इणियपेहिं बा	३२-१४
धम्मसुक्काणि भायाए	३४-३१	धुत्ते व कलिना जिए	५-१६	न जीविणट्ठा पव्वहामि नोए	१४-३२
धम्मस्सिओ तस्स हिंयाणुपेही	१३-१५	धो		न जुंजे ऊणया ऊव	१-१८
धम्मार्णं कासवो मुहं	२५-१६	धोरेयसीला तवसा उदाया	१५-३५	नट्ठेहि गीएहि य बाइएहि	१३-१४
धम्मामुरत्तो विसलेण थेयसा	२०-५८	न		न तं जरी कण्ठेत्ता करेइ	२०-४८
धम्माम्भामागासा	३६-८	नज्जट्ठं पाणहेउं वा	२५-१०	न तं तापन्ति कुसीलं	२५-२८
		न इमं सत्तेसुज्जारितु	५-१६	न तं सुविट्ठं कुसला बवन्ति	१२-३८

न सं तुहं कामगुणेषु रायं	१३-१७	न बन्धवा बन्धवयं उवेति	४-४	नरएषु वि एगया	३-३
न तस्स दुक्खं विजययति नाइओ	१३-२३	न बन्धवारिस्स लवो निवासो	३२-१३	नरएषु वेइया मए	१६-७२
न तस्स माया 'म पिपा व भाया'	१३-२२	न बन्धवारिस्स हिवाय कस्सई	३२-११	नरएषु वेयणा उण्हा	१६-७७
न तस्स सुखे वि मणुण्यं वा	३२-१०६	न भिक्खुणो मयामणुब्बयायो	१३-३०	नरएषु वेयणा सीया	१६-४८
न ताओ मणसीकरे	२-२५	न भिमि अघिणक्खत्तंसि	६-५	नरएतिरिक्खत्तणं बुधं	७-१६
न तुज्ज भोगे चइऊण बुद्धी	१३-३३	न मितवया न मुया न बन्धवा	१३-२३	नरगाओ न मुच्चई	५-२२
न तुमं जाणे अणाहस्स	२०-१६	नमी नमेइ अपाणं	६-६१	नरनारि पज्जे सया तबस्सी	१५-६
न ते किंचि न अण्णमो	१२-३४	[नमी नमेइ अपाणं]	१८	न रस्सटाए' भुंजिजा	३५-१७
न ते तुमं वियाणासि	२५-१२	नमी राया विदेहेसु	१८-४५	नरस्सजगवेस्सिस्स	१६-१३
न ते पोला त्रबिस्सई	२२-३७	न मुंवाई किंचि अणंसजिजं	२०-४७	नरस्स लुट्ठस्स न तेहि किंचि	६-४८
न तेसि पडिंसजले	२-२४	न मुणी रण्णवायेणं	२५-२६	न रागसत्तु धरिसेइ चित्तं	३२-१२
न तेसि पीहए मुणी	२-३८	न मूसओ छिन्दइ बण्णं से	२०-३६	नराहिं' कामगुणेषु मिद्धं	१३-१५
न तेसु भावं नित्तिरे कयाइ	३२-२१	न मूसगाणं बसही पसत्था	३२-१३	नरिंद । जाई अहमा नराणं	१३-१८
न तेसु भिक्खू मणसा पउस्से	४-११	न मे एयं तु निस्सेसं	२२-१६	नरिण्णदेविण्णं भिबदिण्णं	१२-२१
नत्थि अमोक्खस्स निज्जाणं	२८-३०	न मे गच्छइ उममयं	२३-५६	न रुवलावण्णविलासहासं	३२-२४
नत्थि किंचि अजाइयं	२-२८	न मे इज्जइ किंचण	६-१४	न लक्खेज पुट्टो सावज्जं	१-२५
नत्थि किंचि वि दुक्करं	१६-४४	न मे विट्ठे परे लोए	५-५	न लिण्णई तेण मुणी विरागो	३२-२६, ३६, ५२, ६५, ७८, ८१
नत्थि चरितं सम्मतविहूणं	२८-२६	न मे निवारणं अत्थि	२-७	न लिण्णई भवमज्जे वि सत्तो	३२-६०, ७३, ८६, ८६
नत्थि जीवस्स नामु त्ति	२-२७	नमो ते संसयायि !	२३-८५	न लिण्णई भवमज्जे वि सत्तो	३२-३४, ४७
नत्थि ओइसमे सत्थे	३५-१२	न य ओहारिणि वाए	१-२४	न लिण्णई भवमज्जे वि सत्तो	३२-३४, ४७
नत्थि नूणं परे लोए	२-४४	न य कोउहल उवेइ स भिक्खू	१५-६	नबणीवस्स व सित्तीसकुमुमाणं	३४-१६
न दीसई जाइविसेस कोई	१२-३७	न य णं दाहामु तुमं नियच्छा !	१२-१६	नबममि जह्मोणं	३६-२४२
न निक्कसजिज्जइ कण्ठई	१-७	न य दुक्खा विमोएइ	२०-२४, २५, ३०	नवरं गुण साम्णे	१६-७५
न निण्णविज्ज कयाइ वि	१-११	न य दुक्खा विमोयस्ति	२०-२३, २६, २७	नवहि वरिसेहि ऊणा	३५-४६
न निरट्ठं न मम्मयं	१-२५	न य पावपरिक्खेवी	११-१२	न बा लेज्जा निवणं सहायं	३२-५
न निजिज्जस्ति संसारे	३-५	न य मम्ममुदाहरे	११-४	'न वि कस्सवि उववाओ'	३४-५८, ५६
न निसीएज्ज कयाइ वि	१-२१	न य मित्तेसु कुप्पई	११-१२	नवि अज्जाण जं मुहं	२५-११
नवणे सो उ पासाए	१६-३	न य वित्तासए परं	२-२०	नवि जाणसि वेयमुहं	१५-११
नव्वावत्ते य विधिए	३६-१४७	न याज्जणुत्तेसु मणं पि कुज्जा	३२-२१	न विज्जई अन्नमिहेह किंचि	१४-४०
ननेसि चक्खुकासओ	१-३३	न यावि पूयं गरहं व संजए	२१-२५, २०	न वि निव्वाहणाय वा	२५-१०
न पए न पयावए	२-२	न यावि भोगा पुरिसाण निज्जा	३१-३१	न वि मुण्णिणए सण्णे	२५-२६
न पक्खओ न पुत्तो	१-१८	न यावि भोगा विण्णं उवेति	३२-१०१	न वि षट्ठो न वि कुट्टो	२५-६
न पये न पयावए	३५-१०	नरए उववज्जई	७-२८	न वि सा मज्ज दाहिई	२७-१२
न पारए होइ हु संपराए	२०-४१	नरएषु दुक्खं च तिरिक्खओणिणु	१६-१०	न बीएज्जा य अययं	२-६
नपुंसकेयं विविहे य भावे	३२-१०२	नरएषु दुक्खवेयणा	१६-७३		

उत्तरउभयपं (उत्तराच्यपन)

३२

न वीरयामस्त करेति किंचि	३२-१००	नागो ब्य बन्धनं शिला	१४-४८	नापुट्रो बागरे किंचि	१-१४
न वीरबायं अणुजाइ भगं	२०-४०	नामी संघामसीसे बा	२-१०	नायं कम्मं तु बुद्धिहं	३३-१३
न वीससे पणिए आसुपन्ने	४-६	नायं च दंसणं षेव	२३-३३; २८-२, ३, ११	नायकम्मं च नायं च	३३-३
न संसत्तति सरयन्ते	५-२६	नायं नाणीहि देसियं	२८-५	नामवीत्ताणं उक्कोसा	३३-२३
न संससे न वारेउजा	२-११	नायंमि दंसणंमी	२६-५७	नामाई तु जह्मकम्मं	३४-३
न सयं मिहाडं कुउडा	३५-८	नाणदंसणकल्लणं	२८-१	नामाई बण्णरसगन्ध-	३४-२
न सव्वत्थ विवाहिया	३६-१३०, १३६, १७३,	नाणदंसणसन्निवा	३६-६६, ६७	नायेणं संखए नाम	६-०
	१८२, १८६	नाणसंपन्नायाए णं मत्ते ! जीवे किं		नायएज्ज तणाममि	६-७
न सव्व सव्वत्थउभिरायएज्जा	२१-१५		२६५०५०	नायए परिनिब्बुए	३६-२६८
न सा पडिनिवत्ताई	१४-२४, २५	नाणस्त केवलीणं	३६-२६५	नायए परिनिब्बुडे	१८-२४
न सा पारसस घामिणी	२३-७१	नाणस्त सव्वस्त पमासयाए	३२-२	नायव्वं दंसणवरणं	३३-६
न सा भयं वियाणाइ	२७-१२	नाणस्तावरणिज्जं	३३-२	नायव्वा अमीरत्ताओ	२६-१५
न तिणेहं कहिचि कुब्जेजा	८-२	नाणाकुमुसंछन्नं	२०-३	नायव्वा काउलेसाए	३४-३६
न तिया अइल्लोए	११-५	नाणागोत्तासु जाइसु	३-२	नायव्वा किण्हेसाए	३४-३४
न तिया तोत्तपवेत्तए	१-४०	नाणादुमलयाइज्जं	२०-३	नायव्वा नेउलेसाए	३४-३७
न ते इहं नेव परव्व लोए	१७-२०	नाणाधनपडिपुणे	११-२६	नायव्वा नील्लेसाए	३४-३५
न तो सुयसत्तायवम्मस्त	६-४४	नाणापक्खित्तियं	२०-३	नायव्वा पम्हेसाए	३४-३८
न तो होइ पसंखिओ	१४-३८	नाणारयणपडिपुणे	११-३०	नायव्वा सुक्कलेसाए	३४-३६, ४६
नहं ओगाहल्लणं	२८-६	नाणारहं च छन्दं च	१८-३०	नायव्वा होइ इत्तखिओ	३०-११
'न हणे वाणिणो पाणे'	६-६	नाणावज्जणसंजुयं	१२-३४	नारीणणाई परिवारयन्तो	१३-१४
न ह्णु जिणे अज्ज दिससई	१०-३१	नाणावरणं पंचविहं	३३-४	नारीतो नोपगिज्जेउजा	८-१६
न ह्णु ते समणा बुच्चन्ति	८-१३	नाणाविह्विगण्यं	२३-३२	नालं ते मम ताणाए	६-३
न ह्णु दाहामि ते भिक्खं	२५-६	नाणासीसा धारात्था	५-१६	नायकले कयाइ वि	६-१३
न ह्णु पाणवहं अणुजाणे	८-८	नाणी नो परिदेवए	२-१३	नावा य इह का तुत्ता ?	२३-७२
न ह्णु मुणी कोवपरा ह्वन्ति	१२-३१	नाणुचित्ते कयाइ वि	१६-६	नावा विपरिधावई	२३-७०
न ह्णु सी पभू पुमं पुत्ता !	१६-३४	'नाणुत्तयेज्ज पल्लव'	२-३६	नासन्ने नाइहूरओ	१-३४
नह्वेव कुंवा समइक्कमन्ता	१४-३६	नाणुत्तयेज्ज संखए	२-३०	नासन्ने बिलमज्जिए	२४-१८
ना		नाणेणं दंसणं च	२२-२६; २८-१०	नाओले न विसोले	११-५
नाइउज्जे व नीए बा	१-३४	नाणेण जाणई भावे	२८-३५	माहं रये पक्खणि पंजरे बा	१४-५१
नाइहूरमयासन्ने	१-३३; २०-७	नाणेण य मुणी होइ	२५-३०	नाहो मज्ज न विज्जई	२०-६
नाइमत्तं तु भुंजेउडा	१६-८	नाणेण विणा न हुत्ति चरणगुणा	२८-३०	नि	
नाइमिहिट्टं तव्चं चरे	३६-२५३	नाणे दंसणे षेव	२६-३६	निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोमं	३२-४
नाइवेलं मुणी गच्छे	२-६	नाणोत्तसिपज्जलिए	११-२६	निक्कसिज्जमइ सव्वसो	१-४
नाइवेलं विह्वेउजा	२-२२	नादंसणिस्स नाणं	२८-३०	निक्कसत्ता जिणसासणे	१८-४६
नागो जहा पंचकलावसन्तो	१३-३०	नानमत्ति नराहिवा !	६-३२	निक्कसन्तो जिणसासणे	१८-१६

निमलमणं तस्स काण्डं जे	२२-२१	निम्ममत्तं गुट्टुकरं	१६-२६	निसग्गुवएसर्ह	२८-१६
निमलमिम बारगाओ	२२-२२	निम्मओ निरुहंकारो	१६-८६; ३५-२१	निसन्ने सिवाऽमुहुरी	१-८
निमिन्नविताणं मायणं	२६-३६	निमोयणं हिण्ण वलेइ मुत्तो	१४-३४	निसम्मं रक्खमूलप्पिम	२०-४
निममे य आगरे पल्ली	३०-१६	निमगाओ भवणाओ	२२-१३	निसीएअप्पकुक्कुए	१-३०
निममे वा रायहाणिए	२-१८	निमिल्ले अणुज्जुए	३४-२५	निसेज्जं पायकम्भलं	१७-७
निगान्धो वि न करेज्ज छहिं वेव	२६-३३	निगळ्ध धम्मं लहियाण वी जहा	२०-३८	निससंकिं निमकसिय	२८-३१
निगान्धे पावयणे	२१-२	नियत्तेज्ज जयं जई	२४-२१, २३, २५	निससंगो वत्तगारवो	१६-८६
निगान्धो चिइमन्तो	२६-३३	नियत्तो हाससोगाओ	१६-६१	निससंता अजिइनिऽओ	३४-२२
निगयां होहिं मन्ने	२७-१२	नियागमसुहं कडं	१३-२८	निहन्नुण उवायओ	२३-४१
निष्कं भीएण तत्थेण	१६-७१	निरंगो सञ्जओ विप्पमुक्के	२१-२४	निहियं दुइओ वि विरायइ	११-१५
निष्कं मुट्ठममाणसो	१६-३	निरट्ठगम्मि विरओ	१-४२	नो	
निष्कहालप्पमत्तेण	१६-२६	निरट्ठोया परिवावमेइ	२०-५०	नीया तत्तवगाविय	३६-१४८
निष्कवत्तो परिबज्जए	१६-१, ७, १०, १४	निरट्ठणिए उ वजए	१-८	नीयावत्तो अबबले	११-१०
निष्काउत्तंण वृक्करं	१६-२६	निरट्ठिया नगगई उ तस्स	२०-४६	नीयाविती अबबले	३४-२७
निज्जाइ उरगं व थलाओ	८-६	निरवक्खा 'बुद्धिया	३०-६	नील्लसं तु परिणमे	३४-२४
निजाओ वण्हुंगुओ	२२-१३	निरवेक्खो परिव्वए	६-१५	नील्लेसा उ वण्णओ	३४-५
निजाणं पावगं इमं	२१-६	निरस्ताए उ संजमे	१६-३७	नीलाऽजोगसंकासा	३४-५
निज्जुक्किण आहारं	३५-२०	निरासवे संलविवाण कम्मं	२०-५२	नीहरति मयं पुत्ता	१८-१५
निहा तहेव पयला	३३-५	निरोव्वेसाइ असंयडाइं	२१-२२	नीहारिमणीहारी	३०-१३
निहानिहा य पयलपयला य	३५-५	निवडइ राइणणाण अचवए	१०-१	नीहासा य निराणन्दा	२२-२८
निहासीले पगामसो	१७-३	निवैसइ निवज्जई	२७-५	ने	
निदन्तसलपावणं	२५-२१	निव्वलई जस्स कएण दुक्खं	३२-३२, ४५, ५८, ७१, ८४, ९७	नेच्छई सामुदाणियं	१७-१६
निदन्तसपरिणाओ	३४-२२	निव्वत्तवन्ती अमणुन्नयं वा	३२-१०६	नेयाउयं दट्ठमुदट्ठमेव	४-५
निदुण्णिताण निपाओ	१६-८७	निव्वाणं च न गच्छइ	११-६	नेयासिं दुत्तरमसिय लोए	३२-१७
निव्वणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६सू०७	निव्वाणं पत्तमं जाइ	३३-१२	नेरइयतिरिक्खाउ	३३-१२
निनेहा निप्परिमाहा	१४-४६	निव्वाणं ति अवाहं ति	२३-८३	नेरइयतिरिक्खा य	३३-१५४
निग्गेरियच्छे रहिरं वमन्ते	१२-२६	निव्वाणमणं बिरए उवेइ	२१-२०	नेरइयाणं तु अत्तरं	३६-१६८
निमंतवत्तं च मुए घणेणं	१४-११	निव्वावास्तं भिक्खुणो	६-१५	नेरइयाणं विद्याहिया	३६-१६७
निमज्जितं मोहमहणवस्मि	३२-१०५	निव्विणकाओ मि महुणवाओ	१६-१०	नेरइया सत्तविहा	३६-१५६
निमन्तिओ य भोगेहिं	२०-५०	निव्विणसंसारमया जहाय	१४-२	नेव किच्चाण पिट्ठओ	१-१८
निमित्तं कोकल्ल संपगाडे	२०-४५	निव्वित्तिणिक्खा अमूढविट्ठो य	२८-३१	नेव कुज्जा कयाइ वि	१-१७
निमित्तेण य बवइरई	१७-१८	निव्विसया निरासिसा	१४-४६	नेव कुज्जा परिमाहं	२-१६
निमैसन्नरिमितं पि	१६-७४	निव्वेएणं भन्ते ! जीवे किं	२६सू०३	नेव चिट्ठे न संलवे	१-२६
निम्मरसो कइयरोहिणीरसो वा	३४-१०	निग्गएइ ति नायव्वो	२८-१८	नेव ताणाय तं तव	१४-३६
				नेव पत्तहिययं कुज्जा	१-१६

नेव सेजामगो कया	१-२२	पञ्चमकाले य मुहूर्ते	३२-३१,४४,५७,	पंचेव समिहजो	२४-१
नेहपासा भयंकरा	२३-४३		७०,८३,९६	पंजली पण्डितुधई	२०-७
नो		पंचभूया उ इच्छिजो	२-१७	पंचिया पण्डितकल्या	९-६२
नो अहमाया पाणभोयणं आहरेता हवइ...		पंचमा भूमाभा	३६-१५७	पण्डितमि तहेव य	३१-१८
	१६सू०१०	पंचेग व रण्य व	२-३६	पण्डितकण्टठस वावि जाणिसजो	३४-१३
नो इत्थीणं इन्दियां...	१६ सू० ६	पंलाविहो ज्य जहेह पक्खी	१४-३०	पण्डितुज्जो अणत्तलो	१९-४९
नो इत्थीणं कइ कहिता हवइ...	१६ सू० ४	पंच जिण विद्या दस	२३-३६	पण्डितमि दिवोपिदि	२७-१४
नो इत्थीणं कुहुत्तरं सि बा...	१६ सू० ७	पंचयं कुसल्लणां य	२३-१७	पण्डितमि महेसिणो	२८-३६
नो इत्थीहिं सिद्धि...	१६ सू० ५	पंचमस्मि जहन्नेणं	३६-२३८	पण्डितपिण्डं व संजए	१-१९
नो इन्दियमोज्ज अमुत्तमाभा	१४-१९	पंचमहज्जपजुतो	१९-८८	पण्डितो य वउत्तिह्वा	३६-१८८
नो एणं पण्डितजए	३-१०	पंचमहज्जपचम्मं	२३-८७	पण्डितो पत्तं समादाया	६-१५
नोकासाय तहेव य	३३-१०	पंचमाए जहन्नेणं	३६-१६४	पण्डितो य पुण्डितं	२६-१४
नो ताहिं विणिहन्नेजा	२-१७	पंचमा छेदना नाम	२६-३	पण्डिता जय वेयणा	५-१२
नो तेसि वयइ सिलोमयं	१५-९	पंचमा होइ नायज्जा	३३-५	पण्डितपुत्ता अणियमसोक्ता	१४-१३
नो तेसिमारेणं दंडं	८-१०	पंचमटोहिं समाहिजो	२२-२४	पण्डितकलाणं भन्ते ! जीवे कि...	२९सू०१४
नो निग्गो पुब्बरयं पुब्बकील्लियं अणुत्तरिता		पंचमो छट्ठजो पण्णत्तजो	३०-११	पण्डितपयं व लोमस	२३-३२
हवइ...	१६ सू० ८	पंचलक्खणं तुम	१९-४३	पण्डिताया छट्ठा	३०-१९
नो पणीयं ब्राह्मणं आहरेता हवइ...	१६सू०९	पंचविह्वल्लरायं	३३-१५	पण्डितपण्णपण्णायो	७-९
नो रक्खलीमु गिज्जेजा	८-१८	पंचविह्व जोइसिया	३६-२०४	पण्डिता कहयविवागा	१९-११
नोबल्लिपइ वारिणा	२५-२६	पंचविह्वे कामणो	१६-१०	पण्डिता गमिस्सामु पण्णामयं	१४-३१
नो विमुसाणुवाई हवइ, ते निग्गो	१६सू०११	पंचसमिजो निमुत्तिपुत्तो य	१९-८८	पण्डिता जाया ! गमिस्सामो	१४-२६
नो वि य वन्दणं कुजो पसंसं	१५-५	पंचसमिजो तिगुत्तो	३०-३	पण्डिताणुतावेण दयाविह्वो	२०-४८
नो सक्किपमिच्छई व पूयं	१५-५	पंचहाणुत्तरा मुरा	३६-२१६	पण्डिताणुतायेव तवपमाव	३२-१०४
नो सट्ठवरसगम्भकामाणुवाई हवइ...	१६सू०१२	पंचहा जलयराहिया	३६-१७२	पण्डिता दिट्ठो य तीह वि	२२-३४
नो सुग्गहा अथीरुपिरिहेहिं	८-६	पंचहा जोइसालया	३६-२०८	पण्डिता धम्मं चरिस्ससि	१९-४३
नो होलए नो वि य विसएजा	१९-८३	पंचहा ते पक्तिरिया	३६-१६-८,२१,२५,	पण्डिता पण्डिताणुताव	१०-३३
नो होलए पिण्डं मीरसं तु	१५-१३		११८	पण्डिता परिन्नाय मल्लवत्तली	४-७
प		पंचालाराया ! वयणं पुणाहि	१३-२६	पण्डिता पुरा व चहयजे	१९-१३
पण्णणं विट्ठवाजो य	२८-२३	पंचालाराया वि य बम्भदत्तो	१३-३४	पण्डितायत्ता नियमं सरोरं	१२-८
पण्ण वाई दुहिले	११-९	पंचालेसु य दुम्भुही	१८-५४	पण्डितपण्णत्ता	३६-७०,८४,९२,१०८
पण्डितकुवस्सयं छट्ठं	२-२३	पंचालवपपत्तो	३४-२१	पण्डितपण्णत्ता	११७,१२७,१३६,१४५
पण्डितके परकजे वा	३५-६	पण्डितियवियमदणो	१०-१३	पण्डितवत्तलो भवे मिकल्लु	३०-२४
पण्डितज इमं विहिं	२४-१३	पण्डितियवित्तिकाजो	३६-१७०	पण्डितवत्तलो व सत्थेसि	२८-५
पण्डितं खेतकाले य	३३-१६	पण्डितिया उ जे जीवा	३६-१५५	पण्डितवत्तलो तु लक्खणं	२८-१३
पण्डितगणपत्तं	३३-१७	पण्डितियाणि कोहं	९-३६	पण्डितवत्तलो वत्तलो	३०-१६

पडति नरए घोरे	१८-२४	पडमि कहनेणं	३६-२३४	पलरस तीसइ विहा	३६-१६७
पडिक्खं को कुणई	१६-७६	पडमा आवत्तिया नाम	२६-२	पला समिक्खए वम्भं	२३-२५
पडिक्खइ अभिक्खणं	२७-११	पडमाए कहनेणं	३६-१६०	पमे अभिभूय सम्भदंसी	१५-२, १५
पडिक्खणं भन्ते ! जीवे किं...	१६सू०१२	पडमे मए महाराया !	२०-१६	पयोति मच्चुं पुरिसे जरं च	१४-१४
पडिक्खामि पत्तिपाणं	१८-३१	पडमे शासकउक्कमि	३६-२५२	पणोडणा चठणी	२६-२६
पडिक्खित्ता काळस्स	२६-३७	पडमे समयम्मि परिणयाहि तु	३४-५८	पवत्थ च न कुञ्जई	११-११
पडिक्खित्तु काळस्स	२६-४५	पणजीवाण अन्तरं	३६-१०४	पवत्थं च पकुञ्जई	११-७
पडिक्खित्तु निस्सङ्गो	२६-४१, ४६	पणयालसवसहस्सा	३६-५८	पवभट्टा समाहिणोएहि	८-१४
पडिवाहेज्ज संजए	१-३४	पववीसभाबणाहिं	३१-१७	पभाससे किंतु तणासि अम्हं	१२-१६
पडिक्खन्मि संवुडे	१-३५	पववीस सागराई	३६-२३६	पवीओ परलोगस्स	५-११
पडिणीए जसंबुडे	१-३	पवीयं पाणचोयणं	३०-२६	पभूयचणसंचओ	२०-१८
पडिणीय च बुद्धार्णं	१-१७	पवीयं भत्तपाणं च	१६-१२	पभूयगणो राया	२०-२
पडिपुच्छणवाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		पवीयं भत्तपाणं तु	१६-७	पमज्जेज्ज जयं जई	२४-१४
	२६सू०२१	पडिवायं सकाम तु	५-३	पमत्ते य अभिक्खणं	१७-८
पडिपुण दलेज्ज इक्कस्स	८-१६	पडिवायं सुणेह से	५-१७	पमत्ते दसोल्लुं साय गमेसए य	३४-२३
पडिपुणं नालमेवास्स	६-४६	पडिवा पवियक्खणा	१६-६६; २२-४६	पमत्तेसं तु परिणमे	३४-३०
पडिपुणो पुणमासीए	११-२४	पणुपणमासट्टिया	३६-७२	पमत्तेसं उ वण्णओ	३४-८
पडिपं पडिबज्जओ	२-४३	पण्डरा निम्मला मुह्हा	३६-६१	पमत्ते तं पडिप्पुणे	१-२७
पडिक्खं पडिबत्ति	२३-१६	पत्तं दुक्खं अणत्तसो	१६-६१	पयण पयावणेसु य	३५-१०
पडिक्खवाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		पत्तपुक्कलोवेए	६-६	पयणुकोडमाणो य	३४-२६
	२६सू०४३	पत्तिणए पसायए	१-४१	पयाहिनु महाजसो	१८-४६
पडिक्खेण एसिता	१-३२	पत्तीइ महाइ मुह्हासियाई	१२-२४	पयाई जो पसरई उ सम्मतं	२८-२२
पडिलेहणं कुणन्तो	२६-२६	पत्तेमसरीरा उ	३६-६४	पयाहिण करेन्तो	६-४३
पडिलेहणाअणाउत्ते	१७-६	पत्तेया य तट्ठेय य	३६-६३	परं अप्याणमेव य	२५-८, १२, १५, ३३, ३७
पडिलेहणापमतो	२६-३०	पत्तेया इति आहिवा	३६-६४	परं भवं सुंदर पावणं वा	१३-२४
पडिलेहिज्ज गोच्छदं	२६-२३	पत्ते बाणारसि पुरि	२५-२	परं संवेममागओ	२१-१०
पडिलेहिज्ज जयं जई	२६-३८	पत्तो पडमणुत्तरं	१८-३८, ४०, ४२, ४३, ४७	परं करो पडिपुच्छया	२६-५
पडिलेहिताण भण्डयं	२६-२१	पत्तो वेयरणि गदि	१६-५६	परंरोहिं वावडे	१७-१८
पडिलेहिता सुणी कुज्जा	२६-२०	पत्तं सयणासणं अट्ठा	१५-४	परपासण्ड सेवए	१७-१७
पडिलेहेइ पमत्ते	१७-६, १०	पत्तकुलाइं परिष्वाए स भिक्खू	१५-१३	परपावित्स उ निक्कलकाले	१२-६
पडिबज्जइ भावओ	२३-८७	पत्ताणि चैव तवेज्जा	८-१२	परमदुपएहिं चिट्ठई	२१-२१
पडिबज्जया पंच महब्बयाणि	२१-१२	पत्ताणि उववरणं	१२-४	परमत्थसंचयो वा	२८-२८
पडितोओ च्च दुत्तरो	१६-३६	पटुट्ठित्तो य चिवाइ कम्मं	३२-३३, ४६, ५६	परमद्विजोपाओ	२६-३१
पडम पवं पसथं	२६-२८		७२, ८५, ८८	परमरोहिं वा पुणो	१८-३१
पडमं पोरिस्सि सज्जायं	२६-१२, १८, ४३	पयावन्तं निगिहामि	२३-५६	परमाणुओ य बोद्धव्वा	३६-१०

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

३६

परमा दुहसंबदा	१६-७१	परिहारविपुलीयं	२८-३२	पसन्नं ते तथा मगो	१८-२०
परमाहमिषयु य	३१-१२	पक्वणा तेसि भवे	३६-३	पसन्ना लाभस्सन्ति	१-४६
परमोए अणस्सिओ	१६-६२	परे भवे अत्थि जीवस्स	३४-५८, ५६	पसवो दासपोसं	३-१७, ६-५
परलोमे भविस्सई	२२-१६	परेनु वासमेसेआ	२-३०	पसायए ते णु दुरासर्षं पि	१-१३
परस्सज्जुवचाइए	२४-१७	पल्लूस्सणकन्दे य	३६-६७	पसायपेही निपागट्ठी	१-२०
पराइओ बाहिरिओसहेहि	३२-१२	पलालं फामुयं तत्थ	२३-१७	पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे	१२-२६
परिणहं इत्थिओ मागमायं	१२-४१	पल्लवंचम ओवहिए	३४-२५	पसाहि पंचाल गुणोववेयं	१३-१३
परिमाह्विबज्जणं	१६-२६	पल्लोवम ञ्जुभाओ	३६-२२१	एसिडिलपलम्बलोला	२६-२७
परिमाहारमभियत्तदोसा	१४-४१	पल्लोवमं जहन्ना	३४-५२	पमुतो मि नराहिमा !	२०-३३
परिजुण्णेहि बत्थेहि	२-१२	पल्लोवमं तु एगं	३६-२२१	पमुबन्धा सत्थवेया	२५-२८
परिजूरइ ते सरीरयं	१०-२१, २२, २३, २४,	पल्लोवमस्स भाओ	३६-१६१	पहणे कम्ममहाणवं	१८-४८
	२५, २६	पल्लोवमाई तिण्णि उ	३६-२००, २०१	पहयाओ दुट्ठीओ सुरेहि	१२-३६
परिणामो तेसि पंचहा	३६-१५	पल्लोवमाउ तिण्णि उ	३६-१८५, १८५	पहा छायातेवे इ बा	२८-१२
परिणामो न सुन्दरो	१६-१७	पल्लोवममेगं तु	३६-२२०	पहाय ते पास पयट्टिए नरे	४-२
परिदाहेण तज्जिए	२-८	पल्लियमसंलं च उक्कोसा	३४-५०	पहाय रागं च तहेव दोसं	२१-१६
परिमोत्तणा य आ	२४-११	पल्लियमसंलं तु उक्कोसा	३४-४६	पहीणपुत्तस्स णु नत्थि वासो	१४-२६
परिमोयमि चत्थकं	२४-१२	पल्लियमसंलज्ज इमो	३४-४८	पहीणपुत्तो मि तथा अहं पि	१४-३०
परिमंडलसंठागे	३६-४२	पल्लियमसंलज्जेणं	३४-५२	पहीमए कामगुणु तु लण्हा	३२-१७
परिमण्णवा य बट्ठा	३६-२१	पल्लेत्ति पुत्ता य पई य अज्जं	१४-३६	पहू दुक्खे विमुक्कई	३५-२०
परिमियं वेव भायाम	३६-२५४	पल्लोपाणुल्लया वेव	३६-१२६	पा	
परियट्ठणयाए णं भन्ते ! जीवे किं...	२६०२२	पक्कज्जंअस्सिओ गुणी	३५-२	पाइओ कलकलताए	१६-६८
परियट्ठलीए राईए	२०-३३	पक्कइया आबसहा य रम्मा	१३-१३	पाइओ मि जल्लोओ	१६-७०
परियायधम्मं च भरोयएजा	२१-११	पक्कसेज्ज अरी कुओ	२०-२०	पावं होई मुत्तकं	१६-३६
परिवज्जणं रसाणं तु	३०-२६	पक्कडोअणगारियं	२०-३४	पाए पसारिए बाबि	१-१६
परिवज्जितु संजए	२४-१०	पक्कइओ हि सि अणगारियं	१०-२६	पागारं कारइत्ताणं	६-१८
परिवज्जेज्ज संजए	१८-३०	पक्कए अणगारिय	२०-३२, २-१०	पाडिओ फालियो छिन्तो	१६-५४
परिवाडीए न चिट्ठेजा	१-३२	पक्कज्जं सा जिणस्स उ	२२-२८	पाडव सरीरं हिच्चा	३-१३
परिवृत्ते परंवे	७-६	पक्कज्जममुत्तमं	१८-३६	पाणमूयदयट्ठाए	३५-१०
परिव्ययन्ते अणियत्तकामे	१४-१४	पक्कज्जाणाणमुत्तमं	६-६	पाणयम्मि अह्णेणं	३६-२३१
परितप्पा दुविहा भवे	३६-१८१	पक्कयत्तो न सोयइ	२४-२०	पाणवह मिवा अयाणन्ता	८-७
परितप्पाणं पविअत्तो	२-१	पक्कयत्तो न सोयइ	२२-३२	पाणवहमुत्तमाया	३०-२
परितप्पा दुविसहा अणेगे	२१-१७	पक्कयत्तो न सोयइ	१६-६३	पाणवहमुत्तमाया	१२-२३
परितप्पा आयुत्ते सहेजा	२१-१६	पक्कयत्तो न सोयइ	३४-१७, १६	पाणाद वाय बिरइ	१६-२५
परिपुक्कमुहेअणिगे	२-५	पक्कयत्तो न सोयइ	३४-६१	पाणिणो कम्मकिअस्सा	३-५
परिहायन्ति चरिअन्ते	३६-५६	पक्कयत्तो न सोयइ	३४-२६, ३६	पाणिदया तवहेठं	२६-३४

पाभी नु मुष्वाए	२-२६	पासा य हह के मुषा ?	१३-४२	पुष्पाई तं महापुणि	१५-१३
पाभीपाणविओहणं	२६-२५	पासायालोयणट्टिओ	१६-४	पुष्पा जसो ! जहिष्णं ते	२४-२२
पाणे य माइवाएज्जा	८-६	पासायालोयणे ठिओ	२१-८	पुष्पाणास्स सीस्स	१०-२३
पायं रसा विसिकरा नराणं	३२-१०	पासित्ता से महापमे	२२-१५	पुष्पाणि ते महाभाग !	२६-११
पायच्छित्तं तमाहिंयं	३०-३१	पासित्तु महा हणमाहु मुज्जो	१२-२५	पुष्पिउण मए तुभं	२०-५७
पायच्छित्तं तु वसविहं	३०-३१	पासेण य महाजसा	२३-२६	पुष्पिउज्जा पंजलिउओ	१०-२२
पायच्छित्तं विणओ	३०-३०	पासेण य महापुणी	२३-१२, २३	पुष्पेज्जा पंजलिउओ	२६-६
पायच्छित्तकरणेणं भन्ते ! जीवे कि...		पासे समियदंसे	६-४	पुष्पा जस्स पंसीमणि	१-४६
	२६सू०१७	पासेहिं कूयवातेहिं	१६-६३	पुटो केणइ कण्हं	२-४०, ४६
पायसाणीए महावा	१८-२			पुटो तत्पहिमासए	२-३२
पारिवकाउस्तथो	२६-४०, ४२, ४८, ५१	पि		पुटो य संसमसएहिं	२-१०
पारेवमगीवनिभा	३४-६	पिणवायं सयं कोसलएण रत्ता	१२-२२	पुटो वा नाकिं बए	२-१४
पावं पुरा कम्मयकासि मोहा	१४-२०	पिणवायं बरे मुणी	३४-१६	पुठमिहायमइगओ	१०-५
पावकम्मनिरासवे	३०-६	पिणोमाहुपडिमासु	३१-६	पुठवीआउक्काए	२६-३०
पावकम्मपवत्तणे	३१-३	पिणोउए ब दुस्सोले	५-२२	पुठवी आउजीवा य	३६-६६
पावकम्मोहिं पाविओ	१६-५७	पियंकरे पियंवाई	११-१४	पुठवी कट्टमिस्सिवा	३५-११
पावकम्मो अणंतसो	१६-५३	पियं तं विज्जई किमि	६-१५	पुठवी छत्तसंठिया	३६-५७
पावणं पखिज्जए	१-१२	पियधम्मं दवधम्मं	३४-२८	पुठवीजीवाण अत्तरं	३६-८२
पावविट्ठिं ति मन्नाई	१-३८	पियपुत्ता दोलि जि माहुयस्स	१४-५	पुठवी य सकरा बाहुया य	३६-७३
पावविट्ठो उ अण्णाणं	१-३६	पियमपियं तज्ज तित्तिक्खएज्जा	२१-१५	पुठवी सालो जवा केव	६-४६
पावविट्ठो बिहन्नाई	२-२२	पियरं परमदुक्खिया	१८-१५	पुठवीसु सत्तमु भवे	३६-१५६
पावसमाणि ति पुष्पाई	१७-३ से १६ तक	पियदो जि तहा पुत्ते	१८-१५	पुत्तो विसंभिया पया	३-२
पावमुयपसोसु	३१-१६	पिया आणेइ रुविणिं	२१-७	पुणो वलवीए सज्जायं	२६-१२
पावाइ कम्माइ पुणोल्लयाओ ?	१२-४०	पिया मे सज्जसारं पि	२०-२४	पुणो पुणो कव्वाई तक्को	६-५६
पावेसु तं दमीसरा !	२२-२५	पियायमुय जक्का य	३६-२०७	पुणं पावासओ तहा	२८-१४
पासइ समण संजयं	१६-५	पिण्हं नगरमागए	२१-२	पुत्तं ठवेसु रज्जे	६-२
पासजार्हपे बहू	६-२	पिण्हं बबहरत्तस्स	२१-३	पुत्तं दारं च नायओ	१६-८७
पासज्जा कोउमा विणा	२३-१६			पुत्तं रज्जे ठविसाणं	१८-३७, ४६
पासबद्धा सरीरियो	२३-४०	पी		पुत्तदारं च बंधवा	१६-१६
पासमाणी न क्खिंई हाई	८-४	पीणिए विउले देहे	७-२	पुत्तसोगुहट्टिया	२०-२५
पासबपुष्पाएभूमिं च	२६-३८	पीळिओ मि सक्कमिहिं	१६-५३	पुत्ते पविठय गिहंति बावा !	१४-६
पासाए काएत्ताणं	६-२४	पीळइ अत्तदुगु किल्लिं	३२-२७, ४०, ५३, ६६, ७६, ८२	पुत्ते रज्जे ठविसाणं	१८-४६
पासाए कीलए रम्मे	२१-७			पुत्तो मे भाय नाइ ति	१-३६
पासाएयु गिहेसु य ?	६-७	पु		पुत्तमायाम्म कुमार दो वी	१४-३
पासाओ जि न पिण्हं	२०-३०	पुत्तलाणं तु लक्कणं	२८-१२	पुत्तं अत्तेउरं च मे	२०-१४
		पुत्ताला समुदाहिया	३६-२०		

पुराणपुरमेयणी	२०-१८	पोस्ले ब मुट्टी जह से जसाये	२०-४२	फे	
पुरिमल पण्डितमी	२३-८७	पोसह बुद्धो पण्ड	४-२३	फे	के
पुरिमा उज्जुजडा उ	२३-२६	पोसेज्जा बि सयंगणे	७-१	ब	के
परिमाणं पुम्विसोअमी उ	२३-२७	पोसे मासे चउपया	२६-१३	ब	के
पुरितेसु य अट्ठसयं	३६-५१	फ			
पुरीए तल्य माहणे	२५-४	कम्पणबडसाहेसु य	२६-१५	फ	
पुरे पुराणे उमुयारत्तामे	१४-१	कप्पं पि जणुसासनं	१-२६		
पुरोहिओ तस्स जस्ता य पत्ती	१४-३	फलेह विममक्कीणि	२३-४५		
पुरोहिह तं कमसोअणुक्कं	१४-११	फा			
पुरोहिह तं ससुयं सवारं	१४-३७	कासओ उण्णए जे उ	३६-३६		
पुल्ल सोगणिए य बोडब्बे	३६-७६	कासओ कल्लजे जे उ	३६-३४		
पुब्बं ता बल्लयेय पडिलेहे	२६-२४	कासओ गृए जे उ	३६-३६		
पुब्बं विमुदसडम्भे	३-१६	कासओ निहए जे उ	३६-४०		
पुब्बकम्मलसयट्ठाए	६-१३	कासओ परिणया जे उ	३६-१६		
पुब्बकोटीपुहलं सु	३६-१७६	कासओ मउए जे उ	३६-३५		
पुब्बकोटीपुहलेणं	३६-१८५, १८२, २०१	कासओ लहए जे उ	३६-३७		
पुब्बाहं बासाहं वरप्यमत्तो	४-८	कासओ लुक्कए जे उ	३६-४१		
पुब्बा वाससया बह	३-१५	कासओ सीयए जे उ	३६-३८		
‘पुम्बि च इण्हि च अणागयं च’	१२-३२	कासपरिणामलक्कणं	३४-२		
पुम्बि भावणभाविआ	१४-५२	कासस्स कायं गहणं ययंति	३२-७५		
पुम्बिल्लंमि चउक्कमाए	२६-८, २१	कासाणुमासाणुए य जीवे	३२-७६		
पुहुत्तेण अणाईया	३६-६५	कासाणुरत्तस्स नरस्स एव	३२-८४		
पू		कासाणुवाणए परिगहेण	३२-८०		
पूदहेहनिरोहेणं	७-२६	कासा कुसली अलमज्जं च	४-११		
पे		कासिदिम निगएणं भन्ते ! जीवे	२६५०६७		
पेचवयं नाबहुज्जसे	१८-१३	कासुए सिउजंजंभारे	२३-४, ८		
पेच्चा होहिंसि उत्तमी	६-५८	कासुए सेज्जंभारे	२५-३		
पेज्जोसकिच्छादंसणविजएणं भन्ते ! २६५०७२		कासुयं परकडं पिण्डं	१-३४		
पेडा य अट्ठपेडा	३०-१६	कासुयम्मि अणावाहे	३५-७		
पेतिया पल्लवंचित्त	२७-१३	कासे अत्तिउत्तस्स परिगहे य	३२-८२		
पो		कासे अत्तिने य परिगहे य	३२-८१		
पोएण बवहरत्ते	२१-२	कासे अत्तिओ दृहिओ अणिस्सो	३२-८३		
पोरितीए च उलोए	२६-४४	कासे विरत्तो मणुओ विसोयो	३२-८६		
पोरितीए चउक्कमाए	२६-२२, ३७, ४५	कासेसु जो गिडिम्वेड तिब्बं	३२-७६		

बहुसंविधियारयं	७-८	बाभीससहस्राहं	३६-८०	बो	
बहु कम्म लेब लिताणं	८-१५	बाभीस सागरा क	३६-१६५	बोद्धव्या इन्द्रकाश्यपा	३६-१३८
बहुपाणविणासणे	३५-१२	बाभीसाए परीसहे	३१-१५	बोही होइ सुसुल्ला तेति	८-१५
बहुपाणिविणासयं	२२-१८	बाहाहि काउं संगोफं	२२-३५	भ	
बहुसए विस्सई यणवेसिए	१०-३१	बाहाहि सागरो भेव	१६-३६	भए फासओ वि य	३६-४२से४६
बहुमाई पमुहरे	१७-११	बाहिरअन्तरो तहा	२८-३४; ३०-७	भए संट्ठाणओ वि य	३६-२२से४१
बहुयं मा य झालये	१-१०	बाहिरो छविहो वुलो	२८-३४; ३०-७	भए से उ गंभओ	३६-२२, २६
बहुयाणि उ वासाणि	१६-६५	बि		भए से उ ग्णओ	३६-२७से४६तक
बहुसो भेव विबाइओ	१६-६३	बिद्यए वासचउक्कम्मि	३६-२५२	भइणीओ मे महाराय !	२०-२७
बहूणं बहुणो सया	६-६	बिद्ययम्मि जहल्लेणं	३६-२३५	भइयव्वा ते उ लेत्तओ	३६-११
बा		बिद्या य निवीहिवा	२६-२	भगवं अरिटु नेमि त्ति	२२-४
बाळं ति पविण्णइ भत्तपाणं	१२-३५	बो		भगवं ! एय मे लमे	१८-८
बायरकाए भणिविहाणा	३६-७४	बीए तोहेज्ज एसणं	२४-१२	भगवं गोयमे नामं	२३-६
बायरा जे उ पउज्जा ३६-७१, ८५, ८३, १०६	११८	बीयं फ्फावं किंयायई	२६-१२, १८, ४३	भगवं बढमाणो त्ति	२३-५
	२३-७	बीयाणि हरियाणि य	१७-६	भगवं ! बाहराहि मे	१८-१०
बारसं बिजु बुडे	२३-७	बु		भगवं वेसालिए विवाहिए	६-१७
बारसहि जोगणेहि	३६-५७	बुद्धपुत्त मियागट्ठी	१-७	भगुज्जोयपराइयं	२२-३६
बारसेव उ वासाई	३६-२५१	बुद्धस तिसम्म भासियं	१०-३७	भज्जं जायइ केसओ	२२-६
वाल सम्मइ सासन्तो	१-३७	बुद्धाणं अन्तिए सया	१-८	भज्जन्ति पिइहुब्बला	२७-८
वालणपोइयाओ य	६-२४	बुडे अभिजाइए	११-१३	भज्जा पुत्ता य ओरसा	६-३
वालमरणाणि बहुसो	३६-२६१	बुडे परिनिब्बुडे बरे	१०-३४	भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य	१३-२५
वालस्स पस्स वालत्तं	७-२८	बुडेहाययियं सया	१-४२	भगन्ता अकरेन्ता य	६-६
वालानं अकामं तु	५-३	बुडो भोगे परिण्वयई	६-३	भणियं रसविउज्जणं	३०-२६
वालानं कूरकम्माणं	५-१२	बुडोववाई न सिया	१-४०	भणिया जिणबरेहिं	३६-६०
वालानं तु पवेइयं	५-१७	बू		भण्णं दुविह मणी	२४-१३
बाला पञ्चिमणिणो	६-१०	बूहि जल्लाण जं मुहं	२५-१४	भण्णं पडिलेहिता	२६-८
बालापाविवाहिं दिट्ठीहि	८-७	बूहि धम्माण बा मुहं	२५-१४	भत्तं पाणं गवेमए	२६-३१
बालाभिरामेसु दुहावहेसु	१३-१७	बे		भत्तपण्वक्काणेणं भन्ते ! जीवे किं	२६४०४१
बाले मज्जमुहं पत्ते	५-१५	बेइन्धियआ उठिई	३६-१३२	भत्तपाणस्स अट्ठाए	१६-८०
बाले य मन्तिए मूडे	८-५	बेइन्धियकायठिई	३६-१३३	भत्तपाणेय पोसिया	२७-१४
बाले सन्तस्सई भया	५-१६	बेइन्धियकायमइणओ	१०-१०	भत्त पाणिय कतिए य पोसे य	१२-२०
बालेहि मुहेहि अयाणएहिं	१२-३१	बेइन्धियजीवाणं	३६-१३४	भमरे कीडयणो य	३६-१४६
बावत्तरि कलाओ य	२१-६	बेइन्धियतेइन्धिय	३६-१२६	भयट्ठाणि सु सत्तनु	३१-६
बाबीसं सागराई	३६-२३३	बेइन्धिया उ जे जीबा	३६-१२७	भयभेरदा तत्थ उइत्ति जीमा	२१-१६
बाबीसं सागरोबमा	३६-१६६, २३४				

भयं कतेतरं तेन	६-१२	भावे अतिरस्त परितोह य	५-१५-१२	मिमा ह न बहुति मे	५-१५-१२
भयं केतिमोयमे	२१-५६	भावे अतिरस्तो य परितोह य	५-१५-१४	मिमां कुराह कुम्ह	५-१५-१४
भयं केतिमो उभार	१-१	भावे अतिरस्तो दुहितो अगितो	५-१२-१६	मी	
भयं बाहं नरोरु	१८-४०	भावेनं पञ्चवेहि य	५-१०-१४	मीए संते मिए तल	१८-१
भयं बाहं कसिदो	१८-१५	भावेनं संहृतस्त	५-१०-१५	मीमा भयमेरवा डराला	१५-१४
भयं बाहं बाहं	१८-१५	भावे निरस्तो-अगुनो भित्तो	५-१२-१६	मीमा भीमकलोदवा	२१-४८
भयं बाहं पल्लोहि य	१६-४५	भावेनो को निदिमुवेह तिवं	५-१२-८६	मीमं पवेविमं दटुं	२२-१६
भयं केतिमं कम्	१०-६	भावेनो मुनेयवो	५-२३	मीमा य सा तहि दटुं	२२-१५
भयं केतिमं कम्	१५-४१	भयं मुनिवरो विगयमोहो	५-३	भु	
भयं केतिमं कम्	२३-४८	भयं भयं पत्नवं	५-४-१०	भुकोरपरितपा य	५-१८-१
भयं केतिमं कम्	३६-६१	भयं केतिमं कम्	२५-१८	भुकोर संसोयिणं	२-११
भयं केतिमं कम्	३६-६४	भयं केतिमं कम्	१-२४	भुकोर मागुस्स ए भो	२-४३
भयं केतिमं कम्	३६-२६८	भयं केतिमं कम्	१६-२६	भुकोर मागुस्स ए भो	५-१०-६
भयं केतिमं कम्	६-२२	भयं केतिमं कम्		भुकोर मागुस्स ए भो	२०-१४
भयं केतिमं कम्	६-४२	भयं केतिमं कम्	१२-३	भुकोर मागुस्स ए भो	१५-३१
भयं केतिमं कम्	१५-४५	भयं केतिमं कम्	१५-२६	भुकोर मागुस्स ए भो	१३-१४
भयं केतिमं कम्	७-२६	भयं केतिमं कम्	५-२२, २८	भुकोर मागुस्स ए भो	१५-३३
भयं केतिमं कम्	२३-८४	भयं केतिमं कम्	३०-२५	भुकोर मागुस्स ए भो	१२-३४
भयं केतिमं कम्		भयं केतिमं कम्	३०-८	भुकोर मागुस्स ए भो	६-३
भयं केतिमं कम्	२३-७७	भयं केतिमं कम्	२७-१०	भुकोर मागुस्स ए भो	५-२७
भयं केतिमं कम्	२६-२२	भयं केतिमं कम्	३५-१५	भुकोर मागुस्स ए भो	७-२७
भयं केतिमं कम्	२८-६	भयं केतिमं कम्	३५-१५	भुकोर मागुस्स ए भो	१२-३६
भयं केतिमं कम्	१३-४	भयं केतिमं कम्	३५-१५	भुकोर मागुस्स ए भो	२२-३८
भयं केतिमं कम्	२०-२६	भयं केतिमं कम्	३५-१५	भुकोर मागुस्स ए भो	१६-४३
भयं केतिमं कम्	२०-२८	भयं केतिमं कम्	२-२६	भुकोर मागुस्स ए भो	१५-१२
भयं केतिमं कम्	४-६	भयं केतिमं कम्	३१-१०	भुकोर मागुस्स ए भो	१५-३२
भयं केतिमं कम्	३३-१६	भयं केतिमं कम्	२१-११, १७	भुकोर मागुस्स ए भो	१६-११
भयं केतिमं कम्	१६-६४	भयं केतिमं कम्	२५-६	भुकोर मागुस्स ए भो	३६-७५
भयं केतिमं कम्	३०-२४	भयं केतिमं कम्	३१-११	भुकोर मागुस्स ए भो	
भयं केतिमं कम्		भयं केतिमं कम्	३१-३२	भुकोर मागुस्स ए भो	
भयं केतिमं कम्	२६-७५	भयं केतिमं कम्	३१-१०	भुकोर मागुस्स ए भो	३६-२६
भयं केतिमं कम्	३२-५८	भयं केतिमं कम्	३५-१५	भुकोर मागुस्स ए भो	३-८
भयं केतिमं कम्	३२-६२	भयं केतिमं कम्	३५-७	भुकोर मागुस्स ए भो	५-१७
भयं केतिमं कम्	३२-६७	भयं केतिमं कम्	३५-७	भुकोर मागुस्स ए भो	१५-३५
भयं केतिमं कम्	३२-६९	भयं केतिमं कम्	३५-७	भुकोर मागुस्स ए भो	३५-८

भे

भेओ होइ आहिओ

३६-१६८

भेत्तणं कम्मकण्यं

६-२२

भेयं वेहस्स कंसाए

५-३१

भेया अट्ठमीसई

३६-१६७

भेया छातीसमाहिवा

३६-७७

भो

भोइत्ता समणमाहो

६-३८

भोए वयसि पत्थिवा !

६-५१

भोगकालम्मि संजया !

२०-८

भोगा इमे संगकरा हवन्ति

१३-२७

भोगामिसदोतविसणो

८-५

भोगी भमइ ससारे

२५-३६

भोगे भुंजाहि संजया !

२०-११

भोगे भोच्चा वसिता य

१५-४४

भोच्चाण भोए सह इत्थियाहि

१५-६

भोच्चा देच्चा सुहं सुवइ

१७-३

भोच्चा माणुसए भोए

३-१६

भो भिक्खू सव्वकासियं

२५-८

इत्तर

३६-२०४

भोमेजमाणं जहल्लेणं

३६-२१६

भोयणे परिणिट्ठिए

२-३०

भोयामेअं बहु जणं

२२-१७

भ

भए उ मन्द पुण्णं

१८-७

भए माय भणायं वा

२०-२६

भए सोडाओ भोमाओ

१६-४५

भए सोडाणि भोमाणि

१६-४६

भयट्ठा भविस्यज्जए

२२-१५

भयं कुलीकाण बह्माय सव्वं

२०-५१

भयं व पविज्जई

२३-५६

भयं बुद्धेहि देसियं

३५-१

भयं विराहेपु विपुत्तमानं

२०-५०

भयमाभी महाभुणी

२५-२

भयो उण्हइअजए

२५-५

भणेण जयणाइ य

२५-४

भणे तव सुहावहे

२३-८७

भणे य इइ के वुत्ते ?

२३-६२

भयवं नाम महाजसो

१८-३६

भयुणाज्जमाहोओ लोयो

१५-२३

भयू नरं नेह इ अन्तकाले

१३-२२

भय्हा जहा काम्णे पहाय

१५-३५

भय्हा य कण्हाया य

३६-१७२

भय्खयपत्ता तण्णरी

३६-५६

भय्खया मसत्ता त्हा

३६-१४६

भय्हे जहा आम्मिसोगगिइ

३२-६३

भय्खो वा जवसो अहं

१६-६५

भय्जम्मा उज्जुपत्ता य

३६-२६

भय्जम्माउवत्तिमा तहा

३६-२१५

भय्जम्माभय्जम्मा जेव

३६-२१५

भय्जम्माहेट्ठिमा तहा

३६-२१३

भय्जं भिट्ठसि गीयमा ?

२३-३५

भय्जइत्थियचित्तवो

३०-११

भयं पवत्तमाणं तु

२५-२१

भयं पि न पवोसए

२-११,२६

भयणुत्तयाए नं नत्ते ! जीवे किं

जणयइ ? २६ सू० ५४

भयगुत्ती अज्झिहा

२५-२०

भयगुत्ती वयगुत्ती

२५-२

भयगुत्ती वयगुत्तो

१२-३; २२-५७

भयमाणं व केवलं

२८-४; ३३-४

भयपरिणामे य कए

२२-२१

भयपत्थायजणणि

१६-२

भयपट्ठोओ न मे वत्थि कोइ

१२-१२

भयवक्कायमुत्तंमुत्ते स भिक्खू

१५-१२

भयसमाहारणयाए नं नत्ते ! जीवे किं

२६ सू० ५७

भयत्ता कायवक्केणं

६-११; २५-२५

भयत्ता वयत्ता कायत्ता वय

८-१०

भयत्ता भि न पवत्तए

३५-४, १३, १८

भणस्स भावं गहणं वयन्ति

३२-८७, ८८

भणिययणकुट्टिमत्तले

१६-४

भणुया इतिहेभया उ

३६-१६५

भणुया देवा य आहििया

३६-१५५

भणुस्साउ तहैव य

३३-१२

भणोययं वक्कययं

१-४३

भणोये कामणे पहाय

१५-४०

भणोयई चिट्ठइ कम्मसंजया

१-४७

भणो साहसिओ भीमो

२३-५८

भणोसिला सासणंअणपत्ताले

३६-७४

भणोहरं चित्तहरं

३५-४

भण्डकुण्डित्ति वेइए

२०-२

भत्तं व गम्भइत्थं

२२-१०

भत्तंययाए नं नत्ते ! जीवे किं... २६ सू० ५०

१५-८

भत्तं भूलं विविहं वेज्जचित्तं

२०-२२

भत्तमूलविसारया

३६-२६४

भत्ताजोणं काउं

४-१२

भत्ता निरयं गच्छन्ति

८-७

भत्ता य कासा बहुलोहणिज्जा

४-१२

भत्तत्ता अणुण्णव

३-१४

भत्तं भयाहि सुयुण !

२२-३७

भत्तं छिन्देत्ता त्हा

१६-८६

भत्तवत्तं व महम्मयावहं

१६-६८

भत्त रोयई पव्वज्जा इ दुक्कं

१६-१४

भत्त लोमे ति पेहाए

१-२७

भत्त हत्थज्जमागया

१५-४५

भत्तं ताणुववयन्ति य

१८-१४

भयलक्खेण चिट्ठई

२७-६

भयेसु बम्मगुत्तीसु

३१-१०

भयसयमत्तारात्ते

३६-७३

भरणं असदं भवे

५-३१

भरणं पि सपुण्णं

५-१८

भरणत्तंमि विराहिया होत्ति

३६-२५६

भरिहिति ते वराया

३६-२६१

मरिहिति रायं ! जया तया बा	१४-४०	महागुक्के जहन्नेणं	३६-२२८	मायन्ने अलणपाणस्स	२-३
मरम्मि बइरवात्तुए	१६-५०	महि माणिससूणो	१८-४२	माया गइपडिवाओ	६-५४
मल्लधूयेण बासियं	३५-४	महिक्किओ पुण्णफलोबवेओ	१३-२०	माया पिया वुत्ता माया	६-३
मंसंसभाया जहन्नेण नीलठिई	३४-४२	महिक्किअं पुण्णफलोबवेयं	१३-११	मायामुसं बड्डहो लोभोसा	३२-३०, ४४, ५६
मंसंसभायं जहन्मिया होइ	३४-४३	महमेरगस्स व रत्तो	३४-१४		६६, ८२, ६५
महज्जुई पंचवयाई पालिया	१-४७	महोराया य गम्बळा	३६-२०७	माया य मे महाराया !	२०-२५
महत्पज्जव विणिज्जओ	२३-८८	मा		मायालोमे व पयणुए	३४-२६
महत्पल्लवा वयणप्पमूया	१३-१२	माइल्ले पितुणे सडे	५-६	मायाविजएणं भन्ते ! जीवे किं...	२६सू०७०
महत्तमोहं कसिणं मयाबर्हं	२१-११	माई अक्कणमाई	३६-२६५	मायाबुद्ध्यमेयं तु	१-२६
महत्तमाया इसिणो हवन्ति	१२-३१	माई कण्हुरे सडे	७-५	मारिजो य अणत्तसो	१६-६४, ६५
महत्तमायाओ श्रीमाओ	१६-७२	माई मुड्डेण पक्क	२७-६	माछुया पत्तहारया	३६-१३७
मह्या संवेगनिज्यं	१८-१८	मा एयं होलहू अहीलणिज्जं	१२-२३	मा वत्तं पुणो वि आइए	१०-२६
महाउदयवेगस्स	२३-६६	मा कात्ति कम्माई महाल्लमाई	१३-२६	मासक्कमणपाराणे	२५-५
महाउदय वेगेणं	२३-६५	मा कुल्ले गम्बणा होमो	२२-४३	मासद्धमासिएणं तु	३६-२५५
महाजलेतु उच्छद बा	१६-५३	मा गल्लियस्से व कसं	१-१२	मा सज्जे तेएण मे निहूहेज्जा	१०-२३
महाजयं जयई जल्लसिट्ठं	१२-४२	माणं मायं तहेह लोहं व	६-३६	मासस्स क पारएण महप्पा	१२-३५
महाजको एस महाणुमागो	१२-२३	माणविजएणं भन्ते ! जीवे किं...	२६सू०६६	मासिएण उ भत्तेण	१६-६५
महाववगिल्लकास्ते	१६-५०	माणसं जोणियेत्ति जे	७-१६	मासेणं चउरंगुल्लं	२६-१४
महानामो रं व कंचुयं	१६-८६	माणसत्तं भवे मूलं	७-१६	मासे मासे गवं दए	६-४०
महानियण्ठाण वए पहेणं	२०-५१	माणसत्तंमि आयाओ	३-११	मासे मसे तु जो बालो	६-४४
महानियण्ठिउज्जमिणं महासुयं	२०-५३	माणसत्तं सुई सद्धा	३-११	माहं परेहि दम्मन्तो	१-१६
महापडमे तवं चरे	१८-४१	माणसत्ते अत्ताम्मि	१६-१४	माहणकुत्तसंभूओ	२५-५
महापमावस्स महाजसस्स	१६-६७	माणस्सएणं जे यावि दिक्खा	१४-६	माहणत्तं जहामुयं	२५-३५
महाबलो रायसिरी	१८-५०	माणस्सं वु पुटुल्लहं	२०-११; २२-३८	माहणभोदय विविहा 'य सिप्पिणो'	१५-६
महामूणो महापडने महाजसे	२०-५३	माणस्सं अवमागए	१८-२६	माहणो दारया वेव	१४-५३
महामेहप्पसूयाओ	२३-५१	माणस्सं विण्हं लद्धं	३-८	माहणेण पक्कवत्तं	१४-३८
महानंमपरिमाहे	७-६	माणंमं जहमा गई	६-५४	माहणो य पुरोहिओ	१४-५३
महारणम्मि जायई	१६-७८	मा तं विदयं गवेसए	१०-३०	माहिन्धम्मि जहन्नेणं	३६-२२५
महारिरी उत्तम ठाण पत्त	१२-४७	मा भमिहिति भयावट्टे	२५-३८	मा हू तुमं सोयरियाण सम्भरे	१४-३३
महाविमानं सज्जहुं	३६-२४४	मा भगो विसमे वगाहिया	१०-३३	मा हू भन्ते ! मुसं वए	२०-१५
महाबीरस्स भगवओ	२१-१	मायं व वज्जए सया	१-२४	मि	
महावीरेण देसियं	५-४	मायं जल्य उ पवयणं	२४-३	मिदं पि चण्हं पकरंति सीसा	१-१३
महाविमाणं इसिणं पत्तयं	१२-४७	मायं न सेवे पयहेज्ज लोहं	५-१२	मिड मद्दवत्तं पन्ने	२७-१७
महागुक्का व दीपत्ता	३-१४	मायं पिण्डस्स पाणस्स	६-१४	मिए खुमिसा हयगओ	५८-३
महागुक्का सहस्सारा	३६-२११	मा य च्छाडिअं कासी	१-१०	मिओ वा अवसो बहं	१६-६३

निगचारियं चरित्साण	१६-८१, ८२	मुत्तीए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	मोणं विराहितुं असाहुक्खे	२०-४६	
निगचारियं चरित्साणि	१६-८४		मोसं अदत्तं च असेवमाणा	१२-४१	
निगच्छं उवणिग्गाए	१८-१	सुसं ते एवमाहुंसु	२-४५	मोसं अदत्तं च परिगहं च	१२-१४
निग्गल्लसितेवए जणे	१०-१६	सुसं न वयसं जो उ	२५-२३	मोसस्स पच्छा य पुरत्तयो य	३२-३१, ४४, ५७, ७०, ८३, ८६
निग्गल्लदिट्ठी अणारिए	३४-२५	सुसं परिहरे भिक्खू	१-२४		
निग्गहा कारोय निन्दाए	१६-६	मुसाभासा निरत्थिया	१८-२६	मोहं कळो एत्ति उ विप्पलावो	१३-३३
निग्गहा दंडो पजुंजई	६-३०	मुसाबायविज्जजणं	१६-२६	मोहं गयस्स सत्तस्स	१६-७
निग्गहादंसणरत्ता	३६-२५७, २५८	मुसुब्बी य हल्लिहा य	३६-६६	मोहं च तण्हायेपणं बयस्सि	३२-६
निग्गहादिट्ठी अणारिया	१८-२७	मुहपोत्थिं पळिल्लिहा	२६-२३	मोहं च भिक्खू समयं वियक्खणी	२१-१६
वित्तमाईपरिवुडो	२०-११	मुहुरी निक्कसिज्जई	१-४	मोहं वा कसिण नियच्छई	१५-६
वित्तवं नायवं होइ	३-१८	मुहं मुह माहगुणे जयन्तं	४-११	मोहट्ठागेसु वेव य	३१-१६
विता य तह बन्धव	१८-१४	मुहुत्ताहिंयाइ च उक्कोसा	३४-५४	मोहिणज्जं पि तुविहं	३३-८
विमं कालेण भक्खए	१-३२	मुहुत्तं तु जहला	३४-३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४६, ४६	मोहिणज्जस्स उक्कोसा	३३-२१
विमचारियं चरित्साणि	१६-८५			मोहिणज्जस्स दंसणे	३३-६
विमया पुत्तस्स निवम्म भासियं	१६-६७	यू		मोहाणिवा पज्जलणाहिणं	१४-१०
विमया कालिजरे नेगे	१३-६	यूळं वेत्तुण निगमा	७-१४	मोहो हजो जस्स न होइ तण्हा	३२-८
विमया तत्सगमाहिमी	१६-१	यूळ्ळेण जीवाणं	७-१६	य	
विमयापुत्ते जहारिसे	१६-६६	यूळियं ते अहंछिया	७-२१	य सम्मत्तसद्दहणा	२८-२८
विमयापुत्ते त्ति विस्सुए	१६-२	यूळियं ते पवेसन्ति	७-१६	र	
विमयापुत्ते महिहिउए	१६-८	ये		रई नोवलमामहं	१६-१३
विहिलं सपुण्णवयं	६-४	येत्ति मूएसु कप्पए	६-२	रडयाए जहक्कमं	२२-१२
विहिलाए वेडए बच्छे	६-६	येत्तिज्जमाणी अयई	११-११	रक्खमाणी तयं वए	२२-४०
विहिलाए ङ्खम्मामीए	६-१४	येत्तिज्जमाणी बमइ	११-७	रक्खसा किंनराय कि पुरिसा	३६-२०७
विहोक्कं कुणइ जणवक्कहं वा	२६-२६	येत्तये कि पमासई ?	१८-२३	रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं	४-१२
मु		येत्तये य भट्ठिण य	१६-७०	रज्जं तु गुणसमिद्धं	१८-४६
मुक्कपासो लुब्बमूओ	२३-४०, ४१	येह ङ्ख बाएण अक्कममाणी	२१-१६	रज्जन्तो संजमम्मि य	१६-६
मुक्को वि विसभक्खणं	२३-४६	येह्हाओ सुसंजो	२-४२	रत्ति पि चउरो भागे	२६-१७
मुग्गसिंहं सुसंटीहि	१६-११	ये		रत्तो तहिं कोसलियस्स धूवा	१२-२०
मुच्चवइ कारोओ जणो	६-३०	येक्कं गवो अणुत्तर	१८-३६	रमए अज्जवयणंमि	२५-२०
मुच्चवई छविपव्वाओ	५-२४	येक्कमगमाइ तच्चं	२८-१	रमए पण्हिए सासं	१-३७
मुच्चवज्ज कयाइ सव्वमुत्ताणं	८-८	येक्कसव्वमूयसाहणे	२३-३३	रमेज्जा संजमे मुणी	३६-२४६
मुणी भासि विसारए	२७-१	येक्काभिकस्सिस्सि माणवस्स	३२-१६	रयणाभ सक्कपासा	३६-१५६
मुणी वरे काडे निष्णमावगुत्ते	१४-१	येक्कसाभिकंसी वभिजायसब्बा	१४-६	रयणहारसंकासा	३४-६
मुणी विवयंसंगामो	६-२२	येणं चरित्साणि सविष्ण वम्मं	१५-१	रसाई खेवेज्ज पुरेकडाइ	२१-१६

रसजो बन्धिले जे उ	३६-३२	रा	रायवेष्टि व मनसा	२७-१३	
रसजो कहुए जे उ	३६-३०	राख्यो तर्मि संजए	२०-५	रायार्ण न पछिमलेइ	१८-६
रसजो कसाए जे उ	३६-३१	राइभाएनु चउसु बि	२६-१७	राया बलभहो ति	१६-१
रसजो तितए जे उ	३६-२६	राख्यं च आईयारं	२६-४७	राया रज्जं तु हारए	७-११
रसजो परिणमा जे उ	३६-१८	राख्यं तु आईयारं	२६-४८	राया सह देवीए	१४-५३
रसजो कासजो खेब	३६-२२ से २८	राईभोयणवज्जना	१६-३०	रु	
रसजो कासजो तहा	३६-१५	राईभोयणविरजो	३०-२	रुक्मसूले व एकजो	३५-६
रसजो महुए जे उ	३६-३३	राईमई असम्भला	२२-३६	रुक्मसूले व एगजो	२-२०
रसं न किंचि अबरज्जई से	३२-६४	राईमई बिचिलेइ	२२-२६	रुक्मला गुण्डा य गुम्मा य	३६-६४
रसमिद्वेण धनुणा	१८-७	राओवरयं चरेज्ज लाडे	१५-२	रुप सुवणो य वहरे य	३६-७३
रसमिद्वे न सिया भिक्खाए	८-११	रागं च दोसं च तहेव मोहं	३२-६	रु	
रसलो कंदुकुम्मीसु	१६-५१	रागं दोसं च छिन्धिया	१०-३७	रुक्मचरे मुणिवराण हेडिठमे	१७-२०
रसस्स जिक्कं गहणं वयंति	३२-६२	रागदोससमज्जियं	३०-१	रुक्मस्स चक्कं गहणं वयंति	३२-२३
रसाणुगासाणुए य जीवे	३२-६६	रागहोसणिणा जगं	१४-४३	रुक्माणुगासाणुए य जीवे	३२-२७
रसाणुरत्तस्स नरत्तस्स एवं	३२-७१	रागहोसभयाईयं	२५-२१	रुक्माणुरत्तस्स नरत्तस्स एवं	३२-३२
रसाणुगाएण परिग्गहेण	३२-६७	रागहोसवसं गया	१४-४२	रुक्माणुगाएण परिग्गहेण	३२-२८
रसा पगमं न नितेवियन्का	३२-१०	रागाहोससमज्जियं	३०-४	रुक्माहिणुसु सुरेसु य	३१-१६
रसे अतिते य परिग्गहे य	३२-६८	रागहोसावजो तिब्बा	२३-४३	रुक्मिणो खेवज्जकी य	३६-४, १६
रसे अतितो दुक्खिओ अणित्तो	३२-७०	रागहोसे म दो पावे	३१-३	रुक्मिणो य चउत्थिहा	३६-१०
रसे अतितस्स परिग्गहे य	३२-६६	रागस्स दोसस्स व संसएणं	३२-२	रुक्मिणो बि चउत्थिहा	३६-४
रसेण वज्जणे य भुउज्जमाणा	३२-२०	रागस्स हेउं समणुम्मवाहु	३२-२३, १६, ४६, ४८, ७५, ८८	रुक्मे अतितस्स परिग्गहे य	३२-३०
रसे फासे तहेव य	१६-१०	रागाउरे ओसहिणं चगिद	३२-५०	रुक्मे अतितं य परिग्गहे य	३२-२६
रसे बिरत्तो मण्णो बिसोगो	३२-७३	रागाउरे कामणुसु मिद्वे	३२-८६	रुक्मे अतितो दुक्खिओ अणित्तो	३२-३१
रसेसु जो मिद्विमुवेइ तिब्बं	३२-६३	रागाउरे बडिसविभिन्नाए	३२-६३	रुक्मे बिरत्तो मण्णो बिसोगो	३२-३४
रसेसु नाणुमिज्जेज्जा	२-३६	रागाउरे सीयज्जाबसले	३२-७६	रुक्मेसु जो मिद्विमुवेइ तिब्बं	३२-२४
रसो उ काउए नायब्बो	३४-१२	रागाउरे से जहु बा पयंणे	३२-२४	रे	
रसो उ किण्हाए नायब्बो	३४-१०	रागाउरे हुरिणमिगे व मुदे	३२-३७	रेणुयं च पडे कर्मा	१६-८७
रसो उ तेउए नायब्बो	३४-१३	रागाउरे दोसो मोहो	२८-२०	रेवयमिणिं द्विओ भगवं	२२-२२
रसो उ नीलाए नायब्बो	३४-११	रागो य दोसो बि य कम्मबीयं	३२-७	रो	
रसो उ सुवकाए नायब्बो	३४-१५	रागामो वेकलियप्पासे	२०-४२	रोएइ उ मिसागो	२८-१७
रहनेमी अहं भदे !	२२-३७	रायं अविक्कं समुपाय देवी	१४-३७	रोगा य मरणाणि य	१६-१५
रहनेमी मग्गचित्तो	२२-३४	रायल्ल देवी कम्मावई य	१४-३	रोगेणाज्जस्सएण य	११-३
रहणीए तहेव य	१८-२	रायल्लि उतसाए डडाए	६-५६	रोक्को बा जहु पाविजो	१६-५६
रहियं पीजणेण य	११-१	रायल्लस्सचंजुए	२२-१, ३	रोइय विचित्ते वित्तत्ताए	३६-१४८
रहे कल्लाव भासई	११-१२			रोहिणी वेवई उहा	२२-२
रहे भासइ पावयं	११-८				

लीबिया तं नहकमे	१-३३	लेसां तु मुणेह मे	३४-२	लोहं हुंछं भरहं रहं च	३२-१०२
लक्षणां पञ्चवाणं तु	२८-६	लेसां होह परिणामो	३४-२०	लोहनुपेहि पक्खिहि	१६-५८
लक्षणात्तरसंज्ञो	२२-५	लेसां ठिहं तु बोष्णाभि	३४-४०	लोहा वा जइ वा मया	२४-२३
लद्धा बि आरियत्तणं	१०-१७	लेसां ठिहं उ देवाणं	३४-४७	लोहि वीहू य वीहू य	३६-६८
लद्धा बि उत्तमं सुहं	१०-१६	लेसां ठिहं उ वणिग्गा होह	३४-४४, ४७	लोहो हवो जस्स न किञ्चनाहं	३२-८
लद्धा बि माणुसत्तणं	१०-१६	लेसां ठिहं जहि बहि जा उ	३४-४५	व	
लद्धे पिण्णे अलद्धे वा	२-३०	लेसां हूति ठाणाहं	३४-३३	वहणुत्ती चउत्तिहा	२४-२२
लत्तागमि अहणेणं	३६-२२७	लेसासु खसु काएसु	३१-८	वइस्सो कम्मणा होह	२५-३१
लया चिट्ठइ गोयसा !	२३-४५	लेसाहि परिणयाहि	३४-६०	वएज्ज न पुणो ति य	१-४१
लया य इह का बुत्ता ?	२३-४७	लेसाहि सम्वाहि	३४-५८, ५९	वए विओगे य कहि सुहं से ?	३२-२८, ४१, ५४, ६७, ८०, ८३
लयावल्लय पब्बया कुहुणा	३६-६५	लो		वएसु इदमित्थेसु	३१-७
लया वल्ली तणा तहा	३६-६४	लोए कित्ती से जायए	१-४५	वंकजडा य पच्छिमा	२३-२६
ललएण नलकवरो	२२-४१	लोएणदेसे ते सण्णे	३६-६७, १३०, १३६, १७३	वंकं वंसमायारे	३४-२५
लल्लिज्जववळकुलतिरीडी	६-६०	लोएणदेसे लोए य	१८२, १८६	वण्णल्ल पन्नावणे अट्ठ	२८-३१
लल्लभूयविहारिणो	१४-४४	लोणं पि एसो कुविओ बहेज्जा	१२-२८	वज्जपानी पुरन्दरे	११-२३
ला		लोणदेसे य बायरा	३६-७८, ८६, १००, १११, १२०	वज्जभीकं हिएसए	३४-२८
लामं अलामं च सुहं च कुक्कं	१४-३२	लोणम्मि दुराहं	२३-८१, ८४	वज्जित्ता केवलं लेसं	३४-४५
लामन्तरे जीविमं वुहइत्ता	४-७	लोणाहं दमीसरे	२२-४	वज्जेज्जा पणिहाणं	१६-१४
लाभालाभम्मि संतुट्ठे	३५-१६	लोणम्मि विद्याहिया	३६-७	वज्जेयव्वा य मोसली तइया	२६-२६
लाभालाभे सुहे कुक्के	१६-६०	लोणम्म एण देसम्मि	३६-१४६, १५८, १६८, २१७	वज्जेयव्वा सुकुक्करो	१६-३०
लाभा सुलद्धा य तुमे महेत्ती !	२०-५५	लोणालोये य आगासे	३६-७	वज्जमं पासइ वज्जमं	२१-८
लाभो देवगई भवे	७-१६	लोणमुत्तमं ठाणं	६-५८	वज्जमण्णसोभागं	२१-८
लाहा लोहो पवइडई	८-१७	लोणे लिणवोयणं	२३-३२	वट्ठमाणे उ संजए	११-६
लि		लोमविज्जणं अत्ते ! जीवे किं??	२६५०७१	वट्ठइहिं तुपो विव	१६-६६
लिगे दुमिहे मेहाभि !	२३-३०	लोमाओ दुहवो मयं	६-५४	वट्ठइ हायए वावी	२६-१४
लु		लोमाविले आययई अवत्तं	३२-६२, ४२, ५५, ६८, ८१, ९४	वट्ठमाणो अवाहि य	२२-२६
लुत्तकसं जिदन्वियं	२२-२५, ३१	लोमे य अवउत्तया	२४-६	वणफईयं आउं तु	३६-१०२
लुप्पत्तस्स सकम्पुणा	६-३	लोयगमि पइट्ठिया	३६-६३	वणस्सइकायमइयओ	१०-६
लुप्पत्ति बहुसो मुडा	६-१	लोयो मे पइट्ठिया	३६-५६	वण्णो गम्भो वेव	३६-१५
ले		लोयतो उ विवाहिओ	३६-६१	वण्णो जे अवे किण्हे	३६-२२
लेप्पाहि सउणो विव	१६-६५	लोयुत्तमायं बहुहा बहुं च	१४-१०	वण्णो जे मवे नीले	३६-२३
लेयमायाए संवए	६-१५			वण्णो परिणया जे उ	३६-१६
लेउउमणं पवक्खामि	३४-१			वण्णो वीयए जे उ	३६-२५
लेसाणं अण्णसत्त्याणं	१३४-१६, ८				

उत्तरङ्गयणं (उत्तराङ्गयन)

४६

बण्णो लोहिणं जे उ	३६-२४	बहुराणि सराणि य	१६-८०	बावन्मकुदंसणवज्जणा	२८-२८
बण्णो सुमिकले जे उ	३६-२६	बहुरेहिं सरेहिं वा	१६-८१	वासं तत्थमिरोवणं	३५-६
बण्णं अरा हरइ मरस्स रायं	१३-२६	बवहारे उभया एसा	७-१५	वासन्ते अन्धयारमि	२२-३३
बण्णरसगन्धकासा	२८-१२	बसहे जुहाहिबई	११-१६	वासलक्खणे साहिंयं	३६-२२१
बण्णेणं भावमणमुपन्ते उ	३०-२३	बसाओ हरिराणि य	१६-७०	वासार्हं बारसे व उ	३६-१३२
बण्णो रुवे य सव्वतो	६-११	बसाणि हरियाणि य	१८-२६	वासानुक्कोसियां भवे	३६-८०, ८८, १०२
बत्तयालबलणो कालो	२८-१०	बसीय सोबागनिबेसणु	१३-१८	वासिण्डु ! भिनवायरियाइ कालो	१४-२६
बत्थाई पडिहेण	२६-२३	बसुवेवे ति नामेणं	२२-१	बासीचन्दणवप्पो य	१६-६२
बद्धमागमिहाणि य	६-२४	बसे गुहकुले निष्पन्नं	११-१४	बासीमुहा य सिप्पीया	३६-१२८
बत्तं इच्छसि आवेउं	२२-४२	बसे ते ठावहत्ताणं	६-३२	वासुदेवं मणिहियं	२२-८
बत्तराणं जहन्नेणं	३६-२२०	बहणे बहमाणस	२७-२	वासुदेवस्स जेठुं	२२-१०
बन्तासी पुरिसो रायं !	१४-३८	बहन्ववरीसहा	१६-३२	वासुदेवो य नं भणइ	२२-२५, ३१
बन्धं क्षमिन्पुणन्तो	६-५५	बहेइ रसमुच्छिणं	१८-३	वासिणुल्ला उ अन्तरा	२२-३३
बन्धं य तजो गुरुं	२६-५०	बहेइं से मराहिवे	१८-५	वा'हओ बद्धरुओ क्ष	१६-६३
बन्धनं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		वा		वाहिणो वेयणा सहा	२३-८१
	२६०११	वाइया संगहिवा जेव	२७-१४	वाहीरोगाण अलए	१६-१४
बन्धनं पुणं तथा	३५-१८	वाउककाममगओ	१०-८	वाहीरोगेहि पीडिओ	१६-१६
बन्धमाणा नमसन्ता	२५-१७	वाउजीवाण अन्तरं	३६-१२४	वि	
बन्धिका तजो गुरुं	२६-४५	वाएइ सयं पञ्चिच्छइ वा	२६-२६	विउलं अट्ठि मुयं	१-४६
बन्धितं य तजो गुरुं	२६-२२, ३७, ४०, ४१, ४२, ४८, ४६, ५१	वाएण हीरमाणंमि	६-१०	विउलं जेव वणोहसंभयं	१०-३०
बन्धिता य तजो गुरुं	२६-८	वागरेज्ज जहासुयं	१-२३	विउविज्जण इन्दत्तं	६-५५
बमणवियेयधम्मणेत्तसिणाणं	१४-८	वाहेसु व रच्छासु व	३०-१८	विक्रिणन्तो य वाणिओ	३५-१४
बयं व सत्ता कामेसु	१४-४५	वाडेहिं पंजरेहिं व	२२-१४, १६	विक्खायकित्तो धिमं	१८-३६
बयं पवत्तमाणं तु	२४-२३	वाणारसीए बहिया	२४-३	विक्रिता वेइया छट्ठा	२६-२६
बयणुत्तयाए नं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		वाणिमो देइ धुयरं	२१-३	विणइनिज्जुहणं कीरे	३६-२५२
	२६०५५	वाटं विविहं समिच्च लोए	१५-१५	विगलिन्दियया हु दीसइ	१०-१७
बयणो मुचवा न अस्सममाहु	२१-१४	वायणाए नं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६०२०	विगहाकसायसन्नाणं	३१-६
बयणं अमुणुपुव्वं	२०-१३	वायणा पुच्छणा जेव	३०-३४	विगहासु तहेइ व	२४-६
बयणमिच्छे पुणो पुणो	१-१२	वाया अनुव कम्मुणा	१-१७	विगिं व कम्मुणो हेउं	३१-३
बय समाहारणयाए नं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		वायाविओ वइ हओ	२२-४४	विगिट्ठं तु तव वरे	३६-२५४
	२६०५८	वायाविरियमेलेण	६-६	विचित्तं तु तव वरे	३६-२५२
बयाणि सीलाणि परीसहे य	२१-११	वारिमज्जे महालओ	२३-६६	विज्जमिं सए काए	३६-८२, ६०, १०४, ११५, १२४, १३४, १६८, १७७, २४६
बरं मे अयादन्तो	१-१६	वाल्ह्याकल जेव	१६-३७	विजयवोस्स जन्मि	२५-५
बरवाणीए व रसो	३४-१४	वाल्ह्याभा य वाहिया	३६-१५६		

विजयघोसे त्ति मागेणं	२५-४	विषयमुष्णह पडिहए	२४-२७; ३०-३७	विबिहाण व आसवाण जारिसो	३४-१४
विजयघोसे य माहो	२५-३४	विषयमुष्णह पडिहो	३१-२१	विषएहि अरउजन्तो	१६-६
विजया वैजयन्ता य	३६-२११	विषयसमपाधायं	५-१८	विस् तालउठं जहा	१६-१३
विजहिनु उज्जसंभोगं	८-२	विषयीणज्ज मेहावी	५-३०	विस् तु पीयं वह कालकुं	२०-४४
विजजमाणे परे लोए	१८-२७	विष्कुरतो अणेतो	१६-५४	विस्ना पावकमेहि	६-१०
विजहावरणपारमा	१८-२२	विभुसं परिकज्जेजा	१६-६	वित्तये सज्जोघारे	३४-१२
विजहावरणपारे	२३-२६	विमणो वित्तणो अह माहो तो	१२-३०	वित्तमं मगामोहणो	५-१४
विजहावरणसंपत्ते	१८-२४	विह्वेल्लो य परं	३६-२६३	वित्तमं सीला य भिक्खु	५-१६
विजजामत्ततिगिच्छया	२०-२२	विह्वस्सेत्तणं वरे	२-४	वित्तालंकी य तहोमुयारो	१४-३
विजजामाहवसम्पया	२४-१८	वित्तयपक्खी य बोद्धया	३६-१८	वित्तालंकेहि सीलेहि	३-४
विज्जुलंपायवचचलं	१८-१३	वित्तयिज्जह सज्जह मुज्जई य	१२-१०	वितीयई सिद्धिं धाउयमि	४-६
विज्जुतोयामणियमा	२२-७	विद्यागिधा दुक्खविबद्धं धणं	१६-६	वित्तये किं कारणं ?	२३-१३, २४, ३०
विज्जु अमी य आहिमा	३६-२०६	विद्याहिंओ जं समुत्तिष्ण सत्ता	३२-१११	वित्तोहेज्ज जय जई	२४-१२
विज्जवेज्ज पंजलिउदी	१-४१	विटई अज्जमभैरत्त	१६-२८	विहगएव विषयमुक्को	२०-६०
विट्ठं भूजइ सूयरे	१-५	विरए आयरिक्खए	२-१५	विहमणो किलिस्सई	२७-३
विणएउज्ज लोमहरिस्	५-३१	विरए आयरिक्खए	२१-११	विहरह मडि मण्णा	२७-१७
विणए उवेज्ज अयाणं	१-६	विरए कयविह्वए	२४-१३	विहरह वसुहं विषयमोहो	२०-६०
विणए ववए पाए	१८-८	विरए वैयवियाऽऽजरिक्खए	१४-२	विहरामि अहं मुणी !	२३-३८, ४१
विणओ एव विद्याहो	३०-३२	विरओ वणपयणपरिग्हाओ	१२-६	विहरामि जह्वस्मं	२३-४३
विणयं पाउकरिस्सामि	१-१	विरउज्जमाणस्स य इन्दियत्ता	३३-१०६	विहरामि जहानाय	२३-४६
विणिधावमानच्छद ते चिरं पि	२०-४३	विरत्ताकामाण ततोषणाणं	१३-१७	विहरामि महामुणी !	२३-४८
विणियट्ठगमाए णं भन्ते ! जीवे		विरत्ता उ न लण्णित	२५-४१	विहरिस्सामि विरामिसा	१४-४६
	कि जणयइ ? २६सु०३३	विरत्तो अण्डिवेहए	३६-१४७	विहरेज्ज कामेसु अज्जसमाणो	३२-५
विणियट्ठित्त भोगेसु ६-६२; १६-६६; २२-४६		विह्वतो विलवन्तो हं	१६-५८	विहरेज्ज पच्छा य जहामुहं मु	१७-१
विणिहम्मन्ति पाणिणो	३-६	विजज्जया जालज्जणस्स दूरा	३२-३	विहाणं सहस्ससो	३६-८३, ६१, १०५,
विणीयाविणए दत्ते	३४-२७	विज्जह विज्जह ते सरीरयं	१०-२७		११६, १२५, १३५, १४४,
वित्त कामे य भुंजिया	७-८	विज्जणसरो वणिओ व्य पोए	१४-३०		१४५, १६६, १७८, १८७,
वित्ते अचोहए निक्खं	१-४४	विज्जह उ उदीरेह	१७-१२		१६४, २०३, २४७
वित्ते गिद्धे य दल्लिपु	५-१०	विज्जिक्ख कम्मणो हेउं	६-१४	विहारविहरए मुणी	२६-३५
वित्तेण ताणं न लभे पसले	४-५	वित्तिसल्लयाह भएज्ज ताई	२१-२२	विहारजत्त निज्जओ	२०-२
वित्त्वारुद्ध त्ति नायवो	२८-२४	वित्तित्तवासो मुणिणं पक्खो	३२-१६	विह्वहादि रयं पठो कव	१०-३
वित्तिपणो दूरमोगाडे	२४-१८	वित्तित्तयणासणं	३०-२८		
विमार्गेण समाम्भ	२३-३१	वित्तित्तयणासणयाए णं जत्ते !		वी	
विमाला पवित्तिकय	२३-२४	वित्तित्तयणासणयाए णं जत्ते ! जीवे.....	२६सु०३२	वीदसएहि जालेहि	१६-५५
विषयजोगमुवागमा	१३-८	वित्तित्तयणासणयाए णं जत्ते ! जीवे.....	३२-१२	वीयरायाए णं भन्ते ! जीवे	२६ सु० ४६
विषयवहे लहाविहं भिक्खु	८-४	वित्तित्तयणासणयाए णं जत्ते ! जीवे.....	१४-११	वीयरायो अणसवो	३५-२१

वीरियं उबजोगो य	२८-११	वेयावज्जणेणं भत्ते ! जीवे कि	संखेवण्ह लि होह नायब्भो	२८-२६
वीरियं पुण कुल्लहं	३-१०	जणयहं ?	संगहे छहिंतागमं	३३-१८
वीसई कोळिकोळिओ	३३-२३	वेयावज्जणे मिठत्तेणं	संगहेण य भावरे	२५-२२
वीसई सागरोवमा	३६-२३२	वेयावज्जणे य सज्जाए	संगामसीसे इव नागराया	२१-१७
वीसं इत्थियामु य	३६-५१	वेरत्थियं पि कालं	संगामे मुज्जए जिणे	६-३४
वीसं तु सागराई	३६-२३१	वेराणुबद्धा तरयं उवेत्ति	संगो एस मुणुस्साणं	२-१६
वु		वेरत्थियनिद्धसंकासा	संघिकसत्तागवेसए	२-३३
		वेवमाणी निसीयई	संघिकसत्तागो चरित्तामि मोणं	१४-३२
		वेसं तं होह भूडाणं	संजए इरियं रिए	२४-४
		वेसं होह असाहुणो	संजओ अहमस्सीति	१८-१०
वुण्णं तेसि चउत्थिहं	३६-१५८, १७३, १८२, १८६, २१७	वो	संजओ चइउं रज्जं	१८-१६
वुष्णमि अणुपुब्बसो	३०-२६; ३६-४७, १०६	वोष्णमि अणुपुब्बसो	संजओ नाम नामेणं	१८-२२
वुष्णमु सोवागमिबेसणेसु	१३-१६	वोष्णमु सिणेहमप्यणो	संजओ परिवज्जए	३५-३, ६
वुज्जमाणाण पाणिणं	२३-६५, ६८	वोत्ताणं भत्ते ! जीवे कि.....	संजओ सुसमाहिओ	१२-२
वे		वोसट्टुकाए विहरेज्जा	संजमं निहुओ चर	२२-४३
		वोसट्टुकाओ सुइचत्तवेहो	संजमं पडिचउज्जया	३-२०
		स	संजमंमि य वीरियं	३-१
		सई च जइ मुण्जेज्जा	संजमयाणो वि अहं	१८-२६
वेएज्ज निज्जापेही	२-३७	स उज्जुसावं पडिचउज्ज संजए	संजमेणं भत्ते ! जीवे कि जणयहं ? २६सू०२७	
वेणेय य पहावाई	२७-६	सओरोहो य सपरियणो य	संजमे तवेण य	१-१६; १६-७७; २५-४३; २८-३६
वेमाणिमा उ जे देवा	३६-२०६	संकटठाणाणि तज्जाणि	संजमे य पवत्तणं	३१-२
वेमायाहिं सिक्काहिं	७-२०	संक्रमेणं बिहन्तसि	संजयं सुसमाहिंयं	२०-४
वेयण वेयावज्जणे	२६-३२	संक्रमणाणं तणं चरे	संजयस्स तवत्तिओ	२-३४
वेयणा अणुभुभिउं जे	२०-३१	संकरहूतं परिहरिय कण्ठे	संजयाए सुमासियं	२२-४६
वेयणाए दुह्हिए	२-३२	संकरहं च अमिक्खणं	संजयाणं च भावओ	२०-१
वेयणाओ अणत्तसो	१६-४५	संकारीओ न गच्छेज्जा	संजयाणं तवत्तिणं	२३-१०
वेयणा परमदारणा	२०-२१	संकिएगणोवसं कुज्जा	संजयाणं तुसीमओ	५-१८, २६
वेयणा मे लयं गवा	२०-३३	संजिज्जाकालमुक्कोसं	संजयाइ समयमुवट्ठियस्स	३२-१०७
वेयणा विउल्ला इओ	२०-३२	संस्ककुटसंकासा	संजओ य विभागा य	२८-१३
वेयणा वेधमा एए	१६-७१, ७४	संस्सकपपकमयावरे	संजओ विपयमुक्कस्स	१-१; ११-१
वेयणिज्जं तहा ओहं	३३-२	संस्साईया लोगा	संठाणओ भवे संसे	३६-४४
वेयणिज्जे तहेव य	३३-२०	संस्सा उ कमसो तेसि	संठाणओ भवे चट्टे	३६-४३
वेयणीयं पि य दुबिहं	३३-७	संस्सा संखणा तहा	संठाणओ य चउरसे	३६-४५
वेया अहीया न भवन्ति ताणं	१४-१२	संस्सा संठाणमेव य	संठाणओ य विन्नेओ	३६-१५
वेयाणं च महं बूहि	२५-१४			
वेयावज्जं तमाहिंयं	३०-३३			
वेयावज्जं तहेव सज्जाओ	३०-३०			
वेयावज्जमि दत्तविहे	३०-३३			

संवाचपरिणमा जे उ	३६-२१	संबन्धरं मज्झिमव	३६-२५१	[सक्कं सककेण बोद्धो]	१८
संठाणावैसमो भावि	३६-८३, ९०५,	संबट्टमवाते य	३६-११६	सगरो वि सागरमत्तं	१८-३५
	११६, १२५, १३५, १४५,	संबट्टवई वरे तस्स	२१-५	सत्ता जेठुकण्ठिगुणा	२०-२६, २७
	१५५, १६६, १७८, १८७,	संबरो निज्झा मीक्खो	२८-१५	सत्तेले यापि एणया	२-१३
	१६५, २०३, २४७	संबुद्धं निदुणे रयं	३-११	सत्थसोमप्यगठा	१३-६
संतर्ह पण्यज्झाईया	३६-७६, ८७, १०१, ११२,	सन्नेयेण भन्ते ! जीवे किं जणयह ?	२६५०२	सत्था त्थेव मोसा य	२४-२०, २२
	१२१, १३१, १४०, १५०,	संसयं खलु सो कुणई	६-२६	सत्था ये नासिमा बई	१८-५२
	१५६, १७५, १८३, १९०,	संसरह सुहासुहेहि कम्महिं	१०-१५	सत्था मोसा त्थेव य	२४-२०, २२
	१६६, २१८	संसारं बहु जणपरिग्रहन्ति	८-१५	सत्थेण पत्तिमन्थए	६-२१
संतर्ह पण्य जेज्झाई	३६-१२	संसारंमि अणत्तए	६-१२	सत्थे सत्थपरकमे	१८-२५
संतत्ताभावं परितत्तममाणं	१५-१०	संसारंमि जणत्तए	६-१	सज्जाएण भन्ते ! जीवे किं जणयह ?	
संताणक्षिप्पा वरिस्सामि सोणं	१५-५१	संसारंमि पुक्खपउत्ताए	८-१		२६५०१६
संथयं बहिज्ज अक्कामकामे	१५-१	संसारमक्कत्तस विमोक्खणट्ठा	१५-४	सज्जाए वा निउत्तणं	२६-१०
संथवो वेव नारीणं	१६-११	संसारत्था उ जे जीवा	३६-६८	सज्जाभो पंचहा सवे	३०-३५
संधारए अणाउत्ते	१७-१५	संसारत्था य सिद्धाय य	३६-४८, २४८	सज्जायएगलानिखेवणा	३२-३
संधारं फलमं पीढं	१७-७	संसारपरानिच्छिक्खा	३६-६७	सज्जायं वेव पंचहा	२४-८
संधया ते पत्तीयन्तु	२३-८६	संसारीपेत्तस त्थिवस्स वच्चे	३२-१७	सज्जायं ततो कुज्जा	२६-३६, ४५
संधावई नरातिरिक्खे बोणि	२०-४६	संसारमन्न परस्स अट्ठा	४-४	सज्जायं तु बट्ठिए	२६-४३
संधे नेयाउए पहे	१०-३१	संसारमोक्खत्तस विपक्खमूया	१५-११	सज्जायं पजोसकालम्मि	२६-१६
संपज्जलिया भोरा	२३-५०	संसारम्मि जणत्तए	२०-३१	सज्जायज्जमाणजुत्ते	१८-४
संपत्ते विरमेज्जा	२६-१६	संसारसागरं घोर	२२-३१	सज्जो काएण फासए	५-२३
संपत्तो केवलं नाणं	३५-२१	संसार हेउं य वयन्ति वन्न	१५-१६	सज्जो तालिसमनिए	५-३१
संपिच्छिया अणरासापभूया	१५-३१	संसारे परिवत्तए	३३-१	सज्जे बालगवी बए	२७-५
संबुद्धया य सव्वन्तु	२३-१	संसारो अइवत्तई	२७-२	सज्जकुमारमाहिंदा	३६-२१०
संबुद्धा पुब्बसंधुया	१-४६	संसारो जण्णो तुलो	२३-७३	सज्जकुमारो जहन्नेयं	३६-२२५
संबुद्धो सो तहिं भगवं	२१-१०	सकम्मसोवस्स पुरोहिस्स	१५-५	सज्जकुमारो मणुस्सिन्दो	१८-३७
संयोगकालि य अतिस्सिक्खो	३२-२८, ४१, ५५,	सकम्मसेसेण पुराकएणं	१५-२	सणासणकुमुनिभा	३४-८
	६७, ८०, ९३	सकम्मया किंभइ पावकारी	४-३	सणाहो वा मराहिंदा	२०-१६
संयोग पक्खसत्ताणेणं भन्ते ! जीवे		सकवाडं पण्डुल्लोयं	३५-४	सण्हा खरा य बोद्धव्वा	३६-७१
किं जणयह ? २६५०३४		सकाममरणं त्थहा	५-२	सण्हा सत्तविहा तहिं	३६-७१
संमुच्छाई नासह नाबधिट्ठे	१५-१८	सकाम मरणं मरई	५-३२	सत्त उ सागरोवमा	३६-२२६
संमुच्छिमाग एसेव	३६-१६८	सक्के देवाहिंविई	११-२३	सत्तट्ठमवमहणे	१०-१३
संस्सिक्खा य मणुया	३६-१६५	सक्को माहणक्खेण	६-६	सत्तमम्मि जहन्नेयं	३६-२४०
संस्समसमारम्भे	२४-२१, २३, २५	सक्कं तु दीसह तवो विसेसो	१२-३७	सत्तमाए जहन्नेयं	३६-१६६
सत्तेकुक्कोसिया भवे	३६-२५१	सक्कं सक्केण बोद्धो	६-६१, १८-५५	सत्तमो मिच्छकारो य	२६-३

सत्तरस सागरादं	३६-२२८	सद्दे सु जो गिह्मिमुवेह सिक्खं	३२-३७	समएणेगेण उ सिज्जमई उ	३६-५४
सत्तरस सागरा ऊ	३६-१६४	सद्दाम्मं मे विणहत्तु रागं	१४-२८	समएणेगेण सिज्जमई	३६-५१, ५२
सत्तरस सागरोवमा	३६-१६५, २२६	सद्दा परममुल्लहा	३-६	समए वि सत्तहं पप्प	३६-६
सत्तरि कोडिकोडिओ	३३-२१	सद्धं नगरं किण्वा	६-२०	समए समयसेतिए	३६-७
सत्तविहं नवविहं वा	३३-११	समिमाणा कण्ठेसमोगाढा	३६-२५६	समं च संयमं बीहि	१६-३
सत्तहा परिक्रित्तिवा	३६-१५७	समिमाणा ह्म हित्तिवा	३६-२५७	समं हिण्वा महापहं	५-१४
सत्तावीसह विहेक्कसीओ वा	३४-२०	सन्ति एयेहि भिक्खूहि	५-२०	समचउत्तरो कलोयरो	२२-६
सत्तु भित्तेसु वा ७	१६-२५	सन्तिममं च वृहए	१०-३६	समणं संजयं दत्तं	२-२७
सत्तु य इह के भूते ?	२३-३७	सन्तिमे य दुवे ठाणा	५-२	समणा भविस्सामु गुणोह्वारी	१४-१७
सत्तेव उ सागरोवमा	३६-१६३	सन्दी सन्तिकरे लोए	१८-३८	समणा मु एते वयमाणा	८-७
सत्तेव सहस्साहं	३६-८८	सन्तेए तहिया तव	२८-१४	समणो अहं संजओ वयमाणी	१२-६
सत्तेव सागरा ऊ	३६-१६२	सन्तोयु य महापहे	१-२६	समणं गोयम ! मा पमायए	१०-१ से ३६
सत्तोबसतो न उवेह तुट्ठि	३२-२६, ४२, ५५, ६८, ८१, ६४	सन्नाहणिणं जेयेह	१७-१६	समयं संजए भुंजे	१-३५
सत्यं जहा परमसिक्खं	२०-२०	सन्नाणनाओवगए महेसी	२१-२३	समयाए समणो होह	२५-३०
सत्यागद्वयं प्रिसम्वलणं च	३६-२६७	सन्निरुद्धंम आउए	७-२४	समया सत्त्व भूएसु	१६-२५
सत्ये संवट्टकोट्टे य	३०-१७	सन्निरुद्धा य अण्हहि ?	२२-१६	समरेव महाभुणी	२-१०
सदावरीय गुम्भी य	३६-१३८	सन्निरुद्धं जलायमे	३०-५	समरेसु अगारेसु	१-२६
स देवगम्भस्वमणुसमुहए	१-४८	सन्निरुद्धे सुट्टिणिए	२२-१४	समलैट्टुकुचयो भिक्खु	३५-१३
सदेममह पण्डितो	२१-३	सन्तिवेसे समागघोसे य	३०-१७	समाउण्णाहं जक्खेहि	५-२६
सहम्भयारउज्जओ	२८-१२	सन्तिहि च न कुल्लेज्जा	६-१५	समागमे कयमई	१३-१४
सहस्स सोयं गहणं वयन्ति	२२-३६	सन्तिहोसंभओ येव	१६-३०	समागया त 'हसि तालयन्ति'	१२-१६
सहहृद जिगाभिहियं	२८-२७	सपज्जवसिए वि य	३६-६	समागया दो वि वित्तसम्भूया	१३-३
सहहृदा पुनरावि दुल्लहा	१०-१६	सपज्जवसिया वि य	३६-१२, ७६, ८७, १०१, ११२, १२१, १३१, १४०, १५०, १५६, १७४, १८३, १६०, १६६, २१८	समागया बहु तल्प	२३-१६
सहाया तावद्वयपगारा	३२-१०६	सवरिखो पंजली होउं	२५-१३	समागया सव्वजणेण अम्हे	१२-३३
सहायुगासायुगए य जीवे	३२-४०	सपाहेओ पवज्जई	१६-२०	समागया सव्वजणेण तुम्हो	१२-२८
सहायुरत्तस नरत्स एव	३२-४४	स पुज्जसत्ये सुविणीयसंए	१-७	समाययन्तो अभजं गहाय	४-२
सहायुवाएण परिग्गहेण	३२-४१	स पुज्जमेवं न लमेउज पण्ड्या	४-६	समाओ मोघसमं उवेह	३२-११
सहा विविहा भवन्ति लोए	३५-१४	सत्ये बिलाओ विव भिक्खमन्ते	३२-४०	समावन्ना संसारे	३-२
सद्दे अतिसत्स परिग्गहे य	३२-४३	सक्राता जन्ति राओ	१४-२५	समावन्तो मराहियो	१८-१८
सद्दे अतिते य परिग्गहे य	३२-४२	सक्राव पण्यवसाणोणं अन्ते !	१६-८८	समासातेति अण्यं	६-६
सद्दे अतिते समुवेह मण्णुं	३२-३७	सक्रावे उवएसणं	२६-१५	समासेण विद्याहियो	३०-२६
सद्दे अतितो दुहियो अणिसो	३२-४४	सक्रावे उवएसणं	१६-८८	समासेण विद्याहिया	२४-३, १६, २६-४२, १६-४७, १०६
सद्दे विरत्तो मण्णुओ भिसोपो	३२-४७	सक्रावे उवएसणं	१६-८८	समासेण विद्याहिया	२४-३, १६, २६-४२, १६-४७, १०६
सद्दे खे य गये य	१६-१०	सक्रावे उवएसणं	१६-८८	समासेण विद्याहिया	२४-३, १६, २६-४२, १६-४७, १०६

समाहि पडिसंबए	२७-१	सम्पत्तुं तु विणमत्तायं	२३-६३	सत्तलं कामा विंसं कामा	६-५३
समाहिकामे समये तबस्ती	३२-४, २१	सम्पत्तुं समुत्तिट्ठया	२३-८६	सत्तलानं च तियं तियं	३१-४
समिई गुती तहेव य	२४-१	सम्पत्तं वेव विच्छत्तं	३३-६	सवियारजवियारा	३०-१२
समिई तु किरियामु य	३१-७	सम्पत्तं तं विघाहिय	२८-१५	स वीयरामो कयसव्वकिण्णो	३२-१०८
समिईहि मज्झं सुसमाहियस्स	१२-१७	सम्पत्तं चरित्ताइं	२८-२६	सव्वओ परिबारिए	१४-२१, १८-२
समिए गुते य गुत्तिहि	३४-३१	सम्पद् सणरता	३६-२५८	सव्वओ परिबारिओ	२२-११
समिच्च पडिए तम्हा	६-२	सम्पद्दामो पाणाणि	१७-६	सव्वओ पिहियासवे	१६-६३
समिच्च लोपं समया महेसी	४-१०	सम्पामिच्छत्तमेव य	३३-६	सव्वओ विपमुक्कस्स	१६-१६
समिद्धा कामरुविणो	५-२७	सम्मुच्चिसत्तिक्कलाओ	३६-१७०	सव्वं अणे जिए जियं	६-३६
समुदाय तयं तं तु	२५-३४	सयं गेह परिचज्ज	१७-१८	सव्वं कम्मं खवित्तानं	२२-४८
समुद्दिम पसवई	२१-४	सयं च अट्ठत्तर तिरयलोए	३६-५४	सव्वं सव्वं कलहं च	८-४
समुद्दमभोरसमा बुरासया	११-३१	सयणं परियणं वेव	२२-३२	सव्वबंसेसु य परियवा	२०-१६
समुद्दपालि नामए	२१-४	सयणा तह्हा कामगुणा पमामा	१४-१६	सव्वं जगं जह तुहुं	१४-३६
समुद्दपाले अनुपागमं गए	२१-२४	सयणासणठाणं वा	५०-३६	सव्वं तओ जाणइ पासए य	३२-१०६
समुद्दपालो इणमज्जवी	२१-६	सयणासणपाणभोगणं	१५-११	सव्वं धम्मं विद्याणिता	१४-५०
समुद्दिम जलमि य	३६-५०	सयणासणसेवणमा	३०-२८	सव्वं नट्टं विडम्बियं	१३-१६
समुद्दिजए नामं	२२-३	सयणेण वा कामगुणेहि चव	१४-१७	सव्वं पि ते अवउज्जत्तं	१४-३६
समुद्दिजअयंओ	२२-३६	सयणे नो पडिसुणे	१-१८	सव्वं बावि घणं भवे	१४-३६
समुद्देण सयं मिणे	७-२३	सयमेव लुंछई केसे	२२-२४, ३०	सव्वं खलिवियं वीयं	१३-१६
समुद्याणं उंछमेसिज्जा	३५-१६	सया कुसलसंविट्ठं	२५-१६	सव्वं सव्वेण बद्धां	३६-१८
समुवट्ठियं तहि सत्तं	२५-६	सया दुद्धी विपरियागुवेइ	२०-४६	सव्वं सुविणं सफलं नराणं	१३-१०
समे जज्जुसिरे यावि	२४-१७	सयइ पोरानियं जाइं	६-१, १६-८	सव्वं से जाइयं होइ	२-२८
समो निव्वापनंसासु	१६-६०	सराणं गदं पट्ठा य	२३-६५	सव्वकम्मविनिमुक्कं	२५-३२
समो य ओ तेनु स वीयरामो	३२-२२, ३५, ४८, ६१, ७४, ८७	सरागे वीयरामो वा	३४-३२	सव्वगणं सम्पन्नाए णं भन्ते !	
समो य सव्वभूएसु	१६-८६	सरित्तु पोरानिय तत्थ जाइं	१४-५	जीवे कि जणयइ ?	२६५०५५
सम्मुक्कवाट्ठाऽऽययगतुं	३०-१६	सरिसो होइ बालाणं	२-२४	सव्वजीवाण कम्मं तु	३३-१८
सम्मं नो कासवई पमामा	२०-३६	सरीर पचक्कालोणं भन्ते !		सव्व जीवेसुऽऽच्छियं	३३-२४
सम्मं जवइ संज्जे	३६-१	जीवे कि जणइ ?	२६५०३६	सव्वट्ठसिद्धा वा वेव	३६-२१६
सम्मं जणामि अपणं	१८-२७	सरीरपरिमज्जणं	१६-६	सव्वट्ठसुविरि भवे	३६-५७
सम्मं धम्मं विद्याणिता	१४-५०	सरीरमाहु नाव त्ति	२३-७३	सव्वट्ठेणु व खलिया	३-५
सम्मं नो पडित्तयइ	१७-५	सरीरविबरत्तेरे	२०-२०	सव्वट्ठोए सपरिसा	२२-२१
सम्मं भावेसु अपयं	१६-६४	सरीरओखेणट्ठाए	३६-३४	सव्व दुक्कलपहीणट्ठा	२८-३६
सम्मं संपडिबज्जई	२३-१६	सल्लिगे अल्लिगे य	३६-४६	सव्वदुक्कलपहीणे वा	५-२५
सम्मं सुट्ठेण वेवसा	१८-३२	सल्लिगेण य अट्ठसयं	३६-५२	सव्वदुक्कलविभोक्कणं	२६-३८, ४१, ४६, ४६
		सल्लिगा सारागमा	११-२८	सव्वदुक्कलविभोक्कणि	१६-८५, २६-१, ४६

उत्तरजम्भयणं (उत्तराण्ययन)

५२

सम्ब तुषक्तविभोक्ताये	२६-१०, ५६	सम्बेतुं वि पएसेतु	३३-१८	सागरोवमेवें तु	३६-१६०
सम्बुत्ता विमुच्यई	६-८	सम्बेहि भूएहि दयाणुकम्पी	२१-१३	साणुक्कोसे विएहि उ	२२-१८
सम्बडं तु विवाहिया	३६-८	सम्बोसहीहि वृत्तिबो	२२-६	सा तैसि कायटिठई	३६-१६७, २५५
सम्बवम्माणुवत्तिगो	७-२६	सवरक्तपाए सुवई	१७-१४	सा पम्बइया सत्ती	२२-३२
सम्बवयाण अणुमए	३६-२४६	सह संवुडो अणुत्तरे बन्ने	६-२	सा पुडवी निम्बला सहावेणं	३६-६०
सम्बन्तू विणयक्करो	२३-७८	सहसम्मइयासक्कंवरो य	२८-१७	सा बाला मोक्कंभई	२०-२६
सम्बपमाणोहि अस्स उवलद्धा	२८-२४	सहसाज्जसासियाणि य	१६-६	सा मज्जमि विवाहिया	३६-५६
सम्बभवेसु अस्साया	१६-७४	सहस्सं हारए मरो	७-११	सामणं च पुराकयं	१६-८
सम्बमावधिभावणं	२३-१६	सहस्सगुणिया मूजो	७-१२	सामणं निष्कलं फासे	२२-४७
सम्बमूयाण संभया	२०-५६	सहस्सारे जहत्तेणं	३६-२२६	सामणं पुत्त ! तुक्कंरं	१६-२४
सम्बमेयं चइत्ताणं	६-५	सहायणक्कल्लाणं भत्ते !		सामणमणुपालिडं	१६-३६
सम्बलक्कल्लसंपुत्ता	२२-७	जीवे किं जणवइ ?	२६सू०४०	सामणमणुपालिया	१६-६५; ३६-२५०
सम्बलोगमि पाणिणं	२३-७५, ७६	सहायमिच्छे निउत्तल बुद्धि	३२-४	सामणस्स भविस्ससि	२२-४५
सम्बलोगमि विस्सुए	२३-५	सहिए आयणवेसए स भिक्खू	१५-५	सामणे पज्जुबटिउओ	६-६१
सम्बलोगप्पमंकोरो	२३-७६	सहिए उज्जुक्कं निवाणस्सिल्ले	१५-१	सामणे पज्जुबटिउया	१८-४६
सम्बसंणविमिम्भुक्के	१८-५३	सहिए सेयाणुए य कोविट्ठया	१५-१५	सामाहएणं भत्ते ! जीवे किं०	२६सू०६
सम्बसत्तू विज्यामहं	२३-३६	सा		सामाहयत्त पडमं	२८-३२
सम्बसुत्तमहोयही !	२३-८५	सा उ उडरिया कहुं ?	२३-४५	सामायाहि पक्कलामि	२६-१
सम्बस्स तुक्कस्स उ जो पयोक्को	३२-१	सा उ पारस्स गामिणी	२२-७१	सामायारी पवेइया	२६-४, ७
सम्बस्स तुक्कस्स पयोक्कवगो	३२-१११	सागरत्तं जहत्ताणं	१८-४०	सामिडं कुललं विस्स	१४-४६
सम्बस्स लोगस्स दुर्गछगिउज्जा	१३-१६	सागरा अउत्ततीसई	३६-२४१	सामी कुज्जा निमत्तणं	२-३८
सम्बस्स लोगस्स सवैयगस्स	३२-१६	सागरा अउत्ततीसं तु	३६-२४०	सामेहि सक्केहि य	१६-५४
सम्बारम्भपरिष्काओ	१६-२८	सागरा अउत्तवीसई	३६-२३१	सायं च सायं उवगं कुवत्ता	१२-३६
सम्बाहि मयधिहिं य	२८-२४	सागरा अउत्तवीसं तु	३६-२४०	सायं नो परिदेवए	२८-३६
सम्बे आमरणा भारा	१३-१६	सागरा अउत्तवीसई	३६-२४०	सायमसायं च आहियं	३३-७
सम्बे उम्मयापटिउया	२३-६३	सागरा अउत्तवीसं तु	३६-२३६	सायरसइहउहेउं	३६-२६४
सम्बे कामा दुहावहा	१३-१६	सागरा इक्कतीसं तु	३६-२४२	सायस्स उ जहू सेया	३३-७
सम्बे ते तुक्कसंभवा	६-१, ११	सागरा इक्कवीसई	३६-२३३	सायामारविए एगे	२७-६
सम्बे ते परिनिब्बुड	१४-५३	सागरा इक्कवीसं तु	३६-२३२	सारवण्णाणि नीगेइ	१६-२२
सम्बे ते विट्ठया मज्जं	१८-२७	सागरा उ छवीसई	३६-२३८	सारहिं वणमम्बवी	२२-१५
सम्बे धम्मपरायया	१४-५१	सागराणि य सत्तेव	३६-२२४	सारहिस्स वणमए	२२-२०
सम्बेसि चेव बम्मणं	३३-१७	सागरा पणुवीसई	३६-२३७	सारीर माणसा जेव	१६-४६
सम्बेसि चेव भूयाणं	२०-३५	सागरा सत्तवीसई	३६-२३६	सारीरमाणसे तुक्कं	२३-८०
सम्बेतु कामजाएतु	८-४	सागरा सत्तवीसं तु	३६-२३८	सावए भासि बाणिए	२१-१
सम्बेतु वि पएसणं	३३-२४	सागरा साहिया बुद्धि	३६-२२३	सावए बाणिए वरं	२१-५

सावए मे बिकोविए	२१-२	सिज्जससत्ति सहापरे	१६-१७	सीया नीयवत्तपबहा	११-२८
सावज्जं वज्जए युणी	१-३६	सिणार्णं नो वि पत्थए	२-६	सीयाए ओयणे तत्तो	३६-६१
सावज्जोअं परिबज्जवन्तो	२१-१३	सित्ता नो व बहन्ति मे	२३-५१	सीयारवणं तओ समास्को	२२-२२
सावत्थि नगरिमागाए	२३-३	सिद्धाण्णुणजोगेसु	३१-२०	‘सीसं’ पडिल्ले जओ	१-७
सासए जिणवेसिए	१६-१७	सिद्धाण्णजन्तभाओ य	३३-१४	सीलब्धं गुणभागर	१६-५
सासं दासं व मन्हं	१-३६	सिद्धाणं नमो किच्चआ	२०-१	सीलभूएण अण्यथा	२७-१७
सासणे विगयमोहानं	१५-५२	सिद्धाणेगाविहा वुत्ता	३६-५८	सीलवन्ता वहुसुया	५-२६; २२-३२
सासयं परिमिब्बुए	३५-२१	सिद्धाणेगाहाण्य ग्रहे	३६-६२, ६५	सीलवन्ता सबीसेसा	७-२१
साह्वो संवमुत्तरा	५-२०	सिद्धाणिगहाण्य ग्रहे	१६-१७	सीलसहावहासविगहाहिं	३६-२६३
साह्वसीए परिपुओ	२२-२३	सिद्धिं गच्छसि नीरजो	६-५८	सीसं छेत्तुं मुज्जहं	७-३
साह्वसीओ समायया	२१-१६	सिद्धिं गोमय ! लोयं गच्छसि	१०-३५	सीसत्तपसमाउले	२३-३, ७, १५
साहारणं जं व करेह कम्मं	४-४	सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं	२२-५८; २५-४३	सीसेण एयं सरणं उवेह	१२-२८
साहारण सरीरा उ	३६-६६	सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं	१६-६५	सीसे सो उ महण्यो	२१-१
साहारण सरीरा य	३६-६३	सिद्धिं बरहं गया	३६-६३, ६७	सीहकण्णी तव्वे य	३६-६६
साहाहिं खल्लो लहए समाहिं	१४-२६	सिद्धिं तंपाउणेज्जासि	११-३२	सीहे भियाण पवरे	११-२०
साहियं पणिओमयं	३६-२२३	सिद्धिगं गए गोयमे	१०-३७	सीहो व सहेण न संतसेज्जा	२१-१५
साहियं सागरं एक्कं	३६-२१६	सिद्धीं लोमगमेव य	२३-३३	सु	
साहिया बुग्नि सागरा	३६-२२५	सिद्धे वा हवह सासए	१-५८	सुहं व लद्धं सद्धं व	३-१०
साहिया सागरा सत्त	३६-२२५	सिद्धे हवह नीरए	१८-५३	सुहं वम्मस्स दुल्लहा	३-८
साहु गोमय ! पत्ता ते २३-२८, १४, ३६, ५४,		सिद्धे हवह सासए	३-२०	सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं	२८-२१
५६, ५४, ५६, ६४, ६६, ७४, ७६, ८५		सिया हु केलाससमा असंखया	६-५८	सुंमुमारा य बोद्धवा	३६-१७२
साहुणा विम्भयणिओ	२०-१३	सिरे वूडावणी जहा	२२-१०	सुहकं तस्स सामणं	२-१६
साहुस्स तस्स वयणं अकाउ	१३-३४	सिसुणागुब्ब सट्ठियं	५-१०	सुहकं त्ति सुपक्के त्ति	१-३६
साहुस्स दसिणे तस्स	१६-७	सी		सुहकियमट्ठपवोवसोहियं	१०-३७
साहु अन्नोअव वज्जव	२७-१२	सीउण्णं विविहं व दंसमसं	१५-४	सुहुमालं सुहोदय	२०-४
साहु कल्लाग मन्हं	१-३६	सीएण कसेण वा	१-२७	सुहुमालो सुमज्जओ	१६-३४
साहु कहय पुण्डिओ	२५-१५	सीओदणं न सेविज्जा	२-४	सुहकमाणं भिमाएज्जा	३५-१६
सि		सीओसिणा दंसमसा य कासा	२१-१८	सुहकलेसं तु परिणमे	३५-३२
सिगवेरे तव्वे य	३६-६६	सीयं व सीवीरजबोदयं व	१५-१३	सुहकलेसा उ वण्णओ	३५-६
सिगारत्तयं न वारए	१६-६	सीयं फुसह एगया	२-६	सुहकलेसा य इट्ठा उ	३५-३
सिबाणि सयणं वेहं	२३-५१	सीयज्जाए मणोरमे	६-६	सुणाइ उववज्जई वहुसो	३५-५७
सिक्खए नीहकोविए	२१-६	सीयन्ति एगे बहू कायरा नरा	२०-३८	सुणीवे नयरे रम्मे	१६-१
सिक्खआसी लेत्ति वुच्चई	११-४, ५	सीयन्ति जत्था बहुकायरा नरा	२१-१६	सुण्डिणे सुहटे मडे	१-३६
सिक्खिता संवमं तव्वं	५-२८	सीयपिं पुराणकुम्मासं	८-१२	सुट्ठिया नियमवए	२२-४०
सिज्जन्ते जुगधं पुणे	३६-५३	सीया उग्गा य सिद्धा य	३६-२०	सुट्ठु मे उववदसियं	२०-५४; २५-३५

मुणमडगस्स व जहा अहिमडस्स	३४-१६	मुयसीलसमुक्करितो	२३-८८	मुहेण य दुहेण य	२८-१०
मुणिट्ठाए मुलट्ठे ति	१-३६	मुयस्स आराहणयाए णं भन्ते !		मुहेसिणो मुक्कविणोयणट्ठा	३२-१०५
मुणिवाडभावं साणस्स	१-६	जीवे किं जणयइ ?	२६५०२५	मुहोइयो मुमं पुत्ता !	१६-३४
मुगेह एगगहियं हियत्वं	३२-१	मुयस्स पुष्पा विठल्स ताइणो	११-३१	सू	
मुगेह जिणभासियं	२८-१	मुयाणि पे वंच महव्वयाणि	१६-१०	सुवरस्स नरस्स य	१-६
मुगेह मे एगमणा दूओ	३६-१	मुया मे नएए ठाणा	५-१२	सूरा दठपरक्कमा	१८-५१
मुगेह मेगममणा	३५-१	मुक्खे ? वाक्कभासिणि	२२-३७	सूरे दठपरक्कमे	११-१७
मुगेह मे महाराय !	२०-१७	मुक्खे पियदंखणे	२१-६	सूरो अभिहो परं	२-१०
मुत्तं धर्यं च तमुभयं	१-२३	मुल्ला तेसि भवे बोहो	३६-२५८	सूलेहिं मुसलेहि य	१६-६१
मुत्तमं च महायसो	२२-२०	मुवण्ण रुपस्स उ पव्वया भवे	६-४८	से	
मुत्तण सन्निवसया विई य	३२-३	मुविणोए ति वुक्खई	११-१०, १३	सेओ अगारवा मु ति	२-२६
मुत्ते मु याकी पडिबुडओकी	४-६	मुविसोओओ मुपालओ	२३-२७	सेओसच्चपरक्कमे	१८-४८
मुट्ठपरमत्तसेवणा वा वि	२८-२८	मुव्वए कम्मई दिवं	४-२२	सेकाहए महया निरपरेणं	२०-५३
मुट्ठल्लहं लहिउं बोहिलामं	१७-१	मुव्वन्ति दाहणा सदा	६-७	से किंचि हू नितामिया	१७-१०
मुट्ठो हवइ कम्मणा	२५-३१	मुसंबुओ पंचहिं संवरहेहि	१२-४२	से लिणं सव्वसंसारं	२४-२७; ३०-३७
मुट्ठेसणाओ नक्काणं	८-११	मुसंभिया काममुणा इमे ते	१५-३१	से घाणबले य हायई	१०-२३
मुट्ठोदए य वस्से	३६-८५	मुसमन्नो मुविहिओ	२०-१३	से वक्खुवले य हायई	१०-२२
मुपरिक्खाई दमं चरे	१८-४३	मुसाणे मुत्तगारे वा	२-२०; ३५-६	से चुए बन्धलोगाओ	१८-२६
मुपियस्सावि मित्तस्स	११-८	मुसीइभूओ पउव्वहामि ठासं	१२-४६	से जम्भबले य हायई	१०-२४
मुक्किगव्यपरिणामा	३६-१७	मुसीला चारुपेहिणी	२२-७	सेज्जं तु पाडिलेहए	२६-३७
मुमहं मन्दरे गिरी	११-२६	मुहं वसामो जीवामो	६-१४	सेज्जं न पाडिलेहइ	१७-१४
मुमिणं लक्खणदम्भवत्सुविज्जं	१५-७	मुहं वा जइ वा दुहं	१८-७	सेज्जा वडा पाउरणं ये अत्थि	१७-२
मुयं आभिनिबोहियं	३३-४	मुहुत्तप्पफलविवागं	१३-३	सेट्टिकुलमि विसाले	१३-२
मुयं आभिनिबोहियं	२८-४	मुहममुहं च आहियं	३३-३३	सेखित्तो पयततो	३०-१०
मुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एव	२८०१;	मुहसाएणं भन्ते ! जीवे किं		सेणिओ मगहाहिवा	२०-२, १०
१६६०१; २६६०१		जणयइ ? २६ सू० ३०		सेणिवा ! मगहाहिवा !	२०-१२
मुयं वड्ढं न मज्जई	११-११	मुहस्स वड्ढ येया	३३-१३	से तत्थ पत्ते न वड्ढिज्ज भिक्खू	२१-१७
मुयं लड्ढा मज्जई	११-७	मुहावहं धम्मचुरं अणुत्तरं	१६-६८	से दंसरोऽभिजामई	३-१६
मुयं विपयं च गाहिण	१७-४	मुहुत्तरा येव भवन्ति सेसा	३२-१८	से न लक्खइ मण्डले	३१-३ से २० तक
मुयमुक्खपईनिभा	३४-७	मुहुत्तं तह सम्परायं च	२८-३२	से नार्हिई मच्चुमुहं तु पत्ते	२०-४८
मुयमम्मं ललु चरित्तमम्मं च	२८-२७	मुहुत्तमं नायराण य	३५-६	से नूनं मए पुव्वं	२-४०
मुययाराणिहवा सत्ता	२३-५३	मुहुत्ता तत्थ विवाहिवा	३६-७७, ८६, १००	से फासबले य हायई	१०-२५
मुयनाणं जेण अत्थओ विट्ठं	२८-२३	मुहुत्ता ते विवाहिवा	३६-७०, ८४, ८२, १०८, ११७	सेयं ते नराणं भवे	२२-४२
मुयरस्सीसमाहियं	२३-४६	मुहुत्ता बायरा तथा		सेयं पव्वइउं मम	२२-२६
मुयसीलततो जलं	२३-५३	मुहुत्ता सव्वलोगमि	३६-७८, ८६, १००, १११, १२०	सेयमेयंति ममई	५-६

से विणीए तित्तुचई	१-३	सो देवलोमसरिसे	६-३	हम्मन्ति मत्तपाणेसु	३५-११
से बि य मुग्गुयाइत्ता	२७-७	सो धम्मरुड तित्तु नायब्बो	२८-२७	'हम्मिहंति बहू' अिया	२२-१६
से वि सावत्थिमागए	२३-७	मा पच्छा परित्तपई	५-१३	हयं भइं व वाहए	१-३७
से संजए सुब्बए तवस्सी	१५-५	सो बोयइह नायब्बो	२८-२३	हयमाहीणीमाइ	३६-१८०
से समिए तित्तुचई ताई	८-६	सोयमिअं बिबज्जए	१६-५	हयाणीए गयाणीए	१८-२
से सव्वबले य हायई	१०-२६	सोयगिणा आयगुणिव्वणेणं	१४-१०	हरत्तणु महिया हिमे	३६-८५
से सव्वसिणेहवज्जए	१०-२८	सोयस्स सहं गहणं वयन्ति	३२-३५-३६	हरा हरन्ति तित्तु कइं पमाए ?	१४-१५
सेसाणि उ अल्पसत्थाई	२६-२८	सोऽरिट्ठनेमिनामो उ	२२-५	हरिणमबलो नाम	१२-१
सेसावसेसं लभउ तवस्सी	१२-१०	सोरियपुरंमि नवरे	२२-१,३	हरियाकाया य बोद्धव्या	३६-६५
से सिक्खं लद्धुमरिहई	११-१४	सोलसविहारेणं	३३-११	हरियालभेयसंकासा	३४-८
से सुब्बए होइ धुणीण मज्जे	१७-२१	सोबागकुलसंभूओ	१२-१	हरियाले हिरुगुल	३६-७४
से सोयई सच्छुमुहोवणीए	१३-२१	सोबागमाई दुहुओ गयाणं	१३-१८	हरितेणो मणुस्सिन्दो	१८-४२
से सोयबले य हायई	१०-२१	सोबागपुत्ते हरिएससाहू	१२-३७	हलिहाभेयसनिभा	३४-८
सो		सोबागा कासिभूमिए	१३-६	हवई किच्चाणं सरणं	१-४५
सो इन्दिय निगारेणं भन्ते ! जीवे कि		सो बित्तज्जापियरो !	१६-७६	हसियं वणियकन्थियं	१६-५
जणयइ ? २६५-६३		सो वि अन्तरभासिल्लो	२७-११	हसियं मुत्तासियाणि य	१६-१२
सोअण तस्स वयणं	२२-१८	सो वि राया तवें चरे	१८-३७	हा	
सोअण तस्स तो धम्मं	१८-१८	सो बीरररायवसभो	१८-४७	हालिहा मुचिहला लहा	३६-६७,७२
सोअण रायकन्ता	२२-२८	सो समासेण छव्विहो	३०-१०	हासं किहुं रइं दप्यं	१६-६
सो एवं तस्य पठिसिद्धो	२५-६	सो सुत्तइह तित्तु नायब्बो	२८-२१	हासं कीहं च वज्जए	१-६
सो करिस्सइ उज्जोयं	२३-७६,७८	सोहम्ममि जहन्नेणं	३६-२२२	हासं भयं सोममुमिथिय वेयं	३२-१०२
सो कुण्डलाण जुवल	२२-२०	सोहम्मोसाणगा लहा	३६-२१०	हासे अण मोहरिए	२४-६
सो खलु आणारुई नाम	२८-२०	सोही उज्जयभूयस्स	३-१२	हि	
सो खलु किरियारुई नाम	२८-२५	सो हु बन्धे मुए सिया	१४-२७	हिरुयुवपाउसंकासा	३४-७
सोनेण उ समुत्थया	२२-२८	सो होइ अभिगमरुई	२८-२३	हिसगा अविइन्दिया	१२-५
सोच्चाअमिनिक्खम पहाय भोए	१४-३७	ह		हिसे बाले मुत्ताबाई	५-६; ७-५
सोच्चाणं जिणसाणं	२-६	हए मिए उ पासित्ता	१८-६	हियं तं मन्वए पण्णो	१-२८
सोच्चाणं कल्ला भासा	२-२५	हओ तं सजले भिक्खू	२-२६	हियं विगयमया बुद्धा	१-२६
सोच्चाण मेहावी मुमासियं इमं	२०-५१	हंसा वयणतीरे	१३-६	हियं सया बम्मवए रयाणं	३२-१५
सोच्चा नेजाउयं वयणं	३-६; ७-२५	हहणुमकिया	१८-१६	हियमिस्सेयसुव्विबोचक्ये	८-५
सोच्चा सहिज्जण य	३६-२४६	हहाइ वेयाल इबाजिबल्लो	२०-४४	हियमिस्सेसाए सव्वजीबाणं	८-३
सो तवो दुबिहो बुत्तो	३०-७	हहाइ सत्यं जह कुणहीयं	२०-४४	हिरण्णं आयकूबं च	३५-१३
सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को	३२-११०	हणेज्जा कोइ कयई	२-२७	हिरण्णं पसुभिस्सह	६-४६
सो तेनु मोहा बिगइं ववेइ	३२-१०१	हत्थायागा इमे कामा	५-६	हिरण्णं सुबल्लं मणिमुत्तं	६-४६
सो दाणि तित्तु राय ! लहापुभाओ	१३-२०	हत्थिणपुरमि चित्ता	१३-२८	हिरियं पडिमलीणे	११-१३

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

५६

हिरिली सिरिली सिस्तिरिली	३६-६७	हे	हेडिमाहेडिमा वेब	३६-२१३
ही		हेऊकारणभोइयो	ही	
हीलं न निन्दं न लमाह भन्ते !	१२-३०	२५, २७, २८, ३१, ३३, ३७, ३८, ४१, ४३, ४५, ४७, ४०, ४२	होद किण्हाए	३४-४३
हु		हेऊहिं कारणेहि य	होद बायस्स कोत्तलो	१६-४०
हुब्बा मायविराह्या	२-३४	हेडिमा उवरिमा वेब	होई मागेण तेऊए	३४-४२
हुयाघणे जलन्तम्मि	१६-४६, ४७	हेडिमायजिकमा तहा	होस्वामि ति ववेळए	२-१२
			होमं हुंणामी इत्तिणं पत्तयं	१२-४४
			होमि वाहो भयन्तायं	२०-११

शुद्धि-पत्रक : १

मूलपाठ, संस्कृत-छाया एवं हिन्दी-अनुबाध

पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
७ ४।३ मूलपाठ	दुस्तीक-पङ्क्ति	दुस्तीकपङ्क्ति	२०८ १३।१ मूलपाठ	गत०	गत०
७ ५।१ "	कण-कु	कणकु	२१५ १।२ "	गुणिता	गुणिता
६ १५।३ "	अप्या-दन्तो	अप्या दन्तो	२२६ २१।२ सं० छाया	कस्मै	कस्मै
१२ ३२।२ सं० छाया	वस्ते	वस्ते	२२७ २७।४ "	सम्पत्	सम्पत्
१३ ३६ हि० अनु०	अच्छा छेदा है ।	बहुत अच्छा छेदा है ।	२४० ६।१ सं० छाया	विष्येष्	विष्येष्
१४ ४०।४ सं० छाया	त	न	२४० १०।४ "	अनुजानात	अनुजानीत
२७ ४।३ "	सेवेत्	सेवेत	२४५ ३६।३ "	बैव	बैव
२८ १०।१ मूलपाठ	दंस	दंस	२४५ ३८।३ "	बैव	बैव
४४ ६।१ सं० छाया	सङ्गः	सङ्गे	२४५ ३७।१ "	नैव	नैव
६७ ३।४ "	उत्कपण	उत्कपेण	२४६ ४१।१ "	धा	यथा
७२ ३२।२ "	समुच्छ्रयम्	समुच्छ्रयम्	२४६ ६१ हि० अनु०	मुण्डितो	मुमुण्डितो
१०१ ११।१ "	गुद्वेषणा	गुद्वेषणा	२४२ ७६।४ मूलपाठ	आहरित	आहरितु
१०२ १८।२ "	वशास्त्रनेक०	वशास्त्रनेक०	२४५ ६४ हि० अनु०	ज्ञान, चारित्र	ज्ञान, वस्त्र, चारित्र
१०२ १८।४ "	यये व	ययेव	२६३ १६।४ मूलपाठ	?	!
११० १०।१ "	ह्रियमाणे	ह्रियमाणे	२६३ १६।४ सं० छाया	?	!
१११ १६ हि० अनु०	देवेन्द्र ने नमि	देवेन्द्र ने नमि	२६४ १६।१ "	महाराज !	महाराज !
	राजपि से	राजपि ने	२६६ ३१।३ "	भवित	भवितुं
११२ २२।२ सं० छाया	भित्वा	भित्त्वा	२६७ ३६।३ "	काम-बुधा	कामबुधा
११२ २४।३ मूलपाठ	वालम	वालम	२७७ ४।१ मूलपाठ	घरणी	घरणी
११६ ४८।१ सं० छाया	व	तु	२७६ १३।१ "	दयागुह्यमी	दयागुह्यमी
११८ ५८।१ मूलपाठ	उत्तमो	उत्तमो	२८१ २३ हि० अनु०	करन	करने
१२४ १० हि० अनु०	संक्षेप-काल	संक्षेप-काल	२८१ २३ "	सहलाभवन	सहलाभवन
१२७ ३०।१ मूलपाठ	अवउज्जिम	अवउज्जिम	२८२ २८।४ सं० छाया	समवस्तुता	समवस्तुता
१२८ ३६।३ "	बहए	बूहए	२८६ ४८ हि० अनु०	उन्न-तप का आच-	उन्न-तप का आचरण
१२६ पंक्ति २ "	बहुस्तुयपुञ्ज	बहुस्तुयपुञ्ज	रण कर तथा	कर वे दोनों (राजी-	
१३३ "	"	"	सब कर्मों को	यती और रचनेमि)	
१३४ १०।१ सं० छाया	स्थानः	स्थाने:	क्या, वे दोनों	केबकी हुए और	
१३४ ११ हि० अनु०	बोच पल	बोच पल	(राजीमती और	सब कर्मों को क्या	
१४५ १६।४ मूलपाठ	वाहामु	वाहामु	रचनेमि) अनुत्तर	अनुत्तर सिद्धि को	
१६२ ११ हि० अनु०	उसको	उसके	सिद्धि को प्राप्त	प्राप्त हुए ।	
१६६ सू० २ सं० छाया	स्वभिर-	स्वभिर	३०४ ६।२ सं० छाया	चिह्नियो	चिह्नियो
२०३ सू० ७ मूलपाठ	कुहुत्तरसि	कुहुत्तरसि	३०४ ६।४ "	गोतमी	गोतमी

पृष्ठ दलोक	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ दलोक	अशुद्ध	शुद्ध
३१६ ८०१२ सं० छाया	नाम	नाम्	४२३ १४ हि० अनु०	१४-अविचार	अववा
३२५ ११३ "	पंचैव	पंचैव		इव्य	१४-इव्य
३२७ १३११ "	ओद्यो	ओद्यो	४२५ २३ "	दशा वर्ण	दशा, वर्ण
३२८ २६१४ "	सबन्धः	सर्वेभ्यः	४४२ ७ "	दुःख को	दुःख का
३३७ १३१३ "	प्राञ्जलि	प्राञ्जलि	४४३ १४१४ मूलपाठ	दट्ठं	दट्ठं
३५२ १५१४ मूलपाठ	ओमो	ओम	४४७ ३५ हि० अनु०	वीतराग	वीतराग
३५६ ३४११ सं० छाया	आवृत्त उपसर्ग	आतंके उपसर्ग	४४८ ४१ "	ध्यापार	व्यापार
३५८ ४५१३ "	मिलेत्	मिलेत्	४४८ ४११३ सं० छाया	व्यये	व्यये
३५८ ४७ हि० अनु०	दर्शय	दर्शन	४४८ ४६१४ "	दुःखं	दुःखं
३६५ ३१२ सं० छाया	विप्रन्	विप्रन्	४५० ५११३ "	दान्त	दुर्दान्त-
३६६ ७१४ मूलपाठ	उज्ज्वलित	उज्ज्वलित	४५१ ५६१२ "	दुःखोप-	दुःखोप-
३६८ १६१४ "	गिष्कृद्	गिष्कृद्	४५१ ५६१४ "	यत्तस्य	यत्तस्य
३७८ २६१४ सं० छाया	पूर्व	पूर्व	४५५ ८१११ "	स्पश	स्पर्श
३७८ ३५१४ मूलपाठ	सञ्जर्ह	सञ्जर्ह	४५७ ८११२ "	प्राप्नोति	प्राप्नोति स
३८३ सू० १५०३ सं० छाया	अमणन	अमणन	४५७ ८११३ "	बालः	बालः
३८३ सू० १५०३ हि० अनु०	उच्चारण	उच्चारण	४७० २१११ "	उद्विं०	उद्विं०
४०० सू० १२ "	उत्तरोत्तर बढ़ने वाले	उत्तरोत्तर बढ़ने वाले	४७० २२१२ "	उत्कर्षेण	उत्कर्षेण
४०० सू० १३ सं० छाया	निर्णय	निर्णय	४७१ २५११ "	कर्मणाम्	कर्मणाम्
४०२ सू० २२ मूलपाठ	घणिय	घणिय	४७६ १११४ मूलपाठ	नायव्यो	नायव्यो
४०२ सू० २२ हि० अनु०	अनुभव	अनुभव	४८२ ३१ हि० अनु०	धर्म	धर्म
४०४ सू० ३१ सं० छाया	निर्जयति	निर्जयति	४८३ ३८, ३९ "	मूर्हत	अन्तर्मुहूर्त
४०५ सू० ३४ "	संक्लिश्यति	संक्लिश्यति	४८६ ५६१४ सं० छाया	गतिमुपपद्यते	गतिमुपपद्यते बहुधाः
४०५ सू० ३२ मूलपाठ	विणियट्ठ	विणियट्ठ	४८७ ६० हि० अनु०	है	है और
४०६ सू० ४६ "	अणुस्तिष्ठते	अणुस्तिष्ठ	४८६ १६११ सं० छाया	व्यायत्	व्यायत्
४०६ सू० ४८ सं० छाया	जीबो	जीबो	५०७ ३६११ "	उत्पत्को	उत्पत्को
४०६ सू० ४९ "	अनुस्तिष्ठते	अनुस्तिष्ठते	५१० ५५११ "	कवः	कवः
४१२ सू० ६१ हि० अनु०	और	और	५१० ५५१४ "	पु	पु
४१२ सू० ६१ "	अन्त	अन्त	५१३ ७५१२ "	उज्जम	उज्जम
४१५ सू० ७१ सं० छाया	तावदेवोपपत्तिकं कर्म	तावदेवोपपत्तिकं कर्म	५१६ ८६ हि० अनु०	उसकी	उसकी
४१५ सू० ७१ मूलपाठ	दर्शनविषयणं	दर्शनविषयणं	५१८ १०२१२ सं० छाया	मुक्तपिशा	मुक्तपिशा
४१६ सू० ७२ हि० अनु०	है, तब	है, तब	५१८ ११११२ "	लोके-वेसे	लोके-वेसे
४२२ १० "	बन तप	बन-तप	५२२ १२६१३ मूलपाठ	वे०	वे०
४२२ ८१३ मूलपाठ	य	×	५२२ १२८११ "	सोमंगला	सोमंगला वेव
४२२ ८१४ "	बज्जो	य बज्जो	५२२ १२८१२ "	वेव	×
			५२३ १३६११ सं० छाया	जीविषा	जीविषा

शुद्धि-पत्रक : १-२

३

पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
५२५ १४३।४ सं० छाया	अन्तर०	अन्तर०	५३७ २१६।२ सं० छाया	स्थिति भवेत्	स्थिति भवेत्
५२६ १५१।२ ,,	उत्कर्षण	उत्कर्षण	५४० २३७।३ ,,	चतुर्थ	चतुर्थ
५२६ १५३।४ ,,	०मेतद्	०मेतद्	५४१ २४३।१ ,,	त्रयस्त्रिंशत्	त्रयस्त्रिंशत्
५२८ १६६।२ ,,	उत्कर्षण	उत्कर्षण	५४२ २४५।४ ,,	भवेत्	भवेत्
५२६ १६६।१ ,,	वर्णतत्त्वेष्वेव	वर्णतत्त्वेष्वेव	५४४ २६३।१ ,,	सम्यग्	सम्यग्
५३० १७६ हि० अन्त०	पूर्व	करोड पूर्व	५४५ २६५।४ ,,	कान्दपा	कान्दपा
५३२ १८५ ,,	की है ।	की है —	५४५ २६५।३ ,,	०हेतो	०हेतोः
५३२ १८८ ,,	समुद्र	समुद्र	५४५ २६३।१ मूलपाठ	०इवाहं तह	०इवाहं
५३३ १८९ ,,	तब	तब	५४५ २६३।२ ,,	सील	तह सील
५३६ २१३ ,,	अर्थः	अर्थः	५४५ २६१ हि० अन्त०	के	से
५३६ २०८।१ मूलपाठ	नक्कलात	नक्कलात	५४५ २६३ ,,	की	को

शुद्धि-पत्रक : २

पाठान्तर

पृष्ठ पाठान्तर	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पाठान्तर	अशुद्ध	शुद्ध
क्रम			७८ ५	(सु०)	(स०)
६ ४	०दम्मे	०दम्मे	१०० ७	यावरे हि वा (बू०)	यावरे हि वा (बू०पा०)
६ ५	(अ, उ, म)	(अ, उ, ऋ)	१२५ १	कुत्तित्प	कुत्तित्प
१० श्लोक २०।१ बाह्यतो	बाह्यतो	(अ, आ, इ, उ)	१२६ २	(उ, म, बू०)	(उ, ऋ, बू०)
१३ ३	(बू० पा०)	(बू० पा०) ।	२०७ ५	धम्मलब्ध	धम्मलब्ध
१४ २	(बू०पा०, बू०)	(बू० पा०, बू० पा०) ।	२७८ ४	परमसंवेग	परमसंवेग
१४ ३, ४	(बू० पा०)	(बू०) ।	३२६ ५	०मुबहि	०मुबहि
१४ ५	(अ, उ, बू०)	(अ, उ); किली य (बू०) ।	३६८ सु०६	'पडिबन्ने ये' ५	'पडिबन्ने य ण' ५
४३ १	(बू०पा०, बू०पा०)	(बू०पा०, बू०) ।	४०६ २	अणुस्तिस्सये	अणुस्तिस्स
५१ २	(बू०पा०, बू०पा०)	(ऋ, बू०पा०, बू० पा०)	४४१ २	(सु० आ)	(सु० पा०) ।
५१ ७	पीहाति	पीहति	४४१ ५	मणिषो	मुणिषो
६६ २	अक्के भग्गमि (बू०पा०) ।	अक्के भग्गमि (बू०पा०) ।	५०६ २	०णविहा	०णविहा
७० २	अक्कलाय	अक्कलाय	५३१ १	०इ	०इ
७० २	(बू०पा०)	(बू०पा०) ।			
७७ २	(बू०पा०)	(बू०, बू०पा०) ।			

शुद्धि-पत्रक : ३

आमुख

पृष्ठ स्थल	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ स्थल	अशुद्ध	शुद्ध
३ टि० ४	३०८, ३०	३०३०	२७६ ,, ४	भौमिक	भौगोलिक
६० पंक्ति १४	तदुभय-मरण :— वर्तमान...	तदुभय-मरण :—वर्तमान- भय के समान जगले भय का आयुष्य जांच लेने के पश्चात् वर्तमान...	२८६ ,, २५	गई ।' उसी....	गई । राजीमती भी एक गुफा में गई। उसी...
६० ,, १५	सम्यक्कृष्टि	अविरत-सम्यक्कृष्टि	२८६ ,, २६	सुखने	सुखाने
६३ ,, १६	उपेक्षा	अपेक्षा	३०२ ,, ३	सामाजिक-	सामायिक-
६४ ,, २२	समय में	×	३३४ ,, १६	(श्लोक ३१)	(श्लोक ३०)
१०५ ,, ७	नगति	नगति ^२	३४७ ,, १६	अपने	अपने अहं को
१३१ ,, १	बहुस्तुमपुञ्जा	बहुस्तुमपुञ्ज	४४० ,, १२	क	को
१३२ ,, २२	बाहिए ।	बाहिए । ^३	४६४ ,, १४	अथ,	अथ, शोक
२२१ ,, १७	(श्लोक २२, २३)	(श्लोक २२)	४६५ ,, ७	अग्रवाल (ज्ञान)	अग्रवाल भूत (ज्ञान)
२३७ ,, २०	अपरिग्रह	परिग्रह	४७५ ,, ११	गया है ।	गया है, और दूसरे निक को 'धर्म-लेख्य' कहा गया है ।
			४६२ ,, ६	(श्लोक १)	(श्लोक २१)

शुद्धिपत्रक : ४

पदानुक्रमणिका

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	२	२	१६	जीव लोगमि	जीवलोगमि
१	१	३	अदमाय	अदमायं	२	२	२०	अकिचये	अकिचये
१	१	६	अएव्य आगया एते	अय अब आगयाएते	२	३	२	नाबनाए	नाबनाए
१	१	१६	बाहिरण	बाहिरण	२	३	१८	अनेगछन्दाइह	अनेगछन्दाइह
१	१	१८	अकड	अकड	२	३	२६	अनेगान	अनेगान
१	२	५	अकोहणो	अकोहणे	२	३	३२	सिद्धसिद्धेय पक्क	सिद्धसिद्धेयपक्क
१	२	२४	सज्जमक्की	सज्जमक्की	३	१	३	परिवाबसे ?	परिवाबसे ?
१	२	२८	अचिरकालकर्ममि	अचिरकालकर्ममि य	३	१	६	टठान	ठान
१	३	३२	अटठं न	अटठं न	३	३	१३	अऊं	मऊं
२	१	६	अट्टमहृता	अट्टं महुता	३	३	२०	अण	अण
२	१	१७	अट्टेवड	अट्टेव ड	३	३	२७	अण्यहिहयबले	अण्यहिहयबले
२	२	२	अणभिमहिजो	अणभिमहिजो	४	२	३	मुची	मुचि

पृष्ठ कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४ २	२१	६-२	६-२	१२ ३	२६	कुम्भीसु	कुम्भीसु
४ २	२२	१०-३६	१०-३४	१३ २	१८	कस	कस
४ २	३१	हु	य	१४ १	१५	१२-३	१२-३; २२-४७
४ २	३४	णिच्चो	निच्चा	१५ २	७ के बाद		केसि गोयममबबी
४ ३	१०	अमयं	अमयं				२३-२२
४ ३	२०	अरई	अरई	१५ २	८	५२, ६२,	५२, ५७, ६२,
५ ३	३	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१५ २	१३	२२, ३७,	३७,
५ ३	१२	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१६ १	२४	लिख	लिख
५ ३	१५	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१७ २	६	१६-२१	२६-२१
५ ३	१६	घरणी	घरणी	१८ ३	१२	बारिमे... ३४-५६	×
५ ३	२४	ट्ठाणलक्खणो	ठाणलक्खणो	१९ १	१४	चिरकालेण वि	चिरकालेण वि
६ १	४	जणाओ	जणाओ	१९ २	४	मन्ता	मन्ता
६ १	१३	उट्ठिण	उट्ठिण	१९ २	६	छण्ह	छण्ह
६ १	१७	निज्जओ	निज्जओ	२० ३	५	मं	मं
६ १	३२	१७-१६	११-१६	२३ १	११	जे सन्ति...	जे सन्ति... ५-२
६ २	४	आउकम्मं	आउकम्मं	२४ ३	४ के बाद		तं सव्व साहीणमिहेव
६ २	२७	अगमे गंगसोउ	अगमे गंग सोउ				सुखं १४-१६
६ ३	२८	वन्दिता	वन्दिता	२५ १	३	३-१०,	×
७ १	३२	जसमिणो	जसमिणो	२६ २	१२, १३, १४	पालि०	पालि०
७ २	२	आसणगओ	आसण गओ	३३ १	२०	३५-५	३३-५
७ २	८	मह्विड्डया	मह्विड्डया	३५ १	४	१६	२६
८ १	१४	गजोग्ग	गजोग्ग	३६ ३	५	३६-२२, २६	३६-२२ से २६
८ १	१५	चित्तसि	चित्तसि	४३ १	६	३६-६	२६-६
८ २	३१	इहञ्जयन्ते	इहञ्जयन्ते	४४ ३	३०	रोए	रोए
९ १	११	नीय	नीय	४५ १	अन्तिम	१३४-१६, ८	३४-१६, १८
९ २	२१	समूलिय	समूलिय	४७ १	३४	२३-२४	२३-२४
९ २	२२	बहू	बहू	४७ २	२०	३३-१०६	३२-१०६
९ ३	३	घणे	घणे	५१ ३	१५	सव्वं धम्मं... १४-५०	×
९ ३	४	उल्लसणे	उल्लसणे	५१ ३	अन्तिम	बकसि २६-१, ४६	बकसि २६-१
९ ३	५	उल्लिओ	उल्लिओ	५२ १	१३	७६	७६, ७८
१० १	१०	उम्सूलगसयम्भीओ	उम्सूलगसयम्भीओ	५२ १	२४	नयविहिहि	नयविहिहि
१० १	१२	धासमेसन्तो	धासमेसन्तो	५३ २	१	सिज्ज	सिज्ज
१० ३	१३	खसिओ	खसिओ	५३ ३	२६	इट्ठा	छट्ठा
११ ३	७	तव	तव	५३ ३	३०	बहुओ	बहुओ

पृष्ठ कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१	६	बूयो	५५	२	४	बीयसह
५४	२	२७	बहू	५५	२	७	३२-३५, ३६
५४	२	३१	नायराण	५५	३	४	०गीण०
५४	३	१४	घाण०	५५	३	६	हरिया०
५४	३	१७	जडम०				

२९ बें अध्ययन का दूसरा सूत्र 'संयोगं भन्ते !' पु० ३९६ से आरम्भ होगा। अतः बाय के सूत्र क्रमशः एक संख्या से बढ़ते चले जायेंगे। इसलिए २९ बें अध्ययन के सभी प्रमाणों को एक-एक सूत्र बढ़ा कर पढ़ा जाए।

आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार, अनुबाधक आदि	संस्करण	प्रकाशक
अनमारधर्माभूतम्	पं० आशाधर	सं० १९७६	माणिकचंद दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति, बम्बई
अनुयोगद्वाराणि (वृत्ति सहित)	आयंरखित सूरि वृत्तिकार हेमचन्द्र सूरि (मलधारी) वृत्तिकार हरिभद्र	सन् १९२४ सन् १९२८	देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई आगमोदय समिति, मेसाणा श्री ऋषभदेवजी केसारीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम
अष्ट पाह्व	कुन्दकुन्द भावावबलिका— पं० व्यचन्द छाबड़ा, जयपुर	सन् १९५०	पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला, मारीठ (राजस्थान)
अष्टांगहृदय	बामभट	सन् १९३५	सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई
आचारार्ङ्ग सूत्रम् (निर्युक्ति, वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार शीलाकाचार्य	सन् १९२८	आगमोदय समिति, बम्बई
आवश्यक सूत्रम् (निर्युक्ति, वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९६३	सुधर्मा ज्ञान मन्दिर, बम्बई
इति-भाविदाहं सुत्ताहं	अनु० सं० मुनि मनोहर	सन् १९३३	ऋषभदेवजी केसारीमलजी श्री श्वेताम्बर संस्था, रत्नपुर (मालवा)
उत्तराध्ययनानि (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार जिनदास गणि महतर	सं० १९७२	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार भांडार संस्था, बम्बई
उत्तराध्ययनानि (निर्युक्ति, वृहद् वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार वादिवेताल शान्ति सूरि	सं० १९६३	फूलचन्द लीमचन्द, बल्लाद, अहमदाबाद
उत्तराध्ययनानि (सुलबोधा वृत्ति सहित)	वृत्तिकार नेमिचन्द्राचार्य	सन् १९३३	मास्टर उमेशचन्द रामचन्द, अहमदाबाद
उपदेशमाला (भावास्वर)	धर्मदास गणि	सन् १९१९	आगमोदय समिति, मेसाणा
ओषनिर्युक्ति (भाष्य, वृत्ति सहित)	भद्रबाहु वृत्तिकार श्रीकाचार्य	सं० १९६४	पं० मूरालाल कालीदास
औपपातिक सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अमरदेव सूरि	सन् १९२७	सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस, अजिताश्रम, लखनऊ
गोम्पटसार (ओषकाण्ड)	नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती अनु० जे० एल० जैनी, एम० ए०	सन् १९३७	पाली पब्लिकेशन बोर्ड (बिहार गवर्नमेंट)
” (कर्मकाण्ड)	अनु० ब्रह्मचारी श्रीतल प्रसाद	सन् १९५९	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
जातक	सं० भिमसू जगदीशकस्तुरी	प्रथम संस्करण	१९१९
जातक	हि०अनु० भदन्त आनन्द कोसल्यायन		
जीवाजीबाभिमम सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार मलयगिरि	१९१९	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार अनुवादक आदि	संस्करण	प्रकाशक
तत्त्वानुशासन	रामसेन	प्रथम	माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई
तत्त्वार्थी घेगमनुत्र (सभाष्य)	उमास्वाति	सन् १९१२	परमश्रुतप्रभावक जैन मंडल, बम्बई
तत्त्वार्थ वृत्ति (श्रुतवागरीय)	अनु० लुबचन्द्र सिद्धांतशास्त्री श्रुतवागरी सूरि स० प्रो० महेन्द्रकुमार जैन स० मुनि कल्याण विजयजी	सन् १९४९	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
तत्त्वार्थच्छेद पट्टावलि			
दस स्मृति			
दसवेआलियं तद् उत्तरउभयप्राणि	वाचना प्रमुख : आचार्य तुलसी	सं० २०२३	जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा कलकत्ता
दशवेकालिक (निर्युक्त. सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु	सन् १९१८	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार भण्डागार संस्था, बम्बई
दशवेकालिक (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार हरिभद्र	सन् १९१८	" " "
दीर्घनिकाय (मूल पालि)	गं० भिक्षु जगदीस कस्सपो	सन् १९५८	पाली पब्लिशिंग बोर्ड, बिहार गवर्नमेन्ट
दीर्घनिकाय	डि० अन० राहुल सांकृत्यायन	सन् १९३६	महाबोधि समा, सारनाथ, बनारस
नंदी सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वाचक समाश्रयण वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९२४	आगमोदय समिति, मेसाणा
नन्दी सूत्रम् (वर्ण, वृत्ति सहित)	वृत्तिकार जिनदास महत्तर वृत्तिकार हरिभद्र सूरि	सन् १९३१	रघुचन्द्र नवलमल पाई, सिरौही
नाभिनन्दोद्धार प्रबन्ध			
निक्षीप सूत्रम् (भाष्य, वर्ण सहित)	प्रणेता विमरगणि महत्तर वृत्तिकार जिनदास महत्तर सम्पादक श्री अमरमुनि	सन् १९५७	सम्पति ज्ञानपीठ, आगरा
Patanjali's yoga Sutras	Patanjali Eng. Tr. by Rama Prasad, M.A	1910	Panini Office, Bhuvaneswari Asrama, Bahadurganj
पातञ्जल योगदर्शन	पतञ्जलि	सं० २०१७	गीताप्रेस, गोरखपुर
प्रज्ञापना (वृत्ति सहित)	श्यामाचार्य वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९१८	आगमोदय समिति, मेसाणा
प्रवचनसारोद्धार (पूर्व भाग)	नेमिचन्द्र सूरि टी० सिद्धसेन सूरि	१९२२	सेठ देवचन्द्र लालभाई, जैन पुस्तकोद्धार संस्था (ग्रन्थांक ५८)
,, (उत्तर भाग)	,,	१९२६	,, (ग्रन्थांक ६४)
भगवती (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अमरदेव सूरि		
मनुस्मृति	सं० मनुनारायणराय आचार्य, काव्यतीर्थ	सन् १९४६	निर्ययसागर प्रेस, बम्बई
मूलाचार (स्टीक)	वेङ्कटेश्वरार्थ टीकाकार बसुनंदि	सं० १९७७	माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई

आगमों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

३

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार- अनुवादक आदि	संस्करण	प्रकाशक
मूलाचार	मुन्दकुन्दाचार्य हि० अनु० जिनदास पार्श्वनाथ फडकले, शास्त्री, न्यायतीर्थ	वीर सं० २४८४	श्रुत भांडार व ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलठण (उत्तर सितारा)
मूलाराधना (विजयोदया टीका सहित)	शिषार्थ टीकाकार अचराजित सूरि	सन् १९३५	गोलापुर
विविध तीर्थकल्प	जिनप्रभ सूरि	सन् १९३४	विधी जैन ज्ञानपीठ, शान्तिनिकेतन (बंगाल)
समरसिद्ध			
समधार्याय सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९१८	आगमोदय समिति, मेसाणा
सुत्तनिपात (पालि)	सं० भिषखू जगदीस कस्सपो	सन् १९५६	पाली पब्लिकेशन बोर्ड (विहार गबन'मेट)
सुत्तनिपात	हि० अनु० भिक्षु धर्मरत्न, एम० ए०	सन् १९५१	महाबोधि सभा, सारनाथ (बनारस)
सुत्तनिपात	गु० अनु० अध्यापक धर्मानंदन कोसम्बी	सन् १९३१	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
सूत्रकृताङ्ग (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९१७	आगमोदय समिति, मेसाणा
सूत्रकृताङ्ग चूर्णि	जिनदास गणि	सन् १९४१	श्री ऋषभदेवजी केदारीमलजी खेतान्धर संस्था, रतलाम (मालवा)
स्थानाङ्ग सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९३७	गेठ माणिकलाल चुनीलाल, गेठ कान्तिनलाल चुनीलाल, अहमदाबाद
The Uttaradhyayana Sutra	Jarl Charpentier, Ph.D.	1922	UPPSALA

बोर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल नं० २२ उजसी
लेखक तुलसी भाचार्य
शीर्षक इतर जन्म पणानी
खण्ड ४४६० क्रम संख्या